केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व

केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व

(पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)



किरण चन्द्र शर्मा एम० ए० (हिन्दी और संस्कृत), पी-एच० डी०
प्राध्यापक तथा अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
महेन्द्र कॉलेज, पटियाला

१९६१
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा - दिल्ली

भारती साहित्य मन्दिर
(एस० चन्द एण्ड कम्पनी से सम्बद्ध)

रामनगर	नई दिल्ली
फव्वारा	दिल्ली
माई हीरां गेट	जालन्धर
लाल बाग	लखनऊ
लैमिंगटन रोड	बम्बई

मूल्य : १५ रुपये

गौरीशंकर शर्मा, मैनेजर, भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित
एवं सुपर प्रेस, पहाड़गंज, नई दिल्ली में मुद्रित ।

भूमिका

"केशवदास : जीवनी, कला और कृतित्व" मेरे मित्र डा. किरण चन्द्र जी शर्मा की प्रौढ़ मननशक्ति और गंभीर अध्ययन का निदर्शन है। केशवदास के जीवन, उनकी रचनाओं और हिन्दी साहित्य में उनके स्थान का इसमें सांगोपांग विवेचन है। डा० शर्मा ने इस विषय का खूब अध्ययन-मनन किया है और उनका विवेचन बहुत समुचित हुआ है। उन्होंने विभिन्न विद्वानों के मतों को विस्तारपूर्वक जांचा है। सच्चे सत्यान्वेषी की भाँति वे आग्रहरहित हैं। इस पुस्तक से केशव-साहित्य और उसका वैशिष्ट्य भली भाँति समझ में आ जाता है। ऐसे भी स्थान पुस्तक में हैं जहाँ सभी उनके निष्कर्षों से सहमत नहीं हो सकते। उदाहरणार्थ, बिहारी और केशव का पिता-पुत्र सम्बन्ध। शर्मा जी का निष्कर्ष है कि बिहारी केशव के पुत्र थे। सब इससे सहमत नहीं हो सकते। परन्तु इस विषय का विवेचन करते समय उन्होंने पक्ष या विपक्ष में दी जाने वाली सभी युक्तियों का संग्रह कर दिया है। पाठक स्वयं अपना निर्णय कर सकता है। उनके विवेचन की यह विशेषता है। वे अपने निर्णयों को पाठक पर लादना नहीं चाहते। सभी ज्ञात तर्क और प्रमाण स्पष्ट रूप में रख देते हैं।

इन्होंने केशव-रचित ग्रन्थों का विशद परिचय दिया है। परवर्ती कवियों और आलंकारिकों पर पड़े प्रभाव का सविस्तर विवेचन किया है। सर्वत्र उनकी पद्धति यह है कि पाठक परपक्ष से भी पूर्णतः परिचित रहे।

इस विद्वत्तापूर्ण प्रबन्ध को प्रकाशित देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। यह केशवदास का पूर्ण विवेचन तो है ही परोक्ष रूप से व्रजभाषा साहित्य का भी अच्छा विवेचन है। इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक की रचना करके वे सभी सहृदयों के धन्यवाद-भाजन हुए हैं। मैं उनकी सफलता पर हार्दिक बधाई देता हूँ।

हजारी प्रसाद द्विवेदी

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

प्राक्कथन

मध्ययुग के महाकवि एवं आचार्य केशवदास पर लिखे चार आलोचनात्मक ग्रन्थ मेरे देखने में आए हैं—१. केशव की काव्यकला (कृष्णशंकर शुक्ल), २. केशवदास—एक अध्ययन (रामरतन भटनागर), ३. आचार्य केशवदास (डा० हीरालाल दीक्षित), तथा ४. केशवदास (चन्द्रबली पांडे)। इनके अतिरिक्त 'हिन्दी नवरत्न', हिन्दी के इतिहास-ग्रन्थों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी केशवदास-सम्बन्धी आलोचनाएँ हुई हैं किन्तु आचार्य केशवदास की कृतियों का महत्त्व और उनके व्यक्तित्व की गरिमा इतनी विशाल है कि उपर्युक्त रचनाओं के होते हुए भी बहुत कुछ अवशिष्ट रह जाता है। इस बात को दृष्टि में रखते हुए मैंने प्रस्तुत प्रबन्ध में केशवदास के जीवन, व्यक्तित्व तथा उनके काव्य—विशेषतया रीतिकाव्य के मूल्यांकन का प्रयास किया है। केशवदास-विषयक सभी उपलब्ध सामग्री का ध्यान रखकर यह प्रबन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस प्रबन्ध-रचना का एक और भी कारण है। आधुनिक युग के कुछ आलोचकों ने केशवदास को कठिन काव्य का प्रेत, हृदयहीन तथा नीरस कह डाला है। इस प्रकार के कथन को अतिरंजना से पूर्ण समझकर मैंने यह उचित समझा कि कवि का एक ऐसा अध्ययन प्रस्तुत किया जाये जिससे यह स्पष्ट हो सके कि केशव के काव्य के प्रति ऐसी अनुदार धारणाएँ प्रकट करना कवि के साथ अन्याय करना है। फलतः मैंने विद्वानों के कथनों का परीक्षण करते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि 'रसिकप्रिया' का लेखक हृदयहीन एवं सरसता से शून्य नहीं था। उसमें सरसता तथा रसिकता पूरी-पूरी मात्रा में विद्यमान थी। 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया रीतिकाव्य-ग्रन्थों के अनेक छन्द इसके मधुर साक्षी हैं। भाषा की दृष्टि से भी केशव की अधिकांश रचना प्रसाद-गुण-पूर्ण है। हाँ, 'रामचन्द्रिका' के कुछ छन्द और 'कविप्रिया' के चार-पाँच छन्द अवश्य क्लिष्ट हैं, अन्यथा शेष ग्रन्थों के अधिकांश छन्द प्रसाद-गुण-युक्त हैं। 'रामचन्द्रिका' एवं 'कविप्रिया' के कठिन छन्दों की क्लिष्टता भी कवि की जानी-समझी क्लिष्टता है, जो पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए जान-बूझकर उत्पन्न की गई है।

केशवदास का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। केशव आचार्य हैं, महाकवि हैं और इतिहासकार हैं। रीतिकाव्य-ग्रन्थों में केशव के दर्शन आचार्य एवं कवि दोनों ही रूपों में होते हैं। आचार्य-रूप में केशवदास हिन्दी के सबसे पहले आचार्य हैं जिन्होंने संस्कृत रीतिशास्त्र को हिन्दी में अवतरित करते हुए अलंकार और रस दोनों सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा की और इस प्रकार काव्यशास्त्र के विविध अंगों का विस्तृत विवेचन कर हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्बाध मार्ग खोल दिया।

यद्यपि केशव द्वारा निर्दिष्ट रीति-पद्धति का हिन्दी के परवर्त्ती आचार्यों ने अनुसरण नहीं किया, फिर भी उन्होंने कवियों का ध्यान एक विशिष्ट दिशा की ओर अवश्य आकृष्ट कर दिया। कवि के रूप में केशव को रीतिकाव्य-ग्रन्थों—मुक्तक ग्रन्थों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। मुक्तक कवि के रूप में भावव्यंजना के क्षेत्र में रीतिकालीन प्रायः सभी कवियों ने केशव को आदर्श के रूप में ग्रहण किया है। प्रबन्ध-काव्य के क्षेत्र में भी केशव के संवाद उनके मनोवैज्ञानिक पर्यवेक्षण के परिचायक हैं। संवादों से इतर स्थलों पर भी कवि ने विभिन्न मानव-भावों की सुन्दर व्यंजना की है। इसके अतिरिक्त इतिहासकार की दृष्टि से भी केशव का विशेष महत्त्व है। उनके ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री के द्वारा ओड़छा-राज्य का सच्चा और विस्तृत इतिहास जाना जा सकता है। अतः मध्यकालीन साहित्य एवं इतिहास के विद्यार्थी के लिए केशवदास के ग्रन्थों का अध्ययन अनिवार्य है।

प्रस्तुत प्रबन्ध दस अध्यायों में विभक्त है। पहले अध्याय में केशवदास की पूर्ववर्त्ती तथा समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुए यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि विभिन्न परिस्थितियों का आलोच्य कवि के काव्य पर कैसा और कितना प्रभाव पड़ा है।

दूसरे अध्याय में केशव के जीवन-चरित पर विस्तार से विचार किया गया है और उनके जीवन से सम्बद्ध सभी उपलब्ध सामग्री के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए हैं। केशव के वंशधरों से प्राप्त वंशवृक्ष का भी हवाला दिया गया है जिसका उल्लेख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में मैंने विभिन्न विद्वानों के मतों का परीक्षण करते हुए यथासाध्य निष्पक्ष रहकर अपना मत इस सम्बन्ध के पक्ष में देने का दुस्साहस किया है। केशव के व्यक्तित्व तथा उनकी जानकारी के सम्बन्ध में भी सविस्तार विचार किया गया है।

तीसरे अध्याय में इतिहास-ग्रन्थों के आधार पर केशवदास के ग्रन्थों की संख्या एवं नामों के विषय में विस्तृत चर्चा की गई है। नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में केशवदास, केशव अथवा केशवराइ के नाम से मिलने वाले ग्रन्थों का भी उल्लेख किया गया है। इन ग्रन्थों की प्रामाणिकता तथा रचनाकाल का भी विवेचन किया गया है। इस विषय में सब से महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अनुसंधान करते समय मुझे केशवदासकृत दो नवीन ग्रन्थ-'छन्दमाला' तथा 'शिखनख' मिले हैं, जिनको मैं अन्यत्र प्रकाशित करवा चुका हूँ। उक्त दोनों ग्रन्थों की उपलब्धि के लिए मैं श्री अगरचन्द नाहटा का अत्यन्त आभारी हूँ। 'छन्दमाला' की एक गुरुमुखी हस्तलिखित प्रति भी मुझे मेरे मित्र तथा सहयोगी प्राध्यापक प्रीतमसिंह के सौजन्य से उपलब्ध हुई है, जिसके प्रथम पृष्ठ का फ़ोटो प्रिंट भी साथ दे दिया गया है। अन्त में केशवदास के प्रामाणिक ग्रन्थों तथा उनके काव्य-स्वरूप और विषय-क्रम की दृष्टि से विभाजन का भी उल्लेख कर दिया गया है।

'केशव के प्रबन्धों का काव्य-विवेचन' शीर्षक चौथे अध्याय में केशव के प्रबन्ध-सौष्ठव, अलंकार-योजना, छन्द-प्रयोग तथा भाषा पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। प्रबन्ध-काव्य के आवश्यकीय तत्वों के आधार पर 'रामचन्द्रिका',

'वीरसिंहदेव-चरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी' तथा 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' का विवेचन करते हुए उनका मूल्यांकन किया गया है।

पाँचवें अध्याय में केशव की विचारधारा और केशव का इतिहास-ज्ञान—इन दो विषयों का विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। पहले विषय की सामग्री सात प्रसंगों में दी गई है—१. केशव के दार्शनिक सिद्धान्त, २. केशव की भक्ति, ३. केशव की नीति एवं धर्म, ४. तत्कालीन जीवन, ५. केशव का नारी-दर्शन, ६. गुरु-महिमा, तथा ७. ब्राह्मण-भक्ति। इतिहास-ज्ञान के अन्तर्गत 'वीरसिंहदेव-चरित', 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' तथा 'रतनबावनी' ग्रन्थों में संचित इतिहास-सामग्री का ब्योरे-वार वर्णन किया गया है जो ओड़छा-राज्य का विस्तृत एवं यथातथ्य इतिहास जानने के लिए विशेष महत्वपूर्ण है। इन ग्रन्थों में ओड़छा-राज्य से सम्बन्ध रखने वाली बहुत-सी ऐसी घटनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म वर्णन है जिनका उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों में या तो मिलता ही नहीं और यदि मिलता भी है तो बहुत ही संक्षेप में। अन्त में ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष 'कविप्रिया', 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'ओड़छा गजेटियर' के अनुसार देकर उनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है।

छठे अध्याय में केशव के रीतिकाव्य का विवेचन है। पहले रीतिकाव्यों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है और फिर उनके काव्य-पक्ष पर विस्तार के साथ विचार किया गया है, जिसके अन्तर्गत भावव्यंजना, प्रकृति-वर्णन, वस्तु तथा दृश्य-वर्णन, नख-शिख-वर्णन, अलंकार-योजना, छन्द-योजना, भाषा आदि का विवेचन है।

सातवाँ अध्याय केशव के रीतिविवेचन (आचार्यत्व) को समर्पित है। केशव के आचार्यत्व के प्रतिष्ठापक मुख्यतया दो ग्रंथ हैं—'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया'। इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर केशव के रीतिविवेचन का विस्तार के साथ अध्ययन किया गया है। कवि-रीति-वर्णन, काव्यदोष-वर्णन, अलंकार-निरूपण तथा रस एवं नायक-नायिका-भेद-वर्णन केशव ने किन संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर किया है और उनमें कौन-सी बातें आचार्य केशव की निजी उद्भावना हैं, उनका भी सम्यक् रूप से निरूपण किया गया है।

आठवें अध्याय में आचार्य केशव तथा हिन्दी के अन्य प्रमुख आचार्यों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, भिखारी दास और पद्माकर से केशवदास की तुलना की गई है और रस तथा नायक-नायिका-भेद-निरूपण के क्षेत्र में चिन्तामणि, मतिराम, देव, दास और पद्माकर से। अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में केशवदास की चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र और पद्माकर तथा रस और नायिका-भेद-विवेचन के क्षेत्र में मतिराम, चिन्तामणि तथा दास से एक नए दृष्टिकोण से तुलना की गई है।

नवें अध्याय में हिन्दी के परवर्ती शृंगारी मुक्तक कवियों पर केशव का क्या प्रभाव पड़ा है, यह दिखलाने का प्रयास किया गया है। मुख्य रूप से बिहारी, मतिराम, देव, दास और बेनीप्रवीन—इन पाँच कवियों को ही अपने अध्ययन का आधार बनाया गया है।

दसवें अध्याय में क्रमशः आठवें और नवें अध्याय के अन्तर्गत दिए गये तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर आचार्यों एवं शृंगारी कवियों में केशव का स्थान निर्धारित करने का प्रयत्न किया गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पञ्जाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध है। मूल थीसिस के लिए अंग्रेज़ी में विषय था 'केशवदास विद स्पेशल रेफ़रेन्स टु हिज़ रीटि पोइट्री'। प्रकाशित कराते समय मैंने इसका नाम 'केशवदास—जीवनी, कला और कृतित्व' रख दिया है। विश्वविद्यालय के सुझाव पर उद्धरणों को कम कर दिया गया है और यथासम्भव इन्हें पाद-टिप्पणी के रूप में दिया है।

मूल प्रबन्ध का प्रणयन पंजाब विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के रीडर डॉ० इन्द्रनाथ मदान की देख-रेख तथा निरीक्षण में हुआ है, जिनके सौहार्द तथा पथ-प्रदर्शन के अभाव में इसका इस रूप में होना असम्भव था। शोध-कार्य करने की जो प्रेरणा मुझे डॉ० नगेन्द्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली से प्राप्त हुई है उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। डॉ० दशरथ ओझा, रीडर, हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली का भी मैं आभार मानता हूँ जिन्होंने प्रबन्ध लिखते समय अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये। काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक विश्वनाथप्रसाद मिश्र, सेठ कन्हैया लाल पोद्दार तथा अगरचन्द नाहटा ने अपने संग्रहालयों के हस्तलिखित ग्रन्थों द्वारा मुझे अनुगृहीत किया है। अन्त में मैं उन सभी संस्थाओं, सज्जनों एवं विद्वानों के प्रति भी कृतज्ञता से आपूर्ण हूँ जिन्होंने मुझे इस प्रबन्ध के लिखने में तनिक भी सहायता प्रदान की है।

श्रद्धेय डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने भूमिका लिखकर इस ग्रंथ का गौरव बढ़ाया है। उनके प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रकट करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। उनकी लेखनी से प्रशंसा का एक शब्द भी पा लेना मेरे लिए बड़ी बात है।

—किरण चन्द्र शर्मा

विषय-सूची

पहला अध्याय

विभिन्न परिस्थितियों का केशव पर प्रभाव (पृ० १-२१)

दूसरा अध्याय

केशव का जीवन-चरित्र (पृ० २२-७३)

तीसरा अध्याय

केशव के ग्रन्थ (पृ० ७४-६५)

चौथा अध्याय

केशव के प्रबन्धों का काव्य-विवेचन (पृ० ९६-२२३)

पांचवां अध्याय

केशव की विचारधारा तथा उनका इतिहास-ज्ञान (पृ० २२४-२७८)

छठा अध्याय

केशव का रीतिकाव्य (पृ० २७९-३१७)

सातवाँ अध्याय

केशव का रीतिविवेचन (पृ० ३१८-४३८)

आठवाँ अध्याय

केशव तथा हिन्दी के परवर्त्ती आचार्य (पृ० ४३६-५१२)

संकेत-सारिणी

अ०	—	अध्याय
ई०	—	ईसवी
उ०	—	उल्लास
उ० मणि	—	उज्ज्वलनीलमणि
क० कु० तरु	—	कविकुलकल्पतरु
क० प्रि०	—	कविप्रिया (प्रियाप्रकाश)
क० प्रि० (मूल)	—	कविप्रिया, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
का० क० वृत्ति	—	काव्यकल्पलतावृत्ति
का० प्र०	—	काव्यप्रकाश
का० सं०	—	कारिका संख्या
छं०	—	छन्द
छं० मा०	—	छन्दमाला (देवनागरी)
ज० ज० चं०	—	जहाँगीर-जस-चन्द्रिका
ना० प्र० पत्रिका	—	नागरी-प्रचारिणी पत्रिका
ना०प्र०स० खोज-रिपोर्ट	—	नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज-रिपोर्ट
ना० शा०	—	नाट्यशास्त्र
परि०	—	परिच्छेद
पृ०	—	पृष्ठ
प्र०	—	प्रकाश अथवा प्रभाव
प्र० भा०	—	प्रथम भाग
प्र० चं०	—	प्रबोधचन्द्रोदय
प्र० रा०	—	प्रसन्नराघव
वी० दे० च०	—	वीरसिंहदेव-चरित, भारत जीवन प्रेस, काशी
र० प्रि०	—	रसिकप्रिया, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
रतनबावनी	—	रतनबावनी (केशव-पंचरत्न)
र० सु०	—	रसार्णवसुधाकर
रा० चं०	—	रामचन्द्रिका (केशव-कौमुदी)
रा० च० मा०	—	रामचरितमानस
रि० नं०	—	रिपोर्ट नम्बर
ला०	—	लाला

वि०	—	विक्रमी
वि० गी०	—	विज्ञानगीता, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई
शृं० नि०	—	शृंगारनिर्णय
श्लो०	—	श्लोक
सं०	—	सम्वत्
सम्पा०	—	सम्पादक
स० कु० कंठाभरण	—	सरस्वतीकुलकण्ठाभरण
सा० द०	—	साहित्यदर्पण
स्व०	—	स्वर्गीय
C.I.S. Gazetteer	—	Central India States Gazetteer (Eastern States-Orchha)
Sec.	—	Section

पहला अध्याय

विभिन्न परिस्थितियों का केशव पर प्रभाव

किसी साहित्यकार की कृतियों के उचित मूल्यांकन के लिए यह नितान्त अपेक्षणीय है कि उसके युग का सम्यक् ज्ञान हो क्योंकि साहित्यकार अपने युग का ज्ञापक होता है और उसकी कृतियाँ भी एक विशिष्ट परिस्थिति की क्रिया और प्रतिक्रिया का फल होती हैं। एच० ए० टेन महोदय अपने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि कोई साहित्यिक रचना केवल व्यक्तिगत कल्पना का खेल ही नहीं होती और न उत्तेजित मन का एकान्त विलास ही होती है, वरन् समसामयिक आचारादि का अनुलेख एवं एक विशेष मानसिक अवस्था का प्रतिरूप होती है[१]। टेन महोदय की यह उक्ति यथार्थ है और इसको ध्यान में रखते हुए हमें आचार्य केशवदास का अध्ययन करना चाहिए। साहित्यकार पर समकालीन युग ही का नहीं अपितु पूर्ववर्ती युग का भी प्रभाव पड़ता है। अतएव केशवदास के काव्य का विवेचन करने के पूर्व उनकी पूर्ववर्ती तथा समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक है।

राजनैतिक परिस्थिति

भारत में मुगल साम्राज्य के बीजारोपण के पूर्व दिल्ली का साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था, बड़े-बड़े प्रान्तों में अलग-अलग राजा विद्यमान थे, छोटे-छोटे जिले, यहाँ तक कि प्रत्येक नगर या दुर्ग का स्वामित्व बड़े-बड़े सरदारों या वंशों के हाथ में था जिनके ऊपर अन्य कोई अधिकारी न था। यह छोटे-छोटे राजाओं मुलूक-अत-तवैफ़ अथवा कार्यकारी अधिकारियों का समय था। इन दिनों हिन्दू और मुसलमान राज्यों के सदा परस्पर युद्ध चलते रहते थे। एक साहसी तथा शक्तिशाली विदेशी आक्रमणकारी के लिए यह एक सुन्दर अवसर था। फलतः भारत में बाबर का पदार्पण हुआ। इस देश में अपने पैर पूर्णतः जमाने के लिए बाबर को राणा साँगा जैसे राजपूत वीरों का सामना करना पड़ा। उनको पराजित करने में उसे न जाने कितने वीरों का बलिदान करना पड़ा। किन्तु साथ ही साथ राजपूतों के आत्म-सम्मान और उनकी तत्परता एवं वीरता की धाक उसके हृदय में जमे बिना न रह सकी। बाबर अपने उद्देश्य में सफल रहा। भाग्य ने उसका साथ दिया। आगे चलकर हुमायूँ को भी

---

१. A work of literature is not a mere individual play of imagination, a solitary caprice of a heated brain, but a transcript of contemporary manners, a type of a certain kind of mind.

—Introduction, Vol. I, page 1; Translated by H. Van Laun, Chatto and Windus Piccadilly, London, 1871 A. D.

सुख-चैन न मिल सका। बाबर ने मरते समय हुमायूँ से कहा कि वह अपने भाइयों के साथ प्रेम का व्यवहार करे। हुमायूँ ने उसके आदेश का पालन तो किया किन्तु इससे उसको बड़ी क्षति पहुँची। कष्टों एवं आपत्तियों का कारण उसके भाई ही रहे। उसे भी अपने पिता के समान राजपूतों से लोहा लेना पड़ा। इस पर भी मुग़ल-साम्राज्य पूर्णतः संगठित न हो सका। दोनों बादशाहों के संक्षिप्त शासन-काल में राजकीय संगठन तथा व्यवस्था का अभाव ही रहा। ऐसी अवस्था में कोई राजनैतिक तथा आर्थिक विकास और उन्नति सम्भव न थी। अकबर को भी अपने राज्य के आरम्भ में ही विषम स्थिति का सामना करना पड़ा। देश में उपद्रवों का बोलबाला था। चारों ओर अशान्ति, असन्तोष एवं निराशा के बादल छाए हुए थे। अशान्ति को दूर कर शान्ति स्थापित करना एक बड़ी भारी समस्या थी। सन् १५५६ में जब अकबर सिंहासन पर बैठा तब केवल पंजाब ही उसके अधिकार में था। उसके सरदार सरहिन्द, दिल्ली और आगरा की रक्षा में जुटे थे। राज्य-विप्लव उसे दबाना था। एक ओर सूरवंश के उत्तराधिकारियों का प्रबल विरोध था तो दूसरी ओर हेमूँ भी दिल्ली की ओर बढ़ा चला आ रहा था। पूर्व में बंगाल के अफ़ग़ान शासक दिल्ली के आधिपत्य से लगभग दो शताब्दियों से स्वतन्त्र थे। इसी प्रकार राजस्थान भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता बनाए हुए था। गुजरात और मालवा का भी दिल्ली से सम्बन्ध टूट चुका था। गोंडवाना और मध्यप्रान्त स्थानीय हिन्दू सरदारों के अधीन थे। उड़ीसा भी स्वतन्त्र हो चुका था और उसका शासन हिन्दू राजाओं के हाथ में था। विन्ध्याचल के दक्षिण की ओर खानदेश, बरार, बीदर, अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुण्डा अपने ही सुलतानों द्वारा शासित थे जिनका दिल्ली के बादशाहों से कोई सम्बन्ध न था। उत्तर में काश्मीर, सिन्ध और बिलोचिस्तान पूर्ण स्वतन्त्र थे। परन्तु अकबर ने अपनी बुद्धि-नैपुण्य एवं अनुपम प्रतिभा से समस्त प्रदेशों को एक-एक करके अपने अधीन कर लिया और स्थानीय राजाओं तथा सरदारों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया। कितने ही हिन्दू राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। सन् १५६२ में आमेर के राजा बिहारीमल ने नवीन सम्राट् के दरबार में पहुँचकर अपना उपहार भेंट किया। सम्राट् ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और सहर्ष उनकी कन्या को ग्रहण किया। इससे पूर्व भी सम्राट् (अकबर) रुकय्या और सलीमा से विवाह कर चुके थे। ये दोनों राजपूत महिलायें ही थीं। सम्राट् के हरम में पाँच हजार से अधिक हिन्दू, परशियन, मुग़ल और आरमीनियन महिलायें विद्यमान थीं।

अकबर को ही मुग़ल-साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक कहा जा सकता है। उसके समय में राजनैतिक सुव्यवस्था स्थापित हो जाने के कारण न केवल आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ ही बदलीं अपितु साहित्य और कला के क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक उन्नति तथा अभिवृद्धि हुई। उनके शासन-काल में विशेषतः हिन्दी-कविता अपनी उन्नति के चरम शिखर पर पहुँच गई थी। स्वयं अकबर बादशाह और उसके दरबारी—राजा बीरबल, राजा टोडरमल, नरहरि वन्दीजन प्रभृति हिन्दी के अच्छे कवि थे।

आगे चलकर जो साम्राज्य जहांगीर को अपने स्वर्गीय पिता से दाय के रूप

में प्राप्त हुआ था, वह विस्तार, जन-संख्या और शासन की दृष्टि से संसार में सबसे बढ़कर था । यद्यपि जहांगीर में अपने पिता जैसे महान् गुण तो न थे तथापि वह एक सुयोग्य शासक था, इसमें सन्देह नहीं है। उसमें अकबर की नीति का अनुसरण करने की क्षमता एवं योग्यता थी। उसके राजत्व-काल में कहीं-कहीं स्थानीय लड़ाई-झगड़े अवश्य हुए किन्तु सामान्यतः पूर्णतया शान्ति ही रही। उसकी संरक्षा में वाणिज्य एवं उद्योग-धन्धों की खूब उन्नति हुई। भवन-निर्माणकला और चित्रकला दोनों को आशातीत सफलता प्राप्त हुई; साहित्य की अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई[१]। जहांगीर के हरम में भी राजा उदयसिंह, बीकानेर के राजा रायसिंह, राजा मानसिंह के ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंह, रामचन्द बुन्देला आदि की बेटियां पहुँच चुकी थीं।

अकबर और जहांगीर के समय में ओरछा-राज्य की राजनैतिक स्थिति के विषय में भी यहाँ चर्चा करना आवश्यक होगा क्योंकि हमारे आलोच्य केशवदास जी का अधिकांश जीवन ओरछा-दरबार में ही व्यतीत हुआ था।

ओरछा राज्य की स्थिति—जहांगीर के समय में ओरछा राज्य का विस्तार बहुत अधिक था। इसका विस्तार उत्तर में जमुना से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक तथा पश्चिम में चम्बल नदी से लेकर टौंस नदी तक था[२]। केशव के समय में कदाचित् ओरछा राज्य की यही सीमा रही होगी। आजकल इसके उत्तर तथा पश्चिम में झांसी प्रान्त, दक्षिण में सागर प्रान्त तथा बिजावर और पन्ना की रियासतें और पूर्व में चरखारी और बिजावर रियासतें एवं गरौली जागीर स्थित है।

अर्जुनदेव के पुत्र मलखानसिंह थे। इनके राज्य-काल तक गढ़कुण्डार में ही राजधानी थी। इनके छः पुत्र थे। उनमें से रुद्रप्रतापसिंह (सन् १५०१-१५३१) सबसे ज्येष्ठ थे और वे ही गद्दी पर बैठे। शेष को जागीरें दी गई थीं। इन्होंने ही ३ अप्रैल सन् १५३१[३] को ओरछा बसाया था[४]। इनके समय में ओरछा की बड़ी उन्नति एवं

---

१. Jahangir's reign on the whole was fruitful of peace and prosperity to the Empire. Under its auspices industry and commerce progressed, architecture achieved notable triumphs......literature flourished as it had never done before. —History of Jahangir, Vol. I, pages 447-448.

२. ओरछा गजेटियर, पृ० १ तथा: इत जमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टौंस।
—बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, प्रथम खण्ड, पृ० १५१।

३. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय १३, पृ० १२४ (पाद-टिप्पणी।)

४. नृप प्रताप रुद्र सु भये तिन के जनु रण रुद्र।
× × ×
नगर ओरछो जिन रचो, जग में जागति कृति।
—वी० प्रि०, प्र० १, छं० १७-१८।

तथा
तिन के सुत भये सील समुद्र। प्रताप रुद्र जनु रुद्र।
× × ×
नगर ओरछो गुन गम्भीर। आन बसाओ धरनी धीर॥
—वी० दे० च०, पृ० १६।

अभिवृद्धि हुई। इनके दो विवाह हुए। प्रथम विवाह करेरावाले परमार गंगादास की कन्या से और दूसरा सहरावाले दीवान मानसिंह घघेरे की कन्या से हुआ। करेरावाली रानी के गर्भ से तीन और घघेरेवाली छोटी रानी से नौ पुत्र उत्पन्न हुए। इनमें से भारती चन्द (सन् १५३१-१५५४) और मधुकरशाह को गद्दी मिली और शेष सात को जागीरें तथा तीन की बाल्यावस्था में ही मृत्यु हो गई[1]। सन् १५५४ में जिस समय मधुकरशाह गद्दी के अधिकारी बने उस समय मुसलमानों का आतंक छाया हुआ था। दिल्ली का राज्य अकबर के पास था। राजा का स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करना उसे बड़ा अखरता था[2]। अकबर ने तीन वार उन्हें अपने वश में लाने के लिए सेना भेजी[3]। तीसरी बार सन् १५८८ में अकबर ने राजा आसकरण कछवाहा और अब्दुल्ला खाँ को ओरछे पर आक्रमण करने के लिए भेजा[4]। इस बार ओरछे के ग्वालियर, सिरौंज और राजधानी के बीच के सभी जिले मुग़लों के हाथ आ गये पर मधुकरशाह न माने और बाद में उन्होंने उनमें से कुछ जिले फिर वापिस अपने वश में कर लिये[5]। मुराद के सेनापतित्व में सन् १५९१ में फिर सेना भेजी गई। महाराज पराजित हो नरवर की पहाड़ियों में भाग निकले[6]। ओरछा का राज्य मुग़लों के हाथ में चला गया। एक वर्ष पश्चात् ही सन् १५९२ में राजा परलोक सिधार गये। मधुकरशाह के समय में राज्य ने दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति की। वे बड़े धर्मात्मा थे। निर्भीक इतने थे कि और कोई भी राजा व राव उनकी ओर आँख उठाकर न देख सकता था[7]। इनके आठ पुत्र थे। उनके पश्चात् ओरछा की गद्दी पर उनके ज्येष्ठ पुत्र रामशाह[8] (सन् १५९२-१६०५) गद्दी पर बैठे। बाद में इन्हें चन्देरी की जागीर मिली। जहांगीर के समकालीन थे। इनके सात भाई और ग्यारह पुत्र थे जिनमें से संग्रामशाह सबसे ज्येष्ठ थे[9]। राजा रामशाह का समस्त कार्य

---

१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास, अध्याय १३, पृ० १२५।

२. वही, पृ० १२६।

३. वही, पृ० १२७।

४. वही, पृ० १२७।

५. All the districts of Orchha between Gwalior, Sironj and the capital now fell to the moghuls. Later on, however, he managed to recover some of them. —C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section 1, page 19.

६. In 1591 Prince Murad attacked the Raja who was defeated and fled to the hills round Narwar, where he died a natural death the next year.
—C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section 1, page 19.

७. खान गनै सुलतान को राजा रावत बादि। —क० प्रि०, प्र० १, छं० २५।

८. केशवदास मधुकरशाह के रामशाह नामक किसी पुत्र का उल्लेख नहीं करते परन्तु वह रामशाह को ही राजा (रामशाह राजा भये—क० प्रि०, प्र० १, छं० ३०) और इन्द्रजीत का भाई लिखते हैं। मधुकरशाह के बड़े पुत्र दूलह राम थे (तिन के दूलह राम सुत—क० प्रि०, प्र० १, छं० २७ तथा ता के पुत्र प्रसिद्ध महि मण्डन दूलह राम—र० प्रि०, प्र० १, छं० ८)। इनका राजा होना अनुमानसिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि रामशाह इन्हीं का उपनाम था।

९. तिन के सुत ग्यारह भये, जेठे साह संग्राम। —क० प्रि०, प्र० १, छं० २६।

उनके छोटे भाई इन्द्रजीतसिंह ही करते थे[१]। वे स्वयं तो अकबर के दरबार में ही रहते थे और अकबर ने भी उन्हें अपने दरबार में बैठक दी हुई थी[२]। वे अपनी अनुपस्थिति में वीरसिंह, इन्द्रजीत आदि अपने भाइयों के अधिकार में बुन्देलखण्ड के भिन्न-भिन्न भाग छोड़ गये थे। होरलदेव तो ओरछा में सन् १५७७ में ही युद्ध में मार दिये गये थे। उन्हें पिछोर की जागीर मिली थी। इन्द्रजीत को कछौआ[३] (यहाँ उनके प्राचीन राजभवन के ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान हैं) की जागीर, वीरसिंह को बड़ौनी की, हरसिंहदेव को भसनेह, प्रतापराव को कूच पहोड़िया, रतनसिंह को गौरझामर और रणधीरसिंह को शिवपुर (अब ग्वालियर में शिवपुरी) की जागीर प्राप्त हुई थी। इस प्रकार ओरछा रियासत के आठ भाग हो गए। यद्यपि ये सब ओरछा के अधीन कहाते थे पर यथार्थ में थे स्वतन्त्र ही[४]। रामशाह में इतनी शक्ति न थी कि वे अपने अधीनस्थ जागीरदारों को दबा सकें, अतः वे सब स्वतन्त्र हो गये। स्थिति यहाँ तक बिगड़ी कि समस्त रियासत में अन्तर्विद्रोह हो गया, जिसके फलस्वरूप ओरछा में बाईस जागीरें हो गईं। आठ में तो इन्हीं के भाई-बन्धु मधुकरशाह के पुत्र थे, शेष चौदह में परमार, कछवाहे और गौंड थे[५]। सब भाइयों में वीरसिंह बड़े उद्दण्ड और महत्वाकांक्षी थे। इनकी मुख्य जागीर बड़ौनी थी। छोटी होने के कारण इन्हें बड़ा असन्तोष बना रहता था। अल्पकाल में ही इन्होंने पवावा, तोआर, नरवर, केलारस आदि मुग़ल-साम्राज्य के कुछ जिले अपने वश में कर लिये[६]। ग्वालियर का राजा और युद्धप्रिय जाट सरदार भी इनके डर से थर-थर काँपते थे। अकबर ने इन्हें कुचलने के लिए राजा आसकरण[७] को भेजा और रामशाह को आज्ञा दी कि वे उसकी सहायता करें। वीरसिंह की उनके भाई इन्द्रजीतसिंह और राव प्रताप ने बड़ी सहायता की और फलतः मुग़ल सेना को नीचा देखना पड़ा। खीझकर अकबर ने इन्हें पकड़ने के लिए अब्दुर्रहीम खानखाना और दौलत खाँ को भेजा, पर वे भी असफल रहे। रहीम ने खिलत और मनसब का लालच देकर भी उन्हें अकबर के पक्ष में लाने का प्रयत्न किया और यह चाल सफल भी हो चुकी थी परन्तु वीरसिंह एक छोटी सी बात पर रुष्ट होकर इनके चंगुल से शिकार के मिस साफ बच निकले। अन्त में रामशाह पर अकबर का सन्देह दृढ़ हो गया। सन्देह-निवारण के लिए रामशाह ने गुप्त रीति से वीरसिंह को सोते समय मरवा डालने की भी चेष्टा की पर वे इस बार भी बच गये।

---

१. तदपि सबै इन्द्रजीत सिर राजकाज को भार। —क० प्रि०, प्र० १, छं० ३८।

२. ताहि तहाँ बैठक दई, अकबर सो अवनीस। —क० प्रि०, प्र० १, छं० ३१।

३. ताहि कछोवा कमल सो गढ़ दीन्हों नृप राम। —क० प्रि०, प्र० १, छं० ४०।

४. C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Sec. II, p. 19.

५. Things rapidly went from bad to worse until the whole state was plunged into civil war and dissension. There were twenty two jagirs in the state, eight being those of Madhukar's sons and fourteen held by Kacchwahas, Parmars, Gonds and others. —C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I. Sec. II, page 19.

६. वी० दे० च०, पृ० १६।

७. वी० दे० च०, पृ० २०।

इन सब ने वीरसिंह को और भी सावधान कर दिया और वे एक प्रभावशाली मित्र की आवश्यकता अनुभव करने लगे। अकबर और सलीम के पारस्परिक वैमनस्य का लाभ उठा कर वे सलीम के पास पहुँचे। दोनों को एक दूसरे की मित्रता की आवश्यकता प्रतीत हुई। दोनों ने आजीवन मित्रता निभाने का प्रण किया। सर्वप्रथम उन्होंने अपने आश्रयदाता सलीम की प्रार्थना पर अकबर के प्रिय मित्र तथा मन्त्री अबुलफ़जल का वध किया। इस पर सलीम के हर्ष का तो पारावार न रहा किन्तु अकबर को अपार शोक हुआ। अकबर ने घातक वीरसिंह को पकड़ने का अनेक बार यत्न किया पर सब व्यर्थ ही रहा। अकबर की सहसा मृत्यु हो गई और जहांगीर सिंहासन पर आसीन हुआ। बस, फिर क्या था ! वीरसिंह का भाग्य चमक उठा। सिंहासनारूढ़ होने के पहले ही वर्ष जहांगीर ने उसे तीन हज़ारी[१] का मनसब दिया और फिर सात हज़ारी का भी[२]। कुछ दिनों बाद सन् १६०७ में जहांगीर ने रामशाह को गद्दी से उतार दिया और वीरसिंह को ओरछे की गद्दी दे दी। इस प्रकार उसे समस्त बुन्देलखण्ड का अधिपति बना दिया[3]। ओरछा में वीरसिंह के समय में पुनः स्वतन्त्रता की पताका फहराने लगी। इस पर रामशाह ने थोड़ा विरोध किया पर बादशाह के भेजे कालपी के सूबेदार अब्दुल्लाखाँ और हसनखाँ की सहायता से वीरसिंह अपना प्रभुत्व जमाने में पूर्णतः सफल हुए[४]। रामसिंह ने युद्ध भी किया जिसमें इन्द्रजीत और राव भूपाल ने सहायता दी। अन्त में उसे बादशाह के सम्मुख ले जाया गया। बादशाह ने उसे मुक्त कर दिया और चन्देरी और बानपुर की जागीरें भी प्रदान कीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ओरछा-राज्य-वंश की एक विचित्र स्थिति थी। राज्य-वंश के कुछ लोग, जैसे राजा रामशाह आदि तो अकबर के प्रभाव से प्रभावित होकर उसी की ओर झुक रहे थे और कुछ लोग जैसे वीरसिंहदेव उसके परम विरोधी हो, उसे चुनौती दे रहे थे। अकबर की वक्र-दृष्टि महाराणा प्रतापसिंह और ओरछा-नरेश वीरसिंहदेव पर ही थी और वह चाहता था कि उनको भी अन्य हिन्दू-राजाओं की भाँति अपने बश में कर ले, किन्तु वह अपने जीते जी वीरसिंह को काबू न कर सका। जहांगीर ने बादशाह होते ही समस्त बुन्देलखण्ड का आधिपत्य वीरसिंहदेव के हाथों में सौंप दिया। लगभग दो सौ वर्षों तक बुन्देलों ने उपद्रव मचाए रखा और मुग़लों की नाक में दम कर दिया।

ऊपर के विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अकबर और जहांगीर के समय में ही जागीर देने की प्रथा का प्रचलन हुआ था जिसके परिणामस्वरूप अनेक जागीरदार ऐसे हुए जिन्होंने अपनी जागीरों के वैभव की खूब अभिवृद्धि की। सामन्तों अथवा जागीरदारों में से किसी की तो मुग़लों से खूब पटती और किसी की खूब

---

१. Bir Singh was at once raised to the dignity of a mansab of 3,000 horses. —C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section II, page 21.

२. Jahangir granted his favourite many honours...a mansab of 7,000. —C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section I, page 22.

३. वी० दे० च०, पृ० ६५।

४. ओरछा गजेटियर, पृ० २०।

ठनती थी। किन्तु वे मुग़लों के कृपा-भाव पर ही अधिकतर आश्रित रहते थे। वे नाम-मात्र को ही स्वतन्त्र कहलाते थे। उन्हें अर्द्ध-स्वतन्त्र (Semi-autonomous) कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

केशव के आश्रयदाता इन्द्रजीत पर समकालीन राजनैतिक परिस्थिति का प्रभाव : जब राजन्यवर्ग क्षत्रियत्व से वंचित हो गया हो और उसका स्वाभिमान ही मिट्टी में मिल चुका हो, तो उन नाम-मात्र के हिन्दू राजाओं से क्या आशा की जा सकती थी ? अकबर और जहांगीर के कृपा-भाव पर आश्रित उन राजाओं के सम्मुख शाही दरबार की रीति-नीति के अतिरिक्त और अनुकरणीय ही क्या रह गया था। फलतः विलासिता और उसके विविध साधनों के प्राप्त करने की ही लालसा उनमें तीव्रतम होती चली गई। वे अपने सम्राटों का अनुकरण कर रहे थे। उस समय नृत्य एवं संगीत का बाजार गरम था। कला और कलावन्तों के प्रति विशेष आकर्षण था। अपने दरबारी कवियों द्वारा अपने कीर्ति-गान सुनने में ही वे अपने को धन्य समझते थे तथा किसी नायिका के सौन्दर्य वर्णन को सुनकर ही अपने भाग्य को सराहते और आनन्दमग्न हो झूम उठते थे। ठीक यही दशा नाम-मात्र के ओरछा-नरेश रामशाह के अनुज इन्द्रजीतसिंह की थी, जिनके आश्रय में आचार्य केशवदास जी रहते थे। इन्द्रजीत कछौआ नामक गढ़ के स्वामी थे और वहीं रहते भी थे। वे काव्य, नृत्य, गीत इत्यादि के बड़े रसिक थे। इनके यहाँ साहित्य और संगीत का अखाड़ा सदा जमा ही रहता था और वे स्वयं भी 'इन्द्र' के सदृश संगीत में ही मस्त रहा करते थे[1]। यद्यपि इनका अन्तःपुर रूपवती, शीलवती और गुणवती नवयुवतियों से परिपूर्ण था तथापि इनमें छः वेश्याएँ अधिक विख्यात थीं जिनके नाम हैं—प्रवीणराय, नवरंगराय, विचित्रनयना, तान तरंग, रंगराय और रंगमूर्ति[2]। वैसे तो ये सभी नृत्य-गीत इत्यादि कलाओं में बड़ी निपुण एवं निष्णात थीं पर इनमें प्रवीणराय सबसे बढ़कर थी। कारण, वह नृत्य-संगीत के अतिरिक्त काव्य-रचना में भी प्रवीण थी[3]। ऐसे ऐश्वर्यपूर्ण वास को छोड़ केशव कहाँ जाते ? भला जहाँ—

> **भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै युग-युग।**
> **केसोदास जाके राज राज सो करत हैं॥[4]**

महाराजा इन्द्रजीत की छत्रछाया में पोषित केशवदास पर इन परिस्थितियों का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका। समसामयिक परिस्थितियों से ऊपर उठने की सामर्थ्य केशव में नहीं थी।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अकबर और जहांगीर के समय में मुग़ल-साम्राज्य भारत में पूर्णतः स्थापित हो चुका था और उसका वैभव अपने चरम शिखर पर पहुँच चुका था। ऐसे सुख-समृद्धिपूर्ण वातावरण में राजा तथा प्रजा

---

१. क० प्रि०, प्र० १, छं० ४१।
२. वही, प्र० १, छं० ४२-४४।
३. वही, प्र० १, छं० ५६।
४. वही, प्र० ४, छं० २१।

दोनों का विलासप्रिय हो जाना स्वाभाविक ही था। शासकों के व्यक्तित्व का प्रभाव उनके कृपा-भाव पर आश्रित सामन्तों एवं सरदारों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। राज्याश्रित कवि भी इस प्रभाव से बच नहीं सकते थे। केशव की शृंगारिक प्रवृत्ति इसी प्रभाव का परिणाम है।

सामाजिक परिस्थिति

अकबर के पूर्व सुलतान बादशाहों के शासन-काल में हिन्दुओं पर अनेक प्रतिबन्ध थे। उन्हें मुसलमानों की अपेक्षा कम सामाजिक अधिकार प्राप्त थे। सामाजिक रीति-नीति आदि के व्यवहार की भी उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता न थी। उनकी स्थिति अनिश्चित और अस्थायी थी[१]। डा० ईश्वरीप्रसाद ने हिन्दुओं की राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक दशा का बड़ा ही विशद वर्णन किया है। भारतवर्ष में इस्लाम की अभिवृद्धि उसके सरल सिद्धान्तों के कारण नहीं बल्कि इसलिए हुई कि वह एक ऐसी राजशक्ति का धर्म था जो कि कभी-कभी खड्ग द्वारा बलपूर्वक विजित प्रजा को अपना धर्म अंगीकार करने के लिए विवश करती थी। स्वार्थसिद्धि और राज्य में उच्च पद प्राप्त करने के लालच से भी कभी-कभी लोग अपने धर्म को त्याग देते थे। सिद्धान्तों से आकृष्ट हो अपनी इच्छा से तो इस्लाम को विरले ही अंगीकार करते थे। क्योंकि न तो पद-प्राप्ति का लालच ही और न राज्य की ओर से आर्थिक पुरस्कार ही,[२] उस वर्ग के प्रति जिसने उनकी स्वाधीनता छीनी थी और जो उन्हें अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखता था, हिन्दुओं की प्रबल विरोध-भावना पर काबू पाने में सफल हो सका। लगभग ५०० वर्षों तक हिन्दू और मुसलमान अलग-अलग रहे। उधर सशक्त हिन्दुओं ने भी डटकर विरोध किया। धार्मिक एवं राजनैतिक दोनों दृष्टियों से हिन्दुओं को पीड़ित किया जाता था[3]। मूर्तियों का खण्डन करना, स्वीकृत सिद्धान्तों के प्रति हर प्रकार की विरोध भावना को दूर करना तथा काफ़िरों (हिन्दुओं) को मुसलमान बनाना—ये कार्य एक आदर्श मुसलमान राज्य के कर्त्तव्य समझे जाते थे[४]। हिन्दू ज़िम्मी कहे जाते थे। उन्हें अपनी रक्षा के लिए सरकार को जजिया देना पड़ता था[५]। वर्नी लिखता है कि अलाउद्दीन के शासन-काल में कोई हिन्दू अपना मस्तक ऊँचा करके नहीं चल सकता था। उनके घरों में सोना-चाँदी देखने में न आता था। लगान मालगुजारी से सम्बन्ध रखने वाले हिन्दुओं की तो बहुत ही दुर्दशा थी। चौधरी, खूत आदि ऐसे दरिद्र हो गए थे कि न अच्छे वस्त्र पहन सकते थे, न घोड़े पर चढ़ सकते थे, न शस्त्र खरीद सकते थे और न पान खा सकते थे। वह यह भी लिखता है कि उनकी स्त्रियाँ मुसलमानों के घरों में सेवा-शुश्रूषा के लिए जाया करती थीं[६]। हिन्दू निर्धनता, हीनता और कठिनता का जीवन व्यतीत करते

१. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृ० ४३।
२. History of Medieval India, page 525.
३. History of Madieval India, page 526.
४. Ibid, page 527.
५. भारत का इतिहास, भाग २, नवम अध्याय, पृ० १६३।
६. वही, पृ० १६४।

थे। उनकी आय उनके अपने लिए और कुटुम्ब के लिए बड़ी कठिनता से ही पर्याप्त होती थी। विजित प्रजा में रहन-सहन की व्यवस्था बहुत ही भिन्न कोटि की थी और राज्य-कर का भार विशेषतः उन्हीं पर होता था। ऐसी अविश्वास और दीनता की दशा में उन्हें अपनी राजनैतिक प्रतिभा को पूर्णतः विकसित करने का कभी अवसर न मिल सका[१]। अपने इन संकुचित अधिकारों के रहते भी हिन्दुओं में आत्माभिमान का लोप नहीं हो गया था। साथ ही विलासिता का भी अभाव न था। उच्च घरानों की स्त्रियों में आभूषण और बनाव-शृंगार का खूब प्रचलन था[२]। वर्ण-व्यवस्था विशृंखल रूप में थी। समाज में अछूतों की संख्या अधिक थी, जो चारों प्रामाणिक वर्णों से भी नीचे थे। वे आठ भागों में विभक्त थे—बाजीगर, धोबी, मोची, जुलाहे, टोकरे और ढाल बनाने वाले, धीवर, मछेरे और व्याध। इन आठों जातियों को नगरों और ग्रामों के भीतर रहने की आज्ञा न थी। इन पेशेवाली जातियों से भी नीचे हाड़ी, डोम, चाण्डाल और विधातू थे। इन्हें अत्यन्त घृणित जाति का अछूत समझा जाता था[३]। इस्लामी राज्य में शाही लोगों में विलासिता को काफी प्रोत्साहन मिला। राज्य के उच्च पद मुसलमानों को ही मिलते थे। किसी भी सम्मानित पदोन्नति का निर्णय साधारणतः बादशाह की ही इच्छा पर निर्भर रहता था। योग्यता की कोई पूछ न थी। सुख-साध्य, धन-सम्पत्ति और दरबारी उत्सवों में भाग लेना-- ये दुर्व्यसन का कारण हुए। इसका परिणाम यह हुआ कि ईसा की चौदहवीं शताब्दी के अन्त में मुसलमानों में पहले के-से बल और शौर्य का ह्रास होने लगा[४]।

परन्तु अकबर ने अपने शासन-काल में हिन्दू-मुसलमानों के वैषम्य को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उसने हिन्दुओं पर लगी पाबन्दियों को हटा दिया और दोनों के साथ समता की नीति का पालन किया। अकबर में धार्मिक सहिष्णुता कूट-कूटकर भरी हुई थी, जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुसलमान दोनों ही उसे आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते थे। हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रायः एक स्तर पर आ गए थे। उन्हें अपने उत्सवों, रीति-रिवाजों आदि के मनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। परन्तु हिन्दू-सामाजिक जीवन में जो आचार-भ्रष्टता आ चुकी थी वह एकबारगी दूर न हो सकी। पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष, भेद-भाव, विषय-विलासिता, मद्य-पान आदि दुर्व्यसन हिन्दुओं के उच्च वर्ग के लोगों में ज्यों के त्यों बने रहे। विपन्नता के कारण साधारण जनता अपेक्षाकृत संयम से काम लेती थी। अकबर का युग पूर्ण वैभव का युग था। अफ़ीम, मदिरा जैसी नशीली वस्तुओं का सेवन, नाच-गान, भोग-विलास आदि का उस समय दौर-दौरा था। सम्राट् स्वयं कभी-कभी शराब, अफ़ीम के बने हुए पदार्थों का खूब सेवन करता था[५]। आगे चलकर जहांगीर के राजत्व-काल में भी यही दशा रही। उसने अपने पिता की नीति का पालन किया। हॉकिन्स ने

१. हिस्ट्री आफ इण्डिया, पृ० ५३१।
२. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था, पृ० ४३।
३. वही, पृ० ४७-४८।
४. A Short History of Muslim Rule in India, Chapter XI, page 183.
५. Akbar the Great Moghul, page 336.

सम्राट् के रहन-सहन, दरबारी-शिष्टाचार, शासन-व्यवस्था एवं प्रजा के सामाजिक जीवन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वह लिखता है कि सम्राट् खूब मदिरा-सेवन करता था और दावतें बहुत दिया करता था जिसमें सबसे अधिक उल्लेखनीय नौरोज की दावत थी। उसने यह भी लिखा है कि उत्तराधिकारी के अभाव में सरदारों की सम्पत्ति का अन्तिम स्वामी सम्राट् ही होता था। इस प्रकार उसका राज्य-कोष दिनों-दिन इतना बढ़ता जाता था कि उसकी गणना भी नहीं की जा सकती थी[1]। सर टामस रो ने भी अपने 'जरनल' में मुगल दरबार की शानो-शौकत तथा मुगल सम्राट् जहांगीर के वैभव एवं शक्ति का और मुगल सरदारों के आनन्दोत्सव और विलासपूर्ण जीवन का बड़ा ही विशद चित्रण प्रस्तुत किया है। किन्तु इसके साथ ही वह किसानों की दीन-हीन दशा, सड़कों की अरक्षित अवस्था, शासन-प्रबन्ध की दुर्व्यवस्था आदि का भी वर्णन करना नहीं भूला है। वह लिखता है कि सम्पूर्ण राज्य में घूसखोरी का बाजार गरम था। दरबार के विषय में वह लिखता है कि उसने रात के समय मदिरा-सेवन और भोग-विलास के बहुत से दृश्य देखे हैं। जब सम्राट् शराब पीकर बिलकुल बेहोश हो जाता था तो बत्तियां गुल कर दी जाती थीं और मदिरोन्मत्त सरदार भी अपने घरों को लौट जाते थे[2]। पेल्सर्ट और डी लाट ने भी जहांगीर के समय के भारतीय समाज का अच्छा वर्णन किया है। डी लाट लिखता है कि सामन्तों का जीवन बड़ा समृद्ध था। उनकी विलासिता का वर्णन करना लेखनी की शक्ति से बाहर है। पेल्सर्ट के वर्णन से हमें पता चलता है कि राज्य में तीन प्रकार के वर्ग थे जिनका जीवन गुलामों का-सा था। इनमें मजदूर, चपरासी या नौकर तथा दुकानदार विशेष उल्लेखनीय थे। मजदूरों की आय बहुत ही कम थी। प्रायः उनसे बेगार ली जाती थी। उन्हें दिन में केवल एक बार खाने को मिलता था और वह भी खिचड़ी ही। उनके मकान प्रायः कच्चे होते थे। उच्चाधिकारियों के नौकरों की भी आय अधिक न थी। परिणाम यह होता था कि वे अन्य अनुचित साधनों से रुपया पैदा करने की चिन्ता करने लगते थे। दस्तूरी मांगना तो साधारण-सी बात हो गई थी। दुकानदारों की अवस्था भी असन्तोषजनक थी। देश का अधिकतर व्यापार हिन्दुओं के ही हाथ में था। मुसलमान विशेषतः रंगरेज और जुलाहे का ही व्यवसाय अपनाते थे। ज्योतिष में हिन्दू और मुसलमान समान रूप से विश्वास रखते थे। ब्राह्मणों से मुसलमान अधिकांश प्रभावित थे क्योंकि इनसे शुभ तिथि और घड़ी पूछे बिना वे कभी यात्रा तक को नहीं निकलते थे[3]।

इस प्रकार सर टामस रो आदि विदेशी यात्रियों के उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अकबर और जहांगीर तथा उनके अधीनस्थ सामन्त विलासिता के रंग में आकण्ठ डूबे हुए थे और अतृप्त वासना रखने वाले शासकों के आदर्श को प्राप्त

---

१. A Short History of Muslim Rule in India, page 358.

२. History of Jahangir, Vol. I, pages 447-448.

३. भारतवर्ष का इतिहास, भाग ३, पृ० २३३-२३४।

कर समाज का भी झुकाव घोर विलासिता की ओर होना स्वाभाविक ही था। ऐसे वातावरण के प्रभाव से केशव का काव्य विशेषत: रीतिकाव्य भी अछूता नहीं रह सका और इसी कारण उसमें राजदरबार के विलासी जीवन के अनुरूप यथेष्ट शृंगारिकता आ गई है। उनके 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' नामक ग्रन्थों में भी देश के इस सामाजिक अधःपतन की ओर संकेत किया गया है।

धार्मिक परिस्थिति

यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि सुलतान बादशाहों ने राज्य को तलवार और धार्मिक आज्ञाओं के बल पर चलाया था। उनका उद्देश्य राज्य-प्रसार के साथ मुसलमान धर्म का विस्तार करना भी था। उनको मुसलमान धर्म के प्रसार के लिए राज्य की ओर से अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। उधर हिन्दू जनता अपनी राजनैतिक स्वतन्त्रता गँवा बैठी थी और उसने अपना धर्म और संस्कृति सुरक्षित रखने के लिए समय-समय पर भिन्न-भिन्न आन्दोलन भी खड़े किये थे। इस प्रकार भारत में एक ओर मुसलमान धर्म का प्रचार था और दूसरी ओर हिन्दुओं में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन जोर पकड़ रहे थे।

मुसलमानों के साथ ही सूफ़ी फकीर भी भारत आये। मुसलमानों की तलवारें जो काम न कर सकीं उसे इन फकीरों ने करने का पूरा-पूरा प्रयास किया। मुसलमानों ने हिन्दुओं को जीता अवश्य, पर वे उनके हृदयों को न जीत सके। हिन्दुओं ने विजित होकर भी मुसलमानी धर्म को एक विदेशी धर्म ही समझा। उधर सूफ़ी फकीरों की भी सुनिये। उन्होंने हिन्दुओं के हृदय में भी प्रेम की कथाओं को लेकर अपने भावों एवं विचारों की सुन्दर अभिव्यक्ति की किन्तु इन सूफ़ी फकीरों के उपदेश उच्च वर्ग के लोगों को प्रभावित न कर सके पर बहुत से साधकों पर अपना प्रभाव अवश्य डालते रहे। इन सूफ़ियों ने निर्गुण और सगुण दोनों धाराओं को भी पर्याप्त मात्रा में प्रभावित किया। निर्गुण उपासकों में आत्मा को पत्नी-रूप में और परमात्मा को पति रूप में स्वीकार कर उसके प्रेम और विरह में तल्लीन रहने और सगुण उपासकों में प्रेमा-भक्ति का प्राधान्य होने का कारण सूफ़ी फकीरों की साधना-पद्धति ही प्रतीत होता है। इस प्रकार सूफ़ी फकीरों की प्रतिष्ठा को चार चांद लग गये और हिन्दुओं पर भी सूफ़ी सन्तों के प्रभाव का अवसर आया। सर्वप्रथम पंजाब और सिन्ध पर सूफ़ियों का प्रभाव पड़ा, क्योंकि प्राकृतिक भौगोलिक कारणों से अन्यान्य विदेशियों के समान ही सूफ़ी फकीर भी पहले वहीं पहुँचे थे[१]। ग्यारहवीं शती में दातागंज बख्श या जुल्लाबी नामक सुविख्यात मख़दूम सैयद अली-अल हुजविरी ने लाहौर को अपने आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रचार-क्षेत्र बनाया और यहीं उनका गोलोकवास हुआ। आज भी उसकी दरगाह का बहुतेरे हिन्दू और मुसलमान आदर करते हैं[२]। भारतीय सूफ़ियों में मुईद्दीन चिश्ती सबसे अधिक सम्मानित हैं। उनके कारण ही सूफ़ीमत के प्रभाव का प्रचार सम्पूर्ण भारत में हुआ। यहाँ तक कि कुछ

१. Medieval Mysticism of India, page 11.

२. Ibid, page 15.

ब्राह्मण भी उससे न बच सके[१]। उत्तरी भारत के बहुत से भागों में सूफ़ियों की बहुत प्रतिष्ठा थी। १५वीं शताब्दी से १७वीं शताब्दी के मध्य तक उसकी निरन्तर अभिवृद्धि होती गई[२]। एक ओर हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर मेल-जोल बढ़ाने का काम जो सूफ़ी साधक कर रहे थे वही दूसरी ओर कबीर-पन्थी निर्गुणोपासक भी कर रहे थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म में प्रचलित अन्ध-विश्वास, छुआ-छूत की भेद-भावना, मन्दिर-मस्जिद के झगड़े, जातीय संकीर्णता, सनातन शास्त्रों और धार्मिक प्रथाओं के अनुसरण का भी प्रबल विरोध कर जनसाधारण के सम्मुख ज्ञान तथा प्रेम से उद्भूत निर्गुणोपासना का एक नवीन दृष्टिकोण सामने रखा। दादू-पन्थ भी समाज पर वही प्रभाव डाल रहा था जो कबीर-पन्थ। दादू के विषय में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने चालीस दिन तक अकबर के साथ वाद-विवाद किया था और उसे काफ़ी प्रभावित किया था[3]। जिसके फलस्वरूप अकबर ने सिक्के से अपना नाम हटवाकर उसके स्थान पर एक ओर 'जलाजुल्लुहू' और दूसरी ओर 'अल्ला-हो अकबर' लिखवाया था[४]। सारांश यह है कि अकबर के समय में निर्गुण-धारा का प्रवाह काफ़ी प्रबल था और केशव उससे किसी सीमा तक अवश्य ही प्रभावित हुए हैं।

केशव की पूर्ववर्ती तथा समकालीन सगुण-धारा के अन्तर्गत वैष्णव भक्ति के प्रचारकों की ओर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। गुप्तवंश के राजत्व-काल में ईसा की चौथी शती से लेकर छठी शती के अर्द्धभाग तक वैष्णव भक्ति तथा भागवत धर्म का सम्पूर्ण भारत में बोलबाला था। ज्यों ही गुप्त-साम्राज्य का अन्त हुआ त्यों ही उसका उत्तरी भारत में प्रचार कम होने लगा किन्तु दक्षिण भारत में उसकी क्रमशः अभिवृद्धि होने लगी। दक्षिण भारत में वैष्णव भक्ति-साहित्य के दर्शन हमें सबसे पहले तामिल भाषा में लिखे आडवार भक्तों के गीतों में होते हैं। उत्तरी भारत में विष्णु-भक्ति की अधिक प्रबलता तो वस्तुतः ईसा की १५वीं और १६वीं शताब्दी में ही हुई थी। परन्तु दक्षिण भारत से आने वाले आचार्यों श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य, श्री विष्णुस्वामी तथा निम्बार्काचार्य के प्रयत्न से ईसा की १२वीं शती से लेकर १५वीं शती तक यह धर्म उत्तरी भारत में फैल गया था[५]।

---

१. Medieval Mysticism of India, page 15.

२. Ibid, page 32.

३. His (Dadu's) fame as a man of deep spirituality reached the ears of the Emperor Akbar, who was his contemporary, and Birbal, it is said prevailed upon the saint to have an interview with the Emperor in response to an invitation from him.

Rajjabdas referes to the event in one of his couplets—

अकबरसाहि बुलाइआ, गुरू दादू को आप।
साच झूठ ब्योरो हुआे, तब रह्यो नाम परताप ॥,

—Nirguna School of Hindi Poetry, page 259.

४. Medieval Mysticism of India, page 111-112.

५. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम भाग), पृ० ३६।

चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ में स्वामी रामानन्दजी ने रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतवादी 'श्री सम्प्रदाय' को व्यापक और लोकप्रिय बना दिया और उत्तरी भारत में सगुण-भक्ति का द्वार सभी जातियों के लिए खोल दिया। उन्होंने विष्णु के स्थान पर मर्यादा स्थापन करने वाले राम को ही परम आराध्य मानकर श्री सम्प्रदाय के स्थान पर रामानन्दी नामक एक नए सम्प्रदाय की स्थापना की, जो तात्विक दृष्टि से रामानुजाचार्य के मत से भिन्न नहीं है, केवल व्यावहारिक क्षेत्र में ही थोड़ा-बहुत भिन्न दिखलाई देता है। जिस प्रकार स्वामी रामानन्द द्वारा राम-भक्ति को प्रश्रय मिला उसी प्रकार निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य, विष्णु स्वामी या आनन्दतीर्थ, चैतन्य महाप्रभु, वल्लभाचार्य तथा उनके पुत्र विट्ठलनाथ, हितहरिवंश द्वारा कृष्ण-भक्ति का प्रचार हुआ। निम्बार्काचार्य ने राधा-कृष्ण की सख्य-भाव की उपासना का प्रचार किया। विष्णु स्वामी, वल्लभाचार्य और चैतन्य महाप्रभु ने उज्ज्वल अथवा मधुर-भाव को उत्कृष्टता दी। हित-हरिवंश के राधावल्लभी सम्प्रदाय तथा चैतन्य सम्प्रदाय से उत्पन्न हरिदासी अथवा सखी सम्प्रदाय ने प्रेम लक्षणा भक्ति को अग्रसर किया। इस प्रकार इस सम्प्रदाय में सखी-भाव से युगल-केलि की उपासना को प्रधानता मिली। श्री वल्लभाचार्य के पुत्र श्री विट्ठलनाथ ने सर्वोत्तम कृष्णोपासक कवियों को लेकर 'अष्टछाप' की स्थापना की। श्री वल्लभाचार्य और अष्टछाप के भक्त-कवियों ने अपने प्रचार का केन्द्र-स्थल श्रीकृष्ण की पवित्र जन्मभूमि ब्रज ही रखा। ब्रज-प्रदेश की ब्रजभाषा में ही कृष्ण-भक्ति का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इन पूर्वोक्त प्रचारकों के अतिरिक्त महाराष्ट्र के सन्त एकनाथ, गुजरात के नरसिंह मेहता, राजस्थान की मीरा आदि ने वल्लभ-सम्प्रदाय से पृथक् रहकर कृष्ण-भक्ति की तान छेड़ी।

केशव के ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि केशव पर रामानुजाचार्य, विष्णु स्वामी, मध्वाचार्य आदि आचार्यों के दार्शनिक वादों तथा राधाकृष्ण-पूजा-सम्बन्धी विभिन्न सम्प्रदायों का कोई विशेष प्रभाव नहीं है। कृष्ण-पूजा-सम्बन्धी सम्प्रदायों में केशवदास सखी-सम्प्रदाय से अवश्य ही अनभिज्ञ न थे। उन्होंने इस सम्प्रदाय का परोक्ष रूप से उल्लेख 'विज्ञानगीता' में पाखण्डियों के स्थल का वर्णन करते हुए किया है। वे इस सम्प्रदाय को अवज्ञा की दृष्टि से ही देखते थे[1]। रामानन्द के सिद्धान्तों का भी थोड़ा-बहुत प्रभाव केशव पर परिलक्षित होता है। राम उनके इष्टदेव हैं[2]। और इसी कारण उन्होंने 'चन्द्रिका' में राम-नाम की महिमा का कीर्तन किया है और प्रत्येक वर्ण को राम-नाम का अधिकारी भी बताया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशवदास किसी अंश तक रामानन्दी सम्प्रदाय से, जिसका मूलमन्त्र 'ओं रामाय नमः' है, अवश्य प्रभावित हुए हैं।

---

१. विज्ञानगीता, प्र० ८, छं० २८-३३।
२. केशवदास तहीं कर्यो रामचन्द्र जू इष्ट। —रा० चं०, प्र० १, छं० १८।

साहित्यिक परिस्थितियाँ

केशव से पूर्व के हिन्दी साहित्य के इतिहास का अवलोकन करने से हिन्दी काव्य-क्षेत्र में भिन्न-भिन्न धाराएँ प्रवाहित होती दिखाई पड़ती हैं। उनमें निम्नलिखित प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं—

१. वीरगाथा-काव्य धारा	२. सन्त-काव्य धारा
३. सूफ़ी-काव्य धारा	४. राम-काव्य धारा
५. कृष्ण-काव्य धारा	६. रीति-काव्य धारा

वीरगाथा-काव्य धारा—शिवसिंह सेंगर तथा मिश्रबन्धु आदि इतिहासकार वीरगाथा काल का प्रारम्भ वि० संवत् ७७० से मानते हैं[१]। इन विद्वानों ने संवत् ७७० वि० में पुण्ड या पुष्य कवि द्वारा अलंकार-ग्रन्थ के लिखे जाने का उल्लेख किया है। परन्तु यह ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं है। यों तो वीरगाथा-काव्य की स्फुट रचनाएँ विक्रम की दसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से ही मिलने लगती हैं किन्तु उनकी धारा अविच्छिन्न रूप से प्रबन्धकाव्यों तथा वीरगीतों के रूप में मुसलमानों के आक्रमणों के आरम्भ से ही बहती दिखाई पड़ती है। वीरगाथा काल के प्रबन्धकाव्यों में केशव से पूर्व दलपति विजय का 'खुमाण रासो' (अपूर्ण प्रति), चन्द्रबरदाई का 'पृथ्वीराज रासो', भट्ट केदार का 'जयचन्द-प्रकाश', मधुकर की 'जयमयंक-जस-चन्द्रिका', शार्ङ्गधर का 'हम्मीरहठ', नल्लसिंह का 'विजयपाल रासो' तथा वीरगीतों में नरपति नाल्ह का 'बीसलदेव रासो' और जगनिक का 'आल्हाखण्ड' (मूलरूप संदिग्ध) उल्लेखनीय हैं।

वीरगाथाओं का विषय साधारणतया वीरों का शौर्य एवं पराक्रम, विजय, शत्रुकन्या-अपहरण, आश्रयदाताओं का गुण-कीर्तन आदि है। इस प्रकार ये गाथाएँ मुख्य रूप से वीर रस में ही लिखी गई हैं। अधिकांश युद्धों का कारण सुन्दरी होने से इन गाथाओं में शृंगार रस के भी यत्र-तत्र दर्शन होते हैं। कविता के लिए प्रायः दूहा, कवित्त, पद्धरि, छप्पय आदि छन्दों को चुना गया है। इस धारा के लेखकों की भाषा 'डिंगल' नाम से पुकारी गई है। इसमें हमें पिंगल (ब्रज), संस्कृत, अरबी और फारसी का मिश्रित रूप भी देखने को मिलता है।

इस काव्य धारा की वीर शैली का प्रभाव भाव और भाषा दोनों की दृष्टि से केशव पर स्पष्ट दीखता है। केशव की 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' नामक रचनाएँ वीरकाव्य की श्रेणी में आती हैं। वीरगाथा-काव्य की परम्परा के अनुकरण पर केशव ने अपने आश्रयदाता वीरसिंहदेव के चरित्र का ओजमय शैली में गान किया है। 'जहांगीर-जस-चन्द्रिका' में वीरसिंहदेव के आश्रयदाता सम्राट् जहांगीर के यश का वर्णन है। इस ग्रन्थ में वीरकाव्यों की परम्परा के अनुरूप वीर रस का स्फुरण भली-भाँति नहीं हो सका है। 'रतनबावनी' में अवश्य वीरगाथा-काव्य के समान ही रतनसेन के शौर्य एवं पराक्रम का ओजस्वी वर्णन उपलब्ध होता है। यह निश्चय ही 'वीरसिंहदेव-चरित' की अपेक्षा अधिक सफल

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ६६ तथा शिवसिंह सरोज, पृ० ४५०।

वीरकाव्य है। जैसे वीरगाथा-काव्यों में द्वित्ववर्ण, टवर्ग तथा अन्त्यानुप्रास का प्रयोग देखने में आता है वैसे ही इस ग्रन्थ में भी उनका प्रचुर प्रयोग हुआ है[1]। केशव के वीरकाव्यों की भाषा पर डिंगल के प्रभाव के साथ-साथ संस्कृत, अरबी और फारसी का भी प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु मुख्य रूप से उनकी भाषा व्रज ही है। छन्द भी वीरगाथा-काल में प्रचलित दोहा, छप्पय, कवित्त आदि ही अपनाये गए हैं।

सन्त-काव्य धारा—केशव के समय तक की सन्त-काव्य-परम्परा गुरु गोरखनाथ (वि० की १३वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) से चलकर दादू (सन् १५४४-१६०३)[2] तक आती है। दादू तक गोरखनाथ, रैदास, कबीर, नानक, नामदेव आदि जिन-जिन सन्तों का आविर्भाव हुआ उनमें से प्रायः सभी ने अपने-अपने स्वतन्त्र धार्मिक पन्थ चलाये। परन्तु केशव के पूर्ववर्ती एवं समसामयिक पंथ-प्रचारकों में प्रधानतः नाथ-पंथियों तथा कबीर-पंथियों का ही विशेष प्रभाव था। कारण, इन सन्तों की वाणियों में एक सामान्य उपासना-पद्धति निर्दिष्ट थी जो हिन्दू-मुसलमानों दोनों को ही सामान्य रूप से ग्राह्य हो सकती थी और जिसमें ऊँच-नीच का भेद-भाव भी विद्यमान न था। अतः धार्मिक दृष्टि से सन्त-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। सन्त-काव्य में योगाभ्यास, वैराग्य, संसार की असारता, गुरु-महिमा, नाम-महिमा, माया, जीव आदि विषयों का निरूपण ही प्रधान है। इसकी भाषा पूर्वी हिन्दी, पंजाबी, राजस्थानी, खड़ी बोली, व्रज आदि का सम्मिश्रित रूप है। सन्त कवियों ने पद और विविध छन्द दोनों में ही अपने उद्गार प्रकट किए हैं।

'विज्ञानगीता' में हम कवि को निर्गुण भक्ति के प्रतिपादक के रूप में पाते हैं। निर्गुणियों के समान ही इस ग्रन्थ में ज्ञान द्वारा जीव के माया के बन्धन से मुक्त होकर ब्रह्म से सायुज्य प्राप्त करने का उपाय वर्णित है। ईश्वर-सम्बन्धी जो भावना हमें निर्गुण-सन्त-सम्प्रदाय में दिखाई देती है वैसी ही 'विज्ञानगीता' में भी मिलती है। जिस प्रकार निर्गुण सन्त-कवियों ने हठयोग को ईश्वर-प्राप्ति का साधन बतलाया है और आसन, प्राणायाम आदि का महत्त्व स्वीकार किया है उसी प्रकार केशव ने भी ईश्वर-प्राप्ति में प्राणायाम को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। संसार की असारता, गुरु-महिमा, नीति की बातों आदि का वर्णन भी सन्त-कवियों के सदृश ही यहाँ हुआ है। बुन्देलखण्ड सन्त-सम्प्रदाय (कबीरपंथ) का केन्द्र रहा है। अतएव सम्भव है कि हमारे कवि को जीवन की सन्ध्या में पश्चात्ताप के रूप में सन्तकाव्य की ओर मुड़ना पड़ा

---

१. द्वित्ववर्णों के प्रयोग का एक उदाहरण देखिए—

जानि शूर सब सभ्य प्रकट पंचम तनु फुल्लिय।
साधु साधु यह वचन पाय सुख सब सों बुल्लिय ॥

—रतनबावनी (केशव-पंचरत्न), पृ० ७, छं० २७। अन्य उदाहरणों के लिए देखें रतनबावनी (केशव-पंचरत्न) पृ० २, छं० ६; पृ० २-३, छं० १०; पृ० ५, छं० १६; तथा पृ० ८, छं० २८, ३० और ३१।

२. Influence of Islam on Indian Culture, page 182.

हो। यह तो हुई भावों एवं विचारों की बात। जहाँ तक भाषा का सम्बन्ध है केशव पर सन्त-काव्य की अनिश्चित तथा मिश्रित भाषा का कोई प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ता। छन्द के क्षेत्र में केशव ने सन्त-कवियों द्वारा प्रयुक्त विविध छन्द-शैली को ही अपनाया है, पद-शैली को नहीं।

सूफ़ी-काव्य धारा—हिन्दी साहित्य में सूफ़ी काव्य धारा की परम्परा का आरम्भ वीरगाथा काल में मुल्ला दाऊद की 'नूरक चन्दा की कहानी' से होता है। सूफ़ी प्रेम-काव्य के कवियों में जायसी अग्रगण्य हैं। यद्यपि इनसे पहले भी कुछ प्रेम-काव्यों की रचना हो चुकी थी, जिनका उल्लेख स्वयं जायसी ने अपने 'पद्मावत' में किया है, यथा स्वप्नावती, मुग्धावती, मृगावती, खण्डरावती, मधुमालती तथा प्रेमावती। इनमें से केवल दो 'मृगावती' तथा 'मधुमालती' उपलब्ध हैं, शेष अप्राप्य हैं। 'मृगावती' कुतबन (संवत् १५५०) की रचना है और 'मधुमालती' मंझन की। दामों ने 'लक्ष्मणसेन पद्मावती' प्रेम-काव्य संवत् १५१६ में लिखा। इसके पश्चात् जायसी के 'पद्मावत' (रचना-काल सं० १५९७) का नाम आता है, जो प्रेम-गाथा-काव्य का अनमोल रत्न है। इन मुसलमान प्रेम-गाथाकारों के अतिरिक्त हिन्दू प्रेम-गाथाकार 'हरराज' का नाम भी उल्लेखनीय है जिन्होंने संवत् १६०७ में 'ढोला मारवणी चउपही' लिखी[1]।

प्रेम-काव्य का विषय हिन्दू-घरानों से सम्बन्धित प्रेम-कथाएँ हैं जिनमें ऐतिहासिकता एवं कल्पना का सुन्दर सम्मिश्रण है। सभी प्रेम-गाथाएँ 'प्रेम' और 'प्रेम की पीर' की सूचक हैं। इन प्रेम-गाथाओं की भाषा अवधी है और ये दोहा-चौपाई की प्रबन्ध-शैली में लिखी गई हैं।

विषय की दृष्टि से सूफ़ियों के प्रेम-काव्य का केशव पर कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। सूफ़ी कवियों के समान ही केशव ने अपने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक प्रबन्ध काव्य की रचना दोहा-चौपाई छन्दों में की है। प्रबन्ध काव्य के लिए दोहा-चौपाई छन्दों के चुनाव में केशव का प्रेमगाथाकारों की अपेक्षा समसामयिक तुलसी से प्रभावित स्वीकार करना ही अधिक उचित जान पड़ता है।

राम-काव्य धारा—केशव से पूर्व रामकाव्य-परम्परा के अन्तर्गत भूपति कवि, तुलसीदास तथा उनके समकालीन मुनिलाल नामक कवियों का ही इतिहास-ग्रन्थों में उल्लेख मिलता है। भूपति कवि का समय डा० श्यामसुन्दर दास ने संवत् १७४४ माना है[2]। ना० प्र० सभा की सन् १९०६-७-८ की खोज-रिपोर्ट में भूपति कवि का उल्लेख मिलता है, जिसने सं० १३४२ में दोहा-चौपाई में 'रामचरित-रामायण' नामक ग्रन्थ की रचना की थी किन्तु डा० दीनदयालु गुप्त मायाशंकर याज्ञिक संग्रहालय में देखी हुई भूपति द्वारा रचित 'भागवत दशम स्कन्ध' की प्रति के आधार पर, जिसका रचना-काल संवत् १७४४ वि० दिया है, भूपति कवि की स्थिति संवत् १७४४ में मानना ही अधिक उपयुक्त लिखते हैं[3]। हिन्दी साहित्य में रामकाव्य-परम्परा के सबसे

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २६१।
२. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण, भाग १, पृ० ११२।
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग १, पृ० २३-२४।

प्रमुख कवि तुलसीदास हैं जो केशव के समसामयिक भी ठहरते हैं। तुलसीदास के ही समकालीन मुनिलाल कवि ने संवत् १६४२ में रामकथा पर 'रामप्रकाश' नामक ग्रन्थ रचा था[1]। तुलसीदास ने अपने सुविख्यात ग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना अयोध्या में जाकर संवत् १६३१ में प्रारम्भ की और उसे २ वर्ष ७ महीने में समाप्त किया[2]। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामकाव्य की परम्परा में तुलसी का 'मानस' ही सबसे प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ है।

केशव के समक्ष तुलसी का 'मानस' उनके जीवन-काल में ही आ चुका था। इसी से प्रभावित हो उन्होंने राम-कथा पर लिखने की ठानी। जैसा कि पहले बताया जा चुका है उनके राम-भक्ति की ओर प्रवृत्त होने में तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का भी हाथ है। किन्तु मानस के-से भव्य, उदात्त एवं लोक-रक्षक स्वरूप की झाँकी इस ग्रन्थ में प्रस्तुत नहीं हो सकी है। वस्तुतः राम-कथा के सहारे केशव ने अपना पाण्डित्य ही प्रदर्शित किया है जिसके फलस्वरूप उनके इष्टदेव राम तत्कालीन मुग़ल बादशाहों तथा राजा-महाराजाओं से बढ़कर और कुछ न रह गए हैं। उस समय का प्रभाव ही इसका प्रमुख कारण है।

कृष्ण-काव्य धारा—कृष्ण-काव्यपरम्परा के अन्तर्गत सर्वप्रथम जयदेव का नाम आता है। जयदेव वास्तव में संस्कृत के कवि हैं। उन्होंने राधा-कृष्ण की विलास-लीलाओं का वर्णन संस्कृत भाषा की मधुर एवं कोमल-कान्त पदावली में किया है। उनकी अमर रचना 'गीतगोविन्द' से हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवि बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। कुछ लोगों का मत है कि उन्होंने हिन्दी में भी कुछ पदों की रचना की थी जिनमें से एक-दो 'गुरुग्रन्थ साहब' में उपलब्ध हैं जो भाव और भाषा की दृष्टि से अत्यन्त साधारण हैं[3]। जयदेव की श्रृंगार-भावना का सबसे अधिक प्रभाव विद्यापति पर परिलक्षित होता है, जिन्होंने मैथिली भाषा में रचनाएँ की हैं। विद्यापति की पदावली में भी जयदेव की ही भाँति राधा-कृष्ण की लीलाओं का वासनामय चित्र प्रस्तुत हुआ है। इनके काव्य में श्रृंगार रस तथा उसके विभिन्न अवयवों का निरूपण राधा-कृष्ण की विविध विलास-लीलाओं के संसर्ग में किया गया है। कृष्ण-काव्यपरम्परा के तीसरे भक्त कवि नामदेव हैं, जिनके प्रेम तथा ज्ञानपूर्ण अभङ्ग तथा ब्रजभाषा में लिखे पद, सोरठ एवं साखियाँ प्रसिद्ध हैं। डा० दीनदयालु जी इनकी भाषा के विषय में लिखते हैं कि इनकी ब्रजभाषा हमारे सम्मुख परिवर्तित रूप में आती है और इसके मूल रूप का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता[4]। कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास का स्थान सर्वोपरि है जिनका ब्रजभाषा में रचित 'सूर-सागर' हिन्दी साहित्य की अमर कृति है। इस ग्रन्थ में भक्ति, काव्य एवं संगीत के एक साथ दर्शन होते हैं। वात्सल्य तथा श्रृंगार विशेषतः विप्रलम्भ के वर्णन में सूर

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४८३।
२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १४४।
३. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७१६।
४. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग १, पृ० २४।

अद्वितीय हैं। इनके शृंगार में रस का पूर्ण परिपाक होते हुए भी अश्लीलता का अंश नहीं आने पाया है। उनके आलम्बन विभाव नायक-नायिका राधा-कृष्ण दिव्य विभूतियों से विभूषित हैं[1]। इन्हीं के समय में कुछ अन्य कवि भी थे जो कृष्ण-लीला-सम्बन्धी सुन्दर पदों की रचना करते थे। श्री वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ ने इनमें से आठ उच्च कोटि के कवियों का संगठन कर 'अष्टछाप' की स्थापना की। अष्टछाप के अन्तर्गत सूरदास से इतर कवियों के ये नाम हैं—नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्ददास, कुंभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी तथा गोविन्द स्वामी। ये सभी वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त कृष्ण-काव्य-परम्परा में कई अन्य कवि भी आते हैं, यथा मीराबाई, गदाधर भट्ट, सूरदास, मदनमोहन, गोविन्ददास, हितहरिवंश, स्वामी हरिदास आदि जिनमें मीरा और हितहरिवंश उल्लेखनीय हैं। कृष्ण-काव्य में मीरा की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है। उन्होंने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन करके दीनता से अपनी हृदय की समस्त भावनाओं को भक्ति के सूत्र में बाँधकर कृष्ण की आराधना की है[2]। हितहरिवंश राधावल्लभी सम्प्रदाय के प्रवर्तक कहे जाते हैं, जिसमें राधा की उपासना को ही प्राधान्य दिया गया है। उनके राधा के सौन्दर्य-वर्णन में एक अपूर्व मनोहरता एवं सरसता के दर्शन होते हैं।

कृष्णभक्त कवियों ने श्रीकृष्ण भगवान् की लीलाओं का भावात्मक चित्रण ही अपने काव्य का मुख्य विषय बनाया है। उन्होंने राम-भक्त कवियों के सर्वथा विपरीत लोकमंगल की महिमा को भुलाकर कृष्ण के लोकरंजक रूप का ही चित्रण किया है। प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं से घिरे हुए कृष्ण का आनन्दमय स्वरूप ही उन्हें भाया है। उनकी दृष्टि में कृष्ण और राधा अथवा गोपिकाओं का प्रेम वासना से परे है। कृष्ण-काव्य मुक्तक-रूप में होने के कारण अधिकतर पदों में ही रचा गया है। नन्ददास आदि कुछ ही कवियों ने रोला, दोहा आदि छन्दों का प्रयोग किया है। कृष्ण-भक्त कवियों ने काव्य-रचना के लिए एक मात्र ब्रजभाषा को ही अपनाया है।

सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों का केशव पर कोई विशेष प्रभाव नहीं दिखाई पड़ता। केशव ने इन कवियों की पद-शैली के अनुकरण पर किसी ग्रन्थ की रचना नहीं की और न उनके राधा-कृष्ण-सम्बन्धी छन्दों में भक्ति की उतनी तल्लीनता ही दृष्टिगोचर होती है। केशव के अधिकांश छन्दों में राधा-कृष्ण का लौकिक नायिका-नायक के रूप में ही चित्रण किया गया है। इसका कारण तत्कालीन वर्ग-विशेष—आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की अभिरुचि है। इस प्रकार 'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' में उद्धृत राधा-कृष्ण-सम्बन्धी छन्दों की प्रेरणा केशव को जयदेव, विद्यापति आदि शृंगारी कवियों से ही मिली जान पड़ती है।

रीति-काव्य धारा—हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध इतिहासकार शिवसिंह सेंगर ने कर्नल टाड के आधार पर भोज के पूर्वपुरुष राजा मान की सभा में एक बन्दीजन

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ७६७।
२. वही, पृ० ८०८।

पुण्ड या पुष्य (संवत् ७७० के लगभग) का होना लिखा है[१]। उसने दोहों में हिन्दी भाषा में संस्कृत-अलंकार-ग्रन्थ का अनुवाद किया था[२]। परन्तु उसका विशेष विवरण अज्ञात है। अलंकारशास्त्र के लेखकों में ब्रज के क्षेम कवि तथा मुनिलाल का उल्लेख भी प्राप्त होता है। इनमें मुनिलाल को तो रीति-ग्रन्थों का प्रवर्तक ही समझा जाता है[३]। इन दोनों लेखकों का विशेष विवरण अप्राप्य है। इनके ग्रन्थ भी उपलब्ध नहीं हैं। इस प्रकार रीतिकाव्य-परम्परा का सबसे प्रथम लेखक कृपाराम ही ठहरता है। उसने रस-रीति पर 'हिततरंगिणी' (रचना-काल संवत् १५१८ वि०[४]) नामक एक ग्रन्थ लिखा था। कृपाराम ने स्वयं लिखा है कि अन्य कवि बड़े छन्दों में शृंगार रस का वर्णन करते हैं किन्तु मैंने सुघड़ता के विचार से दोहों में ही वर्णन किया है[५]। इस कथन से ज्ञात होता है कि उनके पहले रस-रीति पर अन्य ग्रन्थों की भी रचना हो चुकी थी किन्तु वे भी आज अप्राप्य हैं। इसके बाद गोप (सं० १६१५ वि०) ने 'रामभूषण' और 'अलंकार चन्द्रिका' नामक अलंकार-सम्बन्धी दो ग्रन्थ लिखे[६], किन्तु इनका भी विशेष विवरण अनुपलब्ध है। संवत् १६१६ में मोहनलाल मिश्र का 'शृंगार सागर' ग्रन्थ रस तथा नायिका-भेद पर रचा गया[७]। किन्तु यह भी आज उपलब्ध नहीं है। इसी समय के लगभग रहीम ने 'बरवै-नायिका-भेद' की रचना की[८]। कवि नन्ददास ने भी नायिका-भेद पर 'रसमंजरी' (रचनाकाल संवत् १६२४ के लगभग) नामक ग्रन्थ का निर्माण किया[९]। इसी समय के लगभग नरहरि के साथी करनेस कवि ने अलंकार पर तीन ग्रन्थ 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' तथा 'भूपभूषण' लिखे थे[१०]। स्वयं केशव के अग्रज बलभद्र मिश्र ने 'दूषण विचार' तथा 'नखशिख' का निर्माण

---

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ४५०; मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ९९ तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३।

२. शिवसिंह सरोज, पृ० ४५० तथा पृ० ९ (भूमिका)।

३. "A small beginning had been made prior to him (Keshava) by Khem of Braj and one Muni Lal who is regarded as the founder of the Technical School of Poetry."

—Introduction—Search for Hindi Mss., 1906-8 by Shyam Sunderdas.

४. स्व० ला० भगवानदीन तथा स्व० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल आदि कुछ विद्वान् हिततरंगिणी को बिहारी के बाद की रचना मानते हैं। श्री चन्द्रवली पाण्डे ने इसका रचना-काल संवत् १७९८ वि० बताया है। वास्तव में प्रस्तुत रचना की भाषा की अतिशय स्वच्छता के आधार पर ही विद्वानों ने उसे अप्रामाणिक मान लिया है। किन्तु उसकी रचना-तिथि इतने असंदिग्ध रूप में दी हुई है कि विरोधी प्रमाण के अभाव में, उस पर संदेह करना सरल नहीं है।

५. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० २७६।

६. वही, पृ० ३४५।

७. वही, पृ० ३४५ तथा ना० प्र० स० खोज० रिपोर्ट नं० ७० (सन् १९०५ ई०)।

८. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३५८।

९. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ५१।

१०. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३५३।

किया था[1]। इस प्रकार रस तथा अलंकार-निरूपण का सूत्रपात तो केशव के पूर्व ही हो चुका था किन्तु पूर्ववर्ती किसी कवि ने भी काव्य के विभिन्न अंगों का सम्यक् विवेचन शास्त्रीय दृष्टिकोण से नहीं किया था।

संस्कृत काव्यशास्त्र का केशव पर प्रभाव—यों तो संस्कृत के अलंकारशास्त्र में काव्य की आत्मा के प्रश्न को लेकर भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय केशव के पूर्व ही पूर्णतया प्रतिष्ठित हो चुके थे पर केशव के समय के लगभग केवल रस तथा अलंकार सम्प्रदायों का ही बोलबाला था। भामह, दण्डी, उद्भट आदि आचार्यों ने अलंकारों को काव्य के लिए अनिवार्य माना है। दण्डी ने अलंकारों को शोभा का कारण बताया है[2]। पर आगे चलकर मम्मटाचार्य ने काव्य में अलंकारों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा और काव्य की यह परिभाषा की—

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि।[3]

विश्वनाथ ने मम्मट की उक्त परिभाषा का भी खण्डन किया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया[4]। इस प्रकार जब अलंकारों को हेय समझा गया और रसात्मक वाक्य को ही काव्य में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई तो अलंकार-प्रिय लोगों को एक बड़ा भारी आघात पहुँचा। फलतः लोगों की रुचि फिर से अलंकारों की ओर गई। बस, फिर तो क्या था, अलंकार-ग्रन्थों का ताँता-सा बँध गया। जयदेव ने अलंकार का पक्ष लेकर काव्य की परिभाषा इस प्रकार की—

निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यनामभाक्॥[5]

उन्होंने तो यहाँ तक कह डाला कि यदि कोई काव्य को अलंकार-रहित मानता है तो अपने को पण्डित मानने वाला अग्नि को भी उष्णता-रहित क्यों नहीं मानता[6]। उनके अनन्तर अप्पय दीक्षित, केशव मिश्र आदि आचार्यों ने अलंकार पर विशेष रूप

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, भाग १, पृ० ३५५ तथा हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २२६।

२. काव्यशोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते।
—काव्यादर्श, पृ० ८।

३. काव्यप्रकाश, पृ० ४।

४. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।
—साहित्य-दर्पण, पृ० २०, परिच्छेद १, कारिका सं० ३।

५. चन्द्रालोक, मयूख १, श्लो० ७, पृ० ६।

६. अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
सो न मन्यते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती॥
—वही, श्लो० ८, पृ० ७।

से ध्यान दिया। अप्पय दीक्षित ने अपने 'काव्य-दर्पण' में काव्य का जो लक्षण दिया है वह इस प्रकार है—

काव्यं ह्यदुष्टौ गुणौ शब्दार्थौ सदलङ्कृती।[1]

केशवमिश्र के 'अलंकारशेखर' की भी रचना अलंकार की दृष्टि में रखकर ही हुई है। उन्होंने विश्वनाथ के काव्य के लक्षण को और भी व्यापक एवं सरस बनाने का प्रयत्न किया है[2] और साथ ही सभी की परिभाषाओं को समेटने का जो प्रयास किया है वह श्लाघ्य है[3]। इस विवेचन से यह सिद्ध है कि केशव के समय में रस के साथ अलंकार की भी पर्याप्त प्रतिष्ठा हो चुकी थी। निदान केशव की दृष्टि भी रस और अलंकार दोनों पर ही गई और फलतः उन्होंने रसों पर 'रसिकप्रिया' तथा अलंकारों पर 'कविप्रिया' की रचना की।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष यह निकला कि केशवदास पर पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है। जहाँ उन्होंने एक ओर वीरगाथा काल के आदर्शों को ध्यान में रखकर 'रतनबावनी', 'वीरसिंहदेव-चरित' तथा 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' की रचना की है वहाँ रामकाव्य के अन्तर्गत 'रामचन्द्रिका' भी लिखी है, यद्यपि इस ग्रन्थ में उनका आचार्यत्व ही प्रधानतः परिलक्षित होता है। साथ ही निर्गुण सन्त-काव्य से प्रभावित हो उन्होंने 'विज्ञानगीता' का निर्माण किया है। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के प्रणयन के द्वारा तो केशवदास ने हिन्दी साहित्य में रीति-परम्परा का निर्बाध मार्ग ही खोल दिया। उनके पूर्व किसी भी कवि ने शास्त्रीय पद्धति पर काव्य के विविध अंगों का विवेचन प्रस्तुत नहीं किया था। 'छन्दमाला' की रचना कर पिंगल-निर्माण के क्षेत्र में भी केशव ने पथ-प्रदर्शन किया है। इस प्रकार केशवदास पूर्ववर्ती तथा समकालीन परिस्थितियों से निर्मित होकर भी हिन्दी काव्य-क्षेत्र में एक विशिष्ट पद्धति के जन्मदाता एवं प्रवर्तक हैं।

---

१. केशवदास, चन्द्रबली पांडे, पृ० १४२।

२. काव्यं रसादिमद्वाक्यं श्रुतं सुखविशेषकृत्।
—अलंकारशेखर, प्रथम रत्न, प्रथम मरीचि, पृ० २।

३. निर्दोषं गुणवत्काव्यलङ्कृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् प्रीतिं कीर्त्तिं च विन्दति॥
—वही, पृ० ३।

दूसरा अध्याय

केशव का जीवन-चरित

केशव नामधारी अनेक कवि—शिवसिंह सेंगर ने अपने 'शिवसिंह सरोज' में प्रसिद्ध कवि केशवदास के अतिरिक्त जिनको उन्होंने सनाढ्य मिश्र बुन्देलखण्डी कहा है, केशवराय अथवा केशवदास नाम के तीन और कवियों का उल्लेख किया है। इनमें से एक केशवराय बाबू हैं जिसको वे बघेलखण्डी और संवत् १७३६ वि० में उत्पन्न लिखते हैं[1]। शिवसिंह के अनुसार उन्होंने नायिका-भेद पर एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ की रचना की थी जिनके कवित्त बलदेव कवि ने अपने संग्रह ग्रन्थ 'सत्कविगिरा विलास' में रखे हैं[2]। इन केशवराय के शृंगार रस के दो छन्द 'सरोज' में उद्धृत हैं[3]। काव्यत्व की दृष्टि से दोनों छन्द सुन्दर बन पड़े हैं। इनमें कवि केशवदास की छाप का कदाचित् भ्रम हो सकता है किन्तु इनके और आलोच्य केशवदास के समय में कोई १२० वर्ष का अन्तर है इसलिए दोनों के विषय में किसी प्रकार की भ्रान्ति के लिए स्थान नहीं है। शेष दोनों कवियों का पूरा नाम केशवदास है। इनमें से एक के विषय में शिवसिंह को कोई विशेष जानकारी नहीं मालूम पड़ती। उन्होंने इनका जन्म-संवत् नहीं दिया है। केवल इतना ही लिखा है कि इनकी कविता सामान्य है[4]। सरोज में इनका एक ही छन्द दिया गया है, जो निम्नांकित है[5]। यह छन्द कवित्व की दृष्टि से आलोच्य कवि केशवदास के कवित्तों से हीन है। दूसरे केशवदास ब्रजवासी काश्मीर के रहने वाले हैं। इनका जन्म-संवत् 'सरोज' में १६०८

---

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ३८५।
२. वही, ३८६।
३. वही, २२।
४. वही, ३८६।
५. आली ऐंडदार बैठी ज्वानी के तखत पर,
नैन फौजदार खड़े लखें चहुँ ओरा है।
द्वादस हू भूषन के द्वादस वजीर खड़े,
सोलह सिंगार भूप लखें दृगकोरा है।
रूप को गुमान सीस मुकुट है छत्र चौंर,
जेवर की नौबति बजति सांझ भोरा है।
कहि कवि केसोदास आली बरनी न जाति,
जोबन की जोरा मानों बादशाही तोरा है॥

—शिवसिंह सरोज, पृ० २१।

वि० दिया हुआ है। इनके विषय में सरोजकार ने लिखा है कि इनके पद 'रागसागरोद्भव' में बहुत हैं ; इन्होंने दिग्विजय की और ब्रज में आकर श्रीकृष्ण चैतन्य से शास्त्रार्थ में पराजित हुए[१]। इनका भी एक पद 'सरोज' में उद्धृत है[२]। यदि सरोजकार की मान्यता को विश्वस्त मान लिया जाय तो ये कवि प्रसिद्ध कवि केशवदास के समकालीन अवश्य रहे होंगे। किन्तु इनके उपरोक्त छन्द में आलोच्य केशवदास के छन्दों की-सी मधुरता एवं भाषा की प्रौढ़ता का अभाव खटकता है। इस ब्रजवासी केशवदास का उल्लेख मिश्रबन्धुओं ने भी किया है और इन्हें 'भ्रमरबतीसी' नामक ग्रन्थ (रचना-काल संवत् १५९८) का रचयिता माना है[3]। ग्रियर्सन महोदय ने जिन केशव, केशवदास अथवा केशवराय नाम के पाँच कवियों का उल्लेख किया है, वे हैं, केशवदास सनाढ्य मिश्र[४], केशवदास काश्मीर निवासी[५], केशवराय बाबू[६], केशव भट्ट (श्री भट्ट)[७] और केशव मिथिला-निवासी[८]। इनमें से प्रथम तीन नाम तो सरोजकार ने भी दिए हैं पर शेष दो नाम ग्रियर्सन के नये हैं। मिथिला-निवासी केशव का समय (सन् १७७५)[९] हमारे आलोच्य केशव से कोई २२४ वर्ष पश्चात् पड़ता है। अतः दोनों के विषय में किसी प्रकार के भ्रम का कोई स्थान ही नहीं है। केशव भट्ट (सन् १५४४)[१०] प्रसिद्ध कवि केशवदास के समसामयिक अवश्य रहे होंगे। किन्तु इनके विषय में विद्वान् लेखक को विशेष जानकारी नहीं मालूम पड़ती ; केवल इतना ही लिखा है कि यह नायक-नायिकाओं की चेष्टाओं के वर्णन में बहुत बढ़े-चढ़े हैं।[११] अतः निश्चित रूप से कोई निर्णय नहीं दिया जा सकता। खोज-रिपोर्टों में प्रसिद्ध कवि केशवदास के अतिरिक्त केशवराय, केशोदास, केशव अथवा केशवदास नाम के ११-१२ कवियों का विवरण आता है किन्तु साधारणतः उनके और आलोच्य केशवदास के काव्य-व्यक्तित्व तथा समय में इतना अधिक अन्तर है कि उनके विषय

---

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ३६६।

२. भोर भये आये हो ललन नीकी भतियाँ।
जावक के उर चीह्न नीलपट प्यारी दीने नयन आलसभीने जागे सब रतियाँ।
छुटी ग्रीवा वन दाम नख-क्षत अभिराम कैसे के दुरत श्याम डगमगी गतियाँ।
केशवदास प्रभु नंदसुवन काहे लजात भले जू सांवरे-गात जानी सब घतियाँ॥
—शिवसिंह सरोज पृ० ४१।

३. मिश्रबन्धु विनोद, प्र० भा०, पृ० ३४१।

४. दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान, पृ० ५८।

५. वही, पृ० ३०।

६. वही, ,, ८३।

७. वही, ,, २८।

८. वही, ,, ६६।

९. वही, ,, ६६।

१०. वही, ,, २८।

११. He is said to have excelled in describing the actions of a lover and his beloved. —Modern Vernacular Literature of Hindustan, page 28.

में परस्पर किंचित् भी भ्रम नहीं हो सकता। प्रसिद्ध कवि केशवदास का व्यक्तित्व इन सभी से पृथक् था।

वंश-परिचय—केशवदास का नाम हिन्दी साहित्याकाश के जगमगाते हुए ज्योति-पुञ्ज सूर तथा तुलसी के साथ बड़े आदर एवं सम्मान के साथ लिया जाता है। उनके जीवन-वृत्त में बहुत कम गुत्थियाँ हैं। समकालीन सूर तथा तुलसी-से महाकवियों के समान उन्होंने अपनी जीवनी को अन्धकार में नहीं रखा है। यद्यपि उनका वंश-परिचय तथा उनके जन्म-मरण की तिथियाँ और जीवन-सम्बन्धी मुख्य घटनाएँ निश्चित रूप से ज्ञात नहीं हैं तथापि उन्होंने अपनी रचनाओं में इतना कुछ कह दिया है कि उसके आधार पर हम उनकी जीवनी से भली भाँति परिचित हो सकते हैं। केशवदास ने अपने काव्यों में यत्र-तत्र बहुत सी बातों का स्पष्ट रूप में उल्लेख कर दिया है जिसके सहारे उनके जीवन-वृत्त को जानने में विशेष कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता। केशव ने स्वयं 'कविप्रिया' के दूसरे प्रभाव में अपने वंश का परिचय यों दिया है[1]—

---

१. ब्रह्माजू के चित्त ते प्रगट भये सनकादि।
उपजे तिनके चित्त ते सब सनौढ़िया आदि ॥१॥
परशुराम भृगुनन्द तब उत्तम विप्र विचारि।
दये बहत्तर ग्राम तिन तिनके पायं पखारि ॥२॥
जगपावन वैकुण्ठपति रामचन्द्र यह नाम।
मथुरामण्डल में दये तिन्हें सात सौ ग्राम ॥३॥
सोमवंश यदु-कुल कलस त्रिभुवन पाल नरेश।
फेरि दये कलिकाल पुर तेई तिन्हें सुदेश ॥४॥
कुम्भवार उद्देसकुल प्रगटे तिनके वंश।
तिनके देवानन्द सुत उपजे कुल अवतंस ॥५॥
तिनके सुत जयदेव जग थापे पृथ्वीराज।
तिनके दिनकर सुकुलसुत प्रगटे पण्डितराज ॥६॥
दिल्लीपति अलाउद्दीं कीन्हीं कृपा अपार।
तीरथ गया समेत जिन अकर करे बहु बार ॥७॥
गया गदाधर सुत भये तिनके आनन्दकन्द।
जयानन्द तिनके भये विद्यायुत जगबन्द ॥८॥
भये त्रिविक्रम मिश्र तब तिनके पण्डितराय।
गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पाय ॥९॥
भाव शर्म तिनके भये जिनकै बुद्धि अपार।
भये शिरोमणि मिश्र तब षट दर्शन अवतार ॥१०॥
मानसिंह सौं रोष करि जिन जीती दिसि चारि।
ग्राम बीस तिनको दये राना पाँव पखारि ॥११॥

"ब्रह्माजी के मन से सनकादि पुत्र उत्पन्न हुए और उनके मानसिक पुत्र सनाढ्य हुए। परशुराम ने सनाढ्यों को उत्तम ब्राह्मण जानकर उनके पैर पखारकर उन्हें ७२ गाँव दिए। जगपावन वैकुण्ठपति रामचन्द्र जी ने उन्हें मथुरा-मण्डल में ७०० गाँव प्रदान किए। त्रिभुवन-पालक श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कलियुग में उन्हें फिर वही (मथुरा-मण्डल) देश दिया। उनके वंश के उद्देश्य-कुल में कुंभवार उत्पन्न हुए। उनके पुत्र कुलावंतस देवानन्द हुए। उनके पुत्र जयदेव जो पृथ्वीराज के आश्रित थे और जयदेव के पुत्र पण्डितराज दिनकर हुए। इन पर अलाउद्दीन बादशाह की विशेष कृपा थी। उन्होंने गया समेत अनेक तीर्थों की यात्रा कई बार की थी। दिनकर के पुत्र आनन्दकन्द गया-गदाधर, उनके जगत् प्रतिष्ठित जयानन्द और उनके त्रिविक्रम मिश्र हुए। गोपाचल-गढ़ दुर्गपति इन महाराज के चरण पूजते थे। त्रिविक्रम के पुत्र भावशर्मा और उनके पुत्र षट्दर्शन-पारंगत शिरोमणि मिश्र[1] हुए। इनकी मानसिंह से अनबन थी। राणा ने उन्हें पाँव पखारकर बीस गाँव दिये। इन शिरोमणि मिश्र के पुत्र हरिहरनाथ हुए। ये महाशय तोमर-पति के आश्रय में रहे और इन्होंने अन्य किसी के आगे भूलकर भी हाथ नहीं पसारा। हरिहरनाथ के पुत्र कृष्णदत्त हुए जिन्हें महाराज रुद्र ने पुराण-वृत्ति प्रदान की। उनके पुत्र बुद्धि के समुद्र काशीनाथ हुए। उन्हीं काशीनाथ के बलभद्र, केशवदास और कल्याणदास तीन पुत्र हुए। रुद्र प्रताप के पुत्र मधुकरशाह के यहाँ इन काशीनाथ मिश्र का बड़ा सम्मान था। बालकपन से ही मधुकरशाह को मिश्रजी के बड़े पुत्र बलभद्र पुराण सुनाया करते थे।"

तिन के पुत्र प्रसिद्ध जग कीन्हें हरि हरिनाथ।
तोमरपति तजि और सों भूलि न ओड्यौ हाथ ॥१२॥
पुत्र भये हरिनाथ के कृष्णदत्त शुभ वेश।
सभा शाह संग्राम की जीती गढ़ी अशेष ॥१३॥
तिनको वृत्ति पुराण की दीन्हीं राजा रुद्र।
तिनके काशीनाथ सुत सोभे बुद्धि समुद्र ॥१४॥
जिनको मधुकर शाह नृप बहुत कर्यो सनमान।
तिनके सुत बलभद्र शुभ प्रगटे बुद्धिनिधान ॥१५॥
बालहिं ते मधुशाह नृप जिनपै सुनै पुरान।
तिनके सोदर द्वै भये केशवदास कल्यान ॥१६॥

—क० प्रि०, प्र० २, छं० १-१६।

१. न जाने किस आधार पर मिश्रबन्धुओं ने भावशर्मा के पुत्र का नाम 'सुरोत्तम मिश्र' दिया है (हिन्दी नवरत्न, पृ० ४५६)। 'कविप्रिया' में तो शिरोमणि मिश्र ही मिलता है (पृ० २, छं० १०)। किन्तु केशव की साक्षी के सामने मिश्रबन्धुओं का यह मत अधिक विश्वसनीय नहीं जान पड़ता।

'रामचन्द्रिका'[1] तथा 'विज्ञानगीता'[2] के आरम्भ में भी केशव ने अपने वंश का परिचय दिया है जिससे कवि के विषय में 'कविप्रिया' में उल्लिखित परिचय से अधिक और कुछ नहीं विदित होता। 'विज्ञान-गीता' में केशव के निवास-स्थान तथा उनके वंश के मूल-पुरुष—वेदव्यास का निर्देश अवश्य अधिक हुआ है।

उपर्युक्त ग्रन्थों में दिये विवरण से निष्कर्ष यह निकलता है कि केशव मिश्र उपाधिधारी सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए थे। ये कृष्णदास मिश्र के पौत्र और काशीनाथ मिश्र के पुत्र थे। ये तीन भाई थे। बड़े का नाम बलभद्र तथा छोटे का कल्याण था। केशव के वंश की वृत्ति पुराण है और उसका मूल-पुरुष वेदव्यास है। बेतवा नदी के तट पर स्थित ओरछा नगर इस वंश का निवास-स्थान है।

हमें झाँसी-निवासी श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' (जिनका सम्बन्ध केशव के वंश से जामाता होने का है के सौजन्य से एक वंश-वृक्ष की प्रतिलिपि प्राप्त हुई है, जिसका संकलन केशव के वंशधर स्व० श्री श्रवणप्रसाद मिश्र 'श्रवणेश' ने किया था। वंश-वृक्ष की मूल प्रति फुटेरा-निवासी नारायणदास मिश्र, तनय नौनेलाल मिश्र के पास अब भी सुरक्षित है। केशव के कोई भी वंशधर आजकल ओरछा में नहीं हैं। वे अपने-अपने उन ग्रामों में रहते हैं जोकि केशव को जागीर में मिले थे। केशव के वंशधर आज भी झाँसी और फुटेरा (जो झाँसी से २३ मील दक्षिण की ओर हैं) में विद्यमान हैं। जो दो परिवार झाँसी में रहते हैं, उनके पते निम्नांकित हैं—

---

१. सनाढ्य जाति गुनाढ्य है जग सिद्ध शुद्ध सुभाव।
सुकृष्णदत्त प्रसिद्ध है महि मिश्र पण्डितराव॥
गणेश सो सुत पाइयो बुध काशिनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारि के जिन जानयो मत साध॥४॥
उपज्यो तेहि कुल मंदमति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥५॥

—रा० चं०, प्र० १।

२. केशव तुंगारण्य में नदी बेतवै तीर।
जहांगीर पुर बहु बसें, पण्डित मंडित भीर॥३॥
ओड़छै तीर तरंगिणि बेतवै, ताहि तरैं नर केशव को है।

× × ×

तहाँ प्रकाश सो निवास मिश्र कृष्णदत्त को।
अशेष पण्डिता गुणी सुदास विप्र भक्त को।
सु काशिनाथ तस्य पुत्र विज्ञ काशीनाथ को।
सनाढ्य कुंभवार अंश वंश वेद व्यास को॥५॥
तिनके केशवदास सुत, भाषा कवि मतिमन्द।
करी ज्ञानगीता प्रकट, श्री परमानन्द कन्द॥६॥

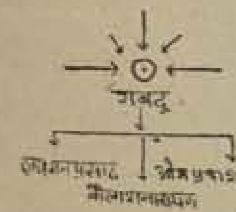
—वि० गी०, प्र० १।

आचार्य केशव दास की वंश-वृक्ष

(आज तक)

- पं॰ कृष्ण दत्त मिश्र ओरछा
  - पं॰ काशी नाथ मिश्र
    - बलभद्र मिश्र (आपके वंशज चिरपुरा ...)
    - केशव दास
      - विहारी दास मिश्र
        - मोहनराय
          - आनन्दराय
            - ...लाल
              - रुक्मिमान
                - मौजीलाल
                - मनेलाल
                - बल्लो
                - दरियाव
              - भवानीदास
      - श्री प्रसाद जू
      - विश्वेश्वर दयालजू
      - जहदेवजू
      - अनन्तरामजू
        - प्यारेलाल
          - दलपत
            - बिहारी
            - हरप्रसाद
            - मोहन लाल
        - दुलैरे
        - नैनजी
        - बुर्राई
        - मोहनजू
          - हरि सिंह
            - माधौराम
          - देवीदास
            - रावत
            - सांवले
          - प्रेम साह
          - लल्लू
    - कल्याण दास
      - परमेश्वर
        - अमरदास
          - हरिसेवक (सेवक)

Other names that can be read in the lower branches: काशीप्रसाद, मदनलाल, मोतीलाल, रामस्वरूप, आसाराम, लक्ष्मी नारायण, द्वारिकाप्रसाद, बद्री प्रसाद, प्रभाकर, दिवाकर, सुधाकर, भास्कर, बाबू लाल, रामकुमार, राधालाल, हरकिशन, बालूराम, गुलाब चन्द, घनश्याम, ठाकुरदास, रामनाथ, बालमुकुन्द, ओमप्रकाश, नन्दकिशोर, नन्दलाल, रघुवरकिशोर



१. श्री मथुराप्रसाद मिश्र, 'मथुरेश', पुत्र स्व० श्री श्रवणप्रसाद मिश्र 'श्रवणेश', अध्यक्ष जय-हिन्द प्रेस, गान्धी रोड, बड़ा बाजार, झाँसी।
२. श्री पण्डित द्वारिकाप्रसाद मिश्र 'द्वारिकेश', मैनेजर, स्वाधीन प्रेस, माणिक चौक, झाँसी।

इन उक्त परिवारों के अतिरिक्त और भी परिवार हैं जो झाँसी में रहने लगे हैं। फुटेरा में अब भी प्राय: ४००-५०० व्यक्ति उनके परिवार के विद्यमान हैं। कृषि-कार्य ही उनकी आजीविका है। जमींदारी समाप्त हो गई है।

वंश-वृक्ष (जो श्री 'श्रवणेश' जी के सुपुत्र 'मथुरेश' द्वारा बाद को संशोधित एवं परिवर्द्धित किया गया) सामने दिया गया है।

केशव के पूर्वजों का वास-स्थान—श्री गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' केशव के वंशधरों से प्राप्त वंश-वृक्ष में दिये एक दोहे के आधार पर केशव के पूर्वजों का आदि-गृह व्रजमण्डल के अन्तर्गत 'डीग-कुम्हेर' नामक ग्राम बतलाते हैं[1]। केशव के पूर्वज फिर कब वहाँ से कहाँ गए इत्यादि बातों के विषय में केशव के ग्रन्थों से पूरी तो जानकारी नहीं होती किन्तु इतना तो ज्ञात हो ही जाता है कि 'गोपाचल' के प्रताप के अचल रहने तक केशव के पूर्वज वहीं रहे किन्तु उसके नष्ट होने पर वे भी अन्यत्र जा बसे। तोमर-राज्य से इनका सम्बन्ध तभी तक बना रहा जब तक वह सशक्त एवं समर्थ था। जब वह दिल्ली से गोपाचल आ गया तब केशव के पूर्वज भी वहीं साथ आ गये और वहीं के हो रहे। केशव के पूर्वज 'शिरोमणि' की राणा मानसिंह से जब कुछ अनबन हो गई तब उन्होंने अपने पराक्रम से दक्षिण में पाँव पुजाकर राणा से बीस ग्राम ले लिये। इस प्रकार इनका सम्बन्ध राणा-वंश से भी स्थापित हो गया परन्तु फिर भी शिरोमणि के पुत्र हरिहरनाथ ने तोमरपति को छोड़कर किसी और का आश्रय ग्रहण नहीं किया। जब तोमरपति का राज्य मुसलमानों के हाथ में चला गया तो हरिहरनाथ के पुत्र कृष्णदत्त वहाँ से निकलकर राजा रुद्रप्रताप की शरण में जा पहुँचे और उनकी कृपा से बेतवा नदी के तट पर ओरछा नगर में रहने लगे। अब केशव के पूर्वज यहीं जमकर रहने लगे। इस प्रकार इस वंश का सम्बन्ध ओरछा-नरेशों से हो गया और यह लगाव इतना बढ़ा कि केशव की दृष्टि में तोमर 'तूल' के समान हो गए। उन्होंने ओरछा-नरेश मधुकरशाह के पुत्र वीरसिंह की प्रशंसा में स्पष्ट शब्दों में कहा[2]।

---

१. अन्वेषण करते समय आचार्य केशवदास के वंशधरों के पास जो वंश-वृक्ष मिला था उसमें कई दोहे थे जो उनके वंशधरों ने लिखे थे। उनमें निम्नलिखित दोहा भी था—

उत्पत्ति निज कुल की सुनी, ब्रज में डीग-कुम्हेर।
द्विज सनाढ्य मुनि मिश्र कहि, सुजन देखि मोहि टेर॥

—सुकवि सरोज, प्रथम भाग, पृ० ६।

२. जौन ज्यों पुंज पंवार पुवार से तोंवर तूल के तूल उड़ाए।
सिंह ज्यों बाघ ज्यों कच्छप बाहु, हते गज ज्यों युवराज ढ़हाए॥
केशवदास प्रकाश अगस्त्य ज्यों, शोक अलोक समुद्र सुखाए।
वीर नरेश के खड्ग खुमान के, बिक्रम ब्याल अनेक बिलाए॥

—वि० गी०, प्र० १, छं० २०।

वंश की पाण्डित्य-परम्परा—संस्कृत की पाण्डित्य-परम्परा केशव के वंश में बहुत दिनों से चली आती थी। 'भावप्रकाश' नामक वैद्यक-ग्रन्थ इनके पूर्वज भावशर्मा (भाउराम) ने रचा था। ज्योतिष का प्रसिद्ध ग्रन्थ 'शीघ्रबोध' इनके पिता काशीनाथ जी ने बनाया था। कुछ लोगों का तो यहाँ तक विचार है कि 'प्रसन्नराघव' के कर्त्ता जयदेव इनके पूर्वज थे। परन्तु दृढ़ प्रमाण के अभाव में यह मत मान्य नहीं हो सकता। इनके पिता और पितामह ओरछा-नरेशों के पौराणिक पण्डित थे। इनके बड़े भाई बलभद्र ने भी 'नखशिख', 'भागवत-भाष्य' तथा 'हनुमन्नाटक-टीका' नामक ग्रन्थों की रचना की थी। ये बालकपन से ही ओरछाधीश मधुकरशाह को पुराणों की कथा सुनाया करते थे। अपने वंश की विद्वत्ता के विषय में केशव स्वयं लिखते हैं कि उनके वंश के दास तक भी भाषा में बातें न कर संस्कृत बोलते थे—

भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
भाषा कवि भो मंदमति तेहि कुल केशवदास ॥[1]

कहा नहीं जा सकता कि केशव के इस कथन में कहाँ तक सत्यांश है। यह भी सम्भव है कि वे अपने वंश की कीर्ति के आवेश में ऐसा लिख गए हों। परन्तु यह बिलकुल असम्भव बात भी नहीं कि उनके वंश के सेवक भी संस्कृत से परिचित हों। चाहे कुछ भी सही, इतना मानने में तो कोई आपत्ति नहीं कि केशव ने संस्कृत का काफ़ी अध्ययन किया था और अपने कुल की पाण्डित्य-परम्परा को बनाए रखने का भरसक प्रयास किया था। अभी तक उनके वंश में बराबर कवि होते चले आ रहे हैं। आजकल उनके वंश में द्वारिकाप्रसाद मिश्र, मथुराप्रसाद मिश्र, बिहारीलाल मिश्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, रामचरण मिश्र आदि हिन्दी के प्रसिद्ध कवि विद्यमान हैं।

जन्म-संवत्—केशवदास के जन्म-संवत् के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। शिवसिंह सेंगर ने इनका जन्म-संवत् १६२४ वि० माना है[2]। किन्तु उन्होंने यह नहीं लिखा कि इस जन्म-संवत् के मानने के लिए उनके पास क्या प्रमाण और आधार है। ग्रियर्सन महोदय ने अपने 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ़ हिन्दुस्तान' नामक ग्रन्थ में केशवदास के विषय में लिखा है कि वे सन् १५८० ई० (संवत् १६३७ वि०) में फूले-फले[3]। इस समय के मानने का प्रमाण इन्होंने भी नहीं दिया है। एफ० ई० के,[4] स्व० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल,[5] रामनरेश त्रिपाठी,[6] डा० रामकुमार वर्मा[7] आदि अधिकांश विद्वानों के अनुसार केशव का जन्म लगभग संवत् १६१२ वि० में हुआ था। मिश्रबन्धु ने अपने ग्रन्थ मिश्रबन्धु-विनोद (प्रथम भाग) में केशवदास का जन्म-

---

१. क० प्रि०, प्र० २, छं० १७।
२. शिवसिंह सरोज, पृ० ३८५।
३. दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर आफ हिन्दुस्तान, पृ० ५८।
४. हिस्ट्री आफ हिन्दी लिट्रेचर, पृ० ३४।
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २११।
६. कविता कौमुदी, प्रथम भाग, पृ० २६७।
७. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६३।

संवत् १६१२ वि० के लगभग माना है किन्तु अपने मत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं दिया है[1]। 'हिन्दी नवरत्न' में वे सप्रमाण इनका जन्म-संवत् १६०८ वि० के लगभग बतलाते हैं—

"केशवदास ने संवत् १४६८ वि० में 'रसिकप्रिया' बनाई। यह एक उत्कृष्ट ग्रन्थ है। आपने केवल सात ग्रन्थ बनाए। अतः विदित होता है, यह महाशय ग्रन्थ धीरे बनाते थे। इससे विचार यह उठता है कि संभवतः चालीस वर्ष की अवस्था में इन्होंने यह ग्रन्थ बनाया होगा। कवि होने के अतिरिक्त आप संस्कृत के अच्छे पण्डित भी थे। इनके पिता काशीनाथ ने 'शीघ्रबोध' नामक ज्योतिष का एक ग्रन्थ बनाया। इससे जान पड़ता है, उन्होंने केशवदास को भी ज्योतिष अवश्य पढ़ाया होगा। फिर इनके पितामह को ओड़छे में पुराण की वृत्ति मिली थी, सो वही वृत्ति इनकी भी होगी। अतः यह पुराण भी खूब पढ़े होंगे। केशव की कविता से भी प्रकट होता है कि वह संस्कृत के पण्डित थे। इन्द्रजीत इनको गुरुवत् समझते थे। इस बात से भी मालूम होता है कि यह महाशय संस्कृत के ज्ञाता होंगे। विज्ञानगीता देखने से विदित होता है कि इनका दर्शनशास्त्र पर भी अधिकार था। इन सब बातों से ज्ञात हुआ कि केशवदास ने विद्या प्राप्त करने में पूरा श्रम करके तब काव्य करना आरम्भ किया होगा। अतः अनुमान से जान पड़ता है कि इनका जन्म-संवत् १६०८ वि० के लगभग हुआ था[2]।"

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने भी आलोच्य कवि का जन्म-संवत् १६०८ वि० ही माना है और उनके अनुमान की आधारभित्ति भी प्रायः वही है जो मिश्रबन्धुओं की है। द्विवेदीजी लिखते हैं—

"·······इतनी बड़ी अवस्था तक इन्होंने केवल पाँच या छः ग्रन्थ लिखे। इससे सिद्ध होता है कि इनके हरेक ग्रन्थ की रचना में बहुत पर्याप्त समय लगा होगा। रसिकप्रिया इनका प्रथम ग्रन्थ है। इसमें काफ़ी समय लगा होगा। इसकी रचना संवत् १६४८ में पूरी हुई। इनके जीवन-काल से सम्बन्ध रखने वाली यही पहली तिथि है जो हमें निश्चय रूप से मालूम है। इससे अनुमान है कि उनकी अवस्था इस समय चालीस से कम शायद ही रही हो क्योंकि कम से कम तीस वर्ष तक संस्कृताध्ययन रहा होगा। इसके बाद दस वर्ष हिन्दी में काव्य-कौशल प्राप्त करने तथा 'रसिकप्रिया' को पूरा करने में अवश्य लगे होंगे। अतः इनका जन्म-संवत् १६०८ के लगभग हुआ[3]।"

केशवदास के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली सबसे पहली निश्चित तिथि संवत् १६४८ वि० है जिसमें केशव की 'रसिकप्रिया' पूर्ण हुई। यह भी निश्चित ही है

---

१. मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० २६५।
२. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४५७।
३. हिन्दी के कवि और काव्य, प्रथम भाग, पृ० १८२।

कि केशवदास ने पहले संस्कृत भाषा का अध्ययन और उसमें पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त किया और फिर हिन्दी में काव्य-रचना आरम्भ की। 'रसिकप्रिया' की रचना करने से पहले केशव ने हिन्दी के अध्ययन में भी कुछ समय अवश्य लगाया होगा। उसका परिपक्व ज्ञान प्राप्त करने में केशव को एक-दो वर्ष से अधिक न लगा होगा। कारण उनके कुटुम्बी संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी से भी भली भाँति परिचित थे। इनके बड़े भाई बलभद्र मिश्र हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे और उन्होंने 'नखशिख', 'भागवत-भाष्य' तथा 'हनुमन्नाटक-टीका' आदि ग्रन्थ भी लिखे थे। दूसरे, केशव के पिता एवं पितामह आदि ओरछा-नरेशों के यहाँ पौराणिक थे और उन्हें पुराणों की कथा सुनाने तथा समझाने का कार्य बिना हिन्दी की सहायता के सम्भव न था। इसके उपरान्त एक-दो वर्ष 'रसिकप्रिया' के प्रणयन में लगे होंगे। केशवदास जैसे व्युत्पन्न तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के लिए २५-२६ वर्ष की आयु में ही संस्कृत पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेना कोई असम्भव बात नहीं है और फिर जब कि समस्त कुटुम्ब संस्कृतज्ञों का ही हो। इस प्रकार केशवदास का जन्म 'रसिकप्रिया' के निर्माण के लगभग २९-३० वर्ष पहले अर्थात् संवत् १६१८ विक्रमी में मानना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

स्व० ला० भगवानदीनजी केशव का जन्म चैत्र संवत् १६१८ ही मानते हैं[१]। उन्होंने यह नहीं बतलाया कि आलोच्य कवि की यह जन्म-तिथि उन्होंने किस प्रमाण और आधार पर लिखी है। श्री गौरीशंकर द्विवेदीजी के अनुसार भी केशवदास का जन्म-संवत् १६१८ वि० में हुआ था। इस जन्म-तिथि का आधार वे उन दोहों को मानते हैं, जो अन्वेषण करते समय केशव के वंशधरों के पास प्राप्त वंश-वृक्ष[२] में मिले थे और जिन्हें उनके वंशधर ने लिखा था। द्विवेदीजी ने अपने 'सुकवि-सरोज' (प्रथम भाग) में इन दोहों को उद्धृत भी किया है, जो नीचे दिए जाते हैं—

संवत् द्वादश षट् सुभग, सोरह सै मधुमास।
तब कवि केशव को जनम, नगर ओड़छे वास॥
उत्पत्ति निजकुल की सुनौ, ब्रज में डीग कुम्हेर।
द्विज सनाढ्य मुनि मिश्र कहि, सुजन देखि मोहि टेर॥
यजुर्वेद श्रवणन सुनौ, गोत्र सु भारद्वाज।
शाखा सुभ कहि मार्दनी, इष्टदेव रघुराज[३]॥

हम स्वयं केशव के वंशधर श्री श्रवणप्रसाद जी 'श्रवणेश' से मिले हैं और उनसे इस विषय में पूछ-ताछ भी की है। उनसे हमें पता चला है कि केशवदास का जन्म श्रीरामनवमी को चैत्र मास में संवत् १६१८ में हुआ था और उनकी जन्म-जयन्ती भी उस ओर बुन्देलखण्ड में इसी तिथि को मनाई जाती है। इस तिथि का आधार वे गौरीशंकर द्विवेदी जी द्वारा उद्धृत वंश-वृक्ष वाले दोहे ही बतलाते हैं। अतः

१. केशव-पंचरत्न, आकाशिका—कवि परिचय, पृ० ३।
२. वंश-वृक्ष की मूल प्रति प्रयत्न करने पर भी लेखक को देखने को न मिल सकी।
३. सुकवि सरोज, प्रथम भाग, पृ० ६।

हमारे विचार में तो केशव का जन्म-संवत् १६१८ वि० अधिक समीचीन जान पड़ता है।

गोत्र, शाखा आदि—केशवदास ने अपने 'रामचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ में अनावश्यक ही भरद्वाज मुनि, उनके आश्रम तथा रूप का वर्णन विशेषतः किया है[1]। इससे विदित होता है कि केशवदास भारद्वाज गोत्रीय थे और स्वजात्यभिमान के कारण ही उन्होंने स्थान निकालकर ऐसा प्रसंग जोड़ा है। केशवदास के भारद्वाज-गोत्रीय होने का दूसरा प्रमाण उनके वंशधरों से प्राप्त वंश-वृक्ष में दिया हुआ निम्न-लिखित दोहा है—

यजुर्वेद श्रवणन सुन्यौ, गोत्र सु भारद्वाज
शाखा सुभ कहि मार्दनी, इष्टदेव रघुराज ॥

इससे यह भी ज्ञात होता है कि उनके कुल की शाखा मार्दनी थी और ये यजुर्वेदीय ब्राह्मण थे।

केशव का निवास-स्थान तथा स्वदेश-प्रेम—केशवदास का निवास-स्थान उनके अपने साक्ष्य के अनुसार ओड़छा राज्यान्तर्गत तुंगारण्य के समीप बेतवा नदी के तट पर स्थित ओड़छा नगर था[2]।

मनुष्य को अपनी जन्म-भूमि तथा वहाँ की प्रत्येक वस्तु से इतना प्रेम हो जाता है कि उसके सामने वह दूसरे स्थानों की महत्त्वपूर्ण वस्तुओं को हेय समझता है। केशवदास भी इस सत्य के अपवाद नहीं थे। उन्हें भी अपनी जन्म-भूमि एवं वहाँ के अरण्य, सरिता आदि से अत्यन्त प्रेम था। यह उनके ओड़छा नगर, तुंगारण्य और बेतवा नदी आदि के वर्णन से प्रकट है। केशव की दृष्टि में अन्य नगर ओड़छा नगर

---

१. रामचन्द्रिका, प्र० २०, छं० ३४-५१।

२. नदी बेतवै तीर जहाँ, तीरथ तुंगारन्न।
नगर ओड़छो बहु बसै, धरणी तल में धन्न ॥३॥
दिन प्रति जहँ दूनौ लहै, जहाँ दया अरु दान।
एक तहाँ केशव सुकवि, जानत सकल जहान ॥५॥
—र० प्रि०, प्र० १।

तथा

जहाँगीर पुर प्रगट दीह दुर्जन दिन दूषन।
नदी बेतवै तीर वसत भव भूतल भूषन ॥
तिहि पुर प्रसिद्ध केशव सुमति विप्रवन्स अवतन्स गुनि।
—वी० दे० च०, पृ० २।

(महाराज वीरसिंहदेव ने ओड़छा को फिर से बसाकर उसका नाम जहाँगीरपुर रखा था।)

पर निछावर करने योग्य हैं[१]। बेतवा नदी का भी महत्त्व केशव के विचार में गंगा और यमुना से किसी प्रकार कम नहीं[२]। बेतवा नदी के दर्शन से शारीरिक कष्ट और स्पर्श से पाप मिटते हैं तथा स्नान से प्राणियों के हृदय में ज्ञान का उदय होता है[३]। इसी प्रकार तुंगारण्य को केशव ने शिव के जटाजूट के समान पवित्र बतलाया है[४]।

विवाह और सन्तति—केशवदास के अपने कथन के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनका विवाह हुआ था और इनकी पत्नी जीवन के अन्तिम दिनों तक इनके साथ रहीं। केशवदास 'विज्ञान-गीता' में लिखते हैं कि इस ग्रन्थ की रचना से प्रसन्न होकर जब महाराज बीरसिंहदेव ने उनसे कहा कि जो तुम्हारे मन का मनोरथ हो उसे माँगो तो केशवदास ने सविनय निवेदन किया कि मेरे बालकों को बाप-दादों द्वारा दी हुई वृत्ति शीघ्र दे दीजिए और मुझे अपना दास

---

१. चहूँ भाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी शाला, हंसमाला सी सरित बर।
ऊँचे-ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौशिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरल तर॥
अपने सुखनि आगे निन्दत नरेन्द्र और,
घर-घर देखियत देवता से नारिनर॥
केशोदास त्रास जहाँ केवल दृष्टि ही को,
वारिये नगर और ओरछा नगर पर॥

—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ५।

२. ओड़छे तीर तरंगिणि बेतवै, ताहि तरैं नर केशव को है।
अर्ज्जुनबाहुप्रवाह प्रबोधित रेवा ज्यों राजन की रज मोहै॥
ज्योति जगै यमुना सी लसै जग लाल बिलोचन पाप विपोहै।
सूरसुता शुभ संगम तुंग तरंग तरंगिणि गंग सी सोहै॥

—वि० गी०, प्र० १, छं० ४; क० प्रि०, प्र० ७, छं० १५ (पाठान्तर से)
तथा बी० दे० च०, पृ० १०२ [पाठान्तर से]।

३. नदी बेतवै परम विचित्र। देवी वीर नरेस विचित्र॥
दरसैं दूरि करैं तन ताप। परसैं लोपैं पाप कलाप॥
स्नान करैं सब पातक हरैं। देषत ज्ञान उदौ जल करैं॥

बी० दे० च०, पृ० ७८।

४. अचल, अनलवंत, सिन्धु सुसैरित युग।
शंभु कैसौ जटाजूट परम पुनीत है॥

—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ७।

समझकर गंगा-तट पर वास करने की आज्ञा दीजिए[1]। उनकी प्रार्थना पर महाराज बीरसिंह ने उनके बालकों को छीनी हुई वृत्ति एवं पदवी दी और केशव को आज्ञा दी कि वे पत्नी-सहित गंगा-तट पर वास करें[2]। इस कथन से यह भी स्पष्ट है कि केशव की पत्नी 'विज्ञानगीता' के रचनाकाल अर्थात् संवत् १६६७ वि० तक जीवित थी।

केशव के कथन 'देउ बालनि आसु' में प्रयुक्त 'बालनि' शब्द बहुवचन है। अतः इससे यह भी निश्चित ही है कि उनके एक से अधिक सन्तान थी परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनके दो ही पुत्र थे अथवा दो से अधिक। हाँ, पीछे दिये हुए वंश-वृक्ष के अनुसार अवश्य केशव के पुत्रों की संख्या पाँच ही ठहरती है। 'बालनि' शब्द से केशव का तात्पर्य पुत्रों से ही है, कन्या से नहीं क्योंकि कन्या के लिए वृत्ति देने का प्रश्न उस समय उठ ही नहीं सकता था।

केशव और बिहारी—केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में विद्वानों में मतभेद है। स्व० बाबू राधाकृष्णदास, गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', स्व० जगन्नाथदास रत्नाकर तथा चन्द्रबली पाण्डे इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के पक्ष में हैं और मिश्रबन्धु, स्व० डाक्टर श्यामसुन्दरदास, स्व० मायाशंकर याज्ञिक, गणेशप्रसाद द्विवेदी तथा डा० हीरालाल दीक्षित विपक्ष में।

इस सम्बन्ध को प्रमाणित करने वाले विद्वानों में स्व० बाबू राधाकृष्ण-दास अग्रगण्य हैं। उन्होंने सर्वप्रथम सन् १८९५ ई० (संवत् १९५२ वि०) में अनुमानों के सहारे एक लेख द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि केशव बिहारी के पिता थे। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने चार बातों का उल्लेख किया था। पहली यह कि बिहारी ने स्वयं एक दोहे में 'केशवराय' की वन्दना की है[3], जो कुछ टीकाकारों एवं विद्वानों के मतानुसार बिहारी के पिता का नाम था[4]। दूसरे, बिहारी के विषय में एक प्राचीन दोहा प्रसिद्ध है, जिसमें बताया गया है कि उनका जन्म ग्वालियर में हुआ, बाल्यावस्था बुन्देलखण्ड में बीती और अपनी ससुराल-

---

१. सुनि सुनि केशवराइ सों, रीझि कह्यौ नृपनाथ।
मांगि मनोरथ चित्त के, कीजै सबै सनाथ ॥५५॥
वृत्ति दई पुरुखानि कीं, देऊ बालनि आसु।
मोहि आपनो जानि कै, गंगा तट देउ बासु ॥५६॥

वि० गी०, प्र० २१।

२. वृत्ति दई पदवी दई, दूरि करो दुख त्रास।
जाइ करो सकलत्र श्रीगंगा तट बस बास ॥५७॥

वि० गी०, प्र० २१।

३. प्रगट भए द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराय ॥

बिहारी रत्नाकर, छं० १०१।
('प्रगट भए' के स्थान पर 'जनम लियो' पाठभेद भी मिलता है।)

४. कविवर बिहारीलाल, पृ० २।

मथुरा में तरुणावस्था प्राप्त की[१]। तीसरे, दोनों ही कवि समसामयिक थे[२]। और चौथे यह कि बिहारी की कविता में भी बुन्देलखण्डी भाषा के शब्द प्रयुक्त हैं। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय राधाकृष्णदासजी ने जो छन्द उद्धृत किये हैं[3], उनमें से कुछ नीचे प्रस्तुत हैं—

मोरचन्द्रिका, स्याम-सिर चढ़ि कत करति गुमानु।
ललिबौ पायन पर लुठति सुनियतु राधा-मानु॥[४]
पिय-बिछुरन कौ दुसहु दुखु हरषु जाति प्यौसार॥
दुरजोधन लौं देखयति तजत प्रान इहि बार॥[५]

तथा

कौन भाँति रहिहै बिरदु अब देखिबी मुरारि।
बीधे मोंसौं आइ कै गीधे गीधहिं तारि॥[६]

यही नहीं वरन् एक दोहे में तो, जो नीचे लिखा गया है, बिहारी ने मधुकर शब्द का भी प्रयोग किया है जो स्व० बाबू राधाकृष्णदासजी के विचार में ओड़छा के सुयोग्य राजा मधुकरशाह के अयोग्य वंशधर की ओर लक्ष्य करता है।

बहकि बड़ाई आपनी कत राँचत मतिभूल।
बिनु मधु मधुकर कैं हिये गड़ै न गुड़हर फूल॥[७]

श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने बिहारी को केशवदास का ज्येष्ठ पुत्र तथा काशीनाथ मिश्र का पौत्र माना है[८]। अड़ोछा राज्य से बिहारी के सम्पर्क न रहने के विषय में द्विवेदी का कहना है कि केशव की मृत्यु के पूर्व बिहारी अधिकतर अपने नाना के ही यहाँ रहे। इसका कारण यह है कि बिहारी पर उनके नाना का, जो कि ग्वालियर के आस-पास के किसी गाँव के रहने वाले थे, बाल्यावस्था से ही अधिक प्रेम था।

---

१. जनम ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुणाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

कविवर बिहारीलाल, पृ० ५

यह दोहा 'बिहारी रत्नाकर' तथा 'बिहारी-मूल ग्रन्थ' में नहीं मिलता है। पं० लोकनाथ द्विवेदी उक्त दोहे को बिहारी-कृत ही मानते हैं। जब बिहारी आगरे में अब्दुर्रहीम खानखाना से मिले थे तब उनकी सभा में उन्होंने यह दोहा सुनाया था। (बिहारी दर्शन, पृ० १५)

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र का कहना है कि यह बिहारी का ही रचा कहा जाता है। सम्भव है, यह उनके चरित्र के किसी जानकार का लिखा हो।

बिहारी, पृ० ११२ (पाद-टिप्पणी)

२. कविवर बिहारीलाल, पृ० ५।
३. वही , ६।
४. बिहारी रत्नाकर, छं० ६७६।
५. वही , छं० १५।
६. वही , छं० ३१।
७. वही , छं० २८२।
८. सुकवि सरोज, प्रथम भाग, पृ० ५५

द्विवेदीजी का अनुमान है कि केशव की मृत्यु के उपरान्त भी बिहारी अपनी शिक्षा आदि के लिए बहुत दिनों तक वहीं रहे। वहाँ से लौटकर ओड़छा आने पर राज-दरबार में बिहारी का उतना मान जितना कि उनके पूर्वजों का होता चला आया था नहीं हुआ[1]। इस सम्बन्ध में द्विवेदीजी ने कई कारणों का उल्लेख किया है। पहला यह कि बिहारी के चले जाने के पश्चात् किसी और कवि ने डेरा डाला हो और बिहारी को लौटता देखकर उसने राज्य के कर्मचारियों आदि से मिलकर यह प्रयत्न किया हो कि बिहारी की धाक फिर से न जम सके। दूसरे, बिहारी के वंश-परम्परा के वैभव को देखकर कुछ लोग इनसे डाह करने लगे हों और उन्हें इनका लौटना खला हो। तीसरे, राज-दरबार में बिहारी की कविता के पारखी शेष न रह गए हों और इनकी अपेक्षा किसी और अयोग्य व्यक्ति का सम्मान हो चला हो। इस कारण विवश हो स्वाभिमान की रक्षा के निमित्त बिहारी को ओड़छा छोड़ देना पड़ा। इस अनुमान की पुष्टि में द्विवेदीजी ने सतसई के कई दोहे उद्धृत किए हैं, जिनमें से तीन यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब, अलि, रही गुलाब में अपत, कंटीली डार॥[2]
मरतु प्यास पिंजरा पर्यो सुआ समैं कैं फेर।
आदर दै दै बोलियतु बाइसु बलि की बेर॥[3]
चल्यौ जाइ, ह्यां को करै हाथिनु के व्यापार।
नहिं जानतु, इहिं पुर बसैं, धोबी, ओड़, कुम्भार॥[4]

बिहारी का चौबे होना द्विवेदीजी को मान्य नहीं है। वे इस विषय में कहते हैं कि यह तो हो सकता है कि बिहारी के नाना या ससुराल वाले चौबे हों और क्योंकि उन्होंने अपना बाल्यकाल अपने नाना के यहाँ तथा तरुणावस्था ससुराल में बिताई थी, अतः सम्भव है कि बिहारी का ठीक-ठीक इतिहास न मिलने के कारण लोगों ने आपके नाना या ससुराल वाले महानुभावों के पटा (आस्पद) के अनुसार आपको भी चौबे मान लिया हो ; क्योंकि सनाढ्यों में भी चौबे (आस्पद) होते हैं और मिश्रवंश के पुत्रों का चौबों के यहाँ ब्याहा जाना सम्भव भी है। ब्रज और ग्वालियर की ओर उनके वंशजों के एक-दो नहीं अब भी दस-पाँच सम्बन्ध हैं। अतः यह भी असम्भव नहीं कि उनका उस ओर सम्बन्ध न रहा हो[5]।

बिहारी के निम्नलिखित दोहे—

जनम ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देल बाल।
तरुनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल॥

---

१. सुकवि सरोज , प्र० भा०, पृ० ५५।
२. बिहारी रत्नाकर, छं० २५५।
३. वही , छं० ४३५।
४. वही , छं० ४३६।
५. सुकवि सरोज, प्रथम भाग, पृ० ६०-६१।

के विषय में द्विवेदी जी का कथन है कि फुटेरा ग्राम, जिसमें बिहारी के वंशज आज भी रहते हैं, झाँसी से दक्षिण की ओर १३ मील की दूरी पर है और 'फुटेरा पिछोर' के नाम से प्रसिद्ध है। झाँसी और उसके आस-पास के गाँव ग्वालियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे। सम्भव है उस समय उनके इस गाँव का सम्बन्ध ग्वालियर प्रान्त से ही हो और इसलिए बिहारी ने ग्राम का नाम न लिखकर केवल प्रान्त का नाम लिख देना ही पर्याप्त समझा हो[1]। इसके अतिरिक्त 'जनम लियो द्विजराज कुल' आदि दोहे के विषय में द्विवेदी जी का कथन है कि इसमें तो स्पष्ट रूप से ही उन्होंने अपने इष्ट-देव और पिता को सम्बोधित किया है[2]।

इस आपत्ति के विषय में कि यदि केशव और बिहारी में पिता-पुत्र का सम्बन्ध होता तो कोई न कोई तो एक दूसरे के विषय में लिखता ही, द्विवेदी जी ने लिखा है कि केशव से यह आशा करनी व्यर्थ है क्योंकि उन्होंने अपने से बड़ों का गुणगान तो अवश्य किया है पर अपने से छोटों का कहीं भी नहीं किया। यहाँ तक कि उन्होंने अपने अनुज कल्याण के विषय में भी कोई विशेष बात नहीं लिखी है, फिर पुत्रों के विषय में तो क्यों लिखने लगे थे। दूसरे, केशव की मृत्यु के समय बिहारी अधिक से अधिक बीस या बाईस वर्ष के होंगे और उस समय उनकी प्रतिभा का विकास पूर्ण रूप से न हुआ होगा। जहाँ तक बिहारी का सम्बन्ध है, द्विवेदी जी का कथन है कि उन्हें झूठी खुशामद करना नहीं आता था। उनका सिद्धान्त कविता से दूसरों का उपकार करने का था, कीर्ति कमाना नहीं। यहाँ तक कि जयसिंह के लिए भी केवल दो-एक वास्तविक घटनाओं के विषयों के दोहों को छोड़कर उन्होंने कहीं उनकी प्रशंसा के दोहे नहीं लिखे और अपने लिए तो केवल एक ही दोहा 'जनम लियो द्विजराज-कुल सुबस बसे ब्रज आइ' आदि लिखकर ही सन्तोष किया[3]।

केशव तथा बिहारी के ग्रन्थों की भाषा में वैषम्य होने के विषय में द्विवेदी जी कहते हैं कि केशव का सारा समय बुन्देलखण्ड में बीता और बिहारी का कुछ बुन्देलखण्ड में और अधिकांश ब्रज में बीता। उसी के अनुसार उनकी कविताएँ भी हुईं। इस पर भी बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों लखिबी, ब्योरति, प्यौसार आदि ने बिहारी का साथ नहीं छोड़ा। इस सम्बन्ध में उन्होंने राधाकृष्णदास के समान ही बाबू गोपालचन्द्र तथा उनके पुत्र भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र की भाषा की ओर ध्यान दिलाया है। ये दोनों आजन्म एक ही स्थान पर रहे, तो भी इनकी भाषा में केशव और बिहारी की भाषा की तुलना में अधिक विषमता परिलक्षित होती है[4]।

बिहारी के वंशज अब तक अपने वंश का परिचय हिन्दी-जगत् के सम्मुख नहीं रख सके हैं, इस सम्बन्ध में द्विवेदी जी ने लिखा है कि उन्हें बिहारी के वंशजों से पता चला है कि बिहारी की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्रादि फुटेरा लौट आये थे,

---

१. सुकवि सरोज, प्रथम भाग, ६१।
२. वही , वही , ६१।
३. वही , वही , ६१-६२।
४. वही , वही , ६२-६३।

परन्तु बिहारी के पश्चात् उनके वंशजों पर एक प्रकार का श्राप सा पड़ा और उनका वैसा वैभव न रहा। तभी से उनके वंशज भोले-भाले ग्रामवासी बनकर अपनी साधारण एक गाँव की जमींदारी पर ही शान्तिपूर्वक अपना जीवन-निर्वाह करते चले आ रहे हैं और उन्हें इस सांसारिक उथल-पुथल का कुछ भी पता नहीं है[1]।

इस प्रकार द्विवेदी जी ने विपक्षियों द्वारा उठाई गई आपत्तियों का निराकरण करते हुए अपने मत का समर्थन किया है।

स्व० जगन्नाथदास रत्नाकरजी ने केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावनाओं पर संवत् १९८४ और संवत् १९८७ वि० की नागरी-प्रचारिणी पत्रिकाओं में लिखे दो लेखों द्वारा यथेष्ट प्रकाश डालने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने मत की पुष्टि में कई बातों का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं कि बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार, कृष्णलाल कवि ने, जिनका बिहारी का पुत्र होना भी अनुमान किया जाता है, अपनी टीका में, जो रत्नाकरजी के अनुमान से संवत् १७१९ वि० में समाप्त हुई, 'प्रगट भए द्विजराज-कुल' इत्यादि दोहे की टीका में लिखा है 'केसो जो मेरो पिता और केसोराय जो श्रीकृष्ण जू' जिससे बिहारी के पिता का नाम 'केशव' होना विदित होता है। रत्नाकरजी यह भी लिखते हैं कि इन बातों का समर्थन उक्त दोहे की 'अनवरचन्द्रिका' नामक टीका के इस वाक्य से भी होता है कि 'केशव, केशवराय बिहारी के बाप को नाम है।' 'रसचन्द्रिका', 'हरिप्रकाश' तथा 'लालचन्द्रिका' टीकाओं से भी बिहारी के पिता का नाम केशव होना सिद्ध होता है। रत्नाकरजी का विचार है कि इन ग्रन्थों तथा बिहारी के उक्त दोहे से यह भी सिद्ध है कि केशव ब्राह्मण थे और स्वेच्छा से आकर ब्रज में बसे थे[2]।

इस विषय में डा० दीक्षित का कथन है कि उक्त टीकाओं से प्रसिद्ध केशवदासजी का ही बिहारी का पिता होना सिद्ध नहीं होता वरन् 'अनवरचन्द्रिका के वाक्य से तो रत्नाकरजी के मत के प्रतिकूल बिहारी के पिता का नाम 'केशव केशवराय' होना प्रकट होता है[3]। इसके उत्तर में हमारा निवेदन है कि 'केशव केशवराइ' भी प्रसिद्ध कवि केशवदास से कोई भिन्न व्यक्ति नहीं जान पड़ते, विशेषतः जब कि उनका समय भी वही निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केशवदास का है।

रत्नाकरजी ने बिहारी के कुछ दोहों और केशव के छन्दों का मिलान करके उनके भाव एवं शब्द-साम्य के आधार पर प्रसिद्ध कवि केशवदासजी से बिहारी का कोई न कोई सम्बन्ध होना और बिहारी द्वारा केशव के कविप्रियादि ग्रन्थों का पढ़ना लिखा है[4]। इस सम्बन्ध में रत्नाकरजी ने जो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं उनमें से कुछ पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

---

१. सुकवि सरोज, प्र० भा०, पृ० ६३।
२. ना० प्र० प०, भाग ८, संवत् १९८४, पृ० ८८।
३. आचार्य केशवदास, पृ० ३८।
४. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० १०८।

१. उर मानिक की उरबसी डटत घटतु दृग दागु।
छलकतु बाहिर भरि मनौ तियहिय को अनुरागु ॥[१]
सोहत है उर में मणि यों जनु।
जानकि की अनुरागि रह्यो मनु ॥
सोहत जनरत राम उर देखतु तिनको भाग।
आय गयो ऊपर मनो अन्तर को अनुराग ॥[२]

२. वे ठाढ़े. उमदाहु उत, जल न बुझै बड़वागि।
जाही सों लाग्यों हियो, ताही कें हिय लागि ॥[३]
मेरो मुँह चूमै तेरी पूरी साध चूमबे की,
चाटे ओस आँसू क्यों री रात प्यास ठाढ़े हैं।
छोटे छोटे कर कहाँ छुवत छबीली छाती,
छुवाबो जाके छुवायबे के अभिलाष बाढ़े हैं।
खेलन जो आई हो तो खेलो जैसो खेलियत,
केशवदास की सों तै ये खेल कौन काढ़े हैं।
फूलि फूलि भेटति है मोहि कहा मेरी भट्ट,
भेटें किन जाय जे वे भेटबे को ठाढ़े हैं।[४]

ऊपर दिये हुए छन्दों के सादृश्य के विषय में रत्नाकर जी लिखते हैं कि इस सादृश्य से यह तो निश्चित ही प्रतीत होता है कि बिहारी ने केशव के ग्रन्थों को पढ़ा था। दूसरा प्रश्न यह है कि उन्होंने इन ग्रन्थों को बुन्देलखण्ड में ही पढ़ा या कहीं अन्यत्र। 'रामचन्द्रिका' तथा 'कविप्रिया' की समाप्ति संवत् १६५८ तक हुई थी। यदि बिहारी का २०-२५ वर्ष की आयु में इन ग्रन्थों को पढ़ना मान लिया जाय तो उस समय तक उक्त ग्रन्थों को बने १५ या २० वर्ष से अधिक न हुए थे। उस समय न तो छापे का प्रचार था और न यात्रा की सुविधाएँ ही प्राप्त थीं। इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में अनेक प्रकार के उपद्रव भी विद्यमान थे। ऐसी स्थिति में इतने थोड़े समय में लिखते-लिखाते किसी नए ग्रन्थ का ओड़छा से ब्रजमण्डल अथवा मैनपुरी तक पहुँचना और उसके पठन-पाठन का वहाँ प्रचार हो जाना, यदि असम्भव नहीं तो, दुस्तर अवश्य था। इस कारण रत्नाकरजी का अनुमान है कि बिहारी के केशव के इन ग्रन्थों के बुन्देलखण्ड ही में पढ़ने की अधिक सम्भावना प्रतीत होती है, विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जब कि उनका लड़कपन में वहाँ रहना कहा-सुना जाता है[५]।

---

१. बिहारी रत्नाकर, छं० ३३६।
२. रा० चं०, प्र० ६, छं० ५४-५५।
३. बिहारी रत्नाकर, छं० ३८२।
४. क० प्रि०, प्र० ५, छं० १०।
५. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० ११४।

इस अनुमान के विषय में डाक्टर दीक्षित ने लिखा है कि बिहारी के केशव के ग्रन्थों को बुन्देलखण्ड में पढ़ने से केशव तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता। बिहारी का बुन्देलखण्ड में बचपन बीतना प्रसिद्ध है। सम्भव है, किसी समय बाद में वे बुन्देलखण्ड आये हों जहाँ उन्होंने इन ग्रन्थों को पढ़ा हो[1]। बिहारी के केशव के ग्रन्थों को बुन्देलखण्ड में पढ़ने से केशव तथा बिहारी का पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित नहीं होता, यह ठीक है किन्तु किसी निश्चित प्रमाण के अभाव में बिहारी का किसी समय बाद में बुन्देलखण्ड में आना कल्पना-मात्र है।

बिहारी के एक दोहे में 'पातुरराइ' शब्द[2] के आने से रत्नाकरजी का कहना है कि इस दोहे से बिहारी का बचपन में 'प्रवीणराय' पातुरी का नृत्य देखना सिद्ध होता है। प्रवीणराय पातुरी का नृत्य देखना इसके लिए बिना महाराज इन्द्रजीतसिंह की सभा में गए असम्भव था। उन दिनों राजाओं की सभा में प्रवेश पाना बिना किसी विशेष सहायता के दुष्कर था। अतः रत्नाकरजी का अनुमान है कि बिहारी के पिता की पहुँच प्रसिद्ध केशवदास तक थी, जिनके साथ बिहारी बचपन में महाराज इन्द्रजीतसिंह की सभा में आते-जाते थे[3]।

रत्नाकर के इस अनुमान का कोई सबल आधार नहीं जान पड़ता है। 'पातुरराइ' शब्द 'प्रवीणराय' के लिए ही आया है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध पर विचार करते हुए रत्नाकरजी ने एक 'बिहारी बिहार' नामक दोहाबद्ध निबन्ध का भी उल्लेख किया है, जिसमें बिहारी का जीवन-वृत्त दिया हुआ है (ना० प्र० प०, भाग ८, पृ० ९०-९२)। यह निबन्ध इस ढंग से लिखा गया है मानों बिहारी ने स्वयं रचना की हो, किन्तु उसकी भाषा अप्रौढ़ तथा छन्द ऐसे अनगढ़ हैं जिससे इसका बिहारी द्वारा रचित होना सम्भव नहीं है। दूसरे, कुछ बातें संदिग्ध हैं। इस निबन्ध में बिहारी का जन्म संवत् १६५२ वि० अथवा संवत् १६५४ वि० की कार्तिक शुक्ला अष्टमी बुधवार का बतलाया गया है[4] तथा संसार-त्याग संवत् १७२१ वि० चैत्र शुक्ला सप्तमी सोमवार का[5]। परन्तु गणना से विदित होता है कि संवत् १६५२ वि० कार्तिक की शुक्ला

---

१. आचार्य केशवदास, पृ० ४०।

२. सब अंग करि राखो सुघर नाइक नेह सिखाइ।
रसजुत लेति अनन्त गति पुतरी पातुर-राइ॥
बिहारी रत्नाकर, छं० १८७।

३. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० ११४।

४. संवत जुग शर रस सहित भूमि रीति गिन लीन्ह।
कातिक सुदि बुधि अष्टमी जन्म हमहि विधि दीन्ह॥१०॥
ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० ९०।

५. संवत छिति अंबक जलधि शशि मधुमास बखान।
शुक्लपक्ष की सप्तमी सोमवार सुभ जान॥४८॥
ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० ९२।

अष्टमी, गुरुवार तथा संवत् १६५८ वि० में शनिवार की थी और संवत् १७२१ वि० की चैत्र शुक्ला सप्तमी बुधवार को थी। इसके अतिरिक्त चारपक्ष में सतसई का निर्माण, ११ वर्ष की आयु में बिहारी का वृन्दावन में रहना आदि घटनाएँ यदि असम्भव नहीं तो, दुर्घट अवश्य हैं। रत्नाकरजी का विचार है कि इन सन्दिग्ध बातों के होते हुए भी अधिकांश बातें सच्ची जान पड़ती हैं, जैसे कुल, जाति, पिता-पुत्र इत्यादि का कथन, वृन्दावन जाना, हरिदासी सम्प्रदाय का अनुयायी होना, अन्तिम अवस्था में विरक्त होकर वृन्दावन में रहना तथा जन्म-मृत्यु संवत्[1]।

इस निबन्ध के अनुसार माथुर चौबे प्रायः श्री स्वामी हरिदास के सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं, अतः रत्नाकरजी के अनुसार बिहारी के पिता का भी उक्त सम्प्रदाय का सेवक होना संगत है। उनका विचार है कि उक्त प्रबन्ध में ११ वर्ष की आयु में बिहारी का अपने पिता के साथ वृन्दावन, नागरीदासजी के पास जाना लिखने में लेखक का कुछ प्रमाद प्रतीत होता है। अतः यदि वृन्दावन और नागरीदास, क्रमशः गुढ़ौ ग्राम और नरहरिदास के स्थान पर भूल से कहे माने जाय, तो बिहारी के सम्बन्ध में यह बात कही जा सकती है कि वे अपने पिता के साथ ११-१२ वर्ष की आयु में अर्थात् संवत् १६६२, १६६३ वि० में श्री नरहरिदासजी के पास गये थे, जो उस समय निधिवन के महन्त श्री सरसदेवजी के शिष्य हो चुके थे। नरहरिदासजी ने बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर उनके पिता से उन्हें वहीं रखने के लिए कहा। उनके पास बहुत से पण्डित, कवि, महात्मा रहते तथा आया-जाया करते थे। बिहारी वहीं रहकर विद्याध्ययन करने लगे। श्री नरहरिदासजी बचपन से महात्मा सिद्ध हो चुके थे, अतः जान पड़ता है कि ओड़छा के राजा इन्द्रजीत तथा केशवदास भी उनके पास आते-जाते थे। नरहरिदासजी के पिता से ओड़छे के राजा का व्यवहार होना 'निजमत सिद्धान्त' नामक ग्रन्थ से ज्ञात भी होता है। इस कारण रत्नाकरजी का अनुमान है कि नरहरिदासजी ने केशवदासजी से बिहारी को पढ़ाने का अनुरोध करके उनके साथ कर दिया और फिर बिहारी और उनके पिता उनके साथ रहने लगे। बिहारी की बुद्धि से प्रसन्न होकर केशवदासजी उन्हें अपना पुत्रवत् मानने तथा शिक्षा देने लगे[2]।

रत्नाकर के उक्त कथन का आधार यह अनुमान है कि सम्भव है वृन्दावन और नागरीदास, क्रमशः गुढ़ौ ग्राम और नरहरिदास के स्थान पर भूल से लिखे गये हों, किन्तु यह अनुमान निराधार ही जान पड़ता है।

रत्नाकरजी अपने लेख में एक स्थान पर लिखते हैं कि बिहारीदास के पितामह का नाम वसुदेव तथा प्रसिद्ध केशवदास के पिता का नाम काशीराम होना, एवं बिहारीदास का चौबे तथा उक्त केशवदास का सनाढ्य होना, इन दो वैषम्यों के अतिरिक्त अन्य कोई बात ऐसी नहीं दिखाई देती जो बिहारी के प्रसिद्ध केशवदास के पुत्र मानने में बाधा डालती हो, प्रत्युत और जितनी भी बातें हैं वे उक्त अनुमान

---

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० ९३, ९४।
२. वही　, वही　, वही　, पृ० ११४।

के अनुकूल ही हैं, जैसे केशवदास तथा बिहारी के समय तथा नाम, बिहारी का बचपन में बुन्देलखण्ड में रहना, केशवदास के ग्रन्थों से भली भाँति परिचित होना, प्रवीणराय पातुरी का नृत्य देखना, केशव के वंशजों के समान ही पंडित तथा उच्च कोटि की काव्य-प्रतिभा से सम्पन्न होना इत्यादि[1]।

जाति के वैषम्य को रत्नाकरजी यह कहकर दूर करते हैं कि एक प्रकार के चौबे सनाढ्य चौबे भी कहलाते हैं[2]। इस विषय में डा० दीक्षितजी का कथन है कि इससे केशव तथा बिहारी का जाति-वैषम्य दूर नहीं होता। केशव, मिश्र आस्पद सनाढ्य ब्राह्मण थे और यदि बिहारी सनाढ्य भी थे तो मिश्र आस्पद न होकर चौबे प्रसिद्ध हैं। अतः पिता-पुत्र का भिन्न आस्पद नहीं हो सकता[3]। डा० दीक्षित के उत्तर में हमारा नम्र निवेदन है कि बिहारी मिश्र नहीं 'चौबे' थे इसका ही क्या प्रमाण है ? बिहारी ने कब और कहाँ अपना मथुरा का चौबे होना कहा है ? दूसरे, मथुरा के चौबों में मिश्र भी तो होते हैं। इस प्रकार पिता-पुत्र के भिन्न आस्पद होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

केशव ने अपने पिता का नाम काशीनाथ बतलाया है परन्तु उक्त दोहा-बद्ध निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव दिया गया है[4]। इस वैषम्य के सम्बन्ध में रत्नाकरजी का विचार है कि 'बिहारी-बिहार' नामक निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव दिया होना कुछ ऐसा प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है कि उनके आगे सब बातें नगण्य समझी जायें। रत्नाकरजी का कहना है कि उक्त निबन्ध बिहारी-विषयक अनेक वृत्तान्त जानने वाले का लिखा अवश्य जान पड़ता है किन्तु उसमें बहुत सी बातें लिखने वाले की गढ़ी हुई भी निस्सन्देह हैं। ऐसी अवस्था में, उक्त निबन्ध में बिहारी के पितामह का नाम वसुदेव देखकर, यह निश्चित नहीं किया जा सकता कि बिहारी के पिता सुप्रसिद्ध केशवदास से भिन्न ही थे, क्योंकि केशव ने अपने पिता का नाम स्वयं काशीराम लिखा है। रत्नाकर जी का अनुमान है कि जिस दशा में केशवदासजी ब्रज में आ बसे, उस दशा में वे सम्भवतः अपनी पूर्वख्याति को छिपा कर रहे होंगे। उस हीन दशा में उन्होंने अपने को सर्वसाधारण में ओड़छे वाले महान् कवि जताना उचित न समझा होगा। दूसरे, उनको वीरसिंहदेव की आज्ञा गंगा-तट पर वास करने की थी और वे रुक ब्रज में गए थे। अतः उनके हृदय में उस बात का खटका भी रहा होगा कि कहीं उनका गंगा-तट न जाना सुनकर, वीरसिंहदेव उनके लड़के को प्रदान की हुई वृत्ति बन्द न कर दें। ऐसी स्थिति में बहुत सम्भव है कि उन्होंने अपने को छिपाने के निमित्त अपने पिता का नाम प्रकाशित न किया हो और किसी महाशय के आग्रह

---

१. ना०प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० १२४।
२. वही, वही, वही, वही।
३. आचार्य केशवदास, पृ ४२।
४. मम पितुमह वसुदेव जू पिता जु केशव देव ॥५॥
ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० ९० ।

पर, कदाचित् इस साम्य से कि केशव-भगवान के पिता का नाम वसुदेव था, वसुदेव ही बतला दिया हो[१]।

रत्नाकरजी लिखते हैं कि केशवदास जी की यही आत्मगोपन की सम्भावना उन लोगों के उत्तर में भी कही जा सकती है, जिनका यह कहना है कि यदि बिहारी सुप्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र होते तो यह बात परम्परा से विख्यात होती, और बिहारी अथवा कुलपति मिश्र ने कहीं न कहीं इसका स्पष्ट उल्लेख किया होता। रत्नाकर जी का विचार है कि यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो संकेत से बिहारी और कुलपति मिश्र दोनों ही कवियों ने क्रमशः अपने पिता एवं पितामह का प्रसिद्ध कवि केशवदास होना कह दिया है। बिहारी का अपने पिता का नाम संकीर्तन-मात्र कर देना, उनके पिता का कोई परम प्रसिद्ध कवि होना व्यंजित करता है और कुलपति मिश्र का उनको कविवर कहना तो स्पष्ट ही उनका ओड़छे वाले प्रसिद्ध कवि होना प्रकट करता है, क्योंकि जहाँ तक विदित हुआ है उस समय केशव-नामधारी और कोई कवि विख्यात नहीं था[२]।

जहाँ तक रत्नाकरजी की उक्त आत्म-गोपन की संभावना का सम्बन्ध है, डा० दीक्षित ने लिखा है कि यह उनकी कल्पना-मात्र है। उनके विचार से वस्तुतः वीरसिंहदेव ने केशव को गंगा-तट वास की आज्ञा न दी थी, जैसा कि रत्नाकरजी ने लिखा है, प्रत्युत कुछ कारणों से केशव के हृदय में संसार से वैराग्य उत्पन्न हो गया था और वे अपनी इच्छा से ही गंगा-तट वास चाहते थे। वीरसिंहदेव के प्रति आदर प्रदर्शित करने के लिए ही केशव ने उनसे आज्ञा माँगी थी जो उन्हें सहर्ष प्रदान की गई थी। अतएव यदि किसी कारणवश वह गंगा-तट न जाकर ब्रज में ही रुक गए तो वीरसिंहदेव द्वारा उनके पुत्रों को दी गई वत्ति के बन्द किए जाने की आशंका निर्मूल है[३]।

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध का समर्थन करने वाली कुछ और बातें भी रत्नाकरजी ने बतलाई हैं। संवत् १६६२ वि० में, अकबर की मृत्यु के उपरान्त, जहाँगीर ने वीरसिंह देव को सम्पूर्ण बुंदेलखण्ड का राज्य दे दिया और रामशाह के विरुद्ध, जो उस समय ओड़छा के राजा थे, वीरसिंह की सहायता के लिए कुछ अपने सरदार एवं सेना भेजी। प्रेमा नामक एक व्यक्ति की कुटिलता एवं रामशाह की कल्याणदे रानी की हठ के कारण केशव के सन्धि कराने में सफल न होने पर युद्ध ठना जिसमें विजय वीरसिंह के हाथ लगी। इनके साथ ही रामशाह का पराजित होकर बादशाह (अकबर) से मिलने के लिये दिल्ली को प्रयाण करना, इन्द्रजीतसिंह का युद्ध में घायल होना आदि घटनाएँ 'वीरसिंहदेव-चरित' से ज्ञात होती हैं। यह ग्रन्थ संवत् १६६३ वि० के आरम्भ में समाप्त हुआ था। विजय के बाद का कुछ वृत्तान्त इस ग्रन्थ में नहीं दिया है। अतः यह विदित नहीं होता कि फिर

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १९८४, पृ० १२४।
२. वही, वही, वही, पृ० १२४-१२५।
३. आचार्य केशवदास, पृ० ४३।

रामशाह और इन्द्रजीत की क्या व्यवस्था हुई और केशव पर क्या बीती। केशव के विषय में रत्नाकरजी का अनुमान है कि युद्ध के पश्चात् केशवदास यद्यपि रहे तो ओड़छे ही में, परन्तु उन पर राजा और उनके कर्मचारियों की दृष्टि क्रूर पड़ने लगी। उनकी वृत्ति आदि छिन गई और वे सामान्य प्रजा के समान कुछ दिनों तक अपना जीवन व्यतीत करते रहे। केशवदास, पंडित, व्यवहार-कुशल तथा सभा-चतुर थे और उधर बीरसिंहदेव भी परम ब्रह्मण्य, गुण-ग्राहक तथा उदार-चरित थे, अतएव शनैः-शनैः कुछ मेल-मिलाप हो गया। यद्यपि केशवदासजी की पहली-सी प्रतिष्ठा तो न हुई, पर वे राज-सभा में आने-जाने लगे। संवत् १६६७ वि० में उन्होंने अपना ग्रन्थ 'विज्ञानगीता', जो कदाचित् वे पहले ही से रच रहे थे, समाप्त करके बीरसिंहदेव को समर्पित किया। उक्त ग्रन्थ के अन्त के तीन दोहों से विदित है कि केशवदासजी को जो गाँव इत्यादि मिले थे, वे छिन गए थे, और उनकी प्रार्थना पर फिर उनकी सन्तान को पूर्व-पदवी-सहित दिये गए। यह भी निश्चित होता है कि उनकी एक से अधिक सन्तान थी क्योंकि दूसरे दोहे में 'बालकनि' पद बहुवचन है। इस आधार पर रत्नाकर जी का विचार है कि बिहारी के जो एक भाई और एक बहिन बताए जाते हैं, यह बात भी केशवदास के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है। केशवदास जी ने ओड़छा तो संवत् १६६७ के कुछ दिनों बाद अवश्य छोड़ दिया, पर ज्ञात होता है कि यदि वे वस्तुतः बिहारी के पिता थे तो वे अपने ज्येष्ठ पुत्र को तो ओड़छे की वृत्ति पर छोड़ गए और अपने कनिष्ठ पुत्र तथा कन्या को, जो सब सन्तानों में छोटी थी, साथ लेकर गंगा-तट पर वास करने के निमित्त चले गए। रत्नाकरजी का अनुमान है कि सोरों घाट को उन्होंने अपने निवास के लिए सोचा था, किन्तु पथ में ब्रज पड़ने के कारण वहीं ठहर गए। चित्त में उपराम तो था ही, बस फिर महात्मा नरहरिदास जी के गुरू महात्मा सरसदास से परिचित होने के कारण, उनके पास अधिक आने-जाने लगे और कदाचित् उनके शिष्य नागरीदास जी के स्थान ही में ठहर गए हों तो कुछ आश्चर्य नहीं[1]।

'बालकनि' शब्द के आधार पर रत्नाकरजी का यह कहना कि बिहारी के एक भाई तथा एक बहिन बताये जाते हैं, यह बात केशव के उनके पिता होने के विरुद्ध नहीं है, समीचीन नहीं जंचती क्योंकि इस शब्द से केवल इतना ही पता चलता है कि केशव के एक से अधिक सन्तान थी, किन्तु यह नहीं ज्ञात होता है कि उनके दो ही पुत्र थे अथवा दो से अधिक। इसके अतिरिक्त, इस शब्द से केशव का आशय कन्या से भी है इस विषय में भी कुछ नहीं कहा जा सकता। अनुमान यही होता है कि केशव का आशय कन्या के लिए नहीं हो सकता क्योंकि कन्या को वृत्ति देने का प्रश्न उपस्थित नहीं हो सकता। इस प्रकार ओड़छा छोड़ने के पश्चात् केशव का अपने कनिष्ठ पुत्र तथा कन्या के साथ ब्रज में जाना आदि बातें रत्नाकरजी की कल्पना-मात्र जान पड़ती हैं। गंगा-तट के लिए सोरों घाट की कल्पना करने का भी कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता।

---

१. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८४, पृ० १२७-१२८।

कुलपति मिश्र ने जो यह दोहा संग्रामसार[१] में लिखा है—

कविवर मातामह सुमिरि, केसो केसोराइ ।
कहौं कथा भारत्थ की, भाषा छन्द बनाइ ॥

उससे उनके मातामह तथा बिहारी के पिता का कोई प्रसिद्ध 'कविवर' होना सिद्ध होता है। रत्नाकरजी का कथन है कि जहाँ तक विदित है, उस समय ओड़छा वाले केशवदासजी को छोड़कर अन्य कोई ऐसा केशव नामक प्रसिद्ध कवि नहीं था, जो कुलपतिजी का मातामह होता और जिसकी वन्दना कुलपतिजी ऐसा पण्डित एवं कवि ऐसी श्रद्धा से करता। अतः कुलपतिजी के दोहे में भी केशव से प्रसिद्ध कवि केशवदासजी ही का लक्ष्य करना अधिक संगत प्रतीत होता है[२]।

रत्नाकरजी का यह तर्क विचारणीय है।

देवकीनन्दन वाली टीका में यह दिया हुआ है कि बिहारी की पत्नी बड़ी कवि थी और सतसई की रचना उसी ने की थी[३]। रत्नाकरजी ने लिखा है कि इससे इतनी बात तो अवश्य प्रमाणित होती है कि वह काव्य करती थी। 'मिश्रबन्धु विनोद' में 'केशव-पुत्र-वधू' नाम से एक स्त्री-कवि का उल्लेख है और उसकी कविता का 'संग्रहसार' ग्रन्थ में उपलब्ध होना बतलाया गया है। रत्नाकरजी का कथन है कि क्या आश्चर्य है जो वह विदुषी बिहारी की ही पत्नी रही हो। यदि यह बात प्रमाणित हो सके तो यह भी बिहारी के प्रसिद्ध केशवदास के पुत्र होने का पोषण करती है[४]।

गौरीशंकर द्विवेदी ने अपने 'बुन्देल-वैभव' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि 'केशव-पुत्र-वधू' के पति अच्छे वैद्य थे, जिन्होंने 'वैद्यमनोत्सव' ग्रन्थ रचा था[५]। केशव के पूर्वजों में छठी पीढ़ी में कोई भाऊराम हुए हैं, जिन्होंने 'भावप्रकाश' नामक एक प्रसिद्ध वैद्यक ग्रन्थ बनाया था। इस कारण पैतृक-रूप में केशव के वंश में वैद्यक का साधारण ज्ञान चला आना और कालान्तर में अपने वंश के पैतृक व्यवसाय का पुनरुत्थान करना कोई असम्भव बात नहीं है।

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के तीसरे पोषक हैं श्री चन्द्रबली पाण्डे। अपने मत की पुष्टि में पाण्डेजी ने कई बातें लिखी हैं। आपने लिखा है कि श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने जिस मोटी बात का कि बिहारी माथुर चौबे थे और केशवदास थे मिश्र, उल्लेख किया है वह वस्तुतः मोटी ही है। उसके मूल में परम्परा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उनका कहना है कि बिहारी मिश्र नहीं चौबे थे

---

१. यह ग्रन्थ लेखक को प्रयत्न करने पर भी उपलब्ध न हो सका।
२. ना० प्र० प०, भाग ८, संवत् १९८४, पृ० १२६।
३. विप्र बिहारी सुद्ध भो ब्रजवासी सुकुलीन।
ता तिय की कविता निपुन सतसैया तिहि कीन ॥
ना० प्र० प०, भाग ८, संवत् १९८४, पृ० ९८।
४. ना० प्र० पत्रिका, भाग ८, संवत् १९८४, पृ० १२६।
५. बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, तृतीय खण्ड, पृ० २५२।

इसका किसी के पास प्रमाण क्या ? बिहारी ने कब और कहाँ अपने को 'मथुरा का चौबे' कहा है ? फिर मथुरा के चौबों में मिश्र भी तो होते हैं। रही 'जन्म-भूमि' और 'ससुराल' की बात, तो उसके साथ बुन्देलखण्ड (ओड़छा) है ही, फिर इतना प्रमाद क्यों ?[1]

श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी ने जो यह लिखा है कि इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केशव कभी भी ग्वालियर में रहे हों, इस विषय में पाण्डेजी लिखते हैं कि केशव के पूर्वजों को पहले ग्वालियर में सम्मान मिला और फिर ओड़छे में। 'गोपाचलगढ़ दुर्गपति तिनके पूजे पायं' तथा 'तोमरपति तजि और सों मूल न ओड्यौ हाथ' में यही तो दिखाया गया है। केशव की दृष्टि में गोपाचलगढ़-सा कोई गढ़ नहीं है। इसको ध्यान में रखते हुए, गोपाचल (ग्वालियर) से केशव का कितना लगाव था, यह तो स्पष्ट नहीं हो सकता, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वह इतना अवश्य था कि वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न हो सकता था। उनका अनुमान है कि क्या यह सम्भव नहीं कि यहाँ बिहारी के पिता की ससुराल रही हो और अपनी ननिहाल में ही बिहारी का जन्म हुआ हो ?[2]

बिहारी का जन्म ग्वालियर में हुआ, सो तो ठीक, पर बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में ही बीता अर्थात् पालन बुन्देलखण्ड में ही हुआ, सो क्यों ? इस सम्बन्ध में पाण्डेजी ने लिखा है कि निश्चय ही बुन्देलखण्ड में बिहारी का कोई रहा होगा। तो क्या उसे केशवदास नहीं कहा जा सकता ? इस प्रसंग में वे इतना और भी कहते हैं—

श्री नरहरि नरनाह कौं दीनो बाँह गहाइ ।
सुगुन-आगरें आगरे, रहत आइ सुखु पाइ ॥

जिसके आधार पर उन्होंने बिहारी का सम्बन्ध आगरे से भी स्थापित किया है। इसका कारण उन्होंने यह बतलाया है कि किसी 'नरहरि'[3] ने किसी 'नरनाह'[4] को उन्हें सौंप दिया था। पाण्डेजी के विचार से श्री नरहरि हैं 'नरसिंह' अथवा 'वीरसिंहदेव', जिसे मुग़ल-इतिहास-लेखक सदा 'नरसिंह' ही लिखते हैं। अपने इस मत की पुष्टि में वे स्वयं वीरसिंह के ही प्रति स्वयं केशव के कथन को उद्धृत करते हैं—

तुम नरहरि नृप कौनें नाहु। कहौ कौन पर मेटे जाहु ॥[5]

---

१. केशवदास, पृ० ६।

२. केशवदास, पृ० ७।

३. रत्नाकरजी के अनुसार 'श्री नरहरि' का संकेत है महात्मा श्री नरहरिदास, जो महात्मा हरिदास की शिष्य-परम्परा में थे और वस्तुतः बुन्देलखण्ड के रहने वाले थे। केशवदास, पृ० ८।

४. रत्नाकरजी के मत में नरनाह का अर्थ 'शाहजहाँ' है।

५. वी० दे० च०, पृ० ७२।

एक स्थान पर तो पाण्डेजी ने 'नरसिंह' का प्रयोग स्पष्ट ही 'वीरसिंह' के साथ हुआ दिखाया है। देखिए—

राजा वीरसिंह नरसिंह जीति राजसिंह
दीरघ दुसह दुख दारुन बिदारियै ॥

(वी० दे० च०, पृ० १९३) केशवदास, पृ० २०।

और नरनाथ से उनका संकेत है जहाँगीर, जो वस्तुतः उस समय का शासक था। उनका कहना है कि यह परिचय खानखाना अब्दुर्रहीम को दिया जा रहा है, जो केशवदास के मित्र और मुग़ल दरबार के अंग थे और राजकुमार वीरसिंहदेव से भली भाँति परिचित भी। जहाँ तक श्रीनरहरि का सम्बन्ध है, पाण्डेजी ने लिखा है कि यह कहा नहीं जा सकता कि खानखाना कहाँ तक उनसे अभिज्ञ थे, जो विहारी ने इस प्रकार उनका नाम लिया[1]।

केशव का ब्रज से सम्पर्क कैसे हुआ, इसका अनुमान पाण्डे जी के अनुसार दो रूपों में किया जा सकता है। एक तो यह कि वे विपदा में घिर जाने और भूतल के इन्द्र-इन्द्रजीत के उखड़ जाने पर मथुरा में जा रहे। कारण कदाचित् यह था कि वहीं उनके पुत्र की ससुराल थी। और दूसरा यह कि स्यात् वीरसिंह देव ने जब प्रसिद्ध केशवराय के मन्दिर का निर्माण किया तब इन्हीं केशवदास को उसकी देख-रेख का भार सौंपा। इस प्रकार उनको दण्ड भी नहीं मिला और उनका देश-निकाला भी हो गया[2]।

विहारी के 'प्रगट भए द्विजराज कुल' आदि दोहे में टीकाकारों एवं विद्वानों ने जो विहारी के पिता 'केशव' अथवा 'केशवराइ' का दर्शन किया है और कुछ ने जो उन्हें प्रसिद्ध केशवदास माना भी है, इस विषय में चर्चा करते हुए पाण्डेजी ने निम्नलिखित छन्द जिनका उल्लेख पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने भी किया है[3], उद्धृत किए हैं जिनमें 'केसौ केसौराइ' की स्वतन्त्र छाप है—

लागी चटपटी अटपटी सब बातें कहै,
लटपटी भई जाति प्राण गये पिय में।
'केसौ केसौराइ' कहूँ बारक विलोकि आयो,
तब ही तें देखिये न दियो रह्यो हिय में॥
आन कहै आन करै, आन हाथ-पाइ भई,
अभंग के अनथ न सुधि रही तिय में।
सीरो जानि तातौं करै, तातो जानि सीरो करै,
दूध न जमायो जाइ नेहु जाम्यौ जिय में॥
लोक-लोहु रहे नाहिं, लाज न लहर लागै,
कुल उर-बाइगी, बिलोकै ही नसतु है।
अपजस-नींब आलो ! नेकु करुवाइ नाहिं,
बाकी परवाह प्रान, लैबे को हंसतु है॥
'केसौ केसौराइ' पेंड पेंड पर भेंट होति,
बचियो कहाँ तें, ब्रज-बीथिन बसतु है।

१. केशवदास, पृ० ७-६।
२. केशवदास, पृ० १५।
३. बिहारी की वाग्विभूति, उपक्रम, पृ० ५-६।

मनि-मोरचन्द्रिका, बजायो विसु बांसुरी सो,
फारो ढ़ोटा काहू को है, कारे लौं डसतु है ।।

को बरजं गयी नेहरू सासुरी भौन के भीतर मेलि मढ़ी ही।
कानन जान दई जननी, लरिकापन तें जो लौं बैस बढ़ी ही ।।
देखतें 'केसव केसवराइ' तो है, निपुनं बंऊ कोक पढ़ी ही ।
छूटी उतं अचरा कितहूं, इहि बानक आजु ऐवान चढ़ी ही ।।
लेहुगी काहू के प्रान न लैहु हो, ऐसे बिना कहां नाव कढ़ंगो ।
नोखी भई तुम ही नयी नारि, कहा तुम सी विधि फेरि गढ़ंगो ।।
'केसव केसवराइ' बुरी धुनि लोग तिहारोई नांव रढ़ंगो।
बैठी रहो घरघालनहारि, अटान चढ़ो कोऊ मूढ़ चढ़ंगो ।।

उनका कहना है कि छन्दों की छाप यदि केवल केशव ही रहे तो भी अर्थ में कोई विशेष बाधा नहीं पड़ती । केशव ने अन्यत्र भी 'केशव केशवराइ' का एक साथ प्रयोग किया है । उनका दिया हुआ एक छन्द यहाँ उद्धृत है—

सुन्दर सेत सरोरुह में करहाटक हाटक की दुति कोहै ।
तापर भौंर भलो मनरोचन लोकविलोचन की रुचि रोहै ।।
देखि दई उपमा जलदेविन दीरघ देवन के मन मोहै ।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ।।[1]

पाण्डेजी के विचार से केशवदास ने केशव, केशवदास और केशवराय की छाप से कविता की है किन्तु इनमें 'केशवराय' पर जैसा उनका ध्यान रहा है वैसा 'केशव' तथा 'केशवदास' पर नहीं । उनका कहना है कि एक नहीं अनेक स्थलों पर इस छाप से विशेष काम लिया गया है । 'केसोराइ की सौं' तो उनके लए सामान्य बात ही हो गई है । इसके अतिरिक्त भी केशवराय का प्रयोग बहुत से स्थलों पर इस दृष्टि से हुआ है कि उसका अर्थ कवि और कृष्ण दोनों का द्योतक हो[2] । इस सम्बन्ध में पाण्डे जी ने दो छन्द प्रस्तुत किए हैं, जिनमें से एक नीचे दिया जाता है—

शीतल हू हीतल तिहारे न बसत वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप-गेहूँ ।
आपने जो हीरा को पराये हाथ ब्रजनाथ ।
दंके तो अकाथ हाथ में न ऐसो मन लेहु ।।
ऐते पर केशौराय तुम्हें ना प्रवाह वाहि,
वहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो देहु ।
मांजो मुख छाजो छिन छलन छबीले लाल,
ऐसी तो गंवारिन सो तुमहूं निबाहो नेहु ।।[3]

---

१. रा० चं०, प्र० १२, छं० ४६ तथा वी० दे० च०, पृ० १५, छं० १७, पृ० १०१ (पाठभेद से) ।
२. केशवदास, पृ० ६-११ ।
३. र० प्रि०, पृ० १२, छं० २६ ।

अतः पाण्डेजी का अनुमान है कि एक बार केशवदास को 'केशव केशवराय' की सूझी तो दो-चार छन्द ऐसे भी बन गए। जहाँ तक 'केशव केशवराय' के समय का सम्बन्ध है, उन्होंने लिखा है कि उक्त कवि का समय भी वही (सं० १६५० वि० के लगभग—बिहारी की वाग्विभूति, उपक्रम पृ० ७-८) निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केशवदास का है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती कि वास्तव में उक्त छन्द भी इन्हीं केशवदास के हैं (केशवदास, पृ० १२)।

पाण्डेजी बिहारी के निम्नलिखित दोहे—

प्रगट भए द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरो कलेस सब, केशव केशवराइ॥

की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखते हैं कि इसका अर्थ यदि 'केशव' और 'केशवराय' पर अलग-अलग घटाया जाय तो कोई बाधा उपस्थित नहीं होती और 'केशव केशवराय' की उलझन भी सामने नहीं आती। साथ ही उन्होंने कुलपति मिश्र के निम्नांकित दोहे—

कविवर मातामह सुमिरि, केसौ केसोराय।
कहौं कथा भारथ्थ की, भाषा छन्द बनाय॥

(युक्तितरंगिणी, छं० २६)

का भी उल्लेख किया है और कहा है कि प्रकृत दोहे में केशव, केशवराय से अलग नहीं हो सकते। इसके अतिरिक्त उन्होंने कुलपति मिश्र के नीचे लिखे एक और दोहे—

जो भाषा जान्यौ चहत, रसमय सरल सुभाय।
कविता केसौराय की, तौ साचौ चितु लाय।

(युक्तितरंगिणी, छं० २६)

को भी उद्धृत किया है और लिखा है कि यहाँ कुलपति मिश्र ने जिस रसमय सरल सुभाय केसौराय का उल्लेख किया है वह कठिन कविता का प्रेत केशवदास ही है, इसको मानने में लोगों को अभी पूरा सन्देह होगा, पर आशा है कि केशवदास के निजी अध्ययन से वह शीघ्र दूर हो जायगा। कुलपति मिश्र के अपने मातामह का नाम 'केसो केसौराइ' लिखने के विषय में पाण्डेजी ने लिखा है कि मिश्र ने यह नाम इसीलिए दिया है, जिससे उस समय के दूसरे केशवराय (पहिराये बड़गूजर सूर, चम्पति केशवराय समूर—वी० दे० च०, पृ० १८८) से बिलगाव हो जाय (केशवदास, पृ० २२)।

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विषय में पाण्डेजी ने एक और बात का निर्देश किया है[1]। कुलपति ने बिहारी के विषय में लिखा है—

---

१. जैहै सबै सुधि भूलि तबै, जब नेकहु दृष्टि दै मोतैं चितैहै।
भूमि में आंक बनावत मेटत पोथी लिये सबरो दिन जैहै॥
दुहाई ककाजू की सांची कहौं, गति पीतम तुमहू कहँ दैहै।
मानो तो मानो अबै अजिया सुत, कैहौं ककाजू सो ताहि पढ़ैहै।
—बुन्देल वैभव, प्रथम भाग, पृ० २५३।

भाँति-भाँति रचना सरस, देवगिरा ज्यों व्यास ।
तो भाषा सब कविन में, विमल बिहारीदास ॥

(युक्तितरंगिणी, छं० ३०)

बिहारीदास की इस विमलता को पाण्डेजी उनके अध्ययन और अध्यवसाय का परिणाम बतलाते हैं। उनके विचार से इसी अध्ययन और इसी अध्यवसाय का उल्लेख केशव की पुत्र-वधू के प्रसिद्ध छन्द में है (केशवदास, पृ० २२)।

इस प्रकार पाण्डेजी ने यथासंभव विपक्षियों के तर्कों का खण्डन करते हुए, अपने मत की पुष्टि सबल प्रमाणों द्वारा करने की चेष्टा की है। पाण्डेजी का यह प्रयास निःसन्देह स्तुत्य है।

केशव और बिहारी के इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विपक्ष में मत रखनेवालों में मिश्रबन्धु अग्रगण्य हैं। बिहारी द्वारा एक दोहे में 'मधुकर' शब्द के (ध्वनि से) ओड़छे के मधुकरशाह को सूचित करते हुए प्रयुक्त किये जाने से स्व० बाबू राधाकृष्णदास जी का जो यह अनुमान है कि बिहारी प्रसिद्ध कवि केशवदास के पुत्र थे, इसके विषय में मिश्रबन्धुओं ने लिखा है कि 'मधुकर' शब्द से मधुकरशाह का व्यक्त होना निश्चित नहीं समझा जा सकता। 'मधुकर' भ्रमर को कहते हैं और यह एक बहुत ही साधारण शब्द है। अतः उनका विचार है कि बिहारी के पिता का नाम 'केशव' अवश्य था और वह ब्राह्मण भी थे किन्तु प्रसिद्ध केशवदास नहीं (हिन्दी नवरत्न, पृ० ३४३)।

'जनम लियो द्विजराज-कुल' आदि दोहे में आए हुए 'केशवराय' शब्द के विषय में मिश्रबन्धु लिखते हैं कि यह शब्द श्रीकृष्ण के लिए आया है, न कि कवि के पिता के लिए (हिन्दी नवरत्न, पृ० ३४४)।

मिश्रबन्धुओं का यह मत भ्रमपूर्ण है। दोहे पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि 'केशव' श्रीकृष्ण के लिए तथा 'केशवराय' बिहारी के पिता के लिए प्रयुक्त है, जैसा कि रत्नाकर आदि टीकाकारों ने माना भी है (बिहारी रत्नाकर, छं० १०१ की टीका, पृ० ४७)।

इस प्रकार मिश्रबन्धुओं ने विपक्षियों के तर्कों का खण्डन ही किया है, अपने मत की पुष्टि में विशेष प्रमाण नहीं दिए हैं।

स्व० डा० श्यामसुन्दरदास जी ने इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विपक्ष में तीन बातों का उल्लेख किया है। पहली यह कि यदि बिहारी प्रसिद्ध 'केशवदास' के पुत्र होते तो यह बात परम्परा से प्रसिद्ध होती, परन्तु ऐसा नहीं है। दूसरे, किसी टीकाकार की टीका के आधार पर इस प्रकार के निश्चय पर पहुँचना समीचीन नहीं है, क्योंकि एक ही पंक्ति का भिन्न-भिन्न टीकाकार अलग-अलग अर्थ समझते हैं। तीसरे यह कि केशव के वंशज हरिसेवक द्वारा रचित 'कामरूप की कथा' खोज में मिली है जिसमें बिहारी का कोई उल्लेख नहीं है[1]। 'कामरूप की कथा' में हरिसेवक ने अपने

---

१. ना० प्र० सभा खोज-रिपोर्ट, सन् १६०५, भूमिका।

वंश का परिचय यों दिया है[1]।

स्व० बाबू जी के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इतिहास की ओर अरुचि होने के कारण यह बात कुछ असम्भव नहीं कि केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध की लोक में प्रसिद्धि न हो सकी हो। दूसरे, यह भी सम्भव है कि आत्मश्लाघा से चिढ़ होने के कारण, बिहारी के हृदय ने यह स्वीकार न किया हो कि अपने पूर्वजों के बल पर मैं गौरव प्राप्त करूँ। बाबू जी का तीसरा तर्क विशेष प्रबल नहीं है। ऊपर दिए हुए परिचय में यदि बिहारी का उल्लेख नहीं हुआ है, तो उससे यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि केशव बिहारी के पुत्र न थे। हरिसेवक ने केशव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के परिणाम-स्वरूप प्रारम्भ में देकर केवल उसी शाखा का विवरण दिया है जिससे सीधा उनका सम्बन्ध है। इस प्रकार बाबू जी के अधिकांश तर्कों का खण्डन हो जाता है।

स्व० मायाशंकर याज्ञिक ने सं० १६८७ वि० की नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका के एक लेख में इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध की सम्भावना के विपक्ष में कई बातें लिखी हैं[2]। पहली यह कि केशवदास सनाढ्य थे, बिहारी चौबे। याज्ञिक जी लिखते हैं कि बिहारी के वंशज बालकृष्ण के पुत्र, गोपालकृष्ण चौबे को वह जानते हैं। वे भरतपुर राज्यान्तर्गत 'दीग' स्थान में वकालत करते हैं। उनके विवाहादि सब सम्बन्ध मैनपुरी, इटावा आदि स्थानों में मिलने वाले चौबों में होते हैं। यदि बिहारी सनाढ्य चौबे होते तो उनके वंशजों के विवाह-सम्बन्ध सनाढ्य ब्राह्मणों में होते।

दूसरे, यदि बिहारी केशवदास के पुत्र होते तो वे कुलपति मिश्र के मामा तभी हो सकते हैं, जब केशवदास जी की कन्या का विवाह कुलपति मिश्र के पिता परशुराम के साथ हुआ हो। केशवदास मिश्र थे और परशुराम भी मिश्र थे। मिश्र की कन्या का विवाह मिश्र के साथ सम्भव नहीं है।

तीसरे, याज्ञिक जी के अनुसार बिहारी के पिता का नाम केशव अथवा केशवराय न होकर 'केसो केसोराइ' था। उन्होंने अपने अनुमान के आधार-स्वरूप दो दोहे माने हैं। पहला दोहा बिहारी का है—

प्रगट भए द्विजराज-कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरे हरो कलेस सब, केसव केसवराइ॥[3]

---

१. स्तुम्भ् ग्यात इहि गोत हुअ मिश्र सनाउढ़ वंस।
नगर ओड़िछे बसत वर ऋस्नदत्त भुव अंस॥
ऋस्नदत्त सुत गुन जलद कासिनाथ परवान।
तिन के पुत्र प्रसिद्ध हैं केशवदास कल्यान॥
कबि कल्यान के तनय हुव परमेश्वर इहि नाम।
तिन के पुत्र प्रसिद्ध हुव प्रागदास इहि नाम॥
तिन के सुत हर सेवक कियो यह प्रबन्ध सुखदाय।
—ना० प्र० सभा खोज-रिपोर्ट, सन् १६०५, भूमिका।

२. ना० प्र० प०, भाग ८, सं० १६८७, पृ० १२५-१३०।

३. बिहारी रत्नाकर, छं० १०१।

बिहारी के सर्वप्रथम टीकाकार कृष्णलाल जी के विचार से 'केशव' बिहारी के पिता हैं और 'केशवराय' भगवान् कृष्ण। रत्नाकर जी 'केसवराइ' को बिहारी का पिता बतलाते हैं। दूसरा दोहा कुलपति मिश्र का है, जो उन्होंने, याज्ञिक के विचार से, 'संग्रामसार[१]' ग्रन्थ में अपने वंश का परिचय देते हुए लिखा है—

कविवर मातामहि सुमिरि केसो केसवराइ।
कहौं कथा भारत्थ की, भाषा छन्द बनाइ॥

उपर्युक्त दोहों के विषय में याज्ञिक जी का कहना है कि बिहारी ने तो दो शब्द 'केसव' और 'केसवराइ' इसलिए प्रयुक्त किये हैं कि उन्हें रूपक और श्लेष से, अपने पिता और भगवान् कृष्ण का वर्णन करना अभीष्ट था, किन्तु कुलपति मिश्र को ऐसी क्या आवश्यकता थी कि उनके मातामह का नाम केवल 'केसोराइ' होने पर भी एक शब्द 'केसो' और साथ जोड़ दिया। इस कारण याज्ञिक का अनुमान है कि 'केसो केसोराइ' ही उनका नाम था। कुलपति मिश्र बिहारी के भानजे थे, अतः बिहारी के पिता का भी यही नाम था। याज्ञिक जी ने लिखा है कि नवीनकृत 'प्रबोधरस-सुधा-सागर' ग्रन्थ में 'केसो केसोराइ' कवि के छन्द मिलते हैं। याज्ञिक जी ने भी इस कवि के दो छन्द अपने लेख में उद्धृत किए हैं। वे नीचे प्रस्तुत हैं—

ननद निगोड़ी कनसूआ कौरे लागी रहै,
सासु सुनि है तो नाह नाहर सौ करिहै।
केसो केसोराइ जनाजन सुनै जी को ग्यान,
तुम तौ निडर परबस सो तौर डरिहै।
फैलि जैहै अब ही चबाव वृजवासिनि में,
कहत सुनत कौन काकी जीभ धरिहै।
कह्यौ चाह्यौ सो तुम मोहि सौं बुलाइ कहौ,
आन कान पर ते लाखन कान परिहै॥

तथा

कोक-कोक वोही करो कोकनद फूल्यौ जिन,
सोह गुरुजन गौऐं प्रेमरस चाखिये।
सोइये न जागिये री हिय सों लगाइए पैं,
हिय कौं हुलास आली काहु सों न भाखिए।
केसो केसोराइ सों वियोग पलहू न होइ,
जीवन अवध गुन प्रेम अभिलाखिए।
कछुक उपाय कीजै ऊगन न भास दीजै,
दिन दाब दूब लीजै रातैं करि राखिए॥

याज्ञिक जी का प्रथम तर्क विचारणीय है, दूसरा तर्क सामान्य रूप से तो ठीक ही जान पड़ता है परन्तु एक ही आस्पद में विवाह होने के भी अनेक उदाहरण देखने में आते हैं। 'केसो केसोराइ' के बिहारी के पिता होने के सम्बन्ध में डा० दीक्षित ने

---

१. यह ग्रन्थ प्रयत्न करने पर भी लेखक को न मिल सका।

यह आपत्ति उठाई है कि याज्ञिक जी ने 'केसो केसोराइ' का समय नहीं बतलाया है, अतः जब तक यह ज्ञात न हो, तब तक 'केसो केसोराइ' का भी बिहारी का पिता होना निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता (आचार्य केशवदास, पृ० ४७)। इस विषय में यह कहा जा सकता है कि 'केसो केसोराइ' का भी वही समय निकाला गया है जो प्रसिद्ध कवि केशवदास का है। इसलिए 'केसो केसोराइ' के बिहारी के पिता होने में कोई आपत्ति न होनी चाहिये। याज्ञिक जी के इस तर्क के सम्बन्ध में कि कुलपति ने अपने मातामह का नाम 'केसोराइ' होने पर 'केसो' शब्द और क्यों जोड़ दिया, डा० दीक्षित ने लिखा है कि उन्होंने ऐसा अपने मातुल बिहारी के ही अनुकरण पर किया है (आचार्य केशवदास, पृ० ४७)। किन्तु हमारे विचार से तो कुलपति मिश्र ने अपने मातामह का नाम 'केसो केसोराइ' इसीलिए दिया है जिससे उस समय के दूसरे केशवराय से पार्थक्य हो जाय। इस प्रकार इस मत के विरुद्ध याज्ञिक जी द्वारा उठाई गई प्रायः सभी आपत्तियों का समाधान हो जाता है।

श्रीगणेश प्रसाद द्विवेदी जी ने लिखा है कि बिहारी को केशव का पुत्र मानने में जो मुख्य कठिनाइयाँ पड़ सकती हैं इन पर उन लोगों का ध्यान कदाचित् नहीं गया, और गया भी तो ये विद्वान् हिन्दी संसार में धूम मचा देने वाली एक नई और ज्वलंत सूझ को विद्वानों के सामने रखने की उतावली में इन पर गम्भीर और शान्त विचार करने में असमर्थ हुए[1]। उन्होंने अपने मत के समर्थन में निम्नांकित तर्क उपस्थित किए हैं[2]।

(१) बिहारी माथुर चौबे थे और केशवदास थे मिश्र।

(२) बिहारी की जन्म-तिथि केशव के मृत्यु-काल के निकट सं० १६६० के लगभग मानी जाती है। और फिर सरोजकार के हिसाब से बिहारी का जन्म केशव के पहले ही हो चुका था।

(३) बिहारी स्वयं अपनी जन्म-भूमि ग्वालियर, अपना स्थायी-रूप से निवास अपनी ससुराल मथुरा में कहते हैं। कहाँ ग्वालियर और मथुरा और कहाँ ओड़छा। इस बात का कहीं से भी प्रमाण नहीं मिलता कि केशव कभी भी ग्वालियर या मथुरा में रहे हों।

(४) यदि केशव वास्तव में बिहारी के पिता होते तो उन्होंने इस सम्बन्ध को कहीं न कहीं अवश्य ही स्पष्ट कर दिया होता, जब कि उन्होंने अपनी जन्म-भूमि आदि का ठीक-ठीक पता दे दिया है।

द्विवेदी जी के पहले तर्क के सम्बन्ध में श्री चन्द्रबली पाण्डे जी के अनुसार यह कहा जा सकता है कि बिहारी मिश्र नहीं चौबे थे, इसका किसी के पास प्रमाण क्या ? इसके मूल में परम्परा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

द्विवेदी जी ने जो यह लिखा है कि सरोजकार के हिसाब से बिहारी का जन्म[3] केशव के पहले ही हो चुका था, समीचीन नहीं जंचता। कारण, उनके सरोज

१. हिन्दी के कवि और काव्य, प्रथम भाग, पृ० १८४-१८५।
२. वही , वही , ,, १८५।
३. संवत् १६०२ वि० (शिवसिंह सरोज, पृ० ४८५)।

में संवतों में प्रायः गड़बड़ ही देखने में आती है। अधिकांश विद्वान् बिहारी का जन्म संवत् १६५५ और १६६० के बीच ही मानते हैं। केशव का जन्म सं० १६१८ वि० में हुआ। इस प्रकार यदि बिहारी, केशव के पुत्र हों तो जब उनका जन्म हुआ होगा, केशव की अवस्था ३७ या ४२ वर्ष के लगभग ठहरती है, जो असम्भव नहीं है।

द्विवेदी जी के तीसरे तर्क के विषय में गौरीशंकर द्विवेदी लिखते हैं कि बिहारी के वंशज आजकल झाँसी से दक्षिण की ओर १३ मील दूर 'फुटेरा पिछोर' नामक ग्राम में रहते हैं। झाँसी और उसके आस-पास के गाँव ग्वालियर राज्य में बहुत दिनों तक रहे। यदि यह मान लिया जाय कि बिहारी भी ऐसे ही किसी प्रदेश में उत्पन्न हुए थे, तो ओड़छा से ग्वालियर की जिस दूरी की ओर गणेशप्रसाद द्विवेदी जी ने ध्यान दिलाया है, वह मिट सकती है। जहाँ तक मथुरावास का सम्बन्ध है, श्री चन्द्रबली पाण्डे ने इसका अनुमान दो रूपों में किया है, जिसका उल्लेख पहले हो चुका है।

द्विवेदी जी के चौथे तर्क के विषय में हम यह कह सकते हैं कि यदि बिहारी ने अपनी जन्म-भूमि का ठीक-ठीक पता दे दिया है तो यह आवश्यक नहीं था कि वे अपने पिता के नाम का भी निर्देश करते ही।

इस प्रकार द्विवेदी जी के सभी तर्कों का खण्डन हो जाता है।

डा० दीक्षित ने अपने ग्रन्थ 'आचार्य केशवदास' (पृ० ४८-४६) में केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध के विपक्ष में जो तर्क उपस्थित किये हैं वे इस प्रकार हैं :

(१) बिहारी चौबे प्रसिद्ध हैं और 'केशवदास' सनाढ्य मिश्र थे। सनाढ्यों में भी चौबे होते हैं, यह ठीक है, किन्तु यदि बिहारी सनाढ्य थे तब भी केशव तथा बिहारी के आस्पद भिन्न थे। पिता तथा पुत्र का आस्पद भिन्न नहीं हो सकता।

(२) यदि बिहारी, केशव के पुत्र होते तो यह बात, जैसा कि स्व० डा० श्यामसुन्दरदास जी ने लिखा है, परम्परा से प्रसिद्ध होती। केशव की जिस सन्तान ने वीरसिंहदेव द्वारा पुनः प्रदत्त वृत्ति का ओड़छा में रहकर उपभोग किया, कम से कम उसे तो बिहारी का केशव का पुत्र होना अवश्य ज्ञात रहा होगा और उसके द्वारा इस बात को छिपाये रखने का कोई कारण नहीं प्रतीत होता।

(३) प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की मनोवृत्ति स्वाभाविक है। यदि बिहारी केशव के पुत्र होते तो निश्चय ही अपने इस सम्बन्ध को स्पष्ट रूप से प्रकट करने में गौरव प्रतीत करते। केशव के वंशज हरिसेवक ने 'कामरूप की कथा' में इस मनोवृत्ति के फल-स्वरूप केशव का उल्लेख किया है, अन्यथा जिस प्रकार केशव के बड़े भाई बलभद्र मिश्र का उल्लेख नहीं है, केशव का उल्लेख करने की भी आवश्यकता न थी क्योंकि हरिसेवक से केशव का सीधा सम्बन्ध न था। यदि बिहारी केशव के पुत्र होते तो हरिसेवक इसी मनोवृत्ति से प्रेरित हो बिहारी से प्रसिद्ध कवि से भी अपना सम्बन्ध लिखते।

(४) बिहारी ने स्पष्ट रूप से अपना जन्म ग्वालियर में होना लिखा है। किन्तु केशव का कभी ग्वालियर में रहना प्रमाणित नहीं होता।

डा० दीक्षित के प्रथम तर्क के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इसका ही क्या प्रमाण है कि बिहारी मिश्र नहीं, चौबे थे। बिहारी ने अपने मथुरा के चौबे होने का कब और कहाँ उल्लेख किया है? दूसरे, मथुरा के चौबों में मिश्र भी तो होते हैं। इस प्रकार पिता-पुत्र के भिन्न आस्पद होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

डा० दीक्षित ने जो यह लिखा है कि जिस सन्तान ने वीरसिंहदेव द्वारा पुनः प्रदत्त वृत्ति का ओड़छा में रहकर उपभोग किया, कम से कम उसे तो बिहारी का केशव का पुत्र होना अवश्य ज्ञात रहा होगा और उसके द्वारा इस बात को छिपाये रखने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता, इसके उत्तर में दो बातें कही जा सकती हैं। प्रथम यह कि यदि केशव की उस सन्तान ने, बिहारी के केशव का पुत्र होने का पता होने के कारण, कहीं इसका उल्लेख किया भी हो तो भी जब तक उस सन्तान ही के विषय में कोई निश्चित ज्ञान न हो तब तक यह ही ज्ञात कैसे हो सकता है कि उसने इस पिता-पुत्र-सम्बन्ध का कहीं उल्लेख भी किया है या नहीं? दूसरे, इतिहास में अरुचि होने से उस सन्तान ने इस सम्बन्ध का उल्लेख करना आवश्यक ही न समझा हो।

डा० दीक्षित जी के तीसरे तर्क के विषय में हमारा निवेदन है कि हरिसेवक ने 'कामरूप की कथा' में जो बिहारी का कोई उल्लेख नहीं किया है इससे यह नहीं कहा जा सकता कि बिहारी केशव के पुत्र न थे। हरिसेवक ने केशव का नाम प्रसिद्ध व्यक्ति से सम्बन्ध प्रदर्शित करने की स्वाभाविक मनोवृत्ति के परिणामस्वरूप प्रारम्भ में देकर केवल उसी शाखा का उल्लेख किया है जिससे सीधा उनका सम्बन्ध है। अतः हरिसेवक ने बिहारी से प्रसिद्ध कवि से अपना सम्बन्ध लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी।

जहाँ तक डा० दीक्षित के चौथे तर्क का सम्बन्ध है वह श्री चन्द्रबली पाण्डे द्वारा उपस्थित तर्क से कट जाता है। उन्होंने लिखा है कि ग्वालियर (गोपाचल) से केशव का कितना लगाव था यह तो स्पष्ट नहीं हो सकता, पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि वह लगाव इतना अवश्य था कि वहाँ उनके पुत्र उत्पन्न हो सकता था। उनका अनुमान है कि सम्भवतः यहीं बिहारी के पिता की ससुराल थी और अपनी ननिहाल में ही बिहारी का जन्म हुआ था। इस प्रकार इस मत के विपक्ष में दिये गए डा० दीक्षित के सभी तर्कों का खण्डन हो जाता है।

केशव और बिहारी के पिता-पुत्र-सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गए तर्कों पर समष्टि-रूप से विचार करने के अनन्तर हमारी तो यही धारणा बनी है कि बिहारी केशव के पुत्र थे। यदि पीछे दिया गया केशव का वंश-वृक्ष प्रामाणिक है तो हमारा मत और भी पुष्ट हो जाता है। फिर भी इस सम्बन्ध में कुछ और अनुसन्धान-सामग्री अपेक्षित है।

केशव-पुत्र-वधू[1]—संवत् १८६१ वि० में असनी के ठाकुर कवि द्वारा रचित बिहारी सतसई की 'सतसैया वर्णार्थ' नामक टीका में सतसई के सम्बन्ध में लिखा है कि यह बिहारी द्वारा लिखी न जाकर उनकी पत्नी द्वारा रचित है। उसमें एक कथा

१. मिश्रबन्धु-विनोद (प्रथम भाग) में केशव-पुत्र-वधू नाम की एक कवयित्री का उल्लेख है। वहाँ यह भी लिखा है कि इनकी कविता 'सारसंग्रह' में है। पृ० ३६४-३६५।

भी आती है जिसके आधार पर और कुछ नहीं तो इतना अवश्य कहा जा सकता है कि बिहारी की पत्नी भी कविता किया करती थी। बिहारी की पत्नी की प्रसिद्धि अपने नाम से अथवा अपने पति के नाम से न होकर श्वसुर के नाम से होना इस बात का द्योतक है कि श्वसुर कोई प्रसिद्ध व्यक्ति थे। अतः ये केशवदास मिश्र ही रहे होंगे, जो एक प्रसिद्ध कवि थे। इसका समय भी बिहारी के समय से मिलता है। इस प्रकार संभव है यह बिहारी की ही पत्नी हो। यह भी कहा जाता है कि केशवदास जी के जीवन-वृत्त में जो यह प्रसिद्धि है कि उन्हें अपनी 'पुत्र-वधू' के ही कारण 'विज्ञानगीता' की रचना करनी पड़ी, इससे केशवदास की 'पुत्र-वधू' का उनके नाम पर प्रसिद्ध होना बहुत संभव है (बिहारी, पृ० ११५)।

वृत्ति—जहांगीर के हाथ में शासन की बागडोर के आते ही वीरसिंह के भाग्य ने पलटा खाया। अब वे विद्रोही न रहकर समस्त बुन्देलखण्ड के शासक बन गये। उधर अकबर के राज्य-काल से ही उसे राजा रामशाह की ओर से इन्द्रजीत भोग रहे थे। राजा रामशाह को यह बात बहुत अखरी। परिणाम यह हुआ कि रामशाह और वीरसिंह में बज गई। केशव दूत बनकर वीरसिंह की सेवा में पहुँचे और उन्होंने हर प्रकार की ऊँच-नीच समझा-बुझाकर वीरसिंह को मना भी लिया था, किन्तु विधाता को यह स्वीकार न था। बात बीच में ही यह बनी कि 'प्रेमा' (जो केशव के साथ गया था) ने सारा बना-बनाया खेल बिगाड़ दिया। रानी कल्याणदे के पास तुरन्त पहुँच उसने निवेदन किया कि मुझे नहीं मालूम कि आपस में क्या निर्णय हुआ है, यह तो केशव मिश्र जानते हैं, या वीरसिंहदेव। यदि कोई ऊँच-नीच की बात हो गई तो मुझे दोष न दीजियेगा। यह सुन रानी को सन्देह हो गया और वीरसिंह के पास से भारतशाह को लौटा लाने का उसे आदेश दिया। भारतशाह को वापिस लाया गया। बस, यहीं से बातचीत टूट गई और फिर केशव की बात किसी ने न सुनी। केशव ने परिस्थिति को देखकर उचित ही कहा था कि जीते जी राजा राम राज्य भोगें और उनके बाद वीरसिंह राजा बनें। पर माँ की ममता यह कैसे होने देती? परिणाम यह हुआ कि संग्राम की ठन गई। केशव ने इन्द्रजीत और रावभूपाल को भी, जो राजा रामशाह और रानी के पक्ष में थे, समझाया-बुझाया कि हठ छोड़कर वीरसिंह को घर ले जाओ और उसे राज्य सौंप दो। परन्तु रानी को केशव के वचनों से अत्यन्त दुःख हुआ। उसने एक न सुनी और अपनी हठ पर दृढ़ ही रही। केशव वापिस भेज दिये गये[1]। बस, फिर क्या था! दोनों ओर युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं और घोर संग्राम हुआ। रावभूपाल ने बड़ी वीरता प्रदर्शित की पर अन्त में उनकी हार ही हुई। जहाँगीर के प्रभाव से वीरसिंह राजा बने और रानी की सब आशाओं पर पानी फिर गया। इससे और नहीं इतना तो अवश्य प्रकट होता है कि यद्यपि केशव का इस युद्ध में कोई योग न था तो भी वे माने तो गये थे विपक्ष के ही। फलतः उन्हें अपनी वृत्ति और पदवी से हाथ धोना पड़ा। वीरसिंह के राज्याभिषेक के अवसर पर छीतर मिश्र, मानसिंह, भगवन्त, जुझार राय,

---

१. यह सुनि रानी अति दुष पाय। केशव मिश्र दये बहुराय॥ वी०-दे० च०, पृ० ७६।

हरधौर, बाघराज, चन्द्रमनि, नरहरिदास, कृष्णदास, माधोदास, बेनीदास, तुलसीदास, बसन्तराय, खाण्डेराय, कृपाराम, कन्हरदास, बडगूजर, चम्पतराय, केसवराय, साहिबराय आदि सब ही दिखाई पड़ते हैं पर केशव लापता हैं। हाँ, उदयमणि मिश्र भी ऐसे अवसर पर कैसे चूकते। वे वीरसिंह को आशीर्वाद देते हैं। सब दिन होत न एक समान। एक दिन ऐसा भी आया कि राजा वीरसिंह ने सहर्ष केशव से कहा कि माँगो जो कुछ माँगना हो[1]। माँगने पर फिर मिला क्या? वही पुरानी वृत्ति और पदवी ही तो[2]।

'विज्ञान गीता' के रचना-काल सं० १६६७ के अनन्तर ही केशव को पुरानी वृत्ति मिली होगी।

आश्रयदाता—केशवदास की गणना हिन्दी के उन कवियों में है, जो राजा-महाराजाओं द्वारा विशेष रूप से सम्मानित हुए। ओड़छेन्द्र महाराजा रामशाह के छोटे भाई इन्द्रजीतसिंह केशव के प्रधान आश्रयदाता थे। इन्द्रजीतसिंह के यहाँ इनका विशेष आदर था। कहा जाता है कि जब एक बार अकबर बादशाह ने किसी कारण-वश इन्द्रजीत पर एक करोड़ रुपया जुर्माना कर दिया तब केशव ने बीरबल द्वारा उससे यह जुर्माना माफ़ कराया था। तभी से ओड़छा-दरबार में उनका विशेष सम्मान हुआ। इन्द्रजीत के दरबार में केशव सुखपूर्वक अपने दिन बिताते थे। उन्होंने स्वयं लिखा है—

भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत राजै युग युग।
केसोदास जाके राज राज सो करत है ॥[3]

यही कारण है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर अपने आश्रयदाता की गुणगरिमा के गीत गाए हैं[4]। उनका तो यहाँ तक कहना है कि राजा इन्द्रजीत के सामने इन्द्र भी पानी भरता है। उनके समान न तो कोई हुआ है, न है और न कोई होगा ही[5]।

एक बार इन्द्रजीतसिंह तीर्थराज प्रयाग में यात्रा के लिए पहुँचे और केशव से कुछ माँगने को कहा। सन्तुष्ट केशव ने यही मांगा कि सदैव आपकी एकरस कृपा रहे[6]।

---

१. सुनि सुनि केशवराय सों, रीझि कह्यौ नृपनाथ।
 मांगि मनोरथ चित्त के, कीजै सर्वं सनाथ ॥
 —वि० गी०, प्र० २१, छं० ५५।

२. वृत्ति दई पुरुखानि की, देऊ बालनि आसु।
 मोंहि अपनो जानिकै, गंगा-तट देउ वासु ॥
 —वि० गी०, प्र० २१, छं० ५६।

३. क० प्रि०, प्र० ४, छं० २१।

४. वही, प्र० ४, छं० १६ तथा प्र० ११, छं० २२, २३ और ७६।

५. वही, पृ० १४, छं० २४।

६. इन्द्रजीत तासों कह्यो, मांगन मध्य प्रयाग।
 मांग्यो सब दिन एकरस, कीजै कृपा समान ॥
 —क० प्रि०, पृ० २, छं० १८।

इसी प्रकार बीरबल ने एक बार केशव से कहा था कि जो कुछ तुम्हारा मनोरथ हो मांगो, तब केशव ने उनसे यही मांगा कि आपके दरबार में मेरी रोक-टोक न हो[१]। इन्द्रजीतसिंह ही के कारण ओड़छेन्द्र महाराज रामशाह इन्हें अपना मित्र एवं मंत्री समझते थे[२]। ओरछा दरबार में केशव कृपा-पात्र ही नहीं थे वरन् श्रद्धा-पात्र भी। इन्द्रजीत इनको गुरुतुल्य समझते थे और गुरु-दक्षिणा के रूप में उन्होंने केशव को २१ गांव भी भेंट किये थे[३]।

राजा रामशाह इन्द्रजीत से अत्यन्त प्रेम करते थे; उसको अपना प्राण समझते थे[४]। उनकी ओर से इन्द्रजीत ही (ओरछा का) सारा राज-काज चलाते थे। रामशाह स्वयं तो चन्देरी चले गये और इन्द्रजीत को कछौआ की जागीर दे गए थे। संगीत के सच्चे रसिक थे और स्वयं कविता भी करते थे। 'सरोज' में उनका कविता का नाम 'धीरज नरिन्द' दिया हुआ है। उनका एक छन्द 'सरोज' में उद्धृत है[५]।

राज्य में सुन्दर शासन के साथ-साथ उन्होंने संगीत का अखाड़ा जमा रखा था। इन्द्र के समान संगीत में ही वे मस्त रहा करते थे। उनके यहां बहुत सी वेश्याएँ भी थीं जिनमें रायप्रवीण, नवरंगराय, विचित्रनयना, तानतरंग, रंगराय और रंगमूरति बहुत विख्यात थीं[६]। ये वेश्याएं नृत्य, गान और वाद्य आदि कलाओं में बड़ी प्रवीण थीं। यों तो केशव ने इन सभी वेश्याओं का निरूपण बड़ी श्रद्धा से किया है परन्तु रायप्रवीण पर उनकी विशेष दृष्टि है। भावातिरेक में कवि ने उसे तो सत्यभामा, रमा, शारदा तथा उमा के रूप में देखा है[७]। प्रवीण राय वेश्या होते हुए भी एकनिष्ठ थी। नृत्य और संगीत में निपुण होने के साथ वह काव्य-रचना भी कर लेती थी[८]। कहा जाता है कि एक बार उसके असीम रूप-लावण्य तथा प्रवीणता की प्रशंसा सुनकर अकबर बादशाह ने उसे बुला भेजा। प्रवीणराय तुरन्त महाराज इन्द्रजीतसिंह की सभा में गई और उनके सामने 'आई हौं बूझन मंत्र तुम्हैं' आदि[९] तीन कूट कवित्त पढ़कर उसने जाने के लिए आज्ञा माँगी।

---

१. यों ही कह्यो जू बीरबल माँगि जू मन में होय।
माँग्यो तब दरबार में मोहि न रोके कोय॥
—क० प्रि०, पृ० २, छं० १६।

२. क० प्रि० पृ० २, छं० २१।

३. वही, पृ० २, छं० २०।

४. गहिरवार कुल को तनु त्रान। साहिराम को जानो प्रान॥
—वी० दे० च०, पृ० १७।

५. शिवसिंह सरोज, पृ० १५१।

६. क० प्रि०, प्र० १, छं० ४३-४४।

७. वही, छं० ४६ तथा छं० ५८-६०।

८. तिन में करत कवित्त इक, रायप्रवीन प्रवीन। क० प्रि०, प्र० २, छं० ५६।

९. शिवसिंह सरोज, पृ० १८० तथा मिश्रबन्धु विनोद (प्रथम भाग), पृ० ३७५(पाठभेद से)।

बादशाह के दरबार में पहुँचने पर बादशाह और प्रवीणराय में इस प्रकार बातचीत हुई—

"बादशाह—जुवन चलत तिय देह ते, चटकि चलत केहि हेत ?
प्रवीण—मनमथ वारि मसाल को, सौंति सिहारो लेत ।।
बादशाह—ऊँचे ह्वै सुर बस किये, सम ह्वै नर बस कीन ।
प्रवीण—अब पताल बस करन को, ढरकि पयानो कीन ।।"

बादशाह उसकी कवित्व-शक्ति पर बड़ा प्रसन्न हुआ। कहा जाता है कि प्रवीण ने जब यह दोहा पढ़ा कि

विनती राय प्रवीन की, सुनिये शाह सुजान।
जूठी पतरी भखत हैं, बारी, बायस, स्वान ।।

तब बादशाह ने उसे विदा किया और प्रवीण इन्द्रजीत के पास चली गई[1]। कहा जाता है कि प्रवीण जाति की लोहार थी।[2] अपनी शिष्या प्रवीण राय के लिये ही केशव ने 'कविप्रिया' रची थी[3]।

स्व० ला० भगवानदीन जी ने लिखा है कि यह भी किंवदन्ती है कि 'सप्त छन्दमय गारी'[4] केशव ने प्रवीणराय पातुर से बनवा कर 'रामचन्द्रिका' में रखी है। इन सात छन्दों में केशव ने अपना उपनाम नहीं रखा है। ३० से ३६ तक एक ही छन्द है। ऐसा करना केशव की प्रकृति के विरुद्ध है। अतः इस किंवदन्ती में कुछ सत्यता अवश्य है।[5] इन्द्रजीतसिंह बड़े ही दानी, गंभीर और शूर थे।[6]

इन्द्रजीत सिंह के उपरान्त केशवदास वीरसिंहदेव की छत्रच्छाया में रहे। आरम्भ में उनके पास केवल बड़ौन की जागीर थी परन्तु अकबर की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर के सिंहासनारूढ़ होने पर उसने इन्हें समस्त बुंदेलखण्ड के राज्य का स्वामी बना दिया था। ये जहाँगीर के विशेष कृपा-पात्र थे। कारण, अकबर बादशाह के

---

१. शिवसिंह सरोज, पृ० ४४६।
यही कथा 'हिन्दी नवरत्न' में कुछ परिवर्तन के साथ दी गई है। प्रवीणराय के 'आई ही बूझन मंत्र' इत्यादि छंद के पढ़ने पर इन्द्रजीतसिंह ने उसे अकबर के यहाँ न भेजा। तब अकबर ने क्रुद्ध होकर उन पर एक करोड़ रुपये का जुर्माना कर दिया। केशवदास ने आगरे जाकर बीरबल द्वारा यह जुर्माना माफ कराया, और प्रवीणराय ने अकबर के यहाँ किसी अवसर पर 'बिनती रायप्रवीण की' इत्यादि छन्द पढ़कर अपना पातिव्रत-धर्म बचाया। पृ० ४५६।

२. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४५१।

३. सविता जू कविता दई, ताकहं परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केशवदास ।।
—क० प्रि०, प्र० १, छं० ६१।

४. रा० चं०, प्र० ६, छं० ३०-३६।

५. रा० चं०, प्र० ६, पृ० ८४, (पाद-टिप्पणी)।

६. कल्पवृक्ष सो दानि दिन सागर सो गंभीर।
केशव सूरो सूर सो अर्जुन सो रणधीर ।।
—क० प्रि०, प्र० १, छं० ३६।

विरुद्ध विद्रोह करने पर ये जहाँगीर के साथ थे। असीम प्रभाव और ऐश्वर्य की प्राप्ति किसी भी अन्य भारतीय राजा को उस समय उतनी प्राप्त नहीं हुई जितनी कि वीरसिंह को[१]। मआसिरुल-उमरा के अनुवादक श्री ब्रजरत्न दास और ओड़छा गजेटियर का कहना है कि वे बड़े दानी थे। उन्होंने अपने भाई का राज्य छीन लिया था अतः उसके प्रायश्चित-स्वरूप केवल वृन्दावन में, कहा जाता है, इक्कीस मन पक्का सोना दान कराया था। तीर्थयात्राएँ कीं, चान्द्रायण व्रत रखे और सप्ताह सुने[२]। वे बड़े न्यायी भी थे। कहते हैं कि उनके पुत्र जगतदेव ने एक ब्रह्मचारी को शिकारी कुत्तों से मरवा डाला था। यह सुनकर महाराज ने उसे भी कुत्तों द्वारा ही मारे जाने का दण्ड दिया[३]। इससे बढ़कर न्यायशीलता का और क्या प्रमाण हो सकता है। उनकी स्पष्टवादिता और विशाल-हृदयता भी बढ़ी-चढ़ी थी। जब शाह सलीम उन्हें अकबर के प्रिय सखा अबुलफ़ज़ल को मारने के लिए बाध्य करता है तो वे शाह की बातों में आकर सहसा इस नृशंस कर्म के लिए प्रेरित नहीं होते वरन् उसे सब प्रकार की ऊँच-नीच का ज्ञान कराते हुए कहते हैं कि प्रभु को सेवक की भूल सदा क्षमा कर देनी चाहिये[४]। उनकी कृपालुता के विषय में ओड़छा में यह प्रचलित है कि एक दिन जब जहाँगीर-महल की नींव रखने के विषय में सोच-विचार चल रहा था तो महाराज चतुर्भुज के दर्शन करने के बाद द्वार पर खड़े बेतवा नदी के प्रवाह की ओर निहार रहे थे। उसी समय उन्होंने सिर पर बोझ लादे एक गर्भवती ब्राह्मणी को देखा, जो बेतवा की धारा को पार करने का प्रयत्न कर रही थी। जब वह धारा के बीच ही में टापू के समीप पहुँची तो उसे प्रसव-पीड़ा होने लगी। उसे इस प्रकार सन्तप्त देख उन्होंने उसकी सहायता के लिए नौकरों को भेजा। नौकरों ने आज्ञानुसार हर प्रकार से उस ब्राह्मणी की सहायता की। यहीं उसके पुत्र उत्पन्न हो गया। महाराज ने उसको कपड़े, आभूषण आदि देकर विदा किया। ब्राह्मणी ने महाराज को आशीर्वाद दिया। महाराज की यह प्रसिद्धि सब ओर फैल गई। ब्राह्मणी के विदा होते समय सहसा एक साधु का आगमन हुआ। वह महाराज से कहने लगा कि आपने यह बहुत ही सराहनीय कार्य किया है। यह टापू, जहाँ यह घटना घटी है, एक महर्षि का निवास-स्थान है। यदि आप यहाँ महल बनाकर उसमें रहेंगे तो आपके वंश का राज्य सदैव सुरक्षित रहेगा। साधु के वचनों पर विश्वास करके महाराज ने टापू पर महल बनवाना आरम्भ

---

१. मआसिरुल-उमरा, प्र० भा०, पृ० ३६७।

२. वही, पृ० ३६८ (पाद-टिप्पणी)।

Bir Singh seems in later days to have felt some remorse at the advantage he had taken of his elder brother and endeavoured to atone for his conduct by lavish expenditure and charitable objects. C. I. S. Gazetteer (Orchha), Chapter I, Section II, page 22.

३. मआसिरुल-उमरा, प्रथम भाग, पृ० ३६७।

४. वह गुलाम तूँ साहिब ईस। तासों इतनी कीजहि रीस।
प्रभु सेवक की भूलि विचारि। प्रभुता यहै सु लेइ सम्हारी।
—वी० दे० च०, पृ० ३७।

कर दिया। कहा जाता है कि जब खुदाई हो रही थी तो नीचे से एक आश्रम दिखाई दिया। वहाँ से एक साधु ने निकलकर आदेश दिया कि खुदाई बन्द कर दी जाय। महाराज ने वैसा ही किया। वह स्थान आज भी 'सिद्ध का स्थान' नाम से प्रसिद्ध है[१]। वीरसिंह की वीरता की धाक का तो ठिकाना ही क्या ? उन्होंने अकबर बादशाह के समय में मुग़लों के बहुत से क़िले अपने अधीन कर लिये थे और मुग़ल-सेना को कई बार परास्त किया था। अकबर जीते जी उन्हें अपने वश में न कर सका। उनकी अधीनता में ओड़छा-राज्य का खूब विस्तार हुआ। योग्य शासक होने के साथ-साथ भवन-निर्माण में उनकी विशेष अभिरुचि थी। ओड़छा गज़ेटियर में लिखा है कि उन्होंने माघ सुदी पंचमी रविवार के दिन सं० १६७५ वि० अर्थात् दिसम्बर सन् १६१८ में ५२ इमारतों की एक साथ नींव रखी थी (पृ० २३)। ऐसे आश्रय को पाकर केशव भला कब चूकने वाले थे ? वीरसिंह की प्रशंसा में उन्होंने छन्द के छन्द रच डाले[२]। यहाँ तक कि उन्हें महाराज शिरोमणि की पदवी भी दे डाली[३]।

केशवदास का लगाव वीरसिंह के बड़े भाई रतनसिंह से भी किसी प्रकार कम न था। 'रतनबावनी' में उनकी ही तो वीरगाथा वर्णित है। 'वीरसिंहदेव-चरित' में रतनसिंह के विषय में लिखा है कि बादशाह अकबर ने स्वयं अपने हाथों से रतनसेन के सिर पर पाग बांध कर गौड़ देश पर आक्रमण करने के लिए इन्हें विदा किया था। इन्होंने गौड़ देश विजय कर अकबर को सौंपा था तथा वहीं युद्ध में वीरगति प्राप्त की थी[४]। 'कविप्रिया' में भी इस प्रकार का ही उल्लेख मिलता है कि अकबर ने स्वयं रतनसेन के सिर पर पगड़ी बाँधी थी[५]। किन्तु 'रतनबावनी' में कुछ और ही विवरण दिया हुआ है। वहाँ लिखा है कि एक बार मधुकरशाह ऊँचा जामा पहनकर अकबर बादशाह के दरबार में गए। बादशाह ने इसमें अपनी मान-हानि समझी और उनसे इसका कारण पूछा। तब मधुकरशाह ने कहा कि 'मेरा देश कंटीली भूमि है।'

---

१. ओड़छा गज़ेटियर, पृ० २२-२३।

२. वी० वी० दे० च०, प्र० २७, छं० २५; प्र० ६, छं० ४८; प्र० ३३, छं० २६, ३७ और ४५ तथा विज्ञान गीता, प्र० १, छं० २१, २२, २५ और २६।

३. वी० दे० च०, पृ० १।

४. रतनसेनि तिनि तें लघु जानि। गहि जान्यौ तिनही खग पानि।
बानौ बान्ध्यौ ताके माथ। साहि अकबर अपने हाथ॥
बानौ बान्धि बिदा करि दियो। जीति गौर कौं भूतल लियो।
गौर जीत अकबर कों दियौ। जूझ ब्याज बैकुण्ठहि गयौ॥
—वी० दे० च०, पृ० १६-१७।

५. रणसूरो दलसिंह पुनि, रतनसेन सुत-ईश।
बान्ध्यो आपु जलालदीं बानो जाके शीश॥
—क० प्रि०, प्र० १, छं० २८।

अकबर को इन शब्दों में व्यंग दीख पड़ा, अतः क्रुद्ध होकर वे मधुकरशाह् से बोले कि 'अच्छा मैं तुम्हारा भवन और देश देखूँगा'[१]।

मधुकरशाह् को ये वचन तीर से लगे। उन्होंने तुरन्त इस घटना की सूचना रतनसेन के पास पत्र द्वारा भेजी और उसे अकबर के विरुद्ध युद्ध करने का भार सौंपा। मुग़ल सेना के आक्रमण करने पर रतनसेन की सेना ने उसका डटकर सामना किया। इस युद्ध में रतनसेन की चार हज़ार सेना में से एक भी वीर जीवित न बचा[२]। और रतनसेन स्वयं भी युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए[३]। ऐसी स्थिति में ठीक-ठीक निर्णय पर पहुँचने के लिए इतिहास के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं होता। इतिहास-ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि बंगाल में अफ़ग़ानों का विद्रोह दमन करने के लिए सन् १५८० (सं० १६३७ वि०) में मुनइम खाँ, खानखाना और टोडर मल की अधीनता में सेना भेजी गई थी[४]। इसी चढ़ाई में रतनसिंह् भी साथ गए थे। वहीं गौड़ (बंगाल) में उनकी मृत्यु हुई। अतः 'रतनबावनी' में उल्लिखित बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। रतनसिंह् की मृत्यु-तिथि संवत् १६३७ वि० है। अस्तु, प्रतीत होता है कि रतनसिंह् के निधन के उपरान्त केशव ने इन्द्रजीतसिंह् का आश्रय ग्रहण किया।

केशव की 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' अथवा उनके अन्य किसी भी ग्रन्थ से यह ज्ञात नहीं होता कि बादशाह् जहाँगीर भी कभी केशव के आश्रयदाता रहे थे। ये तो केशव के आश्रयदाता के आश्रयदाता थे। आपत्ति के समय जहाँगीर ने वीरसिंह् की बाँह् पकड़ी थी। इसी विचार से संभवतः 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' का निर्माण किया हो।

अन्य व्यक्तियों से परिचय—केशव के परिचित व्यक्तियों में से अकबर की सभा के सुविख्यात रत्न 'बीरबल' का नाम सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। बीरबल केशव के घनिष्ठ मित्र थे। केशव ने एक स्थान पर बीरबल के साथ 'मोरे हित' विशेषण का प्रयोग किया है[५]। कवि ने इनके दान की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि बीरबल के निधन पर दारिद्र्य के दरबार में हर्ष के नगाड़े बजे[६]।

---

१. देख अकब्बरशाह् उच्च जामा तिन केरो।
बोले वचन विचारि कहौ कारण यही केरो॥
तब कहत भयव बुंदेलमणि मम सुदेश कंटकि-अवन।
करि कोप ओप बोले वचन मैं देखों तेरो भवन॥
—रतनबावनी (केशव पंचरत्न), छं० ५।

२. जहँ सहस चारि सेना प्रबल तिन महं कोउ न घर गयव।
—रतनबावनी (केशव पंचरतन), छं० ४०।

३. रतनबावनी (केशव पंचरत्न), छं० २।

४. अकबर दि ग्रेट मुगल, पृ० १८५-१८६।

५. मोरे हित बरबीर बिना दुकु दीननि रोयौ। —वी० दे० च०; प० ११।

६. पाप के पुंज पखावज केशव, शोक के शंख सुने सुखमा में।
झूँठ के झालरि झाँझ अलोक के, आवझ यूथन जाने जमा में॥

एक बार इन्द्रजीतसिंह पर बादशाह अकबर ने एक करोड़ रुपये का जुर्माना कर दिया था। इसी जुर्माने को माफ़ कराने के सम्बन्ध में, कहते हैं, कि केशवदास की बीरबल से सर्वप्रथम भेंट हुई थी। उन्होंने बीरबल की प्रशंसा में यह छन्द पढ़ा[1]। इस छन्द से प्रसन्न होकर महाराज बीरबल ने केशव को छः लाख रुपये की हुण्डियाँ पुरस्कार-स्वरूप दीं। तब केशव ने सोल्लास निम्नलिखित छन्द पढ़ा—

केशवदास के भाल लिख्यो, विधि रंक को अंक बनाय संवार्‌यो।
छोड़े छुट्‌यो नहीं धोए धुयो, बहु तीरथ के जल जाय पखार्‌यो॥
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं, जब बीरबली बलबीर निहार्‌यो।
भूलि गयो जग की रचना, चतुरानन बाय रह्यो मुख चार्‌यो॥[2]

इसके पश्चात् बीरबल ने केशव से कुछ माँगने को कहा, तब केशव ने दरबार का मुक्त-प्रवेश ही माँगा[3]। इससे प्रकट होता है कि केशवदास समय-समय पर बीरबल से मिलने जाया करते थे। इसलिए यह निर्द्वन्द्व कहा जा सकता है कि अकबर की सभा के अन्य रत्न अब्दुर्रहीम खाना-खाना, अबुलफ़ज़ल, फैजी, मानसिंह आदि से भी केशवदास का परिचय था। बीरबल के 'चन्द' नामक दरबान से केशव का परिचय होना तो स्वाभाविक है। कवि ने उसके नाम को भी अपनी कविता द्वारा अमर कर दिया।[4] अकबर के कर-विभाग के सुविख्यात मंत्री राजा टोडरमल से भी केशवदास परिचित थे परन्तु वे उन्हें अच्छी दृष्टि से न देखते थे। स्वयं केशव 'दान' के मुख से 'लोभ' को कहलाते हैं—

टोडरमल तुव मित्र मरे सब ही सुख सोयो।
मोरे हित बरबीर बिना दुकु दीननि रोयो॥[5]

केशव का वीर चन्द्रसेन से भी थोड़ा-बहुत परिचय था। कारण, उन्होंने चन्द्रसेन की खड्ग की प्रशंसा में एक छन्द लिखा है[6]। इस चन्द्रसेन के विषय में ठीक-ठीक

भेद की भेरी, बड़े डर के ढ़फ, कौतुक भो कलि के कुरमा में।
जूझत ही बलबीर, बजे बहु दारिद्र के दरबार दमामें॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ७६।

१. पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दसचारी।
केशव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै बरबीर बली बलबीर भयो कृतकृत्य महाव्रतधारी।
दै करतापन आपन ताहि दई करतार दुवौ करतारी॥
—हिन्दी नवरत्न, पृ० ४६० तथा शिवसिंह सरोज, पृ० २०।

२. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४६१।

३. क० प्रि०, प्र० २, छं० १६।

४. सब सुख चाहौ भोगिवो, जो पिय एकहि बार।
चंद गहै जहँ राहु को जैयो तेहि दरबार॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ३७।

५. वी० दे० च०, पृ० ११।

६. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३८।

ज्ञात होना कठिन है, क्योंकि इस छन्द में किसी प्रकार का अन्य कोई संकेत नहीं है। किन्तु प्रसंग से तो यही जान पड़ता है कि वह कोई बुन्देला वीर ही है।

उदयपुर (मेवाड़) के राणा अमरसिंह के यहाँ भी केशव का एक बार जाना सिद्ध होता है। केशव ने उनकी प्रशंसा में एक-दो नहीं एक साथ चार कवित्त लिखे हैं[1]। उन्होंने एक अन्य स्थल पर राणा की दानशीलता का भी उल्लेख किया है[2]।

एक और व्यक्ति जिससे केशव का घनिष्ठ परिचय था, पतिराम है। वह सुनार का काम करता था; साधारण सी वैद्यक भी कर लेता था। किन्तु पढ़ना-लिखना न जानता था। हाँ, केशव की संगति से कविता का अर्थ लगा लेता था[3]। सोना चुराने में वह इतना निपुण था कि रनिवास का सोना चुराया तो इन महाशय ने पर दण्डरूप में उसका मूल्य चुकाना पड़ा अन्य सुनारों को ही। केशव मिश्र के भाग्य पर भी उसे डाह था[4]। यहाँ तक कि कायस्थों की निगरानी होने पर भी राख भरते समय पतिराम सोना चुरा ही ले जाता था[5]।

राजा रामशाह की कामसेना नामक एक पातुरी से भी केशव परिचित थे। कवि ने उसकी प्रशंसा में एक छन्द लिखा है।[6]

भ्रमण—केशवदास को वस्तुतः भ्रमणशील जीव नहीं कहा जा सकता। किन्तु फिर भी उनके ग्रन्थों के आधार पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि उन्होंने समय-

---

१. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३०-३३।

२. वही, प्र० ६, छं० ७५।

३. बाँचि न आवैं, लिखि कछु, जानत छांह न घाम
अर्थ, सुनारी, बैदई करि जानत पतिराम।
—क० प्रि०, प्र० ६, छं २६।

४. दिये सुनारन दाम, रावर को सोनो हरो।
दुःख पायो पतिराम, प्रोहित केशव मिश्र सों॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० १३।

५. तुला-तोल-कसवान बनि, कायथ लिखत अपार।
राख भरत पतिराम पैं, सोनो हरति सुनार॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छ० १६।

६. सोहति सुकेशी मंजुघोषा रति उरबसी,
राजा राम मोहिबे को सूरति सोहायी है।
कलरव कलित सुरभि राग-रंग युत,
बदन कमल षटपद छवि छायी है॥
भृकुटी कुटिल धनु, लोचन कटाक्ष शर,
भेदियत तन-मन अति सुखदायी है।
प्रमुदित पयोधर दामिनी सी नाथ साथ,
काम की सी सेना कामसेना बनि आयी है।
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३३५।

समय पर आगरा, प्रयाग, काशी, दिल्ली आदि नगरों का भ्रमण किया था। आगरा वे महाराज बीरबल से मिलने जाते थे। प्रयाग में वे सम्भवतः एक बार महाराज इन्द्रजीतसिंह के साथ तीर्थयात्रा को गये थे। तुलसीदास से उनकी भेंट काशी में हुई थी। इसका उल्लेख आगे किया गया है। 'विज्ञान गीता' में वर्णित वाराणसी तथा दिल्ली की सामाजिक अवस्था के चित्रण से यह प्रकट होता है कि केशव इन स्थानों में भी गए थे। इसके अतिरिक्त केशव को उदयपुर (मेवाड़) के राणा अमरसिंह के यहाँ भी एक बार जाने का अवसर प्राप्त हुआ था।

किवदंतियाँ—बुन्देलखण्ड में केशव के विषय में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। इन में तथ्यांश कितना है इस प्रश्न का एक सामान्य उत्तर नहीं दिया जा सकता। प्रत्येक किंवदन्ती की सम्यक् परीक्षा के पश्चात् ही उसके तथ्यांश का निश्चय सम्भव हो सकता है। किंवदंतियाँ निर्मूल नहीं होतीं। इनमें तथ्य का कुछ न कुछ अंश तो निकाला ही जा सकता है। केशव से सम्बन्ध रखने वाली किंवदंतियों में से कुछ का सम्बन्ध मुग़ल सम्राट् अकबर से है जिन्हें गौरीशंकर द्विवेदी ने अपने 'सुकवि सरोज' (प्रथम भाग) में उद्धृत किया भी है। पाठकों के अवलोकनार्थ वे यहाँ दी जाती हैं। एक बार अकबर बादशाह विश्वनाथ-पुरी काशी में थे और महात्माओं के दर्शनों से लालायित होकर उन्होंने अपने प्रतिष्ठित मन्त्री द्वारा उस समय के सभी महात्माओं से विनय कराई कि वे कृपा कर मणिकर्णिका घाट पर पधार कर बादशाह को दर्शन दे कृतार्थ करें। सभी महात्मा बादशाह की इच्छानुसार, उक्त घाट पर एकत्रित हुए। बादशाह ने संतों का दर्शन कर अपने को कृतार्थ किया और उनकी शुश्रूषा कर औरों को सादर विदा किया। केवल कुछ इने-गिने महात्माओं से कुछ काल और ठहरने की प्रार्थना की। उनमें सूर, तुलसी और केशव ये तीनों भी थे। दैवयोग से बादशाह अनायास बोल उठे कि आज आप तीन महान् कवियों में यह निर्णय करना कि वस्तुतः कवि कौन है, असम्भव-सा प्रतीत होता है, अतः केशवदास जी आप ही इसका निश्चय करें कि आप में कवि कौन है? केशव ने उत्तर दिया 'मैं'। बादशाह के तीन बार पूछने पर भी केशव ने वही उत्तर दिया। यह सुन अकबर को बड़ा दुःख हुआ कि मैंने व्यर्थ ही ऐसा प्रश्न पूछकर दो महात्माओं का निरादर किया। इस बात को केशव ताड़ गये और बादशाह से निवेदन किया कि 'मैंने केवल आपके प्रश्न का उत्तर दिया है न कि आदरणीय एवं स्तुत्य महात्माओं का अपमान किया है। ये कवि नहीं हैं, ये तो देवकोटि के पुरुष-अवतारी महात्मा हैं। सूरदास जी उद्धव जी के अवतार हैं और तुलसीदास जी राम से भी पूजित वाल्मीकि के। इन्हें मैं केवल कवि कह कर इनकी अप्रतिष्ठा नहीं कर सकता। ये तो पूजनीय देवता हैं किन्तु मैं केवल कवि ही हूँ।" बादशाह इस पर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।[१] इस किंवदन्ती से और कुछ नहीं तो इतना अवश्य स्पष्ट है कि केशव प्रत्युत्पन्नमति थे।

दूसरी किंवदन्ती है कि बीरबल के यूसुफ़ जईयों के युद्ध पर जाने के समय अकबर ने घोषणा की कि प्रियवर बीरबल के अनिष्ट की बात जिस किसी के भी मुंह

---

१. सुकवि सरोज (प्रथम भाग), पृ० ६-११।

से निकलेगी उसे ही भीषण दण्ड भुगतना पड़ेगा। दुर्भाग्य से जब उसके मारे जाने की सूचना मिली तो समस्त दरबार के लोगों में सन्नाटा छा गया और सभी चिन्तित थे कि यह अशुभ समाचार बादशाह तक किस प्रकार पहुँचाया जाय। उसी समय लोगों को केशव का ध्यान आया कि उनके अतिरिक्त अन्य कोई इस काम के उपयुक्त नहीं हैं। सौभाग्यवश उन दिनों केशव भी वहीं उपस्थित थे। अतः, सभी ने केशव से ही इस काम के लिए प्रार्थना की। केशव ने प्रार्थना स्वीकार कर ली और अकबर के समक्ष जाकर उन्होंने यह दुःखद समाचार

याचक सब भूपति भये रह्यो न कोऊ लेन।
इन्द्रहु को इच्छा भई, गयो बीरबर देन॥

इन शब्दों में सुनाया। यह सुनकर अकबर बोल उठे, कि हाय ! क्या बीरबल का निधन हो गया ? तब केशव ने कहा, "जहाँपनाह, इस प्रकार कहने की राजाज्ञा नहीं थी।" यह सुनते ही अकबर ने शोकातुर हो

सब को सब कुछ दीन्ह, दुख न काहू को दियो।
सो मर हमको दीन्ह, भली निबाही बीरबर॥

यह सोरठा पढ़ा[1]। इस घटना का इतिहास-ग्रन्थों में कोई उल्लेख नहीं मिलता।

इनके अतिरिक्त एक और जनश्रुति प्रचलित है जिसका सम्बन्ध अकबर बादशाह से न होकर "फुटेरा" गाँव से है। इसे भी द्विवेदी जी ने अपने "सुकवि सरोज" (प्र०भा०) में उद्धृत किया है[2]। एक बार केशव पालकी में बैठे हुए उक्त गाँव में होकर निकले। उन दिनों यह गाँव उद्धत अहीरों के अधीन था। जब पालकी उस गाँव में पहुँची तब पालकी के कहारों ने विश्राम करने के विचार से क्योंकि उन दिनों वैशाख या ज्येष्ठ का महीना था, पालकी को, "पटा" नामक कुएँ के पास उतार दिया और पानी पीने की व्यवस्था करने लगे। किसी कारणवश कुछ झगड़ा हो जाने से वहाँ के अहीरों ने उन कहारों के साथ बहुत ही दुर्व्यवहार किया। जब केशव ओड़छा पहुँचे तो यह दुर्व्यवहार की बात महाराज इन्द्रजीतसिंह तक भी पहुँची। महाराज को अत्यन्त दुःख हुआ और उन अहीरों को उस गाँव के अधिकार से वंचित कर उन्हें कड़ा दण्ड देने की घोषणा की। किन्तु उदार केशव ने उन्हें दण्ड से मुक्त कर दिया। इसके उपरान्त यह गाँव भी महाराज ने केशव को ही दे दिया। तब से आज तक "फुटेरा" केशव के वंशजों के ही अधिकार में है। शेष जागीरी गाँव बुन्देलखण्डीय राज्य-क्रान्तियों के कारण उनके अधिकार से निकल गये। यह भी सुनते हैं कि संवत् १९०० के लगभग केशव के कुछ वंशधर ओड़छा राज्याधीश्वरों की बहुत सी सनदें, जो केशवदास जी तथा उनके वंशजों को जागीर के सम्बन्ध में दी गई थीं, लेकर टीकमगढ़ में महाराज से यह निवेदन करने गये कि "महाराज इन सनदों के अनुसार या तो हमें ग्रामों पर अधिकार दिया जावे अन्यथा ये सनदें लौटा ली जावें।" परन्तु किसी ने सुनवाई न की। यहाँ तक कि दरबार में उनका प्रवेश तक भी न हो सका।

---

१. सुकवि सरोज, (प्र० भा०), पृ० १५-१६।
२. वही, वही, पृ० १२-१३।

फलतः क्रोधवश सनदों को वे वहीं नदी में डुबा कर वापिस चले आए। इतिहास से इस किंवदन्ती का समर्थन नहीं होता।

बीरबल की सहायता से महाराज इन्द्रजीतसिंह पर अकबर द्वारा किए गए जुर्माने को माफ़ कराने तथा अकबर के द्वारा प्रवीणराय पातुरी को बुलवा भेजने से सम्बन्ध रखने वाली किंवदन्तियों का उल्लेख पीछे किया जा चुका है, अतः वे फिर यहाँ नहीं दी जातीं।

केशव के प्रेत होने की बात भी बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि इन्द्रजीत के हृदय में एक बार यह भावना हुई कि उनके अखाड़े का रागरंग अनन्तकाल तक रहे। केशव ने इसके लिए उन्हें प्रेतयज्ञ करने का परामर्श दिया। तदनुसार प्रेतयज्ञ किया गया और उसमें मित्र-मण्डली के साथ मरकर केशव भी प्रेत हो गए। प्रेत-योनि में केशव का मन न लगता था। एक बार ये एक कुएँ में बैठे हुए थे। सौभाग्य से तुलसी दास जी ने पानी भरने के लिए उसी कुएँ में आकर लोटा डाला। केशव-प्रेत ने उन्हें पहचान लिया और उनका लोटा पकड़ लिया। तुलसीदास के छोड़ने के लिए बहुत कुछ कहने-सुनने पर वे बोले कि जब प्रेतयोनि से उद्धार करोगे तभी हम लोटा छोड़ेंगे। इस पर तुलसी ने उन्हें स्वरचित "रामचन्द्रिका" का २१ बार पाठ करने को कहा पर केशव को "रामचन्द्रिका" का पहला कवित्त ही स्मरण न आता था। गोस्वामी जी ने उन्हें वह स्मरण कराया और केशव को "रामचन्द्रिका" के २१ पाठ करने पर प्रेत-योनि से मुक्ति मिली[1]। यदि इस किंवदन्ती में कुछ तत्त्व है तो यही कि इनकी मृत्यु तुलसी से पूर्व हुई थी।

केशव के जीवन से सम्बन्धित सब से प्रसिद्ध किंवदन्ती यह है कि केशव एक बार किसी पनघट के पास से जा रहे थे। उस समय उस पनघट पर कुछ 'चन्द्रवदनी' युवतियाँ पानी भरने के लिए आई थीं। कहते हैं कि उनको देखकर उनमें से किसी ने केशव को "बाबा" कहकर पुकारा। यह सुन केशव को अत्यन्त दुःख हुआ। इस घटना का संकेत केशव के नाम से विख्यात निम्नलिखित दोहे में उपलब्ध होता है :

केशव केसनि अस करि, जस अरिहू न कराँहि।
मृगलोचनि चन्द्रबदनि, बाबा कहि कहि जाँहि ॥[2]

---

१. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४६३।

बाबा बेणीमाधवदास ने "मूलगोसाईं-चरित" में लिखा है कि चित्रकूट से दिल्ली जाते समय ओड़छा में तुलसीदास को केशव के प्रेत ने घेरा, तब गोस्वामी जी के अनुग्रह से बिना प्रयास ही केशव प्रेत-योनि से मुक्ति पा विमान पर चढ़कर स्वर्ग गए।

उड़छें केशवदास, प्रेत हतौ घेरेउ मुनिहिं।
उधरे बिनहि प्रयास, चढ़ि विमान स्वर्गहि गयो ॥

मूलगोसाईं-चरित, दोहा १८।

यह घटना सं० १६४६ वि० के आस-पास की है। अन्तःसाक्ष्य से इसका समर्थन नहीं होता। कारण, सं० १६६६ वि० तक केशव के जीवित रहने में सन्देह के लिए कोई स्थान ही नहीं है।

२. यह दोहा केशव के किसी भी ग्रन्थ में देखने में नहीं आता किंतु उनकी शृंगारिक प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए इस दोहे में केशव की ही छाप दिखाई देती है।

मृत्यु-संवत्—केशवदास के मृत्यु-संवत् के विषय में भी विद्वान एक मत नहीं हैं। मिश्रबन्धु[१], एफ० ई० के[२], गणेशप्रसाद द्विवेदी[३], रामनरेश त्रिपाठी[४] तथा स्व० रामचन्द्र शुक्ल[५] आदि विद्वान केशव का मृत्यु-संवत् सं० १६७४ वि० मानते हैं। गौरीशंकर द्विवेदी[६] और स्व० ला० भगवानदीन[७] के अनुसार उनकी मृत्यु-तिथि सं० १६८० है। केशव का मृत्यु-काल संवत् १६८० वि० मानना समीचीन नहीं जान पड़ता। तुलसीदास द्वारा केशव का प्रेत-योनि से उद्धार किये जाने का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। किम्वदन्ती सर्वथा निर्मूल नहीं हुआ करती। यदि इस किम्वदन्ती में कुछ तथ्यांश है तो केवल इतना ही कि केशव का देहान्त तुलसी से पहले हो चुका था। गोस्वामी तुलसीदास जी का मृत्यु-संवत् १६८० वि० माना गया है[८]। अतः, केशव निश्चित रूप से संवत् १६८० वि० से पूर्व स्वर्गलोक सिधार चुके थे।

केशव की सब से अन्तिम रचना 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' है जिसकी रचना संवत् १६६६ वि० में हुई थी[९]। इसके बाद उनकी कोई रचना नहीं मिलती। इस प्रकार यही परिणाम निकाला जा सकता है कि संवत् १६६६ के उपरान्त ही कभी कवि की मृत्यु हुई होगी। कब हुई कहा नहीं जा सकता किन्तु हुई है सं० १६७० वि० के आस-पास ही। संवत् १६७० के बाद केशव के कुछ और जीवित रहने के किसी प्रबल प्रमाण के अभाव में उनका मृत्यु-संवत् सं० १६७४ वि० मानना ठीक नहीं जंचता। केशव के वंशधरों से भी हमें उनकी मृत्यु-सम्बन्धी तिथि विदित न हो सकी। उनकी मृत्यु किस रोग में हुई और कहाँ हुई, यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है।

केशव का व्यक्तित्व

कोई भी कवि अपने काव्य को व्यक्तिगत राग-द्वेषों से अलग नहीं रख सकता। अतएव प्राप्त जीवन-तथ्यों के अतिरिक्त केवल काव्य के आधार पर भी केशव के व्यक्तित्व की स्थूल रूप-रेखा तैयार की जा सकती है।

प्रकृति और स्वभाव—केशव प्रकृति के रसिक थे। पीछे दिया हुआ प्रसिद्ध दोहा जिसमें उन्होंने 'मृगलोचनी' युवतियों द्वारा 'बाबा' सुनकर बुढ़ापे में अपने श्वेत

---

१. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४६३ तथा मिश्रबन्धु-विनोद, प्रथम भाग, पृ० २६५।
२. हिस्ट्री ऑफ हिन्दी लिट्रेचर, पृ० ३४।
३. हिन्दी के कवि और काव्य, प्रथम भाग, पृ० १८३।
४. कविता कौमुदी, प्रथम भाग पृ० २६८।
५. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३१।
६. सुकवि सरोज, प्रथम भाग, पृ० ५५।
७. केशव पंचरत्न, आकारिका-कवि परिचय, पृ० ३।
८. संवत् सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
सावन स्यामा तीज शनि, तुलसी तज्यो शरीर॥ ११६॥
—मूलगोसाईं-चरित, पृ० ३६।
९. सोरह सै उनहत्तरा माधव मास विचारु।
जहाँगीर सक साहि की, करी चन्द्रिका चारु॥
—ज० ज० चं०, छं० २।

बालों को कोसा है, इस बात का साक्षी है कि केशव में जीवन के अन्तिम दिनों तक रसिकता एवं भावुकता पर्याप्त मात्रा में रही। किन्तु केशव की यह रसिकता कोरी रसिकता न थी जिसका सम्बन्ध केवल भोग-विलास से ही होता है। इसमें एक विशेष संयम भी था। 'रामचन्द्रिका' में राम के पलकाचार के अवसर पर राम के नखशिख (प्र० ६, छं० ४६-५८) और राम-राज्याभिषेक के अनन्तर शुक द्वारा सीता की दासियों के नखशिख का वर्णन (प्र० ३१) इस बात का प्रमाण है। केशव में भक्ति की वह तन्मयता न थी जो तुलसी, सूर आदि वैष्णव भक्त-कवियों में दृष्टिगोचर होती है। राजाश्रित अधिकांश कवियों की भक्ति ऐसी ही थी। भक्त न होते हुए भी वे भक्त बनने का दम भरते थे।

व्यवहार-कुशलता आदि—राजदरबारी कवि के लिए व्यवहार-कुशलता, वाग्विदग्धता, विनोदात्मकता आदि जिन गुणों की आवश्यकता होती है वे सभी केशव में विद्यमान थे। यही कारण है कि वे सदैव उचित आश्रयदाता प्राप्त करने में समर्थ रहे और उनके विशेष सम्मान के पात्र रहे। उनके प्रसाद से केशव को कभी रुपये-पैसे की कमी न रही। केशव में हास्य और विनोद भी पर्याप्त मात्रा में था। किसी कर्कशा स्त्री पर व्यंग की बौछार करते हुए केशव लिखते हैं, 'कैसी मधुर वाणी है कि झींगुरी की वाणी से भी बारीक और रसीली है, टिटिहरी की रटन को भी निगल गई है, शृंगाली की वाणी से सवाई और चुड़ैल की बोली से बढ़कर है, भैंस की बोली से अच्छी और ऊँटिनी की बोली से अधिक स्पष्ट है। सूअरी संकोचवश और कुतिया भयभीत होकर चुप हो रही, घुघुवारिन की तो बात ही क्या है, उसे सुनकर हथिनी भी मोहित हो जाती है (क० प्रि०, प्र० ६, छं० ४४)। 'रामचन्द्रिका' के सम्वादों में अनेक स्थल ऐसे हैं जिन से केशव की वाक्पटुता प्रकट होती है।

स्वाभिमान और विशालहृदयता—केशवदास को अपने पाण्डित्य का बड़ा अभिमान था। यही कारण है कि उन्होंने अपने लिए जानत सकल जहान[1], सुजान[2], कवि शिरमौर[3] आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। उनमें स्वजात्यभिमान की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी। उन्होंने अवसर-अनवसर का ध्यान किए बिना ही सनाढ्य-वंश की उत्पत्ति तथा उसके गुणों का सीमा से अधिक वर्णन किया है[4], जो स्पष्ट ही उनके हृदय की संकीर्णता का द्योतक है। किन्तु अपनी जाति को अपने स्थान में सुदृढ़ रूप में स्थापित रखने की चिन्ता ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाध्य किया था, अन्यथा उनका हृदय विशाल था। इसी विशाल-हृदयता के कारण ही वे पतिराम और चन्द जैसे छोटे से छोटे व्यक्तियों से, जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है, मिलने में भी तनिक

---

१. एक तहाँ केशव सुकवि, जानत सकल जहान। र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५।
२. सो विच्छित्ति विचरिये, केशवराय सुजाना। र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४५।
३. विप्रलंभ तासों कहै, केशव कवि शिरमौर। र० प्रि०, प्र० ८, छं० १।
ठौर-ठौर वरणत कवि शिरमौर। वि० गी०, प्र० १०, छं० १४।
तासों कहत विभावना, कवि शिरमौर। क० प्रि०, प्र० ६, छं० ११।
४. रा० चं०, प्र० २१, छं० १५-२० तथा प्र० ३४, छं० ४५, ५५ और ५६।

संकोच न करते थे। इन्द्रजीतसिंह तथा बीरबल के केशव से यह कहने पर कि माँगो जो कुछ माँगना हो केशव उनसे क्रमशः 'एकरस कृपा' तथा 'दरबार का मुक्त-प्रवेश' ही माँगते हैं[1]। यह इस बात का प्रमाण है कि केशव की दृष्टि में धन की अपेक्षा प्रतिष्ठा का अधिक मूल्य था।

निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता—केशव बड़े निर्भीक और स्पष्टवक्ता थे। अपने आश्रयदाताओं की हाँ में हाँ मिलाना उन्हें न भाता था। जब महाराज वीरसिंहदेव आक्रमण करते हैं तो वे निःसंकोच राजा रामशाह तथा उनके शुभचिन्तक इन्द्रजीत तथा रावभूपाल को उनकी न्यूनता का ध्यान दिलाकर हठ छोड़ देने और वीरसिंह देव को राज्य सौंप देने का परामर्श देते हैं[2]। वीरसिंह के पास जब मंगद पायक, प्रेमा और केशव चिरस्थायी सन्धि कराने के निमित्त भेजे जाते हैं, तब केशव वाम और दक्षिण मार्गों का अनुसरण करने की क्रमशः हानि और लाभ की चर्चा करते हुए उनको दक्षिण मार्ग का अनुगमन अर्थात् रामशाह के चरणों की सेवा करने की सम्मति देते हैं[3]। इस प्रकार का आचरण केशव-सा निष्पक्ष एवं निर्भीक व्यक्ति ही कर सकता था। 'रामचन्द्रिका' से भी केशव की निर्भीकता के उदाहरण दिये जा सकते हैं। एक उदाहरण देना यहाँ पर्याप्त होगा। केशव के हृदय में राम द्वारा सीता का परित्याग सदैव खटकता रहा। इस कारण लव-कुश द्वारा शत्रुघ्न और लक्ष्मण के पराजित होने का समाचार प्राप्त करने पर वे अपने इष्टदेव राम के प्रति भी भरत के मुख से यह कहलवाने में नहीं चूकते कि जिसके चरित्र का कीर्तन सुनने से संसार पवित्र हो जाता है ऐसी सीता को आपने किस पाप के कारण त्याग दिया। जो निर्दोष को दोषी ठहराता है उसे ऐसा फल मिलना स्वाभाविक ही है[4]।

नीति-निपुणता—केशव बड़े ही नीति-निपुण थे। परस्पर विरोधी आश्रयदाताओं की छत्रच्छाया में रहते हुए सबको प्रसन्न रखना तथा उनके कृपा-भाजन बने रहना केशव की नीति-निपुणता का परिचायक है।

भाग्यवादिता—केशव भाग्यवादी तो अवश्य थे पर साथ ही वे 'उद्यम' के भी प्रबल समर्थक थे[5]।

---

१. क० प्रि०, प्र० २, छं १८, १९।
२. बी० दे० च०, पृ० ७९।
३. बी० दे० च०, पृ० ७२-७४।
४. पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता।
दोषविहीनहिं दोष लगावैं, सो प्रभु ये फल काहे न पावैं॥
—रा० चं०, प्र० ३६, छं० ३२।
५. होनहार जग बात कछु ह्वै ही रहै निदान।
ब्रह्माहूँ मेटन लगे, तउ न मिटै परवान॥
—वि० गी०, प्र० १३, छं० १३।
लिख्यौ कर्म को मेट न जाय। कहा रंक कह राजा राय॥
—बी० दे० च०, पृ० १२।
घट बढ़ि अपने कर्मंहि लगि। उद्दिम सब की कीरति जगी॥
—बी० दे० च०, पृ० ३२।

आस्तिकता—ईश्वर में भी केशव की पूर्ण आस्था थी। 'वीरसिंहदेव-चरित' में एक स्थान पर केशव सलीम के मुँह से कहलवाते हैं कि यह साहिबी ईश के हाथ है। कोई किसी की दी हुई नहीं पाता। रंक से राजा और राजा से रंक होते कुछ देर नहीं लगती[1]।

केशव की जानकारी

केशव के वंश में संस्कृत-साहित्य के पाण्डित्य की परम्परा बहुत दिनों से चली आती थी, इसका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। केशव ने स्वयं भी संस्कृत का विस्तृत अध्ययन किया था और उसमें उनकी गहरी पैठ थी। अलंकार तथा काव्यशास्त्र के वे आचार्य थे। छन्दःशास्त्र का ज्ञान भी उनका व्यापक एवं विस्तृत था। साहित्यिक ज्ञान के साथ लोकज्ञान भी उनमें पर्याप्त मात्रा में विद्यमान था। लोक-ज्ञान का कोई भी ऐसा विषय न था जहाँ उनकी थोड़ी-बहुत पहुँच न हो। इसके अतिरिक्त राजनीति, धर्मनीति, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र, दर्शनशास्त्र, संगीतशास्त्र, पुराण, इतिहास आदि विषयों की भी केशव को पूरी-पूरी जानकारी थी। केशव के ग्रन्थों में इन विषयों से सम्बन्धित तथ्यों एवं बातों का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है।

राजनीति-परिचय—केशव को राजनीति का भी अच्छा ज्ञान था। 'रामचन्द्रिका' ग्रन्थ के १७वें प्रकाश में रावण के मन्त्री ने चार प्रकार के राजा, चार भाँति के मन्त्री और चार ही प्रकार के मन्त्रों का विवेचन किया है (छं० २१-२६)। इसी ग्रन्थ के ३६वें प्रकाश में भी राज्य-वितरण के उपरान्त रामचन्द्र जी से पुत्रों एवं भतीजों को राजनीति की शिक्षा दिलाई गई है (छं० २६-३६)। 'विज्ञानगीता' के ६वें प्रभाव में भी संक्षिप्त रूप से राज-धर्म का वर्णन किया गया है और 'वीरसिंहदेव-चरित' में तो ३१वां सम्पूर्ण प्रकाश ही राज-धर्म वर्णन में लग गया है। इस विषय पर सविस्तर आगे विचार किया गया है।

धर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र-परिचय—धर्मशास्त्र तथा योगशास्त्र का भी केशव को कुछ परिचय अवश्य था। 'रामचन्द्रिका' के २१वें प्रकाश में दान के सात्विक, राजसिक और तामसिक तथा उत्तम, मध्यम और अधम नामक भेदों का वर्णन किया गया है (छं० २-७)। साथ ही 'नित्यदान' और 'नैमित्तिक दान' का भी उल्लेख किया गया है (छं० ८)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' के २८वें प्रकाश में भी दान के इन्हीं भेदों का निरूपण हुआ है।[2] सम्पूर्ण वर्णन शास्त्रसम्मत ही हुआ है। प्राणायाम

---

१. रामदास सुनि मेरी गाथ। यह साहिबी ईस के हाथ ॥
स्वर्ग नर्क दसहू दिसि धावैं। काहू की कोउ दई न पावैं ॥
रंकहि राजा होत न बार। राजा रंक भयेति अपार ॥
—वी० दे० च०, पृ ५०।

२. तीन प्रकार कहावत दान। सत्व रजोगुन तमो निधान ॥
पात्र सुविप्रहि दीजो दान। देस काल सो सात्विक जान ॥
अनाचार साचार अगाधु। मूरख पढ्यो कि साधु असाधु ॥

इत्यादि का प्रसंग केशव ने 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचन्द्रिका' में उठाया है, जिसका विवेचन आगे किया गया है।

दर्शनशास्त्र-परिचय—'विज्ञानगीता' के आधार पर यह कहना अत्युक्ति न होगी कि केशव ने दर्शनशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों का खूब मनन किया था। इस ग्रन्थ में ईश्वर-जीव-सम्बन्धी प्रश्न का विस्तृत विवेचन हुआ है। 'रामचन्द्रिका' के २४वें प्रकाश में भी 'रामविरक्ति-वर्णन' और 'जीवोद्धार-रीति' के अन्तर्गत इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है।

संगीतशास्त्र-परिचय—केशव ने संगीत, नृत्य आदि के सिद्धान्तों का शास्त्रीय पद्धति पर अध्ययन किया था। 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' में गान-सम्बन्धी शास्त्रीय बातों एवं नृत्य के अनेक भेदों का जो निरूपण केशव ने किया है उससे इस विषय का उनका ज्ञान प्रकट होता है। केशव का संगीतशास्त्र-सम्बन्धी स्वर, नाद, ग्राम आदि शास्त्रीय बातों से परिचय निम्नांकित छन्द से विदित होता है[१]। नृत्य के मुख्यचालि, शब्दचालि, उड्डुपानि, तिर्यंगपति, पति, अडाल, लाग, धाउ, रापरंगाल, उलथा, टेंकी, आलम, दिड, पदपलटी, हुरमयी, निःशंक तथा विड नामक १७ भेदों का भी केशव ने वर्णन किया है (रा० चं०, प्र० ३०, छं० ५)। इसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' में भी संगीतशास्त्र-विषयक नाद, ग्राम, स्वर, ताल, लय, गमक, कला, मूर्च्छना आदि शास्त्रीय सिद्धान्तों एवं शब्दचालि, टेंकी, अडाल, उलथा, आलम, दिड, हरमति, निःशंक आदि नृत्य के भिन्न-भिन्न भेदों का निरूपण हुआ है (वी० दे० च०, पृ० १२३)।

इतिहास-पुराण-परिचय—केशव ने रामायण, महाभारत और पुराणों का अवश्य ही अध्ययन किया होगा। पुराण-वृत्ति केशव के वंश की आजीविका ही थी। उनके प्रायः सभी ग्रन्थों में यत्र-तत्र रामायण, महाभारत और पुराण आदि की कथाओं का संकेत उपलब्ध होता है। इस प्रकार के तीन छन्द नीचे दिये जाते हैं—

१. बालि बिध्यो, बलिराव बंध्यों, कर शूली के शूल कपाल थली है।
काम जर्‌यो जग, काल पर्‌यो बंदि, शेष धर्‌यो विष हाला हली है।
सिंधु मथ्यो, किल कालो नथ्यो, कहि केशव इन्द्र कुचाल चली है।
राम हू की हरी रावण बाम, चहुँ युग एक अदृष्ट बनी है।
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ५४)

विप्र होत जग जुग अनुरूप। तातें विप्र अतिथि को रूप॥
आपुन देय देय जुग दान। तासों कहियें राजसु दान॥
बिन श्रद्धा अरु वेद विधान। दान देहि ते तामस दान॥
तीन्यौ तीनि तीनि अनुसार। उत्तम मध्यम अधम विचार॥
—वी० दे० च०, पृ० १५७।

१. स्वर नाद ग्राम नृत्यत सताल। सुभ बरन विविध आलाप काल॥
बहु कला जाति मूर्च्छना मानि। बड़भाग गमक गुण चलत जानि॥
—रा० चं०, प्र० ३०, छं० ३।

२. आशीविष, सिंधुविष, पावक सों नातो कहा,
हुतो प्रह्लाद सों, पिता को प्रेम टूटो है ।
द्रौपदी की देह में छुयो ही कहा दुःशासन,
खरोई खिसानो खैंचि बसन न खूँटो है ।
पेट में परीछित की पैठि कै बचाई मीचु,
जब सबही को बल बिधिबान लूटो है ।
केशव अनाथन को नाथ जो न रघुनाथ,
हाथी कहा हाथ कै हथ्यार करि छूटो है ॥
(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ११)

तथा

३. गर्ग हो निशर्गभाव सर्व अप्रमान हो,
अंगिरा गिरा बिरा गिरीश के प्रमान हो ।
कश्यपू कि बश्य कै अदेव देव छंडियो,
जन्हु हो कि जन्हु भूवि शृज्य दुष्ट दण्डियौ ॥
(वि० गी०, प्र० १६, छं० ५०)

केशव का इतिहास से भी अच्छा परिचय था । उनके इतिहास-ज्ञान की चर्चा आगे की गई है ।

ज्योतिष-परिचय—'रामचन्द्रिका' में महाराज रामचन्द्र के नखशिख-वर्णन का प्रसंग केशव के ज्योतिष-ज्ञान का सूचक है । ज्योतिष के अनुसार उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा के कुछ अंश मकर राशि में पड़ते हैं । इसी तथ्य का आभास निम्न-लिखित छन्द में मिलता है[१] ।

वैद्यक-परिचय—'रामचन्द्रिका' में परशुराम के मुख से वैद्यक-सम्बन्धी साधारण ज्ञान का जो परिचय दिलाया गया है उससे ज्ञात होता है कि केशव को वैद्यक का थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य था । वैद्यक के अनुसार विष खाए हुए व्यक्ति का उपचार रक्त, घृत अथवा सुधा (चूने का पानी) मिलाना है । परशुराम के कुठार ने हैहयराज सहस्रार्जुन का मांसरूपी हलाहल खाया था, उसके शमन के लिए उसे अनेक राजाओं की चर्बी घृत के समान घोलकर पिलाई गई किन्तु विष की शान्ति न हुई । अब राम की रक्तरूपी सुधा का पान ही एकमात्र उपचार है[२] । इस प्रकार की ज्योतिष,

---

१. श्रवण मकर-कुंडल लसत मुख सुखमा एकत्र ।
शशि समीप सोहत मनो श्रवण मकर नक्षत्र ॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० ४१ ।

२. केशव हैहयराज को मांस हलाहल कौरन खाय लियो रे ।
तालगि मेद महीपन को घृत घोरि दियो न सिरायो हियो रे ॥
मेरो कह्यो करि मित्र कुठार जो चाहत है बहुकाल जियो रे ।
तौ लौ नहीं सुख जौ लग तू न रघुवीर को श्रोण सुधा न पियो रे ॥
—रा० चं०, प्र० ७, छं० २१ ।

वैद्यक-सम्बन्धी उक्तियों को देखकर स्व० ला० भगवानदीन ने केशव को वैद्यक का पूर्ण ज्ञाता ही मान लिया था। हमारे विचार से तो ऐसी सामान्य बातों का ज्ञान तो सभी को होता है। इसके लिए आयुर्वेदाचार्य होने की कोई आवश्यकता न थी।

अस्त्र-शस्त्र तथा हय-गज-परिचय—केशव ने 'रामचन्द्रिका' में उन्नीसवें प्रकाश के ४६वें छन्द में मूसल, पट्टिश (खांडा), परिघ (गंड़ासा), असि, तोमर (शापला), फरसा, कुंत (बरछी), शूल, गदा, भिंदिपाल (ढेलवांस, फन्नी), मोगरा (मुन्दर), कटार, नेजा, अंकुश, चक्र, शक्ति (सांगा) और बाण आदि अस्त्र-शस्त्र गिनाए हैं, जो उनके इस विषय के ज्ञान के परिचायक हैं। इसके अतिरिक्त केशव हय-गज आदि के लक्षणों से भी परिचित थे। 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'हयसाला-वर्णन' के प्रसंग के अन्तर्गत केशव ने घोड़ों की जाति और उनकी विशेषताओं आदि का सविस्तर वर्णन किया है (पृ० ११०-११२)। 'कविप्रिया' में केशव ने संक्षेप में अश्वों के अतिरिक्त हाथियों के गुणों का भी उल्लेख किया है[1]।

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशवदास का व्यक्तित्व निश्चय ही भावुकता, अध्ययन एवं अनुभव से समृद्ध था।

---

१. तरल, तताई, तेजगति, मुख सुख, लघु दिन देखि।
देश, सुवेश, सुलक्षणै, वरनहु वाजि विशेखि॥
मत्त, महाउत हाथ में, मंद चलनि, चल कर्ण।
मुक्तामय, इभ कुंभ शुभ, सुन्दर, शूर, सुवर्ण॥
क० प्रि०, प्र० ८, छं० २५, २७।

तीसरा अध्याय

केशव के ग्रन्थ

(संख्या, प्रामाणिकता, रचनाकाल और विभाजन)

केशव के ग्रन्थों और उनकी संख्या के विषय में हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों एवं विद्वानों में मतभेद है। केशवदास के ग्रन्थों का सर्वप्रथम उल्लेख फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा द तासीकृत 'इस्तवार द ला लितरात्यूर ऐंदुई ए ऐंदुस्तानी' में मिलता है। तासी ने केशवदास-कृत आठ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनके नाम हैं—रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, एकादशी चा (का) यंत्र (छेत्र?), भक्त लीलामृत, जैमिनी भारत तथा सतसई दोहरा[1]। विद्वान् लेखक ने यह नहीं लिखा है कि अन्तिम चार रचनाओं को केशव-कृत मानने के लिए उनके पास क्या प्रमाण और आधार है। हिन्दी साहित्य के किसी भी इतिहास-ग्रन्थ अथवा नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्ट में इनके केशव-कृत होने का कोई उल्लेख नहीं मिलता। तासी ने भूल से उन्हें आलोच्य केशव द्वारा रचित मान लिया है। इसके बाद 'शिवसिंह-सरोज' में केशव के ग्रन्थों का उल्लेख उपलब्ध होता है। सरोजकार लिखते हैं—

"(केशवदास सनाढ्य मिश्र ने) प्रथम मधुकर शाह के नाम से विज्ञानगीता ग्रन्थ बनाया और कविप्रिया ग्रन्थ प्रवीणराय पातुर के लिए रचा। रामचन्द्रिका राजा मधुकर शाह के पुत्र इन्द्रजीत के नाम से बनाई और रसिकप्रिया साहित्य और राम-अलंकृत-मंजरी-पिंगल—ये दोनों ग्रन्थ विद्वज्जनों के उपकारार्थ रचे[2]।" इस प्रकार सरोजकार के अनुसार केशव के ग्रन्थों की संख्या पाँच ठहरती है। 'सरोज' में उन्होंने उपर्युक्त ग्रन्थों के कुछ उदाहरण भी उद्धृत किये हैं[3]। इन उदाहरणों के अतिरिक्त उन्होंने पाँच फुटकर पद्य भी दिये हैं[4]। सरोजकार ने 'विज्ञानगीता' को केशव की सर्वप्रथम रचना क्यों माना है, इसका उन्होंने कोई उल्लेख नहीं किया है। अन्तःसाक्ष्य से इसका समर्थन नहीं होता। ग्रियर्सन महोदय ने भी सरोजकार के आधार पर उनके ग्रन्थों की संख्या पाँच ही रखी है। नाम और क्रम में भी कोई अन्तर नहीं

---

१. हिन्दुई साहित्य का इतिहास, पृ० ४१,४२।

२. शिवसिंह सरोज, पृ० ३८६।

३. वही, पृ० १८-२०।

४. वही, पृ० २०-२१।

है[1]। डा० सूर्यकान्त शास्त्री[2], पं० खड्गजीतसिंह मिश्र[3] तथा सूर्यनारायण दीक्षित[4] आदि विद्वानों ने भी सम्भवत: सरोजकार ही के आधार पर केशव के इन्हीं पाँच ग्रन्थों के नामों का उल्लेख किया है। मिश्रबन्धुओं ने केशव के ग्रन्थों की संख्या आठ रखी है। उनके नाम इस प्रकार हैं—रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, विज्ञान-गीता, वीरसिंहदेव चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, नखशिख और रतनबावनी। अन्तिम दो ग्रन्थों के विषय में लिखा है कि उन्होंने इनको नहीं देखा[5]। हो सकता है उन्हें उनकी सूचना-मात्र ही मिली हो। उन्होंने अपने 'हिन्दी नवरत्न' में आठ के स्थान पर सात ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनके नाम ये हैं—रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-चन्द्रिका और नखशिख। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने केशव द्वारा कुछ स्फुट छन्दों के लिखे जाने का भी उल्लेख किया है[6]। इससे विदित होता है कि उनको 'हिन्दी नवरत्न' की रचना के समय 'नखशिख' तो देखने को मिल गया हो पर 'रतनबावनी' देखने को न मिली हो। इस प्रकार 'रतनबावनी' का उल्लेख न होने से ग्रन्थों की संख्या आठ के स्थान पर सात ही रह गई। ग्रन्थों की संख्या सात ही मानने के विषय में मिश्रबन्धु स्वयं सर्वथा मौन ही हैं। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी 'कविता कौमुदी' (प्रथम भाग) में केशव के आठ ग्रन्थों का उल्लेख किया है[7]। उनके नाम और क्रम मिश्रबन्धुओं के समान ही हैं। एफ० ई० के ने भी 'सरोज' के आधार पर केशव के पाँच ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है। वे हैं—विज्ञानगीता, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, रसिकप्रिया और राम-अलंकृत मंजरी (पिंगल)[8]। श्री गौरीशंकर द्विवेदी ने अपने 'सुकवि सरोज' (प्रथम भाग) में केशव के ७ ग्रन्थों के नाम दिये हैं—रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, विज्ञानगीता, वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-चन्द्रिका और रतनबावनी। 'राम-अलंकृत-मंजरी' को वे लुप्त बतलाते हैं। उन्होंने 'नखशिख' का कोई उल्लेख नहीं किया है[9]। हमने उनसे स्वयं पूछताछ की है पर वे कहते हैं कि उक्त दोनों ही ग्रन्थ उन्होंने नहीं देखे। स्वयं रामचन्द्र शुक्ल[10], डा० रामकुमार वर्मा[11] आदि सभी हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने केशव द्वारा रचित सात ही ग्रन्थों का उल्लेख किया है।

---

१. दि मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिट्रेचर ऑफ हिन्दुस्थान, पृ० ५८।
२. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास, पृ० १७०।
३. सरस्वती, संख्या १२, भाग ४, दिसम्बर सन् १६०३ ई०, पृ० ४१०, 'कवि केशवदास मिश्र' शीर्षक लेख।
४. नागरी-प्रचारिणी पत्रिका, भाग ११, पृ० १६५, राजपूताने में प्राचीन शोध (अंक १ का अवशिष्ट)।
५. मिश्रबन्धु विनोद (प्रथम भाग), पृ० २६५।
६. हिन्दी नवरत्न, पृ० ४६५।
७. कविता कौमुदी (प्रथम भाग), पृ० २६८।
८. हिस्ट्री आफ हिन्दी लिट्रेचर, पृ० ३४।
९. सुकवि सरोज, प्र० भा०, पृ० १६।
१०. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३३।
११. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६६।

उनके नाम ये हैं—रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, कविप्रिया, वीरसिंहदेव-चरित, विज्ञान-गीता, रतनबावनी और जहाँगीर-जस-चन्द्रिका। डा० रामकुमार वर्मा ने 'नखशिख' का भी उल्लेख किया है। इसके विषय में वे लिखते हैं कि ला० भगवानदीन जी के अनुसार उनका आठवाँ ग्रन्थ 'नखशिख' है जिसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है[1]। छत्रपूर-निवासी गोविन्ददास जी के अनुसार केशव के सात ग्रन्थों के नाम हैं—रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, विज्ञानगीता, राम-अलंकृत-मंजरी, रतनबावनी और वीरसिंहदेव-चरित[2]। जान पड़ता है कि इन्होंने रचना-क्रम का कोई ध्यान नहीं रखा है। श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी ने इन ग्रन्थों के अतिरिक्त आठवें 'नखशिख' का और उल्लेख किया है। 'राम-अलंकृत-मंजरी' के विषय में वे लिखते हैं कि यह ग्रन्थ न तो अभी प्रकाशित ही हुआ है और न इसकी कोई प्रति लभ्य है[3]। स्व० ला० भगवानदीन ने केशव के जिन ग्रन्थों का उल्लेख किया है उनके नाम ये हैं—छन्दःशास्त्र का कोई एक ग्रन्थ, राम-अलंकृत-मंजरी, जहाँगीर-चन्द्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, रतनबावनी, रसिकप्रिया, कविप्रिया, रामचन्द्रिका, विज्ञानगीता तथा नखशिख। उन्होंने साथ ही यह भी लिखा है कि उनके फुटकर छन्द भी जहाँ-तहाँ देखने-सुनने में आते हैं[4]। स्व० डा० श्यामसुन्दरदास ने भी लाला जी द्वारा निर्दिष्ट ग्रन्थों का ही उल्लेख किया है[5]।

नागरी-प्रचारिणी सभा की खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित ग्रन्थ

नागरी-प्रचारिणी सभा की सन् १९०० की खोज रिपोर्ट नं० ५२ में केशवदासमिश्रकृत कविप्रिया, रसिकप्रिया, विज्ञानगीता, रामचन्द्रिका और रामालंकृत-मंजरी नामक पाँच ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है[6]। सन् १९०३ की खोज-रिपोर्ट में केशवदासमिश्र-कृत छः ग्रन्थों के नाम मिलते हैं, रामचन्द्रिका[7], नखशिख[8], रसिकप्रिया[9], जहाँगीर-जस-चन्द्रिका[10], वीरसिंहदेव-चरित[11] और रतनबावनी[12]। सन् १९०६-१९०८ की खोज-रिपोर्ट में भी केशवदास मिश्र द्वारा रचित छः ही ग्रन्थों का उल्लेख उपलब्ध होता है, विज्ञानगीता, कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका, रतनबावनी

---

१. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६६६।
२. लक्ष्मी, भाग ७, अंक ४ तथा ५, 'बुन्देलखण्ड रत्नमाला' शीर्षक लेख।
३. हिन्दी के कवि और काव्य, प्र० भा०, पृ० १९३-१९५।
४. केशव-पंचरत्न, आकाशिका-केशव के ग्रन्थ, पृ० ७।
५. हिन्दी साहित्य, पृ० २५२।
६. ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, पृ० ४९।
७. वही, पृ० १६।
८. वही, पृ० २३।
९. वही, पृ० ६०।
१०. वही, पृ० ३१।
११. वही, पृ० १७७-१७८।
१२. वही, पृ० १७८।

੧

[illegible] ਇਕ [illegible] ॥ ੴ ਸਤਿਗੁਰ ਪ੍ਰਸਾ
ਦਿ [illegible]
[illegible] ॥ ਅਨੰਗ [illegible] ਗਿਆਨਾ
[illegible] ਹੀ ਗਯਾਰੀ ॥ ਤ੍ਰੈ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥੧॥
[illegible] ਨਜਾਨੈ ਪ੍ਰਭ [illegible] ॥ ਮਹਾਦੇਵ ਕੇਦੇਵ [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ਦਾ [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ਸਤ੍ਰੈ ਸਗਰੇ [illegible]
[illegible] ਨੇਤ੍ਰ ਨੇ [illegible] ॥ [illegible]
[illegible] ਪ੍ਰਗਟ [illegible] ਅਤ [illegible] ॥ ਤ [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ਪਾਨ [illegible]
॥ਪ॥ [illegible] ॥ [illegible] ॥ [illegible]

तथा वीरसिंहदेव-चरित[1]। सन् १९१७-१९१९ की खोज-रिपोर्ट नं० ९६ 'अ' और 'ब' एवं रि० नं० ८२ 'स' में 'रसिकप्रिया', रि० नं० ९२ 'ब' और रि० नं० ९६ में 'कविप्रिया' तथा रि० नं० ८२ 'अ' में 'विज्ञानगीता' का केशवदास-कृत होना लिखा है। सन् १९२६ की खोज-रिपोर्ट नं० २३३ 'अ' और सन् १९२७ की खोज-रिपोर्ट नं० ८२ में केशवदास-कृत 'बारहमासा' नामक ग्रन्थ का भी विवरण प्राप्त होता है। खोज-रिपोर्टों में केशवदास के नाम से उपलब्ध उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त केसोराइ, केशवराय अथवा केशव के नाम से भी कुछ अन्य ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। उनके नाम इस प्रकार हैं, जंमुन की कथा (केसोराइ-कृत)[2], हनुमान जन्मलीला और बालचरित्र (केशव-कृत)[3], रसललित (केशवराय-कृत)[4] तथा कृष्ण-लीला (अपूर्ण-केशव उचहरा कृत)[5]।

केशवदास की अमीघूंट—खोज-रिपोर्ट में उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त केशवदास के नाम से 'अमीघूंट' नामक एक छोटा-सा ग्रन्थ और देखने में आता है। इस ग्रन्थ में ११ पृष्ठ तथा ७७ पद्य हैं। सम्पूर्ण ग्रन्थ रागमंगल (२१ पद्य), फुटकर शब्द (३९), रेखता (६) और साखी (११) नामक शीर्षकों में विभक्त है। इस ग्रन्थ का चौथा संस्करण सन् १९५१ में बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था।

केशवदास का छन्दःशास्त्र का नवीन ग्रन्थ—छन्दमाला—बीकानेरनिवासी श्री अगरचन्द नाहटा के सौजन्य से हमें केशवदास की छन्दःशास्त्र पर लिखी एक नवीन रचना 'छन्दमाला' का पता चला है जिसका उल्लेख अभी तक कहीं नहीं हुआ। उन्हीं से हमें इस ग्रन्थ की प्रतिलिपि उपलब्ध हुई है। इसी ग्रन्थ की एक हस्तलिखित प्रति[6] हमें गुरुमुखी लिपि में भी मिली है, जिसके प्रथम पृष्ठ का फ़ोटो प्रिण्ट सामने दिया गया है। पाठकों के अवलोकनार्थ उसकी देवनागरी प्रतिलिपि भी 'परिशिष्ट' में जोड़ दी गई है। यह प्रति जहाँ-तहाँ पाठभेद के साथ देवनागरी लिपि में लिखित आलोच्य प्रति से बिल्कुल मिलती है। उक्त प्रति का विशेष विवरण इस प्रकार है—

"यह समस्त ग्रन्थ २४ पत्रों में समाप्त होता है। इसका साईज ६३/४"×६" है। दोनों ओर हाशिये छोड़े हुए हैं। हाशियों तथा कोनों को कीड़ों ने खाया हुआ है। इसी प्रति में अन्त के दो पत्रों में पाँच कवित्त भी दिए हुए हैं। ग्रन्थ में निर्माण-काल, प्रतिलिपिकाल अथवा प्रतिलिपिकार का कोई उल्लेख नहीं है।"

---

१. ना० प्र० सभा खोज-रिपोर्ट, पृ० ७।
२. वही, सन् १९१७-१९१९।
३. नागरी-प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट, नं० १४६ 'अ' और 'ब', सन् १९०९-१९११।
४. नागरी-प्रचारिणी सभा खोज-रिपोर्ट नं० १४९, सन १९०९-१९११।
५. वही, नं० ८१, सन् १९२०-१९२२।
६. यह प्रति हमें महेन्द्र कॉलेज, पटियाला के पंजाबी विभाग के अध्यक्ष तथा हमारे सहयोगी प्राध्यापक सरदार प्रीतमसिंह के सौजन्य से मिली है।

ग्रन्थों की प्रामाणिकता एवं रचनाकाल

सौभाग्य से केशवदास ने अपने विषय में अपनी कृतियों में यत्र-तत्र बहुत कुछ कह दिया है। अतः, उनके ग्रन्थों के रचनाकाल तथा प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई गहरा मतभेद नहीं हुआ है। लगभग सभी ग्रन्थों के रचनाकाल से परिचित होने में कोई कठिनाई नहीं होती। प्रामाणिकता के विषय में भी स्वयं केशवदास के शब्द साक्षी हैं। इसके अतिरिक्त जो छन्द एक ग्रन्थ में हैं वे लगभग दूसरे ग्रन्थों में भी कभी किंचित् पाठान्तर के साथ और कभी ज्यों के त्यों देखने में आते हैं।

रतनबावनी—केवल यही एक ऐसी रचना है जिसकी प्रामाणिकता में हमें कुछ सन्देह है। ना० प्र० सभा की हस्तलिखित प्रति तथा 'केशव पंचरत्न' में 'रतनबावनी' के संकलित छन्दों के निरीक्षण से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इनमें कुछ क्षेपक अवश्य हैं। वहाँ जो युद्ध का कारण दिया हुआ है कि अकबर के आक्रमण करने पर कुंवर रतनसेन अपने देश की रक्षा के निमित्त वीरगति को प्राप्त हुआ, वह इतिहास से सर्वथा विपरीत है। इतिहास ही क्या स्वयं केशव का भी कथन है कि रतनसेन ने अकबर को गौड़ देश जीत कर दिया और वहीं लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ[1]। 'रतनबावनी' से और भी उद्धरण[2] दिए जा सकते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि रतनसेन को गौड़ देश के पठानों ही से लोहा लेना पड़ा और उस ही युद्ध में उसने अपने प्राण भी गंवाए। अकबर के साथ युद्ध में वह कदापि नहीं मारा गया। किन्तु फिर भी रतनसेन-से असाधारण वीर के गुणों का कीर्तन करने के लिए ओड़छा के दरबारी कवि केशवदास द्वारा ग्रन्थ का प्रणयन स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार इस ग्रन्थ में ओज गुण के अनुरूप सज्जिव, उठ्ठिव, दिज्जहु आदि द्वित्व वर्ण प्रयुक्त हैं, इसी प्रकार के शब्द युद्ध तथा वीर रस के प्रसंग में कहीं-कहीं 'रामचन्द्रिका' और 'वीरसिंहदेव-चरित' में भी देखने में आते हैं[3]। 'रतनबावनी' की रचना कब हुई, यह तो निश्चित रूप से

---

१. गौर जीत अकबर कौं दियो। जूझ ब्याज वैकुण्ठहि गयो॥
—वी० दे० च०, पृ० १७।

२. (अ) जहं अमान पठान ठान हियवान सु उट्ठिव।
तहं केशव काशी नरेश दल रोष मरिट्ठिव॥
....
जहं रतनसेन रण कहं चलिव हल्लिय मंहि कंप्यो गयन।
तहं ह्वं दयाल गोपाल तब विप्रभेष बुल्लिय बयन॥
—रतनबावनी, छन्द १०।

(आ) ठान ठान निज शान मुरकि पाठान जु धाए।
काढ़ काढ़ तरवार तरल ता छिन तठ आए।
इक इक्क घाउ घल्लिव सबन रतनसेन रणधीर कहं।
—रतनबावनी, छन्द ३१।

३. (अ) मत्तदंति अमत्त ह्वं गये देखि देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेश केशव दुंदुभी नहि बज्जहीं॥
—रा० चं०, प्र० ७, छन्द २।

नहीं कहा जा सकता। दुर्भाग्य से इस रचना के विषय में बहिस्साक्ष्य का भी अभाव है। स्वयं केशव भी इस विषय में मौन हैं। वस्तु तथा शैली की दृष्टि से इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्राप्त कृतियों में यही केशव की सबसे पुरानी कृति है अफगानों के साथ लड़ते हुए संवत् १६३७ वि० में रतनसेन का निधन हुआ और उसी के आस-पास उसका प्रणयन भी हुआ होगा। डा० दीक्षित का यह अनुमान कि इस ग्रन्थ का रचनाकाल 'वीरसिंहदेव-चरित' के रचनाकाल सं० १६६४ वि० के पूर्व तथा 'रामचन्द्रिका' के रचनाकाल सं० १६५८ वि० के बाद किसी समय रहा होगा। (आचार्य केशवदास, पृ० ९५) समीचीन नहीं जंचता।

कविप्रिया, रसिकप्रिया, रामचन्द्रिका तथा विज्ञानगीता—'कविप्रिया' 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' नामक ग्रन्थों में जो केशवदास ने अपने वर्ण, पिता तथा पितामह आदि का उल्लेख किया है, वह तीनों में ही समान रूप से उपलब्ध होता है। अतः हमारा निष्कर्ष है कि इन तीनों ही की रचना आलोच्य कवि केशवदास द्वारा हुई है। 'रसिकप्रिया' में कवि ने अपने वंश का तो परिचय नहीं दिया है, परन्तु यह बताया है कि इस ग्रन्थ का निर्माण ओड़छेन्द्र मधुकरशाह के पुत्र इन्द्रजीत-सिंह की आज्ञा से हुआ था[1]। 'कविप्रिया' में केशवदास ने इन्द्रजीतसिंह को अपना आश्रयदाता बतलाया है[2]। दूसरे 'कविप्रिया' में उदाहरण प्रस्तुत करते समय 'रसिकप्रिया', 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' नामक ग्रन्थों के नामों का भी साथ ही उल्लेख मिलता है[3]। इस प्रकार 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' एक ही कवि की कृति ठहरती हैं।

उपर्युक्त चारों रचनाओं के एक ही कवि द्वारा रचे जाने का सबसे प्रबल प्रमाण यह है कि एक ग्रन्थ में पाए जाने वाले बहुत से छन्द दूसरे में भी कभी कुछ पाठान्तर से और कभी ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं। 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' में जो छन्द किंचित् पाठभेद से मिलते हैं उनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं।

१. **बैठि हुती वृषभानु कुमारि सखीन कि मण्डलि मंडि प्रवीनी।**
लै कुम्हिलानो सो कंज परी इक पांयन आइगुवारिन बीनी॥

(आ) सुख सोभा नसि जाइ सु पुनि यति प्रगट प्रमुक्कई।
तच्छि न लच्छइ लच्छ नाउ लेत नि जग थुक्कई॥
—वी० दे० च०, पृ० ८६।

१. इन्द्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम॥८॥
तिन कवि केशवदास सों कीन्हों धर्म सनेहु॥
सब सुख दै करि यों कह्यो रसिकप्रिया करि देहु॥१०॥
—र० प्रि०, पृ० ६।

२. क० प्रि०, प्र० १, छन्द ३८ और ४०।

३. रसिकप्रियायाम्: सवैया, पृ० ४१; रामचन्द्रिकायाम् यथा: कवित्त, पृ० ५०; विज्ञानगीताः, कवित्त, पृ० ५४।

चन्दन सों छिरकी वह बाकहुं पान दये करुणारस भीनी।
चन्दन चित्र कपोलन लोपि कै आंजन आंजि बिदा करि दीनी ॥[1]

२. घनन की घोर सुन मोरनि को शोर, सुनि, सुनि सुनि केशव अलाप अली जन को।
दामिनी दमकि देखि दीप की दीपति देखि, सुख सेज देखि-देखि सुन्दर सुवन को ॥
कुंकुम की बास घनसार की सुवास भयो, फूलन की बास मन फूलि के मिलन को।
हंसि हंसि बोले दोऊ अनही मनाये मान, छूटि गयो एक बार राधिका रमन को ॥[2]

तथा

३. व्रज की कुमारिका वै लीने शुक शारिका, पढ़ावें कोक कारिकान केशव सबै निवाहि।
गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी बैस फिरें, देवता सी दौरी दौरी आई चोरा चोरी चाहि ॥
बिन गुण तेरी आनि भृकुटि कमान तानि, कुटिल कटाक्षबान यहै अचरज आहि।
एते मान डीठ ईठ तेरे को अदीठ मन, पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि ॥[3]

'कविप्रिया' तथा 'रामचन्द्रिका' में कुछ पाठभेद से मिलने वाले तीन छन्द नीचे दिए जाते हैं—

१. हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांव न ठांव को नांव विलैहै।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न अंग हूं संग न रैहै ॥
केशव काम को राम बिसारत और निकाम न कामहि ऐहै।
चेत रे चेत अजों चित अन्तर अन्तक लोक अकेलहि जैहै ॥[4]

२. भौंहैं सुरचाप चाप प्रमुदित पयोधर, भूषन जराई जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा शशी की नैन, अमल कमल दल दलित निकाई है ॥
केशवदास प्रबल करेनुका गमनहर, मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की, कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है ॥[5]

तथा

३. एक दमयन्ती ऐसी हरें हंसि हंसि हंसबस, एक हंसिनी-सी बिसहार हिये रोहिये।
भूषण गिरत एक लेत बूड़ि बीचि बीच, मीन गति लीन हीन उपमान टोहिये ॥
एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात, जलदेवता-सी दृग देवता विमोहिये।
केशोदास आस पास भंवर भंवत जलकेलि में जलजमुखी जलज-सी सोहिये ॥[6]

'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' में भी कुछ छन्द ऐसे देखने में आते हैं जिनमें किंचित् पाठान्तर से परस्पर साम्य है। तीन छन्द नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

---

१. र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५५ तथा क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४७ (पाठान्तर से)।
२. वही, प्र० १०, छं० २७ तथा वही, प्र० १३, छं० २६ (पाठान्तर से)।
३. वही, प्र० १४, छं० ३५ तथा वही, प्र० ६, छं० २८ (पाठान्तर से)।
४. कविप्रिया, प्र० ६, छं० ५६ तथा रा० चं०, प्र० १६ छं० २६ (पाठान्तर से)।
५. वही, प्र० ७, छं० ३२ तथा रा० च०, प्र० १३, छं० १६ (पाठान्तर से)।
६. वही, प्र० ८, छं० ३७, तथा वही, प्र० ३२, छं० ३७ (पाठान्तर से)।

१. जहां भामिनी, भोग तहं, बिन भामिनि कहँ भोग ।
भामिनि छूटे जग छूटे, जग छूटे सुख योग ॥[1]

२. निशि बासर वस्तु बिचार करैं, मुख सांच हिये करुणा धनु है।
अघनिग्रह संग्रह धर्मकथान, परिग्रह साधुन को गनु है ॥
कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके तिनको बन ही घर है, घर ही बनु है ॥[2]

३. पतिनी पति बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मंद।
चन्द्र बिना ज्यों जामिनी ज्यों बिनु जामिन चंद॥[3]

इसी प्रकार 'कविप्रिया' तथा 'विज्ञानगीता' में भी कहीं-कहीं शब्दावली समान-रूप से मिलती है।

'रसिकप्रिया' की रचना कातिक सुदी सप्तमी चन्द्रवार संवत् १६४८ में हुई थी। ग्रन्थारम्भ में ही केशवदास ने इसे स्वरचित बताया है।[4]

'कविप्रया' नामक ग्रन्थ फाल्गुन सुदी पंचमी बुधवार सं० १६५८ को समाप्त हुआ था और कवि ने इसे स्वरचित होना स्वीकार किया है।[5]

इससे स्पष्ट है कि संवत् १६४८ से संवत् १६५८ तक केशव का ध्यान

---

१. रा० च०, प्र० २४, छं० १४ तथा वि० गी०, प्र० १४, छं० २१ (पाठान्तर से)।

२. वही, प्र० २५, छं० ३६ तथा वही, प्र० २१, छं० ४३ (पाठान्तर से)।

३. वि० गी०, प्र० १६, छं० ४० तथा रा० चं०, प्र० १३, छं० १०।

४. संवत् सोरह सै बरस, बीते अड़तालीस।
कातिक सुदि तिथि सप्तमी, बार बरन रजनीस॥
अतिरति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिकप्रिया, कीन्हीं केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० ११, १२।

किन्तु प्रत्येक 'प्रकाश' के अन्त में उन्होंने इस ग्रन्थ का महाराजकुमार इन्द्रजीत के द्वारा रचा जाना लिखा है—'इति श्रीमन्महाराजकुमारइन्द्रजीतविरचितायां रसिकप्रियायां प्रच्छन्नप्रकाशवर्णनं नाम प्रथमः प्रकाशः (र० प्रि०, पृ० १५)। हमारे विचार से तो केशवदास ने महाराजकुमार इन्द्रजीतसिंह के प्रति अपनी असीम श्रद्धा एवं भक्ति के कारण ऐसा लिख दिया है क्योंकि यह ग्रन्थ प्रमुख-रूप से उन्हीं के प्रीत्यर्थ लिखा गया था।

५. प्रगट पंचमी को भयो कविप्रिया अवतार।
सोरह सै अट्ठावने फागुन सुदि बुधवार॥
नृपकुल वरनो प्रथम ही अरु कवि केशववंश।
प्रगट करी जिन कविप्रिया कविता को अवतंस॥
—क० प्रि०, प्र० १, छं० ४, ५।

स्व० ला० भगवानदीन के अनुसार उक्त तिथि को इस ग्रन्थ का आरम्भ हुआ था (क० प्रि०, दोहा नं० ४ की टीका, पृ० ४), किन्तु 'अवतार' शब्द का प्रयोग यह प्रगट करता है कि इस तिथि को ग्रन्थ की समाप्ति हो गई थी।

अलंकार-शास्त्र पर रहा। कार्तिक सुदी बुधवार[१] संवत् १६५८ को ही आलोच्य कवि केशवदास ने 'रामचन्द्रिका' को समाप्त किया[२]।

'रामचन्द्रिका' और 'कविप्रिया' के रचनाकाल में कुल चार मास का अन्तर है। इसका तात्पर्य यह है कि 'रामचन्द्रिका' का भी निर्माण अलंकार की दिशा में ही हुआ है। और इसी कारण उसमें प्रारम्भ में पिंगल का आग्रह दिखाई देता भी है। उनका ध्यान 'बहुछन्द' पर रहा है।[३]

रही 'विज्ञानगीता'। इसकी रचना वीरसिंहदेव की प्रेरणा (वि० गी०, प्र० १, छं० २७ और ३५) से संवत् १६६७ में हुई थी[४]।

वीरसिंहदेव-चरित—'वीरसिंहदेव-चरित' की समाप्ति संवत् १६६४ के आरम्भ में वसन्त ऋतु के शुक्लपक्ष की सप्तमी[५] बुधवार को हुई थी। यह ग्रन्थ केशव ने ही रचा है इसमें सन्देह के लिए कोई स्थान नहीं है। स्वयं उनका ही कथन है[६]।

इस ग्रन्थ का प्रणयन वीरसिंह के ही शासन काल में सं० १६६४ में हुआ था। इसमें इस तिथि से पूर्व होने वाली घटनाएँ अंकित हैं और ओड़छा दरबार में तब केशवदास नाम के दो कवि विद्यमान नहीं थे। इसके अतिरिक्त समस्त ग्रन्थ में यत्र-तत्र ऐसे छन्द बिखरे हुए दिखलाई पड़ते हैं जो साधारण कवि के द्वारा नहीं रचे

---

१. स्व० ला० भगवानदीन 'वार' शब्द से वारस या द्वादशी का अर्थ लेते हैं और उसके समर्थन में लिखते है कि बुन्देलखण्ड में ग्यारस, बारस, तेरस इत्यादि बोलते हैं।
रा० चं० (पूर्वार्द्ध), 'विशेष' पृ० ५।

२. उपज्यों तेहि कुल मंदमति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करी प्रकास॥
सोरह सै अट्ठावने, कातिक सुदि बुधवार।
रामचन्द्र की चन्द्रिका, तब लीन्हों अवतार॥
—रा० चं०, प्र० १ छं० ५ और ६।

३. जागत जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हों बहु छन्द॥
—रा०, चं०, प्र० १, छं० २१।

४. सोरह सै बीते बरस, विमल सतसठा पाइ।
भई ज्ञान गीता प्रगट सब ही को सुख दाइ॥
—वि० गी०, प्र० १, छं० १३।

५. ना० प्र० सभा की प्रति के अनुसार यह तिथि सप्तमी के स्थान पर अष्टमी ठहरती है—सिद्ध जोग मिति बसु बुधवार, पृ० २।

६. संवत् सोरह से त्रैसठा। बीत गये प्रगटे चौसठा॥
अनल नाम सम्वत्सर लग्यो। भाग्यो दुख सब सुख जगमग्यो॥
रितु वसन्त है स्वच्छ विचारु। सिष्य जोग सातें बुधवारु॥
शुक्लपक्ष कवि केशवदास। कीनो बीरचरित प्रकास॥
—बी० दे० च० पृ० २।

जा सकते। ग्रन्थ के अन्तिम प्रकाशों के, जिनमें राजाओं के कर्त्तव्यों का उल्लेख हुआ है, अवलोकन करने से तो तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि इस ग्रन्थ का रचयिता कोई गंभीर विद्वान् था जिसका शास्त्रविषयक ज्ञान पौराणिकों के वंश के लिए, जिससे उसका सम्बन्ध था, प्रशंसा की बात थी [१]।

दूसरे, वीरसिंह देव के युद्धों का जैसा सूक्ष्म एवं विस्तृत विवरण इस ग्रन्थ में प्रस्तुत हुआ है वैसा अत्यन्त निकट सम्पर्क में रहने वाले कवि के अतिरिक्त अन्य कोई प्रस्तुत नहीं कर सकता था और वह केशवदास को छोड़ अन्य हो ही कौन सकता था। कारण, उन्होंने स्वयं उनमें सक्रिय भाग लिया था। और भी, 'वीरसिंहदेव-चरित' में वर्षा, शरद्, सूर्योदय, चन्द्रोदय, नगर, चौगान, राजलोक, नखशिख, नृत्य, वन-वाटिका, जलकेलि, दान आदि के जो वर्णन मिलते हैं, वे 'रामचन्द्रिका' के इन्हीं वर्णनों का परिवर्द्धित रूप हैं। अनेक छन्द थोड़ा-बहुत पाठान्तर के साथ दोनों ग्रन्थों में समान हैं, जिससे प्रमाणित होता है कि यह दोनों कृतियाँ एक ही लेखनी द्वारा प्रस्तुत हुई हैं। समानरूप से मिलने वाले कुछ छंद नीचे दिए जाते हैं—

१. बरनत केशव सकल कवि विषम गाढ़ तम सृष्टि।
कुपुरुष सेवा ज्यों भई संतत निरफल वृष्टि ॥[२]

२. अरुन गात अतिप्रात पद्मिनी प्राननाथ भय।
जन के सब ह्वै गये कोकनद कोक प्रेममय ॥
किधौं सक्र को छत्र मढ़यो मानिक मयूष पट।
परिपूरन सिन्दूर पर कैधौं मंगलघट ॥
सुभ सोभित कलित कमाल के किल कापालिक काल को।
ललित लालु कैधौं लसतु दिगि भामिनि के काल को ॥[३]

तथा

३. सुन्दर सेत सरोरुह में कर हाटक हाटक की दुति सोहै।
तापर भौंर भलो मन रोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै ॥
देखि दई उपमा जल देविनि दीरघ देवनि के मन मोहै।
केसव केसवराइ मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै ॥[४]

जहाँगीर-जस-चन्द्रिका—यह ग्रन्थ निश्चय ही केशवदास द्वारा रचा गया है, इसका प्रणयन संवत् १६६९ वि० के माधव (वैशाख) मास में हुआ है[५]। इस समय ओड़छा दरबार में केशवदास नामधारी दो कवियों का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। दूसरे, वीरसिंहदेव को प्रसन्न करने के लिये इनके आश्रयदाता तथा परम हितैषी दिल्ली

---

१. Calcutta Review, May 1924-Bir Singh Deo, Lala Sita Ram, pages 233-234.

२. वी० दे० च० पृ० ७० तथा रा० चं०, प्र० १३, छं० २१ (पाठान्तर से)।

३. वी० दे० च०, पृ० ७७, तथा रा० च०, प्र० ३, छं० १० (पाठान्तर से)।

४. वही, पृ० १०१ तथा रा० च०, प्र० १२, छं० ४६ (पाठान्तर से)।

५. सोरह से उनहतरा माधव मास विचारु।
जहाँगीर सक साहि की करी चन्द्रिका चारु ॥
—ज० ज० च०, छं० २।

के बादशाह जहाँगीर का कीर्तिगान करना भी केशव के लिए नितान्त ही आवश्यक था। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में भी अन्य ग्रन्थों के ही समान शब्दों एवं वाक्यों का प्रयोग देखने में आता है। कहीं-कहीं कुछ छन्द तो 'रामचन्द्रिका' तथा 'कविप्रिया' में उद्धृत छन्दों का रूपान्तर हैं और कहीं-कहीं पाठान्तर से परस्पर साम्य भी रखते हैं। तीन छन्द उदाहरण-स्वरूप नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१. विधि के समान हैं बिमानी-कृत राजहंस, विविध बिबुध युत मेरु सो अचलु है।
दीपति दिपति अति सातो दीप दीपयतु, दूसरो दिलीप सो सुदच्छिना को बलु है॥
सागरु उजागरु सो बहु बाहिनी को पति, छन दान प्रिय किधौं सूरज अमलु है।
सब विधि रनधीर सोहै, साहि जहाँगीर, तिन्हुँ पुर जाको जसु गंगा को सो जलु है॥[1]
विधि के समान हैं बिमानी-कृत राजहंस, विविध बिबुध युत मेरु सो अचलु है।
दीपति दिपति अति सातो दीप दीपयुत, दूसरो दिलीप सो सुदच्छिना को बलु है॥
सागरु उजागरु सो बहु बाहिनी को पति, छन दान प्रिय किधौं सूरज अमलु है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ, भगीरथ पथगामी गंगा कैसे जलु है॥[2]

२. जाकी अंग सुवास तें बासित होत दिगंत।
को यह सोभित है सभा जागति जोति अनन्त॥[3]
जाके सुख मुखबास ते बासित होत दिगंत।
सो पुनि कहि यह कौन नृप शोभित शोभ अनन्त॥[4]

तथा

३. महिष मेष मृग बृषभ अज भिरत मल्ल गजराज।
लरहिं कहूँ पाइक नटत भट कहूँ नर्तक नटराज।[5]
महिष मेष मृग बृषभ कहुँ भिरत मल्ल गजराज।
लरत कहूँ पाइक सुभट कहूँ नर्तत नटराज।[6]

नखशिख—'नखशिख' के विषय में 'हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण' नामक ग्रन्थ के पृ० ७४ पर यों उल्लेख है—"नखशिख-केशवदास-कृत नि० का० सं० १६५७, लि० का० सं० १८५३, वि० नायिका के अंग-प्रत्यंगों का वर्णन। प्राप्ति-स्थान—महाराजा बनारस का पुस्तकालय, रामनगर बनारस। दे० घ० २६।"

हमने विशेष जानकारी के लिए उक्त घ० २६ विवरण खोज-रिपोर्ट (सन् १६०३)[7] को भी देखा तो उसमें निर्माणकाल का तो ग्रन्थ में कहीं उल्लेख नहीं मिला, केशवदास के नाम के आगे कोष्ठकों में केवल १६०० ए० डी० लिखा प्राप्त

---

१. ज० ज० च०, छं० ११०।
२. रा० च०, प्र० २ छं० १०।
३. ज० ज० च०, छं० ५८।
४. रा० च०, प्र० ३, छं० २०।
५. ज० ज० च०, छं० ४७।
६. रा० च०, प्र० २, छं० ३।
७. Description of the different parts of the body by the celebrated Keshava Dasa (1600 A.D.) The ms. is dated Samvata 1833 (1796 A.D.), Page 23.

हुआ है। विवरण में सम्भवतः इसी को रचनाकाल मान लिया प्रतीत होता है। रिपोर्ट का आवश्यक अंश नीचे दिया जाता है।

"आरम्भः श्री गणेशाय नमः।
अथ केशोदास कृत नखसिख लिख्यते।
दो:। सविता के परताप ज्यों बरने कविता अंग।
कहे यथामति बरनि त्यों, बनिता के प्रत्यंग ॥ १ ॥
कही जु पूरन पण्डितनि, जाको जितनी जानि।
तितनी अबतो अंग की, उपमा कहौं बखानि ॥ २ ॥
नख तें सिख लौं बरनियं, देवी दीपति देखि।
सिख तें नख लौं मानुषी, केसवदास विसेखि ॥ ३ ॥

अन्तः अन्यच्च छप्पं: कः।
महि मोहन मोहिनी रूप महिमा रुचि रूरी
मदन मंत्र की। सिद्ध पेम की। पद्धति पूरी जीवन मूरि विचित्र किधौं जग जीव मित्र की किधौं चित्त को वृत्ति मित्र अभिलाव चित्त की केशव परमानन्द की।
आनन्द सकति किधौं बरनि आधार रूप भवधरण कों राधा ब्रजबाधाहरण की ॥ ८५ ॥
इति श्री केशवदासकृत नखसिख लिख्यते, सम्पूर्ण कासी जी मध्ये रूपचन्द गौड़। संवत् १८५३ मिति असाढ़ सुद्ध ४ बुधवासरे। १४ पत्र में यह समाप्त हो गया; आगे इसके तीन पत्र में और भी केसवदास का कुछ कविता-संग्रह है। प्रायः कवित्त हैं। (प्रति महाराज बनारस पुस्तकालय)।

स्व० लाला जी के केशव की 'नखशिख' रचना-विषयक कथन का आधार सम्भवतः यही उद्धरण प्रतीत होता है। किन्तु उपर्युक्त पद्यों को पढ़ने के उपरान्त ऐसा लगा कि सम्भवतः वे स्वतंत्र रूप से न रचे जाकर कवि के किसी ग्रन्थ से ही उद्धृत हैं। जब पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास की हस्त-लिखित (सं० १७२४)[1], याज्ञिक संग्रह (काशी नागरी-प्रचारिणी सभा) की हस्त-लिखित (सं० १७५८) तथा हरिचरणदास-कृत सटीक (मुद्रित) 'कविप्रिया' को ध्यान से देखा तो 'नखशिख' वर्णन वाले उपर्युक्त पद्य उन्हीं के १४वें प्रभाव के अन्त में और १५वें प्रभाव के आरम्भ में ज्यों के त्यों मिल गये। अतएव केशव के 'नखशिख' के रचने का उल्लेख यदि सन् १९०३ की रिपोर्ट के आधार पर ही किया गया हो तो यह भ्रमपूर्ण सिद्ध हो जाता है। किसी दूसरी खोज-रिपोर्ट में केशव के किसी अन्य 'नख-शिख' की प्रति का विवरण अभी तक देखने में नहीं आया है। इस प्रकार 'नखशिख' केशव की कोई स्वतन्त्र कृति नहीं ठहरती, वस्तुतः वह 'कविप्रिया' का अंशमात्र है।

'कविप्रिया' की कुछ हस्तलिखित प्रतियों में १४वें प्रभाव के अन्त तथा १५वें प्रभाव के पहले 'नखशिख-वर्णन' मिलने से लाला भगवानदीन जी इस ग्रन्थ को क्षेपक मानते हैं (क० प्रि० नोट, पृ० ३७१)। किन्तु सूक्ष्म पर्यवेक्षण करने पर यह ग्रन्थ केशव द्वारा रचा गया ही प्रमाणित होता है। जो पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति एवं

---

१. 'कविप्रिया' की उपलब्ध प्रतियों में यह सब से प्राचीन है।

भाषा-विषयक प्रौढ़ता हमें केशव की 'रामचन्द्रिका', 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' आदि ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होती है, वही 'नखशिख' के छन्दों में भी देखने में आती है। साथ ही स्थान-स्थान पर बुन्देलखण्डी शब्द भी देखने में आते हैं जो इस ग्रन्थ को केशव की कृति सिद्ध करते हैं। दूसरे, 'नखशिख' एवं केशव के अन्य ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर सदृश भावों और शब्दों का साम्य भी दिखाई देता है। बुन्देलखण्डी भाषा के शब्दों के लिए निम्नलिखित दोहा उल्लेखनीय है—

सर्वभूषण वर्णन; विछिया अनौट बाँके घुंघरू जराय जरी।
जेहरी छबीली क्षुद्र घण्टिका की जालिका॥
मूंदरी उदार पौंची कंकन और चूरी चारु।
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका॥
बेणीफूल शीशफूल कर्णफूल मांगफूल।
खुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका॥[1]

भाव एवं शब्द-सादृश्य के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) **अलकैं कि अलिक अलक लटकति है।**
(क० प्रि० (मूल)-नखशिख छं० ७२)

लटकैं अलक अलक चीकनी।
(वी० दे० च०, पृ० १३३ तथा रा० चं० उत्तरार्द्ध, पृ० १६८)

(२) **वेणी पिक वेणी की त्रिवेणी सी बनाई है।**
(क० प्रि० (मूल)-नखशिख, छं० ७८)

केशोदास वेणी तो त्रिवेणी सी बनाई। (र० प्रि०, छं ४०, पृ० १२१)

तथा

(३) **गोरे गोरे गोल अति अमल अमोल तेरे,**
ललित कपोल किधौं मँन के मुकुर हैं।
(क० प्रि० (मूल)-नखशिख, छं० ५२)

कलित ललित लावन्य कलोल। गोरे गोल अमोल कपोल॥
(वी० दे० च०, पृ० १३३)

'नखशिख' वाले उपर्युक्त पद्य यद्यपि स्वतन्त्र कृति नहीं हैं फिर भी केशव ने इस विषय के पद्यों वाला एक ग्रन्थ अवश्य बनाया था[2]। नाहटा जी ने अपने इस कथन का आधार अन्वेषण में प्राप्त अठारहवीं शताब्दी की दो प्रतियों को बतलाया है। नाहटा जी को अपने संग्रह के एक गुटके में 'शिखनख' नामक एक ग्रन्थ कवि केशवदास-कृत प्राप्त हुआ है जिसमें एक संस्कृत श्लोक तथा २८ हिन्दी सवैया राजस्थानी भाषा-टीका-सहित दिये हुए हैं। इसका लेखन संवत् १७६२ मि० सु० ८

---

१. क० प्रि०, सरदार कवि, पृ० २६२; क० प्रि०, हरिचरणदास, पृ० ३०६ (पाठान्तर से) तथा कविप्रिया (मूल), पृ० १४८, छं० ८८ (पाठान्तर से)।

२. हिन्दुस्तानी, अक्तूबर-दिसम्बर, सन् १६४७, अंक ४, भाग १७, पृ० १६६, 'कवि केशवदास की कतिपय रचनाएँ' शीर्षक लेख।

भौम मुंज में जैन यति भागचन्द के द्वारा हुआ है। इसी ग्रन्थ की एक गुटकाकार प्रति जिसका रचनाकाल सं० १७५१ वैशाख सुदी १३ है, बीकानेर के 'बृहत् ज्ञान भण्डार' से प्राप्त हुई है, जिसमें मूल पद्य ही हैं। इसमें प्रारम्भ का श्लोक नहीं है, एवं २७ के बाद के ४ पद्य और हैं, जो कि पहली प्रति में नहीं हैं[1]। 'कविप्रिया' में उपलब्ध 'नखशिख' वर्णन वाले पद्यों का इस प्रति के पद्यों से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि इसके चार पद्य (छं० २८-३१) 'कविप्रिया' के पद्यों (छं० ८४, ८६, ८८ तथा ६५) से किंचित् पाठभेद के साथ मिलते हैं; शेष पद्य 'कविप्रिया' से नहीं मिलते। इस कारण इसे केशव की एक भिन्न ही कृति मानना पड़ता है। इसके रचनाकाल के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

बारहमासा—केशव की 'बारहमासा' नामक रचना का स्वतन्त्र कृति के रूप में उल्लेख खोज-रिपोर्ट सन् १६२६ नं० २३३ 'अ' और सन् १६२७ नं० ८२ में मिलता है। दोनों ही में निर्माण तथा लिपिकाल नहीं दिया हुआ है। सन् १६२६ नं० २३३ 'अ' की खोज-रिपोर्ट का आवश्यक अंश नीचे उद्धृत किया जाता है—

'प्राप्तिस्थान'—पं० राजा राम ग्राम नरहा त० सीतापुर पो० सीतापुर जि० सीतापुर (अवध)।

प्रारम्भ: **अथ बारहमास लिख्यते। अथ चैत्र वर्णनं ॥छप्पै॥**

फूली लतिका ललित तरुन तन फूले तरुवर फूले सरिता
सुभग सरिस सब फूले सरवर। फूली कामिनि काम रूपे कर
कन्तनि पूजहिं। सुक सारो कुल केलि फूल कोकिल कुल
कूजहिं कहि केसव अैसी फूल महि फूलहिं सूल न लाइवेहि।
पिय आप चलन की को कहे चित न चैत चलाइये॥

इसके पश्चात् वैशाख से फागुन तक ११ मास के वर्णन में ११ छप्पय हैं। अन्त का छप्पय इस प्रकार है—

अथ फागुन वर्णनं ॥छप्पै॥
लोक लाज तजि राज रंक निरसंक विराजत।
जोई आवत सोइ कहत करत पुनि हंसत न लाजत।
घर घर जुवती जवनि जोरू गहि गाठन जोरहिं।
बसन छीनि मुख माँजि आज लोचन तृन तोरहिं।
पटवास सुवास अकास उड़ि भुव मंडल सब मंडिये।
कहि केशवदास विलासनिधि सु फागुन फागुन छांड़िये॥१२॥
इति बारहमास केसौदासकृत सम्पूर्ण समाप्त:।

विषय—इस ग्रन्थ में स्त्री ने अपने पति को १२ महीने के सुख-दुःख बताकर परदेश जाने से रोका है।

---

१. हिन्दुस्तानी, अक्तूबर-दिसम्बर, सन् १६४७, भाग १७, अंक ४, पृ० २००, 'कवि केशवदास की कतिपय रचनाएँ' शीर्षक लेख।

नोट—इस ग्रन्थ के रचयिता केशवदास जी थे जिन्होंने 'रामचन्द्रिका' रची है। इस छोटी-सी पुस्तक से और कुछ पता नहीं चलता।

सन् १९२७ की खोज-रिपोर्ट नं० ८२ के भी आदि और अन्त के अंश निम्नलिखित हैं—

"आदि: श्रीगणेशाय नमः। अथ बारहमास लिख्यते।
अथ चैत्रवर्णनं ॥छप्पै॥ फूली लतिका ललित तरुन तन
फूले तरुवर फूले सरिता सुभग सरिस सब फूले सरवर——
——————————— चित्त न चैत चलाइयै ॥१॥"

इसके पश्चात् वैशाख से फागुन तक ११ महीनों के वर्णन में ११ छप्पय हैं। अन्त का छप्पय यों है—

अथ फागुन वर्णनं ॥छप्पै॥ लोक लाज तजि राज रंक निरसंक
विराजत——————————————— कहि केशवदास

विलास निधि सु फागुन फागुन छाड़िये इति बारहमास केसोदास-कृत सम्पूर्ण समाप्तः।

उक्त खोज-रिपोर्टों में उल्लिखित 'बारहमासा' के अतिरिक्त बृहत् ज्ञान भण्डार, बीकानेर से प्राप्त उपर्युक्त 'शिखनख' नामक ग्रन्थ की गुटकाकार प्रति में ही अन्य कवियों की रचनाओं के साथ कवि केशवदास की 'बारहमासा' नामक एक और कृति भी उपलब्ध हुई है। इस प्रति के बारह छप्पय तो खोज-रिपोर्टों में दिए गए छप्पयों से कहीं-कहीं किंचित् पाठभेद के साथ मिलते हैं परन्तु इसका प्रारम्भिक दोहा, जो नीचे प्रस्तुत है—

सुखहि सुख जहं राखिये सिखहि सिख सुखदानि।
शिक्षाक्षेप कह्यो बरणि, छप्पै बारह बानि॥

खोज-रिपोर्टों की प्रतियों में नहीं मिलता। इससे अनुमान होता है कि उक्त 'बारहमासा' केशव की कोई नवीन रचना है। किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर उक्त प्रति के सभी पद्य (प्रारम्भिक दोहा तथा १२ छप्पय) श्री हरिचरणदास और सरदार कवि द्वारा लिखी गई 'कविप्रिया' की टीकाओं तथा काशी विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित बालकृष्णदास जी की हस्तलिखित प्रति (सं० १७२४) में शिक्षाक्षेपालंकार-वर्णन के अन्तर्गत कहीं-कहीं किंचित् पाठान्तर के साथ मिल जाते हैं। अतः हमारी समझ में तो यही आता है कि 'बारहमासा' केशव का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। वह 'कविप्रिया' का अंशमात्र है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का रचनाकाल वही ठहरता है जो 'कविप्रिया' का है।

छन्दमाला—यह ग्रन्थ भी केशवदास-कृत है। इस ग्रन्थ में विभिन्न वृत्तों के उदाहरणस्वरूप दिये गए छन्दों का 'रामचन्द्रिका' के छन्दों से मिलान करने पर ज्ञात होता है कि अधिकांश छन्द किंचित् पाठभेद से दोनों ग्रन्थों में समान-रूप से मिलते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि दोनों ग्रन्थ एक ही कवि की कृतियाँ हैं। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिए जाते हैं—

वर्णिक वृत्त—

(क) बरनबो, बरन सो। जगत को सरन जो।

(छं० मा०, 'तरणिजा' का उदाहरण)

बरणिबो। बरणको। जगतको। शरण सो॥

(रा० चं०, प्र० १, छं० १२)

(ख) रघुबंस के अवतंस। सुन दान-मानस हंस।
मन माहि जो अति नेहु। एक बात मो कहि देहु।

(छं० मा०, 'तोमर' का उदाहरण)

सुनि दान-मानस-हंस, रघुबंस के अवतंस।
मन मांह जो अति नेहु। यक वस्तु मांगहि देहु।

(रा० चं०, प्र० २, छं० १३)

(ग) गए जब राम जहां सुनि मात। कही यह बात सुनौ बन जात।
कछु जनि जी दुख पावहु माइ। सु देहु असीस मिलौं फिरि आइ।

(छं० मा०, 'मौक्तिकदाम' का उदाहरण)

गए तहं राम जहां निज मात। कही यह बात कि हौं बन जात।
कछू जनि जी दुख पावहु माइ। सु देहु असोस मिलौं फिरि आइ।

(रा० चं०, प्र० ६, छं० ७)

(घ) राज तजें धन धाम तजें सब। नारि तजें सुत सोच तजें अब।
आपुन यों जग झूठहि निंदहु। सत्य न एक तजें हरिचन्दहु।

(छं० मा०, 'सुन्दरी' का उदाहरण)

राम तज्यो धन धाम तज्यो सब। नारि तजी सुत सोच तज्यो सब।
आनयो तु तज्यो जगबन्द है। सत्य न एक तज्यौ हरिश्चन्द्र है।

(रा० चं०, प्र० २, छं० २१)

(ङ) धरे एक बेनी मिलं मैलसारी। मृणाली मनौ पंक सोकाधिकारी।
सदा राम रामैं ररैं दीनवानी। चहुं ओर हैं राकसी क्लेसदानी।

(छं० मा०, 'भुजंगप्रयात' का उदाहरण)

धरे एक वेणी मिली मैलसारी। मृणाली मनौ पंक तें काढ़ि डारी।
सदा राम नामैं ररैं दीन बानी। चहुं ओर है राकसी दु:खदानी।

(रा० चं०, प्र० १३, छं० ४३)

(च) विपिन मारग राम बिराजहीं। सुखद नागर सुन्दरि साजहीं।
बिबिध सिद्धि फलद्रु मनौ फले। सकल साधन तत्पर लै चले।

(छं० मा०, 'द्रुतविलम्बित' का उदाहरण)

विपिन मारग राम बिराजहीं। सुखद सुन्दरि सोदर भ्राजहीं।
विविध श्रीफल सिद्ध मनौ फलो। सकल साधन सिद्धि हि लै चलो।

(रा० चं०, प्र० ६, छं० २६)

मात्रिक वृत्त—

(क) रामचन्द्रपदवन्द्यं　वृंदारकवृन्दाभिवंदनीयम् ।
केशवमति　तनया　विलोचनं　चंचरी कायते ।।
(छं० मा०, 'गाथा' का उदाहरण छं० १२)

रामचन्द्रपदपद्मं　वृंदारकवृन्दाभिवन्दनीयम् ।
केशवमति　भूतनया　लोचनं　चंचरीकायते ।।
(रा० चं०, प्र० १, छं० १६)

(ख) रघुनन्दन आये सुनि सब धाए पुरजन जैसे तैसे कहु ।
दरसनरस भूले तन मन फूले वर्नो जाहि न वैसे बहु ।
पिय के संग नारी सब सुखकारी तिन सों रामहि दृगचोरी ।
जहं जहं चहुँ ओरनि मिली चकोरनि ज्यौं चाहत चन्द चकोरी ।।
(छं० मा०, 'पद्मावती' का उदाहरण)

रघुनन्दन आये, सुनि सब धाये, पुरजन जैसे के तैसे ।
दरसनरस, भूलं, तन मन फूलं, बहु बरने जात न जैसे ।।
पति के संग नारी, सब सुखकारी ते रामहिं यों दृगचोरी ।
जहं तहं चहुँ ओरनि, मिलीं चकोरनि, ज्यों चाहत चन्द चकोरी ।।
(रा० चं०, प्र० २२, छं० ११)

(ग) ऊँचे अवास। प्रतिबुजा प्रकास। सोभा बिलास। सोभै अकास ।
(छं० मा०, 'मधुभार' का उदाहरण)

ऊँचे अवास। बहुध्वज प्रकास। सोभा बिलास। सोभैं प्रकास ।।
(रा० चं०, प्र० १, छं० ३७)

'छन्दमाला' का निम्नलिखित छन्द—

अखियान मिली सखियान मिली पति आवत जानि मिली तजि मौने ।
सुभ ध्यान विधान मिली मनहीं मन ज्यों मिल नैंक मनोमय सौने ।
कहि केसव कैसेहु बेग मिलं नतु ह्वं है वहै हरि जो कछु होने ।
तहं पूरन समाधि मिलं मिलि जैहै तुम्हें मिलहो फिर कौने[1] ।
('मदनमनोहर' का उदाहरण)

किंचित् पाठभेद से 'रसिक प्रिया' में इस प्रकार मिलता है—

अंखियानि मिली सखियानि मिली पतियान मिली बतियाँ तजि मोने ।
ध्यान विधान मिली मन ही मन ज्यों मिलं एक मनो मिल सोने ।।
केशव कैसहुं बेगि मिलो तन ह्वं ह्वं वहै हरि जो कछु होने ।
पूरण प्रेम समाधि मिलं मिलि जैहै तुम्हें मिलहौं तब कोने ।।
(र० प्रि० प्र०, छं० ५१)

इससे भी यही सिद्ध होता है कि दोनों ग्रंथ एक ही कवि की रचनाएँ हैं। भाषा का जो रूप केशव की 'रामचन्द्रिका' में दृष्टिगोचर होता है वही इस ग्रन्थ में भी दिखाई पड़ता है। 'छन्दमाला' की भाषा ब्रज है जिस पर संस्कृत तथा बुन्देलखण्डी

भाषा का भी प्रभाव परिलक्षित होता है। विशेषण प्रायः संस्कृत के हैं और क्रियाएँ ब्रजभाषा की। 'छन्दमाला' में संस्कृत के तत्सम शब्द ही नहीं, अपितु कहीं-कहीं तो संस्कृत भाषा की विभक्तियाँ एवं क्रियाएँ भी प्रयुक्त हुई हैं, जैसे भावयन्ती (छं० २) निजेच्छया ('उपेन्द्रवज्रा' छन्द के उदाहरण में), चंचरीकायते ('गाथा' छन्द के उदाहरण में) आदि। संस्कृत का प्रभाव यदि देखना है तो उपर्युक्त 'रामचन्द्रपदवंद्यं' आदि गाथा छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है।

केशव ने इस ग्रन्थ में इसके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है। इसकी रचना कब हुई? कुछ कहा नहीं जा सकता। 'रामचन्द्रिका' में एकाक्षरी छन्द से लेकर कवित्त-सवैये तक के उदाहरणों को देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ के निर्माण के पूर्व केशव ने छन्दःशास्त्र पर कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा होगा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पिंगल पर लिखी 'छन्दमाला' की रचना "रामचन्द्रिका" के पूर्व ही कभी हुई होगी। विविध छन्दों के उदाहरण प्रस्तुत करने के विचार से ही केशव ने 'रामचन्द्रिका' की रचना की थी, ऐसा जान पड़ता है।

राम-अलंकृत-मंजरी—शिवसिंह सेंगर, ग्रियर्सन, एफ० ई० के, सूर्यकान्त शास्त्री, खड्गजीतसिंह आदि कुछेक विद्वान् 'राम-अलंकृत-मंजरी' को ही छन्दःशास्त्र का ग्रन्थ कहते हैं पर उनमें से किसी ने न तो यही लिखा है कि यह ग्रन्थ उन्होंने कहाँ देखा और न उन्होंने कोई उदाहरण ही दिया है। 'शिवसिंहसरोज' में इसके दो छन्द उद्धृत हुए हैं[1]। खड्गजीतसिंह और बाबू गोविन्ददास ने अपने लेखों में इन दोनों छन्दों के अतिरिक्त कोई अन्य नए उदाहरण नहीं दिए हैं। अतः, इससे स्पष्ट है कि यह ग्रन्थ उनके देखने में नहीं आया। केवल सरोजकार के ही आधार पर उन्होंने इसे केशव-कृत मान लिया है। खोज-रिपोर्टों में भी इस ग्रन्थ का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। यह ग्रन्थ लाला जी के भी देखने में नहीं आया है। उनका कहना है कि नाम से तो यह अलंकार-ग्रन्थ जान पड़ता है[2]। प्रयत्न करने पर भी हमें इस ग्रन्थ का कुछ पता न चल सका। 'रामचन्द्रिका' में केशव की दृष्टि 'बहुछन्द' पर देखकर अनुमान होता है कि इस ग्रन्थ की रचना के पहले उन्होंने पिंगल पर किसी ग्रन्थ का निर्माण अवश्य किया होगा। स्व० लाला भगवानदीन ने 'केशव कौमुदी' नामक "रामचन्द्रिका' की टीका में बहुत से छन्दों के लक्षण-स्वरूप पाद-टिप्पणी में छन्द उपस्थित किए हैं जिनमें से कुछ में 'केशवदास' अथवा 'केशव' की छाप परिलक्षित होती है[3]। हो सकता है विविध छन्दों के ये लक्षण केशवदास की 'राम-अलंकृत-मंजरी' के ही हों।

---

१. जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिना न राजई, कविता बनिता मित्त ॥ १ ॥
प्रकट, सब में अर्थ जहाँ, अधिक चमत्कृत होइ।
रस अरु व्यंग्य दुहून ते, अलंकार कहि सोइ ॥ २ ॥
—शिवसिंहसरोज, पृ० २०।

२. केशव-पंचरत्न, आकाशिका, केशव के ग्रन्थ, पृ० ७।

३. रा० च०, पृ० २४ (मदनमल्लिका); पृ० २८ (चारुमति); पृ० ३३ (सुप्रिया); पृ० ३४ (नराच और विशेषक) तथा पृ० १६८ (हाकलिका)। पाद-टिप्पणी।

परन्तु जब तक यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो जाता तब तक इसे निश्चित रूप से केशव-कृत ग्रन्थ नहीं माना जा सकता।

जैमुन की कथा—'जैमुन की कथा' नामक ग्रन्थ जैमिनि-कृत अश्वमेध का हिन्दी रूपान्तर है। यह सुविख्यात कवि केशवदास द्वारा रचित नहीं हो सकता। कारण, केशवदास ने अपने प्रामाणिक ग्रन्थों में अपनी छाप केशव, केसव, केसो, केसौ, केशवराय, केशवराइ अथवा केशवदास आदि रखी हैं परन्तु इस ग्रन्थ में कवि की छाप 'प्रधान केसोराइ' है।

इति श्री महाभारथे अस्वमेध के पर्वने जैमुनि कृते "प्रधान केसोराइ" विरचितायां फलस्तुति वर्ननो नाम सरसठमोध्याय। ६७॥[1]

दूसरे, खोज-रिपोर्ट में केशवराय, माधवदास के पुत्र और मुरलीधर के भाई दिए गए हैं। केशवराय ने किसी लाला नरसिंह को अपना आश्रयदाता तथा उनका छत्रसाल का धर्मपुत्र होने का उल्लेख किया है। अन्य स्थल पर कवि ने यह बताया है कि छत्रसाल (१६४६ ई०-१७३१ ई०) ने उसे एक गाँव प्रदान किया था। इससे भी यही पता लगता है कि यह कवि निश्चित रूप से छत्रसाल का समकालीन था। उसने इस ग्रन्थ का प्रणयन संवत् १७५३ वि० (१६९६ ई०) में किया। इससे भी उपर्युक्त बात की ही पुष्टि होती है[2]। 'शिवसिंह-सरोज' में प्रधान केशवराय कवि (शालिहोत्र), जिसने "शालिहोत्र-भाषा" की रचना की थी, का नाम आया है (शिवसिंह-सरोज, पृ० ४४७)। हो सकता है कि 'जैमुन की कथा' भी भाषा में इसी कवि द्वारा रची गई हो।

बालि चरित्र और हनुमान-जन्म-लीला—'खोज-रिपोर्ट' में दिए हुए उदाहरणों के अवलोकन करने से पता चलता है कि बालिचरित्र और हनुमान-जन्म-लीला नामक ग्रन्थों की रचना इतनी शिथिल है जितनी केशवदास के किसी भी ग्रन्थ की नहीं है। दूसरे, इनकी भाषा ब्रज तथा अवधी भाषाओं का मिश्रण है। बुन्देलखण्डी शब्दों का इनकी भाषा में अभाव है। अतः इन्हें केशवदास द्वारा रचित नहीं माना जा सकता। हनुमान-जन्म-लीला पर नोट देते हुए खोज-रिपोर्ट के लेखक श्यामबिहारी मिश्र जी लिखते हैं[3]। अतः मिश्रजी का अनुमान है कि हो सकता है कि इनका लेखक या तो बघेलखण्ड का केशवराय बबुआ हो जिसका जन्म १६८२ ई० में हुआ था या १९०२ ई० की रिपोर्ट नं० ३४ में दिए हुए ग्रन्थ (भ्रमरबतीसी) का लेखक केशवदास हो, जो संभवतः राजपूताने (?) का निवासी था[4]। स्व० ला० भगवानदीन जी का कथन है कि ओरछा में हनुमान जी का जो मन्दिर आज भी विद्यमान है वह केशव का ही संस्थापित किया हुआ है। यदि इस धारणा को सत्य मान लिया जाय तो सम्भव है

१. ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट, सन् १९१७-१९१९।

२. वही, सन् १९०५।

3. Keshava Das, the writer of Hanuman Janma Lila is an unknown poet. He was certainly not the famous poet of Orchha, but may be Keshava Rai Babua of Baghelkhand, who was born in 1682 A.D. or the author of the book noticed as No. 34 of 1902.

—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट नं० १४६, सन १९०९-१९११।

४. ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट नं० ४८४, सन् १९४१।

आलोच्य कृति केशवदास की ही हो। जो कुछ भी हो, पर इन ग्रन्थों के केशवदास-कृत होने में पूरा-पूरा सन्देह ही है।

रसललित—'रसललित' नामक ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय नायिका-भेद है। परन्तु महाकवि केशवदास ने इस विषय पर 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ की रचना की है, जिसमें इस विषय का बहुत ही विस्तृत एवं सूक्ष्म विवेचन किया गया है। अतः, 'रसिकप्रिया' के निर्माण के अनन्तर इसी विषय पर फिर केशवदास की लेखनी द्वारा अन्य ग्रन्थ प्रस्तुत किया जाना बुद्धि-संगत प्रतीत नहीं होता है। इस ग्रन्थ में शृंगार रस का लक्षण अंत में है[1]। परन्तु 'रसिकप्रिया' में ग्रन्थ के आरम्भ में दिया गया है। दोनों ग्रन्थों के लक्षण भिन्न हैं। दूसरे, 'रसललित' की भाषा भी उतनी प्रौढ़ नहीं है जितनी कि प्रायः केशवदास के अन्य ग्रन्थों की है। अतः, यह केशवदास की रचना नहीं जान पड़ती। खोज-रिपोर्ट के लेखक का अनुमान है कि सम्भवतः इसकी रचना बघेलखण्ड निवासी केशवराय नामक कवि (जन्म १६८२ ई०) ने की थी। सरोजकार ने भी केशवराय बाबू बघेलखण्डी (जन्म सं० १७३६ अथवा १६८२ ई०) को नायिका-भेद पर लिखे एक ग्रन्थ का रचयिता बताया है (शिवसिंह-सरोज पृ० ३८६)। उन्होंने ग्रन्थ का तो उल्लेख नहीं किया है पर दो पद्य अवश्य उद्धृत किए हैं[2]। खोज रिपोर्ट के लेखक ने 'हनुमान-जन्म-लीला' के कर्त्ता का भी बघेलखण्ड-निवासी होने का अनुमान किया है, परन्तु 'हनुमान-जन्म-लीला' और 'रसललित' नामक ग्रन्थों का मिलान करने पर दोनों की भाषा में इतना अन्तर दिखाई पड़ता है कि दोनों का रचयिता एक ही कवि नहीं हो सकता।

कृष्णलीला (अपूर्ण)—खोज-रिपोर्ट में दिए हुए उद्धरणों से विदित होता है कि इस ग्रन्थ के रचियता केशव का निवास स्थान उचहरा के समीप 'भटनावर' नामक ग्राम था और परिहारकुलशिरोमणि कोई 'बख्तावर' उसका आश्रयदाता था, जिसकी आज्ञा से इस ग्रन्थ का प्रणयन हुआ था[3]। इससे प्रकट होता है कि इस ग्रन्थ का कर्ता आलोच्य केशव न होकर कोई दूसरा केशव नाम का कवि है।

केशवदास की 'अमीघूंट'—इस ग्रन्थ के अध्ययन से विदित होता है कि यह ग्रन्थ केशवदास से भिन्न किसी अन्य निर्गुण-मार्गी केशवदास द्वारा रचित हुआ है। यह

---

१. अन्तः अथ शृंगार रस लक्षण है जु पिया—पीय की रीति जेहि भाऊ ताहि कहत शृंगार रस पंडित कवि समुझाइ। दोहा। विधि-विधि है शृंगार रस कहत सुकवि मन आनि वरनि प्रथम सजोग को पु…………

—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट नं० १४६, सन् १९०९-१९११।

२. शिवसिंह सरोज, पृ० २२।

३. लसत जहाँ चारों वरन चहुँ ओर है नाऊं।
निकट उचहरा के वसतु भटनावर शुभ गाऊं॥
बख्तावर के हुकुम तें कवि केशव करि प्यार।
कही कृष्ण-लीला सुखद निज बुधि के अनुसार॥ इति वंश वर्णन।

—ना० प्र० स० खोज-रिपोर्ट सन् १९२०-२२, पृ० २७२।

विषय, भाषा, छन्द आदि प्रायः सभी की दृष्टि से कबीर आदि सन्त कवियों की रचनाओं से साम्य रखता है। ग्रन्थ का आरम्भ गुरुमहिमा से होता है और आगे निर्गुण, अलख, निरंजन आदि के गुणों का गान किया गया है। इस ग्रन्थ की भाषा और विषय से परिचित होने के लिए हम दो छन्द नीचे उद्‌धृत करते हैं।

१. छाया काया तें प्रभु न्यारा, धरनि अकास से बाहर पारा।
अगम अपार निरन्तर वासी, हलै न टलै अगम अविनासी॥
वा कहं अद्‌भुत रूप न रेखा, अगम पुरुष प्रभु सब्द अलेखा।
निज जन जाय तहां प्रभु देखा, आदि न अंत नाहि कछु भेखा।
मिलि अंगम सुख सहज समाया, या विधि केशो बिसरी काया॥[1]

२. सोई निज संत जिन अंत आपा लियो, जियो जुग जुग गगन बुद्धि जागी।
प्रान आपान असमान में थिर भया; सुन्न के सिखर पर जिकिर लागी।
रहत घर वास बिनु स्वास का जीव है, सक्ति मिली सीव सों सुरति पागी।
अकह अलिख आदेश को देखिया, पेखि केसो भयो ब्रह्म रागी॥[2]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ की भाषा में ब्रज, खड़ी बोली, राजस्थानी तथा पंजाबी का पुट है। साथ ही सबद, सुन्न, सुरति आदि कबीर-मार्गियों के पारिभाषिक शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। स्थान-स्थान पर अरबी-फारसी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे सिफ़त, पाक़, खाक़, जिकिर आदि[3]। दूसरे, इस ग्रन्थ के लेखक ने अपने गुरु का नाम 'यारी' बताया है[4]। अतः, इसे केशवदास की कृति कदापि नहीं माना जा सकता। केशवदास जी की 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' का एक छन्द कहीं-कहीं कुछ पाठान्तर के साथ 'अमीघूंट' में उपलब्ध होता है, परन्तु उक्त छन्द की भाषा इस ग्रन्थ की भाषा से मिलती नहीं है। अतः, हमारा अनुमान है कि संग्रह-कर्त्ता भूल से उस छन्द को इस ग्रन्थ में दे गया है। छन्द इस प्रकार है—

निसु वासर वस्तु विचारु सदा, मुख सांच हियें करुना घन है।
अघनिग्रह संग्रह धर्म-कथा, निपरिग्रह साधन को गुन है॥
कह केशो भीतर जोग जगै, इत बाहर भोग मई तन है।
मन हाथ भये जिन के तिन के; बन ही घर है घर ही बन है॥[5]

इस प्रकार केशवदास के कुल मिलाकर नौ ग्रन्थ प्रामाणिक ठहरते हैं। उनके नाम ये हैं—१. रतनबावनी, २. रसिकप्रिया, ३. छन्दमाला, ४. रामचन्द्रिका, ५. कविप्रिया, ६. वीरसिंहदेवचरित, ७. विज्ञानगीता, ८, जहांगीर-जस-चन्द्रिका और ९. शिखनख।

---

१. अमीघूंट, पृ० ६।
२. वही, पृ० ९।
३. वही, पृ० ८।
४. निर्गुण राज समाज है, चंवर सिंहासन छत्र।
तेहि चढ़ि यारी गुरु दियो, केसोहि अजपा मंत्र॥
—अमीघूंट, पृ० २।
५. अमीघूंट, पृ० ९, रा० चं०, प्र०, २५, छं०, ३९ तथा वि० गी०, प्र० ११, छं० ४३।

काव्य-स्वरूप और विषय की दृष्टि से केशवदास के प्रामाणिक ग्रन्थों का विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है—

अ—रीति काव्य—

१. रसिकप्रिया (नायिका-भेद तथा रस-मीमांसा)।
२. कविप्रिया (कविशिक्षा तथा अलंकार)।
३. शिखनख (नखशिख)।
४. छन्दमाला (पिंगल)।

आ—प्रबन्ध-काव्य—

१. रामचन्द्रिका २. विज्ञानगीता	} धार्मिक
३. रतनबावनी ४. वीरसिंहदेव-चरित ५. जहाँगीर-जस-चन्द्रिका	} ऐतिहासिक

चौथा अध्याय

केशव के प्रबन्धों का काव्य-विवेचन

(अ) प्रबन्ध-सौष्ठव :

रचना-शैली की दृष्टि से भारतीय समीक्षा-पद्धति में श्रव्यकाव्य के प्रबन्ध और मुक्तक नाम के दो भेद किए गए हैं। प्रबन्ध में पूर्वापर का तारतम्य रहता है, मुक्तक में यह तारतम्य नहीं होता। प्रबन्ध में छन्द एक-दूसरे से कथानक की शृंखला में बंधे रहते हैं, वे एक-दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। मुक्तक में छन्द स्वतःपूर्ण होते हैं, एक छन्द दूसरे की अपेक्षा नहीं करता। प्रबन्ध-काव्य में जहाँ वर्णन, प्रकथन एवं सामूहिक प्रभाव की प्रधानता रहती है वहाँ मुक्तक में एक-एक छन्द की साज-सम्हाल पर ध्यान दिया जाता है। फिर भी दोनों ही प्रकार की शैलियों की अपनी उपादेयता तथा महत्ता है। केशव ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही शैलियों को अपनाया है। 'रामचन्द्रिका', 'वीरसिंहदेव-चरित', 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीर-जसचन्द्रिका' नामक ग्रन्थ प्रबन्ध के अन्तर्गत हैं तथा 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया', 'शिखनख' और 'छन्दमाला' रीतिग्रन्थों की गणना मुक्तक रचनाओं में है।

(क) रामचन्द्रिका

रचना की प्रेरणा—हिन्दी जगत् में केशवदास की अक्षय कीर्ति का आधार उनका प्रसिद्ध महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' है। बाबा वेणीमाधवदास के मतानुसार काशी में संवत् १६४३ वि० के लगभग तुलसी की भेंट केशव से हुई थी, तभी 'रामचन्द्रिका' का सूत्रपात हुआ। तुलसी केशव को 'प्राकृत कवि' समझते थे। इस लाँछन से मुक्त होने के लिए ही केशव ने रात भर में 'रामचन्द्रिका' की रचना कर तुलसीदास के दर्शन किये थे। 'रचि राम सुचन्द्रिका रातिहि में। जुरै केशव जु असि घाटिहि में॥ ......मिटि केशव को संकोच गयो। उर भीतर प्रीति की रीति रयो[१]॥ 'इस उद्धरण से ज्ञात होता है कि 'रामचन्द्रिका' तुलसीदास को प्रसन्न करने के लिए रची गई थी, पर 'रामचन्द्रिका' के साक्ष्य से यह बात अशुद्ध ठहरती है। स्वयं केशवदास 'रामचन्द्रिका' की रचना का कारण वाल्मीकि द्वारा स्वप्न-प्रेरणा बतलाते हैं[२]। मुनि ने

---

१. मूलगोसाईं चरित, दोहा ५८ की चौपाइयाँ।

२. वालमीकि मुनि स्वप्न महं दीन्हों दर्शन चारु।
केशव तिनसों यों कह्यौ क्यों पाऊं सुखसारु॥

—रा० चं०, प्र० १, छं० ७।

'सी, धी । री, धी ।। राम, नाम । सत्य, धाम ।।[1] का मंत्र दिया। केशव के पूछने पर कि 'दुःख क्यों टरि है[2]' मुनि ने उत्तर दिया—

भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै ।।
न राम देव गाइहै। न देवलोक पाइहै ।।[3]

यह आदेश पाकर केशव दास ने रामचन्द्र जी को इष्ट माना और राम उनकी दृष्टि में अवतार मात्र न रह कर 'अवतारी अवतारमणि' हो गए[4]। फलतः केशव ने रामचन्द्र की चन्द्रिका का वर्णन करने का निश्चय किया। 'रामचन्द्रिका' राम का आद्योपान्त 'चरित' नहीं है। स्वयं कवि के शब्दों में वह केवल 'रामचन्द्र की चन्द्रिका' है[5]।

प्रबन्ध-काव्य के तत्त्व—यद्यपि 'रामचन्द्रिका' रामचन्द्र की चन्द्रिका का वर्णन-मात्र ही है, फिर भी लिखी गई है प्रबन्ध-काव्य की शैली में ही। अब देखना यह है कि प्रबन्ध-काव्य के आवश्यकीय तत्त्वों, जैसे कथा का श्रृंखलाबद्ध प्रवाह, कथा के बीच-बीच में प्रकृति के दृश्यों एवं वस्तुओं का वर्णन, कथानक के मार्मिक स्थलों का चित्रण, संवाद, चरित्रों का उत्तरोत्तर विकास, प्रबन्ध का सर्गों में विभाजन आदि का 'रामचन्द्रिका' में कहाँ तक निर्वाह हो सका है।

कथानक—'रामचन्द्रिका' का कथानक चिरपरिचित रामकथा है। पर उस पर 'वाल्मीकि रामायण' का विशेष प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। केवल कथानक का ढाँचा ही 'वाल्मीकि रामायण' से साम्य रखता है, अन्यथा दोनों ग्रन्थों के सूक्ष्म ब्यौरों में पर्याप्त अन्तर है। यही बात तुलसी के 'मानस' के विषय में भी कही जा सकती है। कथानक में उन्होंने जहाँ-तहाँ मनमाना परिवर्तन भी किया है जो अभिनय की दृष्टि से चाहे जितना अच्छा बना हो पर प्रबन्ध की दृष्टि से उसका कोई महत्त्व नहीं है। वस्तुतः 'रामचन्द्रिका' के कथानक पर संस्कृत के 'हनुमन्नाटक' तथा 'प्रसन्नराघव' नामक नाटकों का ही विशेष प्रभाव दिखलाई देता है। केशव ने अनेक स्थलों पर इन नाटकों से प्रेरणा ली है और कई स्थलों पर अपनी कल्पना द्वारा मौलिकता का समावेश किया है। राम-कथा के विश्लेषण से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि सम्पूर्ण कथा दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में विश्वामित्र के अवधागमन से लेकर राजतिलक तक की कथा है जो २६वें 'प्रकाश' तक चलती है। ३३वें 'प्रकाश' से ३६वें 'प्रकाश' तक सीता-निर्वासन की स्वतन्त्र कथा है। मध्य के छः 'प्रकाशों' में राम के राजसी ठाट-बाट का वर्णन है। दोनों कथाओं में किसी प्रकार का अनुपात नहीं है। स्वान-संन्यासी अभियोग, सत्यकेतु आदि असम्बद्ध उपाख्यानों, मठधारी निन्दा,

---

१. रा० चं०, प्र० १, छं० ८-१०।
२. रा० चं०, वही, छं० ११।
३. वही, प्र० १, छं० १६।
४. वही, प्र० १, छं० १७-१८।
५. जागत जाकी ज्योति जग एकरूप स्वच्छन्द।
रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णत हौं बहु छन्द ।।
रा० चं०, प्र० १, छं० २१।

मथुरा-माहात्म्य-वर्णन, दान-विधान, सनाढ्योत्पत्ति-वर्णन, रामकृत राज्यश्री-निन्दा, राम-विरक्ति-वर्णन के अन्तर्गत बालकाल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था के दुःखों का वर्णन, जीवोद्धारयत्न, राजनीति-वर्णन आदि अनेक अप्रासंगिक विषय बीच-बीच में आते हैं जो कथा-विकास में बाधा पहुँचाते हैं। 'रामचन्द्रिका' की समस्त कथा ३६ प्रकाशों में विभक्त है। इसमें कथा-क्रम का अभाव तो नहीं, किन्तु वह सुबद्ध एवं सुशृंखलित नहीं है। उसकी शृंखला अनेक स्थलों पर टूटी तथा बिखरी हुई प्रतीत होती है। 'रामचन्द्रिका' की कथावस्तु में हमें १. क्रम का अभाव, २. अनुपात का अभाव, और ३. गति का अभाव—ये दोष दृष्टिगोचर होते हैं।

क्रम का अभाव—जब हम 'रामचन्द्रिका' के चित्रों का अवलोकन करते हैं तो एक ऐसे चित्रकार की कल्पना होती है, जो कुछ विशेष वस्तुओं में रंग भरने में अत्यन्त प्रवीण है, परन्तु बहुत-सी वस्तुओं के रंगों की रेखाएँ या तो अस्पष्ट हैं या उनके रंग और रूप फीके तथा आकर्षणहीन हैं। केशव ने अपनी कथा को रामजन्म से आरम्भ नहीं किया। उन्होंने राम की बाललीला भी नहीं दिखाई जिस पर तुलसी ने पूरे एक काण्ड में वात्सल्य रस का सागर ही उँडेल डाला है। दशरथ का अत्यन्त ही संक्षेप में परिचय कराने तथा राम आदि चार भाइयों के नाम-मात्र गिनाने के साथ कथारम्भ होती है। इसके अनन्तर ही अयोध्या में विश्वामित्र के आगमन का वर्णन है। विश्वामित्र आते ही सरयू, हाथी, बाग और अयोध्या का वर्णन करते हैं और अयोध्या के राजसी ठाट-बाट और सौन्दर्य से मुग्ध हो राजा दशरथ की सभा में पहुँचते हैं। दूसरे प्रकाश में मुनि विश्वामित्र का दशरथ की सभा में आगमन, राजा से वार्तालाप और श्रीराम का मुनि के साथ तपोवन जाना वर्णित है। प्रथम, केशव राजसभा के सभासदों का उल्लेख करते हैं और फिर वे राजसी विलास-क्रीड़ाओं का आनन्द लूटते दिखाई देते हैं, जिसका सम्भवतः केशव को नगर के प्रसंग में ध्यान नहीं रहा था। अस्तु, हम उन्हें फिर राजसभा में प्रविष्ट पाते हैं। किन्तु यह सब कुछ मुनि जी ने अपनी दिव्य-चक्षु से ही देखा होगा क्योंकि अभी तक वे शारीरिक रूप से राजसभा नहीं पहुँचे हैं (रा० चं०, प्र० २, छं० ७)। विश्वामित्र राजा दशरथ से यज्ञ की रक्षा के लिए केवल राम की याचना करते हैं, पर विदा होते समय लक्ष्मण भी उनके साथ जाते दिखलाई पड़ते हैं। तीसरे प्रकाश में भी ऐसी ही असंगति खटकती है। विश्वामित्र के साथ आश्रम में पहुँचने पर लक्ष्मण-सहित राम सजग होकर यज्ञ की रक्षा के लिये यज्ञस्थल के निकट बैठे हैं। इतने में ही ताड़का यज्ञभंग करने के लिये उसी स्थल पर प्रकट होती है। राम बाण तो तानते हैं, पर स्त्री समझकर उस पर चलाते नहीं। इस पर मुनि का आदेश होता है—

कर्म करति यह घोर विप्रन को दसहू दिसा।
मत्त सहस गज जोम नारी जानि न छाँडिये॥

(प्र० ३, छं० ६)

झट राम ताड़का-वध कर डालते हैं। उसी के साथ वे मारीच को भगाते और सुबाहु को मार डालते भी हैं, जिनके आने का पहले कहीं उल्लेख नहीं किया गया है। इस प्रकार विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होता है। इतने में ही एक ब्राह्मण-

पथिक जनकपुरी से आता है और विश्वामित्र उससे मिथिला के धनुष-यज्ञ की शुभ कथा सुनने लगते हैं। एक ही स्थान पर बैठा ब्राह्मण धनुष-यज्ञ के उत्सव-समारोह और सुमति-विमति के संभाषणपूर्ण विभिन्न देशों के राजाओं के शौर्य एवं प्रताप की कथा सुनाता रहता है। कथावस्तु का यह अप्रासंगिक सूक्ष्म वर्णन कथा-क्रम में शैथिल्य लाता है। तुलसी ने अपने 'मानस' में यह सब वर्णन राम के मिथिला पहुँच जाने पर किया है। यदि केशव भी उनका ही अनुकरण करते तो यह असंगति न होती और उसका प्रभाव भी निश्चय ही अधिक पड़ता। ब्राह्मण कहता है कि जब सब राजा-महाराजा भी धनुष तोड़ने में असमर्थ रहे और उनका न कोई स्वार्थ ही सिद्ध हुआ और न परमार्थ ही, वरन् अपने हाथों अपनी मान-प्रतिष्ठा और गँवाई, उसी क्षण रावण और बाणासुर कहीं से आ टपकते हैं और फिर दोनों में कहा-सुनी हो जाती है। यह कुछ सूक्ष्म वस्तु के रूप में ही है। यदि यह भी कवि के मुख से ही वर्णित होता तो अधिक संगत होता। फिर धनुष-यज्ञ में आकर भी बाण यह बहाना बना कर कि "यह धनुष तो मेरे गुरु शिव जी का है और सीता मेरी माता है। दोनों प्रकार से यह कार्य मेरे लिये असमंजस का है", स्थिति से बच निकलता है और सहर्ष चला जाता है। इतने ही में किसी असुर के मारे जाने की आर्त्त वाणी सुनकर रावण भी स्वयंवर-भूमि से खिसक जाता है। रावण के खिसकने का यह कारण भी कल्पित जान पड़ता है। धनुष-यज्ञ पूर्ण हो चुका, व्रत भंग हो चुका और राजा जनक धनुष भी अपने भवन में वापिस रख चुके पर ब्राह्मण की कथा उसी प्रकार चल रही है कि ठीक उसी समय एक चमत्कार होता है। एक ऋषि-पत्नी आती है, जो हाथ में सीता के भावी वर के रूप में एक सुन्दर राजकुमार का चित्र लिये है[1]। इसी दैवी संकेत को पा विश्वामित्र मिथिला के लिए चल पड़ते हैं और साथ में राम और लक्ष्मण भी हैं। दूसरे ही क्षण दृष्टि पड़ते ही राम शिला को एक सुन्दर स्त्री बना देते हैं। रातों-रात चलकर ही वे सब प्रातः मिथिला पहुँचते हैं। रामलक्ष्मण-सहित विश्वामित्र का आगमन सुनकर याज्ञवल्क्य, सतानन्द आदि ऋषि-मुनियों ने उनका स्वागत किया। लक्ष्मण के इस प्रश्न का कि राजा जनक योगी और राजा दोनों एक ही साथ कैसे हो सकते हैं, उत्तर विश्वामित्र न देकर राम देते हैं जिनका कदाचित् जनक से कोई पूर्व परिचय न था। यह उत्तर विश्वामित्र देते तो अधिक स्वाभाविक एवं उचित होता। रामचन्द्र का परिचय जनक से कराते समय विश्वामित्र कहते हैं कि रामचन्द्र 'भुवचन्द्र' हैं तो सीता 'चकोर तनया'। दोनों एक दूसरे के योग्य हैं पर यह बात जब तक कि धनुष न तोड़ा जाए कैसे बन सकती है। अतः, धनुष तोड़ना आवश्यक हो जाता है और राम को धनुष भी तोड़ना पड़ता है। पर तुलसी ने स्वयम्बर के समारोह के अवसर पर जो विभिन्न-देशीय राजा-महाराजाओं के समक्ष रामचन्द्र का पराक्रम दिखलाया है उसे केशव अपनी 'चन्द्रिका' में इस मौलिकता के कारण न दिखला सके। उस विश्व-विख्यात व्रत का पालन चुपचाप हो जाता है।

---

१. लिखि लाइ सिय को वरु ऐसो। राजकुमार हि देखिय जैसो।

—रा० च०, प्र० ५ छं० २।

राजा जनक दशरथ के पास चारों भाइयों के विवाह का निमंत्रण भेजते हैं और तुरन्त ही राजा दशरथ चार बरातें सजा कर आ खड़े होते हैं, किन्तु वर्णन केवल राम-सीता के ही विवाह का किया गया है। विवाह के सब कृत्य बारोठे को चार (द्वारपूजन), मंगलगारी, यज्ञ-हवन, गान-वाद्य, ज्योनार, पलकाचार, समाप्त हो जाने पर केशव का कथन है[1]। पता नहीं राजा दशरथ का क्या बना? 'राम-परशुराम-संवाद' में वामदेव, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और अंत में महादेव सब अपना-अपना भाग लेते हैं, पर दशरथ का कहीं पता नहीं लगता। सम्भवतः उनकी उपस्थिति का केशव को ध्यान ही नहीं रहा है।

अयोध्याकाण्ड में इधर तो राजा दशरथ राम के राज्याभिषेक के विषय में वशिष्ठ से मन्त्रणा करते हैं और उधर कैकेयी राम के लिए बनवास का निश्चय कर लेती है और प्रतिज्ञाबद्ध राजा से दोनों वर माँग लेती है। तुलसी ने ऐसे मार्मिक स्थल में दशरथ और कैकेयी दोनों के चरित्रों के उज्ज्वल और मलिन पक्ष का बड़ी निपुणता के साथ उद्घाटन करते हुए पाठक को मन्त्रमुग्ध कर दिया है। पर केशव को ऐसे मनोवैज्ञानिक एवं सरस अंशों में कोई आकर्षण नहीं दिखाई देता। इधर तो दशरथ तड़प उठते हैं और उधर राम तमक कर बन की ओर प्रस्थान कर देते हैं। ऐसे प्रसंग में केशव की इतनी उदासीनता एवं क्षिप्रता खटकती अवश्य है पर सन्तोष है कि राम ने अभी सचमुच बन की ओर प्रस्थान नहीं किया है। उन्हें अभी अपनी माता को नारी-धर्म और विधवा-धर्म का पाठ पढ़ाना शेष रहता है। दोनों ही बातें कितनी अशिष्ट और अमांगलिक हैं। पता नहीं केशव में इतनी निष्ठुरता तथा हृदय-हीनता कहाँ से आ गई? राम, जानकी और लक्ष्मण से विदा लेते हैं पर दूसरे ही क्षण वे जानकी और लक्ष्मण के साथ वनमार्ग में विराज रहे हैं। इधर राजा दशरथ रामचन्द्र का घर से वन को प्रस्थान सुनते हैं कि उधर जादू की भाँति उनके प्राण ब्रह्मरन्ध्र को छोड़कर स्वर्गलोक में जा रमते हैं। भरत का ननिहाल से अयोध्यापुरी में लौटना, माता से मिलना, उसे धिक्कारना, कौशल्या के समीप जाकर शपथ खाना, पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करना, जटाएँ तथा वस्त्र धारण कर निषाद के साथ गंगा पार करना आदि प्रसंग अत्यन्त संक्षेप में दिए हैं। भरत का ससैन्य चित्रकूट पर राम जी के पास पहुँचना, उनसे पादुका माँगकर लौट आना और नन्दीग्राम में रहने लगना आदि प्रसंग भी बहुत संक्षिप्त हैं। इस प्रकार वे अत्यन्त सुन्दर स्थलों को छोड़ गये हैं। अत्रि-अनुसूया-मिलन, विराध-वध, खर-दूषण-त्रिशिरा आदि राक्षसों का बध, राम का सीता-लक्ष्मण-सहित अगस्त्य ऋषि के आश्रम में पहुँचना, मारीच-वध, रावण-जटायु-युद्ध, बालि-सुग्रीव-युद्ध, राम द्वारा बालिबध, सम्पाति-कथा, हनुमान जी का समुद्र को पार करना, समुद्र के बीच में हनुमान जी को सुरसा और सिंहिका नाम की राक्षसनियों का मिलना, उनके द्वारा हनुमान जी का कवलित किया जाना और

---

१. विश्वामित्र विदा भए जनक फिरे पहुँचाय।
मिले आगली फौज को परसुराम अकुलाय॥
रा० च०, प्र० ७, छं० १।

हनुमान जी का उनका उदर चीरकर निकल आना आदि प्रसंगों की ओर संकेत-मात्र ही किया गया है। समुद्र-बंध की कथा केवल एक ही छन्द में दी गई है[1]। इस प्रकार केशवदास आवश्यक प्रसंगों को छोड़ देते हैं और अप्रासंगिक विषयों के वर्णन में ही अपना मन रमाते दिखाई पड़ते हैं। औचित्य-अनौचित्य की भी उन्होंने उपेक्षा की है। बहुत स्थानों पर तो क्रिया-व्यापारों की केवल सूचना भर दे संतोष करते हैं। इस कारण रामकथा का सांगोपांग चित्रण करने में वे सफल नहीं हो सके हैं।

अनुपात का अभाव—केशव ने 'रामचन्द्रिका' के प्रथम प्रकाश में सरयू, दशरथ के हाथी, उपवन और अवधपुरी के वर्णन में छन्द के छन्द (छं० ३७-५०) रच डाले हैं। दूसरे प्रकाश में दशरथ की राजसभा का वर्णन भी इकट्ठे ग्यारह छन्दों में किया गया है (छं० १-११)। किन्तु जिन स्थलों में हृदय की ग्रन्थियों को खोलकर दिखाने का अवसर आता है वहाँ उनकी लेखनी मौन हो जाती है। कुछ ही छन्दों में केशव विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण को तपोवन में पहुँचा देते हैं। जनक के राजप्रासादों, मण्डपों, धनुष-यज्ञ, राम-सीता के विवाह में ज्योंनार, मंगलगारी, पलकाचार आदि के प्रसंगों पर उनकी रुचि अधिक तत्पर दिखलाई देती है, परन्तु राम-वनगमन जैसे करुण प्रसंगों में उनका कवित्व द्रवित नहीं हुआ है। ऐसे मार्मिक प्रसंग में भी नारी-धर्म और विधवा-धर्म के उपदेशों की ओर ही केशव की दृष्टि गई है जिससे कथा के प्रबन्धत्व पर घोर आघात पहुँचा है। अयोध्या-वर्णन एक बार (पहले और दूसरे प्रकाश में) कर चुकने के अनन्तर भी केशव सन्तुष्ट नहीं होते और विवाहोपरान्त राम-सीता के जनक-पुरी से लौटने पर अवध-पुरी में प्रवेश करते समय फिर अयोध्या का वर्णन करने लगते हैं और पूरा आठवाँ प्रकाश ही लिख डालते हैं। राम के वन जाते ही दशरथ का मरण हो जाता है। यदि केशव को मार्मिक स्थलों की पहचान होती तो ऐसे अवसर पर वे दो-एक आँसू अवश्य ही गिराते किन्तु केशव तो दूसरे ही छन्द में वनमार्ग में चलते हुए राम के रूप में उलझ जाते हैं। उधर भरत पिता का अन्त्येष्टि संस्कार करते हैं और उधर वे जटायें और वल्कल वस्त्र धारण कर झटपट पैदल ही राम जी के पास चल पड़ते हैं। भरत क्यों एक दम चल पड़ते हैं ? इस विषय में केशव मौन हैं पर पाठक तुलसी की कृपा से जानते हैं कि भरत राम को मनाने जा रहे हैं। केशव ने ऐसी सूचनाओं की ओर ध्यान नहीं दिया है। छद्मरूपधारी मृग को देखकर सीता का सम्मोहन, सीता की रक्षा के निमित्त लक्ष्मण की नियुक्ति और मृग के पीछे धनुष-बाण लेकर राम का प्रस्थान—सब एक ही छन्द में वर्णित हैं[2]। लक्ष्मण के चले जाने के पश्चात् तो सीता-हरण एक ही छन्द में

१. जबहीं रघुनायक बाण लियो। सविशेष विशोषित सिंधु हियो।
तब ही द्विज रूप सु आइ गयो। नल सेतु रचै यह मंत्र दियो॥
रा० चं० प्र० १५, छं० २७।

२. आइयो कुरंग एक चारु हेम हीर को।
जानकी समेत चित्त मोहि राम धीर को॥
राजपुत्रिका समीप साधु बंधु राखि कै।
हाथ चाप बाण लै गए गिरीश नाखि कै॥
रा० च०, प्र० १२, छं० १३।

हो गया है। मृग को मारकर लौटने पर पर्णकुटी में सीता को न पाकर राम लक्ष्मण से पूछते हैं—

निज देखौं नहीं सुभ गीतहि सीतहि कारण कौन कहो अबहीं।
अति मो हित कै बन मांझ गई सुर मारग में मृग मार्यों जहीं।।
कटु बात कछू तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं कहु लक्ष्मण होइ नहीं।।

(रा० चं०, प्र० १२, छं० २७)

और दूसरे ही चरण में जैसे जटायु सामने ही पड़ा था।

लंकाकाण्ड में कथा विस्तृत रूप में दी गई है परन्तु 'उत्तरकाण्ड' में कथा-भाग बहुत थोड़ा और वर्णन-भाग अधिक है। इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' के उत्तरार्द्ध में भी कथा-भाग की अपेक्षा वर्णन-भाग (जिसमें राम के राज-ऐश्वर्य और राज-विहार का विवरण है) अधिक है। यदि केशव कथा-प्रसंगों के अनुपात का ध्यान रखते तो वे 'रामचन्द्रिका' की कथावस्तु की ऐसी उपेक्षा कभी न करते।

गति का अभाव—'रामचन्द्रिका' के पढ़ने से ऐसा आभास होता है कि कवि का उद्देश्य कथा को लघुतम घटना-सहित सर्वांगपूर्ण रूप में दिखाना नहीं है, वरन् रामचन्द्र के जीवन के अधिक प्रकाशित या महत्त्वपूर्ण प्रसंगों की झाँकी दिखाना मात्र है। इसमें 'रामचन्द्र की चन्द्रिका वर्णन हौं बहु छन्द' से कदाचित् यही आशय है। 'रामचन्द्रिका' को 'मुक्तक' तो नहीं कहा जा सकता। कारण, इसके छन्द स्वतःपूर्ण नहीं हैं, वे एक-दूसरे की अपेक्षा करते हैं। क्षीण अथवा प्रौढ़ सूत्र द्वारा भिन्न-भिन्न प्रसंगों को जोड़कर केशव ने इसे प्रवन्ध का रूप देना चाहा है जिसके परिणामस्वरूप केशव की स्थिति एक चित्रकार की न होकर अनेक चित्रों के व्याख्याता की-सी हो गई है। केशव कभी नीरस एवं विस्तृत उपदेश अथवा विवरण देते हुए पाठक के मन को ऊबा देते हैं और कहीं पर सम्पूर्ण कथा-कल्पना का भार पाठक की कल्पना-वृत्ति पर लाद कर चलते बने हैं। 'रामचन्द्रिका' में आदि से अन्त तक छन्द-परिवर्तन दिखाई पड़ता है। कुछ छन्द द्रुतगति हैं और कुछ मन्दगति। अतः समस्त कथा में एक-सी गति या प्रवाह नहीं है। कहीं गति में स्वाभाविक सरलता और धीरता के दर्शन होते हैं तो कहीं अधीर उच्छृंखलता के। केशव की जो प्रसंग अति प्रिय एवं रुचिकर लगा है उसको उन्होंने खूब ही चित्रित किया है। जहाँ उन्हें लोकनीति, धर्मनीति एवं काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान का प्रदर्शन करने का अवसर मिलता है वहाँ वे बलात् पाठक को रोक लेते हैं। ऐसे स्थलों पर कथा की गति मन्द पड़ जाती है। पर जहाँ ऐसा कोई प्रसंग नहीं आता वहाँ एक ही छन्द में कई दिनों, महीनों अथवा वर्षों की घटनाओं को समेट लेते हैं। अयोध्या वर्णन, धनुष-यज्ञ-समारोह, रावण-बाण-संवाद, विवाह-वर्णन, राम-परशुराम-संवाद, भरत का चित्रकूट प्रयाण, रावण-सीता-वार्ता, सीता-हनुमान-संवाद, हनुमान-रावण-संवाद, अंगद-रावण-संवाद, राम-राज्य-वर्णन, अश्वमेघ-यज्ञ, लवकुश-युद्ध—ये प्रसंग 'रामचन्द्रिका' में विस्तार के साथ दिये गये हैं और इनमें सम्यक् प्रवाह भी है। दूसरी ओर विश्वामित्र-यज्ञ-रक्षा, दशरथ-बरात-वर्णन, राम-राज्यारोहण, कैकेयी का वर माँगना, वनवास-वर्णन, राम-भरत-

सम्भाषण, जटायु-रावण-युद्ध, शबरी-कथा, युद्ध-वर्णन आदि प्रसंग संकोच के साथ वर्णित हैं। इनमें कवि ने कथा-व्यापार की सूचना मात्र दी है।

मार्मिक स्थलों का चित्रण—संस्कृत के आचार्य विश्वनाथ और रसगंगाधर के प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथ से लेकर हिन्दी के आचार्य शुक्ल तक सभी आलोचकों ने काव्य की आत्मा रस को स्वीकार किया है। पाश्चात्य आलोचकों ने काव्य में चित्रविधान को प्रमुखता दी है। यह चित्रविधान तब तक सम्भव नहीं जब तक कवि में भाव की सम्प्रेक्षणक्षमता न हो। केशव का कवि सदैव केशव के आचार्य के आगे हतप्रभ हो गया है। केशव ने काव्य के बहिरंग को ही संभाला है, अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

'रामचन्द्रिका' में अनेक स्थल ऐसे आते हैं जिनसे प्रकट होता है कि कथानक के अत्यन्त मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक स्थलों के चित्रण में भी केशव का कवित्व द्रवित नहीं हुआ है। तपोवन की रक्षा के निमित्त याचना करने वाले विश्वामित्र को अपने प्रिय पुत्र राम और लक्ष्मण के सौंप देने के उपरान्त दशरथ की व्यथा को केशव ने अपनी लेखनी के एक-दो स्पर्श में ही अंकित करके पाठक के मन में करुणा प्रवाहित कर दी है[1]। दशरथ का यह मौन उनके हृदय के मौन रुदन का द्योतक है। कैकेयी के वर माँगने पर दशरथ के हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया केशव के लिये इतनी मर्मभेदी नहीं है। वे केवल

यह बात लगी उर बज्र तूल। हिय फाट्यो ज्यों जीरन दुकूल[2] ॥

ये पंक्तियाँ लिख कर ही रह जाते हैं। राम पर भी वनवास के समाचार की कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। वे सहसा वन के लिये चल पड़ते हैं। कौशल्या माता से विदा माँगने पर वे उसका सौतिया-डाह ही दिखाकर सन्तुष्ट हो जाते हैं। प्राण-प्यारे और लाड़ले पुत्र के चौदह वर्ष के दीर्घकाल के लिये बिछुड़ते समय माता के दिल पर क्या गुजरती है इसे केशव का राज-समाज में पला हुआ हृदय क्या जान सकता है। वन-यात्रा में सीता जी की थकावट को वल्कल वस्त्र की हवा करके राम दूर करते हैं और सीता बाँकी चितवन से देखकर राम के श्रम का अपहरण करती हैं। राम-सीता की ऐसी शारीरिक शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन केशव की मर्मज्ञता पर घोर आघात है। जहाँ तुलसी की सीता चलते समय अपने प्रभु के चरण-चिन्हों के बीच-बीच में अपने पाँव धरती हुई चलती है, वहाँ केशव की सीता झुलसे हुए पाँवों को राम के चरण-चिन्हों की शीतलता से सुख पहुँचाने के लिये उन पर पाँव धरती हुई चलती है[3]। एक अद्वितीय पातिव्रत का

---

१. राम चलत नृप के युग लोचन, वारि भरित भये वारिद लोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं, केशव उठि गये भीतर मौनहिं ॥
—रा० चं०, प्र० २, छं० २७।

२. रा० चं०, प्र० ९, छं० ५ (प्रथमार्द्ध)।

३. मारग को रज तापित है अति। केशव सीतहिं सीतल लागति ॥
ज्यों पद पंकज ऊपर पायनि। दै जु चलै तेहि सुखदायनि ॥
—रा० चं०, प्र० ९, छं० ३८।

उदाहरण है और दूसरा शरीर-सुख-लालसा और स्वार्थपरता का। सीता जैसी साध्वी के प्रति इससे अधिक घोर अन्याय और क्या हो सकता है? इसी प्रकार चित्रकूट में राम के पूछने पर कि पिता कुशल से हैं? माताओं की व्यथा रुदन-चेष्टा द्वारा ही दिखाई गई है[1]।

राम-वनवास और दशरथ-मरण के उपरान्त भरत के अयोध्या लौटने पर जहाँ तुलसी भरत का राम-प्रेम और क्षोभ दिखाकर पाठक का हृदय द्रवित करने में समर्थ हैं वहाँ केशव अपनी प्रश्नोत्तर-प्रणाली से भरत का सारा भावावेश संकुचित कर देते हैं[2]। जब भरत चित्रकूट में ससैन्य राम को अयोध्या लौटा लाने के लिए आते दिखाई देते हैं तो लक्ष्मण सशंक हो उठते हैं। किन्तु सेना का वर्णन करने में आलंकारिकता का पुट देकर तथा वीर रस के स्थायी भाव की व्यंजना करके केशव उक्त शंका की व्यंजना में बाधक हो गए हैं (रा० चं०, प्र० १०, छं० १८)। केशव यह जानते थे कि भरत सेना-सहित युद्ध करने नहीं आये हैं तब इस प्रकार का वर्णन करना प्रसंगानुकूल भाव का व्यंजक नहीं हो सकता।

मृग को मारकर लौटने पर पर्णकुटी में सीता को न पाकर राम को व्याकुल होना चाहिए था किन्तु केशव के राम कवि के-से सन्देह में पड़ जाते हैं[3]। राम का यह सन्देह आलंकारिक हो अथवा यथार्थ, इससे केशव ने राम की सर्वज्ञता पर पानी अवश्य फेर दिया है। जो राम पृथ्वी का भार उतारने के लिए माया-मृग की माया और छाया-रूपिणी सीता की माया रचते दिखलाई पड़ते हैं वे राम अवश्य एक क्षण के लिए इस भ्रम में ग्रस्त हो गए हैं कि उनसे भी अधिक प्रबल कोई राक्षसी माया उन्हें नचाना चाहती है। राम इसी दुविधा में हैं कि जटायु सामने ही दिखाई पड़ जाता है और वह रावण द्वारा सीता के हरण का समाचार देता है, किन्तु राम अब भी विकल नहीं होते। वे उनकी खोज उसी प्रकार करते हैं, जैसे आँख-मिचौनी के खेल में—

दिस दच्छिन को करि दाह चले। सरिता गिरि देखत वृच्छ भले॥

(रा० चं०, प्र० १२, छं० ३३)

आगे कबन्ध से भेंट होने पर और उससे यह संकेत पाकर ही कि गोदावरी से आगे बढ़ने पर सुग्रीव सीता का ठीक-ठीक पता देगा, राम की विरहदशा का श्रीगणेश होता है। वे चक्रवाक-युग्म और चकोर को देखकर सीता के उपकार का प्रतिदान देने

---

१. तब पुत्र को मुख जोइ, क्रम तें उठीं सब रोइ॥

—रा० चं०, प्र० १०, चं० ३०।

२. बन काज कहा कहि? केवल मों सुख, तोकों कहाँ सुख यामे भये?
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहाँ अपराध बिना सिगरेई हये॥

—रा० चं०, प्र० १०, छं० ४।

३. कहु बात कछु तुम सों कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं॥

—रा० चं० प्र० १२, छं० २७।

के नाते उनसे सीता का पता पूछते हैं और करुणा वृक्ष से भी उसके नाम की सार्थकता का आग्रह करते हुए सविनय कहते हैं, किन्तु याचक (भ्रमर) के शत्रु चम्पक, अशोक, तीक्ष्ण काँटेदार केवड़ा, केतकी, जायफल और गुलाब से नहीं पूछते। इस प्रकार के वर्णन केशव के पाण्डित्य के सूचक अवश्य हो सकते हैं किन्तु इनसे राम की विरह-दशा व्यंजित नहीं होती।

सीता की वियोग-दशा उनके हरण से ही आरम्भ होती है। लंकाधिपति रावण के चंगुल में फँसी हुई सीता का निम्नलिखित पंक्तियों में व्यक्त किया गया करुणा-क्रन्दन—

हा राम ! हा रमन ! हा रघुनाथ धीर ! लंकाधिनाथ बंश जानहु मोहि बीर ॥
हा पुत्र लक्ष्मण छोड़ावहु बेगि मोहि। मार्तण्ड बंश यश की सब लाज तोही ॥
(रा० चं०, प्र० १२, छं० २१)

हृदयद्रावक एवं मर्मस्पर्शी नहीं है। स्व० डा० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल के शब्दों में, यदि केशव मनोवृत्तियों से परिचित होते तो इस अवसर पर इस अपील में उनकी सीता अपना हृदय खोलकर रख देतीं, अपनी निःसहाय अवस्था का जिक्र करतीं, अपने हर्ता की क्रूरता का बखान करतीं, उसे कोसती, केवल लंकाधिनाथ कहकर न रह जातीं, लक्ष्मण को भला-बुरा कहने तथा उनका आदेश न मानने के लिये अपने आपको धिक्कारतीं, अपने पर व्यंग छोड़तीं, पर इस तार खबर में क्या है और कहाँ तक आत्मीयता झलकती है? 'रमन' और 'पुत्र' को छोड़कर कौन बात ऐसी है जिसको आपत्ति में पड़ी हुई स्त्री दूसरे के प्रति नहीं कह सकती[1] ?" वस्तुतः बात ऐसी ही है। केशव मार्मिक प्रसंगों के चित्रण में इतनी रुचि नहीं दिखाते जितनी वीरता, राजनीति, सभा-चातुर्य और वाग्वैदग्ध्य आदि प्रसंगों के चित्रण में। दरबारी कवि जो ठहरे न। सीता की विरह-दशा का वर्णन केवल उनकी एक वेणी, मलिन साड़ी और राम-नाम की रट में ही हो जाता है (रा० चं०, प्र० १३, छं० ५३)। इससे उनकी परवशता का चित्र तो अंकित हो जाता है किन्तु उनकी विरह-दारुणता व्यंजित नहीं होती। यही नहीं, सीता जी के उत्तरीय को देखकर राम जी विलासी मनुष्य के सदृश अपनी काम-क्रीड़ा का स्मरण करने लगते हैं (रा० चं०, प्र० १२, छं० ६२)। जब सीता जी का उत्तरीय ही सब सुखों का मूल है तो उनकी खोज की क्या आवश्यकता है? वास्तव में तो कवि-समय और मानव-मनोविज्ञान दोनों के अनुसार प्रिय की वस्तुएँ विरह को उद्दीप्त करने वाली होनी चाहिएँ। पर सीता जी को राम की मुद्रिका दुःखहारी और हृदय को शीतलता प्रदान करने वाली है (रा० चं०, प्र० १३, छं० ७६)। केशव इस प्रसंग में मानव-मनोविज्ञान और मानव-अनुभूति से शून्य ही जान पड़ते हैं।

जिस प्रकार केशव की रागात्मिका वृत्ति कथानक के भावात्मक स्थलों के चित्रण में पूर्णतः लीन नहीं दिखाई देती, उसी प्रकार पात्रों के स्वरूप तथा प्रकृति के रमणीय दृश्यों एवं वस्तुओं के वर्णन में भी उनकी हृदयहीनता ही परिलक्षित होती है।

---

१. कोशोत्सवस्मारक ग्रन्थ, 'आचार्य कवि केशवदास' शीर्षक लेख, पृ० ३६३-४।

पात्रों का स्वरूप-चित्रण—वन में जाते हुए राम, सीता और लक्ष्मण की शोभा का वर्णन करने में जहाँ तुलसी की वाणी थकती नहीं, वहाँ केशव संदेहालंकार की सूझ में राम को मुनि द्वारा अभिशप्त, ब्रह्मदोषी, ठग और न जाने क्या-क्या बना देते हैं (रा० चं०, प्र० ९, छं० ३४)। इसी प्रकार श्लेष के मोह में केशव ने राम को सिंह, सर्प, चक्रवाक, जवासा, भ्रमर, योगी, शाक्त और उल्लू तक भी बना दिया है। (रा० चं०, प्र० १३, छं० ८८)। केशव के पास उपमानों की क्या कमी थी जो ऐसी अनुपयुक्त और कुरूप उपमाएं दी हैं।

केशव राम को मेवाशाला तथा धनशाला में क्रमशः निपट रंक तथा चतुर चोर के सदृश प्रवेश करते दिखलाते हैं[1]। कवि की ये दोनों ही उपमाएं अनुपयुक्त और राम की मर्यादा के प्रतिकूल हैं। केशव ने एक स्थल पर सीता के लिए भी अत्यन्त ही अनुचित उपमान-बाज का प्रयोग किया है[2]। उनकी उर्वर एवं सम्पन्न कल्पना-शक्ति से ऐसे भद्दे और कुत्सित उपमानों की आशा न थी।

केशव अपनी चमत्कार-प्रियता के कारण शिव के स्वरूप-चित्रण में भी स्वाभाविकता लाने में असमर्थ रहे हैं। सपत्नीक होने से शिव जी सुरत-चिह्न-युक्त वर्णित हैं[3]।

'सन्देह' अलंकार का मोह तो केशव के वर्णनों पर भार ही हो गया है। कुरूप विशाल-काय रावण के वश में पड़ी हुई सीता-सुन्दरी का चित्र जो केशव ने अपनी कल्पना के सहारे खींचा है, वह भी तो सन्देह के भार से अपनी करुण प्रभविष्णुता बहुत कुछ इसी कारण खो चुका है[4]।

अग्नि की ज्वालाओं में भस्म होते हुए लंका के भवनों और राक्षसों के प्रसंग में भी केशव को उपमाएं और उत्प्रेक्षाएं ही सूझती हैं। (रा० चं०, प्र० १४ छं०, ६)। केशव के पाण्डित्य का निदर्शन भले ही यहाँ हो, पर रूपचित्रण का इसमें कोई चमत्कार नहीं दिखाई पड़ता। अग्नि की लपटों में जलते हुए राक्षस कवि की दृष्टि में ऐसे जान पड़ते हैं मानो महादेव की कोपाग्नि में कामदेव जल रहा हो (रा० चं०, प्र० १४, छं० ८)। काले-कलूटे दैत्यों का उपमान कामदेव-सा सुन्दर देवता देना सर्वथा अनुचित है।

रावण-राम-युद्ध के पश्चात् जब सीता जी की अग्नि-परीक्षा ली जा रही है तब केशव अग्नि-परीक्षा का कोई कारण दिखलाए बिना ही सीता जी के स्वरूप का वर्णन उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देहालंकार के आवेश में इस प्रकार करते हैं—

---

१. निपट रंक ज्यों शोभित भये, मेवा की शाला में गये।
चतुर चोर से शोभित भये, धरणी घर धनशाला गये॥

—रा० चं०, पृ० १६, छं० ३५-३६।

२. बिड़कन धन घूरे भक्ष क्यों बाज जीवै।

—रा० च०, प्र० १३, छं० ६२।

३. रा० च०, प्र० २५, छं० २५।

४. वही, प्र० १२, छं०, २०।

महादेव के नेत्र की पुत्रिका सी। कि संग्राम की भूमि में चंडिका सी॥
मनो रत्न सिंहासनस्था शची है। किधौं रागनी रागपूरे रची है॥
(रा० चं०, प्र० २०, छं०, ५)

कि सिन्दूर शैलाग्र में सिद्ध-कन्या। किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या॥
सरोजासना है, मनो चारु बानी। जपा-पुष्प के बीच बैठी भवानी॥
(रा० चं०, प्र० २०, छं० ७)

वर्णन अत्यन्त ओजमय है और सीताजी के गौरव के अनुरूप भी है। किन्तु पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण सीता और राम के इस मिलन-महोत्सव में वह प्रेमातिरेक का व्यंजक नहीं होता। अनुमान होता है कि राम का सम्पूर्ण उत्साह कुंठित हो गया है।

प्रकृति के दृश्यों और वस्तुओं का वर्णन—काव्य में प्रकृति के रमणीय दृश्यों एवं वस्तुओं का उपयोग प्रधानतया तीन प्रकार से किया जाता है—१. आलंकारिक रूप में; २. उद्दीपन रूप में; और ३. आलम्बन रूप में। केशव के प्रकृति-वर्णन की इन्हीं तीनों दृष्टियों से परीक्षा करनी है। आलंकारिक रूप में आए हुए प्रकृति के दृश्यों एवं रूपों के विषय में यह कहा जा सकता है कि केशव को अपने उपमान प्रकृति में से चुनने की उतनी रुचि नहीं थी। इस रूप में प्रकृति के दृश्यों की जो योजना केशव ने की है उससे उनका कोई प्रकृति-प्रेम दिखाई नहीं देता। उनका अपना ही कथन इस बात का साक्षी है।[1] कमल और चन्द्रमा जैसी विश्व की सुन्दरतम विभूतियों के प्रति भी केशव को कोई आकर्षण नहीं है। अपनी-अपनी रुचि की बात जो ठहरी।

उद्दीपन के रूप में आये हुए प्रकृति के दृश्यों की संख्या 'चन्द्रिका' में थोड़ी ही है। वर्षा, शरद् और अयोध्या के उपवन, कृत्रिम पर्वत, सरिता, तड़ाग आदि का वर्णन तो किया गया है पर वहाँ भी इनके चित्र चित्रित करने की ओर कवि का ध्यान उतना नहीं रहा है जितना कि अपना आलंकारिक कौशल प्रदर्शित करने के लिए दूर-दूर से खोजकर उपमान जुटाने की ओर। वर्षा का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

देखि राम बरषा ऋतु आई। रोम रोम बहुधा दुखदाई।
आस-पास तम की छवि छाई। राति द्यौस कछु जानि न जाई॥
मंद मंद धुनि सो घन गाजैं। तूरतार जनु आवझ बाजैं।
ठौर ठौर चपला चमकैं यों। इन्द्रलोक तिय नाचति हैं ज्यों॥
सोहैं घन स्यामल घोर घने। मोहै तिन में बक पांति मनैं॥
संखावलि पी बहुधा जल स्यो। मानों तिन को उगिलै बकस्यों॥
शोभा अति शक्र सरासन में। नाना दुति दीसति है घन में।
रत्नावलि सी दिवि द्वार मनो। वर्षागम बांधिय देव मनो॥

---

१. देखे मुख भावैं अनदेखई कमल चन्द,
ताते मुख मुखैं सखी कमलै न चन्द री॥
—रा० च०, प्र० ६, छं० ४२।

घन घोर घने दसहू दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये।
अपराध बिना छिति के तन ताये। तिन पीड़न पीड़ित ह्वै उठि धाये॥

× × ×

भट चातक दादुर मोर न बोले। चपला चमकै न फिरै खंग खोले।
दुतिवंतन को विपदा बहु कीन्हीं। धरनी कहं चन्द्रवधू धरि दीन्हीं[1]॥

(रा० चं०, प्र० १३, छं १३-१५ तथा १७)

यहाँ तक तो ठीक है पर आगे चलकर तो केशव श्लेष के बल पर उसे अत्रि-पत्नी अनुसूया और कालिका भी बना डालते हैं। कालिका और वर्षा दोनों का एक साथ वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

भौंहैं सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूखण जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैंन, अमल कमलदल दलित निकाई है।
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर, मुकुत सुहंसक सबद सुखदाई है।
अम्बर बलित मति मोहैं नीलकण्ठ जूकी, कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है।

(रा० चं०, प्र० १३, छं० १६)

यहाँ वर्षा का उद्दीपन विभाव अलंकार-प्रतिष्ठा के पीछे छिप गया है।

केशव को यहीं तक संतोष नहीं होता। वे वर्षाकालीन नालियों को अभिसारिका, परकीया आदि बनाने तक में नहीं चूकते (रा० चं०, प्र० १३, छं २०)। यह कल्पना की विडम्बना नहीं तो और क्या है ?

इसी प्रकार शरद् का वर्णन भी अलंकारों पर ही आश्रित है। शरद् को सुन्दरी, नारद की मति, पतिव्रता स्त्रियों का सच्चा प्रेम और वृद्धा दासी के रूपों में निरूपित किया गया है—

दन्तावलि कुन्द समान गनो। चन्द्रानन कुंतल भौंर घनो॥
भौंहैं धनु खंजन नैंन मनो। राजीवनि ज्यों पद पानि मनो॥
हारावलि नीरज हीय रमैं। जनु लीन पयोधर अम्बर में॥
पाटीर जुन्हाइहि अंग धरे। हंसी गति केशव चित्त हरे॥
श्रीनारद की दरसै मति सी, लोपै तम ताप अकीरति सी।
मानो पति देवन की रति सी, सन्मारग की समझो गति सी॥
लक्ष्मण दासी वृद्ध सी आई सरद सुजाति।
मनहु जगावन को हमहिं बीते बरषा राति।

—(रा० चं०, प्र० १३, छं० २४-२७)

यहाँ भी केशव का ध्यान उद्दीपन विभाव की पुष्टि की ओर नहीं गया है। कृत्रिम पर्वत के वर्णन में भी उपमानों के प्राचुर्य से स्वाभाविकता नष्ट हो गई है।

(रा० चं०, प्र० १३, छं० २१-२२)

आलम्बन रूप में अर्थात् स्वतंत्र रूप से प्रकृति के चित्रण करने के केशव को पर्याप्त अवसर मिले हैं, पर वे असफल ही रहे हैं। उनकी प्रकृति केवल उत्प्रेक्षाओं अथवा संदेहों की पिटारी ही बन कर रह गई है। उसकी रमणीयता तथा सजीवता में उनका मन नहीं रमा है। केशव का प्रकृति-वर्णन परम्परागत है। 'रामचन्द्रिका'

में जब-जब प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण का समय आया है वे शब्दों की करामात दिखाने लग गए हैं जिसके फलस्वरूप प्रकृति का प्रकृत रूप छिप गया है। अयोध्या का वर्णन करते हुए दृश्य-वर्णन की अपेक्षा कवि का ध्यान नगरी के महत्त्व-प्रदर्शन की ओर अधिक रहा है। अयोध्या की वाटिका का वर्णन करते हुए केशव कोई ऐसी बात नहीं कहते जो बरबस मन को मुग्ध कर ले। उन्हें तो केवल विरोधाभास, परिसंख्या और श्लेष के बल पर उसकी विचित्रताओं का उल्लेख करना ही अभीष्ट है। दशरथ की वाटिका बनवासी (वनवासिनी कन्या) होकर भी चंचल है, तपस्विनी (तप सहने वाली) होकर भी गृहस्थित (परिवार से घिरी हुई) है, दिगम्बरा कन्या होकर भी पुष्पवती (रजोधर्मिणी) है और पुष्पवती होकर भी गर्भ (फल) वती है (रा० चं०, प्र० १, छं० ३४)।

केशव वन का कोई रूप प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। कवि-परम्परा के अनुसार उन्होंने वहाँ सब काल और सब देशों के वृक्षों, लताओं और पक्षियों के केवल नाम-मात्र ही गिनाए हैं[1]। चित्रण में यथार्थता का आभास देने के लिए कवि को स्थानगत वनस्पतियों एवं पक्षियों का ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु केशव ने इस बात का ध्यान नहीं रखा है कि जिस प्रदेश का यह वर्णन है, वहाँ एला, लवंग और पुंगीफल नहीं होते हैं।

पंचवटी और दण्डक के वर्णनों में भी कवि को कोई विशेष उल्लेखनीय वस्तु नहीं मिली है। यहाँ भी केशव को अलंकारों के मोह ने जकड़ लिया है। अतः, पंचवटी का यथार्थ रूप कवि प्रस्तुत नहीं कर सका है। देखिये—

सब जाति फटी दुख की दुपटी कपटी न रहै जहं एक घटी।
निपटी रुचि मीचु घटीहू घटी, जग जीव जतीन की छूटी तटी।
अघ ओघ की बेरी कटी बिकटी निकटी प्रकटी गुरु ज्ञान गटी।
चहुं ओरन नाचति मुक्ति नटी गुन धूरजटी बन पंचवटी॥[2]

पंचवटी के प्रति उनकी भावना उद्भूत नहीं, परम्परा से प्राप्त है। संस्कृत कवि श्री दामोदर मिश्र भक्ति-भावना से प्रेरित होकर पंचवटी का वर्णन पहले ही कर चुके थे[3]। और इसी का हिन्दी के कवि हृदयराम ने इस प्रकार वर्णन किया है—

---

१. तरु तालीस ताल तमाल हिंताल मनोहर।
मंजुल बंजुल लकुच बकुल केर नारियर।
एला ललित लवंग संग पुंगीफल सोहै।
सारी शुककुल कलित चित कोकिल अलि मोहै।
शुक राजहंस कलहंस कुल नाचत मत्त मयूरगन।
अति प्रफुल्लित फलित सदा रहै केशवदास विचित्र बन॥
—रा० चं०, प्र० ३, छं० १।

२. रा० चं०, प्र० ११, छं० १८।

३. एषा पंचवटी रघूत्तमकुटी यत्रास्ति पंचावटी,
पान्थस्यैकघटी पुरस्कृततटी संश्लेषभित्तौ वटी।

ए कपटी दसकन्ध गटी न घटी घट की सठ आव अटी।
हर धूरजटी कमठी खपटी सम तोर रही जन बीच कटी॥
न ठटी रतिनाथ छुटी तिनको नित नाचत मुक्ति नटी सुहटी।
सुन कन्त करी भामिनी नकटी सोई राम विराजत पंचवटी॥[1]

दण्डक वन का चित्रण करते समय केशव की दृष्टि उसकी सुरूपता अथवा कुरूपता किसी पर न जाकर केवल श्लेष द्वारा चमत्कार-प्रदर्शन पर ही गई है। श्रीफल (बेल और सम्पत्ति) की बहुलता के कारण दण्डक वन किसी महाराजा की सेवा के तुल्य है, तो अर्क (सूर्य और मंदार वृक्ष) समूह से युक्त होने के कारण वह प्रलयकाल की बेला के सदृश है; अर्जुन (अर्जुन पांडव और ककुभ वृक्ष) तथा भीम (भीम पांडव तथा अमलवेंत) वृक्षों के कारण वह पाण्डवों की प्रतिभा के समान है; धाय (धाय तथा धाय वृक्ष) के कारण वह कुलकन्या के तुल्य है और शितिकण्ठ (मयूर और शिव) की प्रभा से युक्त होने के कारण वह पार्वती की केलिस्थली है (रा० चं०, प्र० ११, छं० १९-२२)। इस प्रकार के साम्य-प्रदर्शन में कवि किसी प्रकार के सौन्दर्य की व्यंजना नहीं कर रहा, वरन् अपना अलंकार-कौशल ही दिखला रहा है।

सरयू तथा गोदावरी नदियों के वर्णन आलंकारिक हैं। ये वर्णन विरोधाभास अलंकार में किए गए हैं, अतः, उनका यथातथ्य स्वरूप सामने नहीं आ सका है। वह केवल प्रशस्ति भर रह गया है। सरयू यदि 'स्पर्श' से मुक्ति प्रदान करती है तो गोदावरी 'पान' से।

समुद्र के वर्णन में भी उसके स्वरूप, विस्तार एवं गाम्भीर्य आदि की कोई व्यंजना नहीं हो सकी है। केशव उसे एक चतुर नागरिक के रूप में ही देखते हैं।[2] प्रवर्षण नामक पर्वत के वर्णन में भी केशव को अलंकारों के मोह ने जकड़ लिया है। श्लेष के कारण कवि ने उसे शिव के रूप में देखा है।[3]

वर्षा और शरद् के वर्णन में केशव ने तुलसी का भी अनुकरण किया है। जहाँ तुलसी ने लोक-कल्याण के लिए नीति और उपदेश-सम्बन्धी बातें कह डाली हैं वहाँ केशव ने भी प्रसंगानुकूल कुछ उसी ही शैली के वर्णन किए हैं—

१. ठौर ठौर चपला चमकै यों। इन्द्रलोक-तिय नाचति है ज्यों॥[4]
२. घन घोर घने दसहूँ दिस छाये। मघवा जनु सूरज पै चढ़ि आये॥[5]

गोदा यत्र नटी तरंगिततटी कल्लोलचंचत्पुटी,
दिव्यामोदकुटी भवाब्धिशकटी भूतक्रियादुष्कुटी॥
—हनुमन्नाटक, अंक ३, श्लो० २२।

१. हनुमन्नाटक, अंक ३, श्लो० ६३।
२. चन्दन नीर तरंग तरंगति नागर कोउ कि सागर सोहैं।
—रा० चं०, प्र० १४, छं० ४१।
३. रा० चं०, प्र० १३, छं० ७।
४. वही , वही , छं० १२।
५. रा० चं०, प्र० १३, छं० १५।

३. जहाँ वारुणी की करी रंचक रुचि द्विजराज। तहाँ कियो भगवंत बिन संपति शोभा साज ॥[1]

४. बरणत केशव सकल कवि विषय गाढ़ तम-सृष्टि। कुपुरुष सेवा ज्यों भई सन्तत मिथ्या दृष्टि ॥[2]

पर ऐसे प्रयोग बहुत ही कम हैं।

सूर्योदय वर्णन के 'रामचन्द्रिका' में दो अवसर आए हैं। एक तो अवसर उस समय आता है जब राम, लक्ष्मण और विश्वामित्र जनकपुरी में प्रवेश करते हैं। सूर्य उनके स्वागत के लिए मंगल-सूचक शकुन बनकर सामने उदित होता है।[3] परन्तु आगे चलकर उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह के मोह में पड़कर केशव ऐसे मंगल-सूचक सूर्य को मंगल घट, इन्द्र का छत्र, पूर्व दिशा-रूपी स्त्री के मस्तक के माणिक के साथ-साथ कालरूपी कापालिक के हाथ में किसी का रक्तरंजित सिर भी बना डालते हैं—

अरुण गात अतिप्रात पद्मिनी प्राणनाथमय, मनहुँ केशोदास कोकनद कोक प्रेममय।
परिपूर्ण सिंदूरपूर कैधौं मंगलघट, किधौं शक्र को छत्र मढ़्यो माणिक मयूख पट ॥
कै श्रोणित कलित कपाल यह, किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत, दिग्भामिनी के भाल को ॥[4]

जिस शुभ शकुन की भूमिका सूर्योदय में बनाई जा चुकी थी उसके निर्वाह के लिए उदीयमान सूर्य का यह चित्रण बीभत्सपूर्ण है और रसोद्रेक में बाधा पहुँचाता है।

दूसरा अवसर वहाँ आता है जब राज्याभिषेक के अनन्तर श्री रामचन्द्र जी को किसी दिन सारिकादि अन्तरंग सखियाँ जगा रही हैं[5]। केशव का यह प्रभात-वर्णन

---

१. वही, प्र० ५, छं० १४।
२. वही, प्र० १३, छं० २१।
३. वही, प्र० ५, छं० ८।
४. वही, प्र० ५, छं० १०।
५. जगिये त्रिलोकदेव, देवदेव रामदेव,
भोर भयो, भूमिदेव भक्त दरस पावैं।
ब्रह्मा मन मन्त्र वर्ण, विष्णु-हृदय चातक घन,
रुद्र-हृदय-कमल-मित्र, जगत गीत गावैं।
गगन उदित रवि अनन्त, शुक्रादिक जोतिवंत,
छन छन छबि छीन होत, लीन पीन तारे।
मानहु परदेश देश, ब्रह्मदोष के प्रवेश,
ठौर ठौर ते बिलात जात भूप भारे।
अमल कमल तजि अमोल मधुप लोल टोल टोल,
बैठत उड़ि करि-कपोल, दान-मानकारी।
मानहु मुनि ज्ञानवृद्ध, छोड़ि छोड़ि गृह समृद्ध,
सेवत गिरिगण प्रसिद्ध, सिद्धि-सिद्धि-धारी।
तरणि किरणि उदित भई, दीपजोति मलिन गई,
सदय हृदय बोध उदय, ज्यों कुबद्धि नासैं।

बड़ा ही उत्कृष्ट एवं स्वाभाविक बन पड़ा है। प्रकृति, हृदय और ज्ञान की ऐसी त्रिपुरी अन्यत्र दुर्लभ है। स्वयं केशव का भक्त हृदय ही यहाँ विरुदगायक बन गया है और बड़ी ही तल्लीनता के साथ अपने इष्टदेव को जगा रहा है। पम्पासर का वर्णन भी उपयुक्त ही बन पड़ा है[१]। उसका रूप-चित्रण राम के विरहोद्दीपन में साधक है पर 'रामचन्द्रिका' में ऐसे वर्णन हैं कितने ?

त्रिवेणी-वर्णन में केशव उसके माहात्म्य से ही अधिक प्रभावित हुए हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य के नाते तो वे 'शोभन शरीर पर कुंकुम विलेपन कै स्यामल दुकूल झीन झलकत झाई है'[२] कहकर ही रह जाते हैं। उसे 'भूतल की बेणी', 'सुरपुर मारग', 'पूरण अनादि का द्रवरूप गात' कहना ही कवि को अधिक अच्छा लगता है क्योंकि उसके दर्शन और स्पर्श-मात्र से चराचर जीवों के अनेक जन्मों के पाप दूर हो जाते हैं[३]।

केशवदास ने आश्रम की शान्ति का वर्णन करते हुए कवि-परम्परा के अनुसार इतना तो दिखाया है कि वहाँ परस्पर द्वेष रखने वाले पशु भी प्रेमपूर्वक

चक्रवाक निकट गई चकई मन मुदित भई,
जैसे निज ज्योति पाय, जीवन ज्योति भासै।
अरुण तरणि के विलास, एक दोय उडु प्रकास,
कलि के से संत ईश, दिशन अंत राखैं।
* * *
निशिचर-चय के विलास, हास होत हैं निरास,
सूर के प्रकाश त्रास नासत तम भारे।
* * *
केशव सुनि वचन चारु जागे दशरथ कुमारु,
रूप प्याय ज्याय लीन, जन जल थल ग्रौकै।
बोलि हँसि बिलोकि बीर, दान मान हरी पीर,
पूरे अभिलाष लाख, भाँति लोक लोकै॥
...रा० च०, प्र० ३०, छ० १८-२० तथा २२।

१. सिगरी ऋतु सोभित शुभ्र जहीं। लह ग्रीषम पै न प्रवेश सही॥
नव नीरज नीर तहाँ सरसें। सिय के सुभ लोचन से दरसें॥
—रा० च०, प्र० १२, छ० ४८।

२. वही, प्र० २०, छं० ३१।

३. दरस परस ही तैं थिर चर जीवन की।
कोटि-कोटि जन्म की कुगंधि मिटि जात॥
—रा० च०, प्र० २०, छ० ३३।

रहते हैं पर अतिशयोक्ति के अतिशय मोह के कारण, उनका वर्णन शान्ति की व्यंजना करने के स्थान पर 'सर्कस' का-सा दृश्य प्रस्तुत करके ही रह गया है[1]।

वसंत, उद्यान आदि के वर्णन भी चमत्कार-प्रधान ही हैं। फलतः वसंत में शब्द करते हुए हंस, शुक, कोकिल और मोर को केशव ने योद्धा बना डाला है, जो युद्ध के लिए ललकार रहे हैं। और पलाश-पुष्पों की रक्त-प्रभा को कवि ने शेष-मुखों की ज्वाला के रूप में देखा है। चन्द्र का वर्णन तो केशव के आलंकारिक-कौशल का ज्वलन्त प्रमाण है[2]।

उपर्युक्त विवेचन से निष्कर्ष यह निकलता है कि केशव का मन प्रकृति के सुरम्य स्थलों में नहीं रमा है और वे अपनी आलंकारिकता के सम्मोह के कारण उनमें कोई सजीवता एवं सप्राणता भी नहीं ला सके हैं। "राम-चन्द्रिका' में अधिकांश स्थलों पर उनका प्रकृति-वर्णन परम्परागत ही है।

रस एवं भाव-व्यंजना—यद्यपि केशव के पग-पग पर छन्द-परिवर्तन एवं चमत्कार-प्रदर्शन के कारण उनकी 'रामचन्द्रिका' में बहुत से स्थलों पर रसव्याघात हुआ है, तथापि कुछ ऐसे स्थल भी देखने में आते हैं, जहाँ वे प्रसंगानुकूल रसों एवं भावों की व्यंजना करने में सफल हुए हैं। राजकवि केशव राजसी प्रताप, ऐश्वर्य, शौर्य, युद्ध, सेना-प्रयाण, आतंक आदि का वर्णन करने में अधिक निपुण हैं। वास्तव में इस प्रकार के प्रसंग उनकी वृत्ति के अनुरूप थे। और इसी कारण वीर, रौद्र तथा भयानक मित्र-रसों की व्यंजना करने में उन्हें असफल नहीं कहा जा सकता। युद्ध के प्रसंग में ही इन तीनों रसों का निरूपण हुआ है।

वीर और रौद्र रस—'रामचन्द्रिका' में युद्ध-वर्णन के दो अवसर आए हैं। प्रथम अवसर राम-रावण के युद्ध का है और दूसरा राम की चतुरंगिणी सेना और लव-कुश के युद्ध का। राम-रावण युद्ध में जब-जब राक्षसों की सेना के प्रयाण और युद्ध-कौशल का प्रसंग आता है केशव प्रत्यक्ष रूप-वर्णन द्वारा एवं ओजस्वी शब्द विधान द्वारा पाठक को आतंकित करने में सफल होते हैं। इस प्रकार के कुछ वर्णन नीचे दिए जाते हैं—

१. कोदण्ड मंडित महारथवंत जो है।
सिंहध्वजा समर-पंडित-वृंद मोहै॥

---

१. केशोदास मृगज बछेरु चोषैं बाघनीन, चाटत सुरभि बाघबालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचैं कलभकरनि करि, सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणन पर, नाचत मुदित मोर, क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
वानर फिरत डोरे-डोरे अंध तापसनि, शिव को समाज कैंधों ऋषि को सदन है॥
—रा० चं०, प्र०, २०, छं० ४०।

२. केशोदास है उदास कमलाकर सों कर, शोषक प्रदोष ताप तमोगुण तारिये।
अमृत अशेष के विशेष भाव बरसत, कोकनद मोद चंड खण्डन विचारिये॥
परमपुरुष-पद-विमुख परुष रुख, सुमुख सुखद विदुषन उर धारिये।
हरि हैं री हिये में न हरिण हरिणनैनी, चन्द्रमा न चन्द्रमुखी नारद निहारिये॥
—रा० चं०, प्र० ३० छं० ४६।

जोधा बली प्रबल काल कराल नेता ।
सो मेघनाथ सुरनायक युद्ध-जेता ॥[१]

२. जो हंसकेतु भुजदंड निषंगधारी ।
संग्राम-सिन्धु बहुधा अवगाहकारी ॥
लीन्ही छंडाय जेहि देव-अदेव वामा ।
सोई खरात्मज बली मकराक्ष नामा ॥[२]

तथा

३. उड़ैं दिसा-दिसा कपीस कोटि-कोटि स्वांस ही ।
चपैं चपेट बाहु जानु जंघ सों जहीं तहीं ॥
लिये लपेट ऐंचि-ऐंचि वीर बाहु बात ही ।
भखैं ते अंतरिक्ष ऋक्ष लक्ष-लक्ष जातही ॥[३]

वीर मकराक्ष के रौद्र रूप का चित्र भी ओजमय है। कुम्भकर्ण और मेघनाद के वध के अनन्तर वह रावण से कहता है कि मेरे सामने इन्द्रजीत और कुम्भकर्ण क्या हैं। एक डरते हुए युद्ध करता था और दूसरा सोया करता था। जब तक आपका यह सेवक जीता है तब तक सीता को यहाँ से कौन ले जा सकता है। महाराज, आप निश्चिन्त होकर लंका का राज्य करें। आप मुझे युद्ध के लिये एक बार बस भेज दें। विश्वास रखें, मैं रण में सुग्रीवादि के साथ राम-लक्ष्मण को मार डालूँगा और अयोध्या को अपने अधिकार में कर उसे आपकी राजधानी बना कर रहूँगा[४]।

इसी प्रकार राम के रौद्र रूप का चित्रण भी बड़ा ही प्रभविष्णु एवं ओजस्वी बन पड़ा है।

करि आदित्य अदृष्ट नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सर्व पसु॥
दलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउ इन्द्र अब।
विद्याधरन अविद्य करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निजु होहि दासि दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज ! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥

(रा० चं०, प्र० १७, छं० ४६)

केशव के राम-रावण युद्ध में एक बड़ी कमी यह रह गई है कि वे उसमें युद्ध का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं दिखा सके, जिसके कारण युद्ध की भयानक परिस्थितियों की

---

१. रा० चं०, प्र० १७, छं० ३२।

२. वही, प्र० १७, छं० ३६।

३. वही, प्र० १८, छं० २१।

४. कहा कुंभकर्ण कहा इन्द्रजीतौ। करै सोइबो वा करै युद्ध भीतो।
सुजौं लौं जियौं हौं सदा दास तेरो। सिया को सकलै सुनो मंत्र मेरो।
महाराज लंका सदा राज कीजै। करौं युद्ध मोको विदा वेगि दीजै।
हतौं राम स्यों बन्धु सुग्रीव मारौं। अयोध्याहि लै राजधानी सुधारौं॥
—रा० चं०, प्र० १६, छं० ७-८।

व्यंजना वहाँ पूर्णतया नहीं हो सकी। उन्होंने इस कमी को लव-कुश-युद्ध में पूरा कर दिखाया है। उग्र शब्दों की योजना द्वारा छपाछप तलवारें चलने का चित्र तो यहाँ भी उपस्थित नहीं हो सका है पर परस्पर उग्र वचनों के कथन, दृढ़तापूर्वक युद्ध-संचालन और रक्त के प्रवाह का चित्र प्रस्तुत करने से वह वर्णन काफ़ी अच्छा बन पड़ा है तथा युद्धवीर और रौद्र दोनों रसों की बहुत ही सुन्दर ढंग से योजना की गई है। नीचे कुछ वर्णन प्रस्तुत करते हैं—

लव-शत्रुघ्न युद्धः

रोष करि बाण बहु भान्ति लव छांडियो। एक ध्वज, सूत युग तीन रथ खंडियो॥
शस्त्र दशरत्थ सुत अस्त्र कर जो धरैं। ताहि सियपुत्र तिल तूल सम खंडरैं॥

(रा० चं० प्र० ३५, छं० १६)

कुश-शत्रुघ्न-युद्ध :

गाहियो सिंधु सरोवर सो जेहि बालि बली बरसो बर पेर्‌यो।
ढाहि दिये सिर रावन के गिरि से गुरु जात न जा तन हेर्‌यो॥
शाल समूह उखारि लिये बाणासुर पीछे तें आय ही टेर्‌यो।
राघव को दल मत्त करीश्वर अंकुश दे कुश केशव फेर्‌यो॥

(रा० चं०, प्र० ३५, छं० २७)

लव-लक्ष्मण-युद्धः

लै धनु बाण बली तब धायो। पल्लव ज्यों दल मार उड़ायो।
यों दुउ सोदर सैन संहारैं। ज्यों बन पावक पौन विहारैं।
भागत हैं भट यों लव आगे। राम के नाम ते ज्यों अघ भागे।
युथपयूथ यों मारि भगायो। बात बड़ी जनु मेघ उड़ायो॥

(रा० चं०, प्र० ३६, छं० १३-१४)

परशुराम-प्रसंग तथा रावण-सीता संवाद में परशुराम, राम एवं सीता के रौद्र रूप दर्शनीय हैं। परशुराम क्रुद्ध हो राम से कहते हैं कि आज हाथी, घोड़े तथा रथ सहित समस्त रघुवंशियों को कुठार की धारा में डुबा दूंगा। बाणों की वायु से लक्ष्मण को उड़ाकर समर्थ शत्रुघ्न को लक्ष्य के समान बेध डालूंगा। राम को स्त्री-सहित बन को भगाकर कोप के भाड़ में भरत को भून डालूंगा और यदि राम धनुष उठाकर लड़ेगा तो आज दशरथ को अनाथ कर डालूंगा[1]। बात के आगे बढ़ जाने पर जब परशुराम राम के गुरु की निन्दा पर उतारू हो जाते हैं तो राम परशुराम को जताते हैं कि "हे परशुराम बार-बार समझाने पर भी तुम नहीं समझते तो स्पष्ट सुनो। मैंने शिव-धनुष भंग किया तब भी तुम नहीं समझे, अब

---

१. बोरौं सबै रघुवंश कुठार की धार में बारन बाजि सरत्थहि।
बान की वायु उड़ाय के लच्छन लच्छ करौं अरिहा समरत्थहि।
रामहि बामसमेत पठै बन कोप के भार में भूंजौ भरत्थहि।
जो धनु हाथ धरे रघुनाथ तौ आजु अनाथ करौं दशरत्थहि॥

—रा० चं०, प्र० ७, छं० १२।

तुमको दुःख देता हूँ। मैं वही व्यक्ति हूँ जो ब्रह्मा की सृष्टि नष्ट कर दूँ, महादेव को योगासन से डिगा दूँ, प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दूं। नारायणी अंश तो तुम में से चला गया है, चाहूँ तो तुम्हारे प्राणों का अन्त कर दूं। हे भृगुनन्दन! अपना कुठार सम्भालो, मैंने अब धनुष पर बाण चढ़ा लिया है[१]।"

जब रावण सीता को भिन्न-भिन्न प्रलोभनों द्वारा अपनी पटरानी बनाना चाहता है तो सीता जी उसे ओजमय शब्दों में फटकारती हैं[२]।

भयानक रसः—भयानक रस वीर रस का सहकारी होता है। धनुष के टूटने पर चारों ओर जो आतंक छा जाता है उसका वर्णन केशव ने इस प्रकार किया है—

प्रथम टंकोर भुकि भारि संसार मद, चंड कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखण्ड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल बल, पालि ऋषिराज के वचन परचण्ड को॥
सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को, क्रोध उपजाय भृगुनन्दन बरिबण्ड को।
बाँधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग, धनुभंग को शब्द गयो भेद ब्रह्माण्ड को॥

रा० चं०, प्र० ५, छं० ४२।

धनुभंग के कुछ समय अनन्तर परशुराम के आते ही सारे समाज में बड़ा आतंक छा जाता है और पशुओं तक में भी खलबली मच जाती है। मस्त हाथियों का भी मद चूर्ण हो जाता है और वे कुछ क्षण के लिए चिंघाड़ना भी भूल जाते हैं। बहुत से वीर अस्त्र-शस्त्र फेंककर अपने-अपने प्राणों को ले-ले भागने लगते हैं और कोई-कोई तो कवचादि फेंक-फेंक कर स्त्री-वेष धारण कर लेते हैं।[३]

लंका-दहन के अवसर पर रावण की रानियाँ और राक्षसियाँ भयभीत हो

---

१. भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं॥
सकल लोक संहरहुँ सेस सिरते धर डारौं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होइ सब ही तम भारौ॥
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय वर।
भृगुनन्द संभारु कुठार, मैं कियो सरासन युक्त सर॥

—रा० चं०, प्र० ७, छं० ४२।

२. उठि उठि शठ ह्याँ ते भागु तौलों अभागे, मम वचन विसर्पी सर्प जौलों न लागे।
विकल सकुल देखौं आसुरी नास तेरो, निपट मृतक तोकों रोष मारै न मेरो॥

—रा० चं०, प्र० १३ छं० ६३।

३. मत्त दंति अमत्त ह्वै गए, देखि-देखि न गज्जहीं।
ठौर-ठौर सुदेस केसव दुंदुभी नहिं बज्जहीं॥
डारि-डारि हथ्यार सूरज जीव लै लय भज्जहीं।
काटि कै तनत्राण एकहि नारि भेषन सज्जहीं[२]॥

—रा० चं०, प्र० ७, छं० २।

चारों ओर भागी-भागी फिरती हैं। जिस ओर भी जाती हैं उसी ओर उन्हें दुःखद अग्नि की लपटें ही मिलती हैं। वे दुःखित हो पानी-पानी चिल्लाती हैं[1]।

हास्यरस—राम-परशुराम-भेंट प्रसंग में जहाँ तुलसी ने पर्याप्त हास्य की सृष्टि की है वहाँ केशव केवल एक-दो स्थलों पर इसका आभास-मात्र ही दे सके हैं। परशुराम को देखते ही आतंकित शूरवीरों का अस्त्र-शस्त्र फेंककर भागना और नारी-वेष धारण करना कुछ हास्यास्पद लगता है। हास्य की एक झलक उस समय दिखाई देती है जब परशुराम जी कुठार को सम्बोधित कर कहते हैं कि 'लक्ष्मण के पूर्वजों (अर्थात् क्षत्रियों) ने जो पुरुषार्थ किया है वह अवर्णनीय है। उन्होंने नारी-रूप धारण करके दया-प्रार्थना द्वारा ही अपने प्राण बचाए थे[2]।'

बीभत्सरस—वीभत्स के दर्शन दो स्थलों पर होते हैं। जब मेघनाद हनुमान को बन्दी कर लेते हैं तो रावण मेघनाद को आदेश देते हैं कि हनुमान को खूब सता-सता कर इतना मारो कि उसके सब अंगों में से फूट-फूट कर रक्त बहने लगे। काट-काट कर उसका मांस खींच लो; टाँगें फाड़ उसके रुण्ड-मुण्ड को उड़ा ले जाओ[3]। कितना वीभत्समय दृश्य है। दूसरा स्थल वीभत्स का वहाँ आता है जहाँ केशव ने रणभूमि का चित्रण नदी के साथ सांग-रूपक बाँध कर किया है[4]।

---

१. चलीं भागि चौहूँ दिशा राजरानी। मिलीं ज्वालमाला फिरैं दुःखदानी॥
मनों ईश बानावली लाल लोलैं। सबैं दैत्य-जायान के संग डोलैं॥
— — — रानि रटैं पय पानी दुःखी ह्वैं॥
—रा० चं०, प्र० १४, छं० १०-११।

२. लक्ष्मण के पुरिषान कियो पुरुषारथ सो न कह्यो परई।
वेष बनाय कियो बनितान को देखत केशव ह्यो हरई॥
—रा० चं० प्र० ७, छं० ३६।

३. कोरि कोरि यातनानि फोरि-फोरि मारिये।
काटि काटि फारि मांसु बाँटि बाँटि डारिये॥
खाल खैंचि खैंचि हाड भूँजि भूँजि खाहु रे।
पौंरि टाँगि रुण्ड मुण्ड लै उड़ाइ जाहु रे॥
—रा० चं०, प्र० १४, छं० २।

४. श्रोण की सरिता बही सु अनंत रूप दुरन्त।
यत्र तत्र ध्वजा पताका दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनो बहु बात वृक्ष अनूप।
पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिजैं सुठि शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि श्रोणित पूर॥
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारु चर्म विशाल।
चक्र सों रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल।
केकरे कर बाहु मीन, गयंद शुण्ड भुजंग।
चीर चौंर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग॥

करुण रस—राम-जीवन में करुण के स्थल तो बहुत आते हैं पर केशव के हृदय को आर्द्र करने वाले केवल लक्ष्मण-शक्ति प्रसंग तथा मेघनाद-मरण-प्रसंग ही हैं। लक्ष्मण को मूर्च्छित देखकर राम के नेत्रों से आँसुओं की अविरल धारा प्रवाहित होने लगती है।

लक्ष्मण राम जहीं अवलोक्यो। नैनन तें न रह्यो जल रोक्यो॥
बारक लक्ष्मण मोहि बिलोको। मोकहं प्राण चले तजि, रोको॥
हौं सुमिरौं, गुण केतिक तेरे। सोदर पुत्र सहायक मेरे॥
लोचन बान तुही धनु मेरो। तू बल बिक्रम बारक हेरो॥
तू बिन हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूंठ न भाखौं॥

× × ×

बोलि उठो प्रभु को मन पारो। नातरु होत है मो मुख कारो॥
(रा० चं०, प्र० १७, छं० ४३-४६)।

इसी प्रकार मेघनाद की मृत्यु पर रावण भी मर्माहत हो क्रन्दन कर उठा है—

आजु आदित्य जल, पवन, पावक प्रबल, चन्द्र अनंदमय त्रास जग को हरौ।
गान किन्नर करौ नृत्य गंधर्व कुल, यक्ष विधि लक्ष उर यक्ष कर्दम धरौ।
ब्रह्म रुद्रादि दै, देव तिहुंलोक के, राज को जाय अभिषेक इन्द्रहि करौ।
आजु सिय राम दै, लंक कुलदूषणहि. यज्ञ को जाय सर्वज्ञ विप्रहुं बरौ॥
(रा० चं०, प्र० १६, छं० ३)

शान्त रस—अत्रि ऋषि की पत्नी अनुसूया के रूप-चित्रण में केशव ने शान्त रस के स्थायी भाव 'निर्वेद' की सुन्दर व्यंजना की है।

सिर सेत विराजै, कीरति राजै, जनु केशव तप-बल की।
तनु बलित पलित जनु, सकल वासना, निकरि गई थल-थल की।
कांपति शुभ-ग्रीवां, सब अंग सींवां, देखत चित्त भुलाहीं।
जनु अपने मन प्रति यह उपदेशति या जग में कछु नाहीं॥
(रा० चं, प्र० ११, छं० ५)

अंगद की निम्नांकित उक्ति में भी जिसमें उसने रावण को संसार की असारता का भान कराते हुए सावधान होने का परामर्श दिया है, 'निर्वेद' की अच्छी व्यंजना हो सकी है—

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउं न ठाउं कुठाउं बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूं संग रैहैं॥
केसव काम के राम बिसारत और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित अंतर अंतक लोक अकेलोई जैहैं॥
(रा० चं०, प्र० १६, छं० २६)

वालुका बहु भांति हैं मणिमालजाल प्रकाश।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास।
—रा० चं०, प्र० ३७, छं० १-३।

केशव ने लज्जा, दैन्य तथा गर्व आदि भावों की भी अच्छी व्यंजना की है। देखिए किस प्रकार बनवाटिका में विहार करते समय भ्रमरियों के सम्मुख ही भ्रमरों को मालती का चुम्बन करते देख रनिवास की सुन्दरियाँ लज्जित हो जाती हैं और घूँघट के भीतर ही भीतर मुस्कराती हैं—

अलि उड़ि धरत मंजरी जाल। देखि लाज साजति सब बाल।
अलि अलिनी के देखत धाइ। चुम्बत चतुर मालती जाइ।
अद्भुत गति सुन्दरी बिलोकि। विहँसति है घूँघट पट रोकि॥[1]

सीता जी की खोज करके जब हनुमान जी लौटते हैं और श्रीराम जी से अपनी प्रशंसा सुनते हैं तो वे सच्चे भक्त के समान अपना 'दैन्य' भाव प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि 'हे महाराज, आप तो यों ही मेरी प्रशंसा करते हैं, मैंने किया ही क्या है। आपकी मुद्रिका मुझे समुद्र के उस पार ले गई और सीता जी की चूड़ामणि मुझे इस पार ले आई। लंका जलाकर भी मैंने कौन सा पराक्रम किया है। वह तो स्वयं मृत ही थी। अक्षयकुमार को मारा, वह भी अत्यन्त निर्बल बालक था। तदुपरान्त शत्रु मुझे बाँध ले गया। यदि बली होता तो क्यों बाँधा जाता। वृक्ष अवश्य तोड़े पर वे जड़ थे[2]।' रावण की लात खा राम की शरण में पहुँचने पर विभीषण के 'आरत बंधु पुकार सुनो किन' तथा 'राखत काहे न राखन हारे' आदि शब्दों में स्वाभाविक 'दैन्य' का प्रकाशन है[3]।

'गर्व' की एक झलक उस समय दिखाई देती है जब रावण का प्रतिहार देवताओं तक को भी डाँट-डपट देता हुआ दिखाई पड़ता है—

पढ़ौं बिरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे। कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे॥
दिनेश जाय दूरि बैठ नारदादि संग ही। न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥
(रा० चं०, प्र० १६, छं० २)

---

१. रा० चं०, प्र० ३२, छं० १०, ११।

२. गहृ मुद्रिका लै पार। मनि मोहि लाई वार॥
कह कर मैं बल रंक। अति मृतक जारी लंक॥
अति हत्यो बालक अच्छ। लै गयो बाँधि विपच्छ॥
जड़ वृक्ष तोरे दीन। मैं कहा विक्रम कीन॥
—रा० चं० १४, छं० ३३, ३४।

३. दीन दयाल कहावत केशव हौं अति दीन दशा गह्यो गाढ़ो।
रावण के अघ ओघ समुद्र में बूड़त हौं वर हो गहि काढ़ो।
ज्यों गज की प्रहलाद की कीरत त्यों ही विभीषण को जस बाढ़ो।
आरत बंधु पुकार सुनो किन आरत हौं पुकारत ठाढ़ो।
केशव आपु सदा सह्यो दुःख पै दासन देखि सके न दुखारे।
जाको भयो जेहि भाँति जहाँ दुःख त्यों ही तहाँ तेहि भाँति संभारे।
मेरिय वार अवार कहा कहूँ नाहि न काहू के दोष विचारे।
बूड़त हौं महामोह समुद्र में राखत काहे न राखन हारे॥
—रा० चं०, प्र० १५, छं० २४, २५।

संवाद एवं चरित्र-चित्रण—यद्यपि भाव काव्य का प्राण है तथापि भावों के अतिरिक्त काव्य में और कुछ भी अपेक्षित होता है। भावों का स्वतंत्र कोई अस्तित्व नहीं है। स्त्री अथवा पुरुष ही उनका सर्वत्र आश्रय होते हैं। इसी कारण काव्य में आए हुए व्यक्तियों के चरित्र-चित्रण की आवश्यकता पड़ती है। प्रबन्ध-काव्य की सफलता अधिकांश चरित्र-चित्रण पर निर्भर है। यों तो वस्तु-रचना में घटनाओं का भी बहुत बड़ा दायित्व है पर सुन्दर चरित्र-विधान से घटनाएँ सुव्यवस्थित हो जाती हैं। चरित्र-चित्रण के दो प्रकार हैं—प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष चित्रण में कवि स्वयं चरित्र पर प्रकाश डालता है। कथा में इस प्रकार के चित्रण का प्रयोग अवश्य उचित है परन्तु काव्य में वह अरुचिकर हो जाता है। परोक्ष चित्रण में संवाद या कथोपकथन द्वारा चरित्र पर प्रकाश डाला जाता है। कवि इसी ढंग को अपनाता है। केशव ने कथोपकथन द्वारा ही अपने चरित्रों का चित्रण किया है। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि केशव को संवादों में पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। केशव के चरित्र-चित्रण में घटनाओं का उतना मूल्य नहीं है जितना कि संवादों का। 'रामचन्द्रिका' में ये संवाद उल्लेखनीय हैं—१. दशरथ-विश्वामित्र-वशिष्ठ-संवाद (प्र० २), २. सुमति-विमति-संवाद (प्र० ३), ३. रावण-बाणासुर-संवाद (प्र० ४), ४. विश्वामित्र-जनक-संवाद (प्र० ५), ५. परशुराम-वामदेव-संवाद (प्र० ७), ६. परशुराम-राम-संवाद (प्र० ७), ७. कैकेई-भरत-संवाद (प्र० १०), ८. सूर्पणखा-राम-संवाद (प्र० ११), ९. सीता-रावण-संवाद (प्र० १३), १०. रावण-हनुमान-संवाद (प्र० १४), ११. रावण-अंगद-संवाद (प्र० १६) और १२. लवकुश-विभीषण-संवाद (प्र० ३७)।

इनमें से कुछ तो बहुत ही छोटे हैं, परशुराम-वामदेव संवाद, सीता-रावण-संवाद, सूर्पणखा-राम संवाद आदि। राम-परशुराम-संवाद तथा रावण-अंगद-संवाद काफ़ी लम्बे और सब संवादों में श्रेष्ठ हैं। केशव अपने संवादों के लिए संस्कृत के 'प्रसन्नराघव' और 'हनुमन्नाटक' नामक नाटकों के ऋणी हैं। अतः उनकी 'चन्द्रिका' में नाटकीय संवादों का ही प्राधान्य है। काव्य में नाटकीय विधि-विधान से नाटकीयता तो अवश्य आ जाती है पर प्रबन्धात्मकता में बाधा पहुँचती है। दरबारी कवि होने के नाते केशव राजनीति के दाँव-पेंच एवं वाग्वैदग्ध्य में कुशल हैं। इसी कारण उनके संवाद एक-दो को छोड़कर पात्रोपयुक्त, नीतिपूर्ण और वाग्वैदग्ध्यपूर्ण अवश्य हैं, किन्तु जब वे एक ही छन्द में कई पात्रों के कथोपकथन को समाविष्ट कर देते हैं तो पाठक उस वर्णन से वंचित रह जाता है जिसकी योजना प्रबन्धकार पात्रों के हाव-भाव तथा अनुभाव को चित्रित करने के लिए करता है।

केशव के सब पात्र राजनीति, कूटनीति और वाग्विलास में सिद्धहस्त हैं। केशव ने अपने उन्हीं पात्रों को बोलने का अधिक अवसर दिया है जिन्हें व्यंग्य कसने और राजनैतिक दाँव-पेंच खेलने की अधिक आवश्यकता थी। जहाँ-जहाँ गम्भीर मनोवृत्तियों के चित्रण की आवश्यकता थी वहाँ-वहाँ केशव संवादों को छोड़ गए हैं, जैसे चित्रकूट में राम-भरत का संवाद तथा दशरथ-कैकेयी का संवाद। राज-दरबार के वातावरण में कवि केशव ने वाग्चातुर्य एवं कूटनीति यहीं सब अर्जन किया था जिसका

विसर्जन इन्होंने अपने इन संवादों में किया। अतः स्वभावतः उनमें वे कमियाँ आ गईं जो एक भावुक कवि के काव्य में नहीं आनी चाहिए थीं।

'दशरथ-विश्वामित्र-संवाद' में विश्वामित्र राम के लोकोत्तर शौर्य द्वारा दशरथ को प्रभावित करके राम-लक्ष्मण दोनों भाइयों को ऋषियों के यज्ञ की रक्षा के लिए माँगते हैं। दशरथ की ममता को समझने का प्रयास किए बिना ही विश्वामित्र जी उन पर क्रुद्ध हो कहने लगते हैं—

झूठे सो झूठहि बाँधत हौ मन। छोड़त हौ नृप सत्य सनातन॥

(रा० चं०, प्र० २, छं० २२)

'सुमति-विमति-संवाद' प्रसन्नराघव के मंजरीक और नूपुरक संवाद का रूपान्तर ही है। वह केवल सीता-स्वयंवर में आए हुए मल्लिक (पार्वत्य-प्रदेश), काश्मीर, काँची, मत्स्य और सिंधु प्रदेशों के राजाओं के गुण, प्रभाव, शौर्य और बल-विक्रम का वर्णन करने के लिए ही नियोजित किया गया है और उसका कथा के पात्रों के चरित्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। नाटक के विष्कम्भक में संस्थित मंजरीक और नूपुरक ही 'रामचन्द्रिका' में सुमति-विमति (बन्दीजन) बन गए हैं। दोनों ग्रन्थों के उक्त पात्रों के संवादों में साम्य है, केवल नाम का अन्तर है। 'प्रसन्नराघव' में नूपुरक कहता है—

वअस्स मंजीरअ, को इमो सीताकरग्गहैवासणावसन्तलच्छीविलसन्तपुलअमुउलजालमण्डिदं णिअभुअसहआरसाहिजुअलं पुलोवन्तो चिट्ठदि[1] ?

मंजरीक का उत्तर देखिए—

स एष निजयशःपरिमलप्रमोदितचारणचंचरीकचयकोलाहलमुखरितदिक्चक्रवालक्ष्मापालकुन्तलालङ्कारो मल्लिकापीडो नाम[2]।

प्राकृत और संस्कृत में जो कुछ कहा गया है उसी को केशव की भाषा में सुनिये। सुमति पूछता है—

को यह निरखत आपनी पुलकित बाहु बिसाल।
सुरभि स्वयंवर जनु करी मुकुलित शाख रसाल॥[3]

विमति उत्तर में कहता है—

जेहि यश परिमल मत्त, चंचरीक चारण फिरत।
दिशि विदिशन अनुरक्त, सु तौ मल्लिकापीड नृप॥[4]

जहाँ नाटक में मंजरीक ने

पश्य पश्य सुभटैः स्फुटभावं भक्तिरेव नमिता न तु शक्तिः।
अंजलिर्विरचितो न तु मुष्टिमौलिरेव नमितो न तु चापः॥[5]

शब्दों से अपना विषाद व्यक्त किया है वहाँ 'रामचन्द्रिका' में विमति ने—

१. प्र० रा०, अंक १, पृ० २७।
२. वही, वही, वही।
३. रा० चं०, प्र० ३, छं० १८।
४. वही, वही, छं० १९।
५. प्र० रा०, अंक १, पृ० ३१, छं० ३१।

शक्ति करी नहिं भक्ति करी अब, सो न नयो तिल शीश नये सब।
देख्यों मैं राजकुमारन के वर, चाप चढ्यो नहिं आप चढ़े खर ॥[1]

तथा

अस काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठावै न आँगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आये ह्वै बीर चलै वनिता ह्वै ॥[2]

में आमंत्रित राजाओं का उपहास किया है। केशव इस सम्पूर्ण प्रसंग के लिए जयदेव के ऋणी हैं।

इसी प्रकार 'रावण-बाण-संवाद' भी इस नाटक का अनुकरण मात्र है और प्रायः अवसर के उपयुक्त भी नहीं है। धनुष-यज्ञ में आकर भी बाण तो

मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माय।
दुहूँ भान्ति असमंजसै, बाण चले सुख पाय ॥[3]

की स्थिति का बहाना करके सहर्ष चला जाता है। परन्तु रावण उसी समय प्रतिज्ञा करता है कि मैं तो बिना सीता को लिए यहाँ से न हटूँगा। मैं यहाँ से तब तक न हटूँगा जब तक कि मैं अपने किसी सेवक की आर्त्त पुकार न सुनूँगा[4]। इतने में ही आकाश में किसी सरविद्ध असुर की आर्तवाणी सुनाई पड़ती है जिसे सुनते ही रावण वहाँ से चल पड़ता है[5]। इन उक्तियों का आधार 'प्रसन्नराघव' ही है[6]। ऐसी घटनाएँ कभी-कभी इस संसार में घट जाती हैं पर केवल दैव-संयोग से ही। प्रबन्धकार को ऐसी घटनाओं से बचना ही चाहिये, अन्यथा प्रभाव-प्रेषणीयता क्षीण पड़ जाती है। 'विश्वामित्र-जनक-संवाद' इस बात का ज्वलन्त उदाहरण है कि केशव के पात्रों में शिष्टाचार और परस्पर का सत्कार पूरा है। विश्वामित्र और जनक एक दूसरे का जी खोलकर गुणगान करते हैं। जनक ने यदि कन्यारत्न उत्पन्न किया तो विश्वामित्र ने दूसरा लोक ही रच डाला।

केशव ने 'परशुराम-राम-संवाद' में अपनी कुशलता का पूरा परिचय दिया है। इसमें केशव ने राम और परशुराम के चरित्रों का बड़ा ही सुन्दर एवं सजीव

---

१. रा० चं०, प्र० ३, छं० ३३।
२. वही, प्र० ३, छं० ३४।
३. वही, प्र० ४, छं० २८।
४. वही, प्र० ४, छं० २९।
५. वही, प्र० ४, छं० ३०।
६. अनाहृत्य हठात् सीतां नान्यतो गन्तुमुत्सहे।
न शृणोमि यदि क्रूरमाक्रन्दमनुजीविनः।
—प्र० रा०, अंक १, श्लोक ६।

तथा

रावणः (कर्णं दत्वा) अये, कस्यायमाक्रन्दः श्रूयते नभसि। नूनमनेन कस्यचिन्नाराचपीड़ितेन कठोरमाक्रन्दता गगनपदचारिणा आदि॥
(इति निष्क्रान्तः)
—प्र० रा०, पृ० ५५।

वर्णन किया है। वामदेव ऋषि के मुँह से 'रा' निकलते ही परशुराम उसे रावण समझ बैठते हैं।

महादेव को धनुष यह परशुराम ऋषिराज।
तोर्‌यो 'रा' यह कहत ही, समुझ्यो रावण राज॥[1]

इस उक्ति का आधार जयदेव का 'प्रसन्नराघव' है। वहाँ सतानन्द का शिष्य ताण्ड्यायन कहता है—

सुबाहुमारीचपुरस्सरा अमी निशाचराः कौशिकयज्ञपातिनः। वशे स्थिता यस्य[2]**।**

इतना सुनते ही परशुराम जी आग-बबूला हो तुरन्त बोल उठते हैं—

अलम्, अतः परं ज्ञातः खलु खलानामग्रणीनिशाचरग्रामणीः[3]**।**

वामदेव के द्वारा राम के शौर्य का परिचय प्राप्त करके और अपने गुरु महादेव जी के धनुभंग की सूचना पाकर सहसा क्षुब्ध होकर अपना परशु उठा लेते हैं और समस्त रघुवंशियों के समूलोच्छेद करने की ठान लेते हैं[4]। परन्तु राम के मोहन-रूप को देखकर उनका क्रोध शान्त हो जाता है और उन्हें ऐसा आभास होने लगता है कि यह राम के वेष में कामदेव है और इसी कारण सनातन वैर स्मरण करके इसने महादेव का धनुष तोड़ा है[5]। राम के शिष्टाचार ने परशुराम के क्रोध को भी संयत कर दिया है। परशुराम का राम के प्रति यह क्रोध कि 'महादेव के धनुष को तोड़कर तुम्हें बड़ा भारी अभिमान हो गया है; भला तुमने धनुष तोड़ते समय मेरा भय क्यों न किया', राम के निःसंकोच अपराध स्वीकार कर लेने पर भी, पूर्णतया शान्त नहीं होता, वरन् वह राम के दोनों हाथ काट लेने के लिए कहते दिखाई पड़ते हैं। इतने से ही सन्तोष नहीं होता। वे अपने कुठार को सम्बोधित करते हुए—

तौ लौं नहीं सुख जौ लग तू रघुवीर को श्रोण सुधा न पियो रे[6]**।**

की चुनौती देते हैं। भरत भी, तुलसी के लक्ष्मण के समान, कुछ व्यंग्य कस जाते हैं[7]। इस पर तो परशुराम और भी जल-भुन जाते हैं और भरत को अपनी धनुर्विद्या दिखाने की चुनौती दे उठते हैं। बस फिर क्या था, तीनों भाई (भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न) अपने-अपने धनुषों पर बाण चढ़ा लेते हैं। तब राम ही उनको—

भंगवंत सो जीतिये कबहुँ न कीन्हें शक्ति। जीतिय एकै बात तें, केवल कीन्हें भक्ति।[8]

---

१. रा० चं०, प्र० ७, छं० ४।
२. प्रसन्नराघव अंक ४, पृ० १३६।
३. वही, वही, पृ० १३६।
४. रा० चं०, प्र० ७, छं० १२।
५. वही, प्र० ७, छं० १४।
६. वही, वही छं० २१।
७. बोलत कैसे, भृगुपति सुनिये, सो कहिए तन मन बनि आवै।
आदि बड़े हो, बड़पन रखियै, जा हित तूं सब जग जस पावै॥
चन्दन हूँ में, अति तन घसिए, आगि उठै यह गुन सब लीजै।
हैहय मारो, नृपजन संहरे, सो यश लै किन युग-युग जीजै॥
—रा० चं०, प्र० ७, छं० २२।
८. रा० चं०, प्र० ७, छं० २५।

के उपदेशामृत द्वारा शान्त करते हैं। राम के इस आचरण से परशुराम भी प्रभावित होते हैं परन्तु उन्हें तीनों भाइयों की आचरण-क्षुद्रता स्पष्ट हो जाती है। शत्रुघ्न और लक्ष्मण फिर भी चंचलता नहीं छोड़ते और परशुराम जी का क्रोध यहाँ तक पहुँच जाता है कि वह कह ही उठते हैं—'कोटि करो उपचार न कैसहू मीचु बचौं'।[१] दोनों रामों में जब बात बढ़ती है तो महादेव आ उपस्थित होते हैं और दोनों को समझा-बुझाकर शान्त कर देते हैं।

'कैकेयी-भरत-संवाद' इतना संक्षिप्त और अपर्याप्त है कि उससे पात्रों के चरित्रों की रूपरेखाएँ भी स्पष्ट नहीं हो पाई हैं। यह संवाद 'हनुमन्नाटक' की छाया है। जहाँ तुलसी ने कैकेयी और मंथरा के संवाद द्वारा कैकेयी के चरित्र को बहुत ऊँचा उठाया है, वहाँ केशव ने उसे वास्तव में 'भर्तासुतविद्वेषिनी' सिद्ध कर दिया है।

'रावण-सीता-संवाद' में केशव ने सीता के उज्ज्वल चारित्र्य-तेज का और रावण की दुश्शीलता का बड़ा ही सुन्दर और सजीव चित्रण किया है। रावण सीता के सामने राम की निन्दा करता है और उसे विविध प्रकार के प्रलोभनों द्वारा अपनी पटरानी बनाना चाहता है परन्तु सीता जैसी सुचरित्रा उसकी प्रार्थना को ठुकरा देती है और कठोर शब्दों में भर्त्सना करती है[२]।

'रावण-हनुमान-संवाद' केशव के वाग्वैदग्ध्य एवं व्यंग्य का सुन्दर उदाहरण है। समस्त संवाद

रे कपि कौन तू ? अक्ष को घातक दूत बली रघुनन्दन जू को।
को रघुनन्दन रे ? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण भूषण भू को॥
सागर कैसे तर्‌यो ? जस गोपद, काज कहाँ ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बन्धायो ? जू सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥[३]

इस एक 'मत्तगयंद' सवैया में है। इसमें केशव ने युक्ति-पूर्वक राम के माहात्म्य, रूप और बल का तथा रामभक्तों के आचरण का वर्णन किया है। राम का बल कैसा है ? वे हजारों की सेना को क्षण भर में ही मार सकते हैं। माहात्म्य कैसा है ? उनके दास अक्षय (अमर) को भी मार सकते हैं। रूप कैसा है ? समस्त संसार का भूषण है। राम के दास भवसागर कैसे तरते हैं ? जैसे गोपद। राम के दास काम क्या करते हैं ? केवल राम-सम्बन्धी कार्य। इस उक्ति में राम-भक्तों के आचरण की भी कितनी सुन्दर व्यंजना है—'कैसे बंधायो ?' हनुमान रावण के इस प्रश्न के उत्तर में कहते हैं—तेरी स्त्री को सोते हुए देख लिया, इसी पाप से बन्दी होना पड़ा। व्यंजना यह हुई कि मैंने तो पराई स्त्री को देखा ही है पर तू तो अपने घर ले आया है, तेरी तो इससे भी बुरी दशा होगी। ला० भगवानदीन के अनुसार इससे व्यंजना यह निकली कि रामभक्त पराई स्त्री को आँख से देखने को भी पाप

---

१. रा० चं०, प्र० ७, छं० ३४।
२. रा० चं०, प्र० १३, छं० ६१, ६२।
३. रा० च०, प्र० १४, छं० १।

समझते हैं और उसके दण्ड को यहीं भोग लेते हैं[1]। इस व्यंजना को साधारण पाठक नहीं समझ सकता। चाहे व्यंग्यार्थ कुछ भी हो, इस प्रकार का कथन सूझ का ही विषय है। वह मस्तिष्क की उपज है, हृदय की नहीं। उक्त प्रसंग का आधार 'हनुमन्नाटक' है[2]। इसके विपरीत तुलसी के 'रावण-हनुमान-संवाद' में काफ़ी गाली-गलौज है। रावण और हनुमान दोनों एक दूसरे के लिये शठ, अधम, मूढ़ आदि अपशब्दों का प्रयोग करते हैं[3], जो कि राज-सभा के शिष्टाचार के प्रतिकूल है। 'रामचरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राज तुम करहू'[4] आदि हनुमान की रावण के प्रति उपदेशात्मक उक्तियाँ राम के पारब्रह्मत्व के विषय में उनके दूतत्व की दृष्टि से भी सर्वथा असंगत हैं। तुलसी राम-भक्ति के आवेश में आकर ही हनुमान से ऐसा कहला गए हैं। यह चाहे उनकी कमजोरी हो पर भक्तिकाव्य की दृष्टि से यही उनका बल कहा जा सकता है। उन्होंने स्वयं लिख भी दिया है—

यद्यपि कही कपि अतिहित बानी, भक्ति विवेक विरति नयसानी[5]।

'रावण-अंगद-संवाद' केशव के वचन-विलास का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस संवाद में रावण और अंगद दोनों ही बड़े चातुर्य के साथ एक दूसरे पर व्यंग करते हुए प्रतिपक्षी की हीनता और अपनी महत्ता प्रदर्शित करते चलते हैं परन्तु दोनों ओर से राजसभोचित मर्यादा का पूरा-पूरा पालन किया गया है। अंगद को सदैव यह स्मरण रहता है कि वह दूत बनकर आया है और एक महान् और प्रतापी राजा के दरबार में खड़ा है। रावण भी एक ओर अपनी महिमा प्रदर्शित करता है दूसरी ओर राम की तुच्छता। इस प्रकार जब अंगद पर आतंक जमता नहीं दिखाई देता तो रावण भेद-नीति से अंगद को अपने पिता के वध का प्रतिशोध लेने के लिए उकसाता है। परन्तु अंगद कभी आवेश में नहीं आता और बड़े कौशल के साथ रावण की भेद-नीति के दाव-पेंचों को बचाता चलता है। वह रावण को मुँहतोड़ जवाब देता हुआ कहता है कि पहले अपनी रक्षा करो फिर और की रक्षा करना। रावण फिर भी साहस नहीं छोड़ता। एक और पैंतरा बदलता है, संभव है अन्तिम समय में ही अंगद के हृदय में पिता के घातक-राम से बदला लेने की भावना जग उठे। वह अंगद से कहता है कि 'मैंने बड़ी भूल की जो अब तक तुझे मार नहीं डाला। दूत समझ कर तेरी सब बातें सह रहा हूँ। राम, सुग्रीव आदि तुझे मरवाना ही चाहते हैं। अतः अब तुझे क्या मारूँ, तुझे तो दैव ने ही मार रखा है, (रा० चं०, प्र० १६, छं० २०)। जब अंगद राम का गुणगान करता ही जाता है तो एक बार रावण भी क्रोधावेश में कह उठता है—

---

१. रा० चं०, प्र० १४, छं० १ की टीका, पृ० २३६।

२. रे रे वानर को भवानहम् रे त्वत्सूनुहन्ताहवे,
दूतोऽहं खरखण्डनस्य जगतां कोदण्डदीक्षागुरोः।
—हनु०, अंक ६, श्लोक २२।

३. रा० चं०, मा० सुन्दरकाण्ड, दो० १६, २२ और २३ के बाद की चौपाइयाँ (क्रमशः)।

४. वही, २१ में दोहे के बाद की चौपाई, पृ० ८८४।

५. रा० च० मा०; सुन्दरकाण्ड, दो० १६ के बाद की चौपाई।

तपी जपी विप्रन छिप्र ही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न दैहौं, यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अवानरी करौं।।

(रा० चं०, प्र० १६, छं० ३०)

किन्तु रावण एक दम सम्हल जाता है और कहता है कि अच्छा मैं कुछ शर्तों पर सीता को लौटा सकता हूँ। रावण का यह वार भी खाली ही जाता है, अतः निराश हो अंगद से इस विषय में बात करनी ही छोड़ देता है।

तुलसी ने भी 'रावण-अंगद-संवाद' की योजना की है। किन्तु उसमें राजसभोचित मर्यादा का कोई ध्यान नहीं रखा गया है। अंगद और रावण का संभाषण न तो अंगद के राजदूतत्व के अनुरूप है और न रावण के राक्षस-राजत्व के। तुलसी के अंगद रावण की सभा में पहुँचते ही उसको—

दसन गहहु तृन कण्ठ कुठारी। परिजन संग सहित निज नारी।
सादर जनक सुता करि आगे। इहि बिधि चलहु सकल भय त्यागे।।[1]

का अपमानजनक उपदेश देने लगते हैं और रावण भी अपमान न सहकर अंगद को मूर्ख, बर्बर, खल, कुलघातक, तियचोर, मलराशि आदि अपशब्दों में ललकारता है[2]। दोनों की तू-तू मैं-मैं ने राजसभा की मर्यादा को धूल में मिला दिया है। पर केशवदास ऐसे शिष्टाचारों के प्रकट करने में बड़े ही कुशल हैं। इनके अंगद रावण के सम्मुख सन्धि-प्रस्ताव रखते हुए कहते हैं कि 'राम को सादर अपने घर लाकर और उनका सत्कार कर सीता को उन्हें लौटा दो। अपनी पटरानी और कुम्भकर्ण आदि जितने तुम्हारे हितैषी हैं उनसे भी पूछ लो कि मेरी सलाह अच्छी है या नहीं'।[3] इस पर रावण भी व्यंग्यपूर्ण पर सरल उत्तर देता है कि 'जो होना हो सो हो, मैं अपने इष्ट-देव शंकर को जो समस्त सृष्टि और ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि देवताओं को तनिक से क्रोध से ही नष्ट कर डालते हैं, छोड़ राम के चरणों में न पड़ूँगा[4]।'

तुलसी के अंगद बिना पूछे ही बालि की बात सुनाने लग जाते हैं पर केशव के अंगद बिना प्रसंग के ऐसी डींग नहीं हाँकते। रावण और अंगद के उत्तर-प्रत्युत्तर बहुत ही संगत और सुसम्बद्ध हैं। इस संवाद की भी अनेक उक्तियों का आधार 'हनुमन्नाटक' है।

'लवकुश-विभीषण-संवाद' केशव ने विभीषण को उस वत्ति की निन्दा करने के लिए नियोजित किया है जिसके लिये उसने अपने भाई रावण और उसके अपने कुल का सर्वनाश करवाया। रामभक्तों की दृष्टि में विभीषण चाहे भक्त है परन्तु राजनैतिक दृष्टि में वह राजद्रोही एवं देशद्रोही ही ठहरते है और इसी कारण उसे लव के व्यंग बाण सहने पड़ते हैं।

चरित्र-चित्रण—संवादों का उपयोग केशव ने वहाँ किया है जहाँ उन्हें वाग्चातुर्य, कूटनीति आदि का समावेश करना अभीष्ट था। जीवन के गहन तथा

---

१. रा० चं०, भा०, लंकाकाण्ड, ३५वें दोहे के बाद की अन्तिम चौपाइयाँ।
२. वही, लंकाकाण्ड, दो० ४७ तथा दो० ५५ के बाद की चौपाइयाँ।
३. रा० चं०, प्र० १६, छं० ६।
४. वही, वही छं० १०।

गम्भीर प्रसंगों में जहाँ चरित्र की परीक्षा होती है वे न तो स्वयं अपनी लेखनी से और न किसी पात्र की वाणी से व्यक्तियों के चरित्रों का चित्रण कर सके हैं। 'रामचन्द्रिका' में जब-जब ऐसे प्रसंग आए हैं तब-तब केशव उनकी उपेक्षा ही कर गये हैं। जैसा कि पूर्वपृष्ठों में बताया जा चुका है, केशव ने कथा-प्रसंग-निर्वाह की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया है। इसलिए उनके अधिकांश पात्रों का उचित विकास नहीं हो पाया है और उनका उस स्तर से पतन हो गया है जहाँ उन्हें वाल्मीकि अथवा तुलसी ने अधिष्ठित किया है। यदि वाल्मीकि और तुलसी की कथा से भारतीय जनता इन पात्रों के चरित्रों से पहले से ही भली-भाँति परिचित न होती तो केशव की 'रामचन्द्रिका' उनका सच्चा और पूरा स्वरूप अंकित करने में समर्थ नहीं हो सकती थी। केशव ने केवल रूप-रेखाओं में कहीं-कहीं तूलिका का स्पर्श दिया है, कुशल चित्रकार के सदृश मनोयोग से रंग नहीं भरा।

राम—'रामचन्द्रिका' के आरम्भ में ही महर्षि वाल्मीकि ने स्वप्न में केशव को, राम का जो परिचय दिया था उससे स्पष्ट है कि उनके राम साक्षात् 'परब्रह्म' और 'अवतारी अवतारमणि' हैं[1]। वे अजर, अमर, अनादि और अनन्त हैं तथा शेष, शम्भु, ब्रह्मा और वेद जिनको 'नेति नेति' कह कर सम्बोधित करते हैं[2]। वे अन्तर्यामी हैं और उनकी ज्योति सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है[3]। उनके न रूप है, न रंग है और न रेखा[4]। इस प्रकार केशव की दृष्टि में राम निर्गुण ब्रह्म हैं परन्तु केशव उनके सगुण रूप को भी मानते हैं। वे भक्तों के कारण अवतार लेते हैं—सब भक्तन कारण धरत देह (रा० चं०, प्र० ७, छं० ४६) रजोगुणी ब्रह्मा के रूप में अवतार धारण करके वे सृष्टि की रचना करते हैं, सतोगुणी

---

१. रा० चं०, प्र० २७, छं० १७।

२. तुम हो अनन्त अनादि सर्वग सर्वदा सर्वज्ञ।
—रा० चं०, प्र० २७, छं० १।

अजर अमर अनन्त जै जै, चरित श्री रघुनाथ।
करत सुर नर सिद्ध अचरज श्रवण सुनि सुनि गाथ॥
—वही, वही, छं० १०।

नेति नेति कहैं वेद। —वही, प्र० १, छं० ३।

सेस संभु स्वयंभु भाषत नेति निगमहु जासु।
ताहि लघुमति वरणि कैसे सकत केशवदास॥
—वही प्र० २७, छं० २४।

३. राम सदा तुम अन्तरयामी। लोक चतुर्दश के अभिरामी।
ज्योति जगै जग मध्य तिहारी। जाय कही न सुनी न निहारी॥
—रा० चं०, प्र० २०, छं० १५, १६।

४. रूप न रंग न रेख विशेष अनादि अनंत जु वेदन गाई।
केशव गाधि के नन्द हमैं वह ज्योति सो मूरतिवन्त दिखाई॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० १८।

विष्णु रूप से वे उसकी रक्षा करते हैं तथा तमोगुणी रुद्ररूप से वे सृष्टि का संहार करते हैं[1]। परन्तु केशव सम्पूर्ण कथा-भाग में इस महत्ता का विकास नहीं दिखला सके हैं। उन्होंने तो अपनी धुन के कारण उनके रूप को बहुत कुछ नष्ट कर दिया है और राज्याभिषेक के बाद उनके राजसी ठाट को ही व्यक्त किया है। जहाँ वाल्मीकि और तुलसी के राम में सौम्यता एवं गम्भीरता के दर्शन होते हैं वहाँ केशव के राम में लक्ष्मण के समान ही उग्रता दिखाई देती है। 'राम-परशुराम-संवाद' में राम की शब्दावली अधिकांश तुलसी के लक्ष्मण से मिलती है। धनुर्भंग के कारण कुपित परशुराम से केशव के राम कहते हैं—

टूटे टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष।
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई॥
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होय तिनुका बज्र बज्र तिनुका ह्वै टूटै॥
(रा० चं०, प्र० ७, छं० २०)

परशुराम के विश्वामित्र पर व्यंग करने पर तो राम की उग्रता अपनी चरम पराकाष्ठा पर ही पहुँच जाती है। राम ललकार कर कहते हैं—

भगन कियो भवधनुष साल तुम को जब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं॥
सकल लोक संहरहुं सेस सिर ते धर डारौं।
सप्तसिन्धु मिलि जाहि होहि सब ही तम भारो॥
अति अमल ज्योति नारायणी कहि केशव बुझि जाय बर।
भृगुनन्द संभारु कुठार मैं कियो सरासन युक्त सर॥
(रा० चं०, प्र० ७, छं० ४२)

शिव जी के समय पर उपस्थित हो जाने से अनर्थ होते-होते बच जाता है। इस समस्त प्रसंग में केशव ने सचेष्ट होकर मौलिक बनने का प्रयास किया है परन्तु इस मौलिकता की सूझ के कारण वे राम के चरित्र का किसी प्रकार विकास नहीं कर

---

१. तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये। तुम एक तें रूप अनेक बनाये॥
इक है जो रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो।
गुण सत्य धरे तुम रक्षक जाको। अब विष्णु कहै सिगरे जग ताको॥
तुमहीं जग रुद्रसरूप संहारो। कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो॥
—रा० चं०, प्र० २०, छं० १७, १८।

२. गाधि के नन्द तिहारे गुरु। जिन ते ऋषि वेष किये उबरे हैं॥
—रा० चं०, प्र० ७, छं० ४१।

सके हैं। वाल्मीकि और तुलसी ने इसी प्रसंग में राम का कहीं अच्छा चित्रण किया है।

राम के चरित्र की यह उग्रता एक स्थल पर और देखने में आती है। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर विभीषण राम को बतलाते हैं कि यदि सूर्योदय से पूर्व लक्ष्मण को औषधि न मिल सकी तो लक्ष्मण फिर जीवित न हो सकेंगे। यह सुनकर राम अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहने लगते हैं—

करि आदित्य अदृष्टि नष्ट जम करौं अष्ट बसु।
रुद्रन बोरि समुद्र करौं गन्धर्व सर्व पसु॥
बलित अबेर कुबेर बलिहि गहि देउं इन्द्र अब।
विद्याधरन अविध करौं बिन सिद्धि सिद्ध सब॥
निज होहि दास दिति की अदिति अनिल अनल मिटि जाय जल।
सुनि सूरज! सूरज उवत ही करौं असुर संसार बल॥
(रा० चं०, प्र० १७, छं० ४६)

बन जाते समय केशव राम से दुखित माता कौशल्या को नारी-धर्म का उपदेश दिलवाते हैं और उनके मुँह से यहाँ तक कहलवा देते है कि विधवा हो जाने पर स्त्री को क्या करना और कैसे रहना चाहिये। सौभाग्यवती माता को राम का इस प्रकार का उपदेश करना उनके चरित्र पर कालिमा लगाता है। वाल्मीकि और तुलसी दोनों ही ने 'विधवा-धर्म-वर्णन' के प्रसंग को छोड़ना उचित समझा है। सीता से केशव के राम का इसी प्रसंग में कहना—

तुम जननि सेव कहं रहहु बाम। कै जाहु आज ही जनक धाम।
सुन चन्द्रबदनि गजगमनि एनि। मन रुचै सो कीजै जलजनैनि॥[1]

भी उनके चरित्र को उठाने के स्थान पर गिराता ही है। इस अवसर पर वाल्मीकि के राम सीता से कहते हैं कि तुम राजा भरत के आदेश का पालन करते हुए धर्म और सत्य में स्थित होकर अयोध्या में ही रहो। इसी प्रकार तुलसी के राम भी सीता से अयोध्या में ही रहकर सास-ससुर के चरणों की सेवा करने का परामर्श देते हैं[2]।

केशव के राम तुलसीदास के राजत्यागी राम नहीं हैं। वे उस संशयालु राजा के समान हैं जो राजपाट का परित्याग कर चौदह वर्ष के लिए बनगमन के समय भी भरत से भाई के प्रति सशंक हैं। लक्ष्मण को बन साथ चलने से मना करते हुए वे उन्हें भरत की गतिविधि पर ध्यान रखने और माताओं की शुश्रूषा एवं रुग्ण पिता की सेवा करने की शिक्षा दे रहे हैं[3]। इसके विपरीत वाल्मीकि और तुलसी के राम भरत पर पूरा विश्वास रखते हैं और भरत के प्रति इस प्रकार की शंका वे कभी नहीं करते हैं। चित्रकूट-प्रसंग में जब भरत राम को लौटा लाने के लिए ससैन्य आ रहें हैं तो लक्ष्मण को उनके आक्रमण करने का सन्देह हो जाता है। फलतः वे शत्रुघ्न-

१. रा० चं०, प्र० ६, छं० २३।
२. रा० च०, मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० ६२ के बाद की चौपाइयाँ, पृ० २५४।
३. रा० चं, प्र० ६, छं० २७।

सहित भरत को मार डालने तक की ठान लेते हैं[१]। इतने पर भी राम का चुप रहना उनके चरित्र को कुछ धूमिल अवश्य कर देता है। इस अवसर पर वाल्मीकि के राम उन्हें समझाते हैं कि मुझ से सदैव स्नेह करने वाले और मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय भरत स्नेहार्द्र हृदय से पिता को प्रसन्न कर मुझे लेने आए हैं, तुम उन पर अन्याय करने का सन्देह क्यों करते हो। इसी प्रकार तुलसी के राम भी प्रेमपूर्वक लक्ष्मण को समझाते हुए कहते हैं—

भरतहिं होइ न राज मद, बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि कांजी शीकरन्हि, क्षीरसिन्धु बिनसाइ॥[२]

किन्तु केशव के राम भरत के—

घरको चलिये अब श्री रघुराई। जन हौं तुम राज सदा सुखदाई॥[३]

वचन सुनकर ही कह सके हैं कि 'राजा दशरथ ने हमको बनवास दिया है और तुम्हें संपूर्ण राज्य दिया है। अतः तुम्हें और हमें मिलकर वही बात करनी चाहिये जिससे पिता के वचन भंग न हों'।[४]

आगे चलकर बन में विचरण करते हुए केशव के राम का सीता के चलते-चलते थक जाने पर किसी तड़ाग अथवा नदी के किनारे तमाल वृक्षों की घनी और शीतल छाया में बैठकर अपने वल्कल के अंचल से पंखा झलना और सीता के श्रम को दूर करना उनकी शृंगारिक और किसी सीमा तक स्त्रैण मनोवृत्ति का परिचायक है। इसके प्रतिकूल वाल्मीकि की सीता मृगया से परिश्रान्त राम के सिर को अपनी गोद में रखकर स्वयं उनके मुख पर हवा करती है। मर्यादावादी तुलसी तो ऐसे स्थलों में जाना ही उचित नहीं समझते हैं। सुग्रीव द्वारा लाकर दिए गए सीता जी के उत्तरीय को देखकर तो केशव के राम विलासी मानव के समान ही अपनी काम-क्रीड़ा का स्मरण करने लगते हैं।[५] तुलसी ने इस अवसर पर भी मौन रहकर अपनी मर्यादाशीलता का ही परिचय दिया है।

अत्रि ऋषि के आश्रम को छोड़कर आगे बढ़ने पर सीता जी जब विराध नामक राक्षस को देखकर भयभीत हो जाती हैं तो राम धर्म और मर्यादा का विचार

---

१. मारि डारौं अनुज समेत यहि खेत आजु।
....
भरतहि आजु राज देऊँ प्रेतपुर को॥
—रा० चं०, प्र० १०, छं० २५।

२. रा० च० मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० २२६।

३. रा० चं०, प्र०, १०, छं० ३३।

४. वही, छं० ३४।

५. बन्धन हमारो कामकेलि को, कि ताड़िबे को,
ताजनो विचार को कै व्यजन विचारु है।
मान की जमनिका, कै कंजमुख मूँदिबे को,
सीताजू को उत्तरीय को सब सुखसारु है॥
—रा० चं०, प्र, १२, छं० ६१।

किए बिना ही झट उसे बाण का लक्ष्य बना डालते हैं। भयंकर शरीरधारी होने के कितने छोटे से ही अपराध पर बेचारे विराध का बध हो गया है। 'यहाँ कथा-प्रसंग के छोड़ देने से, जो राम संतों के त्राण के लिए थे वे चरित्र के उस साधारण धरातल पर पहुँच जाते हैं जहाँ ऐरे-ग़ैरे बहुतेरे संसारी-जन रहा करते हैं जो अपनी स्त्री को प्रसन्न करने को ऐसे काण्ड करने को प्रस्तुत रहते हैं'।[1]

सीता जी के विरह में विह्वल केशव के राम का विलाप करते हुए पक्षियों, वृक्षलताओं आदि से करुणापूर्ण वाणी में उनका पता पूछते इधर-उधर फिरना उन्हें स्त्रैण अथवा कामुक पति घोषित करता है। बाल्मीकि और तुलसी ने इसी प्रसंग में राम के चरित्र का बड़ा ही मर्यादित चित्रण किया है। लक्ष्मण के शक्ति लगने पर केशव के राम के नेत्रों से एक बार फिर अश्रुसरिता का प्रवाहित हो जाना और उनका यहाँ तक कह डालना भी उन्हें साधारण मानव के चरित्र के स्तर पर ही ले जाता है—

'तू बिनु हौं पल प्रान न राखौं। सत्य कहौं कछु झूँठ न भाखौं॥'[2]

रावण-वध के उपरान्त केशव के राम हनुमान जी को बुलाकर कहते हैं—

जाय जाय कहौ हनुमंत हमारो—सुख देवहु बीरव दुःख विदारो॥
सब भूषण भूषित कै शुभ गीता। हम को तुम वेगि दिखावहु सीता॥[3]

बाल्मीकि और तुलसी के राम के चरित्र में यह उतावलापन देखने में नहीं आता है। तुलसी के राम केवल यही कहते हैं कि सीता से जाकर सब समाचार कहना और सीता के कुशल-मंगल का पता लेते आना।[4] हनुमान के सीता के समीप पहुँचने पर स्वयं सीता जी का हनुमान से कथन है कि कुछ ऐसा यत्न करो जिससे शीघ्र ही स्वामी के दर्शन हो सकें।[5]

राज्याभिषेक के उपरान्त तो केशव के राम केशव के समकालीन शृंगारिक मनोवृत्ति रखने वाले मुग़ल सम्राटों तथा राजा-महाराजाओं के रूप में देखने में आते हैं। वे उन्हीं की भाँति कभी चौगान खेलने जाते हैं, तो कभी सीता के साथ वाटिका की सैर करने; कभी अस्त्रशाला देखने जाते हैं तो कभी शृंगारशाला; कभी रनिवास की स्त्रियों के साथ जाकर जलक्रीड़ा करते हैं, तो कभी सभा में बैठकर नृत्य-गान आदि का रस लूटते हैं; कभी उन्हें शारिका जगाती है, तो कभी अपने अंतरंग सखा शुक के साथ छिपकर वे रनिवास की स्त्रियों का बन-विहार देखते और बड़े चाव से शुक से सीता की दासियों का नखशिख-वर्णन सुनते हैं।

भरत—बाल्मीकि और तुलसी के समान केशव ने भरत की भूरि-भूरि प्रशंसा

---

१. केशव की काव्यकला, पृ० ७६।
२. रा० चं०, प्र० १७, छं० ४५।
३. रा० चं०, प्र० २०, छं० १।
४. रा० च० मा०, लंकाकाण्ड, दो० १८२ के बाद की चौपाई; पृ० ६०१।
५. वही, वही, दो० १८३ के बाद की चौपाई; पृ० ६०२।

की है। उनका कथन है कि यद्यपि लक्ष्मण ने सब प्रकार से सेवा की तथापि सब प्रकार से भरत की सेवा पर ही राम का ध्यान रहा है।[१]

केशव के भरत उतने शान्त और विनम्र नहीं हैं, जितने कि वाल्मीकि और तुलसी के। परशुराम से लेकर राम तक से उनका विरोध चलता है। धनुष के टूट जाने पर जब बातचीत में परशुराम गरम होकर कुठार से राम का रक्त-पान करने के लिए कहते हैं तो भरत ही सब से पहले व्यंगपूर्ण शब्दों में उन्हें सचेत कर कहते हैं कि 'हे भृगुपति, कैसी बात कहते हो। ऐसी बात कहो जिसे तुम तन से अथवा मन से पूर्ण कर सको। तुम ब्राह्मण हो, अतः बड़प्पन रखे रहो जिससे तुम समस्त संसार में यश प्राप्त करो। अन्यथा यह भली भाँति समझ लें कि अत्यन्त रगड़ से चन्दन में भी आग लग उठती है। तुमने हैहयराज और अन्य अनेक क्षत्रिय राजाओं का संहार किया है। यही यश लेकर विश्व में क्यों नहीं युग-युगान्तर तक अमर बने रहते हो।[२] 'मानस' में परशुराम की भेंट स्वयंवर सभा में होने के कारण तुलसी के भरत के सम्मुख यह अवसर नहीं आया है।

भरत ननिहाल से लौटकर अवध में देखते हैं कि चारों ओर शोक छाया हुआ है, राजसभा में सन्नाटा है और माता कैकेयी भवन में अकेली पड़ी हैं। निदान माता से भेद जानकर सारा रहस्य खुलता है। इस अवसर पर केशव के भरत वाल्मीकि और तुलसी के समान ही कैकेयी की भर्त्सना करते दिखाई पड़ते हैं।[३] राम से भेंट होने पर भरत जब उनसे गद्‌गद वाणी में वापिस लौट चलने और राज्य करने का प्रस्ताव करते हैं तो राम, राजा और पिता की आज्ञा पालन करने का आदेश देते हैं[४] किन्तु भरत तो राम से नीति की दुहाई देते हुए मद्यपी, स्त्री के वशीभूत, सन्निपात-ग्रस्त, वातुल और महापापी पिता की आज्ञा-भंग करने का ही आग्रह करते हैं।[५] यह स्पष्ट छोटे मुँह बड़ी बात है। अनुनय-विनय के बल पर राम को मनाने के स्थान पर उनका यहाँ तक तनकर कहना—

ईश ईश जगदीश बखान्यो । बेद वाक्य बल तें पहिचान्यो ।
ताहि मेटि हठ कै रजिहों जो । गंग तीर तनको तजिहों तो ॥
(रा० चं०, प्र० १०, छं० ३७)

---

१. यदपि लक्ष्मण करी सेवा सर्व भाँति समेव ।
तदपि मानत सर्वथा करि भरत ही की सेव ॥
—रा० चं०, प्र० २७, छं० २१ ।

२. रा० चं०, प्र० ७, छं० २२ ।

३. बन काज कहा कहि ? केवल मों सुख, तोकों कहा सुख या में भये ?
तुमको प्रभुता, धिक तोकों कहा अपराध विना सिगरेई हये ॥
भर्तासुताविद्वेषिनी, सब ही को दुखदायी ।
—रा० चं०. प्र० १०, छं० ४,५ ।

४. राजा को अरू बाप को वचन न मेटै कोई ।
जो न मानिये भरत तो मारे को फल होइ ॥
—रा० चं०, प्र० १०, छं ३५ ।

५. रा० चं०, प्र० १०, छं० ३६ ।

दुराग्रह ही कहा जायगा। यह कोरी धमकी ही नहीं रहती, वरन् वे सचमुच ही गंगा के तीर जाकर शरीर-त्याग का निश्चय कर बैठते हैं।[1] इस अवसर पर वाल्मीकि के भरत भी अनशन-व्रत धारण कर राम की कुटी के द्वार पर सत्याग्रह कर बैठते हैं। तुलसी के भरत चित्रकूट में राम के अयोध्या वापिस चलने के सम्बन्ध में सब कुछ कहने के उपरान्त भी अन्त में यही कहते हैं कि—

अब कृपालु जस आयसु होई। करौं सीस धरि सादर सोई ॥[2]

राज्याभिषेक के उपरान्त लोकापवाद के भय से जब राम सीता के परित्याग का निश्चय कर भरत से सीता को बन में छोड़ जाने के लिए कहते हैं तो वे उनका अत्यन्त कड़े शब्दों में डटकर विरोध करते हुए यहाँ तक कह डालते हैं—

प्रिय पावनि प्रियवादिनी पतिव्रता अतिशुद्ध।
जग की गुरु अरु गुर्विणी छाँड़त वेदविरुद्ध ॥
या माता बैसे पिता तुम सो भैया पाय।
भरत भयो अपवाद को भाजन भूतल आय ॥

(रा० चं०, प्र० ३३, छं० ३४,३५)

आगे चलकर लवकुश द्वारा दलबल सहित लक्ष्मण के पराजित होने का संवाद पाने पर केशव के भरत राम से कहते हैं—

पातक कौन तजी तुम सीता। पावन होत सुने जग गीता ॥
दोषविहीनहिं दोष लगावै। सो प्रभु ये फल काहे न पावै ॥

(रा० चं०, प्र० ३६, छं० ३२)

और अन्त में राम के कुकृत्य की घोर निन्दा करते हुए निश्चय करते हैं—

हौं तहि तीरथ जाय मरौंगो। संगति दोष अशेष हरौंगो ॥

(रा० चं०, प्र० ३६ छं०, ३३)

वाल्मीकि और तुलसी दोनों ही ने इस प्रसंग को छोड़ दिया है।

सीता—वाल्मीकि और तुलसीदास की सीताओं में यद्यपि मानवी और दैवी का अन्तर है, किन्तु केशव की सीता तो पाठक के मन में विशेष ऊँचा स्थान नहीं बना पाती। जहाँ तुलसी की बनगमन के समय की राम-सीता की बातचीत बड़ी ही मार्मिक एवं मर्मस्पर्शी है वहाँ केशव तुलसी का शतांश भी भावविभोर करने वाली भावना व्यक्त करने में समर्थ नहीं हो सके हैं।

वन में जाती हुई तुलसी की आराध्य देवी सीता अपने प्रभु रामचन्द्र जी के पदचिह्नों को बचाती हुई चलती है।[3] परन्तु केशव की सीता, सूर्य के ताप से तप्त

---

१. रा० चं०, प्र० १०, छं० १८।

२. रा० च० मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० २९८ की चौपाई, पृ० ४७४।

३. प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता।
—रा० च० मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० १२२ के बाद की चौपाई।

धूल के कष्ट से बचने के लिए राम के पदचिह्नों पर ही पाँव रखती हुई चलती है[1]। एक अद्वितीय पति-भक्ति का उदाहरण है तो दूसरा शरीर-सुख लालसा और स्वार्थ-परता का। यह वही सीता है जिन्होंने बन-प्रयाण के समय राम से कहा था कि—

न हौं रहौं न जांहु जू विदेह-धाम को अबै।
कहो जू बात मातु पै सु आजु मैं सुनी सबै॥
लगै क्षुधाहि मां भली विपत्ति मांझ नारिये।
पियास-त्रास नीर वीर युद्ध में संभारिये॥[2]

और जिन्होंने लक्ष्मण से भी यही आग्रह किया था—

वायु को बहन दिन दावा को दहन,
बड़ी बाड़वा अनल ज्वालजाल में रह्यो परै।
सहिहौं तपन ताप पर के प्रताप,
रघुबीर को विरह बीर! मो सों न सह्यो परै॥[3]

केशव मौलिकता के आवेश में पहले सीता से ऐसी वीरोक्ति करवा तो गए हैं परन्तु पीछे उनकी कोमलता दिखाने के लोभ में उसका निर्वाह करवाना भूल गए हैं। तुलसी की सीता बन में पति की अनेक प्रकार से सेवा-शुश्रूषा करने के लिए गई थीं।[4] यदि चाहते तो तुलसी इस सेवा-शुश्रूषा के दर्शन भी करवा सकते थे। परन्तु उन्होंने उन स्थलों पर जाना उचित ही नहीं समझा है जहां माता सीता भगवान् की सेवा कर रही हैं। किन्तु केशव में ऐसी मर्यादा नहीं दिखाई देती।

केशव की सीता तो बन-मार्ग में चलने के कारण थकने पर किसी शीतल स्थान में बैठकर राम से पंखा झलवाती हैं और बीच-बीच में बाँकी चितवन से राम की ओर निहार कर ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझती हैं।[5] वाल्मीकि की

---

१. मारग की रज तापित है अति। केशव सीतहि सीतल लागति॥
प्यो पद पंकज ऊपर पायनि। दै जु चले तेहि ते सुखदायनि॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० ३८।

२. रा० चं०, प्र० ६, छं० २४।

३. वही, वही, छं० २६।

४. सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारगजनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाँव पसारि बैठि तरु छाहीं। करिहौं बात मुदित मन माहीं॥
श्रमकण सहित स्याम तनु देखें। कहं दुख समउ प्राणपति पेखें॥
सम महि तृण तरुपल्लव डासी। पाइ पलोटिहि सब निशि दासी॥
—रा० च० मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० ६८ के बाद की चौपाइयाँ।

५. कहुँ बाग तड़ाग तरंगिनि तीर तमाल की छांह बिलोकि भली।
घटिका यह बैठत हैं सुख पाय बिछाय तहाँ कुस कांस थली॥
मग को श्रम श्रीपति दूर करैं सिय को शुभ वाकल अंचल सों।
श्रम तेऊ हरैं तिनको कहि केशव चंचल चारु दृगंचल सों॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० ४४।

सीता, राम के मृगया से परिश्रान्त होने पर स्वयं उनको पंखा झलकर उनका श्रम दूर करती हैं।

केशव की सीता वीणा-वादन द्वारा ही बन में अपने पति को रिझाती है और उनके मन की खिन्नता दूर करती है।[1] वाल्मीकि और तुलसी के राम परमानन्द-स्वरूप हैं, इसलिए उनकी सीता को राम को रिझाने की आवश्यकता नहीं होती।

कौशल्या—केशव की कौशल्या के चरित्र का भी कुछ पतन हो गया है। राम के बन-गमन का समाचार सुनकर कौशल्या राम से जो कहती हैं उसमें उनका सौतिया-डाह और दशरथ के प्रति अशिष्ट क्रोध ही प्रतिध्वनित होता है।[2] मर्यादावादी तुलसी ऐसे शिष्टताहीन एवं असंस्कृत कथन की कल्पना भी न कर सकते थे। साथ ही वे राम से अनुरोध करती हैं कि वह उन्हें अपने साथ बन ले चलें; फिर अयोध्या में चाहे भरत राज्य करे अथवा बिजली पड़े, उन्हें कोई मतलब नहीं।[3] कौशल्या की इस उक्ति से विदित होता है कि उनका राम से इतर किसी अन्य से जैसे कोई सम्बन्ध ही नहीं है। इसके विपरीत तुलसी की कौशल्या बड़ी गम्भीरता, बड़ी दूरदर्शिता तथा असीम आत्मत्याग से राम को बन-प्रयाण की आज्ञा और आशीर्वाद देते हुए कहती हैं।[4] वाल्मीकि की कौशल्या पहले तो तर्क से राम को बन जाने से रोकने का प्रयास करती हैं और फिर अपने को भी साथ ले चलने का अनुरोध करती हैं। किन्तु अन्त में राम के समझाने-बुझाने पर असीम धैर्य के साथ राम के बन-प्रयाण का समर्थन करते हुए अवरुद्ध कण्ठ से आशीर्वाद प्रदान करती हैं।

दशरथ और कैकेयी—केशव के दशरथ और कैकेयी के चरित्र तो तनिक भी प्रस्फुटित नहीं हुए हैं। राजा दशरथ से वरदान माँग लेने पर कैकेयी के हृदय में होने वाली किसी प्रकार की प्रतिक्रिया का वर्णन नहीं किया गया है, जिससे कि उसके चारित्रिक गुणों पर प्रकाश पड़ता। इसी प्रकार दशरथ के भी हृदय पर होने वाली प्रतिक्रिया का कोई उल्लेख नहीं किया गया है। सारे प्रसंग को दो-चार पंक्तियों में ही चलता भर कर दिया गया है। इस अवसर पर तुलसी ने दशरथ और कैकेयी दोनों के चरित्रों के उज्ज्वल एवं मलिन पक्षों का बहुत ही सूक्ष्म चित्रण किया है।

---

१. रा० चं०, प्र० ११, छं० २७।

२. रहो चुप ह्वै सुत क्यों बन जाहु। न देखि सकें तिनके उर दाहु।
लगी अब बाप तुम्हारेहि वाय। करैं उलटी विधि क्यों कहि जाय॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० ८।

३. रा० चं०, प्र० ६, छं० १०।

४. जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन शत अवध समाना।
पितु बनदेव मातु बनदेवी। खगमृग चरण सरोरुह सेवी॥
— — —
जो सुत कहौं संग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ संदेहू॥
पुत्र परमप्रिय तुम सब ही के। प्राण-प्राण के जीवन जी के॥

(क्रमशः)

उपर्युक्त विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'रामचन्द्रिका' में केशव के प्रबन्ध-सौष्ठव का आभास नाममात्र का ही है। प्रबन्ध-काव्य में अपेक्षित गुणों का केशव पूर्णतया निर्वाह नहीं कर सके हैं।

(ख) वीरसिंहदेव-चरित—केशव के प्रबन्ध-सौष्ठव के विषय में जो इतना कुछ कहा जाता है, वह सारा कुछ 'रामचन्द्रिका' को ही दृष्टि में रखकर कहा जाता है और वह भी 'रामचरितमानस' जैसे प्रभूत ग्रन्थ को सामने रख कर। यदि उनकी कृतियों पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जाय तो केशव उतने नीरस एवं हृदयहीन दिखाई न पड़ें जितना कि हिन्दी-जगत् उन्हें आज भी देखता है। 'वीरसिंहदेव-चरित' के अध्ययन से उनका प्रबन्ध-सौष्ठव स्वयं ही स्पष्ट हो जाता है और साथ ही यह भी भली भाँति विदित हो जाता है कि वे किस योग्यता के साथ इतिवृत्त को काव्य में ढाल सकते थे। प्रबन्ध-काव्य में अपेक्षित सभी गुणों का निर्वाह यहाँ यथास्थान हुआ है।

कथावस्तु—'वीरसिंहदेव-चरित' की कथा, जो ३३ 'प्रकाशों' में समाप्त होती है, सुबद्ध एवं सुगठित है और कथा के बीच-बीच में वस्तु-वर्णन भी बहुत ही उपयुक्त बन पड़ा है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। केशव ने इस प्रबन्ध की रचना में अपनी सारी प्रतिभा जुटा दी है। वे स्वयं लिखते हैं—

नवरसमय सब धर्ममय राजनीतिमय मान।
वीर चरित्र विचित्र किय केशवदास प्रमान॥[1]

यह प्रबन्ध लिखा भी गया है विचित्र ढंग से ही। जिस प्रकार 'रासो' की कथा भृग और भृगी के संवाद से चलती है उसी प्रकार 'वीरसिंहदेव-चरित' की कथा का आरम्भ भी लोभ और दान के संवाद ही से होता है। एक बार पुण्यसलिला नर्मदा के तीर पर सुर, असुर और मनुष्य सभी एकत्रित होते हैं। प्रत्येक वहाँ विविध प्रकार के यज्ञ, होम, तुला-दान आदि धार्मिक कृत्यों में लीन है। इस प्रकार दान की महिमा को देखकर लोभ के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है और वह दान से कहता है—

दान बिगार्‌यो तैं संसार। भूलि गयो तोकों करतार।
विद्यमान जो देखत मोहि। कहा करौं जग पूजत तोहि॥[2]

फिर तो क्या था, लोभ और दान में कहा-सुनी हो जाती है और दोनों ही एक-दूसरे पर व्यंग्य करते हुए प्रतिपक्षी की हीनता और अपनी महत्ता दिखलाने में लग जाते हैं। लोभ कहता है कि धन ही सर्वोपरि एवं सर्वस्व है; धन ही से सम्मान है;

तै तुम कहहु मातु बन जाऊँ। मैं सुनि वचन बैठि पछिताऊँ॥
देव पितर सब तुमहि गुसाईं। राखेहु पलकनयन की नाईं॥
जाहु सुखेन बनहिं बलि जाऊँ। करि अनाथजन परिजन गाऊँ॥
—रा० च० मा०, अयोध्याकाण्ड, दो० ५७ के बाद की चौपाइयाँ, पृ० २५२।

१. वी० दे० च०, छं० ६, पृष्ठ २।
२. वही, छं० १६, पृष्ठ ३।

धन ही से धर्म है और धन होने पर ही दान दिया जा सकता है। अतः वह सब प्रकार से रक्षणीय है। प्रतिदिन दान देने से तो जीवन ही नष्ट हो जाता है (वी० दे० च०, पृ० १०-११)। दान उत्तर में कहता है कि "दान देने से कौन मरा है और कौन सा लोभी अजर-अमर हो गया है? वरन् धन के न देने से हंसी होती है; चोर द्वारा अपहृत हो जाने पर संताप होता है और यदि कहीं भूमि में छुपाकर रख दिया जाये तो मरणोपरान्त राजा के अधिकार में चला जाता है (वी० दे० च०, पृ० ११)।' दान को इतने से ही सन्तोष नहीं होता। वह तो फटकारते हुए यहाँ तक कह डालता है कि लंकापति रावण और टोडरमल का भी सर्वनाश धन ही के कारण हुआ। लोभ भी रह न सका और कड़ी डाँट बताता है (वी० दे० च०, पृ० ११-१२)। जब विन्ध्यवासिनी देवी लोभ और दान के विवाद को सुनती हैं तो वे उन दोनों को उस नगर में जाने का आदेश देती हैं जिसमें राम का वंशज वीरसिंहदेव रहता है। इतना सुनते ही लोभ देवी से रामशाह और वीरसिंह दोनों भाइयों के विरोध की बात पूछता है। इस पर देवी दोनों को सावधान होकर विरोध की बात सुनने के लिए कहती है। देवी के सविस्तार विरोध की बात कहने पर दान आगे की कथा जानने के लिए उत्सुक हो उठता है और सविनय निवेदन करता है। देवी सारा वृतान्त कह सुनाती है कि किस प्रकार वीरसिंह राजा रामशाह और राजसिंह दोनों की एकत्रित सेना के दाँत खट्टे कर देता है और राजसिंह को परास्त हो गोपाचल भागकर अपने प्राण बचाने पड़ते हैं। वीरसिंह की यह जय-गाथा जब लोभ सुनता है तो उसकी भी जिज्ञासा जगती है और आगे का सब वृत्तान्त पूछता है। देवी संपूर्ण वृत्त सुना देती है और यह भी बता देती है कि राजा रामशाह के जीवित रहते किस प्रकार शेख अबुलफ़ज़ल का बध कर शाह सलीम वीरसिंह को समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य दे देता है।[1] दान की उत्सुकता और आगे जानने की होती है। देवी सारा वृत्तान्त सुना देती है कि किस प्रकार शेख अबुलफ़ज़ल के बध से दुखित होकर बादशाह अकबर वीरसिंह पर रुष्ट हो जाता है और उसको पकड़ने के लिए वीर सामन्तों को भेजता है। वीरसिंह जब उनके घेरे से साफ़ बच निकलता है, तब त्रिपुर तो खीझ कर "कछौआ" होता हुआ आगरे चला जाता है और बादशाह अकबर क्रोध में आकर रायरायान (पित्रदास) को बुला भेजते हैं। इन्द्रजीत भी दरबार में पहुँच जाता है। कथा की रोचकता और भी बढ़ती है। निदान दान देवी से शाह और शाहजादे की वार्त्ता के विषय में पूछता है। देवी बादशाह अकबर और शाहजादे सलीम के पारस्परिक विरोध को दिखाते हुए यह बताती है कि किस प्रकार अकबर अपनी कूटनीति और छल से इन्द्रजीतसिंह को बुन्देलखण्ड के राज्य का लोभ दिखाकर बुन्देलों को कुचलना चाहता है। साथ ही शाह की चेला-नीति का वर्णन करती है और वीरसिंह के बल-विक्रम का भी ब्योरा देती है। दान फिर प्रश्न करता है—

१. दे सिर छत्र छबीलो साथ अलक तिलक दै दीनो राज ॥

—वी० दे० च०, पृष्ठ ४१।

कह्यो देवि कित गयो अमीत। साहि कियौ जु विक्रमाजीत[1] ॥

देवी त्रिपुर के साहस का उल्लेख करती है और बताती है कि किस प्रकार वह ससैन्य दतिया होता हुआ ओड़छा की ओर चल पड़ता और ओड़छा से आध कोस की दूरी पर पहुँचकर पड़ाव डाल देता है। आक्रमण के विषय में जब आपस में ही मतभेद चलता है और राजसिंह किसी की नहीं सुनते तो त्रिपुर उठकर डेरे में चले जाते हैं। फलतः युद्ध ठन जाता है और वीरसिंह की विजय होती है। राजसिंह बन्दी होता है पर बाद में वीरसिंह उसे स्वतन्त्र कर देता है। फिर तो वीरसिंह का आतंक सभी सामन्तों पर छा जाता है। लोभ को यह जानने की लालसा होती है कि राजसिंह मारू की पराजय का समाचार सुनकर बादशाह अकबर ने क्या किया। अतः देवी से पूछता है—

राजसिंह मारू की हारि। कहा कर्‌यो सुनि साहि विचारि ॥
सो तुम कहौ जगतबंदिनी, जिसके जस की चिरचन्द्रिनी ॥[2]

देवी अकबर के परिताप का वर्णन करती है और बताती है कि वह किस प्रकार अपने उमरावों को—

कै तुम गहियो हज को राहु। कै उनकी बसहिनि परजाहु ॥[3]

की कड़ी फटकार बताकर उन्हें वीरसिंह को काबू करने के लिए 'बसही' भेजता है। वीरसिंह को जब यह समाचार ज्ञात होता है तो वह भी 'बसही' में आ रहता है। किन्तु इसी बीच में अकबर का शरीरान्त हो जाता है और सलीम राजसिंहासनारूढ़ होता है। देवी जब आदि से लेकर सारी कथा कह चुकती है तो दोनों (लोभ और दान) को वीरसिंह के पास चले जाने के लिए कहती है पर उन्हें तो कथा के सुनने में बड़ा आनन्द आ रहा है। फलतः देवी से दान प्रश्न करता है कि मुझे यह बताओ कि बादशाह बनने पर शाह सलीम ने वीरसिंह के लिए क्या-क्या किया। देवी प्रेमपूर्वक बताती है कि किस प्रकार जहाँगीर अपने हाथ से लिखे हुए फरमान द्वारा वीरसिंह को बुलवाता है। जब वीरसिंह रामशाह से मिलकर इन्द्रजीत को साथ ले जहाँगीर से मिलने आगरा पहुँचता है तो उसका बहुत आदर-सत्कार होता है और दरबार में उसे सब से ऊँचा स्थान मिलता है। विदा होते समय जहाँगीर कहता है कि जैसे मैं शाह-शिरोमणि हूँ वैसे ही तुम भी राय-शिरोमणि हो।[4] निदान वीरसिंह को समस्त बुन्देलखण्ड का राज्य मिल जाता है।[5] इसके अतिरिक्त और भी परगने इसे मिल जाते हैं। उधर रामशाह को चिन्ता होती है। उनका पारस्परिक

१. वी० दे० च०, पृ० ५५।
२. वही, पृ० ६१।
३. वही, पृ० ६२।
४. हौं जु भयौ साहिनि सिरताज। तुही होइ राइनि को राज ॥
—वी० दे० च०, पृ० ६५।
५. सकल बुन्देलखण्ड है जितो। तुम कौं मैं दीनो है तितौं ॥
—वी०दे० च०, पृ० ६५।

वैमनस्य फिर बढ़ जाता है। सम्राट् से विदा होकर वीरसिंह तो 'एरछ' आ रहता है पर भारतसाह आकर संपूर्ण वृत्तान्त रामशाह को कह देता है। रामशाह अपने दरबारियों से मंत्रणा करता है और अन्त में उदयन मिश्र की सलाह से मन-मुटाव दूर करने के लिए वीरसिंह के पास 'एरछ' जाने का निश्चय करता है। वीरसिंह बड़े प्रेम से रामशाह से मिलता है और जहाँगीर ने जितने परगने उसे दिये थे उन सब के पट्टे सादर रामशाह के सामने रख देता है।[1] जब रामशाह बटवारा करने लगता है तो बातों ही बातों में अन्तर पड़ जाता है। वीरसिंह के बहुत अनुनय-विनय करने पर भी रामशाह एक नहीं सुनता और वापिस पटहारी चला जाता है। इस प्रकार दोनों भाइयों में विरोध बढ़ता ही जाता है। वीरसिंह एक-एक करके, पिपरहा, लचूरा, गढ़ कुण्डार आदि पर अधिकार जमा लेता है। रामशाह भी उधर पटहारी से बनिगवाँ चला जाता है। वीरसिंह पटहारी को अपने अधीन कर बरेठी पर अपना पड़ाव डाल लेता है। इतना सुनते ही दान देवी से फिर पूछता है कि राजाराम के मित्र किस प्रकार उससे उदासीन हो वीरसिंह से जा मिलते हैं। देवी सारा कुछ कह देती है कि किस प्रकार रामशाह के साथी दुर्गादास, खान जहान, सैयद समद, भगवान् पंवार आदि उससे विमुख हो वीरसिंह से जा मिलते हैं और रावप्रताप एक ओर हो जाते हैं और रामशाह और इन्द्रजीत दूसरी ओर। पहले तो गोपाल खवास सन्धि की बातचीत करता है, पर फिर स्थिति के गम्भीर हो जाने से मंगद, पायक, प्रेमा और केशव मिश्र (स्वयं कवि) को दूत के रूप में समझौते के निमित्त वीरसिंह के पास बरेठी भेजा जाता है। केशव मिश्र समझा-बुझा कर सन्धि का यह मार्ग निकालता है कि जीते जी रामशाह शासन करते रहें और उनकी मृत्यु हो जाने पर वीरसिंह शासक बने। यह सुझाव रानी कल्यानदे को नहीं भाता। फलतः आपस में ठन जाती है और शपथ भंग हो जाती है। समझौते की बातचीत के भंग होते ही वर्षा का आगमन होता है। फिर शरद् ऋतु आती है। देवी प्रकृति के छवि-वर्णन में मग्न दिखाई पड़ती है। वह बताती है कि सुखद शरद् के आते ही इधर वीरसिंह बेतवा नदी को पार कर वीरगढ़ पर अपना शासन जमाता है और इधर कल्यानदे रानी की मंत्रणा से इन्द्रजीत और रावभूपाल भी रामशाह की ओर हो जाते हैं। केशव मिश्र के समझाने पर भी इन्द्रजीत और रावभूपाल के एक नहीं लगती। रानी को भी केशव की शिक्षा अच्छी नहीं लगती। यहाँ तक कि वह केशव को वहाँ से चले जाने की आज्ञा देती है। इसका परिणाम यह होता है कि युद्ध छिड़ जाता है।

इतना सुनते ही दान देवी से वीरसिंह के चमूपतियों-जादोराय, कृपाराम, दामोदर और मुकुट गौर के पुत्र वसन्त के चमू-विभाजन के विषय में पूछता है। देवी चमू-विभाजन का बखान करती है और चमूपतियों के बल-विक्रम एवं साहस का वर्णन करती है। साथ ही सेना-प्रयाण के कारण पृथ्वी के कम्पन, गगन के धूलि

---

१. जितने साहि परिगनें दिये। तिनके पटे आपु करि लिये॥
वीरसिंह अति आदर भरे। रामदेव के आगें धरे॥

—वी० दे० च०, पृ० ६७।

से व्याप्त होने, वृक्ष और चट्टानों के तड़कने आदि का भी ब्योरा देती है। अन्त में वह संग्राम में इन्द्रजीत के अचेत होने और रावभूपाल के सहसा टूट पड़ने तथा वीरसिंह की रणभेरी के बजने का उल्लेख करती है। घायल इन्द्रजीत को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर जब रावभूपाल अकेले ही युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाते हैं तो घोर संग्राम होता है, जिसके परिणाम-स्वरूप सारी मुग़ल-सेना भाग खड़ी होती है। कुमार की वीरता से राजाराम अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। इसी बीच वीरसिंह के रण में प्रलय के सदृश टूट पड़ने पर शत्रु-दल में भगदड़ मच जाती है। जब वीरसिंह देखता है कि आपस के संहार में कुल का विनाश है तो रण बन्द कर देता है। किन्तु उनके जाने मात्र से अब्दुल्ला खाँ को नया बल प्राप्त हो जाता है और वह कुमार को घेर लेता है। पर जब उसका कुमार पर कोई वश नहीं चलता तो वीरसिंह को एक नीति सूझती है और आदमगीर के द्वारा सन्धि की बातचीत चलती है। आदमगीर को सफलता मिलती है। रामशाह शपथ पर विश्वास कर अब्दुल्ला खाँ से मिलने जाते हैं तो अब्दुल्ला खाँ उसे बन्दी कर लेता है और उसे साथ ले जाकर सम्राट् के सम्मुख उपस्थित कर देता है। वीरसिंह समस्त ओड़छा-राज्य का स्वामी बन जाता है और अपने राज्य के विभिन्न प्रदेशों का अधिकार अपने भाइयों में बाँट कर स्वयं रामशाह को छुड़ा लाने के लिए जहाँगीर के पास चल पड़ता है। जहाँगीर के फरमान से वीरसिंह ओड़छे का राजा घोषित होता है और फिर वह ओड़छा का पुनर्निर्माण कर उसका नाम जहाँगीरपुर रख देता है। देवी भी अन्त में दान और लोभ से कहती है—

दान लोभ तुम सब सुन्यो दुहू नृपति को भेव।
वीरसिंह अति देखि जे नर देवनि को देव॥

(वी० दे० च०, पृ० ६६)

देवी के वचन सुन दान कुछ कहना ही चाहता था कि एकदम देवी अन्तर्द्धान हो जाती है और दोनों (दान और लोभ) जहाँगीरपुर को चल पड़ते हैं।

वस्तु वर्णन—देवी के अन्तर्द्धान होने के अनन्तर कथा वस्तु में घटना के स्थान पर वस्तु को प्राधान्य मिल जाता है। केशव एक-एक वस्तु के वर्णन में लीन दिखाई पड़ते हैं। उनका वस्तु-वर्णन अत्यन्त ही सुन्दर एवं उपयुक्त है। दान और लोभ जहाँगीरपुर की ओर चल पड़े हैं। मार्ग में बहुत से पुर, पट्टन और ग्राम पड़ते हैं। परन्तु केशव का ध्यान उन पर न जाकर पहले वीरसागर पर ही जाता है और वे उसकी शोभा का बहुत ही विशद तथा सजीव वर्णन करते हुए लिखते हैं—

अति अनंद भूतल जल खण्ड। अद्भुत अमल अगाध अखण्ड॥
फूले फलन को आवास। मानो सहित नक्षत्र प्रकास॥
अति सीतलता कैसो देस। ग्रीषम रितु पावत न प्रवेस॥
तुम सुगंध ताके सौ ओक। मानहु सुन्दरता को लोक॥

(वी० दे० च०, पृ० ६६)

तथा : पाँचों रितु मानहु सर बसें। तिगरे ग्रीषम रितु को हंसें॥

(वी० दे० च०, पृ० १००)

ऐसे अद्भुत सागर के सौन्दर्य का वर्णन करके फिर बेतवा नदी की छटा में मग्न दिखाई देते हैं। उनकी दृष्टि में बेतवा कलिगंगा है[1], एवं तुंगारण्य का तिलक और असीम शोभा का भण्डार है।[2] नगर में पहुँचते हैं तो उसकी शोभा का भी वर्णन जी खोलकर करते हैं। नगर के बाजारों, दरबार, और रंगमहल का ठाटबाट देखने के पश्चात् हयशाला देखने जाते हैं (प्र० १६ और १७)। यहाँ लोभ का मुँह खुलता है और दान से अश्वों की जाति, आयु और लक्षण बताने को कहता है (वी० दे० च०, छं० ४२, पृ० ११०)। दान लोभ को पूरी जानकारी करा देता है। नगर-निवासियों के साथ ही नगर में रामराज्य का सुख देखने में आता है। इसी अवसर पर दान और लोभ देखते हैं कि महाराज वीरसिंहदेव अपनी मण्डली के साथ चौगान के लिए निकल पड़े हैं। चौगान खेलकर महाराज 'राजलोक' में पधारते हैं। वहाँ का विलास सामने आता है। पद्मिनी, चित्रिणी और हस्तिनी आदि नारियों के रागरंग का दर्शन होता है। रंगमहल की अपूर्व सज्जा भी देखने में आती है। पार्वती रानी के मन्दिर की सजावट भी अनुपम और दर्शनीय है। यहाँ महाराज मंत्रियों के साथ बैठे हैं। राजकुमार भी आ गए हैं। बन्दीजन विरुदावलि गाने लगते हैं। सारा अन्तःपुर जाग जाता है; शुक-सारिका के शब्द से महाराज भी जाग उठते हैं। सभी नारायण का स्मरण कर महाराज के दर्शन को निकल पड़ते हैं। सुन्दरियाँ भी महाराज के चरण छूती हैं। महाराज भी उनकी सहायता से नित्यकर्म में लीन हो जाते हैं। प्रातःकृत्य से निपटकर सिंहासन पर बैठते हैं तो ज्योतिषी, चिकित्सक आदि आकर आशीर्वाद देते हैं और अपना निर्णय सुनाते हैं। पुरोहित, कवि, सेनापति, मंत्री, मित्र सभी वहाँ आ जाते हैं। फिर तो महाराजा की पूरी दिनचर्या ही सामने आ जाती है और अन्त में वनिताओं के नखशिख के भी दर्शन होते हैं। फिर बनवाटिका में पहुँचते हैं। वहाँ के क्रीड़ागिरि और नदियों का सौन्दर्य निहारते हैं और फिर जलकेलि का रसास्वादन करते हैं। इसके उपरान्त जो 'मदनमहोत्सव' होता है वह अपूर्व है। केशव की सूझ निःसंदेह प्रशंसनीय है। मदनमहोत्सव के समाप्त होने पर महाराज फिर 'राजलोक' में पहुँचते हैं। दान और लोभ एक दिन तीसरे पहर, देश, पुर आदि देखते हुए राजदरबार में पहुँचते हैं। राजदरबार का सारा वैभव तथा व्यवहार देखकर वहीं मूर्त्त रूप में विराजमान हो जाते हैं।[3] उन्हें देखकर

---

१. कलिगंगा कीनी करतार—वी० दे० च०, पृ० १०२।

२. सोभति सोभा जाके छियें। तुंगारन्य तिलक सो दियें॥

—वी० दे० च०, पृ० १०२।

३. दान लोभ देखे नृपति देखी सभा उदार।
मूरति धरि ठाढ़े भये जाय राजदरबार॥

—वी० दे० च०, छं० २६, पृ० १५४।

द्वारपाल महाराज को सूचना देता है कि अद्भुत कान्ति से सम्पन्न दो ब्राह्मण दरबार में खड़े हैं। इतना सुनते ही महाराज बड़े आदर-सत्कार के साथ उनका स्वागत करते हैं और उन्हें सिंहासन पर बिठा विनति करते हैं। महाराज की विनति पर प्रसन्न हो उनका विरुदगान करते हैं और फिर अपना रूप धारण कर आद्योपान्त समस्त वृत्तान्त कह सुनाते हैं कि किस प्रकार देवी विन्ध्य-वासिनी के आदेश से हम अपने विवाद का निर्णय कराने के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुए हैं। वीरसिंह दान का रूप निर्धारित करते हुए दोनों को समान ठहराते हैं और दोनों का आपस का विवाद दूर करते हैं।[1] फिर जब वीरसिंह से मन की बात पूछी जाती है तो वे अपनी सारी राम-कहानी सुनाते हैं कि किस प्रकार रामशाह, रानी कल्याणदे, रावभूपाल आदि अपने कुटुम्बियों के हित की बात करते-करते भी वे सब उनके विरुद्ध हो जाते हैं। दान जब यह देखता है कि महाराज के मन में बड़ा क्षोभ है तो वह उन्हें राजनीति का उपदेश देता है। साथ ही राज्यश्री की निन्दा करते हुए उससे सचेत रहने की शिक्षा देता है। दान को अपने पर इस प्रकार दयालु देखकर महाराज राजधर्म के विषय में जानने के लिए सविनय अनुरोध करते हैं। फिर तो दान राजधर्म और राजकर्म का सविस्तर बखान करते हैं और प्रसन्न हो वीरसिंह से अपने मन का मनोरथ माँगने को कहते हैं। महाराज झट प्रार्थना करते हैं कि—

विधि सों हमको दीजै राज। हम पर कृपा भई जो आज ॥[2]

इतना सुनते ही दान की अनुभूति से तुरन्त राज्याभिषेक की सामग्री तैयार हो जाती है और स्वयं दान भी परिवार-सहित आ पहुँचता है। महाराज सब अतिथियों का यथोचित आदर-सत्कार करते हैं। विजय, उत्साह, वैराग्य, जप, धैर्य, आनन्द, भाग्य, पराक्रम और प्रेम एक-एक करके उनको आशीर्वाद देते हैं। आशीर्वाद के उपरान्त सारिका शुक से पूछती है कि जिस वीरसिंह की शुभ कामना के लिए यह सब कुछ हो रहा है वह वास्तव में हैं क्या ?[3] शुक प्रसन्न हो कहता है कि मेरे विचार में तो वीरसिंह पृथ्वी पर नारायण की कला है।[4] शुकसारिका की इस सुन्दर बात-चीत को सुनकर सारा धर्म-परिवार अत्यन्त हर्षित हो उठता है।

---

१. सन्तति सदा समान तुम देहु लेहु हरि देत जग।
तुम दान लोभ दोऊ जनै देव-देव लागे सुभग ॥
—वी० दे० च०, पृ० १५८।

२. वी० दे० च०, पृ० १७६।

३. कहियौ सोभन शुक अवदात। वीरसिंह की मोसों बात ॥
बाढ़यौ मेरे चित विचार। वीरसिंह काको अवतार ॥
—वी० दे० च०, पृ० १८३।

४. धर्मपरिवार सब जाको देन आयो राज,
वीरसिंह नरपुर कला नारायण की।
—वी० दे० च०, पृ० १८४।

इसी समय जीर्ण वस्त्र धारण किए हुए एक निर्धन ब्राह्मण राजसभा में आता है और वह महाराज की स्तुति में दो कवित्त सुनाता है। महाराज प्रसन्न हो मंत्री कृपाराम की ओर प्रेम से निहारते हैं। मंत्री झट ब्राह्मण से आने का कारण पूछता है। आशय का पता लग जाने पर कृपाराम उचित दान-मान से उसका आदर-सत्कार करता है। क्रम से शुक और सारिका फिर इस अवसर पर वीरसिंह का विरुदगान करते हैं। इतने में ही गणक आकर बताते हैं कि राज्याभिषेक की घड़ी आ गई है। रानी पार्वती सहित राजा का अभिषेक होता है। सबको यथोचित सम्मान प्राप्त होता है। द्विजराज छीतरमिश्र, मानसिंह, भगवन्त, जुझारराय, हरधौर, पहाड़ खाँ, बाघराज, भगवानदास, नरहरिदास, कृष्णदास, माधोदास, वेनीदास, तुलसीदास, बसन्तराय, खाण्डेराय, कृपाराम, कन्हरदास, साहिबराय, नारायणदास आदि के पहिरावन के बाद सदाचार, सत्य, ज्ञान, लोभ, पराक्रम, आनन्द, उद्यम, विजय, प्रेम, भोग, दान, उदय, विवेक और भाग क्रम से मंगलगान करते हैं। फिर एक-एक करके कन्हरदास, छीतर मिश्र, साहिबराय, उदैमनि मिश्र और धर्म आशीर्वाद देते हैं। सब का आशीर्वाद लेकर और सब को सुख प्रदान कर महाराज सिंहासन से उतरते हैं और धर्म के चरण पकड़ कर उस से तीन वर माँग लेते हैं[1]। धर्म वरदान देकर अन्तर्धान हो जाता है। इस प्रकार केशव का यह प्रबन्ध समाप्त होता है।

प्रकृति वर्णन—इसमें सन्देह नहीं कि 'रामचन्द्रिका' में केशव का प्रकृति-वर्णन परम्परामुक्त और अप्रस्तुतयोजना के भार से आक्रान्त है, किन्तु 'वीरसिंहदेव-चरित' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ कवि ने बिम्बग्रहण कराने का सफल प्रयास किया है। ऐसे वर्णन इस बात का प्रमाण हैं कि केशव प्रकृति के पारखी थे और उसे हृदय की आँख से देख भी सकते थे। 'रामचन्द्रिका' के जिस बन-वर्णन को लेकर केशव की बड़ी भर्त्सना हुई है उसी बन का रूप 'वीरसिंहदेवचरित' में और ही कुछ करके दिखाया गया है। तनिक ध्यान से देखिए कि कल्पना के सहारे उसका यहाँ कैसा बिम्बग्राहक एवं सजीव चित्र उपस्थित किया गया है—

बोलत मोर बारहो बार। गुदरत है मानो प्रतिहार॥
बोलत कल कोकिला सुदेस। उपमा दीनी ताहि नरेस॥
जनु बसन्त की सजनि सुबेस। मनो हरखि मन मदन प्रवेस।
देखे सकल तरुनि तरु जाइ। सम साखा मूलनि सुखदाइ॥
आलबाल अवली जल भरी। मनौ मनोहर हर जरभरी।
फूले फूल द्रुमन तें झरें। आनन्द आँसू भरि जनु ढरें।
मधुबन देख देखि जति अंक। रितु जुवतिन के जनु ताटंक।

— — — —

1. वीरचरित सन्तत सुनत दुख कौ बंस नसाय।
मौ उर बसहु बढ़ाय जौ जहाँगीर कौ आय॥
—वी० दे० च०, छं० ५२, पृ० १६५।

बिन पातन फूले पलास। सोभत स्यामल अरुन प्रकास ।।
बर वसन्त की बेहरि लगै। मनहु काम कबेला जगमगै ।।

(वी० दे० च०, पृ० १३६-१३७)

— — — —

नाचत नीलकण्ठ रस घूमि। मनो उमा की क्रीड़ा भूमि ।।
सोभै रम्भा सोभा सनी। किधौं सची की आनन्द कनी ।।
मनो मलय की चन्दन-बनी। लोपामुद्रा की तप तनी ।।
मद बसन्त छः रितु की पुरी। मनो बसति वसुधा में करी ।।
बिच बिच ललित लता आगार। केरिनि की परवा प्रति बार ।।
खारि कदार्यौ दास खजूरि। नारिकेलि पुंगीफल भूरि ।।
एला लपटी ललित लवंग। नागबेलि बल ललित बिरंग ।।
मृगमद कुंकुम चन्दन बास। बन लक्ष्मी कैसो आवास ।।
चन्दन तरु उज्जल तन धरै। लपटी नागलता मन हरै ।।
देखि दिगम्बर बन्दित भूप। मानो महादेव के रूप ।।

(वी० दे० च०, पृ० १३८-१३९)

यहीं क्रीड़ागिरि की शोभा के भी दर्शन कर लीजिए—

तिनमें क्रीड़ापर्वत रच्यौ। मृगपच्छिन्न की सोभा सच्यौ ।।
कृत्रिम सिखर सिला सोभियैं। तरुवरलता चित्त मोहियैं ।।
सुवरनमय सुमेरु सोभनौ। सहज सुगन्ध मलय सोभनौ ।।
सीतल हिमगिरि सो परसियो। उदयाचल सो सुभ दरसियो ।।
सोभा के सागर में बसै। वर मैनाक सैल सो लसै ।।
आनन्दमय हरि कैसो ओक। हंसनिजुत अज कैसो लोक ।।
वृषभ सिंह क्रीडहिं अहि मोर। सिद्धगिरि सो सोहत चहुं ओर ।।
गूढ़ गुफा हूं दीरघ दरी। त्रिय मनु सिद्धन की सुन्दरी ।।
कहुं तापर धरधारा धाम। सुभ्रक लोक बलाका बाम ।।
बरषति सी दरसति जलधार। चपला सी चमकति बहु बार ।।
सक्र सरासन चातिक मोर। सुनिजतु बिच बिच घन की घोर ।।

(वी० दे० च०, पृ० १४०)

'जलाशय' तो मानो राज्यश्री का दर्पण ही है और यदि इसमें 'इन्द्रचाप' को भी देखना हो तो ध्यान से देखिए—

राजश्री को दर्पन मनो। कियो गगन अवतार्यो गनो ।।
सूच्छम दीरघ नीर तरंग। प्रतिबिम्बित बल द्रुति बहु रंग ।।
सूर किरनि करि जल परसियें। मनो इन्द्रचाप दरसियें ।।

(वी० दे० च०, पृ० १४३)

और यदि इन्द्रचाप के साथ ही पृथ्वी पर आकाश के भी दर्शन करने हों तो केशव के क्षीरसागर के वर्णन पर दृष्टिपात कीजिए—

अति अनन्द भूतल जल खण्ड। अद्भुत अमल अगाध अखण्ड ॥
फूले फूलन को आवास। मानौ सहित नक्षत्र अकास ॥
(वी० दे० च०, पृ० ६६)

और, यदि साथ ही स्नान कर पाप-समूह को धो बहाना और जन्म सुफल बनाना है तो प्रयागराज में चलिए और देखिए कि किस प्रकार केशव प्रकृति को हृदय की आँख से देख सकते हैं।

हरहि जु जग जीवन के पाप। दूरि करत जनु तिनके दाप ॥
जमुना संग कियें अति थिरा। गंग मिलन कौं आई गिरा ॥
मृगमद केसरि घसि घनसार। कीनौ चर्चित चन्दन चारु ॥
बन्दित देवि देव अवनीप। तिलक कियौ जनु जम्बूदीप ॥
जहाँ तहाँ जल नरपति न्हात। देखत आनन्द उपजत गात ॥
नारी नर बहु बुड़की लेत। जनु अपने अभिलाषनि हेत ॥
हरि पूजत सब बारह पार। जहाँ तहाँ षोड़स उपचार ॥
होति आरती तिनकी जोति। प्रतिबिम्बित पानी में होत ॥
अपनो जनम करन को सुखी। जनु अन्हाति जल ज्वालामुखी ॥
अति अरुनाई अति उद्दोत। धून सहित जहं तहं जल होत ॥
देखि देखि उपना बड़भाग। धूमकेतु जनु न्हात प्रयाग ॥
इहि विधि सोभा सुखद अपार। बरनी सोभ कोधि संसार ॥
(वी० दे० च०, पृ० ३२)

इसी प्रकार वर्षा का चित्र उपस्थित करने में भी केशव का बिम्बग्राहक प्रयत्न सराहनीय है।

चहूँ दिसा बादल दल नवै। उज्जल कज्जल की रुचि रचै ॥
दिसि दिसि दमकति दामिनि बनी। चकचौंधति लोचन रुचि घनी ॥

— — —

अति सज्जल बद्दल की पाँति। तामें हंसावलि बहु भाँति ॥
जल सों संखावलि पी गई। उगिलित ताकी सोभा भई ॥
सक्र सरासन सोभा भर्यो। वरन करन बहु जोतिन धर्यो ॥
रतन भई जनु बरुना भार। बर्षागन दिविगंधी वार ॥
बरषत बुंद वृन्द घन घनै। बरनत कवि कुल बुद्धिबल नसै ॥
(वी० दे० च०, पृ० ७५)

नखशिख वर्णन—प्रकृति से हटकर केशव की दृष्टि जब नारी पर जाती है तो वहाँ भी अपना रंग दिखाए बिना नहीं रहती। नारी-सी छवि अन्यत्र कहाँ[1] ?

---

१. गगनचन्द्र तें अति बड़ौ तिय मुख चन्द्र विचारु।
दई विचारि विरंचि जहं कला चौगुनी चारु ॥
—वी० दे० च०, छं० ६६, पृ० १३३।

बेचारा पूर्णिमा का चन्द्रमा तो लज्जित होकर न जाने कहाँ-कहाँ अपना मुँह छिपाता फिरता है ।[1]

कटि इतनी सूक्ष्म है कि उसका पता ही नहीं चलता कि है भी या नहीं । उसकी विभूति को लूटकर नितम्ब जो मोटे हो बैठे हैं ।[2]

रही एड़ियों की छवि, वह ऐसी है कि नेत्रों से भी उसे छूने में संकोच होता है कि कहीं दृष्टि के स्पर्श से मलिन न हो जाये[3] और संपूर्ण शरीर की शोभा के तो कहने ही क्या, वह तो आँखों से देखते ही नहीं बनती ।[4]

केशव की एक अपूर्व नववधू के नखशिख का दर्शन और कर लीजिए । लिखा है—

राजसिंह की पति पद्मिनी । नव दुलहिनि गुन सुख सद्मिनी ॥
सिरु सब सीसौदिया सुदेस । बानी बड़गूजर बर बेस ॥
श्रुति सिरफल सुलंकी जानु । लोचन रुचि चौहान बखान ॥
भनि भदौरिया भूतल भानु । भृकुटि भेंटि भाटी भूपालु ॥
कछवाहे कुल कलित कपोल । नंवध नृप नासिका अमोल ॥
दीखत दसन सुहाड़ा हासु । बीरा बंस बनाफर बासु ॥
मुख रुख माह चिबुक चंदेल । ग्रीवा गौर सुबाहु बघेल ॥
कुल कनोजिया कंचुकी चारु । कुच कर चुली कठोर बिचारु ॥
पान पवंया परम प्रवीन । नृप नाहर नख कोर नवीन ॥
कौसल कटि जादौ जुग जानु । पदप लवा कैकेय बखानु ॥
तौं बर मनमथ मन पड़िहार । पद राठौर सरूप पवार ॥
गूजर वे गति परम सुबेस । हावभाव मनि भूरि नरेस ॥
केसौ माह सखि सुखदानि । दामोदर दासी उर जानि ॥

(वी० दे० च०, पृ० ५६-५७)

ऐसी दुलहिन के लिए दुलहा भी कम नहीं है ।

राजसिंघ पति पद्मिनी दुलहिनि रूप निधान ।
दूलह मधुकरसाहिसुत बिरसिंघदेव सुजान ॥

---

१. रमनी मुखमण्डल निरखि राकारमन लजाइ ।
जलद जलधि सिव सूल में राखत बदन छिपाइ ॥
—वी० दे० च०, छं० ६८, पृ० १३४ ।

२. कटि को तत्व न जान्यो जाइ । ज्यौं जग सत न असत कह जाइ ॥
इहि तें अति नितम्ब गुर भये । कटि के विभव लूटि सब लये ॥
—वी० दे० च०, पृ० १३५ ।

३. छवा छबीलं छवि कं हियं । नंननि पंने जाहि न छियं ॥
—वी० दे० च०, पृ० १३६ ।

४. कण्टक अटक फटि फटि जात । उड़ि उड़ि जात बसन बस वात ॥
तऊ न तिनके तन लखि परें । मनिगन अस अंसकन धरें ॥
—वी० दे० च०, पृ० १३६ ।

तिनकौ सिर स्वयम्भूमय मानि । श्रवननि को वैश्रवन बखानि ॥
भालु भलौ भागिन मयमानि । वृष कन्धर स्वर मेघ बखानि ॥
भुज जुग मनि भगवती समान । अति उदार उर तुम हिय मान ॥
कटि नर केहरि के आकार । जानु बरुनमय रूप कुमार ॥
पद कर कंवल सुहावन वासु । आयुध सक्र समान सहास ॥
जय कंकन बांधे निज हाथ । पनरथ परम पराक्रम गाथ ॥
टोपा सोभत मोर समान । बागे सम सोहै तन-त्रान ॥
पंच सब्द बाजत अवदात । सुभट बराती फौज बरात ॥

(वी० दे० च०, पृ० ५७)

भावव्यंजना—'वीरसिंहदेव चरित' में बहुत से ऐसे स्थल देखने में आते हैं जहाँ केशव ने भिन्न-भिन्न मानव-मनोभावों की सुन्दर व्यंजना की है। प्रमुख-रूप से वीर रस का ग्रन्थ होने के कारण वहाँ वीरोचित 'उत्साह' की व्यंजना केशव ने कई स्थलों पर बड़ी मार्मिक की है। अकबर की सेना को मारता-काटता हुआ कुमार भूपाल राव जिस वीरोचित 'उत्साह' के साथ अचेत पड़े इन्द्रजीत के समीप पहुँचता है वह दर्शनीय है।

कीनौ हाथ हथ्यार अपार । भयौ लाल लोहू करिवार ।
भभरि गयौ अब्दुल्लहखान । भूलि गयौ सब जुद्धि विधान ॥
कांपन लागी भूमि भय भागि पौसु जनु आनु ।
बाजि उठ्यौ दिसि वाम तें बीरसिंह निस्सानु ॥

— — —

आयौ जहाँ तहाँ इन्द्रजीत । विह्वल अंग देखियत भीत ।
कवच मध्य घायनि की भीर । अन्तर पीड़ा रुधिर पीर ॥
सुधि सरीर की गई नसाई । सुभट सजै लै चलै उठाइ ॥

(वी० दे० च०, पृ० ८४-८५)

मुग़ल सेना से मुठभेड़ न करने की शिक्षा देने वाले क्षेत्रपाल से जो कुमार का कथन है वह उसके अदम्य उत्साह का व्यंजक है—

भीत करहि जिनि भीत बंस रन जीति हमारौ ।
व्रतधारी जस अमल ताहि अब करौ नकारौ ॥
राजनि कै कुल राज कहा फिरि फिरि अवतरियौ ।
अब तब जब कब मरन कहत अबहीं किनि मरियौ ॥
सुर सूरज मंडल भेदि ज्यों बिना गये से हरि सरन ।
सब सूरनि मंडल भेदि त्यों रामदेव देखई सरन ॥

(वी० दे० च०, पृ० ६०)

शत्रुओं से घिर जाने पर भी वह साहस नहीं छोड़ता और अकेला ही मुग़लों पर टूट पड़ता है और उनके छक्के छुड़ा देता है। बाँका शूर जो ठहरा न।

'भय' का भी कई स्थानों पर अच्छा निरूपण हुआ है। वीरसिंह के आक्र-

मण करने पर राजसिंह की सेना में जो आतंक छा जाता है, उसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि—

इहि विच बीरसिंह उठि परे। गज दल हय दल पयदल खर भरे ॥
जहाँ तहाँ भजि चले नरिन्द। सिंह देखि कै मनौ करिन्द ॥
सोदर लै दामोदर भग्यौ। भगत दमोदर सब दल डग्यौ ॥
काहू काहू की न सम्हार। पवन पाइ ज्यों पत्र अपार ॥
कौन गनै सुभटन को साज। जूझे जूझ तहाँ जुगराज ॥
एकति ढ़ीहनि तें गिरि परे। बूड़ि इकै सरिता मंह मरे ॥
इके गयन्दनि मारे चांपि। इके मरे अपडरही कांपि ॥
(वी० दे० च०, पृ० ३०)

इसी प्रकार दलबल-सहित महाराज बीरसिंह देव के भूपालराव, इन्द्रजीत तथा रामशाह के विरुद्ध युद्ध के लिए प्रयाण करने पर भी भय से समस्त संसार में खलभली मच जाती है। केशव ने लिखा है—

भूतल सकल भ्रमित ह्वै गयौ। लोक लोक कोलाहल भयौ ॥
गाजि उठे दिग्गज तिहि काल। संकि सकल अंकित दिगपाल ॥
रौर परी सुरपुर अपार। बाढ़ौ सुरपति चित्त बिचारि ॥
कल्पवृक्ष गज वाजि समेत। सौंपिसुर गुरु कौं इह हेत ॥
धर्मराज कै धक पक भई। डंडनीति कुम्भज कौं दई ॥
चिंता तरुन वरुन उर गुनी। तवही उतरि गई वारुनी ॥
(वी० दे० च०, पृ० ८२)

केशव ने एक-दो स्थलों पर युद्ध के प्रसंगों में 'जुगुप्सा' का भी चित्रण किया है। शेख अबुलफ़ज़ल के निधन के अनन्तर युद्धस्थल का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

कहुं तेग कहुं डारे तास। कहुं सिंदूल पताक प्रकास ॥
कहुं डारे रेजा तरवारि। कहुं तरकस कहुं तीर निहारि ॥
कहुं रुण्ड कहुं डारे मुण्ड। कहुं चौर झुण्डनि के झुण्ड ॥
ठिलत लुठत कहुं सुभट अपार। टूटिनि टिकि टिकि उठत तुषार ॥
— —
परम सुगन्ध गन्ध तन भर्‌यौ। सोनित सहित धूरि धूसर्‌यौ ॥
(वी० दे० च०, पृ० ४०)

इसी प्रकार ओड़छे के युद्ध का वर्णन भी 'जुगुप्सा' का व्यंजक है।

'शोक' की व्यंजना कवि ने शेख अबुलफ़ज़ल के निधन का दुःखद समाचार सुनकर अकबर की शोक-विह्वल दशा के चित्रण में की है। लिखा है—

सुनत साहि ह्वै गये अधीर। परे धरनि सुधि विगत सरीर ॥
सब ही हाइ हाइ ह्वै रही। पूरि रही सब आंसुनि मही ॥
अति निःसब्द भयो दरबार। पवन हीन ज्यों सिंधु अपार ॥
(वी० दे० च०, पृ० ४२)

— — —

मेरे प्रान जात हैं देखु। आखिन आनि दिखावहु सेखु ॥
हाथी हय हाट कमनि धीर। गायक नायक गुनी गंभीर ॥
राग बाग फल फल बिलास। डासन आसन असन सुवास ॥
भूषन भाजन भवन बितान। सम्पति सकल कितेब पुरान ॥
देस नगर सायर गढ़ गाम। सेख बिना मेरे किहि काम ॥

(वी० दे० च०, पृ० ४३-४४)

'क्रोध' की एक झलक उस समय दिखलाई देती है जब वीरसिंह द्वारा राजसिंह के ससैन्य पराजित किए जाने पर अकबर अपना सिर धुन लेता है और उमरावों के पास फरमान लिख भेजता है कि या तो वे ओड़छा पर आक्रमण कर वीरसिंह की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दें, जहाँ वीरसिंह जाये उसका पीछा करें अथवा 'हज' को चले जायें।

राजसिंघ के युद्ध बिधान। सुनि सुनि सीस धुन्यौ सुलितान ॥
उमराउनि को प्रगट प्रमान। यह लिखि पठै दियौ फरमान ॥
कै तुम गहियौ हज कौ राहु। कै उनकी बसहिनि परजाहु ॥
जहं जहं जाइ तहां तुम जाउ। मेटौ मेरे उर कौ दाहु ॥

(वी० दे० च०, पृ० ६२)

महाराज वीरसिंह के युवतियों के साथ वाटिका-विहार, जलकेलि तथा मदन-महोत्सव आदि के वर्णनों में 'संयोग-रति' की अच्छी व्यंजना हुई है। जलकेलि का एक दृश्य नीचे प्रस्तुत है—

क्रीड़ा सरवर में नृपति कै जल बिधि बहुकेलि ।
निकसे तरुनि समेत ज्यौं सूरज किरन सकेलि ॥
तब तिहि समय बिराजी बाल। बिनहू भूषन भूषित ताल ॥
मिटे कपोलनि चन्दन चित्र। लागें केसरि तहां बिचित्र ॥
जल कज्जल बिन कीनें नैन। निज छबिरोधक जानें ऐन ॥
मोतिन की सब छूटीं लटैं। आनि उरोजनि लपटी लटैं ॥
मनों सिंगार हास बल्लरी। कलपलतनि भेटति सुन्दरी ॥
सोहत जलकन केसनि अग्र। जनु तन उगलित नखत समग्र ॥
नव नव अम्बर पहिरें जाति। दीपति झलमलाति फहराति ॥

(वी० दे० च०, पृ० १४३-१४४)

संवाद—पूर्व पृष्ठों में यह बताया जा चुका है कि 'वीरसिंहदेव-चरित' की कथा संवाद के रूप में लिखी गई है। मुख्य कथा आरम्भ होने के पूर्व दान और लोभ में जो विवाद उठ खड़ा होता है वह बहुत ही सुन्दर एवं रोचक है। दोनों तर्क द्वारा अपनी महत्ता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। कहीं-कहीं तो दान और लोभ, हृदय की जिन वृत्तियों के द्योतक हैं, उन्हीं के अनुकूल अपनी उक्तियां भी कहते दिखाई पड़ते हैं। दान हृदय की उदार तथा विशाल वृत्ति का द्योतक है और लोभ हृदय की संकुचित वृत्ति का। उदार-हृदय दान, लोभ के मित्र राजा वेन, वाणासुर, हिरण्यकशिपु, सहस्रबाहु, शिशुपाल, त्रिशंकु आदि की दुर्दशा के विषय में स्पष्ट

उल्लेख न कर केवल संकेत ही करता है जिससे उसके हृदय की विशालता स्पष्ट झलकती है। इसी प्रकार निम्नांकित शब्दावली से भी उसके हृदय की उदारता, सुशीलता एवं सौम्यता परिलक्षित होती है।

बहुत निहोरौं तोसौं करौं। कहै त तेरे पाइनि परौं॥
हौं तोकौं सिखऊं सिख एक। छांड़ि देइ जौ अपनी टेक॥

(वी० दे० च०, पृ० १३)

इसके विपरीत लोभ हृदय की नीच एवं कुत्सित वृत्ति है। इस कारण उसकी उक्तियां भी द्वेष और व्यंग से पूर्ण हैं। लोभ दान से कहता है कि—

भली कही तुम मोसों बात। मैं पुनि सुख पायौ सब गात॥
तुम अति बड़े धर्म के तात। सिखवत हैं सिख अति अवदात॥

(वी० दे० च०, पृ० १३)

चरित्र-चित्रण—इस ग्रन्थ के सब पात्र सचमुच के राजनैतिक व्यक्ति हैं और उनका शील, स्वभाव एवं गुण भी सर्वथा उनके अनुरूप ही अंकित किया गया है। अतएव उनके सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं कहना है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव का 'वीरसिंहदेव-चरित' ग्रन्थ प्रबन्ध-काव्य की कसौटी पर खरा उतरा है। प्रबन्ध-काव्य के आवश्यकीय गुणों का यहाँ यथास्थान समावेश हुआ है। अतः केशव निःसंकोच हिन्दी के कुशल प्रबन्धकार ठहरते हैं।

(ग) **विज्ञानगीता**—

ग्रन्थ-निर्माण की प्रेरणा केशव को ओड़छाधीश वीरसिंह से मिली थी। यह ग्रन्थ एक रूपक के रूप में लिखा गया है, जिसमें कवि ने एक दार्शनिक विषय को काव्य का पुट देकर सरस बनाने की चेष्टा की है। इसका प्रणयन बहुत कुछ तुलसी के 'रामचरितमानस' के ढंग पर हुआ है, किन्तु ढांचा कृष्णमिश्र यति द्वारा रचित संस्कृत के प्रसिद्ध रूपक 'प्रबोधचन्द्रोदय' का रखा गया है। ग्रन्थारम्भ ठीक उसी ढंग से होता है जिस ढंग से 'मानस' का। 'मानस' में भारद्वाज मुनि के प्रश्न का समाधान करने के लिए याज्ञवल्क्य शिव-पार्वती के प्रसंग को लाते हैं। 'विज्ञानगीता' में भी केशव महाराज वीरसिंह के प्रश्न के उत्तर में शिव-पार्वती का प्रसंग छेड़ देते हैं। जिस प्रकार शिव-पार्वती संवाद के अन्तर्गत 'मानस' में अनेक संवाद आते रहते हैं उसी प्रकार 'विज्ञानगीता' में भी, जैसे कलह-रति-काम-संवाद, अहंकार-दंभ-संवाद, मिथ्या-दृष्टि-महामोह-संवाद तथा विवेक-जीव-संवाद आदि। यह सब होते हुए भी दोनों में एक महान् अन्तर है। 'मानस' के संवादों में जहाँ प्रवाह है वहाँ 'विज्ञानगीता' के संवाद स्फुट रूप में हैं।

कथावस्तु का स्वरूप—सम्पूर्ण ग्रन्थ की कथा २१ प्रभावों में समाप्त होती है। 'रामचन्द्रिका' के समान ही यहाँ भी प्रत्येक 'प्रभाव' के आरम्भ में ही कथा का सार दे दिया गया है और साथ ही यह भी बता दिया गया है कि उसका प्रतिपाद्य विषय क्या है। ग्रन्थ के प्रभावों का नामकरण भी सर्गों के सदृश हुआ है। प्रत्येक प्रभाव के अन्त में 'वर्णन-नाम' का उल्लेख भी है। प्रभावों के नाम ये हैं—

(१) श्रीशिवपार्वतीप्रश्न, (२) कलहरतिकामसंवाद, (३) अहंकारदंभसंवाद, (४) सप्तद्वीपवर्णन, (५) मिथ्यादृष्टिमहामोहमंत्रणा, (६) मिथ्यादृष्टिमहामोह-संवाद, (७) चार्वाकमहामोहकलिदंभमंत्र, (८) पाषण्डधर्मवर्णन, (६) विवेकराज-धर्म उद्यममंत्र, (१०) वर्षाशिरदवर्णन, (११) श्रीबिन्दुमाधवविश्वनाथगंगास्तुति, (१२) विवेकजयवर्णन, (१३) गाधिमायाविलोकन, (१४) मनशान्तिवर्णन, (१५) विवेकजीवसंवाद, (१६) नृपतिशिखीध्वजसंसारविजय[1], (१७) ज्ञानाज्ञानचतुर्दश-भूमिका, (१८) प्रह्लादचरित्र, (१६) बलिचरित्र, (२०) योगसप्तभूमिका तथा (२१) महामोहपरिहार[2] ।

कथावस्तु--'विज्ञानगीता' की कथावस्तु अविच्छिन्न और सुशृंखलित है। एक बार ओड़छाधीश मधुकरशाह के सुपुत्र वीरसिंहदेव सभासदों के बीच में केशवदास से प्रश्न करते हैं—

गंगोदिक तीरथ जिते, गोदानादिक दान।
सुनी यथामति देव की, महिमा बेद पुरान॥
महिमा बेद पुरान सबै बहु भांति बखानत।
यथाशक्ति सब करत सहित श्रद्धा गुण गावत॥
यथाशक्ति सब करत भक्ति हरि मन बच अंगा।
चित्त न तजत विकार न्हात नर यद्यपि गंगा॥

(वि० गी०, प्र० १, छं० २८)

इसका केशव समाधान करते हैं—

बीर नरेश धनेश तुम, मोहि जु बूझी गाथ।
सोई श्रीशिव को शिवा, बूझी हो नृपनाथ॥

(वि० गी०, प्र० १, छं० २६)

पार्वती ने शिव से पूछा था—

कहियै किहि भांति विकार नसावै। जिव जीवतहीं परमानंद पावै॥

(वि० गी०, प्र० १, छं० ३१)

---

१. यह नाम हमने अधोलिखित छन्द के आधार पर लिखा है—

नृपति शिखीध्वज षोड़शों, जीतेगो संसार।
निज तरुणी उपदेश तें, ताको गूढ़ विचार॥

—वि० गी०, प्र० १६, छं० १।

उक्त प्रभाव के अन्त में दिये हुए 'इति श्रीविज्ञानगीतायां विवेकजीवसंवादवर्णनं नाम षोडशः प्रभावः' वाक्य से इसका नाम 'विवेकजीवसंवाद' ठहरता है किन्तु मुख्य कथा को ध्यान में रखते हुए यह नाम इतना उपयुक्त नहीं जंचता।

२. यह नाम हमने निम्नलिखित छन्द के आधार पर दिया है—

एकबीश में वर्णिबो, महामोह परिहार।
उत्तर मनु को सृष्टि को, राम नाम निस्तार॥

—वि० गी०, प्र० २१, छं० १।

प्रस्तुत प्रभाव के अन्त में इसके नाम का कोई उल्लेख नहीं है।

शिवजी ने इसके उत्तर में कहा था कि जब विवेक के द्वारा मोह का नाश होने पर प्रबोध का उदय होता है तभी संसार में जीव जीवनमुक्त होता है।[१] पार्वती ने फिर प्रश्न किया कि प्रबोध का उदय कहाँ होता है। शिवजी ने बतलाया कि प्रबोध के उदय के लिए सब से उपयुक्त स्थल वाराणसी है।[२] इसके अनन्तर वीरसिंह को केशव से विवेक और महामोह के युद्ध का वृत्तान्त जानने की जिज्ञासा होती है। केशव कहते हैं कि शिवजी की उक्त बातचीत कलिकाल सुन लेता है। वह सारा समाचार कलह को बता देता है। कलह सब कुछ सुनकर महामोह को सूचना देने के विचार से चलता है कि उसे मार्ग में काम और रति आते दिखाई पड़ जाते हैं। कलह कलिकाल की कही हुई बातें काम को बतलाते हुए कहता है कि ऐसा सुना है कि काशी में प्रबोध का उदय हो गया है। काम सुनते ही ताव के साथ कहने लगता है कि—

देव दनुज सिद्ध मनुज संयम व्रत धारहीं। वेदविहित धर्म सकल करि करि मन हारहीं॥
मोहिं निकट तोहिं प्रकट वंधु अरु विरोध को। शुद्ध सदय उदय हृदय होइ क्यों प्रबोध को॥[३]

इतने में रति, जो काम के साथ होती है, बोल उठती है कि मैंने सुना है कि आप के महाराज महामोह से विवेक का बल अधिक है। इस पर काम तमक कर बोल पड़ता है—

सजौं फूलके है धनुर्व्वाण मेरे, करौं शोधि कै जीव संसार चेरे।
गनै को बली वीर बज्री विकारी, भए वश्य शूली हली चक्रधारी॥[४]

परन्तु रति समझाती है कि शत्रु कैसा ही क्यों न हो उससे सदा सशंक रहना चाहिये। इतना सुनते ही काम सगर्व अपने पराक्रम का बखान करते हुए कहने लगता है कि संपूर्ण संसार को वश में करने के लिए मेरे पास युवती नामक अद्भुत अस्त्र है।[५] फिर रति कहती है कि मैं सुनती आ रही हूँ कि विवेक और महामोह का एक ही वंश है फिर यह विरोध कैसे? इस पर काम उसे बताता है कि 'वंश ही नहीं दोनों एक ही पिता की संतान हैं[६]।' ईश और माया के संयोग से मन नामक पुत्री की उत्पत्ति हुई है। उसके दो स्त्रियाँ होती हैं। एक स्त्री का नाम प्रवृत्ति और दूसरी का नाम निवृत्ति है। प्रवृत्ति से मोह और हम सब उत्पन्न हुए हैं और निवृत्ति से विवेक आदि। सौतेले होने से हम लोगों में बराबर विरोध चला करता है। हमें पिता और माता दोनों प्रेम करते हैं। परन्तु उनका

---

१. वि० गी०, प्र० १, छं० ३२।
२. वही, प्र० १, छं० ३४।
३. वही, प्र० २, छं० ६।
४. वही, वही, छं० ८।
५. वही, वही, छं० १०।
६. वंश कहा गजगामिनी, एकै पिता प्रशंश॥
—वि० गी०, प्र० २, छं० ११।

कलियुग में प्रवेश ही नहीं हो पाता है, क्योंकि संसार के प्रयोजनों की उनके द्वारा कोई सिद्धि नहीं होती, अतएव वे सभी पिता (मन) को ही मार डालना चाहते हैं। इतना सुनना था कि रति पूछती है कि हे प्रिय! इस वंशोच्छेद का उनके पास कोई उपाय भी है या यों ही वे ऐसा कर डालेंगे? काम उत्तर में कहता है कि हमारे ही वंश में मृत्यु नाम की एक भयंकर राक्षसी उत्पन्न होगी, जिससे उसका नाश होगा जो दूसरों का नाश करेगा।

मृत्यु मूरति राक्षसी इक होइगी मम वंश॥

— — —

करै विनाश जु और को, ताको नित्य विनाश।
केशवदास प्रकाश जग, ज्यों यदुवंश विनाश॥[1]

इसके पश्चात् काम कलह को आदेश देता है कि वह पहले दिल्ली में दम्भ से जाकर मिले और उसको इस विषय में उचित आदेश देकर फिर महामोह के पास जाये।

कलह दिल्ली नगरी में जाकर देखता है कि चारों ओर दंभ का ही बोलबाला है। कलह कलिकाल का बतलाया हुआ सब समाचार जाकर दंभ को सुना देता है और फलतः दंभ भी सब बातें नृपनाथ से कह सुनाता है। इसके बाद कलह चला जाता है। इधर दंभ यमुना पार करते हुए देखता है कि एक ब्राह्मण बकध्यान लगा कर बैठा है। दंभ के निकट जाने पर उसका शिष्य कहता है कि महाराज गुरु जी पूजन कर रहे हैं, अतः पाँव धोकर इधर पधारें (वि० गी०, प्र० ३, छं० १०)। इस पर दंभ के कहने पर कि—

जानत हों दिल्लीपुरी, तुरुक बसत सब ठाँइ।
अतिथिनि को दीजतु न यह। आसन अर्घ सुभाइ॥[2]

शिष्य यहाँ तक भी कह डालता है—

पाँय पखारि यहीं भयो, अहंकार अनुकूल।
बैठि दूरि द्विज जनि छुवो, गुरु को आसन मूल॥
परसि तुम्हारो गात, पथिक विलोकि प्रस्वेद कण।
जगस्वामी को गात ज्यों न छुवो त्यों बैठिए॥[3]

दम्भ इतने अभिमानपूर्ण वचन कैसे सुन सकता है। वह भी अपनी डींग हाँकने लगता है (वि० गी०, प्र० ३, छं० १७)। दम्भ की डींग भला अहंकार चुपचाप कब सहने वाला है। शिष्य के स्थान पर स्वयं ही बलक उठता है। इतनी कहा-सुनी के पश्चात् दम्भ पहचान लेता है कि ये मेरे पितामह अहंकार हैं। बार-बार हंसकर फिर (अपने पिता) लोभ के साथ अहंकार के चरणों में नत होता है और अहंकार का आशीर्वाद पाता है। दंभ द्वारा आने का कारण पूछा जाने पर अहंकार उसे बतलाता है कि उसको काम ने वहाँ भेजा है और उसे यह भी सूचना देता है कि महामोह भी देवसभा से वहीं आ रहे हैं। अन्त में अहंकार के पूछने पर दंभ विवेक

१. वि० गी०, प्र० २, छं० २१ तथा २३।
२. वि० गी०, प्र० ३, छं० ११।
३. वही, वही, छं० १४-१५।

की सारी कथा कह सुनाता है। अहंकार के हृदय में यह बात किसी प्रकार से भी नहीं बैठती है कि—

भागीरथी जहं ऐसिहै केशव साधुन के जहं पुंज लसैं रे।
सन्तत एक विवेक सौं बेद विचारन सौं जहं जीउ कसैं रे॥
तारक मंत्र के दाइक लाइक आपु जहाँ जगदीश बसैं रे॥
साधन शुद्ध समाधि जहाँ तहं कैसे प्रबोध उदोत नसैं रे॥[1]

दंभ इस शंका का समाधान करता है कि प्रबोध के उदय के लोप अर्थात् रोकने के लिए एक पेट ही समर्थ है[2]। इसके अनन्तर कलह महाराज महामोह के समीप पहुँच कर उसे सारा समाचार बतला देता है। बस फिर तो महामोह भी सभी दोषों को साथ ले दिग्विजय के लिए निकल पड़ता है। पहला पड़ाव पुष्करद्वीप में पड़ता है। इस प्रकार वह सातों द्वीपों, समुद्रों, नदियों, पर्वतों तथा भूखण्डों को जीतता हुआ अंत में जम्बूद्वीप के भरतखण्ड में पहुँचता है। फिर संपूर्ण देशों को विजय करके पाखण्डपुर में पहुँचता है। वहाँ कुछ दिन ठहरता है। फिर महामोह पाखण्डपुर और अपनी समस्त सृष्टि को देखकर अन्तःपुर में अपनी रानी मिथ्यादृष्टि के पास जाता है और उससे विवेक को जीतने की विधि पूछता है। मिथ्यादृष्टि उसे समझाती है—

सुनि राज-राज विचारु, वह शत्रु दीह निहारु॥
सहसा न दीजै दाउं, यह राजनीति प्रभाउ॥

(वि० गी०, प्र० ५, छं० १५)

इसके आगे कहते-कहते जब यहाँ तक कह देती है कि—

गंगा अरु वाराणसी, महादेव तिहि ठौर॥
पाउं न धरिये पंथ तिहि, सुनो रसिक शिरमौर॥

(वि० गी०, प्र० ५, छं० १७)

तो महामोह भी ताव में आकर कहने लगता है कि काशीपुरी में भी रात-दिन उसके ही लोग अनेक वेष धारण किए हुए विहार करते हैं। किन्तु रानी को सन्तोष नहीं होता और फिर समझाती है कि काशी में फिर भी धर्म का अभाव नहीं है। वहाँ भाँति-भाँति के पहुँचे हुए साधु और साधक अब भी हैं। यह सुनकर तो महामोह और भी आग-बबूला हो उठता है और अपनी वीरता की झड़ी लगा देता है। एक-एक तीर्थ तथा नदी आदि का वर्णन करता हुआ रानी मिथ्यादृष्टि को यह बतलाता है कि जब उसने बड़े-बड़े माहात्म्य वालों को जीत लिया तो वाराणसी को जीतना क्या है। साथ ही वह अपने योद्धाओं पाषण्ड (कुल-पुरोहित), बन्धु-विरोध (महामात्य), झूठ (प्रधान), क्रोध (दलपति), लोभ, शोक, दारिद्र्य, आलस्य, भ्रम और भेद तथा अपने कुटुम्बियों—काम (सहोदर), व्यभिचार (ज्येष्ठ पुत्र), कलंक

---

१. वि० गी०, प्र० ३, छं० २४।
२. को बरजै प्रभु को प्रगट, बरजै होइ अनर्थ।
बोध उदैके लोप को, एकै पेट समर्थ॥
—वि० गी०, प्र० ३, छं० २६।

(पौत्र) और कृतघ्न (श्वसुर) आदि के बल एवं प्रभाव का वर्णन करते हुए कहता है कि—

एक एक जग संहर्यो, पुनि सिगरे एकत्र।
मोसों प्रभुता को करै, शंकर सहित कलत्र॥

(वि० गी०, प्र० ६, छं०, ४०)

मिथ्यादृष्टि एक बार फिर उसे समझाती है कि वाराणसी में तप के समुद्र रुद्र रहते हैं। दूसरे वह गंगा जी का स्थान है और वहीं विवेक सत्संग के साथ शिव जी की शरण में गंगा के तट पर वास करता है, उसको जीतना टेढ़ी खीर है। वह विवेक के योद्धाओं की शक्ति का वर्णन करती हुई कहती है कि विवेक के योद्धाओं को उसके योद्धा किस प्रकार पराजित कर सकेंगे। पर महामोह एक नहीं सुनता। अंत में जब मिथ्यादृष्टि देखती है कि महामोह अपने निश्चय में दृढ़ है तो उसे बतलाती है कि यदि श्रद्धा विवेक का साथ छोड़ दे तो वह शक्तिहीन हो जायेगा। अतएव वह श्रद्धा को पाषण्ड के अर्पण कर देने की सलाह देता है। यह परामर्श सुनकर महामोह उसी दिन श्रद्धा के पाषण्ड को अर्पित कर देने की ठान लेता है।

महामोह भैरवी को बुलाकर उससे किसी प्रकार छल-बल करके श्रद्धा को पाषण्ड के अर्पण कर देने का अनुरोध करता है और स्वयं 'असत' को साथ ले सभा में पहुँचता है, जहाँ चार्वाक अपने शिष्यों को नास्तिक मत का उपदेश दे रहे थे। वहाँ पहुँच कर महामोह चार्वाक के चरणों को स्पर्श करता है। चार्वाक शुभ आशीर्वाद के साथ कलियुग का परिचय देता है और कलियुग निवेदन करता है कि—

शूद्र ज्यों सब रहत हैं द्विज धर्म कर्म कराल॥
नारि जारनि लीन भर्तनि छांड़ि के इहि काल॥
दंभ सों नर करत पूजन न्हान दान विधान॥
विष्णु छांडत शक्ति भूषण पूजनीय प्रमान॥
ब्राह्मण बेचत वेदनि को सुमलेच्छ महीप की सेव करैं जू॥
क्षत्रिय छांड़त है परजा अपराध बिना द्विज वृत्ति हरैं जू॥
छांड़ि दियो क्रय विक्रय वैश्यनि क्षत्रिन ज्यों हथियार धरैं जू॥
पूजत शूद्र शिला धनु चोरति चित में राजनि को न डरैं जू॥
विष्णु भक्ति जग में करी, यद्यपि विरल प्रचार॥
तदपि शान्ति श्रद्धा सखी, तजति न प्रेम विकार॥

(वि० गी०, प्र० ७, छं० १२-१४)

इतना सुनकर मोह भी कह उठता है—

श्रद्धा हम पाषण्ड को, दई कलह के तात॥
शान्ति बपुरी मरैगी। श्रवन सुनतही बात॥

(वि० गी०, प्र० ७, छं० १५)

उधर शान्ति के कानों में जब यह बात पड़ती है तो तड़प कर कहने लगती है—

मो बिना न अन्हाति जेंवति करति नाहिं न पान ।
नेकु के बिछुरे भदु घट में न राखति प्रान ॥
चेतिका करुणा रची सब छांड़ि और उपाइ ॥
क्यों जियों जननी बिना मरिहूं मिलौ जो आइ ॥

(वि० गी०, प्र० ८, छं० ४)

करुणा समझाती है कि स्वप्न में भी पाखण्ड के हाथ श्रद्धा न पड़ने पावे। निदान 'शान्ति' और 'करुणा' 'श्रद्धा' की खोज में निकल पड़ती हैं। पाखण्डियों के स्थलों को एक-एक करके देखती हैं पर वहाँ के घृणोत्पादक आचरण को देखकर त्राहि-त्राहि करते हुए भाग उठ खड़ी होती हैं। श्रावक, बौद्ध, कापालिक, संन्यासी, नारीवेश में शूद्र, सती आदि सभी को देखती हैं पर कहीं 'श्रद्धा' नहीं मिलती है। फलतः दोनों उसका पता पूछने के लिए बृन्दादेवी के पास पहुँचतीं हैं। जब शान्ति अपने क्षणभंगुर शरीर का अन्त करने को तैयार हो जाती है तो आकाश-वाणी होती है कि अब सुखपूर्वक श्रद्धा का मिलन होगा। उधर विष्णुभक्ति की कृपा से 'श्रद्धा' भैरवी से मुक्त होकर बृन्दादेवी के पास ही आ जाती है, जिससे वहीं उसका साक्षात्कार हो जाता है। तदनन्तर शान्ति तो विष्णुभक्ति के पास चली जाती है और 'करुणा' तथा 'श्रद्धा' 'विवेक' का दर्शन करती हैं। वहाँ देखती हैं कि बुद्धि-सहित महाराज विवेक अपने ज्ञान, शम, दम, राजधर्म, सत्संग आदि समस्त धर्मपरिवार के साथ विराजमान हैं। कुशल-मंगल पूछने के बाद श्रद्धा विवेक से कहती है कि वह काम, मोह, लोभ, क्रोध, प्रवृत्ति आदि का संहार कर अपने पिता जीव को जीवनमुक्त करे (वि० गी०, प्र० ६, छं० १८)। यह बात विवेक को कुछ कठिन लगती है। सत्संग तो उसकी हाँ में हाँ मिलाता है, परन्तु राजधर्म सावधान हो बोल उठता है—

सखा सहोदर पुत्र सम, गुरुहू को अपराधु ।
क्षमे न राजा विप्रहूं, बनिता विहरत साधु ॥
संतत भोगनि नैरस जाके, राजन सेवक पाप प्रजा के ।
ताते महीपति दण्ड संचारे, दण्ड बिना नर धर्म न धारे ॥
कै तुम तजौ कहाइबो, राजा आजु विवेक ।
महामोह को दण्ड कै, दीजै भाँति अनेक ॥

(वि० गी०, प्र० ६, छं० २७-२६)

इस प्रकार विवेक और राजधर्म में अच्छा शास्त्रार्थ छिड़ जाता है। राजधर्म की बात विवेक को जंच जाती है और वह विष्णुभक्ति का आदेश पालन करने को उद्यत हो जाता है। इसी समय उद्यम सभा में आकर विवेक से महामोह के कार्यों का बखान करता है। यह सुनकर विवेक उद्यम से आज ही से ऐसा उद्यम करने का अनुरोध करता है, जिससे वह शत्रुओं का नाश कर सके। उद्यम उसे बतलाता है कि विपक्षियों का सबसे प्रमुख योद्धा काम है, उसे वस्तु विचार द्वारा वश में कीजिए। क्रोध को विजय करने के लिए वह सन्तोष को उपयुक्त बतलाता है। फिर विवेक

पाषण्डपुर में ब्रह्म के सम्बन्ध में डौंडी पीटने का आदेश देता है। विवेक के आदेशानुसार डौंडी पीटी जाती है कि राजा का आदेश है कि सभी लोग ब्रह्म का चिन्तन करें। इस पर महामोह का पारा गरम हो जाता है और प्रातःकाल ही वाराणसी पर धावा बोल देने का निश्चय करता है। चार्वाक उसे समझाता है कि—

कूँच कीजं राज अब, आयो बरखाकाल।
शरदहि आवतहीं बरद, करो विवेक बिहाल॥
(वि० गी०, प्र० १०, छं० ४)

इधर युद्ध की बात चल ही रही होती है कि उधर शरद्काल के आते ही महामोह भी अपने दल-बल के साथ वाराणसी की ओर कूच कर देता है और वाराणसी के उस पार अपना डेरा डाल देता है। तब वह भ्रम और भेद नाम के दूतों को विवेक के पास भेजता है। दोनों विवेक के पास पहुँचकर उसे महामोह का आदेश सुना देते हैं। भ्रम कहता है कि महामोह ने समस्त पृथ्वी को जीत लिया है और विवेक के लिए उसका आदेश है कि वह वाराणसी छोड़कर ब्रह्मपुर में जाकर रहे। भेद विवेक से श्रद्धा को अर्पित करने के लिए कहता है। महाराज विवेक, महामोह के आदेश के विषय में उत्तर देने के लिए 'धैर्य' को दूत के रूप में महामोह की सेवा में भेजता है। धैर्य सभा में पहुँचकर कहता है कि विवेक की महामोह के लिए आज्ञा है कि वह जीव को मुक्त कर समुद्र पार चला जाये। यदि वह ऐसा न करेगा तो विष्णुभक्ति की प्रचण्ड अग्नि में भस्मसात् हो जायेगा। यह सुन महामोह भभक उठता है और उसकी सभा में 'पकड़ो, पकड़ो' का शब्द गूँजने लगता है। महामोह गंगा पार उतरता है। इधर विवेक बिन्दुमाधव के पास जाकर प्रबोधोदय प्रदान करने के लिए प्रार्थना करता है। बिन्दुमाधव के विनती मान लेने पर विवेक विश्वनाथ के दरबार में पहुँचता है और उनसे पाप, शोक, रोग, अधर्म, भेद आदि से रक्षा करने की प्रार्थना करता है। विश्वनाथ उसे रक्षा का विश्वास दिलाते हैं। फिर विवेक गंगा जी के पास जाकर उनकी आराधना करता है। गंगा जी से पावन की पदवी प्राप्त कर वह जब अपने दल में पहुँचता है तो वहाँ रणभेरी बज उठती है। महामोह और विवेक में बज जाती है। महामोह की ओर से पाखण्ड के सबसे पहले आक्रमण करने पर उसका सामना करने के लिए विवेक द्वारा भेजी हुई सरस्वती, उसे सिन्धु-पार तथा बंग, कलिंग आदि देशों में खदेड़ देती है। मोह की ओर से जब लोभ आगे बढ़ता है तो विवेक का वीर 'दान' उसे धर दबोचता है। महामोह के वीरों क्रोध, विरोध आदि से विवेक की ओर से सहनशीलता तथा वस्तुविचार सामना करने को आते हैं। इसी प्रकार पाप-पुण्य, सुख-दुःख, आलस-उद्यम, गर्व-प्रणय, कलह-काम, राग-विराग, योग-वियोग, रोग-अरोग, अनाचार-आचार, सदाचार-व्यभिचार, सत्य-असत्य आदि में परस्पर घनघोर युद्ध होता है। और पाप, दुःख, आलस्य, गर्व, असत्य, अनाचार, व्यभिचार आदि मोह के योद्धा विवेक के योद्धाओं से परास्त होकर भाग खड़े होते हैं। अन्त में ब्रह्मदोष क्रोधावेश में अपने समस्त कुल का ही नाश कर देता है और मोह भाग कर अपने

पिता के पेट में छिप जाता है[1]। विजय विवेक के हाथ लगती है। देव, द्विज आदि को सन्तुष्ट कर जब महल में जाता है तब सत्संग उसे समझाता है कि अग्नि, शत्रु तथा रण से बचे हुए को तुच्छ नहीं समझना चाहिए अन्यथा वे कालान्तर में दुःखदायक हो सकते हैं। यही नीति है, वेदमत है और धर्म है। इस पर विवेक उसे आदेश देता है कि वह (सत्संग) जाकर विष्णुभक्ति से मोह का विनाश करने का उपाय करने की विनती करे।

मन को जब रणभूमि का हृदय-विदारक समाचार मिलता है तब काम, क्रोध, विरोध, लोभ आदि पुत्रों के विनाश से वह अत्यन्त क्षुब्ध होकर विलाप करने लगता है। मन का करुणक्रन्दन सुनकर संकल्प उसे समझाता है। परन्तु हृदय के शोक से अत्यधिक संतप्त होने के कारण विवेक उसके हृदय में घर नहीं कर पाता। इतने में ही भगवती विष्णुभक्ति उसके शोक-शमन के लिए सरस्वती को उसके पास भेजती है। सरस्वती समझाती है कि किसी के लिए जो मनोभिलाषा के जल से सींच-सींच कर प्रेमवृक्ष लगाया जाता है वह भी कभी अकाल ही नष्ट हो जाता है अथवा अग्नि में भस्मसात् हो जाता है। वह किसी भी प्रकार से फल-फूल नहीं पाता है, किन्तु उसके अभाव में उसका शोक ही फल-फूलकर खूब फलता है। इसलिये 'होनहार' होकर ही रहता है। ब्रह्मा भी उसे मिटा नहीं सकता। यह सुनकर मन पूछता है—

देवी कहियं कौन विधि, मेरो मरिबो होइ।
जाइ मिलौं लोभादिकनि, इहाँ मरं को रोइ॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० १४)

देवी उत्तर में कहती है कि मरने पर किसी का भी मिलन नहीं होता, पता नहीं सब कहाँ उड़ जाते हैं।[2] तब मन की जिज्ञासा होती है कि कृपा करके यह भी बताइये कि संसार में प्रभुता दिन प्रतिदिन किस प्रकार वृद्धि पाती है और किस प्रकार नष्ट हो जाती है। सरस्वती उसका रहस्य समझाते हुए कहती है—

ब्रह्मदोष प्रवृत्ति के कुल आनि भो अवतार।
पत्रपुष्प समूल कारण वंश भो सब छार॥
ब्रह्मभक्ति निवृत्ति के कुल कल्प बेलि समान।
ताप ताप प्रभाव के बल बढ़तु है दिन मान॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० १६)

मन फिर पूछता है कि—

देहु कृपा करि भगवती, मोकहं सो उपदेश।
जिहि ममता मिटि जाइ सब, उपजत जामें क्लेश॥

---

१. ब्रह्मदोष तब आपने वंश हन्यौ करि कोह।
जाइ पिता के पेट में भागि चल्यो महामोह॥
—वि० गी०, प्र० १२, छं० १७।

२. यह जग जैसे धूरिकण, दीहवाच सब होइ।
को जाने उड़ि जात कहं, मरे न मिलई कोइ॥
—वि० गी०, प्र० १३, छं० १५।

मन पुत्रादिक जो सबै यद्यपि जगत अनित्त।
तिन बिन और कछू न अब, आवे मेरे चित्त॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० २२ और २४)

सरस्वती बताती है कि—

जे जग में जन मत्त हैं, तिनके केशव अन्त।
सब ही सब को सर्वदा, माया परम दुरन्त॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० २६)

इस पर मन सरस्वती से माया के विलास का इस प्रकार से वर्णन करने की विनती करता है जिससे चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो सके। फलतः देवी गाधिऋषि की कथा सुनाकर उसे बोध कराती है कि केवल ब्रह्मविचार सत्य है; पुत्र, कलत्र आदि असत्य हैं और सारा संसार मिथ्या है।

मन माया का दर्शन तो कर चुकता है पर अभी तक उसके मन में वैराग्य उत्पन्न नहीं होता है। सरस्वती फिर समझाती है और संक्षेप में बताती है कि—

मानस सो लाए मन मानस जरत है।
(वि० गी०, प्र० १४, छं० ३)

यह बात मन को लग जाती है और उसके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। फिर तो उसे बन की सूझती है। यह देखकर सरस्वती समझाती है कि 'आश्रम का पालन करना चाहिए। कारण, स्त्री के अभाव में जो घर रहता है, वह धर्म और अधर्म सभी छोड़ देता है और स्त्री को छोड़कर जो बन जाता है उसके बन के सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं।' साथ ही निवृत्ति को सहधर्मिणी के रूप में अंगीकार करने तथा विवेक को यौवराज्य की आज्ञा देती हुई यह बतलाती है कि कुछ समय पश्चात् विष्णु-भक्ति के प्रसाद से वेदसिद्धि के गर्भ से 'प्रबोध' नामक पुत्र की उत्पत्ति होगी। मन को कुछ नहीं सूझता और किंकर्तव्यविमूढ़ होकर देवी से ऐसा उपदेश देने की विनती करता है जिससे जन्म-मरण से छुटकारा मिल जाय। सरस्वती उसे व्यासपुत्र शुकदेव की गाथा सुनाती है और बतलाती है कि वह दुःख-सुख को समान समझकर अपने वास्तविक रूप पारब्रह्मत्व को जानने का प्रयत्न करे।

सरस्वती के उपदेश से 'मन' के शुद्ध हो जाने पर विवेक और जीव का संवाद सामने आता है। विवेक जीव को समझाता है। विवेक जब जीव से ऋषिराज वसिष्ठ के तप करने पर शिव जी द्वारा उनको बतलाई हुई पूजा-पद्धति का स्वरूप कह लेता है तो फिर उसे सावधान कर कहता है—

रानी के उपदेश ते, ज्यों जीत्यो नरनाथ।
त्यों अब बुद्धि विलासिनी, बल जीतहु गणनाथ॥
(वि० गी०, प्र० १६, छं० २)

और इस 'विलासिनी बुद्धि' से बचने का उसे कई प्रकार से उपदेश देता है तथा दृष्टान्तों द्वारा अपने अभिमत को व्यक्त करता है। साथ ही राजा शिखिध्वज और रानी चूड़ाला की कथा के द्वारा उसे यह भी बतलाता है कि वासनारूप चित्त में

उत्पन्न 'अहं' का नाश ही 'सर्वस्व त्याग' है। और 'अहं' का नाश होते ही परम प्रकाश का उदय हो जाता है।[1]

विवेक के भान्ति-भान्ति के ज्ञानोपदेश से जब जीव की जड़ता दूर हो जाती है और वह शुद्ध हो जाता है तो शान्ति और श्रद्धा भी वहीं आ पहुँचती हैं जहाँ पर विवेक होता है। मन को जीव के वशीभूत हुआ देखकर श्रद्धा को विश्वास हो जाता है कि अब विवेक से जीव का अनुराग प्रतिदिन बढ़ता ही जायेगा। परन्तु इधर शान्ति को और ही सूझती है और वह विष्णुभक्ति के पास वेदसिद्धि को बुलाने के लिए जाती है। वेदसिद्धि पहले तो प्रियतम की निष्ठुरता का उपालम्भ देती हुई जाने के लिए सहमत नहीं होती पर फिर शान्ति के समझाने-बुझाने पर तैयार हो जाती है। उसके आगमन पर जीव उससे पूछता है कि उसने इतने दिन कहाँ बिताए। उत्तर में वह उन स्थानों का विस्तृत विवरण देती है जहाँ वह इतने दिन रही थी। वह बतलाती है कि सबसे पहले वह वेदविद्या (यज्ञविद्या) के पास गई किन्तु वह उसके विचारों का आदर न कर सकी, अतएव वहाँ से वह मीमांसा के पास पहुँची। वहाँ भी किसी को अपने विचारों का आदर करने वाला न पाकर वहाँ से चल पड़ी और तर्कविद्या के पास पहुँची। तर्कविद्या ने भी उसके विचारों से कोई सहमति प्रकट न की। उसके समीपवर्ती लोगों ने तो उसे मिलकर बाँधने का ही प्रयत्न किया। तब वहाँ से भागकर वह दण्डकारण्य में पहुँची, जहाँ राम ने उसकी रक्षा की। वहाँ वह गीता के घर में आदरपूर्वक रही। वेदसिद्धि की रामकहानी के अनन्तर जीव के फिर प्रश्न करने पर उसको जीव-जाग्रत्, जाग्रत्, महा-जाग्रत्, जाग्रत्-स्वप्न, स्वप्न, स्वप्न-जाग्रत् और सुषुप्ति नामक अज्ञान की सप्तभूमिकाओं तथा शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभावना और तुरीया नामक ज्ञान की सप्तभूमिकाओं का ब्योरा दिया जाता है। ज्ञान की इन सप्तभूमिकाओं को पार कर किस प्रकार विदेह की रीति से प्रह्लाद ने राज्य किया यही वेदसिद्धि को इष्ट है। इसी का प्रतिपादन वह आगे चलकर जीव के पूछने पर यों करती है।[2] फिर 'बलि-विज्ञान' की बात जीव के उठाने पर वेदसिद्धि उसका भी बोध करा देती है। वेदसिद्धि उसे उपदेश देती है कि वह भी बलि की भाँति भ्रम का परित्याग कर ब्रह्म में लीन होकर परमानन्द प्राप्त करे।

इसके बाद वेदसिद्धि जीव को सृष्टि की उत्पत्ति का कारण, संगति के दोष, महाप्रलय में परमेश्वर के बन्धन में पड़ने का कारण, ज्ञान की उपर्युक्त सप्तभूमिकाओं का उल्लेख, ब्रह्म के भिन्न-भिन्न नामों आदि के सम्बन्ध में ज्ञानोपदेश देती है। अन्त में जीव को 'अहंकार' के भेदों सात्विक, राजसिक और तामसिक का ज्ञान कराती हुई बतलाती है कि 'अहंकार' के नाश होने पर मोह दूर हो जाता है और प्रबोध का उदय

---

१. वि० गी०, प्र० १६, छं० ६५-६७।

२. राज्य कर्‌यों प्रह्लाद यों, अहंकारि को छाँड़ि।
त्यों तुमहूँ या लोक में, राज्य करो अरि खाँडि ॥

—वि० गी०, प्र० १८, छं० ३२

होता है और जीव जीवनमुक्त हो जाता है। साथ ही जीवनमुक्त, विदेह और महात्यागी के लक्षण भी बताती है। निदान वेदसिद्धि के भाँति-भाँति के उपदेश से जीव को समस्त संसार मिथ्या प्रतीत होने लगता है और अपने वास्तविक रूप पारब्रह्मत्व का ज्ञान होने पर उसके हृदय में प्रबोध का उदय हो जाता है। इस प्रकार 'विज्ञानगीता' की कथा समाप्त होती है। विवेक के द्वारा किस प्रकार मोह का नाश और प्रबोध का उदय होता है, यही 'विज्ञानगीता' का प्रतिपाद्य विषय है। इसी का प्रतिपादन इसमें नाना प्रकार से किया गया है।

आधार और मौलिकता—'विज्ञानगीता' की कथा का प्रमुख आधार 'प्रबोधचन्द्रोदय' है। स्थूल रूप से दोनों ग्रन्थों की कथावस्तु समान ही है परन्तु सूक्ष्म ब्योरों में दोनों की कथावस्तु में पर्याप्त अन्तर है। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक है और 'विज्ञानगीता' एक काव्य-ग्रन्थ है। जहाँ नाटककार को कुछ बन्धन में रहना पड़ता है वहाँ कवि स्वतन्त्र होता है। रंगमंच पर सुगमतापूर्वक न दिखलाई जाने वाली बातों, जैसे युद्ध, विवाह आदि की नाटककार केवल सूचनामात्र ही देता है किन्तु कवि इनका भी विस्तार के साथ वर्णन कर सकता है। इस स्वतन्त्रता का उपयोग करते हुए केशव ने महामोह के अनेक द्वीपों और देशों को जीतने एवं महामोह और विवेक के युद्ध का बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जिसका 'प्रबोधचन्द्रोदय' में अभाव है। दूसरे, केशव ने 'प्रबोधचन्द्रोदय' के कुछ ऐसे दृश्यों का जान-बूझकर उल्लेख नहीं किया है, जिनको छोड़ देने से मूल-कथा के विकास में कोई अन्तर नहीं आता। तीसरे, नवीनता की भावना से प्रेरित होकर कथानक में बहुत सी बातें केशव ने अपनी ओर से भी जोड़ दी हैं, जिनका आधार उक्त नाटक न होकर 'योगवासिष्ठ', 'भागवत', 'गीता' आदि ग्रन्थ हैं। ज्ञान-चर्चा के प्रसंग में उल्लिखित गाधि-ऋषि, राजा शिखिध्वज, व्यासपुत्र शुकदेव, प्रह्लाद, बलि आदि के आख्यानों एवं ज्ञान-अज्ञान की भूमिकाओं के वर्णन का सन्निवेश 'योगवासिष्ठ' नामक ग्रन्थ के आधार पर किया गया है। सूक्ष्म ब्योरों के अन्तर्गत कुछ अन्य स्थलों पर भी 'योगवासिष्ठ' के दार्शनिक सिद्धान्तों की छाप दिखलाई देती है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। कहीं-कहीं 'विज्ञानगीता' के विचार 'गीता' और 'भागवत' के दार्शनिक विचारों से भी मेल खाते हैं। ब्राह्मणों की पूज्यता का निरूपण तथा नवधा भक्ति का प्रतिपादन 'भागवत' के समान किया गया है। मन और उसकी दशाओं का विवेचन 'गीता' के अनुकरण पर हुआ है। 'विज्ञानगीता' की रचना करते समय केशव के मस्तिष्क में 'गीता' और 'भागवत' के सिद्धान्त विद्यमान थे, जिसकी पुष्टि 'विज्ञानगीता' के दोहे से हो जाती है।[1]

विज्ञानगीता तथा प्रबोधचन्द्रोदय और योगवासिष्ठ—केशव की कथावस्तु 'प्रबोधचन्द्रोदय' की अपेक्षा अधिक नाटकीय ढंग से प्रारम्भ होती है। वीरसिंह के

---

१. कहे भागवत में असम, गीता कहे समान।
अप्रमान कौनहिं करौं, कौनहि करौं प्रमान॥

—वि० गी०, प्र० १६, छं० २७।

प्रश्न के अतिरिक्त शिव-पार्वती-संवाद भी केशव ने अपनी ओर से जोड़ा है। केशव ने नाटक में दिए हुए राजा (विवेक) तथा मति के संवाद को छोड़ दिया है। इस अंश का उल्लेख न करने से कथा के विकास में कोई बाधा उपस्थित नहीं होती है। द्वितीय प्रभाव में काम और रति के कथोपकथन का आधार तो नाटक (अंक १, पृ० २३-२८) है, किन्तु कलि अथवा कलह तथा दिल्ली नगरी की कल्पना केशव की अपनी है। तृतीय प्रभाव में वर्णित दंभ और अहंकार के कथोपकथन का आधार नाटक (अंक २, पृ० ५०-६८) है। केशव का दंभ, अहंकार को दिल्ली नगरी में यमुना पार करते देखता है, परन्तु प्रबोधचन्द्रोदयकार के दंभ ने उसे वाराणसी में ही भागीरथी[1] पार करते देखा है। 'पेट' का वर्णन केशव की सूझ है। चतुर्थ प्रभाव में, सेना-प्रयाण, समुद्र, सरिता, द्वीप आदि के वर्णन केशव के निजी हैं। पंचम प्रभाव में नाटक (अंक २, पृ० ६१-६४) का आधार तो है पर वर्णन कुछ बदले गए हैं। जहाँ केशव की 'मिथ्यादृष्टि' 'महामोह' को, श्रद्धा को पाखण्ड के अर्पण करने का परामर्श देती है वहाँ कृष्णमिश्र का, 'महामोह' स्वयं विचारता है कि यदि 'श्रद्धा' को 'शान्ति' से अलग कर दिया जाये तो 'शान्ति' विरक्त हो जायेगी। 'मिथ्यादृष्टि' के ठाटबाट का वर्णन तथा वाराणसी के पापियों एवं पुण्यात्माओं के वर्णन केशव ने अपनी ओर से जोड़े हैं। षष्ठ प्रभाव केशव की मौलिक उद्भावना का परिचायक है। इसमें गंगा, शिव, वाराणसी तथा मणिकर्णिका के माहात्म्य का वर्णन किया गया है, जो नाटक में नहीं मिलता है। सप्तम प्रभाव में चार्वाक और शिष्य तथा चार्वाक और महामोह की बातचीत अधिकांश नाटक (अंक १, पृ० ७१-७७) से मिलती है। कलि की अवतारणा केशव ने अपनी ओर से की है। नाटक में चार्वाक कलि का नाम[2] तो लेता है पर उसमें उतना विस्तार नहीं है, जितना 'विज्ञानगीता' में किया गया है। अष्टम प्रभाव का आधार नाटक (अंक २) ही है। संन्यासी की कथा, नारीवेश, सती, वृन्दा देवी आदि केशव ने अपनी ओर से जोड़ दिए हैं। केशव की 'शान्ति' पाखण्डियों के स्थानों में 'श्रद्धा' की खोज न मिलने पर प्राणोत्सर्ग करने को उद्यत होती है, किन्तु कृष्णमिश्र की 'शान्ति' पाखण्डियों के स्थलों को देखने के पूर्व ही चिता में जल मरने को उत्सुक होती है। नाटक में वर्णित तामसी तथा राजसी श्रद्धा आदि का उल्लेख केशव ने नहीं किया है। नवम प्रभाव में श्रद्धा के 'भैरवी' द्वारा बन्दी बनाये जाने एवं विष्णुभक्ति द्वारा उससे मुक्त किए जाने का जो उल्लेख है, वह नाटक (अंक ४, पृ० १३२-१३४) के समान ही है। नाटक में 'श्रद्धा' ने मैत्री को विष्णुभक्ति के आदेश का जो वर्णन किया है वह 'विज्ञानगीता' की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। 'विज्ञानगीता' में मैत्री का कोई उल्लेख नहीं है। केशव का 'संतोष', 'क्रोध' को जीतने के लिए उपयुक्त बताया गया है पर कृष्णमिश्र का 'संतोष' 'लोभ'

---

१. (विलोक्य) कोऽप्ययं पान्थो भागीरथीमुत्तीर्य साम्प्रतमित एवाभिवर्तते।
—प्र० चं०, अंक० २, पृ० ५२।

२. तदत्र हेतुर्न कलिर्न चाप्यहं प्रभो :
—प्र० चं०, अंक० २, श्लो० २५, पृ० ७६।

को जीतने में समर्थ कहा गया है—

राजा—वेगवति आहूयतां लोभस्य जेता संतोषः ।

(अंक ४, पृ० १५२)

नाटक में 'क्रोध' की विजय के लिए 'संतोष' के स्थान पर 'क्षमा' आया है—

राजा—वेगवति । क्रोधस्य विजयाय क्षमैवाहूयताम् ।

(अंक ४, पृ० १४८)

'उद्यम' का नाटक में कोई उल्लेख नहीं है । दशम प्रभाव की कथावस्तु में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है । वर्षा तथा शरद् ऋतुओं का वर्णन नाटक में नहीं है । एकादश प्रभाव में विश्वनाथपंचक और गंगाष्टक का समावेश केशव की मौलिक प्रवृत्ति के फलस्वरूप किया गया है । बिन्दुमाधवाष्टक के लिखने की प्रेरणा केशव को सम्भवत: तुलसी की 'विनयपत्रिका' में काशी के प्रसंग में दिए हुए बिन्दुमाधव के वर्णन (विनयपत्रिका, छं० २२) से मिली जान पड़ती है । द्वादश प्रभाव में महामोह तथा विवेक की सेनाओं में जो युद्ध ठाना है उसका वर्णन नाटक (अंक ५, पृ० १६८-१७६) में भी उसी विस्तार के साथ 'श्रद्धा' द्वारा 'विष्णुभक्ति' को कराया गया है । नाटक में पुत्रपौत्रादिक के शोक में 'मन' का जीवनोत्सर्ग करने का विचार तथा 'विष्णुभक्ति' द्वारा उसके रोकने एवं 'मन' के हृदय में वैराग्य उत्पन्न करने के लिए 'सरस्वती' के भेजे जाने का निश्चय आदि बातों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है । त्रयोदश प्रभाव में 'मन' को दिया गया 'सरस्वती' का ज्ञानोपदेश नाटक की अपेक्षा अधिक विस्तारपूर्वक वर्णित है । 'मन' को माया की विचित्रता समझाने के निमित 'सरस्वती' द्वारा कही गई गाधि-ऋषि की कथा का आधार नाटक न होकर 'योगवासिष्ठ' है[1] । केशव ने यह कथा 'योगवासिष्ठ' की अपेक्षा संक्षिप्त रूप में दी है । हाँ, कथा के अन्तिम अंश में, जिसमें कीर देश में पता लगाने जाने पर गाधि ऋषि के उसी वृत्तान्त के सुनने का उल्लेख है जिसका साक्षात्कार उन्होंने मोहावस्था में किया था, केशव की मौलिकता प्रतिफलित हो रही है (वि० गी०, प्र० १३, छं० ६०-८०) । चतुर्दश प्रभाव में उल्लिखित 'मन' के हृदय में वैराग्योत्पत्ति तथा उसका 'निवृत्ति' को सहधर्मिणी के रूप के अंगीकार करना, 'वेदसिद्धि' के गर्भ से 'प्रबोध' नामक पुत्र का उदय होना आदि बातें नाटक में कुछ परिवर्तित रूप में दी गई हैं । शुकदेव की कथा का आधार 'योगवासिष्ठ' है ।[2] केवल दो-एक स्थलों पर सूक्ष्म भेद को छोड़कर दोनों ग्रन्थों की कथा अधिकांश एक ही है । पंचदश प्रभाव में वर्णित शिव तथा वसिष्ठ के कथोपकथन के अन्तर्गत देवनिर्णय और उसकी पूजन-विधि आदि प्रसंगों का आधार नाटक न होकर 'योगवासिष्ठ' का शिव-वसिष्ठ आख्यान है ।[3] केशव ने इस कथा में केवल प्रकृत विषय से सम्बन्ध रखने वाली बातों को ही लिया है । 'योगवासिष्ठ' में यह आख्यान अधिक विस्तार के साथ तो अवश्य दिया

---

१. योगवासिष्ठ (भाषा), उपशम प्रकरण, सर्ग ४४-४६, पृ० ३२६-३३५ ।
२. वही, मुमुक्षु प्रकरण, सर्ग १, पृ० ३६-४० ।
३. वही, निर्वाण प्रकरण, सर्ग २८, पृ० ४३६-४३७ ।

गया है, किन्तु उतना सुबोध एवं सुस्पष्ट नहीं है। षोडश प्रभाव में दिया गया राजा शिखिध्वज का आख्यान 'योगवासिष्ठ' से लिया गया है[१]। केशव का यह आख्यान 'योगवासिष्ठ' की अपेक्षा बहुत संक्षिप्त है जिससे मूल कथा की बहुत सी बातें छूट गई हैं। कहीं-कहीं सूक्ष्म भेद भी परिलक्षित होता है। सप्तदश प्रभाव की कथावस्तु नाटक (अंक ६) से मिलती है। अन्तर केवल इतना है कि 'विज्ञानगीता' के 'जीव' तथा 'वेदसिद्धि' नाटक में क्रमशः 'पुरुष' और 'उपनिषद्' बन गए हैं। अज्ञान-ज्ञान की भूमिकाओं का वर्णन 'योगवासिष्ठ' के सदृश ही है[२]। केवल 'योगवासिष्ठ' की पहली भूमिका 'बीज-जाग्रत्' को केशव ने 'जीव-जाग्रत्' (वि० गी०, प्र० २१, छं० ४२) लिखा है। संभवतः संपादन की भूल से ऐसा हो गया है। केशव के लक्षण अपेक्षाकृत अस्पष्ट हैं। अष्टादश तथा एकोनविंशति प्रभावों में वर्णित क्रमशः प्रह्लाद की कथा तथा बलि-विज्ञान की कथा 'योगवासिष्ठ' पर आधारित है[३]। कथाएं अवश्य 'योगवासिष्ठ' की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त रूप में दी गई हैं। विंशति प्रभाव का आधार भी 'योगवासिष्ठ' ही है। इसके अतिरिक्त अन्य दार्शनिक-विषय-सम्बन्धी ग्रन्थों का भी इस पर प्रभाव जान पड़ता है। एकविंशति प्रभाव में तो 'प्रबोधचन्द्रोदय' का आधार नाम-मात्र का ही प्रतीत होता है।

'विज्ञानगीता' में दी हुई गाधि-ऋषि, शुकदेव, राजा शिखिध्वज आदि कथाओं के अतिरिक्त केशव ने कुछ अन्य विचार भी 'योगवासिष्ठ' के आधार पर लिखे हैं। इस प्रकार के कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं। 'विज्ञानगीता' के अनुसार मुक्तिपुरी के चार द्वारपाल हैं—सत्संग, शम, सन्तोष तथा विचार। इसमें से एक को भी अपना लेने से सुखपूर्वक प्रभु-द्वार में प्रवेश प्राप्त हो जाता है[४]। 'योगवासिष्ठ' में भी यही लिखा है[५]। अतः केशव इस सम्बन्ध में 'योगवासिष्ठ' के ऋणी हैं।

'योगवासिष्ठ' में सृष्टि की उत्पत्ति समझाते हुए वसिष्ठ राम को बतलाते हैं कि कभी सृष्टि की उत्पत्ति सदाशिव से होती है, कभी ब्रह्मा से, कभी विष्णु से तथा कभी उसकी रचना मुनीश्वर कर लेते हैं। कभी ब्रह्मा कमल से उत्पन्न होते हैं, कभी जल से और कभी अंडे से······सृष्टि····· कभी पाषाणमयी होती है, कभी मांसमय, कभी सुवर्णमय[६]। वसिष्ठ जी के इस कथन का सहारा लेकर केशव लिखते हैं—

---

१. योगवासिष्ठ, निर्वाण प्रकरण, सर्ग ६६, पृ० ४८७-४८८।
२. वही, उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग ६२, पृ० १६१ (ज्ञान की भूमिका-वर्णन) तथा उत्पत्ति प्रकरण, सर्ग १३, पृ० १६१-१६२ (अज्ञान की भूमिका-वर्णन)।
३. योगवासिष्ठ, उपशम प्रकरण, सर्ग ३०-४३, पृ० ३१०-३२१ (प्रहलाद-चरित्र) तथा सर्ग २२-२६, पृ० ३०२-३१० (बलिकथा)।
४. वि० गी०, प्र० १४, छं० ४५-४६।
५. योगवासिष्ठ, मुमुक्षु प्रकरण, सर्ग ११, पृ० ५०।
६. वही , स्थिति प्रकरण, सर्ग ४७, पृ० २५२।

कबहूँ यह सृष्टि महाशिव ते सुनि, कबहूँ विधि ते कबहूँ हरि ते गुनि।
कबहूँ विधि होत सरोरुह के मग, कबहूँ जल अंबर ते कहिये जग ॥
कबहूँ धरणी पल में भय पाहन, कबहूँ जलमय मृण में अब कंचन[1] ॥

इसी प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति के प्रकरण[2] को भी केशव ने 'योगवासिष्ठ' में दिए हुए जगत्-रूपी वृक्ष की उत्पत्ति के वर्णन[3] को ही आधार मानकर लिखा है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव ने 'विज्ञानगीता' में 'प्रबोधचन्द्रोदय' तथा 'योगवासिष्ठ' आदि ग्रन्थों का सहारा लिया है पर साथ ही अपनी मौलिकता का भी अच्छा परिचय दिया है।

भावव्यंजना : 'विज्ञानगीता' प्रमुख रूप से दार्शनिक-विषय-सम्बन्धी ग्रन्थ है। अतः इसमें 'निर्वेद' भाव की व्यंजना के अनेक अवसरों का आना स्वाभाविक ही है, किन्तु प्रसंगवश भय, शोक आदि अन्य भावों का भी यथास्थान निरूपण हुआ है।

'मन' के हृदय के शोक-शमन के लिए, संसार की अनित्यता एवं ब्रह्म की नित्यता का प्रतिपादन करने वाले 'संकल्प' के निम्नांकित शब्दों में 'निर्वेद' की अच्छी व्यंजना हुई है—

पुत्र मित्र कलत्र के तजि वत्स दुःसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग ॥
होत कल्प सतायु देव तऊ सबै नशि जात।
संसार की गति जानि कै अब कौन को पछितात ॥
एक ब्रह्म सांचो सदा, झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुत मित्र विचार ॥
तुम्हें गए तजि बार बहु, तुमहुं तजे बहु बार।
तिन लगि सोच कहा, करो रे बावरे गंवार ॥

(वि० गी०, प्र० १३, छं० ७-६)

इसी प्रसंग में 'सरस्वती' का भी उपदेशात्मक कथन 'शम' अथवा 'निर्वेद' का व्यंजक है। सरस्वती 'मन' को समझाती हुई कहती है :

यह जग जैसे चूरिकए, दीह बाच सब होइ।
को जाने उड़ि जात कहुं, मरे न मिलई कोइ ॥

(वि० गी०, प्र० १३, छं० १५)

श्री भगवान् द्वारा गाधि-ऋषि को दिए गए निम्नलिखित उपदेश में भी 'निर्वेद' की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है—

पुत्र कलत्रनि आदि दै, झूठो सब संसार।
जाको देखो स्वप्न सो, सांचो ब्रह्मविचार ॥

---

१. वि० गी०, प्र० २१, छं० ११-१२।
२. वही , प्र० २०, छं० २,३ तथा ७-१२।
३. योगवासिष्ठ, उपशम प्रकरण, सर्ग ८७, पृ० ९१२-९१६।

जन्म-मरण तेरो मृषा, श्वपच और नृप-देव।
भूठो सिगरी नाउ है, माया कर्म अलेख॥
ताते तुम भ्रम छांडि के, होहु ब्रह्म सो लीन।
यह कहि अन्तर्ध्यान तब, भए भगवंत प्रवीन॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० ८४-८६)

केशव ने 'क्रोध' की भी बड़ी मनोहर व्यंजना की है। जब रानी 'मिथ्या-दृष्टि' 'महामोह' को 'विवेक' के साथ युद्ध न करने का परामर्श देती है तो 'महामोह' तमककर बोल उठता है—

लोक विलोक में जाग विराग में पाठ में आलस बास बसाऊँ।
एक विवेक कहा बपुरा गुण ज्ञान गुरुनि के गर्व्व घटाऊँ॥
हौं अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बहाऊं।
धीरज धूरि मिलै कहि केशव धर्म के धामनि धूरि जमाऊँ॥
(वि० गी०, प्र० ६, छं० ६७)

'महामोह' तथा 'विवेक' के दलों में हुए घमासान युद्ध के दृश्य को देखकर किसके हृदय में 'भय' का संचार नहीं होता।

भीम भांति विलोकियै रणभूमि भूति अन्त।
श्रोण की सरिता दुरन्त अनन्त रूप सुनन्त॥
यत्र तत्र धुजा परे पट दीह देहनि भूप।
टूटि टूटि परे मनो बहुवात वृक्ष अनूप॥
पुंज कुंजर शुभ्र स्यंदन शोभियं अति शूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणित पूर॥
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारुचमर विशाल।
चक्र से रथ चक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० २-३)

'विवेक' के योद्धाओं का 'महामोह' तथा उसके वीरों पर जो आतंक छा जाता है उसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

महामोह तब भुकि उठे, लखि सतसंग विवेक।
भरहराइ भट भगि चले, कहा अनेक द एक॥
तुमुल शब्द दुहूँ दिश भयो, भूतल हल्यो अकाश।
देव अदेवनि जानियो, भयो विवेक विनाश॥
ब्रह्मदोष तब आपने, वंश हन्यो करि कोह।
जाइ पिता के पेट में, भागि चल्यो महामोह॥
(वि० गी०, प्र० १२, छं० १५-१७)

रण में पुत्रपौत्रादिक के विनाश का दारुण समाचार मिलने पर 'मन' का हृदय शोकविह्वल हो पुकार उठता है—

हा काम हा तनय क्रोध विरोध, हा ब्रह्मदोष नृपदोष कृतघ्न क्षोम।
मोको परी विपति को न छुड़ाइ लेइ कासों कहों वचन कौन बचाइ देइ॥
(वि० गी०, प्र० १२, छं० ४)

'विज्ञानगीता' में 'रति' की व्यंजना के लिए कोई अवसर नहीं आता, तो भी इसकी एक झलक उस समय दिखलाई देती है जब अन्तःपुर में रूपवती युवतियाँ शुकदेव को अनेक प्रकार से रिझाने तथा मोहित करने का प्रयास करती हुई दिखाई देती हैं।

सुन्दरि आइ सुगंधनि लीने, योवन जोर स्वरूप नवीने।
मज्जन कै तिन्ह न्हान कराए, अंग अनेक सुगंध चढ़ाए॥
भोजन तौ बहु भांति जिवाए, दर्पन पान खवाय दिखाए।
वस्त्र नवीन सबै पहिराए, सुन्दर साधु स्वरूप सुहाए॥
नाचि गाइ बजाइ बीननि हाव भाव बताव।
मंदहास विलास सौं परिरम्भनादि प्रभाव।
कै थकीं सब भांति भांति रहस्य लीनि बनाइ॥
(वि० गी०, प्र० १४, छं० ३२-३४)

प्रकृति-वर्णन : 'विज्ञानगीता' में शरद् के सरस एवं सजीव वर्णन को देखकर बरबस यह मानना पड़ता है कि केशव में प्रकृति के सुरम्य दृश्यों को परखने की पूर्ण क्षमता थी। यहाँ उनकी कल्पना ने उनका खूब साथ दिया है। सूझ समय की है। कवि ने लिखा है—

बन्दे नरदेव देव केशव परमहंस राजै द्विजराज वपु पावन प्रबल है।
अवनि अकाशहू प्रकाशमान केशोराइ दिशि दिशि देश देश इच्छतु सकल है॥
पितर प्रयाण करें, दूषण सकल हरें मन वच काइ भवभूषण अमल है।
ठौर ठौर बरणत कवि शिरमौर और शरद प्रकाश किधों गंगा जू को जल है॥
जहाँ जहाँ दुर्गापाठ पठत प्रवीण द्विज धाम धाम धूम घर मलिन प्रकाश सो।
राज राज सिंहासन संजुत चंवर छत्र बाजत निशान गज गाजत हुलास सो॥
ठौर ठौर ज्वालामुखी दीसे दीपमालिका सी शोभित शृंगार हार कुसुम सुवासो।
केशोदास आसपास लसत परमहंस देवी को सदन किधों शरद प्रकाश सो॥
(वि० गी०, प्र० १०, छं० १४-१५)

वस्तु-वर्णन : केशव ने वस्तु-वर्णन में भी अपनी सुरुचि का ही परिचय दिया है। उनका वस्तु-वर्णन ठिकाने का वस्तु-वर्णन है। कवि की दृष्टि में दिल्ली दम्भपुरी है। इसका कितना सच्चा चित्र खींचा गया है।

काम कुतूहल में विलसैं निशवारवधू मन मान हरे।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकनि उज्ज्वल अम्बर अंगधरे॥
ऐसे तपोतप ऐसे जपोजप ऐसे पढ़ो श्रुति शास्त्र खरे।
ऐसो योग जयो ऐसे यज्ञ भयों बहु लोगनि को उपदेश करे॥
(वि० गी०, प्र० ३, छं० ३)

केशव के द्वारा अंकित पाखण्डपुरी (मथुरा) का चित्र भी स्वाभाविक है—

काम कुमार से नन्दकुमार की केलि थली जहं नित्य नई है।
बानकी पावनता तन लागत पापिनिहूं कहं मुक्ति भई है।
पुष्प शरासन हा घरही बरही रति कीरति जीति लई है।
पुष्प शरासन श्री मथुराभव मान भवा गुण भोर भई है॥

(वि० गी०, प्र० ४, छं० ४०)

केशव ने अनेक द्वीपों, सरिताओं, पर्वतों तथा भूखण्डों का वर्णन भी यथातथ्य किया है। जम्बूद्वीप का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है:

आयो जम्बूद्वीप में, महामोह रण रुद्र।
योजन लक्ष प्रमाण तहं, देख्यो क्षार समुद्र॥
है नवखण्ड विराजत जाके, मानहुं सुन्दर रूपक ताके।
एक इलावृत खण्ड कहावै, मन्दर ते अतिशोभहि पावै॥
ताते चली सरित बहु मोदा, नाम कहावति है अरुणोदा।
चारि तहां शुभ बाग विराजै, नित्य नए फल फूलनि साजै॥
चित्ररथ अतिचारु तहं वैभ्राजकु इहि नाम।
और सर्वतोभद्र पुनि, नन्दन सब सुखधाम॥

(वि० गी०, प्र० ४, छं० २८-३१)

विवेक की नगरी वाराणसी (जहाँ बिन्दुमाधव तथा विश्वनाथ रहते हैं) का वर्णन भी बहुत ही सजीव है। देखिये—

देखियो शिव की पुरी शिवरूप ही सुखदानि।
शेष पै न अशेष आनन जाइ बेष बखानि॥
न्हात सन्त अनन्त बेष तरंगिणीयुत तीर।
एक पूजत देवता इक ध्यान धारण धीर॥
एक मण्डित मंडली महं करत वेद विचार।
एक नाम रटैं पढ़ैं श्रुति सुद्ध सारणसार॥
एक दण्ड धरे कमंडलु एक खंडित चीर।
एक संयम नियमादिक एक साधि समीर॥
एक हैं अनुरक्त कर्मनि एक नित्य विरक्त।
बिन्दुमाधव केउ माधव के कहावत भक्त॥

(वि० गी०, प्र० ११, छं० १०)

मिथ्यादृष्टि के राजसी ठाट-बाट का चित्रण भी बड़ा स्वाभाविक हुआ है।

दुराशा जहां तृष्णिका देह धारे, दुहूं ओर दोऊ भले चौंर ढारें।
बड़ी आरसी चारु चिन्ता दिखावैं, गुमानी घरे पान निन्दा खवावैं॥
पिपासा क्षुधा क्षुद्र वीना बजावैं, प्रलच्छी अलच्छी दुओ गीत गावैं।
लिये अन्न शंका असाभानि राचें नए नृत्य नाना असंतुष्ट नाचैं॥

(वि० गी०, प्र० ५, छं० १०-११)

'पेट' की महिमा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

पेटनि पेटनि हीं भटक्यो बहु भेटनि को पदवी ननक्यों जू।
पेट तें पेट लियो निकस्यो फिर के पुनि पेटही सों अटक्यो जू॥
पेट को चेरो सबै जग काहू के पेटन पेट समात तक्यो जू।
पेटके पंचन पावहु केशव पेटहि पोषत पेट पक्यो जू॥

(वि० गी०, प्र० ३, छं० २८)

कवि के युद्ध-स्थल के वर्णन को पढ़कर तो युद्ध-स्थल का वास्तविक दृश्य ही आँखों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है—

हय हींस गजि गयंद घोष रथौनि के तेहि काल।
बहु भेव रंज मृदंग तुंग बजी बड़ी करनाल॥
बहु ढोल दुंदुभि लोल राजत विरुद बंदि प्रकाश।
तहं धूरि भूरि उठी दशों दिशि पूरियौ सु प्रकाश॥

(वि० गी०, प्र० १२, छं० २)

स्वरूप-चित्रण : केशव स्वरूप-चित्रण में भी पूर्णतः सफल ही रहे हैं। उन्होंने पाखण्डी मठपालों तथा साधुओं का जो रूप[1] अंकित किया है वह आज भी यत्र-तत्र देखने में आता है। केशव के कापालिक तथा संन्यासी के चित्र भी बड़े सजीव एवं स्वाभाविक बन पड़े हैं। देखिए, कापालिक को कितने भीषण एवं वीभत्स रूप में चित्रित किया गया—

लिये नृकपाल नृदेह कराल, करे नरमुंडनि की उरमाल।
पिये नरश्रोन मिल्यो मदिरा सो कपालि कु देखिये भीम प्रभा सों।

तथाः वेद मिश्रित मांस होमत अग्नि में बहु भांति सों।
शुद्ध ब्रह्म कपाल शोणित को पियो दिन राति सों॥
विप्र बालक जाल लै बलि देत हों न हिए लजों।
देवसिद्ध प्रसिद्ध कन्यनि सों रमों भव को भजों॥

(वि० गी०, प्र० ८, छं० १७; २०)

शिष्यमण्डली में बैठे हुए संन्यासी का चित्र भी बड़ा स्वाभाविक एवं यथातथ्य है।

कोपीन मंडित दण्ड सों नख कांख दीरघ बार।
मालाक्ष शोभित हस्तपुस्तक करत वस्तुविचार॥
संसार को बहुधा विरोध कुचित्त शोधक जानि।
ठाढ़ी भई तहं शान्ति सो करुणा सखी सुख मानि॥

(वि० गि०, प्र० ८, छं० २२)

पात्रों का चित्रण : 'विज्ञानगीता' में मानव चित्त-वृत्तियों को पात्रों का स्वरूप दिया गया है। मानव चित्त-वृत्तियों का चित्रण करते समय भी केशव का ध्यान उनके स्वरूप की विशेषता की ओर रहा है। 'दम्भ' के दिल्ली नगरी में जाने

---

१. वि० गी०, प्र० ३, छं० ७-६।

पर जब शिष्य उसे अपने गुरु के आसन से दूर बैठने तथा उसे स्पर्श न करने को कहता है तो 'दम्भ' अपनी डींग हाँकने लगता है।[१] इसी प्रकार केशव ने 'अहंकार' के स्वभाव को भी झलका दिया है।[२]

साथ ही 'महामोह' के स्वभाव का भी दर्शन कर लीजिए। उसको अपने सहायकों का बड़ा घमण्ड है। उन्हीं के बल-बूते पर उसका यहाँ तक कथन है कि—

लोक विलोक में जाग विराग में पाठ में आलस बास बसाऊं।
एक विवेक कहा बपुरा गुण ज्ञान गुरुनि के गर्व्व घटाऊं॥
हों अपने विविचार विचार अचार विचार अपार बहाऊं।
धीरज धूरि मिलै कहि केशव धर्म के धामनि धूरि जमाऊं॥[३]

'विजय' का मूलमंत्र है—काम, क्रोध, लोभ, प्रवृत्ति आदि का नाश कर अपने पिता 'जीव' को जीवनमुक्त करना।[४]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव का यह ग्रन्थ भी प्रबन्ध-काव्य की कसौटी पर खरा उतरा है। कथा के बीच-बीच में जो वर्णन, व्यक्तियों के चरित्र, मानव चित्त-वृत्तियों के चित्रण अथवा भावों के प्रदर्शन आदि का समावेश हुआ है उससे वर्ण्य विषय के प्रतिपादन में रोचकता एवं बोधगम्यता बढ़ गई है।

(घ) जहांगीर-जस-चन्द्रिका : जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है यह ग्रन्थ सम्राट् जहाँगीर के यश की चन्द्रिका है। केशव ने इस ग्रन्थ में अनेक सुलतानों, बादशाहों एवं शाहों का वर्णन किया है और बताया है कि जहांगीर के सामने उनका प्रताप कुछ भी न था। इसकी शैली 'वीरसिंहदेव-चरित' वाली ही है। यहाँ 'दान' और 'लोभ' का स्थान 'उदय' और 'भाग्य' ने ले लिया है और दोनों के विवाद का भार वीरसिंह के स्थान पर बादशाह जहाँगीर पर आ जाता है। ग्रन्थ 'वीरसिंहदेव-चरित' की अपेक्षा छोटा अवश्य है।

---

१. एक समैं हम सत्यपुरी हि गए अवलोकन पाप प्रनाशन।
ब्रह्म सभा मंहराइ उठि कहि केशव केवल पाप विनाशन॥
देव सहाइक लोक विनाइक बैठि को हम ल्याइ कै आसन।
पावन बावन के पग को थल मोहि बताइ दयो कमलासन॥
(वि० गी०, प्र० ३, छं० १७)

२. काम न काम की सुन्दरताई पुरंदर की प्रभुता कहि को है।
बुद्धि के गंधु गणेश में नाहिने को कुरखेत की वृद्धि हि टोहै॥
पीतक के तन ते जु रती कन बात में पातक सों बरु सोहै।
केतिक शुद्धि है गंग में केशव सिद्धि महेश की मोहित मोहै॥
(वि० गी०, प्र० ३, छं० १८)

३. वि० गी०, प्र० ६, छं० ६७।

४. काम के काम अकाम करो अब वेगि अकामनि आनि अरो जू।
मोह के मोह को लोभ के लोभ को क्रोध के क्रोध को नाश करो जू॥
कीजै प्रवृत्ति निवृत्ति प्रवृत्ति के पंथ निवृत्ति के पाँइ धरो जू।
अपने बाप को आपनै हाथ कै जीवहि जीवनमुक्त करो जू॥
(वि० गी०, प्र० ६, छं० १८)

कथावस्तु : इस प्रबन्ध की कथा 'उदय' और 'भाग्य' के संवाद के रूप में प्रकट होती है। एक बार एलच शाह नवाज (खाँ) केशव से प्रश्न करते हैं—

कौनहु पूरब पुन्य तें उदय भाग बल पाय।
एलचि साहि निवाज कों मिल्यो केसोराय॥
एक काल तिहि बूझियों पाइ सबन को मर्म।
कहिजै केसोराय जू उद्दिम बड़ो कि कर्म॥

(ज० ज० चं०, छं० ६-१०)

इसका समाधान केशव करते हैं—

रन रूरे रन सूर सुनि हारक विषम विषादु।
भयौ जु उद्दिम कर्म प्रति उदय भाग सों बादु॥
एक काल बैठे हुते गंगाजू के तीर।
उदय भाग दोऊ बने सुन्दर धरे सरीर॥
तिनहिं देखि बूझन गयो तहाँ एक द्विज दीन।
हौं दरिद तें क्यों छुटौं कहि जै मंत्र प्रवीन॥

(ज० ज० चं०, छं० ११-१३)

फिर तो 'उदय' और 'भाग्य' दोनों में शास्त्रार्थ छिड़ जाता है। जब विवाद बढ़ता ही जाता है तो उन्हें मथुरा पुरी में महादेव जी की सेवा में जाने का आदेश होता है। आदेश सुनते ही वे महादेव की सेवा में उपस्थित होते हैं और उनसे वही प्रश्न करते हैं—

पाइनि परि भूतेस के भाग्य उदय उदार।
पूछे उद्दिम कर्म तें कवनु बड़ो संसार॥

(ज० ज० चं०, छं० २६)

महादेव जहाँगीर का प्रभुत्व एवं न्याय दिखाकर उनको जहाँगीर के दरबार आगरे में भेजते हैं। इस प्रकार दोनों आगरे जाते हैं। यहाँ का समारोह और उल्लास देखते ही बनता है। रा जधानी देखते हुए दोनों जब दरबार में पहुंचते हैं तो वहाँ और ही दृश्य दृष्टिगोच र होता है। जहाँगीर के सभासद तथा सामन्त दरबार में निश्चित क्रम से खड़े रहते हैं। बादशाह के आते ही सब की शिथिलता दूर हो जाती है। बादशाह सिंहासन पर बैठ जाता है। बन्दीजन विरुदगान करते हैं। समय देखकर द्विप्रवेश में ये दोनों भी पहुंच जाते हैं। प्रतिहार सूचना देता है। रामदास को साथ ले जाने के लिए भेजा जाता है। ये आकर दूर ही से देखते हैं कि जहाँगीर के शीश पर मुक्तावलि से सुसज्जित श्वेत छत्र है, चारों ओर चंवर ढ़ला जा रहा है और उसके हाथ में कृपाण है। ऐसे बादशाह द्वारा आदर-सत्कार के किए जाने पर वे दोनों उसको आशीर्वाद देते हैं (छं० १३०-१३१)। इसी बीच एक ब्राह्मण भाट भी वहाँ पहुँच जाता है और बादशाह की प्रशंसा में बड़े चाव से दो कवित्त सुनाता है। बादशाह प्रसन्न होकर रामदास की ओर मुस्करा कर देखता है। रामदास बादशाह का रुख पाकर कहता है कि जो कुछ माँगना

ही माँग ले (छं० १३७-१३८)। विप्रवेशधारी 'उदय' और 'भाग्य' जब बादशाह पर अपना रंग जमा लेते हैं तो वे फिर अपना रूप प्रकट करते हैं। इनके देवरूप का पूजन होता है (छं० १६३)। इनका परिचय पूछा जाने पर सारा रहस्य खुलता है। वे पूछते हैं—

कहिबे उद्यम कर्म में कौन बड़ो संसार।
अपने चित्त बिचारि कै हति संदेह अपार॥

(ज० ज० चं०, छं० १६६)

बादशाह सभासदों तथा अधीनस्थ राजा-महाराजाओं का मत चाहता है। मानसिंह बादशाह को ही उपयुक्त एवं समर्थ बताता है। बादशाह अन्त में निर्णय देता है कि उद्यम और कर्म में कोई छोटा-बड़ा नहीं है, दोनों ही का स्थान समान (छं० १७७-१८०) है। बादशाह के इस निर्णय पर सारी सभा खिल उठती है। पृथ्वी और आकाश में दुंदुभी बज उठती है और देवता जय-जयकार की ध्वनि के साथ पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं (छं० १८१-१८२)। 'भाग्य' और 'उदय' दोनों शकसाहि को सराहते हैं और सबसे आशीर्वाद देने को कहते हैं। काजी, शेख, उमराव, ब्राह्मण, कवि, मन्त्री, केशवराय (स्वयं कवि), उदय, भाग्य आदि सभी बादशाह की प्रशंसा में छन्द पढ़ते हैं और उसे आशीर्वाद देते हैं। 'उदय' और 'भाग्य' प्रसन्न होकर जहाँगीर से वर माँगने को कहते हैं। वह मांगता है यह कि—

वर दीजै मेरे राज में बसिबै सह परिवार।

(ज० ज० चं०, छं० १९७)

केशव की कविता से प्रसन्न होकर जहांगीर उससे भी कुछ मांगने को कहता है। केशव बड़े ही मार्मिक शब्दों में उत्तर देते हैं—

यद्यपि हरि जू माँगिबो दियो हमें उपजाइ।
हौं माँगौं जगदीश पै सुनौ साहि सुखदाइ॥

(ज० जं० चं०, छं० १९९)

यहीं कथा समाप्त हो जाती है।

वस्तु-वर्णन : यों तो राजधानी की छटा की झांकी 'वीरसिंहदेव-चरित' में भी मिल जाती है किन्तु वहाँ यह उतनी खुलकर नहीं दिखाई जा सकी है जितनी कि इस ग्रन्थ में। राजदरबार में सामन्तों के निश्चित क्रम से खड़े होने के वर्णन को पढ़कर सम्राट् जहांगीर के दरबार का वास्तविक दृश्य ही आँखों के सामने उपस्थित हो जाता है। राजधानी की शोभा इतनी अपूर्व है कि देवता भी उसे निहार कर चकित हो जाते हैं—

उदित समान अनुरागनि सों चहूँ भाग साहिबी को आगरो बिलोक्यों आनि आगरो।
आठहूँ दिसानि कैसो आँगन अमित अति भार जैसे वारि वार सातों सुखसागरो॥
चिंतामनि गिरि कैसो भूतल अमोल कियौं कल्पवृच्छ को सो बसु अद्भुत उजागरो।
बात नरदेवन की देवन की कौन गनै जा कहं विमोहे देखि देव देवनागरो॥

(ज० ज० चं०, छं० ४०)

राजदरबार का राग-रंग भी देखते ही बनता है। कहीं दुंदुभियां बज रही हैं तो कहीं सुन्दरियां बीणा बजा रही हैं, कहीं नृत्य हो रहा है तो कहीं किन्नरियां मधुर गान कर रही हैं।

कहूँ सोमना दुंदभी दीह बाजैं। कहूँ भीम झंकार कर्नाल साजैं।
कहूँ सुन्दरी बेनु बीना बजावैं। कहूँ किन्नरी किन्नरी लै सु गावैं।।
कहूँ नृत्यकारी नवी सोभ साजैं। कहूँ भांड बोलैं कहूँ मल्ल गाजैं।
कहूँ भाट भाट्यो करैं मान पावैं। कहूँ बेड़िनी सोत्तिनी गीत गावैं।।

(ज० ज० चं०, छं० ४८-४६)

अतः हमारे विचार में तो केशव का यह प्रबन्ध, लघु होते हुए भी, जिस उद्देश्य को लेकर चला है उसमें पूर्ण सफल हुआ है।

(ङ) रतनबावनी : यह ग्रन्थ मधुकरशाह के पुत्र रतनसेन की वीरता एवं साहस की प्रशंसा में लिखा गया है, जो अकबर की विशाल सेना से युद्ध करता हुआ स्वर्ग सिधार गया था। इस ग्रन्थ में केशव की दृष्टि वीररस के परिपाक पर अधिक रही है।

कथावस्तु : इस ग्रन्थ का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है। इसके पश्चात् उक्त युद्ध के कारण का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है। एक बार मधुकरशाह अकबर के दरबार में बहुत ऊंचा जामा पहनकर गए थे। अकबर ने उनसे इसका कारण पूछा तो मधुकरशाह ने उत्तर दिया कि मेरा देश कंटीली भूमि में है। इन शब्दों को सुनकर अकबर जल-भुन गया और कहने लगा कि अच्छा मैं तुम्हारा घर और देश देख लूंगा[1]। मधुकरशाह को ये शब्द तीर के समान लगे और उन्होंने तुरन्त ही रतनसिंह को पत्र में 'मैं देखों तेरो भवन' आदि अकबर के शब्दों का ठीक-ठीक आशय समझाकर लिख भेजा और अविलम्ब शाही सेना के साथ लोहा लेने के लिए सन्नद्ध हो जाने का भी परामर्श दिया[2]। रतनसेन अकबर के घर देख लेने का ठीक-ठीक अभिप्राय जानकर दल-बल के साथ शाही सेना से युद्ध करने के

---

१. देख अकबर शाह उच्च जामा तिन केरा।
बोले बचन विचारि कहो कारन यहि केरा।।
तब कहत भयव बुंदेलमणि मम सुदेश कंटकि अवन।
करि कोप ओप बोले बचन मैं देखौ तेरो भवन।।

—रतनबावनी (केशव पंचरत्न) पृ० २, छं० ५।

२. सुनत बचन मधुशाह शाह के तीर समानह।
लिखित पत्र ततकाल हाल तिहि बचन प्रमानह।।
जुरहु जुद्ध करि क्रुद्ध जोरि सेना इक ठौरिय।
तोर तोर तन रोर शोर करिये चहुं ओरिय।।
तुव भुजन भार हैं कुंवर यह रतनसेन शोभा लहय।
कछु दिवस गएं गढ़ ओड़छो दिल्लीपति देखन चहय।।

रतनबावनी (केशव पंचरत्न), पृ० २, छं० ६।

लिए कटिबद्ध हो गया और अपने योद्धाओं तथा सामन्तों से भी डटकर सामना करने के लिए कहने लगा। युद्ध के ठन जाने पर जब रतनसेन के धावा बोल देने के कारण पृथ्वी और आकाश में खलबली मच गई तो परमेश्वर विप्र-रूप में प्रकट होकर उसे जीवन का मूल्य समझाने लगे—

जुतौ भूमि तौ बेलि, बेलि लगि भूमि न हारैं।
जुतौ बेलि तौ फूल, फूल लगि बेलि न जारैं॥
जुतौ फूल तौ सुफल, सुफल लगि फूल न तोरैं।
जो फल तौ परिपक्व, पक्व, लगि फलहि न फोरैं॥
जो फल पक्व तौ काम सब, परिवस्त्राँहि जग मंडिये।
प्रान जुतौ पति बहु रहे, पति लगि प्रान न छंडिये[1]॥

इस पर रतनसेन ने उत्तर दिया—

गई भूमि पुनि फिरहि बेलि पुनि जमैं जरे तें।
फुल फूले तें लगहि फूल फूलंत झरे तें॥
केशव विद्या विकट निकट बिसरे तें आवें।
बहुरि होय धन धर्म गई संपति पुनि पावें॥
फिरि होइ स्वभाव सुशील मति जगत गीत यह गाइये।
प्राण गएं फिरि फिरि मिलहिं पति न गएं पति पाइये[2]॥

विप्र ने फिर समझाया कि—

लोकपाल दिग्पाल जित भुवपाल भूमि गुनि।
दानव देव अदेव सिद्ध गंधर्व सर्व मुनि॥
किन्नर नर पशु पच्छि जच्छ रच्छस पन्नग नग।
हिन्दुव तुर्क अनेक और जल थलहु जीव जग॥
सुरपुर नरपुर नागपुर सब सुनि केशव सज्जियहु।
सुनि महाराज मधुशाह-सुव को न जुद्ध जुरि भज्जियहु॥

(रतनबावनी, छं० १७)

कुंवर अपने निश्चय पर अटल रहा और कहने लगा कि महाराज मलखान, रुद्रप्रताप आदि उसके पूर्वजों ने तो प्रतिज्ञा की रक्षा करने के निमित्त अपने प्राण तक भी गंवा दिए थे। विप्र फिर भी कुंवर से अपने वचनों का पालन करने के लिए आग्रह करता ही रहा—

द्विज मांगैं सो देय विप्र को वचन न खंगिय।
द्विज बोलैं सो करिय विप्र को मान न भंगिय॥
परमेश्वर अरु विप्र एक सम जानि सुलिज्जिय।
विप्र बैर नहिं करिय विप्र कहं सर्वसु दिज्जिय॥

---

१. रतनबावनी (केशव पंचरत्न), पृ० २, छं० १०।
२. वही, छं० १२।

सुनि रतनसेन मधुशाहसुव विप्र बोल किन लिज्जियहु ।
कहि केशव तन मन बचन करि विप्र कह्य सुइ किज्जियहु ।।
(रतनबावनी, छं० १६)

कुंवर ने एक न सुनी और कहने लगा कि —

पतिहि गएं मति जाय, गएं मति मान गरैं जिय ।
मान गरे गुन गरैं, गरैं गुन लाज जरैं जिय ।
लाज जरैं, जस भजैं, भजैं जस धरम जाइ सब ।
धरम गए सब करम, करम गए पाप बसैं तब ।
पाप बसैं नरकन परैं, नरकन केशव को सहै ।
यह जानि देहुँ सरबसु तुम्हैं सुपीठ दएं पति ना रहै ।।
(रतनबावनी, छं० २०)

कुंवर को इस प्रकार पति-मति में दृढ़ जानकर विप्र अपने परमेश्वर रूप में आ गया। रतनसेन के साहस और शौर्य से प्रसन्न होकर उससे मुंहमांगा वर मांगने को कहा। रतनसेन मांगता यह है कि वह परिवार-सहित मधुकरशाह की रक्षा ही करता रहे।[1] वर प्राप्त करके कुमार अपने योद्धाओं से कहने लगा कि मर-मिटना है तो मेरे साथ चलो और यदि भागना है तो अभी भाग जाओ। पर वे कब पीछे हटने वाले थे; कहने लगे कि वे अपनी भूमि की रक्षा के लिए युद्धक्षेत्र को ही अपना घर बना लेंगे अर्थात् आजीवन युद्ध करते रहेंगे। शूरवीर योद्धाओं के वचन सुनकर कुंवर फूला न समाया और रण में प्रबल शत्रुसेना का सामना करने के लिए तैयार हो गया। रणक्षेत्र में वीरों के साथ रतनसेन की राजपूती शान को देखकर विष्णु, बृहस्पति, महादेव, शुक्राचार्य, इन्द्र, ब्रह्मा और सूर्य आदि देवताओं ने मिलकर रतनसेन की प्रशंसा में तुरन्त कुछ कविता की और प्रत्येक ने एक-एक उपमा दी। जब घमासान युद्ध ठन गया तो आकाशवाणी हुई कि मैं तुम्हारे साथ हूँ। कुल-मर्यादा और प्रतिष्ठा की रक्षा करो। कोई भी म्लेच्छ बचकर न जाने पाये। समस्त सेना को टुकड़े-टुकड़े कर डालो। निदान रतनसेन अपने दल-बल के साथ अकबर की सेना पर टूट पड़ा और युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ। इस प्रकार उसने सिद्ध कर दिया कि मान गंवाकर जीना मरने से भी बुरा है। कुंवर के निधन के साथ ही केशव का यह प्रबन्ध भी पूर्ण हुआ।

भावव्यंजना : इस ग्रन्थ में वीरोचित 'उत्साह' की व्यंजना सब से अधिक मार्मिक हुई है। बादशाह अकबर की सेना से युद्ध करने के लिए प्रयाण करते हुए योद्धाओं तथा सामन्तों के प्रति रतनसेन की वीरोक्ति है :

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय ।
करहु पेंज पनधारि मारि सामंतनि लिज्जिय ।।

---

१. देनहार सुइ सब दियौ अब जो हित चितहि धरौ ।
परिवार सहित मधुशाह की सु रोम रोम रच्छा करौ ।।
—रतनबावनी, छं० ३२ ।

वरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपुगर्व सर्व अब ।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब ।।
मधुसाह-नन्द इमि उच्चरइ खण्ड खण्ड पिंडहि करहु ।
कट्टहु सुदंत हथियान के मर्दहुं दल यह प्रन धरहुं ।।

(रतनबावनी, छं० ९)

एक और स्थल पर रतनसेन का 'उत्साह' दर्शनीय है। किस ललकार के साथ वह अपने योद्धाओं से कह रहा है—

लेकर वर, तब वीर सभा मंडल सन बुल्लिय ।
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहं सत्त न डुल्लिय ।।
लाज काज धरि लाज लोइ लरि लरि यश लिज्जहु ।
विकट कटक में हटक पटक भट भुवि महं दिज्जहु ।।
यह अनूप मेरो वचन केवल चित धरि सुनहु सब ।
मरहु तो मो सथ्थहि भज्जहु तो भजि जाव अब ।।

(रतनबावनी, छं० २५)

वस्तु-वर्णन : केशव द्वारा अंकित सेना-प्रयाण का वर्णन स्वाभाविक एवं यथातथ्य हुआ है—

साजि साजि साजि गजराज-राजि आगें दल दीनहि ।
ता पीछे पति-पुंज पुंज पयदर रथ कीनहि ।।
ता पीछें असवार शूर केशव सब मोसन ।
चलत भई चकचौंध बाँधि बक्तर वर जोशन ।।
तब फटक भये दल भट्ट सब तुरत सब सेन दपटंत रन ।
जनु बिज्जु संग मिलए कहक एकहि पवन झकोर घन ।।
कोइ निबह्यो पग दोय कोइ पग तीन तीन पर ।
कोइ निबह्यो पग चार चल्यो कोइ पांच पांच कर ।।
कोइ निबह्यो पग अष्ट चलो कोइ सात सात तहं ।
कोइ निबह्यो पग आठ चलो कोई अग्ग अंक सह ।।
दसह पाय दसहू दिसह साथी सबहि सट विकयह ।
इक मधुकरशाह-नरेन्द्र-सुत सूर कटक्क अटक्कियह ।।

(रतनबावनी, छं० २९-३०)

स्वरूप-वर्णन : भगवान् राम के स्वरूप का चित्रण भी सजीव एवं वास्तविक बन पड़ा है। देखिए—

हाटक जटित किरीट शीश स्यामल तनु सोहै ।
हाथ धरें धनुबाण देखि मनमथ मन मोहै ।।
जामवंत हनुमंत विभीषण भूपति-भूषन ।
केशव कपि सुग्रीव संग अंगद अरि-दूषन ।।

संग सीता सेव अशेषमति गुण अशेष अंग अंग प्रति।
जहं रतनसेन संकट विकट प्रकट भये रघुवंशपति ॥

(रतनबावनी, छं० २२)

संवाद : विप्ररूप परमेश्वर और कुंवर रतनसेन में जो वार्तालाप हुआ है वह प्रसंगानुकूल है और उससे प्रबन्ध में रोचकता आ गई है। साथ ही कवि को रतनसेन के चरित्र की विशेषता के प्रदर्शन करने का अवसर भी मिल गया है।

इस प्रकार यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि 'रतनबावनी' की कथा श्रृंखलाबद्ध है और वह कुंवर रतनसेन के शौर्य-प्रदर्शन के जिस उद्देश्य को लेकर चली है उसमें पूर्ण सफल हुई है।

उपसंहार : अंत में यदि केशव के प्रबन्ध-काव्यों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि केशव में प्रबन्ध-सौष्ठव पर्याप्त था। इसके लिए केवल 'रामचन्द्रिका' के कारण उन्हें लांछित करना हठधर्मी होगी।

प्रबन्ध-सौष्ठव की दृष्टि से केशव के प्रबन्ध-काव्यों का क्रम

(१) वीरसिंहदेव-चरित।
(२) विज्ञानगीता।
(३) रामचन्द्रिका।
(४) जहाँगीर-जस-चन्द्रिका।
(५) रतनबावनी।

(आ) अलंकार-योजना :

भाव, रस, गुण आदि के उत्कर्ष के साधन 'अलंकार' कहलाते हैं। अलंकार काव्य के बाह्यांग हैं, और रस, भाव आदि आत्मा। जिस प्रकार आत्मा के बिना शरीर निष्प्राण है उसी प्रकार रस के बिना काव्य। अलंकार, रस, भाव आदि की अनुभूति में सहायक होकर काव्य के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं, परन्तु उसका स्थान नहीं ले सकते हैं। केशव के विचार में जिस प्रकार कामिनी की शोभा अलंकारों के बिना नहीं होती उसी प्रकार काव्य भी अलंकारों के बिना रमणीय नहीं होता[1]। परन्तु यह मत भ्रमात्मक है। आभूषण भी यदि सच्चे सौन्दर्य के सामंजस्य का बिना ध्यान रखे पहने जाते हैं तो सौन्दर्य की वृद्धि में सहायक होने के स्थान पर सौन्दर्योत्कर्ष में बाधक ही होते हैं और शरीर पर भारस्वरूप जान पड़ते हैं। आभूषण बिना धारण किए भी कामिनी का वास्तविक सौंदर्य तो रहता ही है। इसी प्रकार उपयुक्त अलंकार-योजना काव्य की शोभा की वृद्धि करती है परन्तु अलंकार के लिए ही किया गया अलंकार-प्रयोग काव्य के लिए भार हो जाता है। अलंकार-योजना के अभाव में भी काव्य का भावगत सौन्दर्य अक्षुण्ण रहता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि अलंकार काव्य के लिए

---

१. जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई, कविता बनिता मित्त॥
—क० प्रि०, प्र० ५, छं० १।

आवश्यक नहीं हैं और उनके बिना भी सरस काव्य का निर्माण हो सकता है किन्तु अलंकारों के होने से काव्य की शोभा और बढ़ जाती है।

केशव ने 'रसिकप्रिया' में काव्य के लिए रस के सर्वोपरि महत्त्व को भी तो माना है[1]। परन्तु केशव स्वयं बहुत से स्थलों पर अपने इस सिद्धान्त का निर्वाह नहीं कर सके हैं। केशव के प्रबन्ध-ग्रन्थों में अनेक स्थल ऐसे हैं जहाँ कवि ने चमत्कार-प्रदर्शन एवं उक्ति-वैचित्र्य तथा दूरारूढ़ कल्पना के मोह में पड़कर काव्य के बहिरंग को ही सजाया और संवारा है एवं काव्य के अन्तरंग को उपेक्षित किया है।

जब हम केशव के प्रबन्ध-काव्यों की अलंकार-योजना पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि कवि के कतिपय प्रबन्धों में तो कुछ प्रमुख अलंकार ही प्रयुक्त हैं और कुछ में कवि का अलंकार-वैविध्य के प्रति विशेष मोह देखने में आता है। 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैं तथा 'विज्ञानगीता', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' द्वितीय श्रेणी में आती हैं। यहाँ इन प्रबन्धों पर क्रम से विचार किया गया है।

रामचन्द्रिका :

'रामचन्द्रिका' का प्रणयन प्रधानतया पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए हुआ था, अतएव केशव ने इस ग्रन्थ की अलंकार-योजना में भी अपना पाण्डित्य-प्रदर्शन ही किया है किन्तु जब-जब वे आलंकारिक आवेश में नहीं रहे हैं तब-तब उन्होंने स्वाभाविक अलंकारों की भी योजना की है। ऐसे स्थल कम अवश्य हैं। अलंकार-वैविध्य के प्रति जितना मोह इस ग्रन्थ में परिलक्षित होता है उतना कवि के किसी अन्य ग्रन्थ में देखने में नहीं आता। बहुत से स्थलों पर तो कवि ने उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह आदि अलंकारों की झड़ी सी बाँध दी है। इस ग्रन्थ में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, सन्देह, अपह्नुति, विभावना, सहोक्ति, स्वभावोक्ति, श्लेष, परिसंख्या, विरोधाभास, निदर्शना तथा गूढोत्तर आदि अलंकारों का प्रयोग प्रमुख रूप से हुआ है। इनमें भी सबसे अधिक प्रयोग 'उत्प्रेक्षा' का हुआ है। श्लेष, परिसंख्या एवं विरोधाभास आदि अलंकारों का प्रयोग विशेष रूप से पाठकों को चमत्कृत करने की दृष्टि से किया जाता है। भाव-व्यंजना में वे उतने सहायक नहीं होते हैं। केशव ने भी इसी भावना से प्रेरित होकर बहुत से स्थलों पर इन अलंकारों को प्रयुक्त किया है। 'श्लेष' के सहारे जनकपुरी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

---

१. ज्यों बिनु डीठ न शोभिये, लोचन लोल विशाल।
तयों ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल॥
ताते रुचि शुचि शोचि पचि, कीजै सरस कवित्त।
केशव श्याम सुजान को, सुनत होइ वश चित्त॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १३-१४।

तिन नगरी तिन नागरी प्रति पद हंसक हीन।
जलजहार शोभित न जहं प्रकट पयोधर पीन॥

(रा० चं०, प्र० ५, छं० १६)

इस दोहे में श्लेष का प्रयोग बड़ा ही उपयुक्त बन पड़ा है। इसी प्रकार दशरथ-राज्य के वर्णन के प्रसंग में भी 'श्लेष' का सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है।

विधि के समान हैं विमानीकृत राजहंस, विविध विबुध युत मेरु सो अचल हैं।
दीपति दिपति अति सातो दीपि दीपियतु, दूसरो दिलीप सो सुदक्षिण का बल है॥
सागर उजागर का बहुवाहिनी को पति, छनदान प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ, भगीरथ-पथगामी गंगा कैसो जल है॥

(रा० चं०, प्र० २, छं० १०)

परन्तु कुछ ऐसे स्थल भी दिखाई देते हैं जहाँ कवि 'श्लेष' के द्वारा प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत में कोई समानता न होते हुए भी अप्रस्तुत के गुण प्रस्तुत में ढूंढ़ निकालने की चेष्टा करता हुआ दिखलाई पड़ता है। उदाहरणस्वरूप उनके दण्डकवन, प्रवर्षणाद्रि और सागर के वर्णन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। दण्डकवन का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

शोभत दण्डक की रुचि बनी भाँतिन भाँतिन सुन्दर घनी।
सेब बड़े नृप की जनु लसै। श्रीफल भूरि भयो जहं बसै॥

(रा० चं०, प्र० ११, छं० १६)

सागर को एक नागरिक के रूप में चित्रित करते हुए केशव का कथन है—

भूति विभूति पियूवहु को विष ईश शरीर कि पाय वियो है।
हैं किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै॥
संत हिया कै बसै हरि संतत शोभ अनंत कहं कवि कोहै।
चन्दन नीर तरंग तरंगित नागर कोउ कि सागर सोहै॥

(रा० चं०, प्र० १४, छं० ४१)

इसी प्रकार 'श्लेष' के सहारे 'वर्षा' को कालिका के रूप में देखा है।

भौहें सुरचाप चारु प्रमुदित पयोधर, भूषन जराय जोति तड़ित रलाई है।
दूरि करी सुख मुख सुखमा ससी की नैन, अमल कमल दल दलित निकाई है॥
केसोदास प्रबल करेनुका गमन हर, मुकुत सुहंसक-सबद सुखदाई है।
अंबर बलित मति मोहै नीलकंठ जू की, कालिका कि बरषा हरषि हिय आई है।

(रा० चं० प्र० १३, छं० १६)

फिर भी श्लेषालंकार का प्रयोग भाषा पर कवि के अधिकार का परिचायक है। दो अर्थों वाले छन्द 'रामचन्द्रिका' में ही दिखाई देते हैं। 'कविप्रिया' में कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनके तीन-तीन, चार-चार और पाँच-पाँच तक अर्थ निकलते हैं।

'विरोधाभास' अलंकार केशव को विशेष प्रिय जान पड़ता है। राजा दशरथ की वाटिका और गोदावरी नदी के वर्णन एवं 'शिव' तथा 'पितर' आदि देवताओं द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में इस अलंकार का प्रयोग बड़ा ही सुरुचिपूर्ण हुआ है। गोदावरी का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

विषमय यह गोदावरी अमृत के फल देति।
केशव जीवनहार को दुख अशेष हरि लेति ॥
(रा० चं०, प्र० ११, छं० २६)

इसी प्रकार का सुरुचिपूर्ण प्रयोग शिवजी द्वारा राम की स्तुति के प्रसंग में हुआ है—

अमल चरित तुम बैरिन मलिन करौ, साधु कहैं साधु परदार प्रिय अति हौ।
एक थल थित पै बसत जग जन मध्य, केशोदास द्विपद पै बहुपद-गति हौ ॥
भूषण सकल युत शीश धरे भूमिभार, भूतल फिरत यों अभूत भुवपति हौ।
राखौ गाइ ब्राह्मणनि राजसिंह साथ चिरु, रामचन्द्र राज करौ अद्भुत गति हौ ॥
(रा० चं०, प्र० २७, छं० २)

'परिसंख्या' अलंकार के प्रति भी कवि की विशेष अभिरुचि प्रतीत होती है। अवधपुरी, विश्वामित्र एवं भरद्वाज मुनि के आश्रम, देव-स्तुति तथा राम-राज्य व्यवस्था आदि के वर्णन के प्रसंगों में 'परिसंख्या' अलंकार का अत्यन्त ही सफल प्रयोग हुआ है। विश्वामित्र के आश्रम का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

विचारमान ब्रह्म देव अर्चमान मानिये,
अदीयमान दुःख, सुख दीयमान जानिये।
अदण्डमान दीन गर्व दण्डमान भेदवै,
अपठ्यमान पाप ग्रन्थ पठ्यमान वेदवै ॥
साधु कथा कथियै दिन केशवदास जहाँ,
निग्रह केवल है मन को दिन मान तहाँ।
पावन वास सदा ऋषि को सुख को बरषै,
को बरणै कवि ताहि विलोकत जो हरषै ॥
(रा० चं०, प्र० ३-४, ३-४)

राम-राज्य का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

चित्र ही में आज वर्णसंकर विलोकियत,
ब्याह ही में नारिन के गारिन सों काज।
ध्वजै कंपयोगी निशि चक्रै है वियोगी,
द्विजराज मित्रदोषी एक जलद समाज है ॥
मेघै तो गगन पर गाजत नगर घेरि,
अपयश डर, यश ही को लोभ आज है।
दुःख ही को खण्डन है मण्डन सकल जग,
चिरु चिरु राज करो जाको ऐसो राज है ॥
(रा० चं०, प्र० २७, छं० ५)

मूलै तो अधोगतिन पावत हैं केशोदास,
मीचु ही सों हैं वियोग इच्छा गंगनीर की।

वन्ध्या बासनानि जानु विधवा सुवाटिका ही,
ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥
कविकुल ही के श्रीफलन उर अभिलाष समाज,
तिथि ही को क्षय होत है रामचन्द्र के राज।
लूटिबे के नाते पाप पट्टनं तो लूटियत,
तोरिबे को मोहतरु तोरि डारियतु ॥
घालिबे को नाते गर्व घालियतु देवन के,
जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है।
बाँधिबे के नाते ताल बाँधियत केशोदास,
मारिबे के नाते तो दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु,
हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है।
(रा० चं०, प्र० २८, छं० ११-१३)

'उपमा', 'उत्प्रेक्षा', 'सन्देह' आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना करते हुए केशव अपनी चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के फेर में पड़कर कुछ स्थानों पर ऐसे उपमानों को ले आए हैं जिससे प्रस्तुत का वास्तविक स्वरूप कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं हो सका है और कुछ स्थलों पर उनका उपमानों का प्रयोग बड़ा ही कुरुचिपूर्ण हुआ है। ऐसे कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। चन्द्रमा को आकाश में देखकर कवि उत्प्रेक्षा करता है—**फूलन की शुभ गेंद नई है। सूँघि शची जनु डारि दई है**[1]। पहली उत्प्रेक्षा में ब्रह्मा के सिर पर विष्णु के बैठने तथा दूसरी उत्प्रेक्षा में चद्रमा को गेंद बनाने की कल्पना अनुपयुक्त एवं उपहासास्पद है। हनुमान राम की विरहावस्था का चित्रण करते हुए राम की उपमा 'उल्लू' से देते हैं।[2] अग्नि की ज्वालाओं में जलते हुए राक्षसों का वर्णन करते हुए कवि ने राक्षसों की समता कामदेव से की है[3]। कामदेव उपमान का कितना अरुचिपूर्ण प्रयोग यहाँ हुआ है।

जहाँ कवि चमत्कार-प्रदर्शन अथवा दूरारूढ़ कल्पना के लोभ का संवरण कर सका है वहाँ अलंकारों का सुरुचिपूर्ण प्रयोग हुआ है, जो भावोत्कर्ष में सहायक है। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ उपस्थित किए जाते हैं। भरत के ननिहाल से आने का समाचार पाकर सब माताएं छटपटाती हुईं बड़ी उत्सुकता के साथ उनसे मिलने उसी प्रकार जाती हैं जिस प्रकार (सद्यःप्रसूता) गाएं अपने बछड़ों को चाटने तथा दूध पिलाने के लिए छटपटाती हुई दौड़ती हैं[4]। इस उपमा के द्वारा

१. रा० चं०, प्र० ३०, छं० ४१।

२. बासर को संपति उलूक ज्यों न चितवत हैं।
—रा० चं०, प्र० १३, छं० ८८।

३. कहूँ रैनचारी गहे ज्योति गाढ़े। मानो ईश रोषाग्नि में काम डाढ़े॥
—रा० चं०, प्र० १४, छं० ८।

४. मातु सबै मिलिबे कहं आई। ज्यों सुत को सुरभी सुलवाई॥
—रा० चं०, प्र० १०, छं० २८।

केशव ने भरत के प्रति माताओं के प्रेम की सुन्दर व्यंजना की है।

निम्नाँकित छन्द में कवि ने हनुमान के सुन्दर नामक पर्वत से उछलकर सुबेल नामक पर्वत की ओर उड़कर लंका को प्रस्थान करने का वर्णन करते हुए कई उपमाएं दी हैं, जो हनुमान की वेगशीलता और हनुमान द्वारा समुद्रोल्लंघन के कार्य के संपादन की शीघ्रता द्योतित करती हैं—

हरि कैसो वाहन कि विधि कैसो हेम हंस,
लीक सी लिखत नभ पाहन के अंक को।
तेज को निधान राम मुद्रिका विमान कैधौं,
लच्छन का बाण छूट्यो रावण निशंक को॥
गिरिगज गंड ते उड़ान्यो सुवरन अलि,
सीता पदपंकज सदा कलंक रंक को।
हवाई सी छूटी केशोदास आसमान में,
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यो लंक को॥

(रा० चं०, प्र० १३, छं० ३८)

दशरथ की मृत्यु के उपरान्त जब भरत महल में आता है तो वह माताओं को अकेली और निरालम्ब पाता है। कवि ने माताओं की वियोगजन्य विकलता का चित्रण बहुत ही उपयुक्त उपमा द्वारा किया है[1]।

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' अलंकार की भी योजना कई स्थलों पर बड़ी सुन्दर हुई है। हनुमान के द्वारा सीता जी की लाई हुई चूड़ामणि को पाकर राम के हृदय में होने वाले आनन्द की व्यंजना, उत्प्रेक्षा के सहारे कवि ने सफलता से की है[2]।

लंका में आग लगी है। सोने की लंका का सोना द्रवित हो कर समुद्र में जा रहा है। इसके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है—

कंचन को पघिलो पुर पूर पयोनिधि में पसरो सो सुखी ह्वै।
गंग हजार मुखी गुनि केशौ गिरा मिली मानों अपार मुखी ह्वै[3]॥

कुछ अन्य प्रमुख अलंकारों के उदाहरण यहाँ पाठकों के अवलोकनार्थ उपस्थित किये जाते हैं।

रूपक :

१. पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिजै सुठि शूर।
ठेलि ठेलि चलैं गिरीशनि पेलि श्रोणित पूर॥
ग्राह तुंग तुरंग कच्छप चारुचर्म विशाल।
चक्क सों रथचक्र पैरत वृद्ध गृद्ध मराल॥

---

१. मन्दिर मातु विलोकि अकेली। ज्यों बिनु वृक्ष विराजति बेलि।
—रा० चं०, प्र० १०, छं० २।

२. श्री रघुनाथ जबै मणि देखी जी महं भाग दशा सम लेखी।
फूलि उठ्यो मन ज्यों निधि पाई। मानहु अंध सुडीठि सुहाई॥
—रा० चं०, प्र० १४, छं० २४।

३. रा० चं०, प्र० १४, छं० ११।

केकरे कर बाहु मीन, गयंद सुण्ड भुजंग।
चीर चौर सुदेश केश शिवाल जानि सुरंग ॥
बालुका बहु भाँति है मणिमालजाल प्रकाश।
पैरि पार भये ते द्वै मुनिबाल केशवदास ॥
(रा० चं०, प्र० ३७, छं० २-३)

२. श्रोणित सलिल नर बानर सलिलचर,
गिरि बालिसुत विष विभीषण डारे हैं।
चरम पताका बड़ी बड़वा अनल सम,
रोगरिपु जामवन्त, केशव विचारे हैं ॥
बाजि सुरबाजि सुरगज से अनेक गज,
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहारे हैं।
सोहत सहित शेष रामचन्द्र केशव से,
जीति के समर सिन्धु साँचहु संवारे हैं ॥
(रा० चं०, प्र० ३६, छं० ६)

अतिशयोक्ति :

१. सम्बन्धातिशयोक्ति

बरण बरण अंगिया उर धरे। मदन मनोहर के मन हरे ॥
अंचल अति चंचल रुचि रचैं। लोचन चल जिनके संग नचैं ॥
(रा० चं०, प्र० ३१, छं० ३६)

२. रूपकातिशयोक्ति

देखहु देव दीन के नाथ, हरत कुसुम के हारत हाथ।
नवरंग बहु अशोक के पत्र, तिन महं राखत राजकलत्र ॥
(रा० चं०, प्र० १३, छं० २६)

अपह्नुति :

१. फूलि फूलि तरु फूल बढ़ावत। मोदत महामोद उपजावत ॥
उड़त पराग न चित उड़ावत। भ्रमर भ्रमत नहीं जीव भ्रमावत ॥
(रा० चं०, प्र० १, छं० ३१)

विभावना :

यद्यपि इंधन जरि गये, अरिगण केशवदास।
तदपि प्रतापानलन के पल पल बढ़त प्रकाश ॥
(रा० चं०, प्र० २, छं० ११)

स्वभावोक्ति :

बन महं विकट विविध दुख सुनिये, गिरि गहवर मग अगमहीं गुनिये।
कहुँ अहि हरि कहुँ निशिचर चरहीं, कहुँ दवदहन दुसह दुख सरहीं ॥
(रा० चं०, प्र० ६, छं० २५)

अप्रस्तुतप्रशंसा :

श्रीनृसिंह प्रह्लाद की बेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूँठी ह्वै है गाथ॥

(रा० चं०, प्र० १४, छं० ३०)

कारणमाला :

जहँ भामिनी, भोग तहँ, बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनी छूटे जग छुटे, जग छूटे सुख योग॥

(रा० चं०, प्र० २४, छं० १४)

एकावली :

राजा रामचन्द्र तुम राजहु सुयश जाको,
भूतल के आस-पास सागर के पासु सो॥
सागर में बड़भाग वेष शेषनाग जू के,
शेषजू पै चंडभाग विष्णु को निवास सो॥
विष्णु जू में भूरि भाग्य भव को प्रभाव सोई,
भवजू के भाल में विभूति को विलास सो॥
भूति माँहि चन्द्रमा सो, चन्द में सुधा को अंशु,
अंशुनि में केशोदास चन्द्रिका प्रकाशु सो॥

(रा० चं०, प्र० २७, छं० ६)

प्रतीप :

को है दमयंती इन्दुमती रति राति दिन,
होंहि न छबीली छन छबि जो सिंगारिये।
केशव लजात जलजात जातवेद ओप,
जातरूप बापुरो विरूप सो निहारिये॥
मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो,
चंद बहुरूप अनुरूप कै विचारिये।
सीता जी के रूप पर देवता कुरूप को हैं,
रूप ही के रूपक तौ वारि वारि डारिये॥

(रा० चं०, प्र० ९, छं०५९)

भ्रान्तिमान :

अमल सजल घनस्याम वपु केशोदास, चन्दहू ते चारु मुख सुषमा को ग्राम है।
कोमल कमल दल दीरघ विलोचननि, सोदर समान रूप न्यारो न्यारो नाम है॥
बालक विलोकियत पूरण पुरुष गुन, मेरो मन मोहियत ऐसो रूप धाम है।
वैर जिय मान वामदेव को धनुष तोरो, जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है॥

(रा० चं०, प्र० ७, छं० १४)

गूढ़ोत्तर :

रे कपि कौन तू? अक्ष को घातक, दूत बली रघुनन्दन जू को।
को रघुनन्दन रे? त्रिशिरा-खर-दूषण-दूषण, भूषण भू को॥

सागर कैसे तर्‌यो ? जैसे गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी हुई दृग सोवत पातक लेखो ॥
(रा० चं०, प्र० १४, छं० १)

निदर्शना :

बालि बली न बच्यों पर खोरहि क्यों बचिहौ तुम आपनि खोरहि।
जा लग छीर समुद्र मथ्यो कहि कैसे न बाँधिहैं बारिधि बोरहि ॥
श्री रघुनाथ गनो असमर्थ न देखि बिना रथ हाथिन घोरहि।
तोर्‌यो सरासन संकर को जेहि सोऽब कहा तुव लंक न तोरहि ॥
(रा० चं०, प्र० १५ छं० ७)

व्याजस्तुति :

डरै गाय विप्रै अनाथै जो भाजै, पर द्रव्य छोड़ै पर स्त्रीहि लाजै।
परद्रोह जासों न होवै रती को, तो कैसे लरै वेष कीन्हें जती को ॥
(रा० चं०, प्र० १६, छं० २७)

कहीं-कहीं एक ही छन्द में अनेक अलंकारों के सफल प्रयोग भी देखने में आते हैं जैसे—

एक दमयन्ती ऐसी हरै हंसि हंस बंश,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहियो।
भूषण गिरत एकै लेति बूड़ि बीचि बीच,
मीनगति लीन हीन उपमान टोहियो ॥
एकै मत कै कै कंठ लागि लागि बूड़ि जात,
जल देवता सी देवि देवता विमोहियो।
केशोदास आस-पास भंवर भंवत जल—
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहियो ॥
(रा० चं०, प्र० २, छं० ३७)

(उपमा, प्रतीप, सम्बन्धातिशयोक्ति और भ्रम का संकर)

वीरसिंहदेव-चरित :

इस ग्रन्थ के प्रथमार्द्ध में अकबर की शाही सेनाओं से वीरसिंहदेव के युद्धों का सविस्तर वर्णन किया गया है। इस कारण इस अंश में केशव को अलंकार-प्रयोग के क्षेत्र में अपना कौशल प्रदर्शित करने का अधिक अवसर प्राप्त नहीं हुआ है। इस भाग में दृश्य एवं वस्तु-वर्णन में ही कहीं-कहीं अलंकारों का प्रयोग देखने में आता है। ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में वीरसिंह के ऐश्वर्य तथा दिनचर्या का वर्णन किया गया है। यहाँ अधिकांश प्रसंग, दृश्य और वस्तुएं वही मिलती हैं, जो 'रामचन्द्रिका' में वर्णित हैं। इसलिए इनके विषय में प्रायः वही कल्पनाएं की गई हैं, जो 'रामचन्द्रिका' में उपलब्ध होती हैं।

जिन स्थलों पर कवि ने पाण्डित्य-प्रदर्शन अथवा दूर की सूझ का आग्रह नहीं छोड़ा है, वहाँ कवि का अलंकार-प्रयोग भाव-व्यंजना अथवा वस्तु के उत्कर्ष-साधन में असफल ही रहा है। ऐसे दो उदाहरण यहाँ उपस्थित किए जाते हैं।

मेवाशाला में जाते हुए महाराज वीरसिंह की उपमा 'भुक्कड़ रंक' से देना उपहासास्पद है[1]। इसी प्रकार वर्षा को अनुसूया, कालिका अथवा द्रौपदी बनाना कल्पना की विडम्बना ही है। परन्तु फिर भी 'वीरसिंहदेव-चरित' में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहाँ कवि ने सुन्दर अलंकार-योजना की है। कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं। वीरसिंहदेव की सेना के युद्ध के लिए प्रस्थान करने के कारण पृथ्वी की धूलि उठ कर आकाश की ओर जा रही है। इस सम्बन्ध में कवि ने बड़ी ही विलक्षण उत्प्रेक्षाएं की हैं, जो भाव के उत्कर्ष-साधन में सहायक हैं।

अधर धूरि आकाशहि चली हय गय खुरनि खरी दलमली।
जानि गगन को हालत हियो, ठौर ठौर जनु थंभित कियो॥
रह्यो अकाश विमाननि पूरि। मनों उतारनि छाई धूरि॥
झूझहिंगे रन सुभट अपार। सामुहें घायनि राजकुमार॥
तिनकों सुखद मानहु मंहि कियो। स्वर्गारोहन मार्ग बियो।
रही धूरि परिपूरि अकास। मिटे निकट ह्वै सूर प्रकास॥

(वी० दे० च०, पृ० ८३)

इसी प्रसंग के अन्तर्गत 'ध्वजा' के वर्णन में भी कवि की उत्प्रेक्षाएं अत्यन्त ही सुन्दर एवं उपयुक्त बन पड़ी हैं।

तामें बहुत पताका लसैं। धूम अनल जनु ज्वाला बसैं॥
मनहु काल की रचना घोर। कैधों मीच नचति चहुँ ओर॥
पवन प्रकास दोहु गति होति। मनहु प्रकाश दियन को ज्योति॥
जनु अकाश वन वलित वलत्त। तरलित तुंग ताल के पत्त॥
किधौं विमाननि की दुति हलैं। देवनि के अंचल से चलैं॥
जय श्री भुजा सिंधु देखियै। किधौं चौंर चंचल लेखियं॥
वीरसिंह की बलध्वजा धूरिनि में सुख देति।
युद्ध जुरन कौं मानहु प्रतिजोधिनि बोलैं लेति॥

(वी० दे० च०, पृ० ८३)

रावभूपाल के युद्ध में अकेला ही टूट पड़ने पर मुग़ल सेना उसे घेर लेती है। इसके लिए कवि ने कई उत्प्रेक्षाएँ की हैं।

मनहु पर्वतन अति बल भयो। इन्द्रपुरी को ढोवा दयो॥
मनो निसाचर गन बलवन्त। घरि लियौ मानों हनुमन्त॥
मानो अंधकार बल लये। वारक सूर सामुहें गये॥
दीरघ सर्प बहुत पुर कढ़ें। मानहु कोपि गरुड़ पर चढ़ें॥

(वी० दे० च०, पृ० ६३-६४)

इसी प्रकार वीरसिंह के द्वारा शेख अबुलफ़ज़ल के युद्ध में मारे जाने का समाचार सुनने पर अकबर के अश्रुपूर्ण नेत्रों के विषय में कवि बड़ी ही स्वाभाविक

१. निपटि रंक ज्यों लालच भए। मेवा की साला में गये॥

—वी० दे० च०, पृ० १२४।

उत्प्रेक्षा करता है[1]। युद्ध-प्रसंग के अतिरिक्त केशव ने अन्य स्थलों पर भी शोभन उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है। वीरसागर की छटा उत्प्रेक्षा के प्रयोग से निखर उठी है।

फूले नील कमल जल एन। मानहु सुन्दरता के नैन ॥
कुल कल्हार सुगंधित मनौ। सुभ सुगंधता के मुख मनौ ॥
प्रफुलित सूर कोकनद किये। मानहु अनुरागिनि के हिये ॥
पीत कमल देखत सुख भयौ। मनौ रूप के रूपक रयौ ॥

(वी० दे० च०, पृ० १००)

चतुर्भुजदेव के लिए भी कवि ने कितनी सरस एवं उपयुक्त उत्प्रेक्षा की है।

सोभति अति सुन्दर सुभ सदा। संख चक्र कर पंकज गदा ॥
पद ऊपरं स्यामतल लाल। बरनत केसव बुद्धि बिसाल ॥
मनौ गिरा जमुना जल आइ। स्वेत पाट पट जटे सुभाइ ॥

— — — — — —

देखत होइ सुद्ध मन छुद्र। निकले मथि जनु छीर समुद्र ॥
सीत छत्र मरकत मय दंड। मानौ कमल सनाल अखंड ॥

(वी० दे० च०, पृ० १०६)

महाराज वीरसिंहदेव के उपवन में कहीं-कहीं जलयन्त्र भी हैं, जिनके विषय में कवि ने कितनी मधुर और यथातथ्य कल्पना की है—

जहां तहां जलजंत्र प्रकास धर तैं धारा चली ॥
जनु जमुना को सूक्षम बेस। चाहत रविपुर कियौ प्रवेस ॥

(वी० दे० च०, पृ० १३८)

मदन-महोत्सव के अवसर पर जब महाराज वीरसिंहदेव सज-धज कर हाथी पर बाहर निकलते हैं तो सुन्दरियां उनके दर्शनार्थ अपने-अपने भवनों पर चढ़ती हैं। कवि ने इन सुन्दरियों की छवि के वर्णन में उत्प्रेक्षाओं की झड़ी सी बाँध दी है।

यों सोभति सोभा सों सनी। मोहन गिरि अग्रनि मोहनी ॥
जनु कैलास सैल पर चढ़ी। सिद्धनि की कन्या दुति मढ़ी ॥

— — — — — —

मनौ छजनि पर कीरति लसैं। रूपनि पर दीपति सी बसैं ॥
गृह गृह प्रति जनु गृह देवता। जनु सुमेरु सोने की लता ॥
एकनि कर दर्पन नहि हरैं। मनौ चन्द्रिका चन्द्रहि धरैं ॥
एक अरुन अम्बर रस भिनी। जनु अनुराग रंगी रागिनी ॥
एकैं वर्जति पुष्प अशेष। मनौ पुष्पलता सुख वेष ॥

(वी० दे० च०, पृ० १४६)

'उपमा' के भी केशव ने बड़े सफल प्रयोग किए हैं। वीरसिंह को अपने

---

१. चंचल लोचन जल झलमले। पवन पाइ जनु सरसिज हले ॥
—वी० दे० च०, पृ० ४३।

दरबार में आया देखकर सलीम के हर्ष का पारावार नहीं रहता और उसका अंग-अंग खिल उठता है। केशव की इस प्रसंग में उपमाएँ बड़ी ही उचित एवं स्वाभाविक बन पड़ी हैं—

सोम्यौ बीर देखि यों साहि। जैसे रहै सुमेरहि चाहि॥
बीरसिंह कों बाढ़ि सौंह। पारस सौं परस्यों ज्यों लोह॥
परम सुगन्ध नीम ह्वै जाइ। जैसें मलयाचल कों पाइ॥

(वी० दे० च०, पृ० ३५)

विन्ध्यवासिनी का प्रसाद पाकर जब कुंवर रावप्रताप राजा रामशाह से मिलने के लिए प्रस्थान करता है तो कवि ने उसे सुग्रीव, लक्ष्मण तथा हनुमान के समकक्ष ला बिठाया है। उपमा कितनी सटीक है।

सोम्यौ तब सुग्रीव समान। रामकाज जिनको परिवान॥
तुम लक्षन लछिमन सो लसैं। मन क्रम वचन रामव्रत बसैं॥
— — — — —
रामदेव दुखह तन अनंत। सोम्यौ कुंवर मनौ हनुमन्त॥

(वी० दे० च०, पृ० ६१)

राजा रामशाह भी रावभूपाल को देखकर खिल उठते हैं। इस अवसर पर कवि ने रामशाह के हर्षातिरेक की उपमा के सहारे बड़ी ही सुन्दर व्यंजना की है।

राजहि भयौ परम सुख गात। तिहि सुख फूले अंग न मात॥
अति प्यासौ ज्यों पानी पाइ। बहु भूखौ भोजन सुखदाइ॥
परम पंग ज्यों पाये पांय। गुंग लह्यौ ज्यों वचन बनाय॥
लहैं अंध ज्यों लोचन चारु। भीजत जनु पायौ अंगारु॥
सीतारत ज्यों अग्निहि लहै। बन भूल्यौ मार्गहि ज्यों लहै॥

(वी० दे० च०, पृ० ६२)

रणरुद्र बीरसिंहदेव के युद्धक्षेत्र में टूट पड़ते ही राजा रामशाह की सेना में भगदड़ मच जाती है। इस प्रसंग में कवि ने कई उपमाएँ दी हैं, जो सुन्दर तथा उपयुक्त हैं।

देखत ही भागै रिपु लोग। ज्यों धनंतर आये तें रोग॥
अरि की फौज भगी गहि त्रास। अंधकार ज्यों सूर प्रकास॥
परम दानि सुनि जैसे रोर। जैसे नषत बड़े ही भोर॥
जहाँ तहाँ भट यों भग गये। राम सुनत ज्यों पातक नये॥

(वी० दे० च०, पृ० २६)

अबुलफ़ज़ल के निधन के दारुण समाचार से जब अकबर के नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है तो कवि उसके नेत्रों की उपमा 'रहटघरी' से देता है।

भरि भरि रीति जाति रीति रीति भरै पुनि,
रहटघरी सी आंखि साहि अकबर की॥

(वी० दे० च,० पृ० ४५)

एक स्थल पर युद्ध के वर्णन में कवि ने युद्ध-स्थल तथा वर्षा का स्वाभाविक रूपक बांधा है।

दलबल सहित उठे दोई वीर। मनो घनाघन घोर गंभीर ॥
धुन्ध धूरि धुरवा से गनौ। बाजत दुन्दभि गर्जत मनौ ॥
जहां तहां तरवारें कढ़ी। तिनको दुति जनु दामिनि बढ़ी ॥
तुपक तीर ध्रुव धारा पात। भीत भये रिपुदल भट व्रात ॥
श्रोनितजल पैरत तिहि खेत। कूरम कुल सब दलहि समेत ॥

(वी० दे० च०, पृ० ५६)

'उल्लेख' अलंकार की भी योजना एक स्थान पर कवि ने बहुत ही सुन्दर की है। देखिए, चन्द्रमा को 'चन्द्रवदनी' युवतियों ने किस-किस रूप में देखा है।

कुन्द कुसुम नासहि की मनौ। मनिमय मनौ मुकुट सोभनौ ॥
नभश्री कैसो सुभ ताटंक। मुकुतामनिमय सोभत श्रंक ॥
वानरपति सौ तारा संग। स्वेत छत्र जनु धर्‌यौ अनंग ॥
महाकाल अहि कैसो अण्ड। गगन सिंधु जनु फेन अखण्ड ॥
मदन नृपति कौ गगन निकेत। राजतकलस सुदुवौ समेत ॥
सिद्ध सुन्दरी कौ जनु धर्‌यौ। दन्तपत्र सुभ सोभा भर्‌यौ ॥
चारु चन्द्रिका सिन्धुमय सीतल स्वच्छ सतेज ॥
मनौ सेषमय सोभिजै हरिनाधिष्ठित सेज ॥

(वी० दे० च०, पृ० १३०)

'व्यतिरेक' की यहां कैसी सुन्दर योजना हुई है—

रमनी मुखमण्डल निरखि राका-रमन लजाइ।
जलद, जलधि-सिवसूल में राखत बदन छिपाइ ॥

(वी० दे० च०, पृ० १३४)

चमत्कारवृत्ति को सन्तुष्ट करने वाले अलंकारों, जैसे परिसंख्या, विरोधाभास, श्लेष आदि का प्रयोग इस प्रबन्ध में अपेक्षाकृत कम ही हुआ है। नगर (जहांगीरपुर) के वर्णन में 'परिसंख्या' का चमत्कार दर्शनीय है।

होम धूम मलिनाई जहाँ। अति चंचल चल दल दल तहाँ।
बाल नाम है चूडा कर्म। तीछनता आयुध के धर्म ॥
जहं विधवा वाटिका न नारि। जहं अधोगति मूल विचारि ॥
मान मंगमाननि को जानि। कुटिल चाल सरितानि बखानि ॥
दुर्गनि की दुर्गति संचरै। व्याकरनै द्विज वृत्तिनि हरै ॥
कीरति ही के लोभी लाख। कविजन कै श्रीफल अभिलाख ॥

(वी० दे० च०, पृ० १३५)

विज्ञानगीता :

'विज्ञानगीता' में कवि का अलंकारों के प्रति विशेष आग्रह दिखाई नहीं पड़ता है। उपमा, रूपक तथा उत्प्रेक्षा आदि कुछ ही अलंकारों का प्रयोग जहां-तहां देखने में आता है, जो प्रायः भाव-व्यंजना में सहायक है। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ

अलंकारों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं। निम्नलिखित छन्द में मिथ्या संसार को सत्य मानने वाले जड़ जीवों की उपमा काठ के घोड़े पर चढ़ कर खेलने वाले बालकों अथवा गुड्डे-गुड्डियों का खेल खेलने वाली बालिकाओं से देकर सांसारिक जीवों की जड़ता का स्पष्टीकरण बड़े ही सुन्दर ढंग से किया है।

जैसे चढ़े बाल सब काठ के तुरंग पर तिनके सकल गुण आपुही में आने हैं।
जैसे अति बालिका वे खेलति पुतरि अति पुत्र पौत्रादि मिलि विषय बिताने हैं॥
आपनो जो भूलि जात लाज साज कुल धर्म जाति कर्मकाविकन हौं सो मनमाने हैं।
ऐसे जड़ जीव सब जानत हौं केशोदास, अपनो सचाई जग सांचोई कै जाने हैं॥

(वि० गी०, प्र० ६, छं०, ४४)

महाराज वीरसिंहदेव की प्रशंसा करते हुए कवि ने अनेक उपयुक्त उपमाएँ दी है—

दाननि में बलि से विराजमान जिनि पाहि भागिव को है गति विक्रम तनक से।
सेवत जगत प्रमुदितनि की मंडली में देखियत केशोदास सौनक सनक से॥
जोधनि में भरत भगीरथ सुरथ पृथु विक्रम में विक्रम नरेश के बनक से।
राजा मधुकरशाह सुत राजा वीरसिंह राजनि की मण्डली में राजत जनक से॥

(वि० गी०, प्र० १, छं० २२)

'रूपक' अलंकार के भी सफल प्रयोग कवि ने कई स्थलों पर किये हैं। एक स्थल पर कवि ने उदर का रूपक समुद्र से बांधा है। जैसे समुद्र में सब कुछ समा जाता है, वैसे ही मनुष्य का उदर भी बड़ा ही अथाह है। जिस प्रकार समुद्र में तिमिंगिल आदि भयंकर जन्तु रहते हैं और अनेक जीव-जन्तुओं का भक्षण करके भी उनकी क्षुधा-निवृत्ति नहीं होती, उसी प्रकार मनुष्य के उदर की क्षुधा भी कभी नहीं मिटती। इसी प्रकार जिस भांति समुद्र में बड़वाग्नि का निवास है, जिसकी प्यास निरन्तर समुद्र का जल-पान करते हुए भी शान्त नहीं होती, उसी प्रकार मनुष्य की तृष्णा भी कभी नहीं मिटती।

तृषा बड़ी बड़वानली, क्षुधा तिमिंगिल क्षुद्र।
ऐसो को निकसै जु परि, उदर उदार समुद्र॥

(वि० गी०, प्र० ३, छं० २६)

एक और स्थल पर कवि ने तृष्णा का रूपक तरंगिनी से बांधा है। जैसे किसी नदी के, जिसका पाट खूब बढ़ा हुआ हो, दूसरे पार जाना दुष्कर है, वैसे ही तृष्णा का पार पाना कठिन है। कवि कहता है—

कौन गनै इनि लोकनि रीति बिलोकि बिलोकि जहाजनि बोरे।
लाज विशाल लता लपटी तन धीरज सत्य तमालनि तोरे॥
वंचकता अपमान अयान अलाभ भुजंग भयानक तृष्णा।
पादु बढ़ो कहूँ घाट न केशव क्यों तरि जाइ तरंगिनि तृष्णा॥

(वि० गी०, प्र० ७, छं० १७)

कवि ने अन्य स्थल पर रणभूमि और नदी के सांग रूपक का भी विधान बहुत ही सुचारु रूप से किया है।

पुंज कुंजर शुभ्र स्यन्दन शोभिये अतिशूर।
ठेलि ठेलि चले गिरीशनि पेलि शोणित पूर॥
ग्राह तुंग तरंग कच्छप चारु चमर विशाल।
चक्र से रथ चक्र पैरत गृद्ध वृद्ध मराल॥

(वि० गी०, प्र० १३, छं० ३)

इसी प्रकार 'उत्प्रेक्षा' का प्रयोग भी भावव्यंजना में सहायक हुआ है। महामोह के अपने दल-बल के साथ प्रस्थान करने पर धूलि पृथ्वी से उठकर आकाश में व्याप्त हो गई है। इसके लिए कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो पृथ्वी, इन्द्र को शोध देने जा रही है। इस उत्प्रेक्षा के द्वारा कवि ने महामोह की सेना की विशालता का भान कराया है। कवि का कथन है—

रथ राजि साजि बजाइ दुंदुभि कोह सों करि साजु।
बिन्दुमाधव को चल्यो दल भूमि को अधिराजु॥
उठि धूरि भूरि चली अकाशहुं शोभिजै अशेष।
जनु सोधु देन चली पुरंदर को धरा सुविशेष॥

(वि० गी०, प्र० ११, छं० ३)

नीचे लिखे छन्द में वाराणसी के ऊँचे-ऊँचे भवनों पर सुशोभित पताकाओं के लिए कवि कल्पना करता है कि वे मानों वैकुण्ठ-मार्ग में जाते हुए मुक्त मानवों के ज्योतिर्पुंज का प्रकाश हैं। इस प्रकार कवि ने वाराणसी के ऐश्वर्य की ओर संकेत किया है।

वाराणसी अति दूरि ते अवलोकियो मग पूत।
ऊँचे अवासनि उच्च सोहति है पताक विधूत॥
शोभा बिलास बिलोकि केशवराइ यों मति होति।
बैकुण्ठ मारग जात मुक्तनि को नवं ज्यों जोति॥

(वि० गी०, प्र० ११, छं० ४)

निम्नलिखित छन्द में 'अन्योन्य' अलंकार का प्रयोग दर्शनीय है—

पत्नी पति बिनु दीन अति, पति पत्नी बिनु मन्द।
चन्द बिना ज्यों यामिनी, ज्यों यामिनी बिनु चन्द॥

(वि० गी०, प्र० १६, छं० ३६)

कहीं-कहीं कवि ने एक ही छन्द में अनेक अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग किया है। यहाँ एक उदाहरण देते हैं। 'सती' के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह तथा रूपकातिशयोक्ति का मनोहर संकर प्रस्तुत किया है।

चन्द्रमुखीनि में चारु चकोर कि चन्द चकोरनि में रुचिरो है।
लोचन लोल कपोलनि मध्य विलोकत यों उपमा कह्यो है॥
सुन्दरता सरसीनि में मानहु मीन मनोजनि के मनु मोहे।
माणिक सों मणि मंडल में कहि को यह बालबधूनि में सोहै॥

(वि० गी०, प्र० ८, छं० ३८)

रतनबावनी :

'रतनबावनी' में कवि ने जान-बूझकर अलंकारों की भरमार करने की चेष्टा नहीं की है। काव्य के स्वाभाविक प्रवाह में ही यत्र-तत्र उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, एकावली आदि कुछ अलंकारों की योजना हो गई है, जो प्रायः भाव-व्यंजना के उत्कर्ष साधन में सहायक है। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।

दिल्लीश्वर अकबर की सभा में महाराज मधुकरशाह के पहुँचने पर कवि ने उनकी छवि का वर्णन 'उपमा' के द्वारा करते हुए लिखा है कि वे वहाँ उसी प्रकार शोभित हो रहे थे, जिस प्रकार नक्षत्रों के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित होता है।

दिल्लीपति दरबार जाय मधुशाह सुहायव।
जिमि तारन के मांह इन्दु शोभित छवि छायव॥ (रतनबावनी, छं० ५)

निम्नलिखित पंक्तियों में 'एकावली' का बहुत ही सुन्दर एवं उपयुक्त प्रयोग किया गया है—

मातु हेतु पितु तजिय, पिता के हेत सहोदर।
सुतहि सहोदर हेत, सखा सुत हेत तजहु बर॥
सखा हेत तजि बन्धु, बन्धु हित तजहु सुजन जन।
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुखन मन॥
कहि केशव सुख लगि धरनि तजि, धरनी हित धर खंडिये।
सइ खंडिय सब घर हेत पति, प्राण हेत पति छंडिये॥

(रतनबावनी, छं० १३)

अधोलिखित छन्द में रतनसेन के द्वारा शाही सेना के छिन्न-भिन्न होने के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि शत्रु की सेना ठीक वैसे ही रतनसेन की सेना के सम्मुख न ठहर सकी जैसे वायु के झोंकों के सम्मुख बादल।

तब फटक भये दल भट्ट सब तुरत सेन दपटंत रन।
जनु बिज्जु संग मिल एक इक एकहि पवन झकोर घन॥

(रतनबावनी छं० २६)

रतनसेन पर पठान योद्धाओं के प्रहार करने के विषय में कवि उत्प्रेक्षा करता है कि पठान रतनसेन पर ठीक उसी प्रकार से प्रहार करते थे जिस प्रकार होली के अवसर पर ग्वाल-बाल 'खंडल छोर' अहीर पर।

इक इक्क धाउ धल्लिव सवन रतनसेन रणधीर कहं।
जनु ग्वाल बाल होली हरव खंडल छोर अहीर कहं॥

(रतनबावनी छं० ३१)

'सन्देह' तथा उत्प्रेक्षालंकार की सहायता से रतनसेन के शिर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

किधौं सत्त की शिखा, सोभ-साखा सुखदायक।
जनु कुल-दीपक ज्योति जुद्ध-तम भेंटन लायक॥
किधौं प्रष्ट पति-पुंज पुन्य कर पल्लव पिक्खिय।
किधौं कित्ति-परभात तेज-मूरति करि लिक्खिव॥

कहि केशव राजत परम पर रतनसेन शिर शुम्भियहु।
जनु प्रलय काल फणपति कहूँ फणपति-फण उद्दित कियहु॥
(रतनबावनी, छं० २८)

जहांगीर-जस-चन्द्रिका—इस ग्रन्थ में प्रयुक्त अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, एकावली, विभावना, विरोधाभास, सन्देह तथा परिसंख्या मुख्य हैं। यहाँ कुछ अलंकारों के उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

विरोधाभास, परिसंख्या और अतिशयोक्ति आदि अलंकार भावव्यंजना के उत्कर्ष-साधन में सहायक न होकर पाण्डित्य-प्रदर्शन ही विशेष करते हैं। इस ग्रन्थ में बादशाह जहांगीर के यश एवं प्रताप तथा उसके दरबार और दरबारियों आदि का वर्णन हुआ है, इस कारण कवि की पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति का प्राधान्य अधिक अरुचिकर प्रतीत नहीं होता है। 'विरोधाभास' अलंकार की सहायता से जहांगीर के प्रताप का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

बैठे एक छत्र तर छांह सब छिति पर सूरज भगत अतिराह हित मति हो।
सिंहासन बैठे राज राखत हो गाइ द्विज देखत हो गजराज देखियत अति हो॥
अकर कहावत धनुष धरैं केसोराय परम कृपाल पै कृपान करपति हो।
चिर चिर राज करौं जहांगीर साहि पति लोक कहैं नरदेव देवनि की गति हो॥
(ज० ज० चं०, छं० १६१)

निम्नलिखित छन्द में 'परिसंख्या' अलंकार के सहारे जहांगीर के राज्य की सुव्यवस्था का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

बैरी गाइ बामन को काज सब काल जहां कवि कुलही को सुबरनहर काजु है।
गुरुसेजगामी एक बालके विलोकियत मातंगनि ही के मतवारे को सो साजु है॥
अरि नगरीन प्रति करत अगम्या गौन दुर्गन ही केसौदास दुर्गति सी आजु है।
साहिनि के साहि जहांगीर साहि साहि सिंघ चिर चिर राज करौ जाको ऐसो राजु है॥
(ज० ज० चं०, छं० १६२)

अधोलिखित छन्द में 'एकावली' अलंकार के द्वारा जहांगीर के यश का वर्णन किया गया है—

साहिनि को साहि जहांगीर साहि जू को जसभूतल के आसपास सागर हुलास सो।
सागर में बड़भाग वेष शेषनाग को सो सेष जू में सुखदानि विस्नु को निवासु सो॥
विस्नु जू में भूरिभाव भव को प्रभाव जैसो भवजू के भाल में विभूति को विलासु सो।
भूति मांझ चन्द्रमा सो चंद्र में सुधा को अंसु अंसुनि में सोहै चारु चन्द्रिका प्रकासु सो॥
(ज० ज० चं०, छं० ३६)

जहांगीर के प्रताप का वर्णन कवि ने एक स्थल पर 'विभावना' अलंकार के सहारे भी किया है।

अरिगन ईंधन जरि गये जदपि केसोदास।
तदपि प्रतापानलनि को पल पल बढ़त प्रकास॥
(ज० ज० चं०, छं० १९५)

उपमा, उत्प्रेक्षा आदि सादृश्यमूलक अलंकारों की योजना भावव्यंजना में सहायक है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ दिए जाते हैं। निम्नलिखित छन्द में 'उपमा' अलंकार के द्वारा जहांगीर की चरित्रगत विशेषताओं का निरूपण किया गया है—

नल सो जगत्दानी सांचो। हरिचंद जू सो पृथु सो परम पुरखारथनि लेखिये।
बलि सो विवेकी जु दधीच ऐसो धीरधद साधु अम्बरीष जू सो उर अवरेखिये॥
भृगुपति जू सो सूर हनुमंत जू सो जती केसोराई विक्रम तें साहसी विसेखिये।
साहिनि को साहि जहांगीर साहि धरधाता दाता कीनो दूसरो विधाता ऐसो देखिये॥
(ज० ज० चं०, छं० ११८)

सिंहासनस्थ जहांगीर के शीश पर मुक्तावलि से सुसज्जित छत्र तथा उसके चारों ओर चंवरों के झले जाने के विषय में कवि ने बड़ी ही सुन्दर उत्प्रेक्षाओं का प्रयोग किया है।

मुक्तावलि जुत सोभिजै छत्र सीस पर सेतु।
सुधा बिन्दु बरषै मनो सोम कढ़्यौ हिय हेतु॥
चौर ढरत चहुँ ओर अति उज्जल परम प्रकास॥
कीरत मानौ रिपुन की वारत केसौदास॥
(ज० ज० चं०, छं० १०८, १०९)

निम्नांकित छन्द में 'उपमा' और 'असंगति' अलंकारों का इकट्ठा प्रयोग भी बहुत ही सुरुचिपूर्ण हुआ है।

भोगभार भागभार केसव विभूति भार भूमि भार भूरि अभिषेक कैसे जल से।
दान भार मान भार सकल सयान भार धन भार धर्म भार अच्छत अमल से॥
जय भार जस भार सोहै जहांगीर सिर राजभार आसिष असेष मंत्र बल से।
देखि देखि ठौर ठौर देस देस तिहिं दुख फाटत है सत्रुन के सीस दार्‌यो फल से॥
(ज० ज० चं०, छं० १६५)

(इ) छन्द-प्रयोग

केशव के पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य के कवियों द्वारा प्रयुक्त छन्द—केशव के प्रबन्ध-ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि उन्होंने मात्रिक तथा वर्णिक दोनों ही प्रकार के छन्दों की योजना की है। इसके अतिरिक्त जितने अधिक छन्दों का प्रयोग केशव ने किया है उतने छन्दों का प्रयोग केशव के पूर्वगामी, समकालीन अथवा परवर्ती हिन्दी के किसी कवि ने नहीं किया। हिन्दी-साहित्य के आदिकाल की सिद्धों की अपभ्रंश-रचनाओं में 'दूहा' छन्द का प्रयोग ही विशेष हुआ है। तत्पश्चात् वीरगाथा काल के रासो ग्रन्थों में दूहा, छप्पय, तोमर, त्रोटक, पद्धरि (पद्धरि), गाहा तथा आर्या आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। भक्तिकालीन कबीर, दादू आदि निर्गुण सन्त-कवियों की रचनाओं में भी दोहे का ही अधिकांश प्रयोग देखने में आता है। जायसी आदि सूफ़ी प्रेमगाथाकारों ने अपनी रचनाओं में दोहा-चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। केशव के समकालीन अष्टछाप के कवियों ने अधिकतर पदों में अपनी

रचनाएँ की हैं। सूरदास, नन्ददास, परमानन्ददास आदि कुछ कवियों द्वारा कहीं-कहीं दोहा, चौपही, रोला, छप्पय, सार आदि छन्द भी व्यवहृत हुए हैं। हां, केशव के समकालीन कवियों में एक तुलसीदास अवश्य ऐसे हैं जिन्होंने केशव से पूर्व सबसे अधिक छन्दों का प्रयोग किया है। मात्रिक छन्दों में तुलसीदास ने दोहा, सोरठा, बरवै, अरुण, सोहर और झूलना तथा वर्णिक छन्दों में, अनुष्टुप्, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, नगस्वरूपिणी, भुजंगप्रयात, वसन्ततिलका, वंशस्थविल, शार्दूलविक्रीड़ित, किरीटी, मालिनी, स्रग्धरा तथा कवित्त को अपनाया है। विविध छन्दों के प्रयोग में केशव तुलसी को भी बहुत पीछे छोड़ गए हैं।

केशव द्वारा प्रयुक्त छन्द—केशव के विविध प्रबन्धों में जो छन्द प्रयुक्त हुए हैं, उनके नाम नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं—

रामचन्द्रिका :

डा० दीक्षित द्वारा उल्लिखित छन्दों के नाम इस प्रकार हैं—

मात्रिक—

(१) दोहा (२) रोला (३) घत्ता (४) छप्पय (५) प्रज्झटिका (६) अरिल्ल (७) पादाकुलक (८) त्रिभंगी (९) सोरठा (१०) कुंडलिया (११) सवैया (१२) गीतिका (१३) डिल्ला (१४) मधुभार (१५) मोहन (१६) विजया (१७) शोभना (१८) सुखदा (१९) हीर (२०) पद्मावती (२१) हरिगीतिका (२२) चौबोला (२३) हरिप्रिया तथा (२४) रूपमाला।

वर्णिक—(१) श्री (२) सार (३) दण्डक (४) तरणिजा (५) सोमराजी (६) कुमारललिता (७) नगस्वरूपिणी (८) हंस (९) समानिका (१०) नराच (११) विशेषक (१२) चंचला (१३) शशिवदना (१४) शार्दूलविक्रीड़ित (१५) चंचरी (१६) मल्ली (१७) विजोहा (१८) तुरंगम (१९) कमला (२०) संयुता (२१) मोदक (२२) तारक (२३) कलहंस (२४) स्वागता (२५) मोटनक (२६) अनुकूला (२७) भुजंगप्रयात (२८) तामरस (२९) मत्तगयन्द (३०) मालिनी (३१) चामर (३२) चन्द्रकला (३३) किरीट सवैया (३४) मदिरा सवैया (३५) सुन्दरी (३६) तन्वी (३७) सुमुखी (३८) कुसुमविचित्रा (३९) वसन्ततिलका (४०) मोतियदाम (४१) सारवती (४२) त्वरितगति (४३) द्रुतविलम्बित (४४) चित्रपदा (४५) मत्तमातंगलीलाकरण दंडक (४६) अनंगशेखर दंडक (४७) दुर्मिल सवैया (४८) इन्द्रवज्रा (४९) उपेन्द्रवज्रा (५०) रथोद्धता (५१) चन्द्रवर्त्म (५२) वंशस्थविल (५३) प्रमिताक्षरा (५४) पृथ्वी (५५) मल्लिका (५६) गंगोदक (५७) मनोरमा तथा (५८) कमल। (आचार्य केशवदास, पृ० २०३)

इनके अतिरिक्त ३९ छन्द और मेरे देखने में आए हैं, जो निम्नलिखित हैं—

(१) रमण (२) प्रिया (३) गाहा (४) चतुष्पदी अथवा चौपैया (५) नवपदी (६) आभीर (७) मालती (८) मदनमल्लिका (९) घनाक्षरी (१०) तोमर (११) अमृतगति (१२) दोधक (१३) तोटक (१४) पंकजवाटिका (१५) निशिपालिका (१६) सुप्रिया अथवा शशिकला (१७) मंथना (१८) मधु (१९) बन्धु (२०)

चौपाई या चौपई (२१) ब्रह्मरूपक (२२) रुग्विणी (२३) हाकलिका (२४) मदन-मनोहर दण्डक (२५) लवंगलता (२६) मदनहरा (२७) पंचचामर (२८) झूलना (२९) जयकरी (३०) मकरंद सवैया (३१) मरहट्टा (३२) हरिलीला (३३) धीर (३४) उपजाति (३५) गौरी (३६) रूपक्रान्ता (३७) सुगीत (३८) सिंहविलोकित तथा (३९) मनहरन।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त छन्दों की संख्या '८२' के स्थान पर '१२१' ठरहती है।

वीरसिंहदेव-चरित :

मात्रिक[१]—(१) छपद (छप्पय) (२) चौपही (३) दोहा (दोहरा) (४) हीर (५) कुंडलिया (६) त्रिभंगी और (७) मनोरमा।

वर्णिक—(१) नगस्वरूपिणी (२) भुजंगप्रयात (३) कवित्त (४) दण्डक और (५) नाराच।

विज्ञानगीता :

मात्रिक—[२] (१) छप्पय (२) सवैया (३) दोहा (४) सोरठा (५) कुण्डलिया (६) रूपमाला (७) मरहट्टा (८) तोमर (९) हरिगीतिका (१०) गीतिका (११) त्रिभंगी (१२) विजय तथा (१३) पादाकुलक।

वर्णिक[३]—(१) नाराच (२) दण्डक (३) तारक (४) हीरक (५) भुजंगप्रयात (६) दोधक (७) नगस्वरूपिणी (८) कवित्त (९) चामर (१०) मल्लिका (११) सुन्दरी (१२) तोटक (१३) मदिरा (१४) हरिलीला (१५) नलिनी (१६) स्वागता (१७) समानिका (१८) मधु (१९) चंचरी अथवा चंचरीक तथा (२०) सरस्वती।

रतनबावनी :

मात्रिक—(१) दोहा (२) छप्पय और (३) कुण्डलिया (कुण्डरिया)।

जहांगीर जस-चंद्रिका :

मात्रिक—(१) छप्पय (२) दोहा (३) सवैया (४) सोरठा (५) चंचरी और (६) रूपमाला।

वर्णिक—(१) कवित्त (२) भुजंगप्रयात (३) समानिका और (४) निशिपालिका।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि 'रामचन्द्रिका' में ही सब से अधिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। केशव ने जितने अधिक छन्दों का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया है हिन्दी साहित्य

---

१. डा० दीक्षित ने त्रिभंगी और मनोरमा छन्दों के नाम नहीं दिए हैं।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

२. डा० दीक्षित ने अन्तिम दो का उल्लेख नहीं किया है।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

३. डा० दीक्षित की सूची में मधु, चंचरी और सरस्वती छन्द नहीं हैं।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

की किसी भी रचना में आज तक नहीं हुआ है। कमल, घत्ता, विजोहा, मोटनक, तरणिजा, सोमराजी, कुमारललिता, बन्धु, मधु, समानिका, तुरंगम, डिल्ला, मंथना तथा निशिपालिका आदि छन्दों के नाम कदाचित् ही छन्दःशास्त्र से इतर किसी ग्रन्थ में देखने को मिलें। इसी प्रकार दण्डक के उपभेद, मत्तमातंगलीलाकरण, अनंगशेखर तथा मदनमनोहर भी अन्यत्र मिलने दुष्कर हैं। सवैया के प्रायः सभी उपभेदों मत्तगयंद, दुर्मिल, सुन्दरी, किरीट, चन्द्रकला तथा मदिरा का प्रयोग यहाँ हुआ है। दूसरे, केशव ने छोटे से छोटे तथा लम्बे से लम्बे छन्दों का यहाँ प्रयोग किया है। एक वर्ण वाले छन्दों से लेकर आठ वर्णों वाले छन्दों तक के उदाहरण तो एक ही साथ ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत किए गए हैं[1]।

इस ग्रन्थ में केशव की अभिरुचि मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों के प्रति अधिक रही है। वर्णिक छन्दों में भी दोधक, तोमर, तोटक, तारक, भुजंगप्रयात नाराच, मोटनक तथा दण्डक अधिक प्रिय हैं। इसी प्रकार मात्रिक छन्दों में त्रिभंगी प्रज्झटिका, रूपमाला, हरिगीतिका तथा चौबोला के प्रति कवि का विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में बहुत ही शीघ्र छन्दों का परिवर्तन किया है। लंका-दहन के प्रसंग को छोड़कर जहाँ लगातार पाँच बार भुजंगप्रयात छन्दों का प्रयोग हुआ है (प्र० १४, छं० ६-१०), ऐसे स्थल अत्यन्त ही कम हैं जहाँ कवि द्वारा सात-आठ बार लगातार एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ हो। सीता की खोज करते हुए हनुमान के लंका पहुँचने पर लंकाधिपति रावण के राजभवन, सीता की वियोगिनी मूर्ति तथा रावण-सीता-संवाद का वर्णन एक साथ ग्यारह भुजंगप्रयात छन्दों में हुआ है (प्र० १३, छं० ५०-६०)। कुंभकर्ण का युद्ध-वर्णन भी लगातार सात भुजंगप्रयात छन्दों में किया गया है (प्र० १८, छं० २२-२८)। रावण मख-भंग तथा मन्दोदरी

---

१. श्री छन्द—सी, धी, री, धी ॥
सारछन्द—राम, नाम। सत्य, धाम ॥
और नाम। कोन, काम ॥
रमण—दुख क्यों। टरिहै।
हरि जू। हरिहै।
तरणिजा—वरणियो। वरण सो। जगत को। शरण सो ॥
प्रिया—सुख कंद है। रघुनन्दन जू।
जग यों कहै। जग बंद जू ॥
सोमराजी—गुनो एक रूपी, सुनो वेद गावें।
महादेव जाको, सदा चित्त लावें।
कुमारललिता—विरंची गुण देखैं। गिरा गुणनि लेखैं ॥
अनन्त मुख गावैं। विशेषहि न पावैं ॥
नगस्वरूपिणी—भलो बुरो न तू गुनैं। वृथा कथा कहै सुनैं ॥
न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै ॥
—रा० चं०, प्र० १, छं० ८-१६।

चौपाई या चौपई (२१) ब्रह्मरूपक (२२) स्रग्विणी (२३) हाकलिका (२४) मदन-मनोहर दण्डक (२५) लवंगलता (२६) मदनहरा (२७) पंचचामर (२८) झूलना (२९) जयकरी (३०) मकरंद सवैया (३१) मरहट्टा (३२) हरिलीला (३३) धीर (३४) उपजाति (३५) गौरी (३६) रूपकान्ता (३७) सुगीत (३८) सिंहविलोकित तथा (३९) मनहरन।

इस प्रकार 'रामचन्द्रिका' में प्रयुक्त छन्दों की संख्या '८२' के स्थान पर '१२१' ठरहती है।

वीरसिंहदेव-चरित :

मात्रिक[1]—(१) छपद (छप्पय) (२) चौपही (३) दोहा (दोहरा) (४) हीर (५) कुंडलिया (६) त्रिभंगी और (७) मनोरमा।

वर्णिक—(१) नगस्वरूपिणी (२) भुजंगप्रयात (३) कवित्त (४) दण्डक और (५) नाराच।

विज्ञानगीता :

मात्रिक—[2] (१) छप्पय (२) सवैया (३) दोहा (४) सोरठा (५) कुण्डलिया (६) रूपमाला (७) मरहट्टा (८) तोमर (९) हरिगीतिका (१०) गीतिका (११) त्रिभंगी (१२) विजय तथा (१३) पादाकुलक।

वर्णिक[3]—(१) नाराच (२) दण्डक (३) तारक (४) हीरक (५) भुजंगप्रयात (६) दोधक (७) नगस्वरूपिणी (८) कवित्त (९) चामर (१०) मल्लिका (११) सुन्दरी (१२) तोटक (१३) मदिरा (१४) हरिलीला (१५) नलिनी (१६) स्वागता (१७) समानिका (१८) मधु (१९) चंचरी अथवा चंचरीक तथा (२०) सरस्वती।

रतनबावनी :

मात्रिक—(१) दोहा (२) छप्पय और (३) कुण्डलिया (कुण्डरिया)।

जहाँगीर जस-चंद्रिका :

मात्रिक—(१) छप्पय (२) दोहा (३) सवैया (४) सोरठा (५) चंचरी और (६) रूपमाला।

वर्णिक—(१) कवित्त (२) भुजंगप्रयात (३) समानिका और (४) निशिपालिका।

उपर्युक्त सूची से प्रकट है कि 'रामचन्द्रिका' में ही सब से अधिक छन्द प्रयुक्त हुए हैं। केशव ने जितने अधिक छन्दों का प्रयोग इस ग्रन्थ में किया है हिन्दी साहित्य

---

१. डा० दीक्षित ने त्रिभंगी और मनोरमा छन्दों के नाम नहीं दिए हैं।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

२. डा० दीक्षित ने अन्तिम दो का उल्लेख नहीं किया है।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

३. डा० दीक्षित की सूची में मधु, चंचरी और सरस्वती छन्द नहीं हैं।
—आचार्य केशवदास, पृ० २०३।

की किसी भी रचना में आज तक नहीं हुआ है। कमल, घत्ता, विजोहा, मोटनक, तरणिजा, सोमराजी, कुमारललिता, बन्धु, मधु, समानिका, तुरंगम, डिल्ला, मंथना तथा निधिपालिका आदि छन्दों के नाम कदाचित् ही छन्दःशास्त्र से इतर किसी ग्रन्थ में देखने को मिलें। इसी प्रकार दण्डक के उपभेद, मत्तमातंगलीलाकरण, अनंगशेखर तथा मदनमनोहर भी अन्यत्र मिलने दुष्कर हैं। सवैया के प्रायः सभी उपभेदों मत्तगयंद, दुर्मिल, सुन्दरी, किरीट, चन्द्रकला तथा मदिरा का प्रयोग यहाँ हुआ है। दूसरे, केशव ने छोटे से छोटे तथा लम्बे से लम्बे छन्दों का यहाँ प्रयोग किया है। एक वर्ण वाले छन्दों से लेकर आठ वर्णों वाले छन्दों तक के उदाहरण तो एक ही साथ ग्रन्थ के आरम्भ में प्रस्तुत किए गए हैं[1]।

इस ग्रन्थ में केशव की अभिरुचि मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों के प्रति अधिक रही है। वर्णिक छन्दों में भी दोधक, तोमर, तोटक, तारक, भुजंगप्रयात नाराच, मोटनक तथा दण्डक अधिक प्रिय हैं। इसी प्रकार मात्रिक छन्दों में त्रिभंगी प्रज्झटिका, रूपमाला, हरिगीतिका तथा चौबोला के प्रति कवि का विशेष प्रेम दिखाई पड़ता है। केशव ने 'रामचन्द्रिका' में बहुत ही शीघ्र छन्दों का परिवर्तन किया है। लंका-दहन के प्रसंग को छोड़कर जहाँ लगातार पाँच बार भुजंगप्रयात छन्दों का प्रयोग हुआ है (प्र० १४, छं० ६-१०), ऐसे स्थल अत्यन्त ही कम हैं जहाँ कवि द्वारा सात-आठ बार लगातार एक ही छन्द प्रयुक्त हुआ हो। सीता की खोज करते हुए हनुमान के लंका पहुँचने पर लंकाधिपति रावण के राजभवन, सीता की वियोगिनी मूर्ति तथा रावण-सीता-संवाद का वर्णन एक साथ ग्यारह भुजंगप्रयात छन्दों में हुआ है (प्र० १३, छं० ५०-६०)। कुंभकर्ण का युद्ध-वर्णन भी लगातार सात भुजंगप्रयात छन्दों में किया गया है (प्र० १८, छं० २२-२८)। रावण मख-भंग तथा मन्दोदरी

---

१. श्री छन्द—सी, धी, री, धी ॥
सारछन्द—राम, नाम। सत्य, धाम ॥
और नाम। कोन, काम ॥
रमण—दुख क्यों। टरिहै।
हरि जू। हरिहै।
तरणिजा—वरणियो। वरण सो। जगत को। शरण सो ॥
प्रिया—सुख कंद है। रघुनन्दन जू।
जग यों कहै। जग बंद जु ॥
सोमराजी—गुनो एक रूपी, सुनो वेद गावें।
महादेव जाको, सदा चित्त लावें।
कुमारललिता—विरंची गुण देखैं। गिरा गुणनि लेखैं ॥
अनन्त मुख गावैं। विशेषहि न पावैं ॥
नगस्वरूपिणी—भलो बुरो न तू गुनैं। वृथा कथा कहै सुनैं ॥
न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै ॥
—रा० चं०, प्र० १, छं० ८-१६।

की दयनीय दशा का वर्णन करने में आठ बार लगातार भुजंगप्रयात का प्रयोग हुआ है (प्र० १६, छं० २६-३३)। इसी प्रकार रामकृत राज्यश्री-निन्दा के प्रसंग में लगातार सात बार 'जयकरी' प्रयुक्त किया गया है (प्र० २३, छं० १४-२०)। राम के राज्याभिषेक के शुभावसर पर ब्रह्मादि देवताओं, पितरों तथा ऋषियों द्वारा की गई स्तुति के प्रसंग में भी निरन्तर सात बार दण्डक (प्र० २७, छं २-८) तथा पंद्रह बार रूपमाला (प्र० २७, छं १०-२४) का प्रयोग किया गया है। कुछ छन्द ऐसे भी हैं जिनका केवल ए— बार ही प्रयोग किया गया है यथा मल्ली, विजोहा तथा मंथना (प्र० ३, छं० ५/; प्र० ४, छं० ४ तथा प्र० ४, छं० ७ क्रमशः)। इस प्रकार स्व० डा० बड़थ्वाल के शब्दों में 'रामचन्द्रिका' को छन्दों का अजायबघर कहना अत्युक्ति न होगी।

'वीरसिंहदेव-चरित' में दोहा-चौपाई छन्दों का अधिक प्रयोग हुआ है। सम्भवतः जायसी और तुलसी आदि प्रबन्धकारों की देखा-देखी ही केशव ने भी अपने इस प्रबन्ध में दोहा-चौपाई छन्दों का ही प्रयोग किया है। परन्तु ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में युद्ध का वर्णन होने से इस भाग के लिए इन छन्दों का चयन अधिक उपयुक्त एवं संगत नहीं है। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ की रचना ब्रजभाषा में हुई है। दोहा-चौपाई अवधी के छन्द हैं। ब्रज में इनका प्रयोग उतना सुन्दर एवं रोचक नहीं लगता। फिर भी ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में, जहाँ युद्ध से इतर प्रसंगों का वर्णन हुआ है, इन छन्दों का प्रयोग इतना अरुचिकर प्रतीत नहीं होता। प्रयोग की दृष्टि से दोहा-चौपाई छन्दों के पश्चात् छपद (छप्पय), सवैया और कवित्त का स्थान आता है। सवैया का ग्यारह बार, कुण्डलिया का पांच बार और दण्डक का तीन बार प्रयोग हुआ है। कवित्त छन्दों का लगातार आठ बार प्रयोग भी देखा जाता है (पृ० १६२-१६४, छं० ४१-४८)। कई छन्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग केशव ने केवल एक ही बार किया है, जैसे नगस्वरूपिणी, त्रिभंगी, हीरक, भुजंगप्रयात और मनोरमा।

'रतनबावनी' में केशव ने वीरगाथा-काल की व्यंजनों के द्वित्व एवं अन्त्यानुप्रास से पूर्ण शैली के साथ उस काल के प्रसिद्ध दोहा और छप्पय छन्दों को अपनाया है। कुण्डलिया (कुण्डरिया) छन्द का केवल एक ही बार प्रयोग किया गया है।

'विज्ञानगीता' में एक बार फिर केशव के उसी छन्द-वैविध्य के दर्शन होते हैं जो उनकी 'रामचन्द्रिका' में दृष्टिगोचर होता है। इस ग्रन्थ में 'रामचन्द्रिका' के सदृश ही मात्रिक छन्दों की अपेक्षा वर्णिक छन्दों का प्रयोग बाहुल्य से हुआ है। परन्तु यहाँ अपरिचित छन्दों का प्रयोग नहीं किया गया है। प्रायः एक छन्द का दो या तीन बार ही लगातार प्रयोग किया गया है। कुण्डलिया, मरहट्टा तथा पादाकुलक छन्द केवल एक ही बार प्रयुक्त हुए हैं। शरद्-वर्णन लगातार पांच दण्डक छन्दों में हुआ है (प्र० १०, छं० १३-१७)। बिन्दुमाधव तथा गंगा की स्तुति के प्रसंग में लगातार आठ-आठ बार भुजंगप्रयात छन्दों का प्रयोग किया गया है (प्र० ११, छं० २१-२८ तथा प्र० ११, छं० ४०-४७ क्रमशः)। विश्वनाथ-स्तुति लगातार पाँच चामर छन्दों में हुई है (प्र० ११, छं० ३३-३७)। ज्ञान-अज्ञान की भूमिकाओं का विवरण लगातार उन्नीस दोहों में प्रस्तुत किया गया है (प्र० १७, छं० ४३-६१)। अन्य

छन्दों की अपेक्षा केशव ने दोहा, दोधक, तारक, चामर, सुन्दरी, सरस्वती तथा रूपमाला छन्दों का अधिक प्रयोग किया है।

'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में केशव ने अधिकांश कवित्त-सवैयों को अपनाया है। 'दोहा' को छोड़कर अन्य छन्द बहुत ही कम प्रयुक्त हुए हैं। रूपमाला, भुजंगप्रयात, समानिका, नाराच, निशिपालिका, दोधक तथा चामर छन्दों का प्रयोग केवल एक ही बार हुआ है। सोरठा दो बार प्रयुक्त हुआ है। जहाँगीर बादशाह के दरबार का दृश्य तथा उसके प्रताप का वर्णन क्रमशः एक साथ चार तथा पाँच कवित्त छन्दों में हुआ है (छं० ४२-४५ तथा छं ३२-३६ क्रमशः)। उदय-भाग्य संवाद के प्रसंग में लगातार ग्यारह छप्पय छन्दों का प्रयोग हुआ है (छं० १४-२४)।

छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की मौलिकता—केशव के छन्द-प्रयोग-सम्बन्धी कौशल को परखने के लिए उनका सब से महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'रामचन्द्रिका' है। इस ग्रन्थ में छन्द-प्रयोग के क्षेत्र में केशव की कुछ नवीन उद्भावनाएँ दिखलाई पड़ती हैं। उन्होंने कुछ नए छन्दों का आविष्कार किया है, जैसे सुगीत (ज, भ, र, स, ज, ज=१८ वर्ण—प्र० १, छं० ४), मनहरन (न, स, र, र, र=१५ वर्ण—प्र० ११, छं० २३), मनोरमा (स, स, स, स, ल, ल,=१४ वर्ण—प्र० ११, छं०, ३४) तथा कमल (स, स, स, न, ग=१३ वर्ण—प्र० ३२, छं० १७)।

कवि ने दो स्थलों पर 'चौबोला' और 'जयकरी'[1] छन्द का मिश्रण कर दिया है। कहीं 'चौबोला' के दो चरण पहले आए हैं और कहीं 'जयकरी'[2] के।

केशव ने 'चौपाई' और 'चौपई' में भी कोई भेद नहीं किया है। वे १६ मात्राओं के छन्द को भी 'चौपाई' लिखते हैं और १५ मात्राओं वाले को भी। उन्होंने 'चौपई' में, अन्त में गुरु लघु के भी नियम का पालन नहीं किया है[3]।

---

१. जयकरी और चौबोला दोनों छन्दो के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं, अन्तर केवल इतना है कि जयकरी के अन्त में गुरु लघु (ऽ।) होना चाहिए और चौबोला में लघु गुरु (।ऽ)। जयकरी का अन्य नाम चौपाई भी है।

छन्द प्रभाकर, पृ० ४८।

२. सोदर मंत्रिन के जु चरित्र। इनके हमपै सुनि मखमित्र।
इनही लगे राज के काज। इनही ते सब होत अकाज॥
कालकूट ते मोहन रीति। मणिगण ते अति निष्ठुर प्रीति।
मदिरा ते मादकता लई। मन्दर उदर भई भ्रममई॥

—रा० चं०, प्र० २३, छं० १४ और २४ (क्रमशः)।

३. चौपाई (१५ मात्राएँ)—
सेंदुर माँग भरी अति भली। तिहि पर मोतिन की आवली।
गंग-गिरा तनु सों तन जोरि। निकसी जनु जमुना जल फोरि॥

—रा० चं०, प्र० ३१ छं० ८।

'चौपाई' का उन्होंने एक विचित्र उदाहरण भी दिया है[१]।

हिन्दी साहित्य में एक भाव अथवा वस्तु का वर्णन डेढ़ छन्द में कहीं उपलब्ध नहीं होता पर केशव के प्रबन्धों में एक-दो स्थलों पर इस प्रकार का प्रयोग देखने में आता है, जैसे - के रनिवास की सीता जी की दासियों तथा महाराज वीरसिंह के अन्तःपुर ९. । वनिताओं के नखशिख-वर्णन के अन्तर्गत उनके शिरोभूषण तथा भृकुटि के वर्णन में[२]।

ताटंक (कर्णाभूषण) तथा जलकेलि के अनन्तर सुन्दरियों के शरीरों की शोभा का वर्णन क्रमशः पद्धटिका तथा हाकलिका छन्दों के दो ही चरणों में किया गया है[३]।

यहाँ केशव का विशेष प्रिय छन्द 'चौबोला' भी उल्लेखनीय है। केशव ने 'जयकरी' और 'चौबोला' में विशेष अन्तर नहीं रखा है। वे 'चौबोला' को 'जयकरी' और 'जयकरी' को 'चौबोला' लिखते रहे हैं। 'चौबोला' के प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ होती हैं और अन्त में लघु गुरु (।ऽ) होता है। यद्यपि 'चौबोला' पर यह लक्षण घटता है किन्तु फिर भी है वर्णित वृत्त ही, जिसका रूप है—म, भ, भ, ल, ग[४]।

केशव के पूर्ववर्ती तथा समकालीन हिन्दी भाषा के कवियों की भी रचनाओं में अतुकान्त छन्द का अभाव ही देखने में आता है। हाँ, केशव के पूर्ववर्ती कवियों में एक महाकवि चन्द ऐसे अवश्य हैं जिन्होंने एक स्थल पर अतुकान्त का प्रयोग किया है, जिसका उल्लेख स्व० अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'हिन्दी

चौपई (१५ मात्राएं)
सुखद नासिका जग मोहियो। मुक्तफलनि युक्त सोहियो।
अनंद लतिका मनहु सफूल। सूँघि तजत ससि सकल कुशूल ॥
—रा० चं० प्र० ३१, छं० १३।

(१६ मात्राएँ) (१६ मात्राएँ)
१. कहु राजत सूरज अरुन खरे। जनु लक्ष्मन के अनुराग भरे।
(१५ मात्राएँ) (१५ मात्राएँ)
चितवत चित्त कुमुदिनी त्रसे। चोर चकोर चिता सी लसैं ॥
—रा० चं० प्र० ५, छं० ६।

२. शीशफूल शुभ जर्‍यो जराय। माँगफूल सोहै सम भाय।
वेणीफूलन की बर माल। भाल भले बेंदा युग लाल।
तम नगरी पर तेज निधान। बैठे मनो बारहो भान ॥
—रा० चं० (उत्तरार्द्ध), पृ० १६५ तथा बी० दे० च०, पृ० १३२ (पाठान्तर से)

३. अति झुलमुलीन सह झलक लीन। फहरात पताका जनु नवीन ॥
—रा० चं० (उत्तरार्द्ध), पृ० १६६

४. संग लिये ऋषि शिष्यन घने। पावक से तपतेजनि सने।
देखत बाग तड़ागन भले। देखन औधपुरी कहं चले ॥
—रा० चं०, प्र० १, छं० ३६।

भाषा और साहित्य का विकास' नामक ग्रन्थ में किया है[1]। चन्द के पश्चात् केशव ही पहले कवि हैं जिनकी 'रामचन्द्रिका' में भिन्न तुकान्त छन्द का प्रयोग उपलब्ध होता है[2]।

भावानुकूल छन्द—केशव ने अपने 'रामचन्द्रिका' नामक प्रबन्ध में अनेक स्थलों पर भावों के आरोह-अवरोह के अनुकूल छन्दों का प्रयोग किया है। छोटे छन्दों का प्रयोग कवि ने प्रायः उन स्थलों पर किया है जहाँ द्रुतगति की आवश्यकता होती है। बड़े छन्दों का प्रयोग प्रायः ऐसे स्थलों में किया गया है जहाँ गाम्भीर्य तथा ओज की आवश्यकता होती है। द्रुतगति से फटकार बतलाने के लिए 'नागराज' (ज, र, ज, र, ग) नामक छोटे छन्द का कितना फड़कता हुआ प्रयोग हुआ है[3]।

प्रातः होते ही राम अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ बाटिका-बिहार के लिए जा रहे हैं। उनकी सवारी के लिए घोड़ा लाया जाता है। घोड़े के वर्णन के लिए केशव ने 'चंचला' (आठ बार क्रमशः गुरु-लघु) नामक छोटे छन्द को चुना है जिसकी गति घोड़े के समान ही है। छन्द पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो सचमुच घोड़ा ही कूद रहा है[4]।

राजा-महाराजाओं को मधुर बाजों की ध्वनि से जगाया जाता है। केशव ने

---

१. हरित कनक कांति कापि चंपव गोरा।
रसित पदुम गंधा फुल्ल राजीव नेत्रा॥
उरज जलज शोभा नाभिकोषं सरोजं।
चरण कमल हस्ती लीलया राजहंसी॥

—पृ० २६६।

२. गुणगण मणिमाला चित्त चातुर्यशाला।
जनक सुखद गीता पुत्रिका पाय सीता॥
अखिल भुवन भर्त्ता ब्रह्मरुद्रादि कर्त्ता।
थिर चिर अभिरामी कीय जामातु नामी॥

—रा० चं०, प्र० ६, छं० २७।

३. पढ़ो विरंचि मौन वेद जीव सोर छंड़ि रे।
कुबेर बेर के कही न यक्ष भीर मंडि रे।
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चन्द मंदबुद्धि इन्द्र की सभा नहीं॥

—रा० चं०, प्र० १६, छं० २।

४. भोर होत ही गयो सु राजलोक मध्य बाग।
बाजि आनियो सु एक इंगितज्ञ सानुराग।
शुभ्र सुम्भ चारिहून अंश रेणु के उदार।
सीखि सीखि लेत हैं ते चित्त चंचल प्रकार॥

—रा० चं०, प्र० ३१, छं० १।

श्रीरामचन्द्र को जगाने के लिए मधुर संगीतपूर्ण 'हरिप्रिया' (१२+१२+१२+१०=४६ मात्रा, अन्त में दो गुरु) छन्द का प्रयोग किया है[1]।

लव-कुश के बाणों के प्रहार इतने भीषण हैं कि उनके सम्मुख राम की सेना के बड़े-बड़े यूथपतियों के भी छक्के छूट जाते हैं और वे इधर-उधर भाग उठते हैं। केशव ने संत्रस्त एवं विह्वल राम की सेना के भागने के वर्णन के लिए 'नराच' (८ बार क्रमशः लघु गुरु) नामक छोटे छन्द का प्रयोग किया है। ऐसा लगता है मानो छन्द भी भगुलों के समान ही क्रम से एक पैर रखता और एक उठाता चला जा रहा है[2]।

रसानुकूल छन्द—छन्द का रस से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। रस-विशेष के उद्दीपन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि छन्द-विशेष का ही प्रयोग किया जाय, जैसे संस्कृत साहित्य के वंशस्थविल, शार्दूलविक्रीड़ित तथा भुजंगप्रयात छन्दों में वीर, रौद्र एवं भयानक रस अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। इसी प्रकार द्रुतविलम्बित, शिखरिणी, मालिनी तथा मन्दाक्रान्ता में वीर, करुण और शान्त रस अधिक प्रभावपूर्ण हो जाते हैं। हिन्दी साहित्य के छन्दों में कवित्त, सवैया तथा बरवै में श्रृंगार, करुण और शान्त ; छप्पय और त्रिभंगी में वीर, रौद्र एवं भयानक, नराच में वीर तथा दोहा, चौपाई, सोरठा और घनाक्षरी में साधारणतः सभी रसों का उद्दीपन होता है। प्रबन्ध ग्रन्थों की रचना करते समय केशव के मस्तिष्क में ऐसी कोई बात विद्यमान न थी कि रस-विशेष के लिए छन्द-विशेष ही प्रयुक्त किया जाय, किन्तु फिर भी इनके ग्रन्थों से ऐसे उदाहरण दिए जा सकते हैं जहाँ रस के अनुरूप ही छन्दों का प्रयोग किया गया है। केशव ने अपने वीर-रसात्मक ग्रन्थ 'रतनबावनी' में अधिकांश 'छप्पय' का ही प्रयोग किया है। एक उदाहरण उपस्थित किया जाता है—

रतनसेन कह्यु बात सूर सामन्त सुनिज्जिय।
करहु पंज पनबारि भारि सामंतन लिज्जिय।

---

१. जागिये त्रिलोकदेव, देवदेव रामदेव,
भोर भयो, भूमिदेव, भक्त दरस पावैं।
ब्रह्मा मन मन्त्र वर्ण, विष्नु हृदय चातक घन,
रुद्र-हृदय-कमल-मित्र, जगत गीत गावैं।
गगन उदित रवि अनन्त, शुक्रादि जोतिवंत,
छन छन छवि छीन होत, लीन पीन तारे।
मानहु परदेश देश, ब्रह्मदोष के प्रवेश,
ठौर ठौर तें बिलात जात भूप भारे॥
—रा० चं०, प्र० ३०, छं० १८।

२. भगे चये चमू चमूप छोड़ि छोड़ि लक्ष्मणैं।
भगे रथी महारथी गयंद बृन्द को गर्णं।
कुशै लवै निरंकुशै विलोकि बंधु राम को।
उठ्यो रिसाय कै बली बंध्यो जु लाजदाम को॥
—रा० चं०, प्र० ३६, छं० १६।

वरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब।
जुरि करि संगर आज सूर-मण्डल भेदहु सब।
मधुसाह-नंद इमि उच्चरइ खंड खंड पिंडहि करहुं।
कट्टहुं सुदंत हथियान के मर्दहुं दल यह प्रन धरहुं।[1]

'रामचन्द्रिका' में रौद्र रस की व्यंजना के लिए बहुत से स्थलों पर 'छप्पय' छन्द ही का प्रयोग किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

भगन कियो भवधनुष साल तुमको अब सालौं।
नष्ट करौं विधि सृष्टि ईश आसन ते चालौं।
सकल लोक संहरहुं सेस सिर ते धर डारौं।
सप्त सिन्धु मिलि जाहि होइ सब ही तम भारो।
अति अमल जोति नारायणी कह केशव बुझि जाय बर।
भृगुनंदन संभारु कुठार में कियो सरासन युक्त सर।[2]

इसी प्रकार 'नराच' और 'वंशस्थविल' में भी वीर रस का निरूपण हुआ है[3]।

'वीरसिंहदेव-चरित' भी मुख्य रूप से वीर रस-सम्बन्धी ग्रन्थ है। यहाँ वीर रस के वर्णन के लिए 'त्रिभंगी' छन्द का प्रयोग दर्शनीय है[4]। 'कवित्त' का प्रयोग प्रायः शृंगार रस के वर्णन के लिए ही देखा जाता है परन्तु इस ग्रन्थ में एक स्थल पर कवि ने वीर रस के लिए भी इस छन्द का बड़ा ही प्रभावोत्पादक एवं उपयुक्त प्रयोग किया है[5]।

---

१. रतनबावनी (केशव-पंचरत्न), छं० ६, पृ० २।

२. रा० चं०, प्र० ७, छं० ४२।

३. नराच—जुरे प्रहस्त हस्त लै हथ्यार दिव्य आपने।
कुमार अक्ष तिक्ष वाण छाइयो घन घने॥
कपीस जुद्ध क्रुद्ध भो संहारि अक्ष डारियो।
प्रहस्त सीस में तबै प्रहारि मुष्ट मारियो॥
—रा० चं० (पूर्वार्द्ध), पृ० २३८।

वंशस्थविल—तपी जपी विप्रन छिप्र ही हरौं। अदेव द्वेषी सब देव संहरौं।
सिया न देहौं यह नेम जी धरौं। अमानुषी भूमि अवानरी करौं॥
—रा० चं०, प्र० १६, छं० ३०।

४. मुनि प्रोहित जुझ्झे लाज अरुझ्झे राज विरुझ्झे वैर बढ़े।
जहं तहं गज गज्जिय दुंदुभि बज्जिय सज्जिय सुभट तुरंग चढ़े॥
तुपकैं सर छुट्टहि तरुवर टुट्टहि फुट्टहि कायक बच्च घनैं।
जुझ्झे कुलनायक जालप पायक सुद्ध विनायक क्रुद्ध सनैं॥
—वी० दे० च०, पृ० २१।

५. भोरहु की ज्वाल में भूपाल राउ बाँकुरा सु
रवि करवाल ससिपाल पुरवै रह्यो।
कंकन ऊभरे भुटभेरहू के गलबल,
बाजिद को दल सनमुख पल ह्वै रह्यो।

छन्द-सम्बन्धी कुछ दोष—छन्दःशास्त्र में दिए गए लक्षणों पर ठीक-ठीक न उतरने वाले छन्द केशव के उन प्रबन्धों में ही विशेषतः दृष्टिगोचर होते हैं जिनका सम्पादन अभी तक सुचारु रूप से नहीं हुआ है। 'रामचन्द्रिका' जैसे सुसम्पादित प्रबन्धों में इस प्रकार के छन्द दो-एक ही हैं। निम्नलिखित दोहे के चौथे चरण में एक मात्रा अधिक है[1]। कुछ स्थानों पर 'यतिभंग' तथा 'विरतिभंग' दोष भी देखने में आते हैं[2]।

(ई) भाषा :

(क) शब्दकोष—केशवदास जी का जन्म ऐसे कुल में हुआ था जिसके दास तक भी 'भाषा' नहीं बोल सकते थे। इस कारण 'भाषा' में लिखना वे अपने लिए हेय समझते थे। किन्तु फिर भी उन्होंने भाषा में रचना की। इसका कारण उनके अपने ही ग्रन्थ 'विज्ञानगीता' में ढूंढ़ा जा सकता है[3]। तर्क तो ठीक माना जा सकता है, परन्तु तथ्य कुछ और ही है। स्वयं ही कहते भी हैं[4]। केशव को ही नहीं, अपितु

पंचम के हाथ लागे हाथिनि तें रथी गिरे,
सहियी के मये मद गजनि कौ च्वै रह्यो।
सिरी झरि सार झरि झनन झनन बाजैं,
ठननि ठननि सादु घोलनि में ह्वै रह्यो॥

—वी० दे० च०, पृ० ६५।

१. आगम कनक कुरंग के कही बात सुख पाइ।
कोपानल जरि जाय जनि शोक समुद्र बुड़ाइ॥

—रा० चं०, प्र० १४, छं० ३१।

२. अंतरिच्छ ही लच्छि पद, अच्छ हुयो हनुमन्त।

—रा० चं०, प्र० १३, छं० ३६।

('पद अच्छ' शब्द में 'यतिभंग' दोष है)

जीरन जनमजात जोर जुर घोर, परि-
पूरण प्रगट परिताप क्यों कह्यो परै। (विरति भंग)

—रा० चं०, प्र० ६, छं० २६।

३. देव देव भाषा करैं, नाग नागभाषाणि।
नर हो नरभाषा करी गीता ज्ञान प्रमाणि॥

—वि० गी०, प्र० १, छं० ७।

४. मूढ़ लहै जो गूढ़मतु, अमित अनंत अगाधु।
भाषा करि ताते कहों, क्षमियो बुध अपराधु॥

—वि० गी०, प्र० १, छं० ८।

उस समय के तुलसी जैसे महाकवि को भी 'भाषा' में लिखते समय संकोच होता था[1]।

केशव के काव्य-क्षेत्र में पदार्पण करने के समय अवधी तथा ब्रज दोनों ही भाषाएं काव्य-भाषाओं के रूप में प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। परन्तु केशव ने मुख्य रूप से ब्रज को ही अपनी काव्य-भाषा बनाया। इसका प्रमुख कारण यह था कि केशव का निवास-स्थान बुन्देलखण्ड में था। और बुन्देलखण्डी भाषा ब्रज-भाषा से बहुत कुछ मिलती है, क्योंकि दोनों का मूल स्रोत एक ही भाषा शौरसेनी है। हाँ, थोड़े से शब्दों अथवा प्रयोगों में भेद अवश्य परिलक्षित होता है, किन्तु इससे ब्रजभाषा की प्रधानता में कोई अन्तर नहीं आता। व्यापकता की दृष्टि से ब्रज के पश्चात् अवधी का स्थान था, परन्तु उसमें ब्रज की सी मधुरता का अभाव था। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषाओं के शब्दों को साँचे में ढालकर सर्वथा अपना ही अंग बना लेने की शक्ति ब्रज में अवधी की अपेक्षा कहीं बढ़ी-चढ़ी है। शब्दों को तोड़-मरोड़ कर छन्द की गति के अनुसार बना लेने की स्वतन्त्रता भी ब्रज में अवधी से अधिक रहती है। यही कारण है कि केशव ने अपने काव्य के लिए ब्रज को ही अपनाया। 'युक्तविकर्ष,' 'कारक-लोप', 'णकार', 'शकार', 'क्षकार', के स्थान पर 'न', 'स' और 'छ' का प्रयोग, प्राकृत भाषा के प्राचीन शब्दों का व्यवहार, पंचम वर्ण के स्थान पर अधिकांश अनुस्वार का ग्रहण इत्यादि जितनी विशेष बातें ब्रजभाषा की हैं वे सब उनकी रचनाओं में पाई जाती हैं[2]। इस प्रकार के कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते हैं—

जहं तहं श्रुति पढ़हीं विघन न बढ़हीं[3]। (युक्त-विकर्ष)

सम सब घर शोभैं.........रिपुगण छोभैं देखि सबै[4]॥
('क्ष' के स्थान पर 'छ' का प्रयोग)

सिंह चढ़ी जनु चण्डिका मोहति मूढ़ अमूढ़[5]।
(वर्तमानकालिक क्रिया—स्त्रीलिंग)

शुभ मोतिन की दुलरी सुदेशा[6]। (विभक्ति लगाने से पूर्व बहुवचन में 'न' प्रत्यय का प्रयोग)

तौ परिपूरन यज्ञ करीजै[7]।
('ण' के स्थान पर 'न' का प्रयोग और युक्त-विकर्ष)

सुता विरोचन की हुती दीरघ जिह्वा नाम[8]। (भूतकालिक क्रिया—स्त्रीलिंग)

---

१. भाषा भणित मोर मति थोरी। हंसिबे योग हंसे नहिं खोरी॥
—रा० चं० मा०, बालकाण्ड, पृ० ११।

२. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास, पृ० २६२।

३. रा० चं०, प्र० १, छं० ४१ (तृतीय चरण)।

४. रा० चं०, प्र० १, छं० ४१ (प्रथम चरण)।

५. वही, प्र० १, छं० ४७ (द्वितीय चरण)।

६. वही, प्र० ६, छं० ५६।

७. वही, प्र० २, छं० १५।

८. वही, प्र० ३, छं० ८।

सबं शृंगार सदेह मनो रति मन्मय मोहै। (अनुस्वार-प्रयोग तथा कारक-लोप)
सबं सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मण्डित[1]।
('श' तथा 'ष' के स्थान पर क्रमशः 'स' तथा 'ख' का प्रयोग)
अन्न देइ सीख देइ राख लेइ प्राण जात[2]।
(देइ, लेइ आदि पूर्वकालिक कृदन्त तथा 'जात' वर्तमानकालिक कृदन्त)
पहिरे बकला सुजटा धरिकै। निज पायन पंथ चले अरिकै[3]।
('कै' के साथ पूर्वकालिक कृदन्त का प्रयोग)
खोज अब्दुल्लह आईयौ। मिलि भदोरिया सुख पाईयौ[4]॥ (भूतकालिक क्रिया)
कन्हर के सिर दीनो भार[5]। (कारक-लोप)
तथा : कीबो हुतो काज सबं सु कीन्हो[6]। (भूतकालिक क्रिया-पुलिंग)

केशव संस्कृत के पंडित थे। अतएव उनके ग्रन्थों में संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप में प्रचुरता से पाया जाना स्वाभाविक ही है। उन्होंने संस्कृत के शब्दों का ही नहीं अपितु अनेक स्थलों पर निःसंकोच संस्कृत की 'सुबन्त' और 'तिङन्त' विभक्तियों का भी प्रयोग किया है। संस्कृत का सबसे अधिक प्रभाव उनके प्रबन्ध 'रामचन्द्रिका' पर परिलक्षित होता है। इसका कारण यह है कि यह ग्रन्थ पाण्डित्य-प्रदर्शन के लिए रचा गया था। यही कारण है कि इस रचना में कई इस प्रकार के छन्द लिखे गए हैं जिन के दो-दो अर्थ निकलते हैं। संस्कृत भाषा के शब्दों के प्रयोग के बिना दो अर्थों का निकलना असम्भव था, क्योंकि यह गुण संस्कृत के ही शब्दों में है। 'रामचन्द्रिका' के कुछ छन्दों की भाषा तो अधिकांश संस्कृत ही है[7]।

परन्तु इस प्रकार की संस्कृत गर्भित भाषा सर्वत्र नहीं मिलती है। संस्कृत की सुबन्त और तिङन्त विभक्तियों तथा प्रत्ययों का प्रयोग भी केशव ने स्वच्छन्दता-

१. रा० चं० प्र० १, छं० ४७ (तृतीय और चतुर्थ चरण)।
२. वही, प्र० ६, छं० ६।
३. वही, प्र० १०, छं० १३।
४. वी० दे० च०, पृ० ५५।
५. वही, पृ० ४८।
६. रा० चं०, प्र० १७, छं० १६।
७. (१) सीता शोभन व्याह उत्सव सभा संसार संभावना।
तत्तत्कार्य समग्र व्यग्र मिथिलावासी जनाशोभना।
राजाराजपुरोहितादि सुहृदा मंत्री महामंत्रदा।
नाना देश समागता नृपगणा पूज्यापरा सर्वदा।
—रा० चं०, प्र० ६, छं० १७।
(२) रामचन्द्रपदपद्मं, वृन्दारकवृन्दाभिवन्दनीयम्।
केशवमति भूतनया, लोचनं चंचरीकायते॥
—रा० चं०, प्र० १, छं०, १६।
(३) त्रिदेवः त्रिकालः त्रयीवेदकर्त्ता। त्रिश्रोता कृती सूत्रयी लोकभर्त्ता।
कृपा के कृपापात्र कीने निषाधो। प्रबोधो उदो देहि श्री बिन्दुमाधो॥
वि० गी०, प्र० ११, छं० ३६।

पूर्वक किया है। इस प्रकार के प्रयोग विशेषतः 'रामचन्द्रिका' में ही मिलते हैं, अन्य प्रबन्धों में तो वे कहीं-कहीं ही दिखाई देते हैं। नीचे उद्धृत किये गए छन्दों में इटैलिक प्रयोग इसके प्रमाण हैं—

निजेच्छया भूतल देहधारी ।। (रा० चं०, प्र० १०, छं० ४१)
शिरसि जटा बाकल वपुधारी (वही, प्र० १२ छं० ५३)
शोकविद्रुवित उरसि अब नहिं विवेक अवकाश । (वि० गी०, प्र० १३, छं० १०)
अनन्ता सर्वं सर्वदा शस्ययुक्ता ।
समुद्रावधिः सप्तईतिर्विमुक्ता । (रा० चं०, प्र० २८, छं० १)
लीलयैव हर को धनु खाच्यो । (वही, प्र० ५, छं० ४१)
तदपि सृजति रागन की सृष्टि (वही, प्र० ८, छं० १८)
हरति सुवचन चित्त की रीति । (वी० दे० च०, पृ० १६१)
गुन्यग्तनि आलिङ्गति नहीं । (वही, पृ० १६२)
चतुःसमुद्र मुद्रिकाभि मुद्रिका त्रिच्छेदिनी (ज० ज० चं, छं० १३२)
प्रबोधो उदो देहि श्री बिन्दुमाधो । (वि० गी०, प्र० ११, छं० २१)
दंखि देही सर्वं कोटिवा ।। (रा० चं०, प्र० ११, छं० ७)
अनेकधा पूजन अत्रि जू कर्‌यो । (रा० चं०, प्र० ११, छं० ३)
आखण्डलीय बपु जो तनत्राण धारी । (वही, प्र० १७, छं० ३५)
मनसा वाचा करमना मांगि चित्त की बात ।। (ज० ज० चं०, छं० १३८)
पुनि तुम दीन्हीं कन्यका त्रिभुवन की सिरताज । (रा० चं०, प्र० ६, छं० २३)
सुद्ध देस परापरेषु सर्वं भए इहि बार ।। (ज० ज० चं०, छं० १४१)

कहीं-कहीं संस्कृत की समास और सन्धि-पद्धति का का भी आश्रय लिया गया है। नीचे लिखे उद्धरणों में इटैलिक शब्द इस बात के साक्षी हैं—

भर्तासुतविद्वेषिनी सब को ही दुखदाइ । (रा० चं०, प्र० १०, छं० ५)
मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसंगऽदिति ज्यों सोहै ।। (वही, प्र० १, छं० ४७)
सोऽव कहा तुव लंक न तोरहि (वही, प्र० १५, छं० ७)
मनो सेषमय सोभिजै हरिणाधिष्ठित सेज ।। (वी० दे० च०, पृ० १३०)

बुन्देलखण्डी शब्द : केशवदास के प्रबन्धों में यत्र-तत्र बुन्देलखण्डी शब्द भी दृष्टिगोचर होते हैं। यह स्वाभाविक ही है। जिस प्रान्त के वे निवासी थे उस प्रान्त के शब्दों का उनकी रचनाओं में उपलब्ध होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनके प्रबन्धों में बहुत से बुन्देलखडी शब्दों का प्रयोग हुआ है जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं—

मंत्रिनि स्यौं बैठे सुख पाइ । (वी० दे० च०, पृ० १२४)
बारोठे को चार करि कहि केशव अनुरूप । (रा० चं०, प्र० ६, छं० ५)
दुहिता समदी सुख पाय अबै । (वही, प्र० ६, छं० १)
कहूं भांड भांड्यो करैं मान पावैं । (वही, वही, छन्द १३)
कहूं बोक बांके कहूं मेष सूरे । (वही, वही, छन्द १४)

घनु है यह गौरमदाइन नाहीं। (वही, प्र० १३, छन्द १६)
किधौं उपदि बर्यो है। (वही, प्र० ६, छन्द ३४)
हवाई सी छूटी केसोदास आसमान में। (वही, प्र० १३, छन्द ३८)
चंपकदल द्युति के गेंदुए......।
कुसुम गुलाबन की गलसुई......। (वही, प्र० ३०, छन्द १४)
फूलन के विधि हार, बोरिलन ओरमत उदार। (वही, प्र० २६, छन्द २३)
ज्ञान कपोट जनु कुची जनु खोलत। (वही, प्र० ३२, छन्द ३)
सिव सिर ससि श्री को राहु कैसे सु छीनै। (वही, प्र० १३, छन्द ६२)
फूल सी ओढ़ि लई है। (वही, प्र० १७, छन्द ४०)
दियो काढ़ि कै जू कहा त्रास ताको। (वही, प्र० १६, छन्द २५)
चित्र की सी पुत्रिका कै रूरे बगरूरे माँहि। (वही, प्र० १२, छन्द २०)
गनि एक कोद सब पुन्य अरु एक कोद जौ दीजई। (वी० दे० च०, पृ० १३)
मानिकमय खुटिला छवि मढ़े। (वही, पृ० १३३)

अवधी शब्द —केशव के प्रबन्धों में कहीं-कहीं अवधी भाषा के शब्द भी परिलक्षित होते हैं। 'वीरसिंहदेव-चरित' में अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा अवधी के शब्द अधिक मात्रा में पाए जाते हैं। सम्भवतः इसका कारण यह है कि यह ग्रन्थ दोहा-चौपाई छन्दों में लिखा गया है और इन छन्दों के लिए सबसे अधिक उपयुक्त भाषा अवधी महाकवि तुलसीदास द्वारा प्रमाणित की जा चुकी थी। केशव ने इहां, उहां, दिखाउ, रिझाउ, दीन, कीन आदि अनेक अवधी शब्दों का प्रयोग किया है। निम्नलिखित उद्धरणों में इटैलिक शब्द इसके प्रमाण हैं—

एक इहां ऊ उहां अति दीन सुदेत दुहूं दिशि के जन गारी।
(रा० चं०, प्र० ६, छन्द २५)
प्रभाउ आपनो दिखाउ छोड़ि बाल भाइ कै।
रिझाउ राजपुत्र मोहि राम लै छड़ाइ कै। (वही, प्र० ७, छन्द २३)
हंसि बंधु त्यों दृग दीन। (वही, प्र० ११, छन्द ४०)
तिनको कछु बरनत चरित जा विधि समर सु कीन।
(रतनबावनी, पृ० १, छन्द ३)
देहि बताइ जो मो बिन आन। (वी० दे० च०, पृ० ५)
हौं तोकों सिखऊं सिख एक। (वही, पृ० १३)
मो कहं देइ नवाब बड़ौन। (वही, पृ० २४)
पवन पाइ ज्यों पत्र अपार। (वी० दे० च०, पृ० ३०)
मैं तेरों बलि बन्धु बंधायो बावन ह्वै। (वही, पृ० ६)
उठि चलिबे की द्वावति सौंह। (वही पृ० १४२)
राजा वीरसिंह लै आउ। (वही, पृ० ६३)

विदेशी शब्द—अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का भी केशव ने बड़ी स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है। केशव का आविर्भाव अकबर और जहांगीर

के समय में हुआ था जब कि हिन्दुओं और मुसलमानों में किसी प्रकार का वैमनस्य न रह गया था और वे एक दूसरे से बहुत कुछ घुल-मिल गए थे। दिल्ली के बादशाह के बीरबल, रहीम खानखाना आदि दरबारियों के सम्पर्क में भी केशव आते रहते थे अतः उनके प्रबन्धों में अरबी-फारसी के शब्दों का प्रयोग आश्चर्यजनक नहीं है। परन्तु कवि ने अरबी-फारसी आदि विदेशी भाषा के शब्दों का प्रयोग अधिकांश तद्भव रूप में ही किया है और इस प्रकार वे हिन्दी भाषा की प्रकृति की रक्षा भी भली भांति कर सके हैं। विदेशी भाषा के शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से कवि का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'वीरसिंहदेव-चरित' है। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ विदेशी शब्द निम्नांकित हैं—

जुवा न खेलिये कहूं, जुबान बेद रक्षिये।	(रा० चं०, प्र० ३६, छन्द ३०)
कविपति सों तब ही गुदराने।	(वही, प्र० १५, छन्द १६)
वीरसिंह अति जोर में सनौ साहि सिरताज।	(वी० दे० च०, पृ० १६)
जामवन्त हनुमन्त नल नील मरातिब साथ।	(रा० चं०, प्र० २६, छन्द २७)
करी साहि सों जाइ फिराद।	(वी० दे० च०, पृ० ५०)
सका मेघमाला शिखी पाककारी।	(रा० चं०, प्र० १६, छन्द २३)
जमान मान सों दिवान कुंभकरण जाइयो।	(वही, प्र० १८, छन्द ४)
कमान कैसो गोला हनुमान चल्यों लंक को।	(वही, प्र० १३, छन्द ३८)
वृषबाहन संग्राम सिद्धि संजुत सब लायक।	(वी० दे० च०, पृ० १)
हों गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीबनिवाज।	(वही, पृ० ३६)
हैंगे रैयत रावत घनी।	(वही, पृ० २६)
तेही बिच अहिदी फर गये।	(वही, पृ० २७)
कै तसलीम गहे तब पाह।	(वही, पृ० ३५)
वह गुलाम तूं साहिब ईस।	(वही, पृ० ३७)
अर्ज मेरी यह मानिये आज।	(वही, पृ० २१)
फेरि अकबर के फरमान।	(वही पृ० ३२)
इन्द्रजीत हजरत पै गयो।	(वही, पृ० ४८)
हमसे दीननि दीनी दादि।	(वही, पृ० ५०)
करो नवाजिस बाकी जाइ।	(वही, पृ० ५१)
तज्यो नकारो जालमतोम।	(वही, पृ० ६०)
जहं तह हसम खसम बिन भए।	(वही, पृ० ६०)
माही महल मरातब साथ।	(वी० दे० च०, पृ० ६०)
लानो खलक खजानो लूटि।	(वही, पृ० ६०)
देखें तिपुर तमासौ जाय।	(वही, पृ० ६०)
मधुसाहि की तेग बढ्यो दिनहीं बिन पानी।	(वि० गी०, प्र० १, छन्द १७)
काम करें बहु भांति फजीहति।	(वही, प्र० ३, छन्द २५)
तब ही कूंच कियो परमान।	(वी० दे० च०, पृ० २६)

ता पीछें असवार शूर केशव सब मोसन ।
चलत भई चकचौंध बांधि बखतर बर जोशन ।
(रतनबावनी छन्द २६, पृ० ८)

खलनि के घालिबे कौं खलक के पालिबे कौं खानखाना ।
(ज० ज० चं०, छन्द ५)

जग जहांगीर आलमपनाह सबल साहि अकबर सुतन ।
को गनै राजराजा जिते जीति लिये सब के वतन ॥ (वही, छन्द ३८)
केशोराय पीलवान राजत हैं राजनि से । (वही, छन्द १२४)
जाहि बड़ाई देत वे सोई बड़ो जहान । (वही, छन्द ३६)
घूमत ही उजबक उलूक ज्वासे ज्यों जरत हैं । (वही, छन्द ३२)

देशी अनुशासन—कहीं-कहीं 'बख्श' से बकसाये, 'रुख' से रुखाये आदि रूपों का भी प्रयोग दिखलाई देता है, जो इस बात का द्योतक है कि केशव विदेशी भाषा को भी भली-भाँति अपना बनाना जानते हैं ।

कै विनती निस कश्यप के तिन देव अदेव सब बकसाये ।
(रा० चं०, प्र० १६, छन्द १६)
बिभीषण तन कानन रुखाये जू । (रा० चं०, प्र० १६, छं० २०)

संस्कृत और विदेशी भाषा के मेल से बने शब्द

दो-एक स्थलों पर संस्कृत तथा विदेशी भाषाओं के शब्दों के मेल से भी केशव ने नये शब्द बनाये हैं, जैसे आलमपति (ज० ज० चं०, छं० १९६), आलमनाथ (वी० दे० च०, पृ० ४२) आदि ।

शब्दों का बदला हुआ रूप

केशव ने कुछ स्थलों पर मात्रापूर्ति अथवा तुक के लिए, भाषा-विज्ञान के नियमों का भी कोई ध्यान न रखते हुए शब्दों का रूप इतना बदल दिया है कि वे सर्वथा नवीन शब्द ही जान पड़ते हैं । यहाँ तक कि उनका अर्थ निकालना भी कठिन सा हो जाता है, जैसे 'साधु' के स्थान पर 'साध', 'लाजक' के स्थान पर 'लायक', 'वेश्या' के स्थान पर 'विदवा', 'समाय' के स्थान पर 'माइ' [1]।

---

१. अशेष शास्त्र विचारि कै, जिन जानियो मत साध ।
—रा० चं०, प्र० १, छं० ४ ।
वरषा फल फूलन लायक की ।
—रा० चं०, प्र० ८, छं० १३ ।
उमग्यो आनन्द अंग न माइ ।
—वी० दे० च०, पृ० ३५ ।
मदिरा पी विदवा पेहू जाइ ।
—वी० दे० चं०, पृ० ४ ।

कहीं-कहीं तुक के लिए असाधारण प्रयोग भी हुए हैं, जैसे 'दत्त' का दलने के अर्थ में प्रयोग—जहँ तहँ लसत महामद मत्त। बर बारन बारन दत्त। (रा० चं०, प्र० १, छं० २८) परन्तु ऐसे स्थल अधिक नहीं हैं।

गढ़े हुए शब्द

कहीं-कहीं केशव ने नए शब्द गढ़ भी लिये हैं, जैसे बालकता, घालकता आदि (अति कोमल केशव बालकता। बहु दस्कर राकस घालकता। रा० चं०, प्र० २, छं० १७)।

विकृत एवं फालतू शब्द

छन्द की गति अथवा मात्रापूर्ति के आग्रह से कभी तो कवि को शब्द विकृत करने पड़े हैं, जैसे कर्न बर्ष्यो आदि और कभी फ़ालतू शब्दों, सु, किल आदि का प्रयोग भी करना पड़ा है।[1]

अप्रचलित शब्द

केशव ने अपने 'वीरसिंहदेव-चरित' नामक ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग किया है जो आजकल प्रायः अप्रचलित हैं, जैसे, बिबूचे, सांथरु आदि।[2]

पंडिताऊ शब्द

केशव पुराण-वृत्ति के जीव थे अतः उनकी भाषा में कथावाचकों के द्वारा प्रयुक्त 'जात भये', 'होत भये', 'भये' आदि पंडिताऊ शब्दों का भी पाया जाना स्वाभाविक ही है[3]।

---

१. भीम भाँति ताड़का सुभंग लागि कर्न आइ। —रा० चं०, प्र० ३, छं० ५।
देवन गुण हर्ष्यो, पुष्पन बर्ष्यो, हर्ष्यो अति सुरनाहु। —रा० चं०, प्र० ३, छं० १०।
सु आनी गहे केश लंकेश रानी। —रा० चं०, प्र० १६, छं० २६।
के श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को। —रा० चं०, प्र० ५, छं० १०।

२. बहुत बिबूचे तो सें घनें। —वी० दे० च०, पृ० ७।
देस नगर सांथरु गढ़ ग्राम। —वी० दे० च०, पृ० ४४।
बात कहहि अपने ठनमान। —वी० दे० च०, पृ० ८।

३. अक्षकुमारहि मार कै लंकहि जारि कै नीकेहि जात भयो जू। —रा० चं०, प्र० १६, छं० ८।
होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रंगधारी। —रा० चं०, प्र० ५, छं० २६।
भूकम्प भये गिरिराज ढहे। —रा० चं०, प्र० ७, छं० ४८।
कत भांड भये उठि आसन तैं।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ। —रा० चं०, प्र० ३, छं० ३४।

(ख) सौष्ठव

भाषा के धर्मों में मौलिक धर्म है भावव्यंजना, जिसका विवेचन पूर्व पृष्ठों में किया जा चुका है। और भाव-व्यंजना के साधन हैं, लक्षणा-व्यंजनादि शब्द-शक्तियाँ, अलंकार तथा मुहावरे और लोकोक्तियाँ। केशवदास की भाषा पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि उन्होंने अभिधा शक्ति से अधिक काम लिया है। अभिधा शक्ति से साक्षात् सांकेतिक अर्थ का ही बोध होता है, भँगि अथवा वक्रता से प्राप्त अर्थ का नहीं। काव्य में चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य लाने के लिए लक्षणा जितनी आवश्यक है उतनी अभिधा नहीं। कुछ मुहावरों को छोड़, जहाँ लक्षणा रूढ़िगत है, केशव ने लाक्षणिक प्रयोगों का कम सहारा लिया है। अभिधा और लक्षणा के अतिरिक्त व्यंजना नाम की एक तीसरी शक्ति और होती है जिसके द्वारा रस की सिद्धि होती है। व्यंजना शक्ति का आश्रय लिए बिना भाव अथवा रस की निष्पत्ति नहीं हो पाती। व्यंजना, अभिधा और लक्षणा दोनों पर आश्रित हो सकती है। अभिधा पर आश्रित व्यंजना में रमणीयता एवं सौन्दर्य विशेष होता है। केशव ने लक्षणा-मूलक व्यंजना की उपेक्षा की है। हाँ, अभिधामूलक व्यंजना का प्रयोग उन्होंने अपने संवादों में कहीं-कहीं अवश्य किया है जिससे भाषा और भाव की सम्पन्नता की समुचित श्रीवृद्धि ही हुई है। यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं।

रावण ने हनुमान से पूछा कि 'तूने समुद्र किस प्रकार पार किया ?' उन्होंने उत्तर में कहा, 'जैसे गोपद।' पुनः प्रश्न हुआ कि 'तू किस काम से यहाँ आया है ?' उत्तर मिला 'मैं सीता जी के चोर को ढूँढ़ना चाहता हूँ।' 'तू बन्धन में कैसे पड़ा ?' इस प्रश्न के पूछे जाने पर उत्तर मिला, 'मैंने तेरी पत्नी को सोते समय आँख से देखा था, उसी पाप के कारण बन्धन में पड़ना पड़ा'[1]। यहाँ व्यंजना यह निकलती है कि पर स्त्री के केवल नेत्रों से छूने मात्र से मेरी यह दुर्दशा हुई है कि मुझे बन्धन में पड़ना पड़ा तो समझ ले कि तू जो पर स्त्री अपहरण करने वाला है किस दशा को प्राप्त होगा। यह भाव व्यंजना के द्वारा कितने अच्छे ढंग से व्यंजित किया गया है।

जब परशुराम आग-बबूला हो क्षत्रियवंश का संहार करने की ठान लेते हैं तो श्रीराम जी कहते हैं कि 'हे परशुराम जी ! समस्त संसार को पराजित कर जो विजय-यश आपने प्राप्त किया है उस यश का भार इन बालकों (लक्ष्मण और शत्रुघ्न) पर क्यों लादते हैं ? वे इस भार को कैसे उठा सकते हैं ?' शब्द सीधे-सादे हैं पर इनसे व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि ये बालक आप से लड़ बैठेंगे और आपके होश ठीक कर देंगे, अतः सम्हाल कर बातें कीजिए।[2]

---

१. सागर कैसे तर्‌यौ, जैसे गोपद, काज कहा ? सिय चोरहि देखो।
कैसे बंधायो ? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो॥
—रा० चं०, प्र० १४, छं० १।

२. भृगुकुल कमल दिनेश सुनि, जीति सकल संसार।
क्यों चहि इन सिसुन पै, डारत हों यश-भार॥
—रा० चं०, प्र० ७, छं० ३८।

लक्ष्मण जी के युद्ध में लव-कुश से भिड़ने पर कुश लक्ष्मण से कहते हैं कि 'न तो मैं मकराक्ष हूँ, न मेघनाद हूँ, मैं तुम्हें रण में देखकर भयभीत न हो जाऊँगा। हे लक्ष्मण, अब तक तुम सदैव यशी रहे हो किन्तु अब मुझसे भिड़कर अपनी माता को अनाथ मत बनाओ।'[1] यहाँ व्यंजना यह है कि यदि तुम इस युद्ध में लड़ोगे तो तुम्हें मारे बिना नहीं छोड़ूँगा। इसी प्रकार युद्ध होने पर लव विभीषण से कहते हैं कि 'हे कायर! आ तू ही तो एक अपने कुल का भूषण है'[2]। यहाँ व्यंग्यार्थ है कि राम-रावण-युद्ध में जब लड़ने का अवसर था तब तो अपने भाई को छोड़ भागा था और शत्रु से जा मिला था, तेरे से बढ़कर नीच कौन है। 'भूषण' शब्द में विपरीत लक्षणा का कितना सुन्दर प्रयोग हुआ है।

कवि प्रायः थोड़े ही शब्दों में गहरा भाव छिपा लेते हैं। तुलसीदास ऐसे प्रयोगों में अग्रगण्य हैं। सीता-सौन्दर्य का वर्णन करते समय उन्होंने प्रायः इसी पद्धति को अपनाया है। किन्तु केशव का ऐसी युक्तियों पर पूर्ण स्वामित्व नहीं था। जहाँ वे आन्तरिक भाव को शब्दों में बाँधने में असमर्थ रहते हैं वहाँ वे कुछ चुने हुए शब्दों के द्वारा संकेत-मात्र देकर मौन हो जाते हैं और केशव की वह मूक भाव-व्यंजना की युक्ति बड़ी ही अनूठी हो जाती है। विश्वामित्र के साथ राम के विदा होते समय दशरथ की मार्मिक वेदना को निम्नलिखित पंक्तियों—

राम चलत नृप के युग लोचन।
बारि भरित भए वारिद रोचन॥
पायनि परि ऋषि के सजि मौनहिं।
केशव उठि गए भीतर भौनहिं॥

(रा० चं०, प्र० २, छं० २७)

में तथा चित्रकूट में दशरथ की रानियों की व्यथा को

तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोह। क्रम से उठीं सब रोह॥

(रा० चं०, प्र० १०, छं० ३०)

में कवि ने थोड़े ही शब्दों द्वारा सफलतापूर्वक व्यंजित किया है। किन्तु इस प्रकार के स्थल बहुत ही कम हैं।

मुहावरे तथा लोकोक्तियाँ

मुहावरों तथा लोकोक्तियों की योजना भाषा को और उसके द्वारा भाव को सुन्दर बनाने के विचार से की जाती है। इनके प्रयोग से भाषा में एक विशेष कान्ति

---

१. न हौं मकराक्ष न हौं इन्द्रजीत। विलोकि तुम्हें रण होंहु न भीत॥
सदा तुम लक्ष्मण उत्तम-गाथ। करौ जनि आपनि मातु अनाथ॥
—रा० चं०, प्र० ३६, छं० १७।

२. आउ विभीषण तू रणदूषण। एक तुही कुल को निज भूषण॥
—रा० चं०, प्र० ३७, छं० १६।

(पॉलिश) आ जाती है। केशव के प्रबन्ध मुहावरे और लोकोक्तियों से भरे पड़े हैं। केशव ने मुहावरों का प्रयोग अन्य ग्रन्थों की तुलना में 'रसिकप्रिया' नामक ग्रन्थ में अधिक किया है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। लोकोक्तियों का प्रयोग अपेक्षाकृत कम किया गया है। केशव द्वारा प्रयुक्त कुछ मुहावरे एवं लोकोक्तियाँ यहाँ दी जाती हैं।

मुहावरे

कीन्ही न सो कान। (रा० चं०, प्र० ४, छं० ७)
रावण के वह कान पर्यो जब। (वही, छं० ३०)
बीस बिसे बल विक्रम साधि। (ज० ज० चं०, छं० ८३)
राजसभा तिनुका करि लेखों। (रा० चं०, प्र० ४, छं० २०)
हौं बहुतै गुन मानिहौं तेरो। (वही, प्र० १२, छं० ८)
सो यश लै किन युग-युग जीवै। (वही, प्र० ७, छं० २२)
औधपुरी महं गाज परै। (वही, प्र० ६, छं० १०)
तृन बिच देइ बोली सीय गंभीर बानी। (वही, प्र० १२, छं० ६१)
आज संसार तो पांय मेरे परै। (वही, प्र० १६, पृ० १०)
अंगद तौ अंग अंगन फूलै। (रा० चं०, प्र० ३८, छं० ८)
पेटहि पोषत पेट पक्यो जू। (वि० गी०, प्र० ३, छं० ३०)
बातनि बातनि अन्तर पर्यौ। (वी० दे० च०, पृ० ६७)
बिहना फूल्यो अंग न माइ। (वही, पृ० ७)
वंचक कठोर ठेलि कीजै बाराबाट। (रा० चं०, प्र० २७, छं० ७)
पेट चढ़्यौ पलना पलका चढ़ि......चौक चढ़्यौ (वही, प्र० १६, छं० २४)
नाच नचाइ कै छाँड़ि दियो। (वही, छं० १४)
पाखंड अखंड खंड खंड करि डारिये। (ज० ज० चं०, छं० १८६)
बोलत बोल फूल से झरैं। (रा० चं०, प्र० ३१, छं० १७)

लोकोक्तियाँ

होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई।
— — —
(रा० चं०, प्र० ७, छं० २०)

होय तिनका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै।
स्वाद कहिवे को समर्थ न गूंग ज्यों गुर खाय॥
(वही, प्र० ६, छं० १६)

लिख्यो कर्म को मेट न जाय॥
(वी० दे० च०, पृ० १२)

फाट्यो दूध न आवै हाथ।
(वही, पृ० ७१)

कहीं-कहीं बुन्देलखण्डी अथवा अवधी भाषा के मुहावरों तथा लोकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है, जैसे,

झूठ पाठ कंठ पाठकारी काठ मारिये।
(ज० ज० चं, छं० १८९)
दूरि करतन दया दशंत देइ दंशत दंश। (रा० चं, प्र० २७, छं० १८)
रामचन्द्र कटि सौं पटु बांध्यौ। (वही, प्र० ५, छं० ४१)
जावँ धनु श्री रघुनाथ हाथ कै लीनों। (वही, वही, छं० ४२)
वह पारी मूंजी माछरी। (वी० दे० च०, पृ० ६)
इनके हमपै सुनि मतमित्रा (रा० चं०, प्र० २३, छं० १४)

दो-एक स्थलों पर केशव ने मुहावरों का मनमाना प्रयोग भी किया है, यथा:

दुख देख्यो ज्यों काल्हि त्यों आजहु देखो। (रा० चं०, प्र० ६, छं० २१)
में बारात-न्यौतनी के शुभ अवसर पर 'दुःख देखने' का प्रयोग अमांगलिक है। इसी प्रकार:

रघुनाथ पादुकनि, मन बच प्रभु गनि सेवत अंजुलि जोरे।
(रा० चं०, प्र० २१, छं० २२)
में 'अंजुलि जोरे' का प्रयोग समीचीन नहीं हुआ है। यह मुहावरा 'हाथ जोड़ने' के अर्थ में रूढ़ नहीं है।

भाषा की सजीवता

केशव की भाषा 'रे', 'जू' आदि साधारण बोलचाल के शब्दों के प्रयोग से सजीव बन गई है। किसी को चेताने में वह कितनी सशक्त है, यह जानना हो तो निम्नलिखित शब्दों में 'रे' का प्रयोग देखिए—

पेट चढ्यो पलना पलका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ्यो रे।
चौक चढ्यो चित्रसारि चढ्यो गज वाजि चढ्यो गढ़ गर्व चढ्यो रे।
व्योम विमान चढ्यो रह्यो कहि केशव सो कबहुं न पढ्यो रे।
चेतत नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सौ चाहत मूढ़ चिताहू चढ्यो रे॥
(रा० च०, प्र० १६, छं० २४)

'रे' के समान ही 'जू' का प्रयोग भी केशव ने जी खोलकर किया है। मन्दोदरी किस भाव में रावण से क्या कहा चाहती है? ध्यान से सुनिये:

राम की बाम जो आनी चोराय सो लंका में मीचु की बेलि बई जू।
क्यों रण जीतहुगे तिनसों जिनकी धनुरेख न लांघि गई जू।
बीस विसे बलवन्त हुते जु हुती दृग केशव रूप रई जू।
तोरि सरासन संकर को पिय सीय स्वयम्बर क्यों न लई जू॥
(रा० चं०, प्र० १५, छं० ६)

भाषा में गुण

शौर्यादि के समान रस के उत्कर्ष-हेतु-रूप स्थायी धर्मों को 'गुण' कहा जाता है। गुण यद्यपि उत्कर्ष के हेतु हैं तथापि इनका सम्बन्ध शब्दों और उसके द्वारा वाक्यों से ही है। मुख्य रूप से तीन गुण माने जाते हैं, माधुर्य, ओज तथा प्रसाद। इनका सम्बन्ध चित्त की तीन वृत्तियों से है। माधुर्य का द्रुति अथवा द्रवणशीलता से है, ओज का दीप्ति अर्थात् उत्तेजना से और प्रसाद का विकास से अर्थात् चित्त को खिला देने से है। केशव के प्रबन्धों में माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों ही गुणों का यथास्थान समावेश हुआ है।

माधुर्य

माधुर्य गुण की अभिव्यक्ति 'ण' को छोड़कर टवर्ग तथा महाप्राण रहित स्पर्श एवं वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त वर्णों वाली समास रहित अथवा अल्प समास वाली कोमल-कान्त पदावली द्वारा होती है। यह गुण सम्भोग शृंगार, करुण, विप्रलम्भ तथा शान्त में क्रमशः बढ़ता है।

माधुर्य-गुण की सब से अधिक स्थिति 'रसिकप्रिया' में है, जैसा कि आगामी पृष्ठों में दिए गये विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। केशव के प्रबन्धों में से कुछ छन्द अवलोकनार्थ नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

१. फल फूलन पूरे, तरुवर रूरे कोकिल कुल कलरव बोलैं।
अति मत्त मयूरी, पियरस पूरी, बन प्रति नाचति डोलैं॥
सारी शुक पंडित गुन गन मंडित, भावनमय अरथ बखानैं।
देखे रघुनायक, सीय सहायक, मनहु मदन रति मधु जानैं॥
(रा० चं०, प्र० ११, छं० १७)

२. हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊं न ठाउं कुठाऊं बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ संग रैहैं॥
केशव काम के राम बिसारत, और निकाम रे काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौं चित्त अंतर अंतक लोक अकेलोइ जैहैं॥
(रा० चं०, प्र० १६, छं० २६)

ओज

ओजगुण का प्रगटीकरण टवर्गप्रधान तथा संयुक्तवर्णों, द्वित्व और महाप्राण एवं लम्बे-लम्बे समास वाले पदों द्वारा होता है। यह गुण वीर, वीभत्स एवं रौद्र रस में क्रमशः उत्कर्ष को प्राप्त होता है। इस प्रकार के स्थल 'रामचन्द्रिका', 'रतनबावनी' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' में ही अधिकांश देखने में आते हैं। कुछ छन्द उदाहरणार्थ यहाँ दिये जाते हैं—

प्रथम टंकोर झुकि झारि संसार मद,
चंड कोदण्ड रह्यो मण्डि नवखण्ड को।
चालि अचला अचल घालि दिगपाल-बल,
पालि ऋषिराज के बचन परचंड को।

सोधु दै ईश को बोधु जगदीश को,
क्रोध उपजाइ भृगुनन्द बरवण्ड को।
बांधि वर स्वर्ग को साधि अपवर्ग,
धनुभंग को शब्द गयो भेदि ब्रह्माण्ड को।
(रा० चं०, प्र० ५, छं० ४३)

लैकर बर, तब वीर सभा मंडल सन बुल्लिय।
तुम साथी समरथ्थ शत्रु कहं सत्त न डुल्लिय॥
लाज काज धरि लाज लोह लरि लरि यश लिज्जहु।
विकट कटक में हटक पटक भट भुवि महं दिज्जहु॥
यह अनूप मेरो बचन केशव चित्त धर सुनहु अब।
भरहु तौं भो सब्बहिं चलहु भज्जहु तौ भजि जाव अब॥
(रतनबावनी, छं० २५)

भैर से भट भूरि गिरे बल खेत खरे करतार करे कं।
मारे गिरे रण-भूधर भूप न टारे टरैं हम कोट अरे कं॥
रोष सों खग हने कुश केशव भूमि गिरे न टरेहू गरे कं।
राम विलोकि लहैं रस अद्भुत सायें भरे नगनाग परैं कं॥
(रा० चं०, प्र० ३८, छं० १६)

प्रसाद

प्रसाद गुण द्वारा चित्त में एक साथ अर्थ का प्रकाश हो जाता है। जहाँ माधुर्य तथा ओज गुणों का सम्बन्ध रस-विशेष से ही होता है, वहाँ प्रसाद गुण का सम्बन्ध सभी रसों से होता है। श्रवणमात्र से अर्थ-प्रतीति कराने वाले सरल तथा सुबोध शब्द ही प्रसाद गुण के व्यंजक माने गए हैं। भाषा के विचार से यद्यपि केशव की अधिकांश रचनाएं प्रसाद गुण से भरी पड़ी हैं, परन्तु हिन्दी-जगत् ने उनके प्रति अनुदार धारणाएं ही प्रकट की हैं। किसी ने उन्हें 'कठिन काव्य का प्रेत' कह डाला है तो कोई लिखता है कि यदि किसी कवि को विदाई न देनी हो तो केशव की कविता का अर्थ पूछे[1]। स्व० आचार्य शुक्ल इस सम्बन्ध में लिखते हैं—

"केशव को कवि-हृदय नहीं मिला था। उनमें वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि में होनी चाहिए। वे संस्कृत साहित्य से सामग्री लेकर अपने पाण्डित्य और रचना-कौशल की धाक जमाना चाहते थे। पर इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए भाषा पर जैसा अधिकार चाहिए वैसा उन्हें प्राप्त न था। अपनी रचनाओं में उन्होंने अनेक संस्कृत काव्यों की उक्तियाँ लेकर भरी हैं। पर उन उक्तियों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में उनकी भाषा कम समर्थ हुई है। पदों और वाक्यों की न्यूनता, अशक्त फालतू शब्दों के प्रयोग और सम्बन्ध के अभाव आदि के कारण भाषा भी अप्रांजल और ऊबड़-खाबड़ हो गई है और तात्पर्य भी

१. कवि कहं दीन न चहैं विदाई पूछैं केशव की कविताई।
—मिश्रबंधु विनोद, पृ० ४८६।

स्पष्ट रूप से व्यक्त नहीं हो सका है। केशव की कविता जो कठिन कही जाती है, उसका प्रधान कारण उनकी यही त्रुटि है—उनकी मौलिक भावनाओं की गम्भीरता या जटिलता नहीं[1]"।

इन मतों के उत्तर में हमारा निवेदन है कि केशव की 'रामचन्द्रिका' के कुछ छन्दों के विषय में तो उक्त कथन सत्य माने जा सकते हैं अन्यथा 'रामचन्द्रिका' में ही ऐसे छन्दों की कमी नहीं है जिनका अर्थ पढ़ते ही हृदयंगम न हो जाता हो। केशव के अन्य प्रबन्धों के भी अधिकांश छन्द प्रसाद गुण से भरे पड़े हैं। उनकी भाषा भी प्रांजल, सरल एवं सुबोध है और भावों के व्यक्त करने में सशक्त है। रीतिग्रन्थों में भी 'कविप्रिया' के चार-पांच छन्द ही ऐसे हैं, जिनमें पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण क्लिष्टता आ गई है, अन्यथा उसके भी अधिकांश छन्द प्रसाद-गुण-पूर्ण ही हैं। 'रसिकप्रिया' के तो सभी छन्द प्रसाद गुण-पूर्ण हैं ही, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जाएगा। अतः कुछ चुने हुए छन्दों को लेकर इस प्रकार की धारणाएँ व्यक्त करना केशव के साथ अन्याय करना है। केशव के प्रबन्धों में से प्रसाद-गुण-पूर्ण कुछ छन्द नीचे दिए जाते हैं—

दानी कहा न देय चोर पुनि कहा न हरई।
लोभी कहा न लेय आग पुनि कहा न जरई॥
पापी कहा न करैं, कह न बेचै ब्योपारी।
सुकवि न वरनै कहा कहा साधु न संचारी॥
सुनि महाराज मधुशाह-सुव सूर कहा नहि भंडई।
कहि केशव घर धन आदि दै साधु कहा नहि छंडई॥
(रतनबावनी, छं० १५)

मांगहु मंत्री मित्र पुत्र प्रभु सकल कलत्र जन।
मांगहु भोजन भवन भूमि भाजन भूखन गन॥
मांगहु आसन असन आन परिवान जानि गनि॥
मांगहु बाग तडाग राग बड़भाग भोग मनि॥
कहि केशव मांगहु सकल पुर सुत समेत बसु असु धनौ।
सब देहौं जो कछु मांगिहौ धर्म न देहौं आपनौ॥
(वी० दे० च०, पृ० ८८)

होत रंक तैं राज राज तैं राजु राज सुनि।
राज राज तैं देव देव तैं देव देव पुनि॥
देव देव तैं ईस ईस तैं पंकज जानहु।
पंकज ह्वै बसि सत्यलोक संतत सुख मानहु॥
अब को जानै किहि नरक कर्म पर्यौ पछितातु है।
कह केसव उद्यिम के कियैं जीव विष्नु ह्वै जातु है॥
(ज० ज० चं०, छं० २२)

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २३३-२३४।

पुत्र मित्र कलत्र के तजि बस्त दुःसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग॥
होत कल्प सतायु देव तऊ सबै नशि जात।
संसार की गति जानि कै अब कौन को पछितात॥
(वि० गी०, प्र० १३, छं० ७)

टूटै टूटनहार तरु वायुहि दीजत दोष।
त्यों अब हर के धनुष को हम पर कीजत रोष॥
हम पर कीजत रोष काल गति जानि न जाई।
होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई॥
होनहार ह्वै रहै मोह मद सब को छूटै।
होय तिनूका बज्र बज्र तिनूका ह्वै टूटै॥
(रा० च०, प्र० ७, छं० २०)

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि केशव को अपनी काव्य-भाषा पर पूर्ण अधिकार है और वे उसे अपनी रुचि के अनुसार यथास्थान बदलते रहते हैं।

दोष

अब केशव के प्रबन्धों की भाषा पर दोषों की दृष्टि से भी थोड़ा विचार कर लेना आवश्यक है। केशव की 'रामचन्द्रिका' की भाषा अन्य प्रबन्धों की अपेक्षा अधिक दोषयुक्त है। कुछ दोष नीचे दिखलाए जाते हैं:

च्युतसंस्कृति

दोषों में यह दोष सब से बुरा समझा जाता है। लिंग, कारक, बचन, अन्वय आदि की व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियाँ प्रायः बहुत खटका करती हैं। जब एक बार पाठक के हृदय में उद्वेग उत्पन्न हो जाता है तो फिर रस के प्रवाह में भी बाधा पड़ जाती है। केशव में यह दोष पर्याप्त मात्रा में देखा जाता है। यहाँ कुछ उदाहरण दिए जाते हैं—

(१) पीछे मघवा मोहि शाप दई। (रा० चं०, प्र० १२, छं० ३५)
(२) अंगद रक्षा रघुपति कीन्हों। (वही, प्र० १३, छं० ३५)
(३) आदि बड़े हो, बड़पन रखिये, जा हित तूं सब जग जस पावै॥
(वही, प्र० ७, छं० २२)
(४) बहु बात बहे। (वही, प्र० ७, छं० ४८)
(५) रह्यो रीझि के, बाटिका की प्रभा को। (वही, प्र० १३, छं० ५२)
(६) करैं साधना एक पर्लोक ही को। (वही, प्र० १७, छं० २१)
(७) अंतरिच्छ ही लच्छ पद अच्छ छुयो हनुमंत।
(वही, प्र० १३, छं० ६२)
(८) अशोकलग्ना बनदेवता सी। (वही, प्र० २०, छं० ६)
(९) अब केशव इहि काल अवहि हौं भलौ रिझायो।
(रतनबावनी, छं० २४)

(१०) रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय।
करहु पेज पनधारि मारि सामंतन लिज्जिय॥ (वही, छं० ६)
(११) देखि बाग अनुराग उपज्जिय, बोलत कल ध्वनि कोकिल सज्जिय॥
(रा० चं०, प्र० १, छं० ३०)

(१) और (२) में 'शाप' तथा 'रक्षा' शब्द क्रमशः पुंलिंग तथा स्त्रीलिंग हैं। अतः व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध रूप 'शाप दियो' और 'रक्षा कीन्हीं' होने चाहिए थे। (३) में 'बड़े हो' आदरसूचक है और 'तूं' निरादरसूचक। ऐसा प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं है। (४) में 'बहे' भी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग है, 'वहीं' होना चाहिए था। (५) में प्रभा के साथ 'को' के स्थान पर तृतीया विभक्ति का चिह्न ठीक होता। (६) 'साधना' के लिंग के अनुसार 'को' के स्थान पर 'की' व्याकरण-सम्मत होता। (७) में 'पद अच्छ' में विसन्धि दोष है। (८) में 'देवता' शब्द का प्रयोग स्त्रीलिंग में हुआ है, जब कि हिन्दी में यह शब्द पुंलिंग है। (९) में 'हौं' का प्रयोग कर्म कारक में हुआ है पर यह कर्त्ता कारक में ही प्रयुक्त होना चाहिये था। (१०) और (११) में 'सुनिज्जिय' और 'लिज्जिय' का आज्ञार्थ तथा 'उपज्जिय' और 'सज्जिय' का वर्तमान काल में प्रयोग व्याकरण-सम्मत नहीं है। ये प्राकृतकालीन क्रियाओं के वे प्रयोग हैं जो कालों तथा वचनों का शासन नहीं मानते और जिनका प्रयोग सब पुरुषों के साथ होता है।

अश्लीलत्व

जहाँ व्रीड़ा-सूचक, जुगुप्सा तथा अमंगल सूचक शब्द प्रयुक्त होते हैं वहाँ यह दोष होता है।

(१) व्रीड़ा-व्यंजक :

दिगपालन की भुवपालन की किन मातु भई च्वै।
(रा० चं०, प्र० ३, छं० ३४)

यहाँ 'च्वै' शब्द व्रीड़ा-व्यंजक है।

(२) जुगुप्सा-व्यंजक :

(क) वह रावरे पितु करी पत्नी तजी विप्रन थूँकि कै।
(रा० चं०, प्र०, छं० ३६)

(ख) विड़कन घन घूरे भक्षि क्यों बाज जीवै।
(रा० चं०, प्र० १३, छं० ६२)

इन उदाहरणों में 'थूँकि' तथा 'विड़कन' शब्द घृणाव्यंजक हैं।

(ग) दुःख देख्यो ज्यों कालि्ह त्यों आजहु देखो।
(रा० चं०, प्र० ६, छं० २१)

यहाँ 'बारात-न्यौतनी' के शुभ अवसर पर 'दुःख देखने' का प्रयोग अमंगल-सूचक है।

अक्रमत्व

जहाँ शब्दों का क्रम व्याकरण-सम्मत नहीं होता वहाँ यह दोष होता है।

(क) अमानुषी भूमि अवानरी करौं। (रा० चं०, प्र० १६, छं० ३०)

यहाँ ऐसा लगता है कि भूमि अमानुषी (मनुष्यरहित) तो पहले ही से है अब उसे वानरविहीन करना ही शेष है। अवानरी शब्द का प्रयोग 'अमानुषी' से पहले होना चाहिए था।

(ख) राज देउ दे वाकि तिया को। (रा० चं०, प्र० १२, छं० ५७)

यहाँ 'राज,' 'देउ दे' शब्दों के बाद यदि आता तो ठीक होता।

अधिकपदत्व

(क) तब स्वर्ण लंक महं शोभ भई। जनु अग्नि ज्वाल महं धून भई
(रा० चं०, प्र० १७, छं० ६)

यहाँ 'भई' शब्द व्यर्थ है।

(ख) धर्मवीरता विनयता। (रा० चं०, प्र० २३, छं० २२)

यहाँ 'विनयता' में 'ता' प्रत्यय अधिक है।

संदिग्धत्व

जहाँ कवि के अभीष्ट अर्थ का ठीक-ठीक पता न लगे, कुछ सन्देह सा बना रहे वहाँ यह दोष माना जाता है, यथा :

या गिरि पर सुग्रीव नृप, ता संग मंत्री चारि।
वानर लई छड़ाय तिय, दीन्हों बालि निकारि॥
(रा० चं०, प्र० १२, छं० ५६)

इस पद्य के पढ़ने से ऐसा लगता है कि किसी वानर ने स्त्री को छीन लिया और वालि को घर से निकाल दिया।

निहतार्थत्व

जहाँ किसी शब्द का अप्रचलित अर्थ में प्रयोग किया जाए वहाँ यह दोष माना जाता है। च्युतसंस्कृति के समान ही यह दोष भी केशव की 'रामचन्द्रिका', में बहुत मिलता है, जैसे 'सहज' के अर्थ में 'सुख', 'सरयू' (नदी) के लिए 'सुरतरंगिनी' जल के अर्थ में 'विष' तथा 'जीवन', समाधि-स्थिति के लिए 'तटी', बाप के मारने के लिए 'बपुमारे', निश्चय अथवा अन्त के अर्थ में 'विशेष', शत्रुघ्न के लिए 'रघुनन्दन' तथा 'अरिहा', समुद्र के अर्थ में 'हरिमन्दिर', ब्रह्मा के लिए 'कंजज', राम के लिए 'त्यक्त-बामलोचन' आदि।

जिन बेधत सुख लक्ष नृपकुंवर कुंवर मनि। (रा० चं०, प्र० २, छन्द १८)
करुणामय अरु सुर-तरंगिनी शोभ सनी। (वही, प्र० १, छन्द ४२)
विषमय यह गोदावरी अमृत के फल देति।
केशव जीवनहार कोर दुःख अशेष हरि लेति॥ (वही, प्र० ११, छन्द २६)
जगजीव जतीन की छूटी तटी। (वही, वही, छन्द १८)
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपुमारे॥
(वही, प्र० १६, छन्द १५)

अनन्त मुख गावै। विशेष हि न पावै। (वही, प्र० १, छन्द १५)
धनुबाण लिये निकसे रघुनन्दन (वही, प्र० ३४, छन्द ४८)
जूझि गिरे जब ही अरिहा रन। (वही, प्र० ३६, छन्द ३०)
कंजज की मति सी बड़ भागी।
श्री हरिमंदिर सों अनुरागी। (वही, प्र० ११, छं० २४)
त्यक्तवामलोचन कहत सब केशोदास। (वही, प्र० २७, छन्द ४)

समाप्तपुनरावृत्तित्व

जहाँ किसी वाक्य को समाप्त करके भी पुनः विशेषणादि द्वारा उसे उठाया जाता है वहाँ यह दोष होता है।

ब्रह्मादि देव जब विनय कीन। तट छीर-सिन्धु के परम दीन।
(रा० चं०, प्र० ११, छं० १२)

यहाँ 'तट छीर-सिन्धु के' इन शब्दों के साथ वाक्य समाप्त हो गया था, किन्तु 'परम दीन' शब्दों के द्वारा उसे फिर से उठा दिया गया है।

अनन्वयसम्बन्धत्व (अन्वय दोष)

जहाँ वाक्य पदों का सम्बन्ध कठिनता से बैठता है वहाँ यह दोष होता है।

दशरत्थ कौन अज तनय चन्द।
केहि कारण पठय यहि निकेत॥
निज देन लेन सन्देह हेत॥
(रा० चं०, प्र० १३, छं० ७३-७४)

यहाँ 'अज' का अन्वय 'चन्द' के साथ तथा 'हेत' शब्द का अन्वय 'लेन' तथा 'देन' दोनों के साथ है। खींच-तान करने पर ही यह अन्वय होता है।

न्यूनपदत्व

जहाँ अभीप्सित अर्थ के पूरक शब्दों का अभाव होता है वहाँ यह दोष होता है, यथा :

बिरहीन का दुख देत, क्यों हर डारि चन्द्रकलाहि।
(रा० चं०, प्र० ३३, छं० ३३)

यहाँ अर्थ तो यह है कि चन्द्रमा वियोगियों को दुःखदायक है अतः वे चन्द्रमा की निन्दा करते हैं, इस निन्दा से बुरा मान कर क्या शिव अपने मस्तक पर से चन्द्रमा को गिरा देंगे। किन्तु वाक्य में पर्याप्त शब्दों की न्यूनता से ऐसा अर्थ सरलता से नहीं निकल पाता।

पतत्प्रकर्षता

जहाँ किसी वस्तु का पहले उत्कर्ष दिखाकर फिर उसी का अपकर्ष दिखाया जाता है वहाँ यह दोष होता है।

सूरगज को मारन छवि-छायो। जनु विधि ते भूतल पर आयो।
जनु धरणी में लसत विशाला। त्रुटित जुही की घन बनमाला॥
(रा० चं०, प्र० ३२, छं० २४)

वहाँ पहले 'नदी' की तुलना 'आकाशगंगा' से कर उसका उत्कर्ष दिखाया है, फिर उसी नदी की उपमा 'जुही पुष्पों की टूटी हुई माला' से देकर उसका अपकर्ष दिखा दिया गया है।

कालविरुद्धता

(क) पांडव की प्रतिमा सम लेखौं। अर्जुन भीम महामति देखौ।

(रा० चं०, प्र० ११, छं० २१)

यहाँ राम के मुख से 'अर्जुन' 'भीम' आदि पाण्डवों का वर्णन किया जाना कालविरुद्ध दोष है।

(क) दूषत जैन सदा शुभ गंगा। छोड़हुगे वह तुंग-तरंगा।

(रा० चं०, प्र० ३३, छं० ३७)

राम के समय जैन मत प्रचलित था, यह विचारणीय है। अतः यहाँ काल-विरुद्ध दोष है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि कोई भी कवि इस प्रकार के दोष से सर्वथा मुक्त नहीं रह सकता। कवि अपनी उमंग एवं मस्ती में ऐसी छोटी-मोटी बातों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया करते। छन्द की गति के आग्रह से भी कभी-कभी इस प्रकार का शैथिल्य आवश्यक सा हो जाया करता है। वह काव्य-भाषा (Poetic Diction) है। गद्य-भाषा के नियमों से उसे परखना अनुचित होगा।

पाँचवाँ अध्याय

केशव की विचारधारा तथा उनका इतिहास-ज्ञान

(अ) केशव की विचारधारा :

(१) केशव के दार्शनिक सिद्धान्त

केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों का निरूपण 'विज्ञानगीता' तथा 'रामचन्द्रिका' नामक प्रबन्धों में हुआ है। 'विज्ञानगीता' में प्रतिपादित केशव के दार्शनिक सिद्धान्तों पर भारतीय अद्वैतवाद का प्रभाव दिखलाई देता है। इसी प्रकार 'रामचन्द्रिका' में उल्लिखित केशव की राम-भावना पर भी वैष्णव अद्वैतवाद की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है। केशव के राम परब्रह्म हैं, किन्तु उनके ब्रह्मत्व का आधार कौन-सा दार्शनिक वाद है, इस विषय में उनके ग्रन्थ सर्वथा मौन ही हैं। हाँ, भक्ति के क्षेत्र में वे रामानन्दी सम्प्रदाय से अवश्य प्रभावित जान पड़ते हैं।

ब्रह्म—केशव के मतानुसार 'ब्रह्म' वह लोकोत्तर शक्ति है जिसके समस्त जीव प्रतिबिम्ब हैं[१]। वही शक्ति ज्योतिस्वरूप, निरीह तथा निरंजन मानी गई है[२]। उस अद्भुत प्रकाशमान ज्योति से ही इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होती है[३]। वह निर्मल ज्योति सदैव एक रूप तथा स्वतन्त्र रहती है[४]। उस लोकोत्तर शक्ति-ब्रह्म का न आदि है और न अन्त। वह अमित, अबाध, अकल, अरूप और अज है। वह अजर-अमर है, अद्भुत, अचल तथा अवर्ण है। वह अच्युत है, अनामय है, अमल, अनंग और अक्षर है। वह निःसंग एवं अदृश्य है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव और वेद उसे 'जोसि सोसि' आदि शब्दों से पुकारते हैं[५]। वही ब्रह्म भीतर-बाहर और घट-घट में व्यापक है[६]।

---

१. सब जानि बूझियत मोहि राम।
सुनिये सो कहों जग ब्रह्म नाम॥
तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जाल।
तेइ जीव जानि जग में कृपाल॥ —रा० चं०, प्र० २५, छं० २।

२. ज्योति निरीह निरंजन मानी।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १४ तथा वि० गी०, प्र० १७, छं० १८।

३. सकल शक्ति अनुमानिये अद्भुत ज्योति प्रकाश।
जाते जग को होत है उत्पत्ति थिति अरु नाश॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १५।

४. जागत जाकी ज्योति जग एक रूप स्वच्छन्द। —रा० चं०, प्र० १, छं० २१।

५. जाको नाहीं आदि अंत अमित अबाधि युत अकल अरूप अज चित्त में अतुर है।
अमर अजर अज अद्भुत अवर्ण अंग अच्युत अनामय सुरसना ररतु है।
अमल अनंग अति अक्षर असंग अरु अदृष्ट देखिये को परसतु है।
विधि हरि हर वेद कहत जोसि सोसि केशोराइ ताकहं प्रणामहि करतु है।
—वि० गी०, प्र० १८, छं० २१।

६. बाहर भीतर व्यापक जो है। —वि० गी०, प्र० १८, छं० १८।

ब्रह्म ही तमोगुण, सतोगुण और रजोगुण है। वह सर्वशक्तिमान्, अद्भुत तथा अपरिमेय है। वह नित्यवस्तु, विचारपूर्ण एवं सर्वभाव से अदृष्ट है। न तो वह पुरुष है और न नारी। जगत् के अनेक स्वरूपों की उत्पत्ति ब्रह्म के ही अद्भुत भावों से हुई है। विष्णु से लेकर परमाणु तक सभी उसी से उत्पन्न हुए हैं[1]। ब्रह्म ही समस्त प्राणियों की शरण है। वह नित्य नवीन, मायारहित तथा निर्विकार है। वह अखण्ड है, मुक्त तथा देवाधिदेव है[2]। उसी ने अपने गुणों के आश्रय से एक से अनेक रूप बना लिए हैं[3]।

वही रजोगुण का आश्रय लेकर ब्रह्मा के रूप में संसार की रचना करता है, सतोगुण का आश्रय लेकर वह विष्णु नाम से समस्त संसार की रक्षा करता है और तमोगुण का आश्रय लेकर रुद्र के रूप में वही जगत् का नाश करता है[4]। जगत् का अस्तित्व उसी में है और वही जगत् रूप में व्यक्त हो रहा है[5]। ब्रह्म ही सत्यस्वरूप है[6]।

---

१. तम तेज सत्व अनंतु अब चाहतु है जु अमेय।
सर्वशक्तिसमेत अद्भुत है प्रमान प्रमेय।
नित्यवस्तु विचार पूरण सर्वभाव अदृष्ट।
पुंश नारि न जानिये सुनि सर्वभाव अदृष्ट।
ताके अद्भुत भाव ते, भए सरूप अपार।
विष्णु आनि परमानु ले, उपजत लगी न बार।
—वि० गी०, प्र० १५, छं० ११-१२।

२. अनादि अन्तहीनु है, जु नित्य ही नवीनु है।
निरीह निर्विकार है सुमध्य अव्यहार है।
समस्त शक्ति युक्त है, सुदेव देव मुक्त है।
—वि० गी०, प्र० १५, छं० ४०-४१।

३. तुम ही गुण रूप गुणी तुम ठाये। तुम एक ते रूप अनेक बनाये॥
—रा० चं०, प्र० २०, छं० १७।

४. इक है जो रजोगुण रूप तिहारो। तेहि सृष्टि रची विधि नाम विहारो॥
गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको। अब विष्णु कहै सिगरो जग ताको।
तुमहीं जग रुद्रसरूप संहारो। कहिये तेहि मध्य तमोगुण भारो।
—रा० चं०, प्र० २०, छं० १७, १८।

५. तुम ही जग हो जग है तुम ही में। —रा० चं०, प्र० २०, छं० १६।

६. एक ब्रह्म साँचो सदा।
—वि० गी०, प्र० १३, छं० ८।

माया—केशव के मत में 'माया' का ही अन्य नाम 'संसृति' है। माया, मोह की जाया है। संभ्रम, विभ्रमादि उसी की सन्तान हैं। उसकी समस्त कथा स्वप्न के सदृश है[१]। जिस प्रकार मनुष्य स्वप्न में संसार तथा उसके नाना दृश्यों का अनुभव करता है और कुछ समय के लिए उनमें भूला रहता है, उसी प्रकार माया के कारण जीव भ्रमवश काल्पनिक 'संसृति' को वास्तविक एवं सत्य समझने लगता है। परन्तु माया परम दुरन्त है और उसका पार पाना अत्यन्त ही कठिन है (सब ही सब को सर्वदा माया परम दुरन्त—वि० गी०, प्र० १३, छं० २६)।

सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण से युक्त यह माया त्रिगुणात्मिका है और यही जगत् का निमित्त कारण है। केशव के अनुसार उसके दो रूप हैं। एक रूप में उसका सम्बन्ध ब्रह्म से रहता है (**जनु माया अच्छर सहित देखि**—रा० चं०, प्र० १३, छं० ८१)। दूसरे रूप में वह जीवों के बन्धन का कार्य करती है (**जीव बंधे सब आपनि माया**—रा० चं०, प्र० २५, छं० १६)।

जब तक विवेक द्वारा माया के परिवार (मोहादि) का नाश नहीं होता तब तक माया के वशीभूत रहने के कारण जीव को मुक्ति प्राप्त नहीं होती। मोहादि का नाश होने पर जब प्रबोध हो जाता है तो जीव इस जीवन में ही जीवनमुक्त हो जाता है[२]।

जीव—केशवदास जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब मानते हैं[३]। इसमें गीता की निम्नांकित पंक्ति[४] की छाया पड़ी है।

---

१. संसृति नाम कहावति माया, जानहुँ ताकहँ मोह की जाया।
संभ्रम विभ्रम संतति जाकी, स्वप्न समान कथा सब ताकी।
—वि० गी०, प्र० १३, छं० २८।

२. जब विवेक हति मोह को, होइ प्रबोध संयुक्त।
तब ही जानो जीव को, जग में जीवनमुक्त।
—वि० गी०, प्र० १, छं० ३२।

३. ....जग ब्रह्म नाम।
तिनके अशेष प्रतिबिम्ब जाल।
तेइ जीव जानि जग में कृपाल।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० २।

४. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय १५, श्लोक ७।

जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से निकलती तथा संसार में प्रकाश फैलाकर फिर उसी में लीन हो जाती हैं, वैसे ही ब्रह्म का चित् अंश जीव का स्फुरण कर अन्त में उसी में समा जाता है[1]।

ब्रह्म और जीव का अन्तर बतलाते हुए केशव कहते हैं कि ब्रह्म सदैव एक रूप रहता है और जीव को अनेक बार जन्म लेना पड़ता है। सर्वज्ञ होने के कारण ब्रह्म को जीव-दशा का पूर्ण ज्ञान है परन्तु अल्पज्ञ होने से जीव को ब्रह्म की रचना का ज्ञान नहीं होता[2]। यह जीव काम, क्रोध, मदादि अनेक माया के आवर्तनों में फँस कर इस संसार में इधर-उधर भ्रमता फिरता है—

काम क्रोध मद मढ़ो अपार। जैसे जीव भ्रमै संसार॥

(रा० चं०, प्र० २६, छं० ६)

और लोभ, मोह, मद तथा काम के वशीभूत हो कर अपने सहज रूप को भूल जाता है[3]। इतना ही नहीं वरन् काम, क्रोध आदि के वश में फँसे हुए बेचारे जीव की बड़ी दुर्दशा होती है[4]।

वासना जीव को जिस ओर ले जाती है वह (जीव) उसी ओर जाकर लीन हो जाता है।

जित लै जैहै वासना तित तित ह्वै है लीन[5]।

यह वासना दो प्रकार की होती है।

दुविध वासना होति है, शुभ अरु अशुभ प्रमान[6]।

---

१. उपजत ज्यों चित रूप ते जीवन तिहि विधि बात।
रवि ते उपजत अंशु ज्यों, रवि ही माँझ समात॥

—वि० गी०, प्र० १५, छं० १८।

२. तुम आदि मध्य अवसान एक, अरु जीव जन्म समुझौ अनेक।
तुमही जु रची रचना विचारि, तेहि कौन भाँति समुझौं मुरारि।

—रा० चं०, प्र० २५, छं० १।

३. लोभ मद मोह बस काम जब ही भयो।
भूलि गयो रूप निज बीधि तिन सों गयो।

—रा० चं०, प्र० २५, छं० ३।

४. खैंचत लोभ दसौ दिसि को गहि मोह महा इत फाँसिहि डारे।
ऊँचे ते गर्व गिरावत क्रोधहु जीवहि लूहर लावत भारे॥
ऐसे में कोढ़ की खाज ज्यों केशव मारत कामहु बाण निनारे।
मारत पाँच करे पंचकूटहि कासों कहे जगजीव विचारे॥

—रा० चं०, प्र० २४, छं० ८।

५. वि० गी०, प्र० १४, छं० ४२।

६. वही, वही, छं० ४३।

अशुभ वासना में फँसकर जीव अनेक दुष्कर्म करता है जिसके फलस्वरूप जीव का उद्धार नहीं हो सकता। अतः शुभ वासना से ही उसे ब्रह्मपद की प्राप्ति हो सकती है। किन्तु शुभ मार्ग के लिए बड़ा यत्न करना पड़ता है[1]। शुभाशुभ कर्मों का फल भोगने के लिए जीव को अनेक शरीर तो अवश्य धारण करने पड़ते हैं किन्तु वह न मरता है और न जीता है। जन्म-मृत्यु जड़ शरीर का धर्म है, जीव का नहीं। शैशव, यौवन तथा जरा आदि अवस्थाओं का सम्बन्ध भी जड़ शरीर से ही है[2]। केशव के ये भाव गीता से मिलते हैं[3]।

जीव की कोटियाँ—केशवदास जीव की तीन कोटियाँ उत्तम, मध्यम और अधम मानते हैं। उत्तम कोटि के जीव वे कहलाते हैं जो ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल काम करते हैं और जो संसार में सदैव विरक्त भाव से रहते हैं। यदि कभी किसी कारण-वश उनसे ईश्वरेच्छा के विरुद्ध कोई कार्य हो जाता है तो वे अपने आप को स्वयं दण्डित करते हैं। वे दूसरे जीवों को भी अपने शुभ मार्ग पर ही ले आते हैं[4]।

जो मन के कुछ वशीभूत हैं और प्रभु की महिमा को भूले हुए हैं, वे मध्यम कोटि के जीव होते हैं। ये जीव शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से पीड़ित होने पर

---

१. यत्नन सों शुभ पंथ लगावै। तो अपनो तब ही पद पावै।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० ५ (उत्तरार्द्ध)।

२. बालक वृद्ध कहो तुम काको।
देहनि को किधौं जीव प्रभा को॥
है जड़ देह कहै सब कोई।
जीव सों बालक वृद्ध न होई॥
जीव जरै न मरै नहिं छीजै।
ताकहं शोक कहा अब कीजै॥
जीवहि विप्र न क्षत्रिय जानो।
केवल ब्रह्म हिये महं आनो॥
—रा० चं०, प्र० ३७, छं० १०-११।

३. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।
—श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय २, श्लोक १३।
न जायते म्रियते वा कदाचित्, न हन्यते हन्यमाने शरीरे।
—श्रीमद्भगवद्गीता, अ० २, श्लोक २०।

४. उपजत माया संग ते, जीव होत बहुरूप।
उत्तम मध्यम अधम सब, सुनि लीजै भवभूप॥
उत्तम ते प्रभुशासन संमत। ह्वै जग सों न कहूं कबहूं रत॥
कौन हूं एक प्रसाद ते भूपति। होतु हैं शासन भंग महामति॥
आपुहि आपुनि क्यों करि दण्डहि। कारज साधत हैं तिह खंडहि॥
औरहु आपने पंथ लगावै.................................॥
—वि० गी०, प्र० १५ छ० १६-२१।

वेद-पुराणों की शरण जाते हैं और दान, व्रत, संयम, तप, त्याग तथा जप आदि के द्वारा जन्मान्तर में ज्ञान प्राप्त करके जीवनमुक्त कहलाते हैं[1]।

अधम कोटि के जीव वे हैं जिन्हें प्रभु का कुछ भी ज्ञान नहीं और जिनमें अहंकार प्रबल है। ये वेद-पुराणों के वचनों को सुनकर भी अनेक प्रकार के पाप करते रहते हैं। केशव इन जीवों की अनेक श्रेणियाँ बतलाते हैं। ये जीव अपने-अपने कर्मों के अनुसार सुयोनि अथवा कुयोनियों में भ्रमण कर अपनी-अपनी बारी से प्रभु के पास पहुँच जाते हैं[2]।

सृष्टि—केशव के मत में दृश्य एवं अदृश्य समस्त व्यावहारिक सृष्टि का मूल कारण मन है (**जग को कारण एक मन**—वि० गी०, प्र० २१, छं० १६)। इस बात को केशव ने 'विज्ञानगीता' में कई स्थलों पर समझाया है। एक स्थल पर कवि ने रूपक द्वारा बतलाया है कि ईश और माया के संसर्ग से सृष्टि की उत्पत्ति होती है। ईश और माया के संसर्ग से मन-रूपी पुत्र का जन्म होता है। मन की दो पत्नियाँ हैं प्रवृत्ति तथा निवृत्ति। प्रवृत्ति से तीनों लोकों की उत्पत्ति होती है। इसी से मोह, काम, क्रोध, लोभ आदि की उत्पत्ति होती है। विवेक, सन्तोष, सम, विचार आदि निवृत्ति से उत्पन्न हैं[3]।

---

१. ....ते सब मध्यम जीव कहावैं।
होत जे जीव कछू मन के वश। भूलत हैं अपने प्रभु के यश ॥
पीड़िये आधिनि व्याधिनि के जब। बूझत वेद पुराणन को तब ॥
दानन दै व्रत संयम के तप। संगत जेंवत साधत हैं जप ॥
जन्म गए बहु ज्ञाननि पावत । ते जग जीवनमुक्त कहावत ॥
—वि० गी०, प्र० १५, छं० २१-२३।

२. जिनको न कछु अपने प्रभु की सुधि।
बहु भाँति बढ़ावत हैं मन की बुधि ॥
सुनिहूँ सुनि वेद पुराणनि के मत।
होत तऊ बहु पापनि सों रत ॥
ते अति अधम बखानिये, जीव अनेक प्रकार ॥
सदा सुयोनि कुयोनि में, भ्रमत रहैं संसार ॥
उत्तम मध्यम अति, जीव ते केशवदास ॥
अपने अपने औसुरें, जैए प्रभु के पास ॥
—वि० गी०, प्र० १५, छं० २४-२६।

३. ईस माय विलोक के उपजाइयो मन पूत।
सुन्दरी तिहि द्वै करी तिहि से त्रिलोक प्रभूत ॥
एक नाम निवृत्ति है जग एक प्रवृत्ति सुजान।
वंश द्वै ताते भयो यह लोक मानि प्रमान।
महामोह दै आदि हम, जाए जगत प्रवृत्ति।
सुमुखि विवेकहि आदि दै, प्रगटत भई निवृत्ति ॥
—वि० गी०, प्र० २, छं० १२ और १४।

अन्य स्थल पर जीव को ज्ञानोपदेश दिलाते हुए केशव 'देवी' के मुख से कहलवाते हैं कि शुभ और अशुभ वासना से युक्त देह सृष्टि का बीज है, जो भाव और अभाव में क्रमशः सुख-दुःख अनुभव करता है। देह का बीज विदेह चित्त-वृत्ति है, जिसमें संभ्रम-विभ्रम आदि की स्थिति स्वप्न के तुल्य है। चित्त के दो बीज हैं, 'प्राणस्पन्द' तथा 'भावना'। इन दोनों की उत्पत्ति 'संवेद' से होती है। 'संवेद' का बीज 'संवित' तथा 'संवित' का बीज 'सत्ता' है। 'सत्ता' के दो प्रकार हैं। एक तो एकरूप है और दूसरी नानारूप। एकरूप ग्राह्य है और अनेक रूप त्याज्य। पहली का नाम 'कालसत्ता' है और दूसरी का नाम 'वस्तुसत्ता' अथवा 'चित्तसत्ता'। 'चित्तसत्ता' ही सब पदार्थों की उत्पत्ति का कारण है और उसके बीज को कोई नहीं जानता। केशव उसी की आराधना करने का उपदेश देते हैं[1]।

जगत् मिथ्या, भ्रमपूर्ण तथा क्षणभंगुर है :

केशव के अनुसार यह जगत झूठा है। उनका कहना है कि यह सत्य-सा लगता है। कारण, यह किसी सच्चे की रचना है[2]। जैसे शुक्ति में भ्रम के कारण रजत का

---

१. युक्त शुभाशुभ अंकुरनि, बीज सृष्टि को देहु।
भावाभाव सदानि में, सुख दुखदा इह गेहु॥
बीज देह को विदेह चित्तवृत्ति जानिए।
जाहि मध्य स्वप्न तुल्य संभ्रमादि मानिए॥
दोइ बीज चित्त के सुचित ह्वै सुनो अबै।
एक प्राणस्पन्द है द्वितीय भावना सबै॥
× × ×
दोइ बीज हैं चित्त के, ताके बीजनि जानि।
सो संवेद बखानिये, केशवराइ प्रमानि॥
बीजु सदा संवेद को, संविद बीज विधान।
संविज अरु संघात को छाँड़त है मतिमान॥
संविद को वितु बीज है, ताके सत्ता होइ।
केशवराइ बखानिये, सो सत्ता विधि दोइ॥
एक सु नाना रूप है, एक रूप है एक।
एक रूप संतत भजो, तजियै रूप अनेक।
एक कालसत्ता कहै, विमति चित्त को ताहि।
एक वस्तुसत्ता कहै, चित्तसत्ता चित्त चाहि॥
ताको बीजु न जानिये, जाकी सत्ता साधु।
हेतु जु है सब हेतु को, ताही को आराधु॥

—वि० गी०, प्र० २०, छं० २, ३ और ५-१२।

२. झूठो है रे झूठो जग राम की दोहाई काहू।
साँचे को बनायो ताते साँचो सो लगतु है॥

—वि० गी०, प्र० १४, छं० ६ तथा क० प्रि०, प्र० ६, छं० ७५ (पाठभेद से)।

भान होता है, परन्तु भ्रम के नाश होने पर शुक्ति प्रगट हो जाती है, वैसे ही इस जगत का भ्रम भी है[1]। यहाँ के पुत्र, मित्र, स्त्री, दुहिता आदि सारे सम्बन्ध मिथ्या हैं। इसी प्रकार लोभ, मद, काम आदि की भी कोई वास्तविक सत्ता नहीं है[2]। जगत के समस्त दृश्य पदार्थ तथा सम्बन्ध धूलिकण के सदृश क्षणभंगुर हैं[3]। औरों की तो गणना ही क्या, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव से लेकर जितने दृश्य-शरीर हैं, वे सब नाश की ओर उसी प्रकार अग्रसर रहते हैं जिस प्रकार समुद्र का जल बड़वानल की ओर[4]। हाथी-घोड़े, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, परिजन आदि सब क्षणिक हैं। यहाँ तक कि मनुष्य का अपना शरीर भी अन्त में अपना साथ छोड़ देता है[5]।

यहाँ के पदार्थों पर ममत्व व्यर्थ है। ये किसी एक के नहीं हैं। इन पर मक्खी, मच्छर, मूसा, घूस, कीड़े, कुत्ता, बिल्ली, पक्षी, मनुष्य आदि अनेक दावेदार हैं। यह बड़ा ही विकट भ्रमजाल है[6]।

---

१. भ्रम ही ते जो शुक्ति में, होति रजत की युक्ति।
केशव संभ्रम नाश ते, प्रगट शुक्ति की शुक्ति॥
—वि० गी०, प्र० १७, छं० ३२।

२. पुत्र मित्र, कलत्र के तजि वत्स दुःसह सोग।
कौन के भट कौन की दुहिता मृषा सब लोग॥
एक ब्रह्म साँचो सदा झूठो यह संसार।
कौन लोभ मद काम को, को सुत मित्र विचार॥
तुम्हें गए तजि बार बहु, तुमहूँ तजे बहु बार।
तिन लगि सोच कहा करो, रे बावरे गँवार॥
—वि० गी०, प्र० १३, छं० ७-६।

३. यह जग जैसे धूरिकण, दीह बाच होइ।
को जाने उड़ि जात कहूँ, मरे न मिलई कोइ॥
—वि० गी०, प्र० १३, छं० १५।

४. ब्रह्म विष्णु शिव आदि दै जितने दृश्य शरीर।
नाश हेतु धावत सबै ज्यों बड़वानल नीर॥
—रा० चं०, प्र० २४, छं० २४।

५. हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाऊँ न ठाऊँ कुठाऊँ बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूँ संग रैहैं॥
—रा० चं०, प्र० १६, छं० २६ तथा क० प्रि०, प्र० ६, छं० ५६ (पाठभेद से)।

६. माछी कहै अपनो घरु माछरु मूसो कहै अपनो घरु ऐसो।
कोने घुसी कहै घूसि घिनौनी बिलारि औ व्याल बिले महं बैसो॥
कीटक स्वान सो पक्षि औ भिक्षुक भूत कहैं भ्रमजाल है जैसो।
कोहूँ कहौ अपनो घरु तैसहि ता घरु सों, अपनो घरु कैसो॥
—रा० चं०, प्र० २४, छं० २६।

सांसारिक सम्बन्ध उसी प्रकार क्षणिक हैं जिस प्रकार थोड़ी देर के लिए नाव में बैठे हुए यात्रियों का संयोग, आकाश के बादलों अथवा बवंडर में तृण-समूह का कुछ काल के लिए एकत्रित होकर वियुक्त हो जाना। संसार के जीव का उसी प्रकार कुछ काल के लिये संयोग होकर अन्त में वियोग हो जाता है जिस प्रकार हाट, मार्ग या बारात में कुछ समय के लिए लोगों का संयोग होता और फिर बिछोह हो जाता है[1]।

कबीर के समान केशव दृश्य तथा अदृश्य सम्पूर्ण जगत को काल का चबेना (कवल) मानते हैं[2]।

भारतीय दार्शनिकों की भाँति केशव जगत को दुःखमय मानते हैं। उनका कहना है कि संसार में कोई भी सुख नहीं है, सर्वत्र दुःख ही दुःख है। मृत्यु के अनन्तर भी जीव दुःख से छुटकारा नहीं पाता। वह बार-बार मरता है और जन्म लेता है।

जग में न सुख है, यत्र तत्र दुःख है।
(वि० गी०, प्र० १४, छं० १७)
मरणहि जीव न तजहीं, मरि मरि जन्म न भजहीं॥
(रा० चं०, प्र० २४, छं० १)।

गर्भ में जाने के समय से लेकर मृत्यु तक बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था हरेक अवस्था में जीव को अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। 'रामचन्द्रिका' तथा 'विज्ञानगीता' दोनों ही प्रबन्धों में विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले दुःखों का सविस्तार विवेचन मिलता है। बाल्यावस्था के दुःखों का वर्णन निम्नांकित छन्द में किया गया है—

गर्भ मिलंइ रहे मल में जग आवत कोटिक कष्ट सहे जू।
को कहै पीर न बोलि परै बहु रोग निकेतन ताप रहे जू॥
खेलत मात पिता न डरै गुरु गेहनि में गुरु दंड दहे जू।
दीरघ लोचन देवि सुनो अब बाल दशा दिन दुःख नहे जू॥
(वि० गी०, प्र० १४, छं० १८)

---

१. भूरहूँ भूरि नदीनि के पूरनि नावनि में बहुतै बनि वैसे।
केशवराइ अकाश के मेह बड़े बवधूरणि में तृण जैसे॥
हाटनि बाटनि जात बरातनि लोग सबै बिछुरे मिलि ऐसे।
लोभ कहा अरु मोह कहा जग योग वियोग कुटुम्ब के तैसे॥
—वि० गी०, प्र० १४, छं० ७।

२. खलक चबीणा काल का, कुछ मुख में कुछ गोद। कबीरवचनामृत (साखीभाग), मुन्शीराम शर्मा, सं० २००७, पृ० २०५।
जितने थिर चर जीव जग, अधर ऊरध के लोक।
अजर अमर अज अमित जन, कवलित काल सशोक॥
—वि० गी०, प्र० १४, छं० २२।

युवावस्था में किस प्रकार जीव को काम, क्रोध, लोभ, शत्रु, मित्र आदि के कारण अनेक दुःख सहन करने पड़ते हैं। देखिए :

काम प्रताप के ताप तपे तनु केशव क्रोध विरोध सने जू।
जारे तु चारु चिताई विपत्ति में संपति गर्व न काहू गने जू॥
लोभ ते देश विदेश भ्रम्यो भव संभ्रम विभ्रम कौन गने जू।
मित्र अमित्र ते पुत्र कलत्र ते यौवन में दिन दुःख घने जू॥
(वि० गी०, प्र० १, छं० २०)

वृद्धावस्था तो आधि-व्याधि सभी प्रकार के दुःखों का घर ही ठहरी। वृद्धावस्था में होने वाली उसकी दुर्दशा का चित्र इस प्रकार खींचा गया है।

कंपै उर बानि डगै बर डीठि त्वचाऽति कुचै सकुचै मति बेली।
नवै नवग्रीव थकै गति केशव बालक ते संग ही संग खेली॥
लिये सब आधिन व्याधिन संग जरा जब आवै ज्वरा की सहेली।
भगै सब देह दशा जिय साथ रहै दुरि दौरि दुराश अकेली॥
(रा० चं०, प्र० २४, छं० ११)

मुक्ति—केशव ने मुक्ति के चार प्रमुख साधन बतलाए हैं, सत्संग, सम, सन्तोष तथा विचार[1]। वे कहते हैं कि यदि कोई उनमें से किसी एक को भी अपना ले, तो उसे सुखपूर्वक प्रभु के द्वार में प्रवेश मिल जाता है और जो इन चारों का मनसा और वाचा शुद्ध भाव से संग्रह करता है, वह संपूर्ण वासनाओं से रहित हो अपने वास्तविक रूप को प्राप्त करता है[2]।

केशव की दृष्टि में 'सत्संग' गंगासागर तीर्थ से भी बड़ा तीर्थ है, क्योंकि साधुओं के उपदेश इतने अद्भुत और पावनकर हैं कि जीवन काल ही में पापियों को पवित्र करके जीवनमुक्त बना देते हैं[3]। केशव साधु का लक्षण बतलाते हुए लिखते हैं कि साधु वह है जो कज्जल-कलित तथा अगाध चक्रव्यूह की भाँति इस अगम संसार

---

१. मुक्तिपुरी दरबार के चारि चतुर प्रतिहार।
साधुन के शुभ संग अरु, सम सन्तोष विचार।
—वि० गी०, प्र० १४, छं० ४५।

२. तिन में जग एकहु जो अपनावैं।
सुख ही प्रभु द्वार प्रवेशहि पावैं॥
जो इनको संग्रह करैं मन वचन छौंडनि छांड़ि।
मिलैं आपने रूप को, सकल वासना खांड़ि।
—वि० गी०, प्र० १४, छं० ४६-४७।

३. गंगासागर सों बड़ो साधुन को सतसंग।
पावनकर उपदेश अति अद्भुत करत अभंग॥
—रा० चं०, प्र० २३, छं० ६।

में प्रविष्ट होकर भी उससे निष्कलंक निकल आता है[१] ।

रूप, रस, गन्ध, श्रवण, स्पर्शादि इन्द्रियार्थों को भोगते हुए भी मन का उनमें लीन न होना 'सम' कहलाता है[२] ।

'सन्तोष' वह अवस्था है जिसमें मन में किसी वस्तु की अभिलाषा नहीं होती और न किसी वस्तु के हानि-लाभ से दुःख-सुख ही होता है। उसमें मन परमानन्द-स्वरूप ईश्वर में ही लीन रहता है[३] ।

मुक्ति का चौथा साधन 'विचार' है। मैं कौन हूँ ? कहाँ आया हूँ ? कहाँ से, किस लिये आया हूँ ? अपने वास्तविक पद को प्राप्त करना मेरा परम धर्म है ? कौन मेरा मित्र है ? कौन शत्रु है ? इस प्रकार के चिन्तन को 'विचार' कहते हैं[४] ।

मुक्त पुरुष का अहंभाव नष्ट हो जाता है और वह मनुष्य से लेकर कीट-पतंगादि तक विश्व के सभी छोटे-बड़े जीवों को आत्मवत् समझता है, क्योंकि अहंभाव के नाश से भेद-दृष्टि नष्ट हो जाती है[५] ।

मुक्त जीवों के प्रकार—केशव के अनुसार मुक्तों के दो भेद हैं—जीवनमुक्त तथा विदेहमुक्त। जीवनमुक्त जीव वह है जो बाह्य शरीर से और हृदय से अति शुद्ध होता है, जो निष्काम भाव से कर्म करता है और जो बाहर से तो मूर्ख-सा जान पड़ता है, पर अन्तःकरण से ज्ञानवान् होता है[६] ।

---

१. यह जग चक्काव्यूह किय कज्जल कलित अगाधु।
तामहँ पैठि जो नीकसैं अकलंकित सो साधु ॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १० ।

२. देखत हूँ बहु काल छिये हूँ। बात कहे सुने भोग किये हूँ।
सोवत जागत नेक न क्षोभैं। सो समता सब ही महँ शोभैं ॥
— रा० चं०, प्र० २५, छं० ११ ।

३. जा अभिलाष न काहू की आवैं। आये गये सुख-दुःख न पावैं।
ले परमानन्द सों मन लावैं। सो सब माँहि संतोष कहावैं।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १२ ।

४. आयो कहाँ अब हों कहि को हौं। ज्यों अपने पद पाऊँ सो टोहौं।
बंधु अबंधु हिये महँ जानैं। ताकहँ लोग विचार बखानैं।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १३ ।

५. आपन सो अवलोकिये सब ही युक्त अयुक्त।
अहंभाव मिटि जाय जो कौन बद्ध को मुक्त ॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १८ ।

६. बाहर हूँ अति शुद्ध हिये हूँ। जाहि न लागत कर्म किये हूँ ॥
बाहर मूढ़ सु अन्त सयानो। ताकहँ जीवनमुक्त बखानो ॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० १७ ।

'विज्ञानगीता' के अनुसार जीवनमुक्त उसे कहते हैं जो विश्व के सुख-दुखों को समभाव से देखता तथा राग-विराग-हीन रहता है, जिसने अहंभाव का परित्याग कर दिया है, जिसे संसार के प्रत्येक पदार्थ के वास्तविक रूप का ज्ञान है, जो बालक के सदृश परमहंसरूप से संसार में भ्रमण करता है तथा स्वयं अपने को एवं चर तथा अचर जगत् को एक समान समझता है[1]।

'विदेहमुक्त' जीवनमुक्त से भिन्न है। वह देखता हुआ भी कुछ नहीं देखता। इस नामरूपात्मक संसार में उसका आचरण चित्र-लिपि के सदृश होता है। वह स्वयं किसी प्रकार की इच्छा नहीं करता और परब्रह्म की ही इच्छा को प्रमुख मानता है। वह कर्म-अकर्म में लीन नहीं होता और जल में कमल के समान जगत् में रहते हुए भी अनासक्त भाव से रहता है। इस अवस्था में पहुँचने पर जीव चिदानन्द में ही सदा तल्लीन रहता है[2]।

प्राणायाम—केशव शरीर को मुक्ति-प्राप्ति में बाधक नहीं मानते। योग-साधन अथवा प्राणायाम द्वारा अदेह मुक्ति प्राप्त हो सकती है[3]। जहाँ केशव योग-साधना में समाधि के लिए निश्चलत्व तथा निर्वासनत्व की आवश्यकता समझते हैं, वहाँ पूर्ण प्रेम की भी महत्ता स्वीकार करते हैं[4]।

संन्यास—केशव के मत में मुक्ति-प्राप्ति के लिए संन्यास लेकर वन जाने की आवश्यकता नहीं है। वे मनोनिग्रह को मुख्य मानते हैं। केशव कहते हैं कि यदि जीव

---

१. लोक करैं सुख-दुःखनि कै जिनि राग-विरागनि या महँ आने।
डारैं उपारि समूल अहंतरु कंचन काचन जो पहिचाने॥
बालक ज्यों भवँ भूतल में भव आपुन से जड़ जंगम जाने।
केशव वेद पुराण प्रमाण तिन्हैं सब जीवनमुक्त बखाने॥
—वि० गी०, प्र० २१, छं० ३२।

२. देखत हूँ अनदेखत हूँ लिपि रूपक सेन सरूप को धावैं।
आपु अनिच्छ चले परइच्छ को केशवदास सदापति पावैं॥
कर्म अकर्मनि लीन नहीं निज पायज ज्यों जल अंक लगावैं।
ह्वै अति मत्त चिदानन्द मध्यनि लोग सदेह विदेह कहावैं॥
—वि० गी०, प्र० २१, छं० ३३।

३. क्रम क्रम साधे देह इहि, केशव प्राणायाम।
कुंभक पूरक रेचकनि, तौ पूजैं मन काम॥
—वि० गी०, प्र० १५, छं० ६।

४. आनहु ज्योति हिये अविनाशी। अच्छ निरंजन-दीप प्रकाशी।
निश्चलवेष समाधि बिहारैं। वासना अंग पतंगनि जारैं।
शुद्ध स्वभाव के नीर नहावैं। पूरण प्रेम समाधिहि लावैं।
फल मूल चिदानन्द फूलनि पूजै। और न केशव पूजन दूजै॥
—वि० गी०, प्र० १५, छं० ४६-४७।

सदैव ब्रह्मचिन्तन में लीन रहता है, सत्य बोलता है, हृदय में करुणा धारण करता है, पाप-कर्मों का परित्याग करता है, धर्म-कथाओं का श्रवण करता है, सत्संग करता है, भोग करते हुए भी यदि वह उससे निर्लिप्त रहता है और इस प्रकार उसका मन उसके वश में है, तो उसके लिए घर और वन दोनों ही बराबर हैं। और यदि उसमें यह बात नहीं है तो संन्यास लेकर वन जाना भी व्यर्थ ही रहेगा[१]।

मनोनिग्रह—केशव जीवों के बन्धन तथा मोक्ष का कारण मन को बतलाते हैं। वे लिखते हैं कि मन में लगी हुई गाँठ मन से ही खुलती है; मल से मल साफ होता है और विष का नाश भी विष से ही होता है[२]। मन एक ऐसी दुधारी तलवार है जो एक धार से मुक्त को काटती है और दूसरी से बन्धन को। वह कभी हमारा मित्र होता है, कभी शत्रु[३]। केशव की दृष्टि में मन, आकाश के सदृश 'अरूप' है परन्तु साथ ही वे यह भी मानते हैं कि वह बुद्धि के वश में रहता है। बुद्धि ही उसे ढील देती है, वही उसे खींच भी सकती है[४]। परन्तु मनोनिग्रह हँसी-खेल नहीं है। उसके लिए धीरे-धीरे अभ्यास करना पड़ता है। मन के वशीभूत हो जाने पर सब इन्द्रियाँ उसी प्रकार वश में हो जाती हैं जिस प्रकार गरुड़ के वश में सर्प हो जाते हैं[५]।

(२) **केशव की भक्ति**—केशव को अपनी पांडित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति के कारण 'रामचन्द्रिका' में 'रामचरितमानस' की सी पूर्णता प्राप्त न हो सकी। केशव की रामकथा में भक्ति का बिल्कुल उन्मेष नहीं है और न 'रामचन्द्रिका' को भक्ति-ग्रन्थ ही कहा जा सकता है। यों तो इष्ट के रूप-गुण का कीर्तन भी एक प्रकार की

---

१. निशिवासर वस्तु विचार करैं, मुख सांच हिये करुणाधनु है।
अघ निग्रह, संग्रह धर्म कथान, परिग्रह साधुन को गनु है॥
कहि केशव योग जगै हिय भीतर, बाहर भोगन स्यों तनु है।
मनु हाथ सदा जिनके, तिनको बनु ही घरु है घरु ही बनु है॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० ३६ तथा वि० गी, प्र० २१, छं० ४३ (पाठान्तर से)।

२. मन की दीन्हीं गाँठि प्रभु, मनहीं पर छुर आउ।
ज्यों मल मलहीं धोइए, विष हीं विष सु उपाउ॥
—वि० गी, प्र० २१, छं २१।

३. जग को कारण एक मन, मन को जीत अजीत।
मन को मन सुन शत्रु है, मन ही को मन मीत॥
—बि० गी०, प्र० २१, छं० १६।

४. मन को रूप अरूप है, जैसो है आकाश।
बढ़त बढ़ाए बुद्धि के, घटत घटाए आस॥
—बि० गी०, प्र० २१, छं० २०।

५. हरे हरे मनु ऐंचि कै, कीजै मन को हाथ।
इन्द्रिय सर्प समान हैं, गारुड मन के साथ॥
—बि० गी०, प्र० २१, छं० २६

भक्ति है, परन्तु केशव की चमत्कारपूर्ण शैली ने रामकथा में कहीं भी इष्ट के रूप तथा गुणों का वह चित्र अंकित नहीं होने दिया जिससे सरस हृदयों में रागात्मिका भक्ति का उदय तथा उत्कर्ष होता है। तो भी भक्ति के भग्नावशेष का रूप 'रामचन्द्रिका' में मिल ही जाता है।

भक्ति कई प्रकार की मानी गई है। 'भागवत' और 'अध्यात्म रामायण' नामक ग्रन्थ उसे नवधा मानते हैं। कबीर ने इसे दशधा माना है। नारदीय भक्तिसूत्र में उसे एकादशधा कहा गया है। केशव 'भागवत' के सदृश 'विज्ञानगीता' में नवधा भक्ति का ही उल्लेख करते हैं[१]। पर उनके नवधा-निरुपण में एक विशेषता यह है कि वे भक्ति को काव्य के नवरसों से मिश्रित मानते हैं। भक्ति के एक-एक प्रकार में एक-एक रस की प्राप्ति होती है। श्रवण में अद्भुत, स्मरण में करुण, दासता में वीभत्स, पद-सेवा में भयानक, वन्दन में वीर, अर्चन में शृंगार, सख्य में हास, कीर्तन में रौद्र तथा आत्मनिवेदन में शान्त रस की स्थिति होती है[२]।

केशव सगुण भक्ति के समर्थक हैं और उसमें वे अनन्य भाव की प्रतिष्ठा पर जोर देते हैं[३]। किन्तु वे सगुण का समर्थन निर्गुण के निराकरण द्वारा नहीं करते। उन्हें भगवान् (राम) की सगुण और निर्गुण दोनों सत्ता स्वीकृत हैं। उनके मत में निर्गुण ही अपने भक्तों के लिए सगुण रूप धारण करके अवतरित होता है। सीता-राम-संवाद में राम का कथन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

निर्गुण तें मैं सगुण भो, सुनि सुन्दरि तव हेत[४]।

गीता के भगवान् कृष्ण के समान ही केशव के भगवान् भी जब-जब संसार

---

१. नवरस मिश्रित साधि नृप नवधा भक्ति प्रमानु।
दानव मानव देवगण, भक्त कमल हरिभानु॥
—वि० गी०, प्र० १६, छ० ३८।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं बन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥
—भागवत, स्कन्ध ७, अध्याय ५, श्लो० २३।

२. जीतहुँ अद्भुत श्रवण सों, सुमिरन करुणा जानि।
सहित जुगुप्सा दासता, पादभजन भय भानि॥
बंदन वीर शृंगार सों, अर्चन सख्य सहास।
रौद्र कीर्तन समसहित, आत्मनिवेदन प्रकाश॥
—वि० गी०, प्र० १६, छं० ३६-४०।

३. सत चित प्रकाश प्रभेव, तेहि वेद मानत देव।
तेहि पूजि ऋषि रुचि मण्डि, सब प्राकृतन को छण्डि॥
—रा० चं, प्र० २५, छं० २६।

४. रा० चं०, प्र० ३३, छं० २२।

में मर्यादा का उल्लंघन होता है, कच्छप, मीन, बराह आदि अनेक अवतार धारण कर मर्यादा की रक्षा करते हैं[1]।

केशव भगवान् के सगुण रूप के ध्यान में 'निष्कपट भाव' की महत्ता स्वीकार करते हैं। उन्होंने लिखा है कि यदि एक घड़ी भी निष्कपट हो पूजन कर लिया तो मानों अनेक यज्ञों का अनुष्ठान ही कर लिया[2]। इस प्रकार का ध्यान ही योग है। यही धर्म है और यही कर्म। अतः इसी में चित्त लगाना चाहिए[3]। इसी पूजारूपी अग्नि में समस्त शुभ तथा अशुभ वासनाएँ भस्म हो जाती हैं[4]। 'शुभ वासना के नाश' से निष्काम भक्ति का समर्थन किया गया है[5]। एक और स्थल पर भी केशव ने निष्काम भक्ति की ओर संकेत किया है। भगवान् के निष्कामचंचल मन को उनके रूप में लीन करके दुरन्त माया को भक्त अनायास ही लाँघ जाते हैं[6]।

---

१. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
—गीता, अध्याय ४, श्लोक ७।

मरजादहि छोड़त जानत जाको। तुम ही अवतार धरो तुम ताको।
तुमही घर-कच्छप वेष धरोजू। तुम मीन ह्वै वेदन को उधरों जू॥
तुम ही जग यज्ञ-बराह भये जू। छिति छीन लई हिरनाछ हये जू।
— — — —
यहि भाँति अनेक सरूप तिहारे। अपनी मरजाद के काज सँवारे॥
—रा० चं०, प्र० २०, छं० १९, २० और २३।

२. पूजा यहै उर आनु। निर्व्याज धरिये ध्यानु।
यों पूजि घटिका एक। मनु किये याज अनेक॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० ३०।

३. जिय जान यहई योग। सब धर्म कर्म प्रयोग।
तेहि तें यही उर लाव। मन उनत कहुँ न चलाव॥
—रा० चं०, प्र०, २५, छं० ३१।

४. यह पूजा अद्भुत अगिनि सुनि प्रभु त्रिभुवन नाथ।
सबै शुभाशुभ वासना में जारी निज हाथ॥
—रा० चं०, प्र० २५, छं० ३३।

५. मानो निष्काम भक्ति, शक्ति आप आपनी सु।
देहनि धरि प्रेमन भरि, भजन भेद गावैं॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० २४।

६. तजि तजि माया दुरन्त भक्त रावरे अनन्त।
तव पद कर नैंन बैंन मानहु मन दीन्हें॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० २०।

भक्ति के क्षेत्र में राम-नाम के महत्त्व को भी केशव विशिष्ट स्थान देते हैं। कलिकाल के प्रभाव के कारण जब वेद और पुराण नष्ट हो जाएंगे, जप, तप तथा तीर्थ से लोगों का विश्वास उठ जाएगा, गाय और ब्राह्मण का सम्मान न रहेगा, तब संसार का उद्धार केवल राम-नाम ही करेगा[1]। केशव कहते हैं कि यदि पापात्मा भी मृत्यु के समय राम का नाम ले तो उसे सहज ही सुरपुर की प्राप्ति हो सकती है[2] और फिर वह सदा के लिए क्रूर काल के फंदे से बच जाता है—

काल-सर्प के कबलते, छोरत जिनको नाम (रा० चं०, प्र० १७, छं० १३)।

यों तो भगवान् के अनन्त नाम हैं पर केशव को राम का नाम ही इष्ट है—

केशवदास तही कर्‌यो रामचन्द्र जू इष्ट (रा० चं०, प्र० १ छं० १८)।

राम के नाम में उन्हें पापों के नाश करने की शक्ति दिखाई पड़ती है।

राम के नाम ते ज्यों अघ भागे[3]

केशवदास के विचार में राम-नाम का अधिकारी केवल वर्ण-विशेष ही का व्यक्त नहीं है, वरन् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र चारों वर्णों में से प्रत्येक वर्ण का व्यक्ति, चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री, उसका अधिकारी है। राम-चरित्र का श्रवण करने से पुत्र, स्त्री, संपत्ति तथा अनेक यज्ञ, दान और तीर्थस्थान का फल मिलता है[4]।

'राम' शब्द के जाप में इतनी अनन्त शक्ति है कि निश्चल भाव से यदि किसी भी वर्ण का व्यक्त आधे ही नाम अर्थात् 'रा' का उच्चारण करे तो वह अधोगति को प्राप्त नहीं होता और यदि पूरा नाम अर्थात् राम कहे तो तुरन्त वैकुण्ठ प्राप्त करता है। इसी प्रकार से दोनों अक्षर मनुष्य के लोक-परलोक दोनों को सुधार देते हैं[5]।

---

१. जब सब वेद पुराण नसैहैं। जपतप तीरथहू मिटि जैहैं।
द्विज सुरभी नहि कोउ विचारे। तब जग केवल नाम उधारे॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० ८ तथा वि० गी०, प्र० २४, छं० ४६ (पाठान्तर से)।

२. मरन काल कोऊ कहै, पापी होय पुनीत।
सुखही हरिपुर जाइहै, सब जग गावै गीत॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० १० तथा वि० गी०, प्र० २१, छं० ५० (पाठान्तर से)।

३. रा० चं०, प्र० ३६, छं० १४।

४. रामचन्द्र चरित्र को जु सुनै सदा चित्त लाय।
ताहि पुत्र कलत्र सम्पति देत श्रीरघुराय॥
यज्ञ दान अनेक तीरथ न्हान को फल होय।
नारि का नर विप्र क्षत्रिय वैश्य शूद्र जो कोय॥
—रा० चं०, प्र० ३६, छं० ३८।

५. कहै नाम आधो सो आधो नसावै। कहै नाम पूरो सो बैकुण्ठ पावै।
सुधारे दुहूँ लोक वर्ण दोऊ। हिये छद्म छांड़े कहै वर्ण कोऊ॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० ६।

राम-नाम की महिमा अवर्णनीय है। वह साधारण मनुष्यों की समझ से परे है। उसके महत्त्व एवं प्रभाव को शिव, शेष, वाल्मीकि अथवा वेद ने ही जाना है[1]। सब का सार यह है कि राम-नाम संसार में सब साधनों का एक साधन है[2]।

(३) केशव की नीति एवं धर्म :

सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर धर्म और नीति में कोई तात्विक अन्तर नहीं प्रतीत होता, परन्तु स्थूल दृष्टि से दोनों में भेद दिखलाई देता है। नीति में स्व-हित-चिन्तना की भावना प्रधान होती है और धर्म में लोकहित-चिन्तना की। नीतिके सम्मुख व्यक्ति का ऐहिक सुख रहता है जो अपनी परिधि में समाज तक फैल सकता है, किन्तु धर्म की दृष्टि आचरण के पारमार्थिक पक्ष पर रहती है। यह माना कि नीति की 'स्वीयता' धर्म में भी होती है, पर नीति में वह संकीर्ण होती है और धर्म में व्यापक। धार्मिक स्वीयता का रूप 'वसुधैव कुटुम्बकम्' द्वारा भली भाँति अभिव्यक्त किया जा सकता है। नैतिक स्वीयता का आधार व्यक्ति है।

धर्म और नीति का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि दोनों के मध्य में कोई अन्तर-रेखा खींचना कठिन है। यही कारण है कि साहित्य में बहुत स्थानों पर धर्म और नीति का संश्लिष्ट रूप दृष्टिगोचर होता है। केशव के प्रबन्ध-काव्यों में राज-नीति और सामान्य नीति का अन्तर तो स्पष्ट देखने में आता है पर नीति और धर्म का वहाँ भी मिला-जुला रूप ही दिखाई पड़ता है। फिर भी विषय को सुबोध तथा सुस्पष्ट बनाने के विचार से यहाँ राजनीति और सामान्य नीति को नीति-वर्ग में रखा गया है एवं धर्म का नीति से अलग वर्णन किया गया है।

(क) नीति :

(१) राजनीति :

केशव के राजनीति-सम्बन्धी विचारों का आधार शुक्रनीति है। 'रामचन्द्रिका' में स्वयं उन्हीं का कथन है[3]।

राजा :

केशव ने 'रामचन्द्रिका' में चार प्रकार के राजा माने हैं। एक तो वे हैं जो इस लोक को ही सब कुछ समझ कर इसी की साधना करते हैं और अपने को ईश्वर मानते हैं, जैसे बली, बेणु; दूसरे वे हैं जो परलोक ही की साधना करते हैं, जैसे समस्त पृथ्वी के दान करने वाले राजा हरिश्चन्द्र; तीसरे वे होते हैं जो दोनों लोकों की साधना में लीन रहते हैं, जैसे मिथिलाधिपति विदेह और चौथे प्रकार के राजा वे

---

१. राम नाम के तत्व को, जानत वेद प्रभाव।
गंगाधर कै धरणिधर बालमीकि मुनिराव॥
—रा० चं०, प्र० २६, छं० ११।

२. सब को साधन एक जग, राम तिहार नाम।
—रा० चं०, प्र० २५, छं० ४०।

३. कह्यौ शुक्रचार्य सु हौं कहो जू। —रा० चं०, प्र० १७, छं० २०।

हैं जो हठी होने के कारण अपने दोनों लोक नष्ट कर देते हैं, जैसे राजा त्रिशंकु जिसे भले-बुरे सभी हँसते हैं[1]।

'वीरसिंहदेव-चरित' में गुरु, मध्यम तथा लघु तीन प्रकार के राजाओं का उल्लेख किया गया है[2]।

मंत्री :

केशव के अनुसार मंत्री भी चार ही प्रकार के होते हैं। एक तो वे हैं जो अपने हित के लिए राज्य-हित का हनन कर देते हैं; जैसे राजा सुरथ का मंत्री, जिसने राजा को निकाल कर अपना हित साधन किया। दूसरे वे हैं जो राजा के हित के लिए स्वयं कष्ट उठाते हैं; जैसे शुक्राचार्य, जिन्होंने राजा बलि के हित के लिए अपना एक नेत्र तक खो दिया। एक ऐसे मंत्री होते हैं जो अपना और अपने स्वामी दोनों का हित करते हैं, जैसे हनुमान; और एक ऐसे होते हैं जो अपना और अपने प्रभु दोनों का अहित करते हैं, जैसे मेघनाद[3]।

मंत्र—मंत्रियों के मंत्र भी चार प्रकार के होते हैं। उत्तम मंत्र वह होता है जो सुनने में भी मधुर होता है और जिसका परिणाम भी मधुर ही होता है; जैसे अनार का बीज जो स्वाद और गुण दोनों में मधुर होता है। दूसरे प्रकार का मंत्र सुनने में कटु होता है पर परिणाम उसका मधुर होता है, जैसे नीम जो स्वाद में कटु और गुण में रोगहारी (हितकर) होता है। तीसरे प्रकार का मंत्र गुड़-सदृश होता

---

१. नृपाल भू में विधि चारि जानैं।………………………………॥
यहै लोक एकै सदा साधि जानैं। बली बेनु ज्यों आपु ही ईश मानैं॥
करैं साधना एक परलोक ही को। हरिश्चन्द्र जैसे गये दै मही को॥
दुहूँ लोक को एक साधैं सयाने। विदेहीन ज्यों बेद बानी बखाने॥
नठैं लोक दोऊ हठी एक ऐसे। त्रिशंकै हँसे ज्यों भलेऊ अनैसे॥
—रा चं०, प्र० १७, छं० २०-२२।

२. ऐसे नरपति होत सुजान। गुर लघु मध्यम गुनहु विधान॥
अपनैं पुरुपागति की रीति। असुभ छाड़ि सुभ प्रगटत रीति॥
राखैं तिनकी बरनि अशेष। लेहि और बहु विक्रम वेष।
तिनकी दीनी प्रतिदिन देइ। औरहि देइ जीति रन लेइ॥
कुल पालहि सुनि हरषै गाथ। ऐसे नरपति गुर मननाथ॥
होहिं जे अपनैं पिता समान। मध्यम तिनसौं कहत सुजान॥
जिन पर राखी जाइ न प्रजा। दई न जाइ दुष्ट कौं सजा॥
नाहिन कछू धर्म की सुद्धि। ऐसे लघुनृप परहै क्रुद्ध॥
—वी० दे० च०, पृ० १७६।

३. रा० चं०, प्र० १७, छं० २५।

है। वह सुनने में अच्छा लगता है किन्तु प्रभाव में हानिकर होता है। अन्तिम प्रकार का मंत्र दोनों प्रकार से अनिष्टकर होता है, जैसे विष[1]।

राजधर्म—राजा को सर्वगुणसम्पन्न होना चाहिये। राजनैतिक-कौशल के अतिरिक्त उसे कुछ व्यावहारिक बातों का भी ज्ञान होना चाहिए अन्यथा वह प्रजा में सुख-शान्ति स्थापित करने तथा अपने राज्य को स्थिर बनाने में सफल नहीं हो सकता। उसको चाहिये कि वह झूठ न बोले; मूर्ख से मित्रता न करे; एक बार दान देकर वापस न ले; किसी से स्नेह करके फिर उसे न तोड़े; मंत्री और मित्र को दुःख न दे; देशान्तर में जावे पर शत्रु का विश्वास न करे; जुआ न खेले; वेद-वचन की रक्षा करे; शत्रु-देश में जाकर अनजानी वस्तु न खाए; मूर्ख से मंत्रणा न करे; गुप्त भेद किसी पर प्रकट न करे; हठ न करे; मठधारियों से सम्पर्क न बढ़ाए; प्रजा को व्यर्थ पीड़ित न करे; उसका पुत्रवत् पालन करे; दोषी-निर्दोषी का निश्चय कर दंड दे; ब्राह्मण, देवता, स्त्री तथा बालक के धन का अपहरण न करे; ब्राह्मणवंश से स्वप्न में भी विरोध न करे; पर-धन को विष-तुल्य और परस्त्री को मातावत् समझे; काम, क्रोध, लोभ, मोह, गर्व तथा चित्त-क्षोभ का परित्याग करे; यश का संग्रह करे; ज्ञानी साधुओं की संगति करे; धर्मानुसार शिक्षा देने वाले को हितैषी समझे; अधर्मियों से बात तक न करे; कृतघ्नी, मिथ्यावादी, परस्त्रीगामी एवं लोभी ब्राह्मण को दान बाँटने का अधिकारी न बनावे और संकल्प किये हुए द्रव्य की यत्नपूर्वक रक्षा करके ब्राह्मणों में उसे अपने हाथ से ही वितरण करे[2]।

सुख की इच्छा रखने वाले राजा को राज्य की सुरक्षा के सभी साधन अपने हाथ में रखने चाहिए। उनमें प्रमुख साधन तेरह राज्यों की सुव्यवस्था है। जो राजा क्रमशः अपने राज्य-सहित तेरह राज्यों की व्यवस्था कर लेता है, उसका शत्रु, मित्र अथवा उदासीन कोई भी अहित नहीं कर सकता। अपने समीपवर्ती राज्य से शत्रुता रखे; उससे आगे वाले अर्थात् शत्रु के पड़ोसी राज्य से मित्रता करे और उससे भी परे वाले राज्य से उदासीन भाव रखे। शत्रु-राज्य से युद्ध, मित्र-राज्य से सन्धि और उदासीन राज्य से मान-नीति का व्यवहार करे। इस प्रकार अपने चारों ओर सिन्धु-पर्यंत सुव्यवस्था कर लेने से सुख स्थापित हो जाता है[3]।

---

१. मंत्र जु चारि प्रकार के, मंत्रनि के जु प्रमान।
विष से दाड़िम बीज से गुड़ से नींब समान॥
—रा० चं०, प्र० १७, छं० २६।

२. रा० चं०, प्र० ३६, छं० २६-३४।

३. तेरह मंडल मंडित भूतल भूपति जो क्रम ही क्रम सोधै।
कैसेहू ताकहं शत्रु न मित्र सु केशवदास उदास न बाधै॥
शत्रु समीप, परे तेहि मित्र, सु तासु परे जु उदास के जोवै।
विग्रह, संधिनि, दाननि सिंधु लौं ले चहुँ ओरनि तो सुख सोवै॥
—रा० चं०, प्र० ३६, छं० ३५।

प्रजाकृत पाप राजा को भी लगता है अतः उसे चाहिए कि वह सदैव उसकी ओर जागरूक रहे, अन्यथा उसे नरक भोगना पड़ेगा[1]।

राजा को चाहिए कि वह चारों पदार्थों का क्रम से साधन करे। सर्वप्रथम धर्म साधन करे; तत्पश्चात् अर्थोपार्जन करे, फिर सन्तान के लिए स्त्री-प्रसंग करे और सन्तान हो जाने पर उसे दिन-रात तन-मन से मुक्ति के साधनों में लग जाना चाहिए अर्थात् धर्म, अर्थ तथा काम के साधन कर चुकने के अनन्तर पुत्र को राज्य का भार सौंप कर और संन्यास धारण कर मुक्ति के साधनों में जुट जाना चाहिए[2]।

संन्यास से पूर्व युद्ध भी राजा के लिए स्वर्ग का द्वार बना रहता है। अतः राजा का धर्म है कि युद्ध से विमुख न हो। युद्धभूमि में मारा जाने पर उसे वीरगति प्राप्त होती है और वह स्वर्ग का भोग करता है[3]।

केशव ने राजधर्म तथा राजनीति का वर्णन 'रामचन्द्रिका' की अपेक्षा 'वीरसिंहदेव-चरित' में अधिक विस्तृत रूप से किया है। तीसवां तथा इकत्तीसवां दोनों प्रकाश राजधर्म-वर्णन को अर्पित हैं। केशव के अनुसार राजा को सत्यवादी, शूर और धर्मात्मा होना चाहिए। शूरवीर होने से सब उसका भय मानेंगे, सत्यवादी होने के कारण सब उसका विश्वास करेंगे और दानी होने से सारा संसार उसका यश गायेगा[4]।

राजा का धर्म है कि वह सदैव अपनी प्रजा का पालन करे और साथ ही उस पर निग्रह भी रखे; माता, पिता तथा ब्राह्मण को छोड़कर यथापराध दण्ड की भी

तथा : इहि विधि रक्षै राजा देस। अपने मैंड़ै है जु नरेस॥
बैरी करि मानै वह देस। मानै ताकहुं शत्रु नरेस॥
ताके पैले कुधा जु भूप। मानै ताहि मित्र कौ रूप॥
ताके परै जु भूपति आहि। उदासीन कै मानै ताहि॥
—वी० दे० च०, ब० १७३।

१. नरदेवन पाप परै परजा को। निशिवासर होय न रक्षक ताको।
गुण दोषन को जब होय न दर्शी। तब ही नृप होय निरैपदपर्शी॥
—रा० चं०, प्र० ३४, छं० ८।

२. धर्म करत अति अर्थ बढ़ावत। संतति हित रति कोविद गावत।
संतति उपजत ही निसिवासर। साधन तन मन मुक्ति महीधर॥
—रा० चं०, प्र० १८, छं० ८।

३. राजा सनमुख तनु तजै करै स्वर्ग में भोग।
दुनियां में यश विस्तरै हंसे न जग के लोग॥
—रतनबावनी (केशव-पंचरत्न), छं० ३६।

४. राज चाहिये सांचौ सूर। सत्य सुसकल धर्म कौ मूर।
जौ सूरौ तौ सबै डरांइ। सांचे कौ सब जग पतियांइ।
सांचौ सूरौ दाता होय। जग में सुजस जपै सब कोई।
—वी० दे० च०, पृ० १६४।

व्यवस्था करे[१]। मंत्री और मित्रों के दोषों की ओर ध्यान न दे। उसे मूर्ख को मंत्री, मित्र, सभासद, पुरोहित, वैद्य, ज्योतिषी, लेखक, दूत, प्रतिहार और धर्माधिकारी आदि न बनाना चाहिए। उसे चाहिये कि वह अपनी मंत्रणा गुप्त रखे और मद्य का निषेध करे[२]। उसका यह कर्त्तव्य है कि वह धन तथा धर्म का संग्रह और उसकी रक्षा करे। धन धर्मार्थ ही व्यय करना चाहिए। धन से राज्य की सुवृद्धि होती है और सब काम सफल हो जाते हैं[३]। राजा को चाहिए कि वह अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि का ध्यान रखते हुए राज्य में वाटिका, जलाशय आदि का निर्माण तथा फल, फूल, औषधि एवं प्रजा के लिए अस्त्र-शस्त्र, अन्न-वस्त्र आदि का समुचित प्रबन्ध करे। राजा को यह भी चाहिए कि वह यथायोग्य स्थानों पर अधिकारियों की नियुक्ति करे। अधिकारी शूर, पवित्रात्मा और राजभक्त हों[४]। समरभूमि से पीठ दिखाने वाले और हथियार डाल देने वाले को वह न मारे[५]। दूसरे राज्यों की

---

१. सन्तति करै प्रजा प्रतिपाल। यहै धर्म नृप को सब काल।
जोई जन अनधर्महि करै। तब ही नृपति दण्ड संचरै।
सब को राजा निग्रह करै। मातु पिता विप्रनि परिहरै॥
यथापराध दण्ड कौ देइ। लै धन बंश विदा करि देइ॥
—वी० दे० च०, पृ० १६४।

२. मंत्री मित्र दोष उर धरै। मंत्री मित्र जु मूरख करै॥
मंत्री मित्र सभासद सुनौ। प्रोहित वेद ज्योतिषी गुनौ॥
लेखक दूत स्वार प्रतिहार। सौंपे सुकृत जाहि भण्डार॥
इतने लोगनि मूरख करै। सो राजा चिरु राज न करै॥
जाको मतौ दुर्यो नहि रहै। खल प्रिय सुरापान संग्रहै॥
—वी० दे० च०, पृ० १६३।

३. उपजावै धन धर्म प्रकार। ताकी रक्षा करै अपार॥
धन बहु भांति बढ़ावै राज। धन बाढ़ै सब ही को काज॥
ताकों खरचै धर्मनिमित्त। प्रतिदिन दीजै विप्रनिमित्त॥
—वी० दे० च०, पृ० १६६।

४. राजलोक रक्षा को काम। सुभ वाटिका जलासय धाम॥
... ...
अस्त्र सस्त्र बहु जन्त्र विधान। अन्नपान रस पट तनत्रान॥
कन्दमूल दल औषध जाल। सहित दान तून बाँधी ताल॥
ठौर ठौर अधिकारी लोग। राखे नरपति जाकै योग।
सूरे सुचि अरु होय अनन्य। प्रभु भक्ति गहौ मन मन्य॥
—वी० दे० च०, पृ० १६७।

५. भजे जात तिनकों नहि हनै। डारि हथियार जे हाहा भनै॥
—वी० दे० च०, पृ० १६८।

विजय से प्राप्त हाथी-घोड़े, धन आदि को ब्राह्मण, भाई, पुत्र तथा मित्रों में राजा को बांट देना चाहिए[1]।

राज्य का समाचार जानने के लिए राजा को चाहिए कि वह चारों दिशाओं में दूतों को भेजे और उनसे रात्रि में अकेले में समाचार पूछे। एक समय में एक ही दूत को बुलाना चाहिए और वह निःशस्त्र तथा स्वयं राजा सशस्त्र हो[2]। अधिकारियों की भी गति-विधि से पूर्णतया परिचित रहने के लिए गुप्तचर होने आवश्यक हैं। राजा को चाहिए कि वह सज्जन अधिकारी को पदवी और दुर्जन अधिकारी को दण्ड दे[3]।

राजा का धर्म है कि वह दुस्साहसी, चोर, बटमार, अन्यायी और ठग आदि से प्रजा की रक्षा करे और प्रजा में पाप की वृद्धि को रोकने के लिए धर्मदण्ड की व्यवस्था करे[4]। प्रत्येक कुमार्गगामी, राजा द्वारा दण्डनीय है। दण्डित करते समय राजा को किसी प्रकार के सम्बन्ध तथा गोत्र का विचार किए बिना प्रिय तथा निकट-सम्बन्धी को भी अपराध करने पर दण्ड देना चाहिए। ब्राह्मण, माता, पिता और गुरु को दण्ड देना अनुचित है। रोगी, दीन, अनाथ तथा अतिथि के अपराध करने पर राजा उन्हें मृत्युदण्ड न दे वरन् उनकी वृत्ति छीन ले और निर्वासित कर दे। मचला, कपटी, दास, भिक्षुक, ऋणी, धरोहर रखने वाला, भाई, शिष्य, चोर

---

१. देस देस राजनि की जीति। हय गय धन लै आवहि कीति ॥
कीरति पठवै सागर पार। धन सन्तोषै विप्र अपार ॥
विप्रन दै ऊवरे जो नित्त। सोदर सुत पावै अरु मित्त ॥
—वी० दे० च०, पृ० १६७।

२. चारि दूत पठवैदस दिसा। आये दूतनि पूछै निसा ॥
... ...
राजा तिनकी बात सब सुनै अकेलो जाय।
आपु हथ्यारी निरहथो एकै दूत बुलाय ॥
—वी० दे० च०, पृ० १६८-१६९।

३. अपने अधिकारिनि कौं राज। चारन तें समुझै सब काज ॥
साधु होय तो पदवी देइ। जानि असाधु दण्ड कौ देइ ॥
—वी० दे० च०, पृ० १७०।

४. साहसीनि तें रक्षा करै। चोर यार बटपारनि हरै ॥
अन्याई ठग निकट निवारि। सब तें राजहि प्रजा विचारि ॥
— वी० दे० च०, पृ० १६६।
तथा : प्रजा पाप तें राजा जाय। राजा जाय तौ प्रजा नसाय ॥
दुहूं बात राजहि घटि परै। तातें धर्म दण्ड कौं धरै ॥
—वी० दे० च०, पृ० १७०।

तथा परस्त्री-गामी आदि के अपराध करने पर उन्हें यदि समझाया-बुझाया जाय और वे लज्जित हो जायें तो उन्हें मृत्युदण्ड न देना चाहिए[1]।

यों तो राजा में जितने अधिक गुण होंगे वह उतना ही सर्वप्रिय एवं उत्तम होगा, किन्तु उसमें कुछ दोषों का न होना परम आवश्यक है। कामी, वाममार्गी, मिथ्यावादी, क्रोधी, कोढ़ी, कुल-द्रोही, दुष्ट, भीरु, कृतघ्नी, मित्र-द्रोही, द्विज-द्रोही पुरुषार्थहीन, अयोग्य, क्लेशप्रिय, क्रूर, कुटिल, कुमन्त्री, कुलहीन, पापी, लोभी, शठ, अन्ध, विक्षिप्त, बधिर (बहरा), मूक (गूंगा), बौना, अविवेकी, हठी, कपटी, निर्मोही, सूम, सर्वभक्षी, देववादी, कटुभाषी, मूर्ख और अपयशी राजा शोभा नहीं पाता[2]।

"विज्ञानगीता" में भी केशव ने 'राजधर्म' द्वारा 'विवेक' को उपदेश दिलाते हुए राजा के मुख्य गुण-धर्मों का संक्षेप में उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है[3]।

(२) सामान्य नीति :

सहसा कोई कार्य न करना चाहिए, अन्यथा पश्चात्ताप होता है और संसार भी दोष देता है।

सहसा कछु न कीजई, कीजै सबै विचारि।
सहसा करे ते घट परें अरु आवै जग गारि ॥

(वी० दे० च०, पृ० ३७)

विधि के विधान अमिट हैं। रंक से राजा और राजा से रंक होते देर नहीं लगती।

लिख्यो कर्म को मेट न जाय। कहाँ रंक कहं राजा राय ॥

(वी० दे० च,० पृ० १२)

---

१. मचला दगाबाज बहु भाँति, चेरे चेरी सेवक जाति ॥
भिक्षुक रिनियाँ थाती दार। अपराधी अधिकारी ज्वार ॥
जे सुख सोदर सिष्य अपार। प्रजा चोर अरु रत परदार ॥
ये सिख देत मरैं जो लाज। हत्या तिन की नाहि न राज ॥

—वी० दे० च०, पृ० १७३।

२. वी० दे० चं०, पृ० १६३-१६४ तथा रा० चं०, प्र० १८, छं० १०।

३. दान दया मति शूरता, सत्य प्रजा प्रतिपाल।
दण्डनीति ए धर्म हैं, राजनि के सब काल ॥
दान दीयत विज्ञ को अति अज्ञ कौ वश मीत।
दीन को द्विजवर्ण को बहु भूख भूषित भीत ॥
दीन देखि दया करैं अति अज्ञ को भुवपाल।
गाइ को त्रिय जाति को द्विज जाति को सब काल ॥

— — —

संतत भोगनि नैरस जाके। राजन सेवक पाप प्रजा के।
ताते महीपति दंड संचारैं। दंड बिना नरधर्मं न धारे ॥

—वि० गी०, प्र० ६, छं० २३-२८।

......................यह साहिबी ईस के हाथ।
रंकहि राजा होत न बार। राजा रंक मयेति अपार॥

(वही, पृ० ५०)

जब भगवान् की क्रूर दृष्टि हो जाती है तो फूल भी त्रिशूल के सदृश हो जाते हैं।

जब भगवन्त होय प्रतिकूल। फूल फूल तें होत त्रिसूल।

(वी० दे० च०, पृ० ७१)

जो मद्यपी, नारी के वशीभूत, सन्निपात से ग्रसित, बकवादी और महापापी हो उसकी बात न मानना न्यायसम्मत है।

मद्यपान रत तियजित होई। सन्निपात युत बातुल जोई।
देखि देखि जिन को सब भागें। तासु बैन हनि पाप न लगें॥

(रा० चं०, प्र० १०, छं० ३६)

देवता, मनुष्य और राजा के निवासस्थलों तथा सभी पवित्र स्थानों में बिना बुलाये अपवित्र प्राणियों को न जाना चाहिए।

देव अदेव नृदेव घर, पावन थल समुदाय।
बिनु बोले आनन्दमति, कुत्सित जीव न जाय॥

(रा० चं०, प्र० ३४, छं० ५)

गाय, ब्राह्मण, राजा तथा स्त्री को विपत्ति में देखकर जो बचाने नहीं दौड़ता और जो चोर को दण्ड नहीं देता, वह घोर नरक भोगता है।

गाय द्विज राज तिय काज न पुकार लागे।
भोगवें नरक घोर चोर को अभय दानि॥

(रा० चं०, प्र० १३, छं० ३६)

सज्जन, गाय, द्विज तथा भीरु सदैव रक्षणीय हैं और संकट के समय में भी स्वामी का साथ अत्याज्य है।

संत गाय द्विज भीत कौं, संतत रक्षा कर्म।
स्वामी तजै न सांकरें, यहै हमारो धर्म॥

(वी० दे० च०, पृ० ८६)

कामी नृप, कुटिल युवराज, धनलोलुप पुरोहित, कृतघ्न मन्त्री और हित-विरोधी मित्र से दूर रहना चाहिए।

राजा अरु युवराज जग, प्रोहित मंत्री मित्र।
कामी कुटिल न सेइये, कृपण कृतघ्न अमित्र।

(रा० चं०, प्र० १८ छं०, ६)

शठ मंत्री और हठी ब्राह्मण अनिष्टकारक होते हैं।

मंत्री सठ द्विजरावा हठी। इतनी बात देखियं नठी॥

(वी० दे० च०, पृ० ७६)

माता के लिए पिता को, पिता के लिए सहोदर को, सहोदर के लिए पुत्र को, पुत्र के लिए मित्र को, मित्र के लिए बन्धु (जातिभाई) को, बन्धु के लिए

स्वजन को, स्वजन के लिए सज्जन को, सज्जन के लिए सुख को, सुख के लिए स्त्री को, स्त्री के लिए घर को, घर सहित 'पति' (प्रतिष्ठा) के लिए सबको तथा प्राणों के लिए 'पति' को त्याग देना न्यायसंगत है।

मातु हेतु पितु तजिय, पिता के हेतु सहोदर।
सुतहि सहोदर हेतु, सखा सुत हेतु तजहु वर।
सखा हेत निज बन्धु, बन्धु हित तजहु सुजन जन॥
सुजन हेत तजि सजन, सजन हित तजहु सुखन मन।
कहि केशव सुख लगि घरनि तजि, घरनिन हित घर छाँड़िये।
सुइ छाँड़िय सब घर हेत पति प्राण हेत पति छाँड़ियं।

(रतनबावनी, छं० १२)

द्विज जो कुछ माँगे, दे देना चाहिए और उसके साथ बैर करना नीति विरुद्ध है।

द्विज माँगे सो देय विप्र को वचन न खंगिय।
विप्र बैर नह करिय विप्र कहं सर्वसु दिज्जिय। (रतनबावनी, छं० १९)

(ख) धर्म :

पुत्र-धर्म :

केशव के पुत्र-धर्म सम्बन्धी विचार परम्परापोषित हैं। राजा और पिता को आज्ञा सदैव पालनीय है। जो उनकी आज्ञा का उल्लंघन करता है वह उनकी हत्या के पाप का भागी होता है[1]। राजा, गुरु तथा पिता की आज्ञा का पालन न करने वाला चाहे दास हो, चाहे शिष्य अथवा पुत्र हो, अनेकों जन्मों तक नरक भोगता रहता है। पिता, पुत्र के लिए राजा तथा गुरु दोनों ही का कार्य संपादन करता है। वह पुत्र का अन्न द्वारा भरण तथा पोषण करके राजा का कार्य करता है, शिक्षा देकर गुरु का काम करता है और स्वयं उसके लिए अनेक कष्ट सहन कर उसे पाल-पोस कर बड़ा करता है[2]।

नारी-धर्म :

केशव के नारी-धर्म-सम्बन्धी विचार भी परम्परागत ही हैं। स्त्री का धर्म है कि वह अपने पति को ही देवता माने और उसकी सब प्रकार से सेवा करे। यदि पति उसे दुःख भी दे तो वह उसे सुख ही समझे। समस्त संसार को अमित्र समझ-कर केवल अपने पति को ही मित्र माने। अपने पति की अनुगामिनी रहे, दुःख-सुख

१. राजा को अरु बाप को, वचन न मेंटै कोइ।
जो न मानिये भरत तो, मारे को फल होय॥
—रा० चं०, प्र० १०, छं० ३५।

२. अन्न देइ सीख देइ राखि लेइ प्राण जात।
राज बाप मोल लै करै जु पोषि दीह गात॥
दास होय पुत्र होय शिष्य होय कोइ माइ।
सासना न मानई तो कोटि जन्म नर्क जाइ॥
—रा० चं०, प्र० ६, छं० ६।

में समान व्यवहार करे और तन-मन से पति-सेवा में लीन रहकर शुभ गति प्राप्त करे[1]। स्त्री का सर्वोत्तम धर्म पति-सेवा है। जो फल पति-सेवा द्वारा प्राप्त होता है, वह योग, यज्ञ, व्रत, तीर्थ, स्नान, कीर्तन, दान आदि से भी नहीं मिलता। पति-सेवा के समक्ष देव-पूजा आदि सब धर्म-कर्म निष्फल रहते हैं। पति बिना पुत्र, पौत्र, धन आदि सब व्यर्थ हैं[2]। स्त्री को चाहिए कि वह किसी भी दशा में अपने पति का परित्याग न करे, चाहे वह पंगु, बधिर, मूक, वृद्ध, बौना, रोगी, बालक, पांडु, कुरूप, कटुभाषी, जड़ अथवा चोर, जुआरी, व्यभिचारी आदि ही क्यों न हो। उसे चाहिए कि वह पति की मृत्यु के उपरान्त भी उसको न छोड़े और उसी के साथ सती हो जावे[3]।

विधवा-धर्म :

विधवा-धर्म के विषय में भी केशव के विचार परम्परागत ही हैं। केशव

---

१. जिय जानिये पतिदेव। करि सब भांतिन सेव।
पति देइ जो अति दुःख। मन मानि लीजै सुक्ख॥
सब जगत जानि अमित्र। पति जानि केवल मित्र।
नित पति पंथहि चलिये। दुख-सुख को दलु दलिये॥
मन मन सेवहु पति को तब लहिये सुभ गति को।

—रा० च०, प्र० ९, छं० ११-१३।

तथा : मनसा बाचा कर्मणा, पत्नी के पति देव।
अन्य दान तप सुरनि की, पति बिनु निष्फल सेव॥

—वि० गी०, प्र० १६, छं० ४१।

२. जोग जाग व्रत आदि जु कीजै। न्हान, गानगुन, दान जु दीजै।
धर्म कर्म सब निष्फल देवा, होहि एक फल कै पति सेवा॥
तात मातु जन सोदर जानो। देव जेठ सब संगिहु मानो।
पुत्र पुत्रसुत श्री छवि छाई। हैं विहीन भरता दुखदाई॥

—रा० चं०, प्र० ९, छं० १४-१५।

३. नारी तजै न आपनो, सपनेहु भरतार।
पंगु गुंग बौरा बधिर अंध अनाथ अपार॥
अंध अनाथ अपार वृद्ध बावन अति रोगी।
बालक पंडु कुरूप सदा कुबचन जड़ जोगी॥
कलही कोढ़ी भीरु चोर ज्वारी व्यभिचारी।
अधम अभागी कुटिल कुमति पति तजै न नारी॥
नारि न तजहि मरे भरतारहि। ता संग सहहि धनंजय झारहि।

—रा० चं०, प्र० ९, छं० १६, १७।

तथा : कुबजै कलही काहली, कुटिल कृतघ्न कुरूप।
सपनेहूँ न तजै तरुणि, कोढ़ीहू पति भूप॥

—वि० गी०, प्र० १६, छं० १५।

कहते हैं कि विधवा का यह धर्म है कि वह मृत्युपर्यन्त गाना न सुने, किसी से सम्मान पाने की इच्छा न करे, किसी से परिहास न करे, उष्ण वस्तु का सेवन न करे, शीतल जल का पान न करे, तेल न लगावे, किसी क्रीड़ा में सम्मिलित न हो, खाट पर शयन न करे, शीतल जल से स्नान करे, उष्ण जल को न ढूँढ़े, मीठा भोजन न करे, पैरों में जूता न पहने, मन, वचन तथा कर्म से धर्म-कार्य किया करे, शरीर को कष्ट देने वाले व्रतों का पालन करके इन्द्रियों का दमन करे तथा पुत्र की आज्ञानुवर्त्तिनी रहे[1]।

(४) केशव के समय का जीवन :

केशव के समय के जीवन का अध्ययन करने के लिए आधारस्वरूप कवि के तीन प्रबन्ध हैं—रामचन्द्रिका, बीरसिंहदेव-चरित और विज्ञानगीता। इन्हीं ग्रन्थों में उल्लिखित सामग्री के सहारे यहाँ उनके समय के जीवन का चित्रांकन करने का प्रयास किया गया है।

राजवर्ग का जीवन :

राजवर्ग ऐश्वर्य तथा भोग-विलास में पूर्णतः मग्न था। 'रामचन्द्रिका' और 'वीरसिंहदेव-चरित' में राज्यश्री की निन्दा करते हुए केशव ने तत्कालीन राजवर्ग की इस दशा की ओर संकेत किया है। वे लिखते हैं कि राज्यश्री के संसर्ग के कारण राजा लोग परमार्थ की अपेक्षा सांसारिक विषयों की ओर अधिक प्रवृत्त होते हैं[2]। इसके प्रभाव के कारण राजा धर्म, धैर्य, विनय, सत्य, शील, आचार और वेद-पुराणों के वचनों को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं[3]। राज्यलक्ष्मी से मदोन्मत्त राजाओं की फुर्ती केवल मद्य-पान आदि में ही दिखाई पड़ती है और पर-स्त्री-समागम को ही वे बड़ी चतुराई समझते हैं।

पानविलास उदित आतुरी। परदारा-गमनै चातुरी।
(रा० चं०, छं० २३, प्र० ३५)

---

१. गान बिन मान बिन हास बिन जीवहीं,
तप्त नहि खाय जल सीत नहि पीवहीं।
तेल तजि खेल तजि खाट तजि सोवहीं,
सीत जल न्हाय नहीं उष्ण जल जोवहीं।
खाय मधुरान्न नहि पाय पनहीं धरैं,
काय मन बाच सब धर्म करिबो करैं।
कृच्छ उपवास सब इन्द्रियन जीतहीं,
पुत्र सिख लीन तन जौं लगि अतीतहीं।
—रा० चं०, प्र० ६, छं० १६।

२. जदपि अति उज्जल है दृष्टि। तोऊ लजति राज की सृष्टि।
—बी० दे० चं०, पृ० १६१।

३. धर्म धीरता विनयता, सत्य सील आचार।
राजसिरी न गनै कछू, बेद पुरान विचार॥
—बी० दे० चं०, पृ० १६१।

उनकी शूरता इसी में है कि वे शिकार कर लेते हैं, जिसकी प्रशंसा बन्दीजनों द्वारा बड़े चाव से पढ़ी जाती है। उनका किसी की ओर तनिक-सा देख देना ही उसके लिए बड़ी भारी दया है और किसी से कुछ बातचीत कर लेना ही उसके प्रति बहुत बड़ी ममता है[1]। राज्यश्री से मदांध राजा किसी को दर्शन देना ही बहुत बड़ा दान समझते हैं। किसी से हँसकर बोल देना ही उसका बड़ा भारी सम्मान कर देना है और किसी को अपना कह देना ही उसे अतुल सम्पत्ति प्रदान करना है[2]। राज्यश्री के मद में अंधे हुए ऐसे राजाओं की दृष्टि में हित की बात कहने वाला परम शत्रु होता है और जो चाटुकार होता है वही मंत्री तथा मित्र माना जाता है।[3]

अवरोध :

'वीरसिंहदेव-चरित' में वर्णित 'मदनमहोत्सव' इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन राजा-महाराजाओं का अवरोध अनेक सुन्दरियों से भरा रहता था और वे किस प्रकार समय पर एक होकर बड़ी तन्मयता के साथ उसी एक राजा का अपने-अपने भावानुसार पूजन करती थीं और उसके आमोद-प्रमोद का साधन बनती थीं[4]। अन्तःपुर में रमणियों का जीवन बड़े राग-रंग में कटता था।[5]

---

१. मृगया वहै सूरता बड़ी। बन्दी मुखनि चाय सों पढ़ी।
जो केहु चितवै यह दया, बात करै तो बड़िये मया॥
—रा० चं०, प्र० २३, छं० ३६।

२. दर्शन दीबोई अति दान, हँस बोले तो बड़ा सनमान।
जो केहू सों अपनों कहै, सपने की सी सम्पत्ति लहै॥
—रा० चं०, प्र० २३, छं० ३७।

३. जोई जन हित की कहै, सोई परम अमित्र।
सुख बकताई मानियें, सन्तति मन्त्री मित्र॥
—वी० दे० चं०, पृ० १६२।

४. आसन बैठे नृप सिरमौर। सिर पर लसत आम को मौर।
— — —
नृपकर फूलनि कौ धनु लियौ। फूलि फूलसर संजुत कियौ।
अपने पति पतिनीनि अनूप। कीनौ कामदेव कौ रूप।
— — —
कोऊ कुंकमा छिरके गात। कोऊ सौंधौ उर अवदात।
काहू चन्दन बन्दन धूरि। मृगमद चन्दन की करि चूरि।
मिलै गुलाबरु कुमकुमा बारि। कीनौ छिरकि सूर उनहारि।
जब अनंग पूजा करि लई। चहुँ ओर दुन्दुभि ध्वनि भई॥
—वी० दे० चं०, पृ० १४५-१४६।

५. तहँ रमनी राजति बहु भाँति। पदमिनि चित्रिनि हस्तिनि जाति।
गावति कहूँ बजावति बीन। कहुँ पढ़ावति पढ़त प्रवीन।

शाही हरम :

शाही हरम में राजकुमारियों की विचित्र स्थिति थी। वे बादशाह को तन-दान तो कर देती थीं, परन्तु मन-दान नहीं कर पाती थीं। अतएव उन्हें किसी तुरुक के विनाश पर हर्ष ही होता था। यह बात निम्नांकित छन्दों से स्पष्ट हो जायेगी, जहाँ अकबर बादशाह के हरम में अबुलफ़ज़ल के निधन पर एक ओर राजकुमारियों को तो हँसते हुए दिखलाया गया है और दूसरी ओर तुरकिनियों को छाती पीटकर शोक मनाते हुए—

> ऐसे वचन सुनै नरनाह। नैन नीर के चलै प्रवाह।
> कोलाहल महलनि मैं भयौ। तिनकी प्रतिध्वनि सुनि मन रयौ।
> मुग्धा मध्या प्रौढ़ा नारि। उठि बैठी जहं तहं डर डारि॥
>
> — — —
>
> राजकुमारि हँसें मुंह मोरि। तुरकिनीनि उपजै दुःख कोरि।
> रोवति तन तोरति अति घनी। बिच बिच बाजति ढोलक घनी॥

> केशौराइ औवलिफजलि मार्‌यौ बीरसिंह,
> साहि के महल जहाँ तहं उठि धाई है।
> पीरी पीरी पातरी निपट पट पातरेई,
> कटि तट छीन उर लट लटकाई है।
> भृकुटी सी बिभुकी सी झझके से लोचननि,
> निउझे के से उरजनि उर छबि छाई है।
> खानजादी खानडारि पानडारि सेखजादी,
> साहिजादी पान डारि पीटनै को आई है॥

(वी० दे० च०, पृ० ४२)

प्रजावर्ग का जीवन :

जहाँ तक प्रजावर्ग के जीवन का सम्बन्ध है उसकी एक वास्तविक झाँकी 'विज्ञानगीता' में दिये गए दिल्ली, काशी और कलियुग के वर्णनों में देखने को मिलती है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रजावर्ग का जीवन भी घोर विलासिता तथा नैतिक ह्रास का जीवन था। वर्ण-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो रही थी। शक्ति-पूजा का प्रचार बढ़ रहा था।

> कहूँ चौपर खेलैं बनि बाल। कहूँ सतरंज मतिरंज बिसाल।
> कहूँ चरित्रनि चित्रहि चित्र। कहूँ मनिमाला गुहैं विचित्र।
> कहूँ त्रिय मंजन अंजन करहि। अंगराज बहु अंगनि धरहि।
> कहूँ भूषनगन भूषित अंग। कहूँ पहिरत नव बसन सुरंग।
> येकं बैठी आनंदभरी। येकं पौढ़ी पलकनि परी।
> सारौ सुकनि पढ़ावति एक। परवा तैं सुनि हँसति अनेक।
> जोइ देखियै जोई ओक। सोई मनो मदन को ओक।

बी० दे० च०, पृ० १२१-१२२।

दिल्ली का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं कि वहाँ ऐसे मनुष्य प्रचुर संख्या में मिलते थे जो रात्रि में भोग-विलास में रत रहकर बारवधूओं के मन को चाटुकारिता से मोहित करते थे तथा प्रातः स्नानादि से निवृत्त हो, स्वच्छ वस्त्र पहिन तथा मस्तक पर तिलक लगा कर दूसरों को उपदेश देते फिरते थे कि इस प्रकार का तप करना चाहिए, इस प्रकार का जप करना चाहिए, वेदों का सार यह है अथवा इस प्रकार योग का साधन तथा यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिए[1]। वहाँ ऐसे ही लोगों का बाहुल्य था जो गुरु के उपदेश को कभी भी भली भाँति श्रवण नहीं करते थे, जिन्हें यज्ञ, धर्म, कर्म आदि का तनिक भी ज्ञान न था, जो स्नान, दान, संयम, योग तथा यज्ञ से दूर रहते थे और जो शरीर के सुखोपभोग को ही ईश्वराधना मानते थे। वेदपाठी ब्राह्मण वेदों के भेद अथवा वेदमन्त्रों के अर्थ से अनभिज्ञ थे और वे तोते के सदृश रटे हुए वेद-मन्त्रों का पाठ बड़े ऊँचे तथा कर्कश स्वर में करते थे। लोग मेखला, मृगचर्म तथा विशाल माला धारण कर, सिर पर जटा रखकर तथा सिर और शरीर में भस्म रमा कर ढोंगी साधु बने फिरते थे। स्थल-स्थल पर कुतर्की मठाधीशों के दर्शन होते थे। शूद्र, वक्षःस्थल, भुजा कर्ण, शीश तथा कटि को मुद्रित कर और हाथ में कुश लेकर अपनी उच्चता का दम भरते थे। इस प्रकार सर्वत्र पाखण्ड का ही साम्राज्य था[2]।

काशीपुरी का वर्णन करते हुए भी केशव ने लिखा है कि वहाँ भी चारों ओर पाखण्ड का ही बोलबाला था। वहाँ के लोग बड़े उत्साह के साथ मार्ग में

---

१. काम कुतूहल में बिलसैं निशवारबधू मन मान हरे।
प्रात अन्हाइ बनाइ दै टीकनि उज्ज्वल अम्बर अंग धरे।
ऐसे तपो तप ऐसे जपोजप ऐसे पढ़ो श्रुति सार सरे।
ऐसो योग जयो ऐसे यज्ञ भयो बहुलोगनि को उपदेश करे॥

—वि० गी०, प्र० ३, छं० ३।

२. कबहूँ न सुन्यों कहूँ गुरु को कह्यो उपदेशु।
अज्ञ अज्ञ न भेद जानत धर्म कर्म न लेशु॥
स्नान दान सयान संयम योग याग संयोग।
ईशता तनु गूढ़ जानत मूढ़ माथुर लोग॥
वेद भेद कछू न जानत घोष करत कराल।
अर्थ को न समर्थ पाठ पढ़ैं मनो शुकवाल॥
मेखला मृगचर्म संयुत अछत भाल विशाल।
शीश दै बहु बार धारण भस्म अंगन डाल॥
ठौर ठौर विराजहीं मठपाल युक्त कुतर्क।
घोष एक कहा रहो जा संग ते बहु नर्क॥
शूद्रनि सों मुद्रित करैं, उर उदार भुजदण्ड।
शीश कर्ण कटि पानि कुश, दंभ परयो व प्रचण्ड॥

—वि० गी०, प्र० ३, छं० ७-९।

आते-जाते पथिकों को लूट लेते थे, नगरों को आग लगा डालते थे, मन्त्रोच्चारण करते हुए प्रतिदिन माघ मास का स्नान कर अपनी पवित्रता का दावा करते थे और वारवधुओं के साथ बैठ कर मदिरा-सेवन, चोरी और व्यभिचार करते हुए भी ब्रह्म-चिन्तन की डींग हाँकते थे।

कलियुग-वर्णन के प्रसंग में केशव लिखते हैं कि उस समय वर्ण-व्यवस्था भी छिन्न-भिन्न हो रही थी। ब्राह्मण शूद्रों के समान कराल धर्म-कर्म में लीन थे। स्त्रियाँ अपने पतियों को छोड़ जारों में आसक्त थीं। मनुष्य सदम्भ स्नान, दान तथा पूजन आदि करते थे। विष्णु की भक्ति से विमुख हो लोग शक्ति की पूजा की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। ब्राह्मण वेदों को बेचते थे और म्लेच्छ नृपों की सेवा में लगे रहते थे। क्षत्रियों ने प्रजा की रक्षा का ध्यान छोड़ दिया था और वे निरपराध ब्राह्मणों की वृत्ति का अपहरण कर लेते थे। वैश्य क्रय-विक्रय आदि का परित्याग कर क्षत्रियों के तुल्य अस्त्र-शस्त्र धारण करने लगे थे। शूद्र पत्थर की पूजा करते, धन चुराते और मन में राज्य का तनिक भी भय न मानते थे[२]।

मठाधीशों की स्थिति :

केशव ने अपनी 'रामचन्द्रिका' में मठाधीशों की शोचनीय अवस्था की ओर भी संकेत किया है। वे लिखते हैं कि जिस दिन मन्दिर में कोई धनी आ जाता तो उस दिन मठेश चतुर्भुज भगवान् की मूर्ति का भी अच्छी तरह शृंगार करता था। परन्तु जिस दिन कोई धनी न आता था उस दिन भगवान् भी पलंग पर पड़े रह जाते थे। भेंट ले-लेकर उसने बहुत-सा धन संग्रह कर लिया था और नित्य नवीन भोगों में उसे लगाया करता था।

(५) केशव का नारी-दर्शन :

केशव ने नारी को दो रूपों में देखा है। साधक के दृष्टिकोण से केशव

---

१. मारत राह उछाहनी सों पुर दाहत माह अन्हात उचारैं।
वारविलासिनि सों मिलि पीवत मद्य अनोदिक के प्रति पारैं॥
चोरी करें विभिचार करें पुनि केशव वस्तुविचार विचारैं।
जो निशि वासर काशीपुरी महँ मेरेई लोग अनेक बिहारैं॥

—वि० गी० प्र०, ५, छं० २०।

२. शूद्र ज्यों सब रहत हैं, द्विज धर्म-कर्म कराल।
नारि जारनि लीन भर्तनि छाँड़ि के इहि काल।
दंभ सों नर करत पूजन न्हान दान विधान।
विष्णु छाँड़त शक्ति भूषण पूजनीय प्रमान।
ब्राह्मण बेचत वेदनि को सुमलेच्छ महीप की सेव करैं जू।
छत्रिय छाँड़त हैं परजा अपराध बिना द्विज वृत्ति हरैं जू।
छाँड़ि दियो क्रय-विक्रय वैश्यनि क्षत्रिन ज्यों हथियार धरैं जू।
पूजत शूद्र शिला धनु चोरति चित्त में राजनि को न डरैं जू।

—वि० गी०, प्र० ७, छं० १२, १३

३. एक कनौज हुतो मठधारी। देव चतुर्भुज को अधिकारी।

नारी को ज्ञान प्राप्ति के मार्ग में प्रमुख बाधा समझते हैं। वे लिखते हैं कि जहाँ स्त्री है, वहीं सांसारिक विषयों का भोग है। स्त्री के बिना भोगों की सत्ता नहीं है। स्त्री के परित्याग से संसार छूट जाता है और संसार के छूटने पर ही परब्रह्म-संयोग का सुख प्राप्त हो सकता है[1]।

व्यावहारिक रूप में केशव ने नारी को नर के साथ ही देखा है। तभी तो उनका कहना है—

पतिनि पती बिनु दीन अति, पति पतिनी बिनु मन्द।
चन्द्र बिना ज्यों जामिनी, ज्यों बिनु जामिनि चन्द[2] ॥

केशव की दृष्टि में जो व्यक्ति बिना पत्नी के घर में रहता है वह बड़ा अधर्म करता है और जो पत्नी को त्याग कर संन्यास ग्रहण कर वन में चला जाता है उसका बनवास निष्फल होता है[3]।

साथ ही केशव नारी को योग-साधना का भी अधिकारी मानते हैं। रानी चूड़ाला के विषय में वे लिखते हैं कि—

मुनि कन्यनि सँग सीखियो, तिहिं सब प्रानायाम।
ताते पाई सिद्धि सब, पूरन काम अकाम ॥
नृपति शिखीध्वज की भई, रानी रूप समान।
तिनि सों मिलि तिनि भोगए, भूतल भोग विधान[4] ॥

इसी रानी के प्रसाद से राजा शिखिध्वज को परमपद प्राप्त भी हुआ था।

(६) गुरु-महिमा :

'राजा शिखीध्वज' की कथा के प्रसंग में केशव ने देवपुत्र-रूपी रानी चूड़ाला के मुख से गुरु की महिमा का भी बखान कराया है[5]।

मन्दिर कोउ बड़ो जब आवै। अंग भली रचनानि बनावै।
जा दिन केसव कोउ न आवै। ता दिन पालक तें न उठावै।
भेंटन लै बहुधा धन कीन्हों। नित्य करै बहु भोग नवीनों ॥
—रा० चं०, प्र० ३४, छं० १९-२०।

१. जहाँ भामिनी, भोग तहँ, बिन भामिनि कहँ भोग।
भामिनि छूटैं जग छूटैं, जग छूटैं सुख योग ॥
—रा० चं०, प्र० २४, छं० १४।

२. रा० चं०, प्र० १३, ० १० तथा वि० गी०, प्र० १६, छं० २६ (पाठान्तर से)।

३. घरनी बिन घर जो रहे, छाँड़े धर्म अधर्म।
बनिता तजि जो जाइ बन, बन के निःफल कर्म ॥
—वि० गी०, प्र० १४, छं० ११।

४. वि० गी०, प्र० १६, छं० ८, ९।

५. ज्ञान गुरु से सीखिये, जब उपजै बिज्ञानु।
तब अधिकारी होहुगे, भूपति जिय में जानु ॥
—वि० गी०, प्र० १६, छं० ५८।

(७) ब्राह्मण-भक्ति :

केशव की दृष्टि में ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप और युगरूप है। अतः सदैव पूजनीय हैं।

(आ) केशव का इतिहास-ज्ञान :

केशव की उपेक्षा :

केशव के इतिहास-ज्ञान के अध्ययन के लिए आधारस्वरूप कवि के तीन ग्रन्थ हैं, रतनबावनी, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका और वीरसिंहदेव-चरित। 'रतनबावनी' में ओड़छाधीश मधुकरशाह के पुत्र रतनसेन के मुगल-सेना से युद्ध का वर्णन है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में प्रमुख रूप से तो जहाँगीर के यश का ही वर्णन है, परन्तु प्रसंगवश इसमें सम्राट् के सुलतानों अथवा सामन्तों तथा दरबार की भी झाँकी मिल जाती है। 'वीरसिंहदेव-चरित' ऐतिहासिक दृष्टि से इन दोनों ग्रन्थों से अधिक महत्वपूर्ण है। इस ग्रन्थ का प्रथमार्द्ध तो छन्दोबद्ध इतिहास ही है, जिसमें कवि ने ओड़छानरेश मधुरकरशाह के पुत्र वीरसिंहदेव के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली अनेक घटनाओं का सूक्ष्मातिसूक्ष्म एवं क्रमबद्ध वर्णन किया है। इस प्रकार इन ग्रंथों का सम्बन्ध थोड़ा-बहुत तो इतिहास से है ही। फिर भी हमारे इतिहासकारों ने अपने इतिहास-ग्रन्थों में इन ग्रन्थों की उपेक्षा ही की है। डा० बेनीप्रसाद ने इन्हें देखा तो है परन्तु उन्होंने इतिहास में उनका स्थान नगण्य ही ठहराया है। हमारा यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जो कुछ भी हमारे कवियों ने लिखा है वह इतिहास ही है पर हमारा इतना कहना अवश्य है कि किसी भी सच्चे एवं सम्पन्न इतिहास में उनको छोड़ा नहीं जा सकता और केशव की तो किसी भी दशा में अवहेलना नहीं की जा सकती। वास्तव में बात यह है कि जहाँ जहाँगीर ने भी अपनी 'तुजुक' में ठीक-ठीक विवरण प्रस्तुत नहीं किया है वहाँ उसका स्पष्टतया उल्लेख करने का श्रेय केशव को ही है। उदाहरणार्थ, जहाँगीर के प्रथम वर्ष के अनुग्रह को लीजिए। जहाँगीर अपनी 'तुजुक' में यह तो बता देता है कि उसका वीरसिंह पर इतना अनुग्रह क्यों है, किन्तु उसने कहीं इस बात को नहीं लिखा कि उसका वीरसिंहदेव पर इतना विश्वास किस प्रकार हो गया कि उसने अपने पिता के सबसे प्रिय पात्र अबुलफ़ज़ल का वध करने के लिए उसे कहला भेजा और उसने तुरन्त मार भी डाला। केशव ने इस भेद को स्पष्ट किया है, जैसा कि आगे के विवरण से स्पष्ट हो जायेगा। एक और उदाहरण लीजिए। जहाँगीर ने यह भी कहीं स्पष्टतया नहीं बताया है कि शरीफ खाँ

---

१. गायत्री संयुक्त हैं, सबै विप्र हरिभक्त।
वेदपुराननि में कहे, चारों विप्र अभक्त॥
तिन्हें छाँड़ि संपूजिये, बामन ब्रह्म स्वरूप।
कबहूँ भेद न मानिये, विप्र होत युगरूप॥
—वि० गी०, प्र० १६, छं०, २६, ३०।

पर उसकी इतनी कृपा क्यों है ? शाहज़ादा सलीम ने उसे 'ख़ाँ' की उपाधि प्रदान की और जब वह अपने पिता की सेवा में आगरे जाने लगा तो उसे 'तूमान तोग' और ढाई हज़ार का मनसब एवं विहार प्रान्त के राज्य का पूर्ण अधिकार दिया। सलीम को बादशाह हुए केवल पन्द्रह दिन ही बीते थे कि रजब की चार तारीख को शरीफ खाँ उसकी सेवा में उपस्थित हुआ। बादशाह जहाँगीर उसे भाई, पुत्र, मित्र एवं साथी सभी कुछ मानता था, अतः उसके आगमन पर उसे अत्यन्त ही हर्ष हुआ और उसे अपना प्रधान मंत्री बना दिया। देखते-देखते उसे पाँच हज़ार का मनसबदार तथा अमीरुल-उमरा भी बना दिया। जहाँगीर उसे कुछ और भी बनाना चाहता था कि स्वयं उसने कहकर रोक दिया कि जब तक वह कोई काम करके नहीं दिखाता तब तक कुछ और नहीं चाहता—तुज़ुक (प्र० भा०) पृ० १४। यह माना कि बादशाह का उससे बहुत पुराना तथा घनिष्ठ सम्बन्ध था, किन्तु तो भी उसने ऐसा क्या काम करके दिखाया था जो उस पर बादशाह इतना अधिक दयालु हो गया कि जिसका कोई अन्त नहीं। इस विषय पर न तो सरकारी इतिहास ही कोई प्रकाश डालते हैं और न इतिहास के लेखक ही, परन्तु हमारे कवि ने इस रहस्य को खोला है। वह शेख अबुलफ़ज़ल के वध में मूल कारण जो था। इसी के द्वारा सलीमशाह और वीरसिंह का मन परस्पर मिला था, जिसका परिणाम यह हुआ कि एक को दूसरे ने अपना साधन बना लिया।

अस्तु, केशव द्वारा वर्णित इतिहास संक्षेप में नीचे दिया जाता है।

वीरसिंहदेव-चरित में वर्णित इतिहास :

वीरसिंह का पराक्रम :

मधुकरशाह ने वीरसिंहदेव को वृत्ति-स्वरूप 'बड़ौन' की जागीर दी थी (वी० दे० च०, पृ० १८, छं०६)। किन्तु वह उद्दण्ड तथा महत्वाकांक्षी था, अतएव केवल इस छोटी सी जागीर से सन्तुष्ट न हुआ और थोड़े समय में ही 'पंवावा', 'तोंवर' और 'केलारस' को अपने अधीन कर लिया। 'नरवर' तक वीरसिंहदेव का आतंक छा गया। कालान्तर में उसने मैना तथा जाटों का संहार किया और 'ब्रेरछा' तथा 'करहरा' दुर्गों को भी अधिकृत कर लिया। इसके बाद उसने 'बाघजंग' जांगड़ा को मारकर 'हृथनौरा' को मिट्टी में मिलाया 'भांडेर' का सूबेदार हसनखाँ भी वीरसिंहदेव से डरकर भाग उठा और यह स्थान भी उसके हाथ में आ गया। कुछ समय के अनन्तर 'ऐरछ' पर भी अधिकार हो गया। 'गोपाचल का राजा तक वीरसिंहदेव के डर से थर-थर काँपता था। इस प्रकार देखते-देखते वीरसिंहदेव ने सम्राट् अकबर के बहुत से स्थानों को अपने अधिकार में कर लिया।

(वी० दे० च०, पृ० १६)

मुग़ल-सेना का आक्रमण :

अकबर ने जब यह समाचार सुना तो आग-बबूला हो उठा और वीरसिंहदेव को कुचलने के लिए राजा आसकरण को भेजा और राजा रामशाह को आसकरण

की सहायता करने की आज्ञा दी। राजा आसकरण के चाँदपुर पहुँचने पर राजा रामशाह, जगम्मनि, जाट, गूजर और हसन खाँ पठान तथा राजाराम पँवार आदि मुग़ल-सेना से आ मिले। दूसरी ओर वीरसिंह, इन्द्रजीत और रावप्रताप तीनों भाइयों की सेना थी। इन लोगों ने मुग़ल-सेना से छापा-मार लड़ाई लड़नी प्रारम्भ कर दी। इस प्रकार जब कई दिन बीत गए परन्तु वीरसिंह पर काबू न चल सका तो जगम्मनि ने राजा आसकरण से कहा कि वीरसिंह के हाथ न आने का कारण रामशाह ही हैं, जो अपने भाइयों से मिले हुए हैं। रामशाह से मिलने पर उन्होंने आश्वासन दिया और दूसरे दिन मुग़ल-सेना ने आक्रमण किया। दोनों सेनाओं में घोर संग्राम हुआ जिसमें मायाराम जूझ गए और बहुत से योद्धा मोरचा छोड़कर भाग गए। इसी बीच रामशाह ने आसकरण से कोई गाँव (?) देने के लिए कहा और प्रतिज्ञा की कि गाँव के मिलने पर वे प्राणों की बाजी लगाकर युद्ध करेंगे, परन्तु आसकरण ने यह कहकर कि यह गांव पंवावा राज्य के अन्तर्गत है, अपनी अक्षमता प्रकट की। परिणाम यह हुआ कि रामशाह ने आसकरण का साथ छोड़ दिया। रामशाह के साथ त्याग देने पर जगम्मनि भी साथ छोड़कर चला गया (वी० दे० च०, पृ० २०-२२)। इस प्रकार मुगल सेना को नीचा देखना पड़ा।

रामशाह तथा संग्रामशाह का वीरसिंहदेव के विरुद्ध षड्यन्त्र :

कालान्तर में बैरम खाँ का पुत्र अब्दुर्रहीम खानखाना दक्षिण की ओर जाते हुए बादशाह अकबर से मिलने के लिए आगरे पहुँचा। बादशाह ने खानखाना को जगन्नाथ, दुर्गाराव और अन्य उमरावों के साथ जाकर वीरसिंहदेव के विरुद्ध रामशाह की सहायता करने की आज्ञा दी। इधर वीरसिंह ने गोविन्ददास को राजा रामशाह के पास समझौते के लिए भेजा था। रामशाह ने उसे दान, मान, भय, भेद आदि के द्वारा अपनी मुट्ठी में कर लिया। इतने में दौलत खाँ 'सँमरी' भी वहाँ पहुँच गया और खानखाना भी 'पंवावा' तक आ गया। तब रामशाह ने गोविन्ददास के द्वारा वीरसिंह से कहला भेजा कि मैंने दौलत खाँ को बहुत समझाया-बुझाया, पर वह नहीं मानता। उन्होंने वीरसिंह को युद्ध न कर भाग कर अपने प्राण बचाने की सम्मति दी। वीरसिंह को यह सम्मति अच्छी न लगी और युद्ध के लिए कटिबद्ध हो गया। इधर दौलत खाँ की ओर पठानों और खानों की विशाल सेना थी। वीरसिंह ने इस युद्ध में दौलत खाँ को खूब खिझाया। आगे-पीछे सब ओर मार-काट मचाता हुआ कभी तो वह इस जंगल में लड़ता और कभी भाग कर दूसरे जंगल में चला जाता था। दौलत खाँ जब थक कर हार गया तो उसने 'पंवावा' जाकर खानखाना से युद्ध का सब वृत्तान्त कह सुनाया। खानखाना ने अब दूसरी चाल चली। उसने वीरसिंह को पत्र में लिखकर भेजा कि यदि वह मुझे इस बार मिल ले तो मैं उसकी प्रतिष्ठा को बहुत बढ़ा दूँ। वीरसिंह ने बात मान ली और खानखाना से मिलने गया। खानखाना ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसको साथ ले दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। 'बरार' के समीप पहुँचने पर वीरसिंह ने उससे 'बड़ौन' लौटा देने की बिनती की। इस पर खानखाना ने उसे दक्षिण में, जो उस

समय उसके अधिकार में था, मुँहमाँगा तथा अपने बराबर भी बना देने का वचन दिया परन्तु वीरसिंह को यह स्वीकृत न था। इसी बीच रामशाह का पुत्र संग्रामशाह वीरसिंह से मिला और दोनों ने गुप्त रूप से निकल भागने का विचार बनाया और एक दिन वीरसिंह आखेट के बहाने दो-चार पड़ाव के उपरान्त अपने देश में जा पहुँचा। वीरसिंह के आते ही शाही थानों के आदमी भाग गए। इस समाचार को सुनकर खानखाना बड़ा दुखित हुआ। उसी समय उपयुक्त अवसर समझ कर संग्राम शाह, खानखाना से मिला और उससे निवेदन किया कि यदि आप 'बड़ौन' की जागीर मुझे लिख दें तो या तो हम वीरसिंह को भगा देंगे या अपने प्राणों की आहुति दे देंगे। खानखाना ने तुरन्त फ़रमान लिख कर उसे दे दिया और दौलत खाँ को उसके साथ कर दिया। फलतः दौलत खाँ गोपाचल आया। इधर वीरसिंह भी दलबल के साथ पंवावा चला गया और राव भूपाल, रावप्रताप एवं इन्द्रजीत आदि भाइयों के सहित युद्ध का निश्चय किया। इस अवसर पर युद्ध करना उचित न जानकर दौलत खाँ दक्षिण की ओर लौट गया। संग्रामशाह भी इससे दुखित होकर और अपना सा मुँह लेकर वीरसिंह के पास ओड़छा ही लौट आया। कुल की मर्यादा का विचार कर युद्ध का परिणाम सोचते हुए वीरसिंह ने उसे जाने दिया। (वी० दे० च०, पृ० २२-२५)।

अकबर की चाल :

कुछ समय के उपरान्त वीरसिंह और रामशाह दोनों भाइयों में ऊपर से तो मित्रता हो गई परन्तु वह कपटपूर्ण मित्रता थी, क्योंकि रामशाह के हृदय में छल था। इसी बीच मुराद की मृत्यु से व्याकुल हो सम्राट् अकबर ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया और धौलपुर में पहला पड़ाव डाला। वहाँ से चलकर फिर गोपाचल में आकर पड़ाव डाला। इसी समय अकबर के 'अहदी' (दूत) वीरसिंह के पास उसे बुलाने के लिए पहुँचे। इधर रामशाह सम्राट् से मिलने के लिये गोपाचल की ओर चल पड़े। 'नरवर' में दोनों की भेंट हुई। दूतों ने वापस आकर सम्राट् से निवेदन किया कि वीरसिंह अधीनता स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। यह सुनकर रामशाह ने सम्राट् से निवेदन किया कि यदि आप मुझे 'बड़ौन' प्रदान कर दें तो या तो मैं वीरसिंह और इन्द्रजीत को आपकी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दूँगा या उन्हें मार डालूँगा, तब आप निश्चिन्त होकर दक्षिण की ओर प्रस्थान करें। इस कार्य के लिए सम्राट् ने रामशाह को 'पंचहज़ारी' मनसब देने का वचन दिया और राजसिंह को बुलाकर उसे रामशाह के साथ जाने की आज्ञा दी और स्वयं दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। राजसिंह और रामशाह ने जाकर 'बड़ौन' घेर ली। उधर रावप्रताप और इन्द्रजीत के योद्धा वीरसिंह की ओर से युद्ध करने के लिए 'बड़ौन' में इकट्ठे हुए। इसी बीच रामशाह और राजसिंह ने परस्पर परामर्श कर इस समय युद्ध न कर सन्धि करना ही उचित समझा और दूतों के द्वारा वीरसिंह को कहला भेजा कि वह दो दिन के लिए 'बड़ौन' छोड़ दे तो वे लोग लौट जायेंगे। वीरसिंह को इन बातों पर विश्वास न हुआ, क्योंकि रामशाह एक बार छल कर चुका था।

रामशाह ने फिर कहला भेजा कि राजसिंह की प्रतिज्ञा पूर्ण हो जाने के पश्चात् वह फिर 'बड़ौन' आकर सुखपूर्वक रह सकता है। निदान दोनों राजाओं राजसिंह और रामशाह के शपथ लेने पर ईश्वर पर विश्वास करते हुए वीरसिंह ने 'बड़ौन' छोड़ दी। रामशाह ने वीरसिंह से की हुई प्रतिज्ञा का ध्यान न कर राजसिंह से कहा कि 'बड़ौन' उसे बादशाह ने प्रदान की है। राजसिंह ने रामशाह से कहा कि 'बड़ौन' पंवाया के अन्तर्गत है, अतः इस प्रकार उसे नहीं दिया जा सकता और उससे बादशाह का आज्ञापत्र दिखलाने को कहा। परन्तु फिर रामशाह यह सोचकर कि बादशाह दक्षिण में उलझा है और भाई को मारना मूर्खता होगी, वहाँ से चल पड़ा। राजसिंह भी अपने डेरे चला गया, वीरसिंह ने 'बड़ौन' खाली देख अपने कुछ योद्धाओं के साथ जाकर उसे अपने अधिकार में कर लिया। इसी बीच एक मैना ने जाकर राजसिंह को सूचना दी कि वीरसिंह अपने कुछ सुभटों के साथ 'बड़ौन' में भूमि पर सोया पड़ा है। सूचना मिलते ही राजसिंह ने दूसरे दिन प्रातःकाल ही बड़ौन को घेर लिया। उधर वीरसिंह के बख्शराय, सुन्दर प्रधान, चम्पतराय, मुकुट, यादव गौर, कृपा राम आदि योद्धा भी युद्ध के लिए रणक्षेत्र में एकत्रित हुए। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध हुआ और अंत में मुग़ल-सेना की पराजय हुई। राजसिंह ने गोपाचल भागकर अपने प्राण बचाए। इस प्रकार परमेश्वर की कृपा से वीरसिंहदेव शत्रुओं के चंगुल से साफ़ बच निकला (वी० दे० च०, पृ० २५-३०)।

वीरसिंह का परामर्श :

वीरसिंह की विजय के विषय में सुनकर बादशाह अकबर बड़ा दुःखित हुआ। इसी बीच अकबर ने मेवाड़ पर आक्रमण किया था परन्तु वह वहाँ असफल होकर वापस आगरे लौट आया था। उसके आगरे लौट आने के समाचार से वीरसिंह बड़ा चिन्तित हुआ और उसने अपने सभासदों को बुलाकर परामर्श किया कि ऐसी विषम स्थिति में जब कि घर में ही फूट है और बादशाह भी उनका शत्रु है, किस प्रकार प्राण तथा प्रतिष्ठा की रक्षा हो सकती है। सब ने अपना-अपना मत दिया। अंत में यादव गौर की मंत्रणा से सलीमशाह के आश्रय में जाने का निश्चय किया गया। अतः दूसरे ही दिन प्रातःकाल वीरसिंह ने प्रयाग की ओर प्रस्थान किया (वी० दे० च०, पृ० ३१-३२)।

सैयद मुजफ्फर की शिक्षा :

'अहीछत्र' नामक स्थान में पहुँचकर वीरसिंहदेव ने जब पहला डेरा डाला तो वहाँ उसकी सैयद मुजफ्फर से भेंट हुई। वीरसिंह ने उसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सैयद मुजफ्फर ने उसके निश्चय की प्रशंसा की और उसे अविलम्ब सलीमशाह से मिलने की सलाह दी। उसकी शिक्षा काम कर गई। फलतः वीरसिंह वहाँ से शहजादपुर होता हुआ प्रयाग जा पहुँचा[1]।

१. अहीछत्र किय कुंवर मिलान। मिल्यौ मुजफ्फर सैद सुजान।
तासों मतौ कुंवर सब कह्यौ। सुनि सुनि समुझि रीझि हिय रह्यौ॥

शरीफ खाँ से भेंट :

यहाँ उसकी शरीफ खाँ से भेंट हुई। उसने जाकर जब सलीम शाह से वीरसिंह के आगमन तथा निश्चय का निवेदन किया तो सलीमशाह अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ। उसने वीरजसिंह को बुला भेजा और उसका बड़ा आदर-सत्कार किया (वी० दे० च०, पृ० ३५)।

शपथ-ग्रहण :

कुछ समय के बाद एक दिन सलीमशाह ने, शरीफ खाँ के सम्मुख, वीरसिंह से सदैव उसके आश्रय में रहने की शपथ ग्रहण करने के लिए कहा[1]। इतना सुनना था कि वीरसिंह ने भी मनसा, वाचा एवं कर्मणा सलीम की सेवा करने तथा स्वप्न में भी उसका आश्रय न छोड़ने का वचन दिया[2]। उधर सलीम का उत्तर मिला कि—

तुम हीं मेरे दोई नैन। तुमही बुधि बल भुज सुखदैन।

कह्यौ सुर्तिहि सुनि अरि कुल हाल। चलियै तौ चलियै इहि काल।
जौलौं काहू कछू न कियौ। उमग्यौ जाहि न अरि कौ हियौ॥
जो ह्याँ ह्वै है कछू उपाय। दियौ न जैहै आगे पाँउ।
घर के रहैं बिगरिहै काज। दुहूँ भाँति चलनौ है आज॥
मन क्रम वचन धरौ यह नेम। तुम सेवक प्रभु साहि सलेम।
सैद मुजफ्फर खाँ की बात। सुनि सुख भयौ कुँवर के गात॥
चल्यौ चपल गति बुद्धि निधान, साहिजादपुर कर्‌यौ मिलान।

—वी० दे० च०, पृ० ३२।

१. सुख पायौ बैठे हते एक समय सुलतान।
खाँ शरीफ तिन बोलि लिय बिरसिंहदेव सुजान॥
वीरसिंहदेव सुजान मान दै बात कही तब।
या प्रयाग में कुँवर, सौंह करियैं मोसौं अब॥
तोसौं करौं विचार करहि अपनै मनभायैं।
अनत न कबहूँ जाउ रहहु मो संग सुख पायैं॥

—वी० दे० च०, पृ० ३५।

२. पाइनि पर तसलीम करि बोल्यौ वीरसिंहराज।
हौं गरीब तुम प्रगट ही सदा गरीबनिवाज॥
सदा गरीबनिवाज लाज तुमही लघु लामी।
विनती करियें में कहा महा प्रभु अन्तरजामी॥
लोभ मोह भय भाजि भजें हम मन वच काइनि।
जौ राखहु मरजाद तजौं सपनेहुँ नहिं पाइनि॥

—वी० दे० च०, पृ० ३६।

तुम हीं आगैं पीछैं चित्त। तुम हीं मंत्री तुम हीं मित्त।।
मात पिता तुम पार्यो पान। तुम लगि हौं छांड़ो निज प्रान।
(वी० दे० च०, पृ० ३६)

इस पर वीरसिंह से भी रहा न गया और वह कह उठा—

इक साहिब अरु कीजत प्रीत। सब दिन चलन कहत यह रीति।
तुम्हें छोड़ि मन आवैं आन। तौ सब भूलैं धर्म विधान।।
(वी० दे च०, पृ० ३६)

सलीम के मन की बात :

इस प्रकार शपथ-ग्रहण के कुछ दिनों के अनन्तर सलीम ने वीरसिंह को अपने मन की बात बताई कि समस्त संसार में जितने चर तथा अचर जीव हैं उनमें मेरा केवल एक ही शत्रु है और वह है शेख अबुलफ़ज़ल। वह ही मेरे चित्त में खटकता है। यदि हो सके तो उसको मेरे मार्ग से दूर कर दो। हजरत (अकबर) के हृदय में तो मेरे लिए स्नेह है किन्तु इसी ने मेरे विरुद्ध उनके कान भर दिये हैं। हजरत ने मेरे लिए ही उसे दक्षिण से बुलवाया है और यदि वह आकर उनसे मिल लिया तो मेरी हानि निश्चित है। अतः तुरन्त ही चले जाओ, बीच में ही उसे रोक कर उससे युद्ध करो और उसे बन्दी बना लो या मार डालो। यह काम तुम्हारे ही हाथ का है। (वी० दे० च०, पृ० ३६-३७)।

वीरसिंह का उपदेश :

वीरसिंहको सलीमशाह का प्रस्ताव उचित न लगा और उसने सलीम को बहुत समझाया और कहा कि वह (अबुलफ़ज़ल) आपका सेवक है और आप उसके स्वामी हैं। सेवक की भूल स्वामी को सदैव क्षमा कर देनी चाहिए। अतएव क्रोध छोड़ कर शान्ति धारण करें। सहसा कोई भी कार्य न करना चाहिए, अन्यथा ऐसा करने से पश्चाताप होता है और जग में निन्दा होती है (वी० दे० च०, पृ० ३७)।

सलीम का वीरसिंह को विदा करना :

सलीम ने यह मानते हुए कि यह शिक्षा उचित है, उससे कहा कि जब तक शेख जीवित है, तब तक मुझे मृत-तुल्य ही समझो। अतएव शीघ्र ही विदा हो जाओ (वी० दे० च०, पृ० ३७)। उसी क्षण सलीम ने स्वयं वीरसिंह को तैयार कर यथासम्मान उसे विदा किया। उसने सैयद मुजफ्फर को साथ ले प्रस्थान किया और बीच में बिना कहीं पड़ाव डाले अपने स्थान (बड़ौन) पहुँच गया (वी० दे० च०, पृ० ३८)।

शेख अबुलफ़ज़ल का निश्चय और उसका वीरसिंह के विरुद्ध युद्ध में निधन :

शेख अबुलफ़ज़ल के "नरवर" पहुँचने पर वीरसिंह के गुप्तचरों ने, जो पहले ही से भेजे जा चुके थे, लौट कर उसे शेख के नरवर पहुँचने का समाचार दिया। यह समाचार मिलते ही वीरसिंह ने सिंध नदी को पार किया और शेख की घात

में बैठ गया। इधर शेख ने जाकर "पराइछा" में पड़ाव डाला और वहाँ से दूसरे दिन प्रातःकाल ही प्रस्थान कर दिया। शत्रु (शेख) को जाता हुआ देखकर वीरसिंह उस की ओर टूट पड़ा। शेख भी वीरसिंह का नाम सुनते ही दौड़ पड़ा। इतने में एक पठान[1] ने झट से आगे होकर उसके घोड़े की बाग पकड़ ली[1] और उसे समझाया कि युद्ध के लिए उपयुक्त अवसर नहीं है, जिस प्रकार हो सके उसे रणभूमि से बच कर निकल जाना चाहिए। सम्राट उससे मिलकर बड़ा प्रसन्न होगा। सलीम पर वह फिर आक्रमण कर सकता है। किन्तु शेख अपने साथियों को छोड़कर भागना नहीं चाहता था। पठान ने कहा कि वीरों का कर्त्तव्य ही लड़कर औरों को सुख पहुँचाना है। यदि आप बच गये तो फिर वीरों की रचना हो जायेगी। शेख को पठान की सलाह अच्छी न लगी और उसने गर्व के साथ उत्तर दिया कि मैंने अपने बाहुबल से दक्षिण के नरेश को जीत कर दक्षिण देश अधिकृत किया है, मुराद की मृत्यु के उपरान्त राज्य का भार अपने ऊपर लिया है। बादशाह अकबर को मुझ पर पूर्ण विश्वास है, ऐसी दशा में जान बचा कर अपने देश वापस भाग जाना मेरे लिए उचित नहीं प्रतीत होता। पठान फिर भी न माना और उससे कार्य-अकार्य का विचार करने तथा ससैन्य अकबर के पास पहुँचकर सलीम को शोक-समुद्र में डुबा देने की प्रार्थना की। अबुलफजल ने उससे कहा कि शत्रु चारों ओर से टूट पड़ रहे हैं, अतः यदि भागने में मैं जूझ गया तो लोग मेरे विषय में क्या कहेंगे ? इस प्रकार जब भागने और जूझने, दोनों दशाओं में मरण है तो भागने से क्या लाभ और दूसरे मान-मर्यादा की बेड़ियाँ पैरों में पड़ी हैं, सिर पर शाह की कृपा का भार है और शरीर का प्रत्येक अंग लज्जा से व्याप्त है। यह सुन कर पठान ने घोड़े की बाग छोड़ दी और शेख तुरन्त तलवार निकाल कर दौड़ पड़ा। वह जिधर भी जाता था उधर ही योद्धाओं में भगदड़ मच जाती थी। जिस पर भी वह प्रहार करता था, उसे दो टूक कर देता था। चारों ओर बाणों और गोलियों की बौछार हो रही थी। एक गोली आकर शेख के वक्षःस्थल में लगी और वह घायल होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस प्रकार उसने धर्म तथा मान-मर्यादा की रक्षा के लिए अपने प्राण गँवाए (वी० दे० च०, पृ० ३८-४०)।

वीरसिंह का राज्याभिषेक :

युद्ध के अन्त में वीरसिंह उस स्थान पर पहुँचे जहाँ शेख पड़ा हुआ था। उसका शरीर रक्त-रंजित तथा धूलि-धूसरित था और उससे गन्ध आ रही थी। उसे देखकर वीरसिंह को हर्ष और शोक दोनों हुए। निदान वहाँ से शेख का सिर लेकर वीरसिंह 'बड़ौन' के लिए चल पड़ा। वीरसिंह ने चम्पतराय बड़गूजर द्वारा शेख का सिर सलीम के पास भेजा। सलीम सिर को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने वीरसिंह के राज्याभिषेक के लिए नेजा, चंवर, छत्र आदि भेजे। शुभ दिन वीरसिंह का राज्याभिषेक हुआ (वी० दे० च०, पृ० ४०-४१)।

---

१. केशव ने पठान का नाम नहीं दिया है। सम्भवतः उन्हें उसके नाम का पता न होगा।

अबुलफ़ज़ल के निधन के विषय में केशव ने जो कुछ लिखा है, वह ठीक है अथवा नहीं, इस पर किसी भी इतिहासकार ने विचार करने का कष्ट नहीं किया है। केशव भी इतिहास की बात करें, यह असम्भव था। हमारे इतिहासकारों का प्रतिष्ठित मत तो यह है :

"बुन्देलों के सरदार वीरसिंहदेव ने अकबर के विरुद्ध खुला विद्रोह किया हुआ था। तभी ई० १६०२ के मध्य में सलीम ने उसे अबुलफ़ज़ल के मार्ग-अवरोध और वध के लिए कहा। वीरसिंहदेव ने सहर्ष इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और उस मार्ग के साथ-साथ अपना सब प्रबन्ध कर लिया जिससे होकर कि उसके शिकार के जाने की सम्भावना थी।"

षड्यन्त्र का भेद खुल गया। अबुलफ़ज़ल को उसके मित्रों ने सचेत कर मार्ग बदल देने के लिए बाध्य किया, किन्तु उसने सदर्प उत्तर दिया—'डाकुओं "में मेरा मार्ग अवरुद्ध करने का साहस कहां ?" सिरौंज में उसे एक राजकीय कर्मचारी गोपालदास नकटा के साथ सेना की टुकड़ियां बदलने के लिए प्रेरित किया गया। अन्य लोगों के साथ उसने अपने स्वामिभक्त सेनानायक असदबेग से भी, जो उसके साथ जाने के लिए उत्सुक था, वहां से चले जाने का आग्रह किया। सराए-बरार में उसे एक साधु ने स्पष्ट शब्दों में सावधान किया कि अगले दिन ही उस पर सशस्त्र दलों का आक्रमण होगा। अबुलफ़ज़ल ने सूचना-वाहक को पुरस्कार दिया, किन्तु उसकी चेतावनी पर तनिक भी ध्यान न दिया। शुक्रवार की प्रातः सूर्योदय के साथ ही नगाड़ों की ध्वनि ने प्रयाण का संकेत किया। दल के प्रस्थान करते ही बुन्देलों के अग्रदल ने उन पर सहसा आक्रमण किया किन्तु उन्हें पीछे हटा दिया गया। मिर्जा मुहसिन बाहर जांच-पड़ताल के लिए गया हुआ था। उसने आकर समाचार दिया कि एक विशाल सशस्त्र बुन्देला-वाहिनी निकट ही युद्ध के लिए सन्नद्ध खड़ी है। उसने अपने साथियों को शीघ्रता करने की सलाह दी। अबुलफ़ज़ल की होनी उसे मृत्यु की ओर अग्रसर कर रही थी। उसने तिरस्कारपूर्ण स्वर में पूछा—"नीचो ! तुम्हारा अभिप्राय है कि हम भाग जांय ?" "यह भागना नहीं है। हम इसी प्रकार चलते रहें"— मिर्जा ने घोड़े को एड़ लगाते हुए उत्तर दिया—हम इसी प्रकार बढ़ते जायें। मेरे समान तुम भी ग्वालियर तक बढ़ते जाओ। किन्तु अबुल-फ़ज़ल ऐसी विकट स्थिति में दूरदर्शिता की कोई भी बात सुनने को प्रस्तुत न था। जब निकट पहुँचती हुई शत्रुओं की सेना से बिल्कुल स्पष्ट हो गया कि उससे मुठभेड़ लेना व्यर्थ होगा, तब उसे चार मील के अन्तर पर दो हजार आदमियों के सहित पड़ाव डाले हुए राजसिंह और रायरायान के पास आश्रय लेने का परामर्श दिया गया। अबुलफ़ज़ल ने उस प्रस्ताव पर घृणा से नाक-भौं सिकोड़ी। शीघ्र ही उसकी अल्प-सेना पर ५०० कवच-रक्षित अश्वों द्वारा आक्रमण हुआ। इन्होंने वीरता से सामना किया, किन्तु भाग्य उनके अनुकूल न था।

अबुलफ़ज़ल के एक सच्चे अनुचर अफ़ग़ान गदाई खां ने अपने स्वामी के घोड़े की बाग पकड़ ली और कहने लगा—"आपका यहाँ क्या काम ? आप यहाँ से चले जायं। यह हमारा कर्त्तव्य है।" परन्तु अबुलफ़ज़ल कोई कायर न था। वह साहस

और वीरता के साथ लड़ा। एक और अनुचर ने घोड़े की बाग पकड़कर बलपूर्वक उसका मुंह घुमा दिया। इसी समय एक राजपूत ने ऐसा प्रहार किया कि भाला अबुलफ़ज़ल की छाती के आर-पार हो गया। सामने एक नदी थी जिस पर से शेख ने अपना घोड़ा कुदाने का यत्न किया, पर वह गिर पड़ा। एक अन्य अनुचर जब्बार खासखेल ने उसे घोड़े के नीचे से निकाला और अचेतावस्था में ही उसे एक वृक्ष की छाँह के नीचे ले गया। अधखिले रंगरूटों में से अपना मार्ग काटते हुए शीघ्र ही बुन्देले वहाँ आ पहुँचे। एक बन्दी महावत ने शेख को दिखला दिया। वीरसिंह तुरन्त घोड़े से उतर कर बैठ गया और उस आहत व्यक्ति का सिर घुटने पर रख कर अपने वस्त्र से उसका मुंह पोंछने लगा। यह देख कर जब्बार वृक्ष के पीछे से निकल कर सामने आया। तभी अबुलफ़ज़ल ने कुछ होश में आकर आँखें खोलीं। वीरसिंह ने उसका अभिवादन किया और कहा कि सर्वविजयी जहाँगीर ने सविनय आपको बुलाया है। अबुलफ़ज़ल ने रोष-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। वीरसिंह ने उसे सुरक्षित ले जाने की सौगन्ध खाई। अबुलफ़ज़ल क्रुद्ध हो उसे गाली देने लगा। वीरसिंह के अनुचरों ने बताया कि घाव घातक होने के कारण अबुलफ़ज़ल को ले जाया नहीं जा सकता। इस पर जब्बार ने अपनी खड्ग खींच ली और बहुत से बुन्देलों का वध करता हुआ वीरसिंह के निकट पहुँचा ही था कि किसी ने बर्छी घोंप कर उसे मौत के घाट उतार दिया। वीरसिंह शेख का सिर छोड़ कर उठ खड़ा हुआ तथा अपने साथियों से शेख को मार डालने के लिए कहा। उसका सिर लेकर बुन्देले और किसी को पीड़ित न करते हुए तथा बन्दियों को मुक्त करते हुए वहाँ से चल पड़े। सिर इलाहाबाद में सलीम के पास अपमानित करने के लिए भेज दिया गया। धड़ को अधिक सम्मान के साथ 'अन्तरी' नामक गाँव में दफ़ना दिया गया।"

डा० बेनीप्रसाद ने 'विकाय असदबेग' तथा अन्य फारसी इतिहासकारों के आधार पर ऊपर उद्धृत शेख के निधन का जो विवरण दिया है उसमें शेख को ही दोषी एवं अहंकारी ठहराया गया है। फारसी इतिहासकारों ने मान सा लिया है कि शेख चाहता तो भाग निकलता। किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं कि यह सम्भव न था। भगोड़ों का कोई महत्त्व नहीं। शेख भागता तो मारा जाता। अतः उसने किया भी वही जो उसे करना था। उसने हठ से नहीं, विवेक से काम लिया। जो कुछ हो, हमारा विचार तो यह है कि केशव ने 'वीरसिंहदेव-चरित' में शेख के निधन के विषय में जो कुछ लिखा है वही सत्य के अधिक निकट है। वह शेख की मान-मर्यादा के सर्वथा अनुरूप है और उसमें वीरसिंहदेव का पक्षपात भी नहीं है। शेख का निधन वीरता और स्वामिभक्त का निधन था।

रायरायान का आक्रमण :

हाँ तो, अबुलफ़ज़ल के निधन का समाचार बादशाह अकबर तक पहुँचाने का साहस किसी उमराव को न हुआ। बादशाह के पूछने पर भी किसी भी उमराव

१—हिस्ट्री आफ जहाँगीर (प्र० भा०), पृ० १५१-५४।

ने कोई उत्तर न दिया। अन्त में रामदास ने निवेदन किया कि शेख का सिर शाह पर निछावर हो गया। इस हृदय-विदारक समाचार को सुनते ही अकबर मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। थोड़ी देर के बाद संज्ञा लौटने पर रामदास से उसे ज्ञात हुआ कि शेख अपने मार्ग पर चल रहा था कि बीच ही में सलीम का पक्ष लेकर वीरसिंह बुन्देला से उसका युद्ध हुआ और उस युद्ध में शेख स्वर्ग सिधार गया। आजमखां, रामदास कछवाहा, दुर्गाराव, जगन्नाथ आदि उमराव शोकविह्वल बादशाह को सान्त्वना देने के लिए उसके सम्मुख उपस्थित हुए। आजमखां ने उसे अनेक प्रकार से सान्त्वना देने का प्रयास किया, पर सब व्यर्थ रहा। बादशाह ने सब उमरावों को शेख के हत्यारे को जीवित पकड़ लाने का आदेश दिया। जब इस कार्य को करने का किसी को भी साहस न हुआ तो 'रायरायान'[1] तैयार हुआ और उसने बादशाह से संग्रामशाह को साथ भेजने के लिए निवेदन किया। बादशाह ने संग्रामशाह को जाने की आज्ञा देते हुए उसे 'कछौवा' और 'बड़ौन' की जागीर प्रदान करने का वचन दिया। उनके साथ राजसिंह और तुलसीदास को भी भेजा गया (वी० दे० च०, पृ० ४२-४५)।

सलीम को जब यह समाचार मिला तो उसने वीरसिंह को फ़रमान भेजा कि शाही सेना से लोहा न लेना। फ़रमान पाते ही वीरसिंहदेव 'बड़ौन' छोड़कर 'दतिया' चला गया। यह समाचार पाकर रामशाह रायरायान से मिलने गया। जब ये दोनों मिलकर 'दतिया' की ओर बढ़े तो वीरसिंह वहाँ से 'ऐरछ' चला गया। यहाँ शाही सेना ने 'ऐरछ' को घेर लिया। वीरसिंह के भाई हरिसिंहदेव ने शाही सेना का बड़ी वीरता और साहस के साथ सामना किया। इस युद्ध में जमनखां का पुत्र जमाल खेत रहा। उसके मरते ही शाही सेना में खलबली मच गई। वीरसिंह रात्रि के समय अवसर पाकर अपने साथियों के साथ नगर से बाहर आया और त्रिपुर की सेना के बीच से साफ़ निकल गया। विपक्षियों में किसी को भी उसका पीछा करने का साहस न हुआ। वहाँ से निकलकर वीरसिंह 'दतिया' पहुँचा और वहाँ शाह सलीम से मिला। त्रिपुर[1] खीझकर 'कछौवा' होता हुआ आगरे चला गया। इन्द्रजीत भी अकबर की सेवा में आ पहुँचा (वी० दे० च०, पृ० ४६-४८)।

वीरसिंह और संग्रामशाह में सन्धि :

त्रिपुर के आगरे जाते ही शाही थाने खाली हो गये। भांडेर को खाली देख संग्रामशाह ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया। वीरसिंह 'दतिया' में ही रहे और हरिसिंहदेव 'भसनेह' पर जम बैठे। कुछ ही समय के अनन्तर हरिसिंहदेव और लचूरागढ़ के स्वामी खड्गराव में युद्ध हुआ, जिसमें हरिसिंहदेव काम आया। अपना समय देखकर वीरसिंह ने संग्रामशाह से संधि कर ली, जिसके परिणामस्वरूप संग्रामशाह ने वीरसिंह को 'भांडेर' दे दी और वीरसिंह ने उसे लचूरागढ़ जीतकर देने का वचन दिया। कुछ समय बाद उसने लचूरागढ़ पर

१—यही रायरायान "त्रिपुर" है, जिसे फारसी इतिहासकारों ने पतरदास लिखा है।

To Patar Das, who in the time of my father had the title of Raya Rayan, I gave the title of Raja Bikramajit. Tuzuk, Page 20.

आक्रमण कर दिया, परन्तु हरिसिंहदेव का घातक खड्गराव 'अमिलौटा' भाग गया। दोनों में युद्ध हुआ जिसमें खड्गराव सपरिवार मारा गया। वीरसिंह ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार लचूरागढ़ संग्राम को दे दिया और खड्गराव का सिर काटकर शाह सलीम के पास भेज दिया (वी० दे० च०, पृ० ४६)।

रामदास का दूतत्व :

अकबर को जब यह समाचार मिला तो वह बड़ा दुःखित हुआ और उसने सलीम के पास रामदास कछवाहे को भेजा। सलीम की सेवा में उपस्थित हो रामदास ने बादशाह के आदेश के अनुसार उससे वीरसिंह, शरीफ़ खाँ, राजा वासुकी को बादशाह को सौंप देने को कहा और समझाया कि इस कार्य के उपलक्ष्य में उसे साम्राज्य का स्वामी बना दिया जायेगा। सलीम यह सुन कर हँस पड़ा और कहने लगा कि 'साहिबी' तो ईश्वर के हाथ है। किसी की दी हुई नहीं मिलती। सलीम के इस प्रकार लालच में न आने पर रामदास ने केवल वीरसिंह को ही देने को कहा। किन्तु सलीम ने यह बात भी न मानी और उसने कहा कि वीरसिंह के साथ वह हर प्रकार का कष्ट सहने को तैयार है परन्तु उसके बिना उसे साम्राज्य की भी इच्छा नहीं। सलीम ने उसे शीघ्र ही वहाँ से चले जाने का आदेश दिया और कहा कि यदि उसके स्थान पर अन्य कोई होता तो ऐसी धृष्टता करने पर वह बच न पाता। रामदास अपना-सा मुँह लेकर लौट गया और अकबर से सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। बादशाह सब समाचार सुनकर मौन हो रहा (वी० दे० च०, पृ० ४६-५०)।

खड्गराव के भाई की फ़रियाद :

इसी बीच में खड्गराव का भाई बादशाह अकबर के दरबार में फ़रियाद लेकर पहुँचा और शरण प्रदान करने की विनती करते हुए उसने निवेदन किया कि जिस समय मुराद उस ओर गये थे, उस समय राजा रामशाह उन लोगों से अप्रसन्न थे; अतएव उसने मुराद से सहायता करने की प्रार्थना की थी और मुराद ने उसके भाई खड्गराव को राजा बना दिया था। इस समय वीरसिंहदेव ने हमारा सत्यानाश कर प्रयाग का पथ लिया है। यह सुनकर अकबर ने त्रिपुर को बुलाकर खड्गराव के भाई को उसे सौंप दिया और रामदास को आदेश दिया कि वह किसी को भेजकर संग्रामशाह को ओड़छा से बुलवा ले। रामदास ने उसे बुलाने के लिए अपने साले को भेजा (वी० दे० च०, पृ० ५०-५१)।

अकबर की नीति :

बुन्देलों के इस प्रकार बढ़ते हुए उत्पात के विषय में सुनकर अकबर ने असरफ़ खाँ को बुलाकर मन्त्रणा की कि इन्द्रजीत का क्या किया जाना चाहिए। असरफ खाँ ने बादशाह को इन्द्रजीत को बुन्देलखण्ड का राज्य प्रदान करने का परामर्श दिया। बादशाह ने इन्द्रजीत को बुला भेजा और शुभ अवसर पर बादशाह की आज्ञा के अनुसार रामदास कछवाहे ने इन्द्रजीत से कहा कि यदि वह मन, वचन,

और कर्म से बादशाह के आदेश का पालन करे तो बादशाह उसे सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड का स्वामी बना देंगे; किन्तु इन्द्रजीत ने निवेदन किया कि वह बादशाह की प्रत्येक आज्ञा का पालन करने को तैयार है पर राज्य उसे स्वीकार नहीं है। जब बादशाह की नीति सफल न हुई तब उसने उसी समय त्रिपुर को बुलाकर उसे बुन्देलखण्ड का राज्य सौंप दिया। त्रिपुर ने विक्रमाजीत से कहा कि मुझे शाह सलीम ने बुला भेजा है। आप शीघ्र ओड़छे की राह लें और मैं सलीम को जाकर उलझा लूं (वी० दे० च०, पृ० ५१-५३)।

सलीम का संकट :

इधर त्रिपुर सलीम के पास चला ही था कि उधर राजमाता 'मरयम मकानी' का स्वर्गवास हो गया और बादशाह ने सलीम को बुलाने के लिए दूतों को भेजा। उन्होंने जाकर सलीम से बेग़म के देहान्त, बादशाह के शोक और उसके प्रति प्रेम का वर्णन करते हुए उससे बादशाह की सेवा में उपस्थित हो बादशाह का शोक बंटाने का अनुरोध किया। राजमाता की मृत्यु का समाचार सुनकर सलीम का मन अधीर हो गया और अपने पिता के पास जाने के लिए लालायित हो उठा। दो दिनों के बाद जब दूतों से दरबार का समाचार मिला तो चिन्ता में पड़ गया और उसने शरीफ़ खाँ, राजा वासुकी[1] और वीरसिंह आदि अपने मंत्रियों से परामर्श किया। राजा वासुकी ने सलीम का शोक दूर करने के लिए बहुत प्रयत्न किया, किन्तु सब निष्फल रहा। वीरसिंह ने निवेदन किया कि उस (सलीम) के वहाँ जाने पर उसे वही करना चाहिए जिससे बादशाह प्रसन्न हो। यदि आवश्यकता पड़े तो उसे भी बादशाह के अर्पण कर दे, जिससे कुल का कलह दूर हो जाय। इतना सुनना था कि शरीफ़ खाँ झुंझला कर बोल उठा कि वीरसिंह ने ही उसे राजा बनाया है, अतः उसे बादशाह को अर्पित करना उचित नहीं है। वीरसिंह के स्थान पर वह उसे बादशाह सौंप सकता है। इतना सुनना था कि सलीम से अधिक न रहा गया और वह कह उठा कि यदि शाह सलीम उसे बादशाह को अर्पित कर दे तो अपने राज्य में वह फिर किसे बढ़ाएगा। सलीम ने उससे भविष्य में कभी इस प्रकार की बातें न कहने के लिए कहा और आजीवन अभयदान दिया। यहाँ इतना और जान लें कि यही बात है जिसके कारण सिंहासनासीन होते ही सलीम ने शरीफ़ खाँ को इतना बढ़ाया जिसकी कोई इति नहीं। निदान इतना कहने-सुनने पर सलीम बादशाह की सेवा में उपस्थित हुआ किन्तु बादशाह ने उसे बड़ा दुःख दिया। इधर शरीफ़ खाँ कहीं दूर भाग गया और वीरसिंह अपने भाई संग्रामशाह के पास ओड़छे पहुँच गया (वी० दे० च०, पृ० ५३-५५)।

---

१. यह और कोई नहीं, पठानकोट का राजा बासू है।

Raja Basu was a 'Zamidar' of Mau and Pathankot in the Bari Duab of the Punjab and close to the Northern hills. During Akbar's reign he had several times broken into open revolt in 1586, 1596, 1603 and 1604.

History of Jahangir, Vol. I, Page 234.

राजसिंह की पराजय :

उधर त्रिपुर ने विशाल शाही सेना के साथ दतिया होते हुए ओड़छा की ओर प्रस्थान किया और ओड़छा से आध कोस की दूरी पर पहुँच कर पड़ाव डाल दिया। परन्तु नगर पर आक्रमण करने का साहस किसी को भी न होता था। आक्रमण के विषय में जब आपस ही में नहीं बनी और राजसिंह ने किसी की नहीं सुनी, तब उसने एक दिन प्रातःकाल होते ही सेना लेकर ओड़छा पर धावा बोल दिया। त्रिपुर के पक्ष में राजसिंह, रामदास, रामशाह, भदौरिया, चौहान, जाट आदि थे और वीरसिंहदेव की ओर संग्रामशाह, इन्द्रजीत, प्रतापराव और उग्रसेन थे। दोनों सेनाओं में बड़ा घोर संग्राम हुआ, परन्तु अन्त में विजयश्री हाथ लगी वीरसिंह के ही। राजसिंह बन्दी हो गया परन्तु बाद में वीरसिंह ने उसे मुक्त कर दिया। राजसिंह फिर 'कुठौली' चला गया (वी० दे० च०, पृ० ५५-६१)।

अकबर का संताप और मृत्यु :

इस पराजय का समाचार सुनकर अकबर ने अपना सिर धुन लिया तथा उमरावों के पास आदेश लिख भेजा कि या तो वे वीरसिंह की प्रतिष्ठा को धूल में मिला दें, जिधर भी वीरसिंह प्रस्थान करे, उधर ही उसका पीछा करें अथवा हज को चले जायें। वीरसिंह ने जब यह सुना तो वह 'बसही' चला गया। कुछ दिनों बाद बादशाह की मृत्यु हो गई (वी० दे० च०, पृ० ६१-६२)।

सलीम शाह से बादशाह तथा वीरसिंह पर कृपा :

अकबर के बाद सलीम गद्दी पर बैठा। बादशाह होने के कुछ दिनों के अनन्तर सलीम (अब जहाँगीर) ने वीरसिंह को बुला भेजा। वीरसिंह राजा रामशाह से मिलकर इन्द्रजीत को साथ ले जहाँगीर से मिलने आगरे पहुँचा। बादशाह ने उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और अनेक उपहार दिये। उसने वीरसिंह को दरबार में सबसे ऊँचा स्थान दिया और प्रसन्न होकर बुन्देलखण्ड का सारा राज्य उसे सौंप दिया। इसके अतिरिक्त उसे और भी परगने दिए। बादशाह ने यह भी प्रतिज्ञा की कि जो वीरसिंह का सम्मान न करेगा, उसे मौत के घाट उतार दिया जायेगा। वीरसिंह की इच्छा 'जतारा' लेने की न थी, परन्तु शरीफ़ खाँ के समझाने पर कि उसके राज्य में मुग़ल थाने का रहना सदैव चिन्ता का विषय रहेगा, वह 'जतारा' को भी अपने राज्य में लेने के लिए तैयार हो गया। अन्त में बादशाह से विदा होकर वीरसिंह 'ऐरछ' लौट गया। विदा होते समय कुछ और परगने भी बादशाह ने उसे दिए। (वी० दे० च०, पृ० ६३-६६)।

घर की फूट :

यह सारा समाचार भारतशाह ने आकर जब रामशाह को बता दिया तो वह (रामशाह) अपने सभासदों से मंत्रणा में लगा कि क्या करना चाहिए। सब ने अपना-अपना विचार प्रकट किया पर अंत में उदयन मिश्र के परामर्श से वीरसिंह के पास 'ऐरछ' जाने का निर्णय हुआ और दूसरे दिन प्रातःकाल

राणशाह् ने 'ऐरछ' की ओर कूच किया। रामशाह् से मिलकर वीरसिंह् को बड़ी प्रसन्नता हुई और कुछ काल विश्राम करने के अनन्तर उसने जहाँगीर से प्राप्त परगनों के सब पट्टे रामशाह के सामने रख दिए। रामशाह् जब उनका बँटवारा करने लगा तो बातों ही बातों में अन्तर पड़ गया। वीरसिंह् के अनुनय-विनय करने पर भी रामशाह् ने एक न सुनी और वह 'पटहारी' वापस चला गया। वीरसिंह् 'ऐरछ' से 'पिपहरा' आया, जहाँ उसे अब्दुला खाँ मिला। दरियाखाँ भी यहीं लचूरा से आकर वीरसिंह से मिल गया। रामशाह से उदासीन होकर उसके मित्र भी वीरसिंह से जा मिले। इसी बीच रामशाह् 'पटहारी' छोड़कर 'बनिगवाँ' चले गए थे। अतएव वीरसिंह ने 'पटहारी' को अधिकृत कर लिया और 'बरेठी' में पड़ाव डाला। इस प्रकार रामशाह् 'बनिगवाँ' में जमे थे और वीरसिंह् 'बरेठी' में। दोनों राजाओं की सेना के बीच आध कोस का अन्तर था। इसी समय सुलतान खुसरो भाग निकला और जहाँगीर ने उसका पीछा किया। वीरसिंह का पुत्र उसके साथ गया, किन्तु इन्द्रजीत रामशाह् के पास आ गया। रामशाह् उसके आने से बड़े आनन्दित हुए और उन्होंने अपने मंत्रियों तथा मित्रों के सम्मुख इन्द्रजीत को परिवार और राज्य का भार सौंप दिया और उससे कहा कि वह वीरसिंह से चाहे युद्ध करे अथवा सन्धि, उसकी इच्छा (वी० दे० च०, पृ० ६६-७०)।

सन्धि-वार्ता :

कुछ दिनों बाद गोपाल खवास, स्यामदास और पायक दुर्जन भारतशाह को साथ लेकर वीरसिंह के पास 'बरेठी' समझौते के लिए गए और उसे समझा-बुझाकर भारतशाह् को उसे सौंप दिया। भारतशाह् और वीरसिंह् दोनों ने मित्रता निभाने की शपथ ली और निश्चय हुआ रामशाह् 'बनिगवाँ' छोड़कर ओड़छा चला जाय। भारतशाह बसीठ के रूप में वहीं रह गया। इस समझौते का समाचार पाकर रामशाह् को बड़ा दुख हुआ। इसी बीच जब बसीठों के द्वारा इन्द्रजीत का यह वृत्तान्त विदित हुआ तो उसे भी बहुत दुःख हुआ, पर सब बातें सोचकर रामशाह्‌को 'बनिगवाँ' छोड़कर ओड़छा चला जाने का परामर्श दिया। इस पर रामशाह् ओड़छा चला गया और उसने अपने को बहुत समझाया-बुझाया। यहाँ से रामशाह् ने मंगद, प्रेमा और केशव मिश्र (स्वयं कवि) को दूत के रूप में सन्धि के लिए वीरसिंह के पास भेजा। केशव मिश्र के शब्दों ने वीरसिंह् को बड़ा ही प्रभावित किया और वह उनकी शिक्षा मानने को तैयार हो गया। उसने केशव से रामशाह् को मिला देने के लिए कहा और सहर्ष मंगद और प्रेमा को विदा किया। रामशाह् भी वीरसिंह् से मिलने के लिए सहमत हो गया। इसी बीच प्रेमा ने रानी कल्यानदे से मिलकर उसके कान भरे और कहा कि उसे पता नहीं वीरसिंह तथा केशव में क्या बातचीत हुई है, अतः यदि हानि-लाभ हो तो उस पर दोष न लगाया जाय। यह सुनकर रानी सशंक हो उठी और उसने प्रेमा को भारतशाह को ले जाने का आदेश दिया। प्रेमा वीर-सिंह् के पास से भारतशाह् को ले आया परिणाम यह हुआ कि सन्धि-वार्त्ता पूर्णतया भंग हो गई (वी० दे० च०, पृ० ७०-७४)।

वीरसिंह का आक्रमण :

सन्धि-वार्ता के टूटते ही उपयुक्त अवसर पर वीरसिंह ने विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया और बेतवा को पार कर 'वीरगढ़' पर अपना आसन जमाया। जब रामशाह को यह समाचार मिला तो उसने रानी कल्यानदे, इन्द्रजीत और भूपालराव को बुलाकर परामर्श किया। रानी की सलाह थी कि जैसा इन्द्रजीत कहे, वैसा ही करना चाहिए। इन्द्रजीत ने रामशाह की इच्छा के अनुसार कार्य करने का विचार प्रकट किया। भूपाल राव लड़ाई लड़ने के पक्ष में था। केशव मिश्र ने इन्द्रजीत और भूपाल राव को बहुत समझाया-बुझाया कि युद्ध न किया जाय, किन्तु रानी कल्यानदे को केशव का उपदेश अच्छा न लगा और उसने केशव को वहाँ से चले जाने का आदेश दिया। केशव 'वीरगढ़' वीरसिंह के पास चले गए। वीरसिंह ने 'वीरगढ़' से प्रयाण किया और 'बबीना' ले लिया। मुज़फ़्फ़रअली के आने पर वह वहाँ से भी चल दिया और तराई के उपवन में डेरा डाला। यहाँ खोजा अब्दुल्लाह के दूत उसकी सेवा में उपस्थित हुए। भावी के विषय में सोच कर वीरसिंह अत्यन्त दुःखी हुआ और उसने रामशाह को परिस्थिति से परिचित करा देने का विचार प्रकट किया। केशव मिश्र ने सब ऊँच-नीच समझाते हुए रामशाह को एक पत्र लिख भेजा, पर रामशाह ने उस (पत्र) का उपहास ही किया। फिर भी उसने आनन्दी पुरोहित और गोपाल को वीरसिंह के पास भेजा। परन्तु वे कहते कुछ थे, हृदय में कुछ और था। अतएव सन्धि की यह चेष्टा भी निष्फल हुई। फलतः वीरसिंह ने युद्ध के लिए ओड़छा की ओर प्रस्थान कर दिया और अपने सेनापतियों का ऐसा व्यूह रचा कि विजय उसी के हाथ लगी। जिस समय वीरसिंह की सेना ओड़छा से कुछ दूरी पर ही थी, उसी समय अब्दुल्लाह खाँ (कालपी का सूबेदार) की सेना ओड़छे पहुँच गई। रामशाह की सेना के साथ रावभूपाल और इन्द्रजीत ने मुग़ल-सेना पर धावा बोल दिया। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। इसी बीच एक पठान ने इन्द्रजीत के घोड़े पर प्रहार किया और घोड़ा अचेत हो सवार के साथ भूमि पर गिर पड़ा। इतने में मुग़ल तलवारें निकाल कर उस पर टूट पड़े। मथुराई ने उस पठान को मार दिया। इतने में रावभूपाल वहाँ आ पहुँचा और शत्रुओं को लहु-लूहान कर दिया। अब्दुल्लाह खाँ भाग खड़ा हुआ। अचेत इन्द्रजीत को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा कर भूपालराव अकेले ही अब शेष मुग़ल सेना से लोहा लेने के लिए आगे बढ़ा, यद्यपि उसे अकेले युद्ध करने के विरुद्ध बहुत कुछ समझाया-बुझाया भी गया। इसी समय वीरसिंह अपनी सेना के साथ पहुँचा। अब्दुल्ला खाँ की सेना को एक नया बल मिल गया। दोनों ओर की सेनाओं में घोर संग्राम हुआ, जिसमें भूपालराव ने असाधारण वीरता दिखलाई (वी० दे० च०, पृ० ७४-९५)।

अब्दुल्लाहखाँ की नीति :

अब्दुल्लाह खाँ के जी तोड़कर प्रयत्न करने पर भी जब वह राजमहल को अधिकृत न कर सका तो उसने यादगार को बुलाया और उससे किसी प्रकार रामशाह को उसके पास तक लाने के लिए कहा। यादगार ने सुन्दर कायस्थ से यह बात

कही। वह बादशाह (जहाँगीर) की छाप लेकर गया और शपथ खाकर रामशाह को अब्दुल्लाह खाँ के पास ले आया। इस प्रकार नीति से अब्दुल्लाह खाँ ने रामशाह को बन्दी कर लिया और उसे साथ ले जाकर बादशाह के सामने उपस्थित किया (वी० दे० च०, पृ० ६६-६७)।

विजय के उपरान्त :

ओड़छा राज्य पर अधिकार हो जाने पर वीरसिंह ने 'बीहट' रावभूपाल को और 'बाँध' रावप्रताप को दिया तथा इन्द्रजीत को गढ़ का स्वामी बनाया। भिन्न-भिन्न प्रदेशों का अधिकार अपने भाइयों में बाँट कर वीरसिंहदेव रामशाह को छुड़ाने के लिए जहाँगीर के पास चला। इधर वीरसिंहदेव कुरुक्षेत्र पहुँचा ही था कि इधर देवाराय ने भारतशाह से मिलकर चारों ओर आतंक फैला दिया। उन्होंने 'पटहारी' को अधिकृत कर लिया। ओड़छा भी उनके डर से काँपने लगा। इसी बीच भूपालराव ने 'बवीना' पर अपना अधिकार कर लिया। इतने में वीरसिंह आ पहुँचा और उसने सब आतताइयों का नाश कर समस्त देश में शान्ति की स्थापना की। बादशाह जहाँगीर के आदेश से वीरसिंह ओड़छा का राजा बना। राजा होते ही वीरसिंह ने ओड़छा फिर से बसाया और उसका नाम जहाँगीरपुर रखा (वी० दे० च०, पृ० ६७-६६)।

जहाँगीर-जस-चन्द्रिका और रतनबावनी में संचित इतिहास-सामग्री :

'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' में केशव ने जो जहाँगीर के दरबार का रूप दिखाया है, वह इतिहास के विचार से दर्शनीय है। इससे यह भली भाँति ज्ञात हो सकता है कि सम्राट के दरबार में सुलतानों अथवा सामन्तों की स्थिति क्या थी और किस क्रम से उन्हें खड़ा किया जाता था। अतः इस प्रसंग में ध्यान रखना होगा कि केशव ने पहले क्रमशः सुलतानों—खुसरो (ज० ज० चं०, छं० ५५), परवेज, (ज० ज० चं०, छं० ५७) और खुर्रम (ज० ज० चं०, छं० ५६) का परिचय दिया है। इसके अनन्तर आते हैं —खान आजम (ज० ज० चं०, छं० ६३)। जिससे सुलतान खुसरो बार-बार कुछ कह रहा है और जो जहाँगीर का बड़ा लाड़ला है, अब्दुर्रहीम खानखाना और मानसिंह (ज० ज० चं०, छं० ६५)। फिर क्रमशः मिरजा शमसदीन (खाँ आजम का पुत्र, छं० ६७), एलिच बहादुर (अब्दुर्रहीम खानखाना का पुत्र, छं० ६६) महासित् (भावसिंह का वंशज, छं० ७१), दूलहराम बुन्देला (राम शाह. छं० ७३), राय दुर्गभान (चन्द्रसेन का बेटा, छं० ७५), रतन भोजराइ (छं० ७७), वीरसिंह (छं० ७६), रामसिंह (ऊदा का पूत, छं० ८१), खानजहाँ पठान (दौलत खाँ का पुत्र, छं० ८३), तुलसी बहादुर (गोपाचल के राजा का पुत्र, छं० ८५), धीरधर (बीरबल का सुत, छं० ८७), विक्रमाजीत भदौरिया (छं० ८६), इतवार खाँ, जो जहाँगीर का विश्वासपात्र था और जिसने अपनी सेवाओं के कारण मुमताज खाँ की उपाधि प्राप्त की थी[1], हसन बेग (छं० ६१), श्यामसिंह

---

१. Here Iftikhar khan, governor of Agra was, for his meritorious services raised to 6,000 Jat and 5,000 suwar and styled Mumtaz khan.

History of Jahangir, V01, I, page 361,

(मानसिंह तोमर का वंशज, छं० ९३), सूरति सिंह (छं० ९५) और राजा बासुकी (छं० ९७)—इन तेईस सामन्तों का परिचय दिया गया है।

जहाँगीर के इस दरबार में क्रम की दृष्टि से विचार करने पर मानसिंह के बाद मिरज़ा शमसुद्दीन का नाम आता है और श्यामसिंह के बाद सूरतिसिंह का, परन्तु स्थिति पर यदि ध्यान दिया जाता है तो श्यामसिंह शमसुद्दीन के पास बतलाए गए हैं और सूरतिसिंह मानसिंह के बाएं[1]।

इसी दरबार में बीरसिंह के साथ दूलहराम बुन्देला (रामशाह) के भी दर्शन होते हैं, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। इससे विदित होता है कि फिर उसे जहाँगीर के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी। इसका कारण कदाचित् सम्राट् की सेवा में अपनी पुत्री को भेजना ही था, जिसका निर्देश स्वयं जहाँगीर ने किया है[2]।

'रतनबावनी' में ओड़छा-नरेश मधुकरशाह के पुत्र रतनशाह के मुगल-सेना से युद्ध का वर्णन है जिसमें उसने सम्राट् अकबर की शाही सेना का सामना करते हुए वीरगति प्राप्त की थी। केशव के अनुसार एक विचित्र घटना इस युद्ध का कारण बनी थी, जिसका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। रतनसेन के मुग़ल-सेना से इस युद्ध के विषय में इतिहास-ग्रंथ मौन हैं।

ओड़छा का राजवंश :

ओड़छा के राजवंश का भी परिचय प्राप्त करने के लिए केशव के 'बीरसिंहदेव-चरित' तथा 'कविप्रिया' नामक ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण हैं। 'बीरसिंहदेव-चरित' में १५-१७ पृष्ठों पर दिए वर्णन के आधार पर ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष इस प्रकार है—

---

१. मानसिंह की बाम दिसि सोहत सुन्दर रूप।
बात कहत परवेज सौं कहो कौन यह भूप॥
... ...
देखत ही दुख तालनि तरति।
मूरति सूरति सिंघ की जानो।

—ज० ज० चं०, छं० ९४-९५।

उर बिसालु आजानु भुज मुद्रनि मुद्रित भाल।
समसद्दीन मिरजा निकट कहौ कौन नरपाल॥
... ...
राजनि की मण्डली को रंजनु बिराजमान।
जानियत श्यामसिंह सिंघ गोपाचल को॥

—ज० ज० चं०, छं० ९२-९३।

2. took the daughter of Ram Chandra Bandilah into my service (i. e. married her).
Tuzuk, Vo. 1, page 160.

वीरभद्र (राम के पुत्र कुश का वंशज—वाराणसी)
|
वीर
|
करण (काशी)
|
अर्जुनपाल (महोनी)
|
सोहनपाल (गढ़-कुण्डार)
|
सहजेन्द्र
|
नोनकदेव
|
पृथ्वीराज
|
मेदिनीमल — रायसेन — पूरनमल

मेदिनीमल
|
अर्जुनदेव
|
मलखान
|
प्रतापरुद्र (ओड़छा)
|
भारतीचन्द (कोई पुत्र न था) — मधुकरशाह (रानी गनेशदे)

मधुकरशाह
|
रामशाह — होरिलराव — नरसिंह — रतनसेन — इन्द्रजीत — प्रतापराव — वीरसिंह — हरिसिंह

रामशाह
|
संग्रामशाह
|
भारतशाह

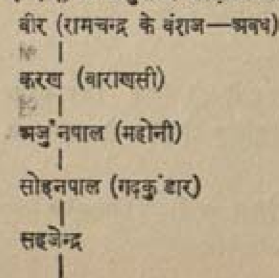
रतनसेन
|
रावभूपाल

इन्द्रजीत
|
उग्रसेन

हरिसिंह
|
रायवसंत — खांडेराय

वीरसिंह
|
जुझारराय — हरदौल — पहाड़सिंह — बाघराज — चन्द्रभान — भगवानराय — नरहरिदास — कृष्णदास — माधोदास — तुलसीदास — नाम नहीं दिया

'कविप्रिया' में दिया वंश-वर्णन 'वीरसिंहदेव-चरित' के वर्णन से कुछ भिन्न है। 'कवि-प्रिया' (प्र० १, छं० ६-३६) के अनुसार ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष निम्नांकित है—



नौनिकदेव

पृथ्वीराज

रामसिंह

रामचन्द्र

मेदिनीमल

अर्जुनदेव

मलखान

प्रतापरुद्र

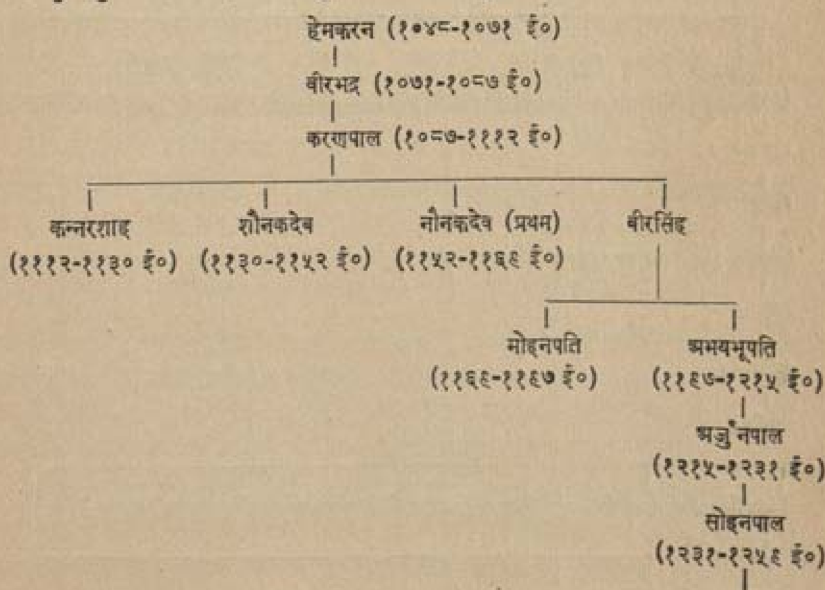
भारतीचन्द (कोई पुत्र नहीं था) | मधुकरशाह

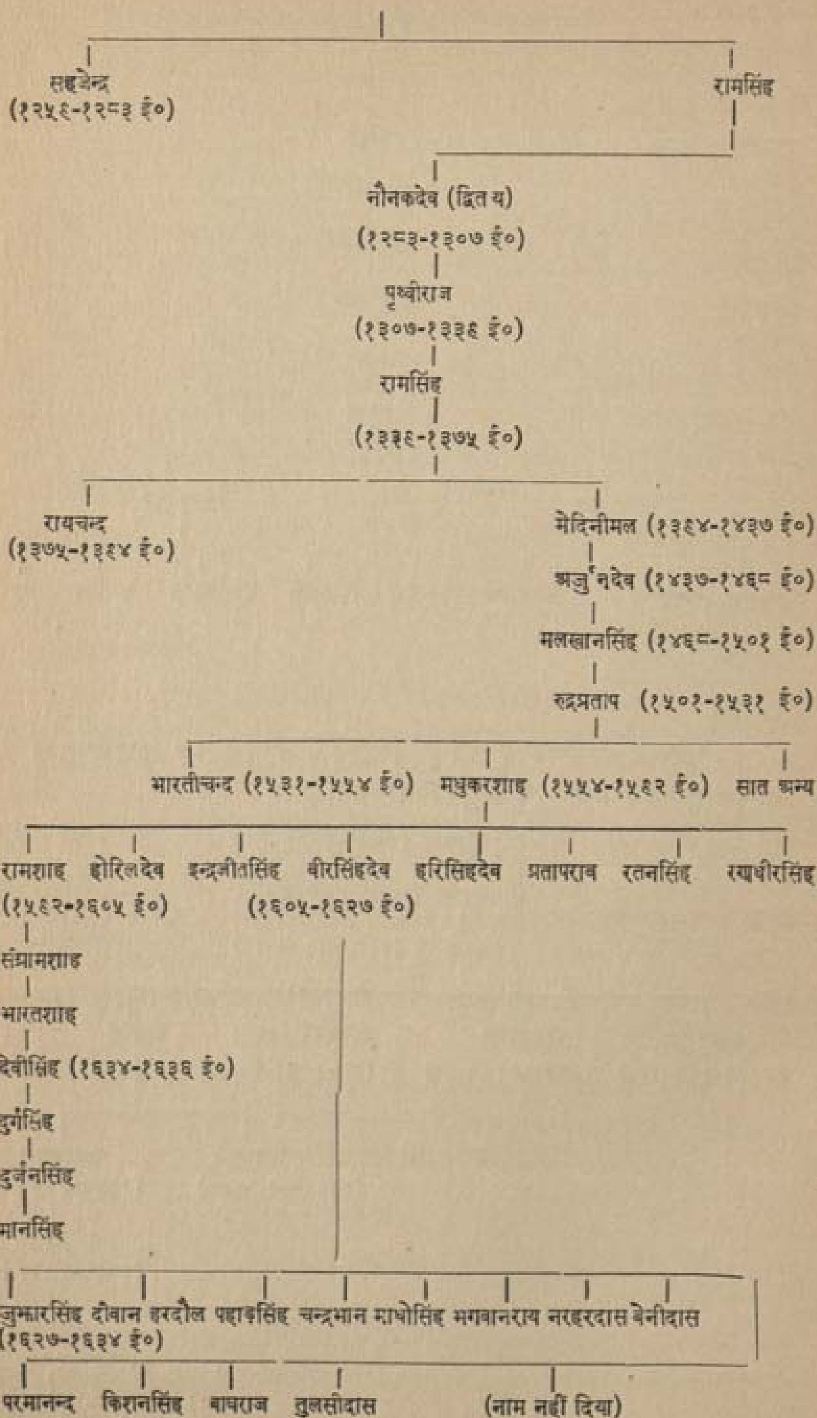
दूलहराम (रामशाह) | होरिलराव | रतनसेन | इन्द्रजीत | वीरसिंहदेव | हरिसिंह | रणधीर

संग्रामशाह

भारतशाह

'ओड़छा गजेटियर' में दिये हुए विवरण के आधार पर ओड़छा-राज्य का वंशवृक्ष तुलना के लिए नीचे प्रस्तुत किया जाता है—




सहजेन्द्र (१२५६-१२८३ ई०)
रामसिंह
नौनकदेव (द्वितीय) (१२८३-१३०७ ई०)
पृथ्वीराज (१३०७-१३३६ ई०)
रामसिंह (१३३६-१३७५ ई०)
रायचन्द (१३७५-१३९४ ई०)
मेदिनीमल (१३९४-१४३७ ई०)
अर्जुनदेव (१४३७-१४६८ ई०)
मलखानसिंह (१४६८-१५०१ ई०)
रुद्रप्रताप (१५०१-१५३१ ई०)
भारतीचन्द (१५३१-१५५४ ई०)
मधुकरशाह (१५५४-१५९२ ई०)
सात अन्य
रामशाह (१५९२-१६०५ ई०)
होरिलदेव
इन्द्रजीतसिंह
बीरसिंहदेव (१६०५-१६२७ ई०)
हरिसिंहदेव
प्रतापराव
रतनसिंह
रणधीरसिंह
संग्रामशाह
भारतशाह
देवीसिंह (१६३४-१६३६ ई०)
दुर्गासिंह
दुर्जनसिंह
मानसिंह
जुझारसिंह (१६२७-१६३४ ई०)
दीवान हरदौल
पहाड़सिंह
चन्द्रभान
माधोसिंह
भगवानराय
नरहरदास
बेनीदास
परमानन्द
किशनसिंह
बाघराज
तुलसीदास
(नाम नहीं दिया)

वंशवृक्षों की तुलना :

उपर्युक्त तीनों वंश-वृक्षों का आपस में मिलान करने से विदित होता है कि केशव ने 'कविप्रिया' में सबसे पहला राजा श्री रामचन्द्र जी का वंशज 'वीर' दिया है और उसके अनन्तर 'करण' का उल्लेख किया है; पर 'वीरसिंहदेव-चरित' में सर्वप्रथम 'वीरभद्र' का नाम आता है, उसके पश्चात् 'वीर' और फिर 'करण' का। 'ओड़छा गजेटियर' में 'वीरभद्र' से पूर्व दिये हुए हेमकरण का 'कविप्रिया' और 'वीरसिंहदेव-चरित' दोनों ग्रन्थों में ही उल्लेख नहीं मिलता। सम्भवतः यह कोई महत्त्वपूर्ण राजा न रहा होगा। इसी कारण केशव ने इसे छोड़ दिया है। 'ओड़छा गजेटियर' में 'करणपाल' से पहले केवल एक ही राजा 'वीरभद्र' का नाम लिया गया है जो 'कविप्रिया' के अनुसार राजा 'वीर' है। ऐसा ज्ञान पड़ता है कि 'वीरसिंहदेव-चरित' में केशव ने भूल से 'वीरभद्र' और 'वीर' दोनों को भिन्न-भिन्न व्यक्ति समझ लिया है। आगे चलकर 'कविप्रिया' में पृथ्वीराज के अनन्तर क्रमशः रामसिंह, राजचन्द्र और मेदिनीमल का नाम मिलता है, परन्तु 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'पृथ्वीराज' के अनन्तर ही 'मेदिनीमल' का निर्देश है तथा 'रामसिंह' और 'राजचन्द्र' का उल्लेख नहीं है। 'वीरसिंहदेव-चरित' में आये 'पृथ्वीराज' के पुत्रों, 'रायसेन' और 'पूरनमल' का 'कविप्रिया' और 'ओछड़ा गजेटियर' में कोई उल्लेख नहीं है। 'कविप्रिया' में मधुकरशाह के सात ही पुत्र बतलाये गए हैं, दूलहराम (रामशाह), होरिलदेव, रतनसेन, इन्द्रजीत, वीरसिंहदेव, हरिसिंह और रणधीर। 'वीरसिंहदेव-चरित' में मधुकरशाह के आठ पुत्रों का उल्लेख है। इस ग्रन्थ में 'रणधीर' का नाम नहीं आता, शेष नाम 'कविप्रिया' से मिलते हैं तथा अन्य दो नाम 'नरसिंह' और 'प्रतापराव' दिये गए हैं। 'ओड़छा गजेटियर' में 'नरसिंह' का कोई उल्लेख नहीं है। शेष नाम 'वीरसिंहदेव-चरित' के समान हैं और 'नरसिंह' के स्थान पर 'रणधीरसिंह' आया है जिसको केशव ने 'कविप्रिया' में तो मधुकरशाह का पुत्र बताया है, पर 'वीरसिंहदेव-चरित' में नहीं बताया। 'कविप्रिया' और 'वीरसिंहदेव-चरित' में 'करणपाल' के पश्चात् अर्जुनपाल का उल्लेख किया गया है, परन्तु 'ओड़छा गजेटियर' में करणपाल और अर्जुनपाल के बीच क्रमशः पाँच अन्य राजाओं कन्नरशाह, शौनकदेव, नौनकदेव (प्रथम), मोहनपति तथा अभयभूपति का उल्लेख है। 'कविप्रिया' में न तो इन्द्रजीत और रतनसेन के पुत्रों के नाम आए हैं और न ही वीरसिंहदेव के पुत्रों के। 'वीरसिंहदेव-चरित' में इन्द्रजीत और रतनसेन के क्रमशः एक-एक पुत्र उग्रसेन तथा भूपाल राव और वीरसिंहदेव के ग्यारह पुत्रों का उल्लेख किया गया है। वीरसिंहदेव के ग्यारह पुत्रों में से केवल दस के ही नाम जुझारराय, हरदौल, पहाड़सिंह, बाघराज, चन्द्रभान, भगवानराय, नरहरिदास, कृष्णदास, माधोदास और तुलसीदास बतलाये गए हैं। 'ओड़छा गजेटियर' में कृष्णदास का नाम नहीं है, शेष नाम वही हैं। इनके अतिरिक्त गजेटियर में तीन नाम और दिये गए हैं, बेनीदास, परमानन्द और किशनसिंह। इस प्रकार गजेटियर के अनुसार वीरसिंहदेव के बारह पुत्र होते हैं। हो सकता है कि केशव का

कृष्णदास ही गजेटियर का किशनसिंह हो और बेनीदास और परमानन्द 'वीरसिंहदेव-चरित' की रचना के समय तक उत्पन्न न हुए हों। 'कविप्रिया' में वीरसिंह, इन्द्रजीत अथवा रतनसेन के पुत्रों का कोई उल्लेख न होने के विषय में भी यही सम्भावना हो सकती है। करणपाल और अर्जुनपाल के बीच के पाँच राजाओं को जो केशव ने अपने दोनों ही ग्रन्थों में छोड़ दिया है, उसका कारण हमें तो यही प्रतीत होता है कि कवि ने इन राजाओं को महत्त्वपूर्ण न समझा होगा।

पूर्वपृष्ठों में दिये गए विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि केशव के ग्रन्थों, 'वीरसिंहदेव-चरित', 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका', 'रतनबावनी' तथा 'कविप्रिया' में जो ऐतिहासिक सामग्री यत्र-तत्र बिखरी पड़ी है, वह ओड़छा-राज्य का सच्चा एवं पूरा इतिहास जानने के लिए बड़े महत्त्व की है। अतएव केशव को यदि इतिहास का पूरक कहें तो अत्युक्ति न होगी।

छठा अध्याय

केशव का रीति-काव्य

(अ) रीतिकाव्यों का संक्षिप्त परिचय

(१) रसिकप्रिया :

इस ग्रन्थ की रचना प्रमुख रूप से केशव के आश्रयदाता, ओड़छा-नरेश मधुकरशाह के पुत्र इन्द्रजीतसिंह के लिए ही हुई थी[1] परन्तु ग्रन्थ लिखते समय केशव के मस्तिष्क में और काव्य-रसिकों के मनोरंजन का ध्यान भी विद्यमान था[2]। कवि ने सामान्यतः इस ग्रन्थ में रस, वृत्ति और अनरस (रस-दोष) का निरूपण किया है, परन्तु प्रधानता शृंगार-रस वर्णन को ही मिली है। ग्रन्थ के अधिकांश भाग में शृंगार रस के विविध अंगों का सविस्तार विवेचन किया गया है। शृंगारेतर रसों को भी कवि ने शृंगार के अन्तर्गत लाने का प्रयत्न किया है। ग्रन्थ के आरम्भ में ही केशव ने कृष्ण के चरित्र में नवरसों का होना दिखाया है[3]। पर आगे चलकर उन्हें अपनी इस प्रतिज्ञा का ध्यान न रहा और उन्होंने शृंगार ही के अन्तर्गत सब रसों का समावेश करने का उद्योग किया। ग्रन्थ में सोलह प्रकाश हैं। प्रथम प्रकाश गणेश-वन्दना से प्रारम्भ होता है। इसके अनन्तर ओड़छा नगर-वर्णन, ग्रन्थ-रचना-कारण, ग्रन्थ-प्रणयन-काल और नवरसों के उल्लेख के बाद शृंगार रस के दोनों पक्षों, संयोग

---

१. इन्द्रजीत ताको अनुज, सकल धर्म को धाम।
... ...
तिन कवि केशवदास सों, कीन्हों धर्म सनेहु।
सब सुख दै करि यों कह्यो, रसिकप्रिया करि देहु॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० ८ और १०।

२. अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिकप्रिया, कीन्हीं केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १२।

३. श्रीवृषभानु कुमारि हेतु शृंगाररूप भय।
वास हास रस हरे मात-बंधन करुणामय॥
केशी प्रति अति रौद्र वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान पियो बीभत्स बकी-उर॥
अति अद्भुत बंच विरंचिमति शांत संततै शोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन नवरस मय ब्रजराज नित॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० २।

एवं वियोग का वर्णन किया गया है। द्वितीय प्रकाश में नायक के भेदों का विवरण दिया गया है। तृतीय प्रकाश में जाति, कर्म, अवस्था तथा मान के अनुसार नायिकाओं के भेद वर्णित हैं। 'सुरतिविचित्रा' के प्रसंग में केशव ने रति के दो भद, बहिर्रति और अन्तर्रति बतलाकर प्रत्येक के सात-सात प्रकारों का उल्लेख किया है। यहीं सोलह शृंगार के नाम भी दिये गए हैं (र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४४)। यह सब से बड़ा प्रकाश है। चतुर्थ प्रकाश में चार प्रकार के दर्शनों का वर्णन है। पंचम प्रकाश का प्रारम्भ दम्पति-चेष्टा से होता है और फिर नायक-नायिका के स्वयं-दूतत्व का निरूपण किया गया है। साथ ही नायक-नायिका के प्रथम मिलन के स्थलों का भी उल्लेख किया गया है। षष्ठ प्रकाश में भाव, विभाव, अनुभाव, स्थायी, सात्त्विक और व्यभिचारी भावों तथा हावों का निरूपण है। सप्तम प्रकाश में अवस्था तथा गुण के अनुसार नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया गया है। इसके साथ ही 'अगम्या' का वर्णन भी किया गया है। अष्टम प्रकाश विप्रलम्भ के सामान्य लक्षण से आरम्भ होता है। फिर विप्रलम्भ के चार भेदों के नामोल्लेख करने के अन्तर विप्रलम्भ के प्रथम भेद 'पूर्वानुराग' और प्रिय के वियोग से उत्पन्न दश दशाओं का वर्णन किया गया है। नवम प्रकाश में विप्रलम्भ के दूसरे भेद 'मान' के भेदों का उल्लेख है और दशम में मान-मोचन के उपाय बतलाये गए हैं। एकादश प्रकाश में विप्रलम्भ के अन्य भेद, करुण तथा प्रवास विरह का निरूपण किया गया है। द्वादश प्रकाश में 'सखी-भेद' का वर्णन है और त्रयोदश प्रकाश में सखीजन-कर्म-वर्णन। इस प्रकार यहाँ तक शृंगार रस के ही विभिन्न अंगों का सोदाहरण विवेचन है। हास्यादि अन्य रसों को चतुर्दश प्रकाश में चलता ही कर दिया गया है। पंचदश प्रकाश 'वृत्ति-वर्णन' को अर्पित है, और अन्तिम प्रकाश में 'अनरस' (रस-दोष) के पाँच भेदों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक प्रकाश में दोहों में लक्षण देखकर प्रायः कवित्त या सवैया में उदाहरण दिये गये हैं।

शृंगार रस का ज्ञान प्राप्त करने के लिए 'रसिकप्रिया' का बहुत महत्त्व है। केशव की दृष्टि में भाषा-कवि के लिए इस कृति का अध्ययन विशेष महत्त्वपूर्ण है[1]। काव्यत्व की दृष्टि से भी केशव की सम्पूर्ण कृतियों में यह सबसे श्रेष्ठ है, जैसा कि आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा।

(२) कविप्रिया :

यद्यपि 'कविप्रिया' का प्रणयन मुख्य रूप से महाराज इन्द्रजीतसिंह की प्रेमिका तथा केशव की शिष्या प्रवीणराय पातुर को कवि-शिक्षा देने के लिए हुआ

---

१. जैसे रसिकप्रिया बिना, देखिय दिन दिन दीन।
त्यों ही भाषा कवि सबै, रसिकप्रिया बिन हीन॥
—र० प्रि०, प्र० १६, छं० १५

था[1], परन्तु ग्रन्थ लिखते समय केशव के मस्तिष्क में यह विचार भी वर्तमान था कि कविता का मार्ग स्त्री तथा बालक सभी के लिए सुगम हो जाय[2]। 'कविप्रिया' के प्रति कवि की गहरी ममता है। यही कारण है कि उन्होंने अपने 'मित्र' से क्षण-क्षण में उसका पाठ करने तथा उसके सुनने में लीन रहने को ही नहीं, अपितु उसकी अग्नि, जल तथा विकट खलों से नित्य रक्षा करने को कहा है[3]। कवि ने 'कविप्रिया' के विषय में यहां तक लिख दिया है कि—

सुवरन जटित पदारथनि भूषन भूषित मान।
कविप्रिया है कवि-प्रिया कवि की जीवन-प्रान[4]॥

यह ग्रन्थ सोलह प्रभावों में विभक्त है[5]। पहले प्रभाव में मंगलाचरण, ग्रन्थ-रचना-काल आदि के पश्चात् नृप-वंश और कवि के आश्रयदाता महाराज इन्द्रजीत-सिंह की सभा की छः वेश्याओं का वर्णन है। दूसरे प्रभाव में कवि-वंश का परिचय दिया गया है। वस्तुतः तीसरे प्रभाव से ही ग्रन्थ का आरम्भ होता है। इस प्रभाव में काव्य-दोषों का निरूपण है, जिसमें गण-अगण पर भी संक्षेप में विचार किया गया है। चौथे प्रभाव में कवि-भेद, कवि-रीति और सोलह शृंगारों का वर्णन है। शृंगारों की नामावली 'रसिकप्रिया' के समान ही है। पाँचवें प्रभाव से काव्यालंकारों का वर्णन प्रारम्भ होता है; जिसके दो भेद साधारण तथा विशिष्ट बतलाये गए हैं और फिर साधारण के चार भेदों का उल्लेख किया गया है। पाचवें से आठवें प्रभाव तक साधारण अलंकारों का वर्णन है। पाँचवें प्रभाव में वर्णालंकार के अन्तर्गत यह बताया

---

१. वृषभवाहिनी अंग उर, वासुकि लसत प्रवीन।
शिव संग सोहै सर्वदा, शिवा कि राय प्रवीन॥
—क० प्रि०, प्र० १, छं० ६०।
सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया, कीन्हीं केसवदास॥
—क० प्रि०, प्र० १, छं० ६१।

२. समुझै बाला बालकहु, वर्णन पंथ अगाध।
कविप्रिया केशव करी छमियो कवि अपराध॥
—क० प्रि०, प्र० ३, छं० १।

३. पल पल प्रति अवलोकिबो पढ़िबो गुनिबो चित्त।
कविप्रिया को रक्षियो कविप्रिया ज्यों मित्त॥
अनल अनिल जल मलिन तें विकट खलन तें नित्त।
कविप्रिया रक्षियो कविप्रिया ज्यों मित्त॥
—क० प्रि०, प्र० १६, छं० ८९-९०।

४. क० प्रि०, प्र०, १६, छं० ८८।

५. केशव सोरह भाव शुभ सुबरन मय सुकुमार।
कविप्रिया के जानिये ये सोरह शृंगार॥
—क० प्रि०, प्र० १६, छं० ८७।

गया है कि कौन वस्तु किस रंग की वर्णन करनी चाहिए। उसी प्रकार छठे प्रभाव में यह निरूपण किया गया है कि कौन सी वस्तु किस आकृति तथा गुण की वर्णन की जानी चाहिए। सातवें प्रभाव में भूमि-श्री वर्णन है, जिसमें भूतल के प्राकृतिक दृश्यों एवं वस्तुओं के वर्णन की विधि का निर्देश किया गया है। आठवें प्रभाव में राज्यश्री का वर्णन है। इसमें राजा, रानी, राजकुमार, पुरोहित, सेनापति, दूत, मन्त्री, मंत्रणा, प्रयाण, हय, गज, आखेट, जलकेलि आदि बातों के वर्णन की शिक्षा दी गई है। नवें प्रभाव से पन्द्रहवें प्रभाव तक विशिष्टालंकारों एवं उनके भेदोपभेदों का तथा सोलहवें में चित्रालंकार का वर्णन किया गया है। ये ही काव्य के वास्तविक अलंकार हैं। नवें प्रभाव में 'स्वभावोक्ति' से लेकर 'उत्प्रेक्षा' तक छः अलंकारों का वर्णन है। दसवाँ सम्पूर्ण प्रभाव आक्षेपालंकार को अर्पित है। शिक्षाक्षेपालंकार के अन्तर्गत बारहमासा भी आ जाता है। ग्यारहवें प्रभाव में 'क्रम' से 'अपह्नुति' तक तेरह अलंकारों का निरूपण किया गया है। बारहवें प्रभाव में 'उक्ति' से लेकर 'युक्ति' तक छः अलंकारों का उल्लेख है। 'समाहित' से 'परिवृत्त' तक आठ अलंकारों का विवेचन तेरहवें प्रभाव में हुआ है। चौदहवाँ प्रभाव समस्त 'उपमा' अलंकार के निरूपण में लगा है। इसके साथ ही अन्त में राधा के नख से शिख तक प्रत्येक अंग का वर्णन भी किया गया है। पहले दोहे में प्रत्येक अंग के उपमान का निर्देश किया गया है और फिर कवित्त अथवा सवैया में उन उपमानों के सहारे अंग-विशेष का निरूपण हुआ है[1]। पन्द्रहवें में 'यमक' और अन्तिम प्रभाव में 'चित्रालंकार' का निरूपण हुआ है। प्रत्येक प्रभाव में लक्षण दोहे में और उदाहरण प्रायः कवित्त या सवैयों में दिये गए हैं। अधिकांश उदाहरण काव्य की दृष्टि से सरल एवं रमणीय बन पड़े हैं, जैसा कि आगे किये गए विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा।

(३) शिखनख :

'शिखनख' का रचनाकाल विदित नहीं है। इस छोटे से ग्रन्थ में केशव ने अधिकांश परम्परा से चले आते प्राचीन संस्कृत आदि भाषा के ग्रन्थों में उल्लिखित उपमानों की सहायता से नायिका के अंग-प्रत्यंग की शोभा का वर्णन किया है। कुछ उपमानों की सृष्टि कवि ने स्वयं भी की है। इस ग्रन्थ में कवि ने ३१ बातों का वर्णन किया है। उनके नाम ये हैं—१. केश, २. वेणी, ३. सीमंत, ४. पाटी, ५. भाल, ६. भ्रू, ७. नेत्र, ८. तारा, ६. कर्ण, १०. नासिका, ११. कपोल, १२. अधर, १३. दाँत, १४. चिबुक, १५. मुख, १६. ग्रीवा, १७. भुजमूल, १८. भुज, १६. अंगुली, २०. कुच, २१. कुचाग्र, २२. कुचान्त, २३. रोमावली, २४. उदर, २५. नाभि, २६. त्रिवली, २७. श्रोणी, २८. साड़ी, २६. समस्त भूषण, ३०. अंगवास तथा ३१. सकल-शरीर।

काव्य की दृष्टि से 'शिखनख' सुन्दर रचना है।

---

१. इहि विधि वरणहुँ सकल, कवि अविरल छवि अंग अंग।
कही यथामति वरणि कवि, केशव पाय प्रसंग॥
क० प्रि० (मूल), नखशिख, पृ० १५०, छं० ६६ (प्रथमार्द्ध)।

(४) छन्दमाला :

यह केशव का पिंगल-ग्रन्थ है, जिसमें वर्णिक तथा मात्रिक दोनों प्रकार के छन्दों पर विचार किया गया है। केशव की दृष्टि यहाँ मात्रिक की अपेक्षा वर्णिक वृत्तों के विवेचन की ओर अधिक रही है। कारण स्यात् यही कहा जा सकता है कि संस्कृत में वर्णिक वृत्तों का ही राज्य है, मात्रिक वृत्तों का नहीं। इस ग्रन्थ की रचना भाषा-कवियों के लिए ही हुई थी[१]।

ग्रन्थारम्भ मंगलाचरण से होता है। इसके अनन्तर एकाक्षरी छन्द से लेकर छब्बीस अक्षरों वाले छन्दों तक के लक्षण-उदाहरण दिये गए हैं। फिर दण्डक के सामान्य लक्षण का उल्लेख है। केवल एक अनंगशेखर दण्डक के लक्षण-उदाहरण के साथ ही वर्णवृत्त का प्रकरण समाप्त हो गया है। इस ग्रन्थ में जिन वर्णिक वृत्तों के लक्षण-उदाहरण मिलते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—

श्री, नारायण, रमण, तरणिजा, मदन, माया, मालती, सोमराजी, संकर, विजोहा, मंथान, ललिता, प्रमाणिका, मल्लिका, नगस्वरूपिणी, मदनमोहन, बोधक, तुरंगम, नाग-स्वरूपिणी, तोमर, हरिणी, अमृतगति, तोमर, संजुता, अनुकूला, सुपर्ण-प्रयात, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, मौक्तिकदाम, त्रोटक, सुन्दरी, मोदक, भुजंगप्रयात, तामरस, द्रुतविलम्बित, कुसुमविचित्रा, चन्द्रब्रह्म, मालती, वंशस्वनित, प्रमिताक्षरा, स्रग्विणी, पंकजवाटिका, तारक, कलहंस, हरिलीला, बसन्ततिलका, मनोरमा, मालती, सुप्रिय, निशिपालिका, चामर, नाराच, मनहरन, ब्रह्मरूपक, रूपमाला, पृथ्वी, चंचरी, करुना, मूल, गीतिका, धर्म, मदिरा, विजय, सुधा, बसुधा, माधवी, चन्द्रकला, अमल-कमल, मकरंद, गंगोदक, तन्वी, विजया, मदनमनोहर, मानिनी, हार तथा अनंगशेखर (७६)।

वर्णवृत्तों के पश्चात् ८४ छन्दों के नामों का उल्लेख मात्र है। सुरभाषा, अहि (नाग) भाषा तथा नरभाषा (पिंगल) के विवरण के बाद कवि ने छन्दों के दो प्रकार वर्णवृत्त और कला (मात्रिक) वृत्त का वर्णन किया है। इसके साथ यह भी बताया गया है कि छन्दोभंग की परख श्रवणमात्र से ही हो जाती है। तदनन्तर गाथा-प्रकरण है। यहाँ गाथा के २७ भेदों का नामोल्लेख कर गुर्विनी तथा बिग्गाहा के लक्षण दिये गए हैं। केशव ने साथ ही यह भी स्वीकार किया है कि गाथा के अनेक भेद होते हैं[२]। फिर 'दोहों' के २३ भेदों के नाम बतलाये गए हैं। 'दुष्ट दोहा' का लक्षण भी दिया गया है[३]। कवित्त, चतुष्पदी, घत्ता, नंद, उल्लाल, भेदोपभेदों सहित षट्पद (छप्पय), पज्झटिका, अरिल्ल, पादाकुलक, राजसेनी नवपदी, पद्मावती, सोरठा, कुण्डलिया, चोडामन, हाकलिका, मधुभार, आभीर, हरिगीत, त्रिभंगी, हीर,

---

१. भाषा कवि समुझै सबै सिगरे छन्द सुभाइ।
छन्दन की माला करी, सोभन केसवराइ॥
—छन्दमाला देवनागरी), छं० ३।

२. छन्दमाला (देवनागरी), छं० १८।

३. वही, छं० २३।

मदनमनोहर तथा मरहटा आदि छन्दों के सोदाहरण लक्षणों का निर्देश कर ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। केशव के सम्पूर्ण छन्द-विवेचन का आधार संस्कृत के 'वृत्त-रत्नाकर' आदि पिंगल-ग्रन्थ ही हैं और उसमें कोई नवीनता नहीं है। कुल मिलाकर यह ग्रन्थ साधारण कोटि का है। हिन्दी का सर्वप्रथम पिंगल-ग्रन्थ होने का गौरव इसे निःसंकोच दिया जा सकता है।

(आ) रीतिकाव्य-ग्रंथों का काव्य-पक्ष :

'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' ग्रन्थ केशव की काव्य प्रतिभा एवं सहृदयता के परिचायक हैं। इनमें जो स्फुट छन्द उदाहरण के रूप में आये हैं उन्हीं के आधार पर यहाँ केशव के रीतिकाव्य-ग्रन्थों के काव्य-पक्ष पर विचार किया गया है।

(१) भावव्यंजना :

केशव को प्रबन्ध-काव्यों की अपेक्षा रीतिकाव्यों में भिन्न-भिन्न मानव-भावों के अभिव्यक्त करने में अधिक सफलता मिली है। प्रेम का विश्वव्यापी प्रभाव है। मनुष्य ही नहीं, प्राणी-मात्र प्रेम से प्रभावित है। केशव ने भी अधिकांश स्फुट छन्दों में नायक-नायिका के प्रेम तथा विविध अवस्थाओं और परिस्थितियों में प्रेमी व प्रेमिका के भावों की अत्यन्त ही सुन्दर एवं मार्मिक व्यंजना की है। इन छन्दों में राधा अथवा गोपियाँ तथा रसराज कृष्ण आलम्बन के रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

अस्तु, प्रेम धीरे-धीरे अंकुरित तथा पल्लवित होता है। कृष्ण के शील, रूप एवं गुणों के सम्बन्ध में सुनकर राधा उसके दर्शन के लिए लालायित हो उठती है। दर्शन तो मिल जाते हैं, किन्तु कृष्ण के रूप में उसका मन ऐसा उलझता है कि निकाले नहीं निकलता और निकले भी कैसे, कृष्ण की मोहिनी मूर्ति राधा के दिल में बस जो गई है—

सोहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन आन बसाये।
जानें को केसव कानन ते कित ह्वै हरि नैननि माँझ सिधाये॥
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मन हीं सों मिलाये।
कैसी करौं अब क्यों निकसौं री हरेई हरे हिय में हरि आये॥

(र० प्रि०, प्र० ४, छं० २१)

राधा, कृष्ण की रूप-माधुरी पर मुग्ध है, पर यह मोहिनी एकांगी नहीं है। कृष्ण भी राधा के रूप-लावण्य पर लट्टू हुआ घर-बार छोड़कर बन-बन भटकता फिरता है—

निपट कपट हरि प्रेम को प्रकट कर
बीसो बिसे बशीकर कैसे उर आनिये।
काम को प्रहरषन कामना को बरषन,
कान्ह को संकरषन सब जग जानिये।

किधौं केशोराइ मन मोहनी को भूषन है
किधौं ब्रजबालनि को दूषण बखानिये ।
सुनत हीं छूट्यो धाम बन बन डोले स्याम
राधे तेरो नाम के उचाटन मंत्र मानिये ।
(र० प्रि०, प्र० ४, छं० २४)

नायिका 'लजीली' भी इतनी है कि नायक को छिपकर देखने पर भी उसकी आँखों में लज्जा समाई ही रहती है—

पहिले तजि आरस आरसी देखि घरीक घसै घनसारहि लै ।
पुनि पौंछ गुलाबति लौंछि फुलेल अंगौछे में आछे अंगौछन कै ।।
कहि केसव मेद जवाद सों माँजि इते पर आँजे में अंजन दै ।
बहुरे दुरि देखों तौ देखों कहा सखि लाज ते लोचन लागे रहैं ।।
(र० प्रि०, प्र० ४, छं० ७)

सुकुमारता भी उसकी हद दर्जे की ठहरी । केशों के भार से ही जब उसकी कमर लचकी जाती है तो कुचों का भार ले वह किस प्रकार चल सकेगी—

चलिहै क्यों चन्द्रमुखि कुचनि के भार भये
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है ।।
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० १०)

ऐसी लावण्यमयी नायिका पर भला नायक क्यों न मोहित हो ? फलतः दोनों ओर का प्रेम बढ़ता जाता है और दोनों ही 'मिलन' के लिए विह्वल हो उठते हैं । इस प्रसंग में केशव ने नायक-नायिका के लीला, ललित, विलास आदि विभिन्न हावों का बड़ा ही रोचक एवं सजीव वर्णन किया है । नायक के रूप में कृष्ण के 'ललित' हाव का तनिक दर्शन कर लीजिए ।

चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत हैं ।
मृदु गावत आवत वेणु बजावत मित्र मयूर लजावत हैं ।।
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं ।
घनश्याम घनैघन वेष धरे जु बने बन ते ब्रज आवत हैं ।।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २६)

नायिका की भी प्रत्येक चेष्टा कितनी स्वाभाविक है—

कोमल विमल मन विमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के ।
नुपुर की धुनि सुनि भोरें कलहंसन के,
चौंकि चौंकि परे चारु चेटवा मराल के ।

कचन के भार कुचभारनि सकुच-भार,
लचकि लचकि जात कटितट बाल के।
हरैं हरैं बोलत विलोकत हेरईं हरैं,
हरैं हरैं चलत हरत मन लाल के॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २५)

जब किसी से प्रेम हो जाता है और उससे मिलन नहीं हो पाता तो बड़ी विचित्र सी दशा हो जाती है। मन सदा उद्भ्रान्त सा रहा करता है। न तो खेल भाता है और न हँसी। संगीत की ध्वनि बाण के समान लगती है। न वस्त्र पहनने की इच्छा होती है और न कोई श्रृंगार ही अच्छा लगता है। प्रेमी से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुएँ ही रुचिकर लगती हैं। केशव के नायक कृष्ण की भी ऐसी ही दशा है—

खेलत न खेल कछू हाँसी न हँसत हरि,
सुनत न गान कान तान बान सी बहै।
ओढ़त न अंबरन डोलत दिगंबर सो,
शम्बर ज्यों शंबरारि-दुख देह को दहै॥
भूलिहू न सूंघैं फूल, फूल तूल कुम्हिलात,
गात, खात बीरा हू न बात काहू सों कहै।
जानि जानि चन्द-मुख केसव चकोर सम,
चन्द्रमुखी! चन्द ही के बिम्ब त्यों चितै रहै॥
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० २०)

दशा होते-होते हो जाती है यह कि—

पल ही पल सीतल होत सरीर, बिचारे सबै उपचार निदानें।
जो करिये तन खण्डन मण्डन, चित्त कछू सुख दुःख न आनें॥
केसव कान सुनैं समुझै नहि, बूझिय कौनहि को यह मानें।
योग लियो कै वियोग है काहु को लोग कहा इन रोगनि जानें॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ५२)

नायिका को भी न बोलना सुहाता है और न खेलना, न हँसना अच्छा लगता है और न देखना ही। प्रतिक्षण उसका चित्त भ्रमित-सा रहता है—

बोल्यो सुहाइ न खेल्यो हँस्यो अरु देख्यो सुहाइ न दुःख बढ़्यो सो।
नीकी यों बात सुनै समुझै न मनो मन काहू के मोद मढ़्यो सो॥
केशव ढूंढत यों उर में मनमूड़ भयो गुण गूढ़ पढ़्यो सो।
को करै साज बजावै को बीनहि वाको कछू चित्त चाव चढ़्यो सो॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० २७)

नायक-नायिका के बीच कुछ वाक्चातुर्य और परिहास भी प्रेम-प्रवृत्ति का एक मनोहर अंग है। केशव के नायक कृष्ण भी कभी-कभी ऐसी छेड़-छाड़ करते देखे

जाते हैं। एक बार कृष्ण एक गोपी को मार्ग में रोककर खड़े हो जाते हैं और उससे कहने लगते हैं कि 'दै दधि'। गोपी, कृष्ण को दही देना चाहती हुई भी देने से मना कर देती है और उसे 'बेच्यौ न बेच्यौ तो ढारि न दैहैं' इन शब्दों में खिझाने लगती है। कृष्ण और गोपी के उत्तर-प्रत्युत्तर को तनिक ध्यान से सुनिये और 'प्रेम की रार' का आनन्द लीजिए—

दै दधि दीनो उधार हो केसव दान कहा अरु मोल लै खैहैं।
दीनों बिना जु गई हो गई, न गई न गई घर ही फिरि जैहैं॥
गौ हितु बैर कियो कबहो हितु बैरु किये वर नीको ह्वै रैहैं।
बैरु के गोरस बेचहुगी अहो बेच्यौ न बेच्यौ तो ढारि न दैहैं॥

(र० प्रि०, प्र० १६, छं० ६)

प्रायः नायिका की अन्तरंग सखियां भी विनोद-परिहास में शामिल हो जाती हैं। एक दिन की बात है कि कृष्ण स्त्री का वेश धारण कर आते हैं। गोपियाँ तुरन्त राधा के समीप जाकर कहती हैं कि महावन से रति के समान सुन्दर एक रमणी आई है, जो इस प्रकार गाती है मानों स्वयं सरस्वती पधारी हों। राधा उसे बुला लाने के लिए कहती है। उसके आने पर राधा उससे आदरपूर्वक मिलती है। इस दृश्य को देखकर सभी गोपियाँ खिलखिला कर हँस पड़ती हैं। राधा को छकाने की गोपियों की यह युक्ति निराली ही है।

आई है एक महावन ते तिय गावत मानों गिरा पगु धारी।
सुन्दरता जनु काम की कामिनी बोलि कह्यो वृषभानु दुलारी॥
गोपि कै ल्याई गोपालहि वै अकुलाई मिलीं उठि सादर भारी।
केशव भेंटत ही भरि अंक हँसी सब कोक दै गोप कुमारी॥

(र० प्रि०, प्र० १४, छं० १६)

राधा के साथ हँसी-मजाक तो हो गया, पर भला कृष्ण कैसे बच सकते हैं। एक गोपी खाली मटकी को सिर पर रखकर कुछ छाछ की छींटें मटकी पर डाले हुए उस मार्ग से होकर निकलती है जहाँ कृष्ण खड़े हैं। कृष्ण तुरन्त आगे बढ़कर उस मटकी को सिर से उतार लेते हैं। कृष्ण मटकी को खाली देखकर खिसियाने से हो जाते हैं। उधर गोपी मुख पर अंचल डालकर हँसने लगती है—

सखि बात सुनो इक मोहन की निकसी मटुकी शिर री हलकै।
पुनि बाँधि लई सुनिये नतनारु कहूँ कहूँ बुन्द करी छलकै॥
निकसी उहि गैल हुते जहँ मोहन लीनी उतारि जबै चलकै।
पतुकी धरी स्याम खिसाई रहे उत ग्वार हँसी मुख आंचल कै॥

(र० प्रि०, प्र० १४, छं० १७)

यदि हँसी में भी प्रेमी अपने प्रिय से कोई कटु बात कह देता है तो उसके हृदय पर बड़ा भारी आघात पहुँचता है। एक दिन कृष्ण हँसी में राधा से कह बैठते हैं कि जिसको पिता ने अपने घर से निकाल दिया है वह उनके साथ प्रेम किस प्रकार

निभा सकेगी। यह सुनते ही उत्तर तो देना दूर रहा, राधा की आँखों में आँसुओं की धारा उमड़ आती है। सान्त्वना देने पर भी आधी रात तक उसका सिसकना बन्द नहीं हो पाता—

एक समै इक गोपि सों केसव कै सहु हाँसि कि बात कही।
या कहं तात दई तजि ताहि कहा हमसों रस रीति नहीं॥
को प्रति उत्तर देइ सखी दृग अँसुन की अवली उमहीं।
उर लाय लई अकुलाय तऊ अधिरातक लौं हिलकी न रही॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४८)

प्रेम पूर्ण स्वत्व चाहता है। प्रेमी को यह भी सह्य नहीं होता कि उसका प्रिय किसी अन्य से भी प्रेम करे। एक दिन की बात है कि एक गोपी हँसकर कृष्ण से कुछ पूछ रही है। सहसा कृष्ण के मुँह से किसी अन्य स्त्री का नाम निकल पड़ता है। बस, फिर तो गोपी के हाथ का पान का बीड़ा हाथ में और मुँह का मुँह में ही रह जाता है और आतुरतावश (नाम के) शब्दों के साथ ही उसकी आँखों से अविरल आँसू बहने लग पड़ते हैं—

बूझत ही वह गोपी गुपालहि आजु कछू हँसि कै गुणगार्याहि।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि कैसे धौं आइ गयो ब्रजनार्याहि॥
खाति खवावति ही जु बिरी सु रही मुख की मुख हाथ की हार्याहि।
आतुर ह्वै उन आँखिन ते अँसुआ निकसे अखरानि के सार्याहि॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५)

अपनी सखी के अंग पर नायक द्वारा किये गए रति-चिह्नों को देखकर तो नायिका के हृदय में ऐसी आह उठती है कि उसे बरबस कहना ही पड़ता है कि 'नाह के नेह के मामिले' में अपनी छाया का भी विश्वास न करना चाहिए—

अंग अलि धरिदे अंगियाउ न आयु तें नींद न आवन दीजै।
जानति हौं जिय नाते सखीन के लाजहू को अब साथ न लीजै॥
थोरेहि द्यौस तें खेलन तेऊ लगीं उनसों जिन्हें देखि कै जीजै।
नाह के नेह के मामिले आपनी छाँहहु की परतीति न कीजै॥

(क० प्रि०, प्र० १२, छं० ५)

किन्तु 'नाह के नेह के मामिले' में होता तो सदा से यही आया कि—

आपु न हूजै दुखी दुख जाके हो ताहि कहा कबहूँ दुख दीजै॥
जा बिन और न सुहाइ न केशव, ताहि सुहाइ सु तौ सब कीजै।
भाग बड़ो जु रची तुम सों वह तौ बिझकाइ कहो कहं लीजै॥
जो रिसियाइ तो जैये मनावन तातो है दूध सिराइ तौ पीजै।

(र० प्रि०, प्र० १२, छं० २०)

सीख तो अच्छी मिली, पर परिस्थिति यहाँ की कुछ और ही है—

शीतल हूँ हीतल तिहारे न बसत वह,
तुम न तजत तिल ताको उरताप गेहु।

आपने जो हीरा को पराये हाथ ब्रजनाथ,
दै के तो श्रकाथ हाथ मँन ऐसो मन लेहु ॥
एते पर केशोराय तुम्हें ना प्रवाह वाहि।
वहै जक लागी भागी भूंख सुख भूल्यो देहु।
माँजो मुख छाँजो छिन छल न छबीले लाल।
ऐसी तो गँवारिन सों तुमहूँ निबाहो नेहु ॥
(र० प्रि०, प्र० १२, छं० २६)

छबीले लाल को नेह निबाहने की सूझती है तो यमुना के तट पर जा पहुँचते हैं और प्यारी का मन रख लेते हैं। प्यारी खिल उठती है और उसका सारा मान सहसा उल्लास में परिणत हो जाता है।

गिरि गिरि उठि उठि रीझ रीझ लागें कण्ठ।
बीच बीच न्यारे होत छवि न्यारी न्यारी सों ॥
आपुस में अकुलाइ आवे आवे आखरनि।
आछी आछी बातें कहैं आछी एक ह्यारी सों ॥
सुनत सुहाइ सब समुझि परें न कछू।
केशोराइ की सौं दुरें देखो मैं हुस्यारी सों ॥
तरणि तनूजा तीर तरुवर तर ठाढे।
तारी दै दै हँसतु कुमार कान्ह प्यारी सों ॥
(र० प्रि०, प्र० १४, छं० १४)

कभी-कभी तो नायिका ऐसी रूठती है कि प्रिय के बार-बार मनाने पर भी नहीं मानती। पर अन्त में उसे अपने किए पर मन ही मन पछताना पड़ता है—

बार बार बोले जब बोल्यो नाँहि बालिश तू,
बालक ज्यौं बोलिवे को कत बिललातु है।
ज्यों ज्यों पाँई परे त्यों त्यों पाँइन तें पीन भयो,
होत कहा अब किये माखन त्यौं गातु है ॥
केशोदास सब छाँड़ि कियो हठ ही सौं हेत,
ताहू छांड़ि जिय जिये बिन कहा जातु है।
ऐसे प्यारी पिय ही सौं मान्यो न मनायो तब,
ऐसी तोहि बूझिये तू पाछे पछितातु है ॥
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० १४)

जब नायिका बहुत मनाने पर भी नहीं मानती तो नायक भी रुष्ट होकर मान कर बैठता है। नायक का रूठ कर चला जाना था कि नायिका के हृदय में पुनः प्रम उमड़ पड़ता है और वह झट अपनी एक सखी को नायक को मना लाने को भेजती है। सखी जाकर नायक से कहती है—

बारबार बरजी मैं सारस सरस मुखी,
आरसी लै देखि मुख, या रस में बोरिहै।

सोभा के निहोरे तौ निहारति न नेक हू तू,
हारी हैं निहोरि सब कहा केहू खोरिहै ।।
सुख को निहोरो जौ न मान्यो सो भली करी न,
केशोराय की सौं तोहि जोऽब मान मोरिहै ।।
नाह के निहोरे किन मानति निहोरत है,
नेह के निहोरे फेरि मोहि तू निहोरिहै ।।
(क० प्रि०, प्र० ८, छं० ४०)

प्रेम-प्रसंग में अभिसार का भी अपना महत्त्व है। अभिसार प्रेम-परीक्षा की कसौटी है। कुल-कानि तथा लोक-लाज का तनिक भी ध्यान न करते हुए प्रेमिका का अपने प्रेमी से मिलने के लिए जाना उसके प्रगाढ़ प्रेम का परिचायक है। केशव की प्रेमान्ध नायिका प्रिय से मिलने के लिए चली जा रही है, उसे न तो 'चौपालों' में बैठे हुए वृद्धजनों की चिन्ता है और न गली में खेलते हुए बालकों अथवा आती-जाती स्त्रियों की।

गोप बड़े बड़े बैठे अथाइन केशव कोटि सभा अवगाहीं।
खेलत बालक-जाल गलीन में बाल बिलोकि-बिलोकि बिकाहीं ।।
आवति जाति लुगाई चहूँ दिशि घूँघुट में पहिचानति छाहीं।
चंद सो आनन काढ़ि कहाँ चलि सूझत है कछु तोहि कि नाहीं।।
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३६)

रात्रि का समय है। आकाश में मेघ छाए हैं। चारों ओर अंधकार का ही साम्राज्य है। प्रेमोन्मत्त नायिका ऊबड़-खाबड़ मार्ग में काँटों और कीच को लाँघती हुई अकेली आई है। उसका साहस देखकर नायक भी चकित रह जाता है। सचमुच इस प्रकार बिना बुलाये आकर नायिका ने नायक को मोल ले लिया है।

लीने हमें मोल अनबोलें आई जान्यों मोह,
मोहि घनश्याम घनमाला बोलि ल्याई है।
देखो ह्वै है दुख जहाँ देहऊ न देखी परै,
देखो कैसे बाट केशो दामिनी दिखाई है ।।
ऊँचे नीचे बीच कीच कंटकन पीड़े पग,
साहस गयंद गति अति सुखदाई है।
भारी भयकारी निशि निपट अकेली तुम,
नाहीं प्राणनाथ साथ प्रेम जो सहाई है ।।
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३१)

नायिका प्रेम-परीक्षा में सफल निकलती है और उसकी प्रिय से मिलने की चिर साध पूरी हो जाती है। अब देखने को दो शरीर हैं परन्तु दोनों के प्राण और मन एक हैं।

एकै गति एकै मति एकै प्राण एकै मन,
देखिबे को देह द्वै हैं नैनन की जोरी सी।
(र० प्रि०, प्र० १५, छं० ९)

संयोग के अनन्तर वियोग, प्रकृति का नियम है। परन्तु प्रेमी के लिए अपने प्रिय से बिछुड़ने की संभावना ही कितनी दुःखदायिनी होती है, इसका अनुभव उसे ही हो सकता है जिसने वियोग-पीड़ा को सहन किया है। केशव की नायिका का प्रिय आज परदेश जा रहा है। बेचारी यह नहीं समझ पाती कि जाते समय अपने प्रिय से क्या कहे। यदि वह रहने को कहती है तो प्रभुता प्रकट होती है। यदि वह चले जाने को कहती है तो अप्रेम सूचित होता है। यदि कहती है कि जैसा अच्छा लगे वैसा करो तो उदासीनता प्रकट होती है। यदि कहती है कि अपने साथ ले चलो तो लोक-लाज के निर्वाह करने का प्रश्न आता है। अंत में वह अपने प्रिय से ही पूछती है कि उस अवसर पर उसे क्या कहना चाहिए।

जो हौं कहौं 'रहिये' तो प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौं तो हित हानि, नाहिं सहनो।
'भावै सो करहु' तो उदास भाव प्राणनाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो॥
केशोराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जोपै नाहीं राजा रहनो।
तैसियै सिखाओ सीख तुमही सुजान प्रिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो॥
(क० प्रि०, प्र० १०, छं० २०)

इस पर भी नायक चला ही जाता है। कार्य-विवशता जो ठहरी। बस फिर तो नायिका विह्वल हो उठती है। भ्रमरी के समान वन-वीथिकाओं में भ्रमण करती फिरती है। चातकी के समान 'पी पी' की रट लगाए रहती है। चकई के सदृश चन्द्रमा को देखकर चुप हो जाती है। मोर की ध्वनि सुनकर इधर-उधर छिप जाने का प्रयास करने लगती है।

भौंरनि ज्यो भ्रमत रहत वनवीथिकान,
हंसिनि ज्यौं मृदुल मृणालिका चहति है।
पीउ पीउ रटत रटत चित चातकी ज्यौं,
चन्द चितै चकई ज्यौं चुप ह्वै रहति है॥
हिरनी ज्यौं हेरति न केशरि के कानन को,
केका सुनि व्याली ज्यौं बिलान ही कहति है।
केशव कुँवर कान्ह विरह तिहारे ऐसी,
सुरति न राधिका की मूरति गहति है॥
(र० प्रि०, प्र० ११, छं० १०)

प्रिय के वियोग में नायिका की अत्यन्त ही शोचनीय दशा हो गई है। आँखों से निरन्तर अश्रुधारा बहती रहती है। श्वासों के साथ ही रात्रि भी बढ़ती जा रही है और काटे नहीं कटती। उसकी हँसी भी उड़ गई है। नींद बिजली की भाँति

क्षण मात्र को ही आकर चली जाती है। चातकी के समान 'पीऊ पीऊ' की रट लगी रहती है। शरीर प्रचण्ड ताप से तप रहा है।

मेह कि ह्वै सखि आंसू उसांसनि साथ निसा सु विसासिनी बाढ़ी।
हांसी गयो उड़ि हंसिनि ज्यौं चपला सम नींद भई गति काढ़ी॥
चातकि ज्यों पिउ पीउ रटै चढ़ी ताप तरंगिनी ज्यों तन गाढ़ी।
केशव जाकी दशा सुनि हौं अब आगि बिना अंग अंगनि डाढ़ी॥

(क० प्रि०, प्र० ८, छं० ४२)

नायिका की विरह-व्यथा दिनों-दिन बढ़ती ही जा रही है और अब तो वह बार-बार चौंक-चौंक कर इधर-उधर देखती है। पृथ्वी पर पांव लड़खड़ाते हैं और अपनी ही परछाईं देखकर डर सी जाती है। पूछते हैं कुछ और उत्तर देती है कुछ और ही। क्षण भर में ही वह सारी सुध-बुध भूल गई है। न तो उसे घूंघट निकालने की चिन्ता है और न वस्त्र सम्भालने की। ऐसा लगता है जैसे उसे किसी की नजर लग गई हो, वायु का प्रकोप हो गया हो अथवा किसी ने कुछ जादू-टोना करा दिया हो।

केशव चौंकति सी चितवै छिति पाँ धर कै तरकै तकि छाहीं।
बूझियै और कहै मुख और सु और की और भई क्षण माहीं॥
डीठि लगी किधौं बाइ लगी मन भूलि पर्‌यो कै कर्‌यो कछु काहीं॥
घूंघट की घट की पट की हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं।

(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४३)

उसकी वियोग-व्यथा तो यहाँ तक बढ़ जाती है कि सारा उपचार ही निष्फल जाता है।

सीतल समीर टारि, चंद्रचन्द्रिका निवारि,
केशोदास ऐसे ही तो हरषु हिरातु है।
फूलन फैलाय डारि, झार डारि घनसार,
चंदन को टारि चित्त चौगुनो पिरातु है॥
नीर हीन मीन मुरझानी जीवै नीर ही पै,
छीर के छिरके कहा धीरजु बिरातु है।
पाई है तैं पीर किधौं यौंहीं उपचार करै,
आग को तो दाध्यो अंग आगही सिरातु है॥

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ३८)

सखियाँ भी अनेक प्रकार से सान्त्वना दे देकर हार जाती हैं। पर उनकी शिक्षा उसके समझ में नहीं आती। अंत में वे खीझ कर चल पड़ती हैं—

उठि चलौ जो न मानै काहू की बलाइ जानै।
मान सौं जो पहिचानैं ताके आइयतु है॥
याके तौ है आजु ही मिलौं कि मरि जाऊं माई।
आगि लागे मेरी आली मेह पाइयतु है॥

(र० प्रि०, प्र० ११, छं० ६)

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव को शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों के निरूपण में पूर्ण सफलता मिली है। इनके छन्द शृंगाररस का चित्रण करने वाले हिन्दी साहित्य के किसी भी कवि के छन्दों के समकक्ष रखे जा सकते हैं। 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' में इस प्रकार के अन्य बहुत से छन्द भरे पड़े हैं जो कवि की सूक्ष्मदर्शिता तथा सहृदयता के द्योतक हैं। इन छन्दों को दृष्टि में रखते हुए कवि को हृदयहीन कहना उसके साथ अन्याय करना है। हाँ, कहीं-कहीं कुछ छन्दों में अश्लीलता अवश्य आ गई है पर इसके लिए केशव को ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यह बहुत कुछ समय तथा समाज का प्रभाव है जिसमें केशव हुए थे। प्रायः कोई भी तत्कालीन शृंगारी कवि इस दोष से अपने आप को सर्वथा बचा नहीं सका है। औरों की तो बात ही क्या, सूरदास जैसे महाकवि भी इस दोष की लपेट में किसी न किसी अंश तक आ ही गए हैं।

(२) वर्णन :

प्रकृति-वर्णन :

केशव ने अपने रीतिकाव्य-ग्रन्थों में प्रकृति का उपयोग तीन रूपों में किया है—(१) नामोल्लेख शैली के रूप में (२) उद्दीपन के रूप में तथा (३) आलंकारिक रूप में।

'कविप्रिया' में कवि ने अधिकांश प्रकृति के दृश्यों अथवा पदार्थों के वर्णन में नामोल्लेख वाली शैली को अपनाया है। उसमें प्रायः सभी दृश्यों के वर्णन के अन्तर्गत उनसे सम्बन्ध रखने वाली वस्तुओं के नाम गिनाए गए हैं। कवि के मत में किसी देश का वर्णन करने में रत्न-खानि, पशु, पक्षी, धन, वस्त्र, सुगन्ध, सौन्दर्य, नदी, नगर, गढ़, भाषा और पहनावे का वर्णन अपेक्षित है (क० प्रि०, प्र० ७, छं० २)। अतः केशव ने इन वस्तुओं का केवल नामोल्लेख ही किया है[1]। इसी प्रकार नगर वर्णन में बन, बाग, अटा, ध्वजा आदि के नाममात्र ही गिनाए गए हैं[2]।

---

१. आछे आछे असन, बसन, बसु, बासु, पशु,
दान, सनमान, यान, बाहन बखानिये।
लोग, भोग, योग, भाग, बाग, राग, रूपयुत,
भूषननि भूषित, सुभाष, मुख जानिये।
सातो पुरी तीरथ, सरित, सब गंगादिक,
केशोदास पूरण पुराण, गुन गानिये।
गोपाचल ऐसे गढ़, राजा रामसिंह जू से,
देशनि की मणि, मध्यदेश जानिये।
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ३।

२. चहूँभाग बाग बन मानहु सघन घन,
सोभा की सी शाला, हंसमाला सी सरित बर।

केशव ने वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा शिशिर आदि षड् ऋतुओं को क्रमशः शिव का समाज, शवर-समूह, कालिका, शारदा, विरहिणी और वारनारि (गणिका) के रूप में देखा है[1]। ऋतुओं में होने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य का यहाँ पूर्णतया अभाव ही है।

केशव ने अलंकार के रूप में प्रकृति से स्थल-स्थल पर काम लिया है। जलकेलि के समय 'चन्द्रमुखी' युवतियों की उपमा कमल से देते हुए कवि कहता है—

केसोदास आस पास भंवर भंवत जल-
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहिये।

(क० प्रि०, प्र० ८, छं० ३७)

नायिका के सुकुमार शरीर की उपमा कवि ने लहलहाती हुई लता से दी है—

काम ही की दुलही सी काके कुल उलही सु,
लहलही ललित लता सी लोल सोहिये।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० १०)

एक स्थल पर षोडश-वर्षीया नायिका और चम्पा की माला में साम्य देखते हुए कवि का कथन है—

चातुरी की शाला मानि, आतुर ह्वै नंदलाल,
चंपे की सी माला बाला उर उरझाइये।

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ३०)

विरहिणी की नींद के क्षण भर के लिए आ जाने और फिर चले जाने की उपमा के लिए कवि ने 'चपला' को चुना है।

चपला सम नींद भई गति काढ़ी। (क० प्रि०, प्र० ८, छं० ४२)

लोगों के अंगुली उठाने पर नायक-नायिका की प्रीति के मुरझा जाने की उपमा कुम्हड़ की बतिया से देते हुए कवि कहता है—

प्रीत कुम्हेड़े की जैहै जई सम, होति तुम्हें अंगुरी पसरोहीं॥

(क० प्रि०, प्र० १०, छं० ५)

इसी प्रकार नायक-नायिका की विरह-दशा के वर्णन तथा मान-मोचन के प्रसंग में कवि ने बहुत से स्थलों पर प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है। केशव

ऊँचे ऊँचे अटनि पताका अति ऊँची जनु,
कौशिक की कीन्हीं गंगा खेलत तरल तर॥
आपने सुखनि आगे निन्दत नरेन्द्र और,
घर घर देखियत देवता से नारि नर।
केसोदास त्रास जहाँ केवल अदृष्ट ही को,
वारिये नगर और ओरछा नगर पर।
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ५।

1. क० प्रि०, प्र० ७, छं० २८, ३०, ३२, ३४, ३६ तथा ३८।

की विरहिणी का शीतल वस्तुओं से उपचार हो रहा है। किन्तु उसका विरह-ताप कम होने के स्थान पर और भी बढ़ता ही जाता है[1]। राधा-कृष्ण के मान-मोचन के प्रसंग में भी कवि ने प्रकृति की वस्तुओं का उद्दीपन के रूप में उपयोग किया है[2]।

केशव ने बारह मासों का वर्णन आक्षेपालंकार के अन्तर्गत किया है। प्रत्येक मास में कोई-न-कोई नायक परदेश जाने के लिए तैयार बैठा है। उसकी प्रेमिका विविध प्रकार की प्रकृति की उद्दीपक वस्तुओं का उल्लेख कर उसे जाने से रोकती है। केशव ने सारे बारहमासे के प्रसंग में अधिकांश प्रकृति से उद्दीपन का काम लिया है, जैसे चैत्र मास के वर्णन में[3]।

बिम्बग्राहक स्वतंत्र प्रकृति-वर्णन केशव के रीतिकाव्यों में अधिकांश नहीं पाया जाता। किन्तु फिर भी कुछ वर्णन ऐसे हैं जहाँ केशव प्रकृति के स्वाभाविक एवं

---

१. शीतल समीर टारि चन्द्रचन्द्रिका निवारि,
केशोदास ऐस ही तो हरष हिरातु है।
फूलन फैलाइ डारि झारि डारि घनसार,
चन्दन को डारे चित्त चौगुनो पिरातु है।
नीर हीन मीन मुरझाइ जीवैं नीर ही ते,
क्षीर के छिरीके कहा धीरज धिरातु है।
पाई हैं तैं पीर कंधों यों ही उपचार करैं,
आगि को तो डाढो अंग आग ही सिरातु है।
—र० प्रि०, प्र० १, छं० २५ तथा क० प्रि०, प्र० ६, छं० ३८ (पाठान्तर से)।

२. घननि की घोर सुनि, मोरन के सोर सुनि,
सुनि सुनि केशव अलाप आली गन को।
दामिनि दमक देखि, दीप की दिपति देखि,
देख शुभ सेज, देखि सदन सुमन को।
कुंकुम की बास, घनसार की सुबास भये,
फूलनि को बास मन फूलि के मिलन को।
हँसि-हँसि मिले दोऊ अनही मिलाये मान,
छूटि गयो एकै बार राधिका रवन को।
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २६ तथा र० प्रि०, प्र० १०, छं० २७।

३. फूलीं लतिका ललित तरुणितर, फूले तरवर।
फूली सरिता सुभग, सरस फूले सब सरवर॥
फूलीं कामिनि, कामरूप करि कंतनि पूजहिं।
शुक सारो कुल हँसैं, फूलि कोकिल कल कूजहिं॥
कहि केशव ऐसी फूल महँ फूलहिं शूल न लाइये।
पिय आपु चलन की का चली चित्त न चैत चलाइये॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० २४।

सुन्दर चित्र भी उपस्थित कर सके हैं। इस कथन के प्रमाणस्वरूप 'सावन' तथा 'भादों' के वर्णन प्रस्तुत किए जा सकते हैं। सावन का कैसा सजीव रूप है[१]।

वस्तु तथा दृश्य-वर्णन :

'कविप्रिया' में केशव ने 'साधारण' अलंकारों के अन्तर्गत अनेक वस्तुओं तथा दृश्यों के वर्णन का विधान किया है परन्तु उनके अधिकांश वर्णन परम्परागत हैं। उनके सागर, आश्रम आदि के वर्णन सुनी सुनाई बातों के आधार पर ही किए गए प्रतीत होते हैं। सागर को उन्होंने शंकर का शरीर, कश्यप का घर, संत हृदय तथा नागरिक के रूपों में देखा है[२]। इसी प्रकार कवि ने आश्रम का वर्णन भी बिना देखे परम्परा से चली आती बातों के ही आधार पर किया है। अतः उसमें उतनी स्वाभाविकता तथा सजीवता नहीं आ पाई है। वह शिव का सदन बन कर ही रह गया है[३]। परन्तु फिर भी इस प्रकार के छन्द देखने में आते हैं, जहाँ कवि ने स्वाभाविक एवं यथातथ्य चित्र उपस्थित किए हैं। ऐसे दो उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। कवि ने सेना-प्रयाण का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। दिग्विजय के लिए प्रस्थान करती हुई राम की सेना का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

---

१. केशव सरिता सकल मिलत सागर मन मोहैं।
ललित लता लपटात तरुन तन तरवर सोहैं॥
रुचि चपला मिलि मेघ चपल चमकत चहुँ ओरन।
मन भावन कहँ भेंटि भूमि कूजत मिस मोरन॥
यहि रीति रमन रमनी सकल लागे रमन रमावनैं।
पिय गमन करन की को कहै गमन सुनिय नहि सावनैं॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० २८।

२. भूति विभूति पियूषहु की विष ईश शरीर कि पाप विपोहै।
है किधौं केशव कश्यप को घर देव अदेवन के मन मोहै॥
संत हियो कि बसैं हरि संतत शोभ अनन्त कहैं कवि को है।
चन्दन नीर तरंग तरंगित नागर कोऊ कि सागर सोहै॥
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० २६।

३. केशोदास मृगज बछेरु चूषैं बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक वदन है।
सिंहन की सटा ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणनि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध नहीं मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसन,
ऋषि को निवास कैधौं शिव को सदन है।
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० १३।

नाद पूरि, धूरि पूरि, तूरि बन, चूरि गिरि,
सोख सोख जल भूरि, भूरियल गाथ की।
केशोदास आसपास ठौर ठौर राखि जन,
तिनकी संपत्ति सब आपने ही साथ की॥
उन्नत नवाय, नत उन्नत बनाय भूप,
शत्रुन की जीविका सुमित्रन के साथ की।
मुद्रित समुद्र सात, मुद्रा निज मुद्रित कै,
आई दस दिसि जीति सेना रघुनाथ की।
(क० प्रि०, प्र० ८, छं० २४)

जल-केलि का चित्र भी कितना यथातथ्य बन पड़ा है—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हँसि हंस-बंस,
एक हंसिनी सी बिसहार हिये रोहिये।
भूषण गिरत एक लेत बूड़ि बीचि-बीच,
मीन-गति-लीन, हीन उपमा न टोहिये॥
एकै मत कै कै कंठ लागि बूड़ि बूड़ि जात,
जलदेवता सी दृग देवता बिमोहिये।
केशोदास आसपास भँवर भँवत जल-
केलि में जलजमुखी जलज सी सोहिये॥
(क० प्रि०, प्र० ८, छं० ३७)

नखशिख-वर्णन :

केशव ने 'कविप्रिया' में नखशिख वर्णन के अन्तर्गत नायिका के भिन्न-भिन्न अंगों का वर्णन अलग-अलग कवित्त में किया है और प्रत्येक अंग के लिए संदेहालंकार के सहारे अनेक उपमानों का उल्लेख किया है। 'शिखनख' ग्रन्थ में भी कवि ने इसी प्रणाली का अनुसरण किया है। उनके अधिकांश उपमान परम्परागत हैं, परन्तु कुछ उपमानों की सृष्टि उन्होंने स्वयं भी की है। उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जिनका अंग-विशेष से कोई सम्बन्ध अथवा साम्य नहीं है, जैसे कटि का 'भूत की मिठाई', 'साधु की झुठाई', 'स्यार की ढिठाई' आदि, ग्रीवा का 'कवित्व रीति आरभटी, सात्विकी, 'भारती' आदि अथवा वाणी का 'इन्दिरा के मन्दिर की झांई' उपमान देना। अधिकतर वर्णन इस प्रकार के ही हैं परन्तु कुछ कवित्त ऐसे भी दिखाई पड़ते हैं जहाँ केशव के अंग-विशेष ने सौन्दर्य को पूर्णतया झलका दिया है, जैसे अधर अथवा केश का वर्णन। कवि ने 'अधर' का वर्णन इस प्रकार किया है—

अधर अरुण अति सुबुधि सुधा के घर,
कोमल अमल दल द्युति छीनि लीनी है।
केशव सुगन्ध मंदहासयुत कौन काम,
विद्रुम कठोर कदु बिम्ब मति हीनी है।

सूक्षम सुरेख अति सूधी सूधी सविशेष,
चतुर चतुरमुख रेखा रचि कीनी है।
मानों मैन गुरु हरि नाह के नयन गति,
गनि गनि लेवे कहूँ विद्या गनि दीनी है।
(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ३८)

केशव का सर्वांग-वर्णन भी कैसा स्वाभाविक है—

चन्द्र कैसो भाग भाल भृकुटी कमान ऐसी,
मैन कैसे पैने शर नैननि विलास है।
नासिका सरोज गंधवाह से सुगंधवाह,
दार्‍यो से दशन कैशो बिजुरी सो हास है।
भाई ऐसी ग्रीव भुज पान सो उदर अरु,
पंकज से पांय गति हंस की सी जास है।
देखी है गुपाल एक गोपिका में देवता सी,
सोने सो शरीर सब सोंधे की सी बास है।
(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ८७)

(३) अलंकार-योजना :

कविप्रिया :

इस ग्रन्थ में केशव ने विशिष्टालंकार के अन्तर्गत ३७ प्रमुख अलंकारों का विवेचन करते हुए उनके उदाहरण दिए हैं। प्रायः सभी उदाहरण सुन्दर हैं। यहाँ कुछ उदाहरण पाठकों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किए जाते हैं।

'रूपकातिशयोक्ति' की सहायता से नायिका के अंगों की शोभा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरणों सुन बुद्धि सके छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से ब्वै॥
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै॥
(क० प्रि०, प्र० १२, छं० १८)

नायिका सखी से कहती है कि जो मैं कृष्ण से हँस कर बातें करती हूँ तो सब लोग मेरी हँसी करते हैं, जो लज्जा को तिलांजलि दे उनकी ओर निहारती हूँ तो लोग मुझसे घृणा करते हैं, कुछ बातें करती हूँ तो निन्दा होती है, जो उनकी छवि को मन में धारण करती हूँ तो काम जागृत होता है। इसी कारण मन में कोई उत्साह नहीं होता। भोली-भाली नायिका का इस विवशता का चित्रण 'अतिशयोक्ति' अलंकार के द्वारा बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है।

हँसि बोलत ही जु हँसे सब केशव, लाज भगावत लोक भगै।
कछु बात चलावत धैरु चलै मन आनत ही मनमत्थ जगै॥

सखि तू जु कहै सु हुती मन मेरेहु जानि यहै न हियो उमगै।
हरि त्यों टुक डीठि पसारत ही अंगुरीन पसारन लोक लगै॥
(क० प्रि०, प्र० १३, छं० ४०)

'विभावना' अलंकार के सहारे केशव ने नायिका के सहज सौन्दर्य का भी बड़ा ही सजीव चित्रण किया है।

पूरन कपूर पान खाये कैसी मुखबास,
अधर अरुण रुचि सुधा सों सुधारे हैं।
चित्रित कपोल, लोल लोचन, मुकुर ऐन,
अमल झलक, झलकनि मोहि मारे हैं।
भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे हू होंहि,
आंजी ऐसी आंखें केशोराय हेरि हारे हैं।
काहे को सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं।
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० १२)

अवध के राजकुमारों के रूप-वर्णन में 'स्वभावोक्ति' अलंकार का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

पीरी पीरी पाट की पिछौरी कटि केशोदास,
पीरी पीरी पागें पग पीरिये पनहियाँ।
बड़े-बड़े मोतिन की माला बड़े बड़े नैन,
भृकुटी कुटिल नान्हीं नान्हीं बघनहियाँ,
बोलनि, चलनि, मृदु हँसनि चितौनि चारु,
देखत ही बनै पै न कहत बनै हियाँ।
सरजू के तीर तीर खेलें चारों रघुबीर,
हाथ हँ हँ तीर राती रातियै धनुहियाँ।
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ६)

ऐसे उदाहरण 'कविप्रिया' में कम ही हैं, जहाँ कवि की कल्पना अस्वाभाविक हो गई हो अथवा चमत्कार-प्रदर्शन की रुचि से प्रेरित होकर उसने अलंकार-योजना की हो। 'श्लेष' के सहारे उसने प्रवीणराय को रमा, शारदा और शिवा बड़ी से बड़ी देवियाँ तक बना दिया है (क० प्रि०, प्र० १, छं० ५८-६०)। पर केशव की ये कल्पनाएँ अस्वाभाविक हो गई हैं।

शिखनख :

इस ग्रन्थ में नायिका के भिन्न-भिन्न अंगों की शोभा का वर्णन विशेषतः 'संदेहालंकार' के सहारे किया गया है। उदाहरणार्थ कुचों का वर्णन है।

किधौं मत्त मनोभव इभकुंभ देखियत,
उथलतें उपजत सुभा उठी ढाल के।
किधौं चक्रवाक जुग किधौं एकताल गिरि,
किधौं पक्क बेलफल किधौं पल ताल के।

द्वै स्वयंभु संभु किधौं रहे अंग-अंग मिलि मंगल,
कलस किधौं काम नरपाल के।
रोमावली एक नाल कमल कोरक युग,
किधौं उच्च ओरनि कठोर कुच बाल के।
(शिखनख, छं० २०)

कुछ स्थलों पर 'उपमा', 'रूपक' आदि अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है। यहाँ दो उदाहरण दिए जाते हैं।

जोबन सरोवर के कोमल सिवारमूल,
कामतंत तूल मखतूल कैसे तार हैं।
.........श्यामबरनी छबीले छूटे बार हैं॥
(शिखनख, छं० १)

तथा : पलक संपुट सोई सालिग्राम सिलासम,
कमलदलनि पर भौंर से निहारे हैं।
.........तरुनी के तारे हैं॥ (शिखनख, छं० ८)

रसिकप्रिया :

इस ग्रन्थ में केशव ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, विभावना, विशेषोक्ति, सन्देह, स्वभावोक्ति, अतिशयोक्ति, पिहित, व्याघात, उल्लेख, अनन्वय, समाहित आदि बहुत से अलंकारों का प्रयोग किया है। अधिकांश स्थलों पर अलंकार-योजना स्वाभाविक एवं भाव और स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक ही हुई है। यहाँ कुछ छन्द प्रस्तुत किए जाते हैं।

निम्नांकित छन्द में 'संदेहालंकार' का बड़ा ही स्वाभाविक एवं सुन्दर प्रयोग हुआ है। नायक को जाने में विलम्ब हो गया है। नायिका प्रतीक्षा में है और भिन्न-भिन्न प्रकार की कल्पनाएँ कर रही है—

सुधि भूलि गई भुलये किधौं काहू कि भूलेइ डोलत बाट न पाई।
भीत भये किधौं केशव काहू सौं भेंट भई कोई भामिनि भाई॥
आवत हैं मग आइ गयो किधौं आवहिंगे सजनी सुखदाई।
आये न नन्दकुमार बिचारि सु कौन बिचार अबार लगाई॥
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ६)

निम्नलिखित छन्द में घन तथा कृष्ण का कैसा सुन्दर रूपक बाँधा गया है—

चपला पट मोर किरीट लसै मघवा धनु शोभ बढ़ावत हैं।
मृदु गावत आवत बेणु बजावत मित्र मयूर नचावत हैं॥
उठि देखि भटू भरि लोचन चातक चित्त की ताप बुझावत हैं।
घनश्याम घने घन वेष धरे जु बने बन तें ब्रज आवत हैं॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २६)

इसी प्रकार वरुणालय (समुद्र) और कृष्ण का भी 'रूपक' दर्शनीय है—

है तरुणाई तरंगिन पूर अपूरब पूरब राग रंगे पय।
केशवदास जहाज मनोरथ संभ्रम विभ्रम भूरि भरें भय।।
तर्क तरंग तरंगित तुंग तिमिंगल शूल विशालनि के चय।
कान्ह कछू करुणामय हे सखि तैं ही किये करुणा वरुणालय।।

(र० प्रि०, प्र० ११, छं० ६)

'स्वभावोक्ति' अलंकार के सहारे नायक (कृष्ण) को देखकर राधा की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

चोरि चोरि चित्त चितवत मुँह मोरि मोरि,
काहे ते हँसत हिये हरष बढ़ायो है।
केशोराय की सौं तू जम्हाति कहा बार बार,
बिसि खाह मेरी बीर आर जोर आयो है।
ऐंड़ सों ऐंड़ात अति अंचल उठात उर,
उघरि उघरि जात गात छबि छायो है।
फल फूल भेंटति रहति उर भूलि भूलि,
भूलि भूलि कहत कछू तैं आज पायो है।।

(र० प्रि०, प्र० ५, छं० ६)

नीचे लिखे छन्द में 'स्वभावोक्ति' अलंकार के द्वारा कुलांगना की प्रत्येक क्रिया का भी बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है—

कोमल बिमल मन बिमला सी सखी साथ,
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के।
नूपुर की ध्वनि सुनि भोरे कलहंसन के,
चौंकि चौंकि परे चारु चेटुवा मराल के।
कचन के भार कुच भारनि सकुच भार,
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के।
हरें हरें बोलत बिलोकत हेरई हरें,
हरें हरें चलत हरत मन लाल के।

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २५)

श्री कृष्ण और राधा मानसरोवर से स्नान करके बाहर निकल कर उसके किनारे हाथ में हाथ मिलाये खड़े हैं। 'उत्प्रेक्षालंकार' द्वारा उनकी उस समय की छवि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

हरि राधिका मानसरोवर के तट ठाड़े री हाथ सौं हाथ छिये।
प्रिय के सिर पाग प्रिया मुकताछर राजत माल दुहूँन हिये।।
कटि केशव काछनी श्वेत कसे सब ही तन चंदन चित्र किये।
निकसे जनु क्षीर समुद्र ही ते संग श्रीपति मानहुं श्रीहि लिये।।

(र० प्रि०, प्र० ५, छं० ३७)

कृष्ण ने राधा के भाल पर डोरी से लटें गूंथ दी हैं और मोतियों की सुहावनी

लड़ियाँ लटका दी हैं। राधा उन्हें ही दर्पण लेकर देख रही है। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है—

भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि विलोकत आरसी लेकर आरस सो इक सारसनैनी॥
केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति की अति पैनी।
सूरजमण्डल में शशि मण्डल मध्य धसी जनु ताहि त्रिवेणी॥
(र० प्रि०, प्र० ४, छं० ८)

'प्रथम विभावना' वहाँ होती है जहाँ बिना कारण के ही कार्य सिद्ध हो जाता है। निम्नलिखित छन्द में कवि ने 'विभावना' का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है—

केशव सूधी विलोचन सूधी विलोकन को अविलोकै सदाई।
सूधियों बात सुनै समझै कहि आवत सूधियों बात सबाई॥
सूधी सु हांसी सुधाकर सौं मुख शोध लई वसुधा की सुधाई।
सूधे स्वभाव सबै सजनी वश कैसे किये अति टेढ़े कन्हाई॥
(र० प्रि०, प्र० २, छं० ५)

पंचम विभावना तब होती है जब विरुद्ध कारण से कार्य की सिद्धि हो जाय। नीचे लिखा छन्द इस 'विभावना' का उदाहरण है—

पांइ परेहु तें प्रीतम त्यों कहि केशव क्योंहुँ न मैं दृग दीनो।
तेरी सखी सिख सीखी न एकहु रोष ही की सिष सीख जु लीनी॥
चंदन चंद समीर सरोज जरै दुख देह भई सुख हीनी।
मैं उलटी जु करी विधि मों कहैं न्याइन हीं उलटी विधि कीनी॥
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० १५)

कारण के होते हुए भी कार्य की असिद्धि विशेषोक्ति का क्षेत्र है। अधोलिखित छन्द में 'विशेषोक्ति' का सुन्दर प्रयोग हुआ है।

बोलि न हौं वे बुलाय रहे हरि पांय परे अरु ओलियो ओड़ी।
केशव भेंटबै कों भरि अंक छुड़ाइ रहे जक हौं नहीं छोड़ी॥
सौंधे चितैबे कों केती कियौ शिर चाप उठाइ अंगूठन ठोड़ी।
मैं भर चित्त तऊ चितयो न रही गड़ नैनन लाज निगोड़ी॥
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० २५)

निम्नलिखित छन्द में 'अपह्नुति' का प्रयोग स्वाभाविक बन पड़ा है—

भोजन कै वृषभानु सभा महँ बैठे हैं नंद सदा सुखकारी।
गोप घने बलबीर विराजत खात बनाइ बिरी गिरिधारी॥
राधिका झाँकि झरोखन ह्वै कवि केशव रीझि गिरे सु बिहारी।
शोर भयो सकुचे समुझै हरवाहि कह्यो हरि लागि सुपारी॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५०)

'उपमा' के द्वारा नायिका की शोभा का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

मैन ऐसो मन तन मृदुल मृणालिका के,
सूत ऐसो सुर धुनि मनहि हरति हैं।
दारों कैसो बीज दंत पांति से अरुण ओंठ,
केशोदास देखे दृग आनंद भरति हैं।
एरी मेरी तेरी मोहि भावत भलाई ताते,
बूझत हौं तोहि उर बूझत डरति है।
माखन सी जीभ मुख कंज सो कुंवरि कहु,
काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है।

(र० प्रि०, प्र० १२, छं० २५)

नायिका के सभी अंग अनुपम हैं। कवि का कथन है कि उनकी उपमा के लिए वे ही कहे जा सकते हैं—

जो कहौं केशव सोम सरोज सुधा सुर भृंगनि देह दहे हैं।
दाड़िम के फल श्रीफल विद्रुम हाटक कोटिक कष्ट सहे हैं॥
कोक कपोत करी अहि केसरि कोकिल कीर कुचील कहे हैं।
अंग अनूपम वा तिय के उनकी उपमा कहं वेई रहे हैं॥

(र० प्रि०, प्र० ८, छं० २४)

समाहित अलंकार वहाँ होता है जहाँ सहसा अन्य कारणों के जा पड़ने से कार्यसिद्ध हो जाय। निम्नलिखित छन्द में 'समाहित' अलंकार के द्वारा राधा और कृष्ण का मिलन कराया गया है—

छवि सों छबीली वृषभान की कुंवरि आजु,
रही हुती रूपमद मानमद छकि कै।
मारहु ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब नकि कै।
हँसि हँसि सोहैं करि करि पांय परि परि,
केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै।
ताहि समै उठे घन घोर दामिनी सी धाई,
उर लागि घनश्याम तन सों लपकि कै।

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २८)

'उल्लेख' अलंकार के द्वारा नायिका के विरह का वर्णन करते हुए कवि का कथन है—

केशव कुंवर वृषभानु की कुंवरि वन—
देवता ज्यों बन उपबन विहरति है।
कमला ज्यों थिर न रहति कहूँ एक ठौर,
कमलानुजा ज्यों कमलनि ते डरति है।
काली ज्यों न केतकी के फूल सूंघे सीता जू ज्यों,
निशिचर मुख चंद देखि ही जरति है:

बदन उघारत ही मदन सुयोधन ही,
द्रौपदी ज्यों नाऊँ मुख तेरोई रटति है।
(र० प्रि०, प्र० ११, छं० १६)

'रसिकप्रिया' में कुछ स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग भाव और स्वरूप को स्पष्ट करने में सहायक न बनकर एक खिलवाड़-सा भी बन गया है। एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है। अधोलिखित छन्द में 'अतिशयोक्ति' अलंकार के द्वारा केशव ने जो अभिसारिका नायिका का वर्णन किया है वह अस्वाभाविक हो गया है—

उरझत उरग चपत चरणनि फणि,
देखत विविध निशिचर दिशि चारि के।
गनत न लागत मुसलधार बरषत,
झिल्लीगन घोष निरघोष जलधारि के।
जानति न भूषण गिरत पट फाटत न,
कंटक अटकि उर उरज उजारि कै।
प्रेतनी की पूछैं नारि कौन पै तैं सीख्यो यह,
योग कैसो सार अभिसार अभिसारि के।
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३५)

किन्तु इस प्रकार के छन्द कम ही हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव के रीतिकाव्य-ग्रन्थों में अधिकांश स्थलों पर अलंकारों का प्रयोग भावव्यंजना का उत्कर्ष-साधन तथा स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए ही हुआ है। ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं, जहाँ कवि की अलंकार-योजना अस्वाभाविक हो गई हो।

(४) छन्द :

'छन्दमाला' ग्रन्थ में जिन छन्दों का विवेचन हुआ है, उनका उल्लेख पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। अतएव यहाँ इस ग्रन्थ पर विचार नहीं किया गया है। 'रसिक-प्रिया', 'कविप्रिया' तथा 'शिखनख' पर ही क्रमशः विचार किया गया है। केशव ने जिन मात्रिक एवं वर्णिक वृत्तों का प्रयोग उपर्युक्त ग्रन्थों में किया है, वे नीचे दिए जाते हैं—

रसिकप्रिया :

मात्रिक (१) छप्पय, (२) दोहा और (३) सवैया।
वर्णिक (१) कवित्त।

कविप्रिया :

मात्रिक (१) दोहा, (२) सवैया, (३) छप्पय, (४) रोला, (५) चौपाई, (६) सोरठा, (७) पद्मावती और (८) मरहट्टा।
वर्णिक (१) कवित्त, (२) प्रमाणिका और (३) तोटक।

शिखनख :

वर्णिक (१) कवित्त।

'कविप्रिया' तथा 'रसिकप्रिया' लक्षण-ग्रन्थ हैं। इसलिए इनमें अधिकांश दोहा, कवित्त और सवैया का ही प्रयोग किया गया है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्त अथवा सवैया में दिए गए हैं। 'शिखनख' में कवित का प्रयोग हुआ है। 'रसिकप्रिया' में केवल एक बार मंगलाचरण में छप्पय का प्रयोग किया गया है। 'कविप्रिया' में कवित्त और सवैया के अतिरिक्त छप्पय, रोला, सोरठा आदि कुछ अन्य छन्द भी प्रयुक्त हुए हैं। इस ग्रन्थ में शिक्षाक्षेपालंकार के अन्तर्गत बारहमासे का वर्णन बारह छप्पयों में हुआ है। इसी प्रकार चित्रालंकार के अन्तर्गत 'उत्तर' अलंकार के विविध भेदों के उदाहरण के लिए तीन बार छप्पय, एक बार रोला और एक बार सोरठा का प्रयोग किया गया है। 'यमक' के भेद 'दुःखकर' का एक उदाहरण प्रमाणिका (ज, र, ल, ग), एक चौबोला (प्रत्येक चरण में १५ मात्राएँ, अन्त में ल, ग) और एक चौपाई में दिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव ने अपने रीतिकाव्यों में कुछ चुने हुए छन्दों का प्रयोग किया है। प्रायः ऐसे ही छन्दों का उपयोग किया गया है जो भाव अथवा रस-विशेष के लिए उपयुक्त होते हैं। 'सवैया' छन्द में शृंगार, करुण तथा शान्त रस अधिक प्रभावोत्पादक हो जाते हैं। केशव ने इन रसों के लिए प्रायः 'सवैया' का ही प्रयोग किया है। कहीं-कहीं शृंगार रस के लिए 'कवित्त' अथवा 'छप्पय' का भी प्रयोग हुआ है। रसानुकूल कुछ छन्द नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

रसानुकूल छन्द :

शृङ्गार रस :

सवैया

१. हाथ गह्यो ब्रजनाथ सुभावही छूटि गई धुर धीरजताई।
पान भये मुख नैन रची रुचि, आरसी देखि कहौं यह ठाई॥
दै परिरम्भन मोहन को मन मोहि लियो सजनी सुखदाई।
लाल गोपाल कपोल रदक्षत तेरे दिये ते महाछवि छाई।

(क० प्रि०, प्र० १३, छं० ४१)

२. सौंह को शोच संकोच न पांच को डोलत शाहु भये कर चोरी।
बैनन बंचकताई रचि रति नैनन के संग डोरति डोरी॥
लाज करैं न डरैं हित हानि तें आनि अरे जिय जानि कि भोरी।
नाहिनै केशव शाख जिन्हें बकि के तिन से दुखवै मुख कोरी॥

(र० प्रि०, प्र० २, छं० १७)

तथा : ३. तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यौं न रहौंगी।
पान खवाय सुधाधर पान कै पाय गहे तस हौं न गहौंगी॥

केशव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह पै न सहौंगी।
कै मुख चूमन दै फिरि मोंहि कि आपनि धाय सों जाय कहौंगी ॥

(र० प्रि०, प्र० ३, छं० १३)

कवित्त :

खेलत ही सतरंज अलिन में, आपहि ते,
तहाँ हरि आय किधौं काहू के बोलाए री।
लागे मिलि खेलन मिले कै मन हरें हरें,
देन लागे दाउँ आपु आपु मन भाये री।
उठि उठि गई मिस मिसही जितहिं तित,
केशोदास की सौं दोउ रहे छवि छाए री।
चौंकि चौंकि तेहि छन राधाजू के मेरी आली,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आये री।

(र० प्रि०, प्र० १२, छं० ३०)

छप्पय :

लोक लाज तजि राज रंक निरसंक बिराजत।
जोइ भावत सोइ कहत करत पुनि हास न लाजत ॥
घर घर युवती युवन जोर गहि गांठिन जोरहिं।
बसन छीनि मुख मांड़ि, आंजि लोचन तिन तोरहिं ॥
पटवास सुवास अकास उड़ि भुवमण्डल सब मण्डिये।
कह केशवदास विलास निधि फागन का गुन छंडिये ॥

(र० प्रि०, प्र० १०, छं० ३५)

करुण रस :

सवैया :

१. मैं पठई मति लेन सखी सु रही मिलि को मिलिबे कहं आने।
जाय मिले दिन ही दृग-दूत दयाल सो देहदशा न बखाने ॥
प्रेरत पैंज किये तन प्राणनि योग के और प्रयोग निधाने।
लाज ते बोल न पाऊं न केशव ऐसे ही कोऊ कहा दुख जाने ॥

(र० प्रि०, प्र० ११, छं० ३)

तथा : २. तू करिहै कवि धौं कहि गौनहिं नन्द कुमार तौ गौन कियोई।
मोंहि महा डर तो उर को न रहै लटि लैं जिन कैधौं लियोई ॥
ऐसी न बूझिये केशव तोंहि विचारं जु बीच विचार वियोई।
तेरे ही जीय जिये जिनको जिय रे जिय ता बिन तूऽब जियोई ॥

(र० प्रि०, प्र० ११, छं० ८)

शान्त रस :

सवैया :

हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गांव न ठांव को नाम विलैहैं।
तात न मात न मित्र न पुत्र न वित्त न श्रंगहू संग न रैहैं।
केशव काम को "राम" विसारत और निकाम न कामहि ऐहैं।
चेत रे चेत अजौं चित अन्तर अन्तक लोक अकेलेहि जैहैं।।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ५६)

छन्द-सम्बन्धी कुछ दोष :

अन्त में छन्द-सम्बन्धी कुछ दोषों का भी उल्लेख कर देना यहाँ अनुचित न होगा। केशव के दोहों तथा सवैयों में कहीं-कहीं यतिभंग दोष देखने में आता है, जैसे :

१. राजराज संग ईश द्विज-राज राज सनमान
विष विषधर अरु सुरसरी, विष विषम न उर जान।।

(क० प्रि०, प्र० १५, छं० २६)

२. शोभे कैसी शोभी देइ सुधा सों सुधारी पांउ।
धारी देवलोक तें कि सिन्धु ते उधारी सी।

(र० प्रि०, प्र० १२, छं० ४)

तथा : ३. अविलोकन आलाप परि, रंमन नखरद दान।
चुंबनादि उद्दीप ये, मर्द्दन परस प्रवान।।

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ७)

(५) भाषा :

(क) शब्दकोष :

केशव के रीतिकाव्यों की भाषा भी ब्रजभाषा है जिस पर अवधी की अपेक्षा संस्कृत और बुन्देलखण्डी का प्रभाव अधिक है। केशवदास संस्कृत के तो विद्वान् थे ही, इस कारण उनके रीतिकाव्यों में भी संस्कृत शब्दों का तत्सम रूप में प्रचुर प्रयोग हुआ है किन्तु उतना नहीं जितना 'रामचन्द्रिका' में। उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं, जिनमें इटैलिक्स में दिये शब्द तत्सम रूप में आये हैं—

हरि कर मंडन सकल दुख खंडन
मुकुर महि मंडल के कहत अखण्ड मति।
— — —
सोदर सुभोदर दिनेश जू के मित्र अति।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ५)

नारायण कीन्ही मन उर अवदात गनि,
कमला की वाणी भनि शोभा शुभ सार है।

केशव सुरभि केश शारदा सुदेश वेष,
नारद को उपदेश विशद विचार है।
(क० प्रि०, प्र० ५, छं० १२)

निजेच्छया भूतल देहधारी अधर्म संहारक धर्मचारी।
(छं० मा०, उपेन्द्रवज्रा का उदाहरण)

भानु मानों शनि अंक लिये। (र० प्रि०, प्र० १, छं० २०)
हुताशन में जन आसन कीने। (वही, वही, छं० २२)

सलज सुबुद्धि उदार मृदु हास वास शुचि अंग।
अमल अलोम अनंगमुद, पद्मिनी हाटक रंग॥
(वही, प्र० ३, छं० ३)

तथा महि मोहिनी रूप दिपि महिमा रुचि रूरी
मदन मन्त्र सिद्धि प्रेम की पद्धति पूरी।
(शिखनख, छं० ३१)

संस्कृत की शब्दावली के साथ केशव की भाषा में संस्कृत का अनुशासन भी पाया जाता है। वसति[1], निजेच्छया[2], सौख्येन[3], अनेकधा[4] आदि इसी प्रकार के प्रयोग हैं। परन्तु ऐसे प्रयोग केशव के रीतिकाव्यों में बहुत ही कम हैं।

देशी अनुशासन :

दो-एक स्थलों पर केशव ने शुद्ध संस्कृत के शब्दों को भाषा की प्रकृति के अनुसार गढ़ भी लिया है। जैसे :

जहाँ स्वरूप प्रयोगिये शब्द एक ही अर्थ।
(क० प्रि, प्र० १४, छं २९)

प्रथम प्रयोगियतु बाजि द्विजराज प्रति॥
(वही, प्र० ११, छं० ४०)

परन्तु इस प्रकार के प्रयोग भी कम ही हैं।

बुन्देलखण्डी शब्द :

बुन्देलखण्ड का निवासी होने के कारण उनके रीतिकाव्यों में बुन्देलखण्डी भाषा के शब्द भी स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं, यथा :

चन्द जू के चहूँ कोद वेष परिवेष कैसो। (क० प्रि०, प्र० ७, छं० २७)
खारिक खात न दारिम। (वही, प्र० ६, छं० ४६)
चौंकि चौंकि परैं चारु चेटुवा मराल के। (र० प्रि०, प्र० ६, छं० २३)
भौंन भौंहरे हूँ मारे भय अवरेखिये॥ (क० प्रि०, प्र० ६, छं० १६)

---

१. र० प्रि०, प्र० १२, छं० २६।
२. छन्दमाला, उपेन्द्रवज्रा छन्द का उदाहरण।
३. वही, वसंततिलका छन्द का उदाहरण।
४. वही, उपेन्द्रवज्रा तथा वंसस्थनित छन्द का उदाहरण।

कीओ कियो आँखिन के ऊपर खिलाइबो (क० प्रि०, प्र०१०, छं०८)
उरबसी उर में न आनिबी।
जानु जानिहों जो जाहि केहूँ पहिचानिबी। (र० प्रि०, प्र० ४, छं० १८)
चन्दन ज्यों कंजनि क्यों हूँ छीवैं। (वही, प्र० ८, छं० ३४)
पायन को परिबो अपमान अनेक सो केशव मान मनैबो।
(वही, प्र० ६, छं० २२)
नैनन हीं मिलिबो करिये। (वही, प्र० ३, छं० ५०)
तेहि सखि समदै संग वाके। (वही, प्र० ८, छं० २०)

बिछिया अनोट बांके घंघुरू जराय जरी।
जेहरि छबीली छुद्र घंटिका की जालिका॥
मूंदरी उदार पौंची कंकन वलय चूरी।
कंठ कंठमाल हार पहिरे गुपालिका॥
वेणीफूल शीशफूल कर्णफूल मांगफूल।
खुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका॥
केशोदास नीलवासा ज्योति जगमगि रही,
देहधरे श्याम संग मानो दीपमालिका।
(क० प्रि०, मूल, नखशिख छं० ८८)

सी को दुष कै कंसु छीनै। (छं० मा०, मालती का उदाहरण)
चोलि केसो पान तोंहि करत समार बोई। (र० प्रि०, प्र० ७, छं० ६)

अवधी शब्द :

केशव के रीतिकाव्यों में अवधी के शब्दों का प्रयोग कम हुआ है। कुछ शब्द निम्नांकित हैं—

पांइ परै मनुहार करै। (र० प्रि०, प्र० ३, छं० २७)
आधी सेज सोइ रही नन्दलाल। (वही, प्र० ५, छं० २६)
छूटि गई लाज यहि भाइ कै। (वही, प्र० ५, छं० ३२)
द्रोपदी ज्यों नाऊं मुख तेरोई रटति है। (वही, प्र० ११, छं० १६)
ऐसी ग्वारि लऊं काम की कुमारी सी। (वही, प्र० १२, छं० ४)

विदेशी शब्द :

रीतिकाव्यों में अरबी-फारसी विदेशी भाषा के शब्दों का बड़ा ही विरल प्रयोग हुआ है, पर जहाँ भी हुआ है, हुआ है तद्भव रूप में ही। केशव द्वारा प्रयुक्त इस प्रकार के कुछ शब्द नीचे दिये जाते हैं।

सुनत श्रवण बकसीस एक ईश की। (क० प्रि०, प्र० ६, छं० ६७)
निज दूत अभूत जरा के किधौं अफताली बुरा जनु लायक के।
(क० प्रि०, प्र० ५, छं० १४)
पेन आक को सो फल है। (क० प्रि०, प्र० ६, छं० २७)

कहि केशव मेद जवाद सो माँजि। (क० प्रि०, प्र० ६, छं० १७)
न्यारो ही गुमान मन मीननि के मानियत।
(वही, प्र० १४, छं० २८)
शेरशाह असलेम के उर साली समसेर। (क० प्रि०, प्र० १, छं २०)
मखतूल के भूल भुलावत केशव। (र० प्रि०, प्र० १, छं० २०)
जानत सकल जहान। (वही, वही, छं० ५)
जहाँ तहाँ शोर भारी। (वही, प्र० ५, छं० ३२)
किधौं महिराव मुख सुधाधर धाम को। (शिखनख, छं० ६)

गढ़े हुए शब्द :

केशव ने कहीं-कहीं नये गढ़े हुए शब्दों का भी प्रयोग किया है, जैसे नीचे दिये हुए उदाहरणों में इटैलिक्स में दिए शब्द :

मान मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग।
(र० प्रि०, प्र० १०, छं० २०)
जो कहों देखे लगे दिखसाध। (वही, प्र० ८, छं० १२)

किन्तु ऐसे प्रयोग बहुत ही कम हैं।

(ख) सौष्ठव :

भाषा को आकर्षक एवं रोचक बनाने के लिए कवि मुहावरों और लोकोक्तियों का सहारा लिया करते हैं। केशव के रीतिकाव्य मुहावरों से भरे पड़े हैं, पर लोकोक्तियों का प्रयोग उनमें कम हुआ है। 'कविप्रिया' की अपेक्षा 'रसिकप्रिया' में मुहावरों तथा लोकोक्तियों की कहीं अच्छी बहार है और वे दो-एक स्थलों को छोड़कर सर्वत्र वाक्य का सहज अंग बनकर ही प्रयुक्त हुए हैं। कुछ मुहावरे और लोकोक्तियाँ नीचे दी जाती हैं :

मुहावरे :

तिहारी विलोकन में विस बीस बिसे है। (र० प्रि०, प्र० ५, छं० २)
हंसत कहत बात फूल से झरत हैं। (वही, प्र० ३, छं० ४)
है हरि आठहू गांठ हठाये। (वही, प्र० २, छं १५)
देख नहीं कबहूँ भरि आँखिनि। (वही, प्र० ६, छं० १३)
काको घर घालिवे को बसे कहां घनश्याम। (वही, प्र० ७, छं० १७)
अब जो तू मुख मोरि है। (वही, प्र० ६, छं० १९)
अंग न लगाइये जू, आगे दुख पाइबो। (क० प्रि०, प्र० १०, छं० ८)
मारनहार....सब कै सिर ऊपर हइयै। (वही, प्र० ११, छं० ६४)
कछु बात चलावत धैरु चलै (धैरु चलै—बुन्देलखण्डी)।
(वही, प्र० १३, छं ४०)

भौंहन की होड़ा होड़ी ह्वै गई। (क० प्रि०, प्र० १२, छं० २१)

निशिदिन विशेष निःशेष मिटि जात, सु ओली ओढ़िये। (बुन्देलखण्डी) (वही, प्र० १०, छं० २६)

काहू की बलाइ जानै। (र० प्रि०, प्र० ११, छं० ६)

माइ मिले मन को करिहौ मुँह ही के मिले ते कियो मन मैलो। (र० प्रि०, प्र० १२ छं० २७)

सो जसु लै किन जुग जुग जीजै। (छं० मा०, तन्वी का उदाहरण)

आधार जी को पाव लाग्यो। (वही, इन्द्रवज्रा का उदाहरण)

अनन्त देवादि न अन्त पायो। (वही, उपेन्द्रवज्रा का उदाहरण)

लोकोक्तियां :

ऊँटहि ऊँट कटारहि भावै। (र० प्रि०, प्र० ३, छन्द १०)

कहि केशव आपनी जांघ उघारि कै आप ही लाजन को मरई। (वही, प्र० ६, छन्द १७)

प्यास बुझाइ न ओस के चाटे। (वही, प्र० १२, छं० २४)

आग को दाध्यो अंग आग ही सिरातु है। (क० प्रि०, प्र० ६, छं० ३८)

आगि लागे मेरी आली मेंह पाइयतु। (र० प्रि०, प्र० ११, छं० ६)

व्यंजना :

व्यंजना के द्वारा भाषा में वक्रता आती है। इस रहस्य को पहचानते हुए केशव ने खण्डिता की उक्तियों में प्रायः व्यंजना का उपयोग किया है।

ज्यों ज्यों हुलास सों केशवदास विलास निवास हिये अवरेख्यो।
त्यों त्यों बढ़ो उर कंप कछू भ्रम भीत भयो किधौं सीत विशेष्यो॥
मुद्रित होत सखी बर ही मम नैन सरोजनि सांच कै लेख्यो।
तैं जु कह्यो मुख मोहन को अरविंद सो है सो तो चन्द सो देख्यो॥
(क० प्रि०, प्र० १२, छन्द ४)

यहाँ खण्डिता नायिका का अभिप्रेत अर्थ तो यह है कि नायक के मुख पर अन्य स्त्री के कज्जलादि के चिह्न हैं, इसी से उसने नायक की ओर से मारे क्रोध के आंखें बन्द कर लीं। इसी बात को नायिका ने दूसरे ही प्रकार से प्रकट किया है।

एक और उदाहरण लीजिये। अपने प्रिय के परदेश जाते समय किसी नायिका का कहने का अभिप्राय तो यह है कि आप न जाइये, आपके बिना मैं जीवित न रह सकूँगी। किन्तु इसी भाव को भंग्यंतर से व्यक्त करती हुई कहती है—"आप को मेरी सौगन्ध है, आप परदेश में सुखपूर्वक निश्चिन्त होकर रहिएगा और मैं आपकी सौगन्ध खाकर कहती हूँ कि मैं सुखपूर्वक ही रहूँगी। यदि जाना ही है तो अवश्य जाइए,

किन्तु ऐसा कीजियेगा कि मुझे सोती हुई छोड़ जाइएगा और मैं आपके वापिस लौटने पर ही जागूंगी[1] ।"

भाषा की सजीवता :

केशव की भाषा किसी को चेतावनी देने में बड़ी समर्थ है। 'रे' के प्रयोग के द्वारा केशव ने निम्नलिखित छन्द में कैसा भाव भर दिया है—

आसन डासन वासु सुवासु विलास रंगे अनुराजिये हूँ।
बारिन बाजि गुनी गुनधाम न चामर है मन हाथ लिये हूँ।
भाँतिनि भाँतिनि भावन भोजन भूषन भूरि भए न किये हूँ।
रे चित चेत कहा परिपेलहि जानकी नाथ आन हिये हूँ [2]।

'रे' के सदृश ही कवि ने 'जू' का भी बहुत प्रयोग किया है।

पातक हानि, पिता संग हारिबो, गर्भ के शूलन तें डरिये जू।
तालन को बँधिबो, बध रोर को, नाथ के साथ चिता जरिये जू।
पत्र फटैं ते फटैं ऋण केशव, कैसेहु तीरथ में मरिये जू।
नीकी सदा लगै गारि सनेह की, डाँड भलो जो गया भरिये जू॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छन्द ७३)

'रे' को छोड़ अब 'री' का रंग भी तो कुछ देख लीजिये। सखी का कथन है—

खेलत ही सतरंज अलिन में, आपहि ते,
तहाँ हरि आये किधौं काहू के बोलाए री।
लागे मिलि खेलन मिलै कै मन हरैं हरैं,
देन लागे दाऊँ आपु आपु मन भाये री।
उठि उठि गईं मिस मिसही जितहि तित,
केशोदास की सौं दोउ रहे छवि छाये री।
चौंकि चौंकि तेहि छन राधाजू के मेरी आली,
जलज से लोचन जलद से ह्वै आये री॥

(क० प्रि०, प्र० १२, छन्द ३०)

इन शब्दों के अतिरिक्त कुछ ऐसे घरेलू तथा लाड़-प्यार के शब्द भी हैं

---

१. मेरी सौं तुम ही हरि रहियो सुखहि सुख,
मोहूँ है तिहारी सौंह रहौं सुख पाये ही।
चले ही बनत जो तो चलिये चतुर पीय,
सोवत ही जैयो छाँड़ि जागौंगी हौं आये ही।
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० १२।

२. छन्दमाला, द्विजय छन्द का उदाहरण।

जिनके प्रयोग से केशव की भाषा में और भी सजीवता आ गई है। सबसे प्रथम 'माई' शब्द को लेते हैं। कोई ब्रज की युवती यशोदा से कहती है—

मोरेहुँ भौंह चढ़ाय चितै डरपाइये कै मन क्यों हूँ करेरो।
ताको तो केशव कोरि हिये दुख होत महा, सुकहौं इत हेरो॥
कैसो है तेरो हियो हरि में रहि छोरो नहीं तनु छूटत मेरो।
बूँदक दूध को मार्‌यो है बाँधि सु जानति हौं 'माई' जायो न तेरो॥
(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६६)

इसी के साथ 'बीर' (सखी) शब्द के प्रयोग पर भी ध्यान दीजिये—

केशोदास मुख हास हिसबे हो कटितट।
छिन छिन सूछम छबीलो छवि छाई है॥
बारबुद्धि बारन के साथ ही बढ़ी है बीर।
कुचनि के साथ ही सकुच उर आई है॥
(क० प्रि०, प्र० १२, छन्द० २१)

'भट्टू' शब्द का प्रयोग भी दर्शनीय है—

कौन रसै विहंसै लखि कौनहि का पर कोपि के भौंह चढ़ावै।
भूलति लाज भट्टू कबहूँ कबहूँ मुख अंचल मेलि दुरावै॥
कौन कि लेत बलाय बलाय त्यों तेरि दशा यह मोहि न भावै।
ऐसि तो तू कबहूँ न भई अब तोहि दई जनि बाइ लगावै॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छन्द ४०)

'रानी' शब्द में कितना प्यार भरा है। देखिये—

आतुर ज्यों उठि दौरी अली जनु आतुर ज्यों गहिये सु गही त्यों।
है मेरी रानी कहा भयो तो कह बूझत केशव बूझि रही त्यों॥
डीठि लगी किधौं प्रेत लग्यो कि लग्यो उर प्रीतम जाहि डरी यों।
आनन सीकर सी कहिये धक सोवत ते अकुलाय उठि क्यों॥
(र० प्रि०, प्र० ४, छन्द १७)

इस प्रकार 'लड़बावरी' शब्द से भी कैसा 'लाड़' टपक रहा है:

बरसक माँझ यह बैस अलबेली बीते,
देहौ सुख सखिन क्यों अबहीं न दीजिये।
ये री लड़बावरी अहीरी ऐसी बूझौं तोहि,
नाहि सो सनेह कीजै नाह सों न कीजिये॥
(र० प्रि०, प्र० ४, छं० २२)

इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से केशव की भाषा वस्तुतः बोल उठी है और उसमें यथेष्ट स्वाभाविकता आ गई है।

अलंकरण :

रीतिकाव्यों में कवि ने पद-योजना पर विशेष ध्यान दिया है। ब्रज-भाषा की प्रकृति के अनुसार उनके पद प्रायः छोटे तथा असमस्त हैं। छन्दों में

सर्वत्र अनुक्रम और संतुलन है, जिसके कारण सभी पद छोटी-छोटी लड़ियाँ-सी बनाकर एक कोमल झंकार में गुँथ जाते हैं। पद-बन्धों का यह कलात्मक गुंफन अनुप्रास और वीप्सा पर आश्रित रहता है। वीप्सा के द्वारा भाषा में गति उत्पन्न होती है और अनुप्रास के द्वारा झंकार और सस्वरता। कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

१. गिरि गिरि उठि उठि रीझ रीझ लागे कण्ठ,
बीच बीच न्यारे होत छवि न्यारी न्यारी सों।
आपुस में अकुलाइ आधे आधे आखरनि,
आछी आछी बातें कहै आछी एक ह्यारी सों॥
(र० प्रि०, प्र० १४, छं० १४)

२. गोरी गोरी भोरी भोरी थोरी थोरी वैस फिरैं,
देवता सी दौरी दौरी आई चोरा चोरी चाहि।
(वही, प्र० १४, छं० ३५)

तथा : ३. चोरि चोरि चित चितवत मुँह मोरि मोरि,
काहे ते हंसत हिय हरष बढ़ायो है।
— — —
फूल फूल भेंटति, रहति उर भूलि भूलि,
भूलि भूलि कहत कछू तें आज पायो।
(वही, प्र० ५, छं० ६)

उपर्युक्त तीनों छन्दों में 'गिरि गिरि', 'उठि उठि', 'चोरि चोरि' आदि वीप्सागत आवृत्तियों से भाषा में एक विशेष गति उत्पन्न हो गई है। अधोलिखित उदाहरणों में अनुप्रास के प्रयोग से झंकार और सस्वरता आ गई है। देखिये—

१. कोमल अमल चल चीकने चिकुर चारु,
चितयेते चित चकचौंधियत केशवदास।
सुनहु छबीली राधा छूटे ते छुवै छवानि,
कारे सटकारे हैं सुभाव हीं सदा सुवास॥
(क० प्रि०, मूल, शिखनख, छं० ७६)

तथा : २. कोमल अमल विमल मन विमला सी सखी साथ।
कमला ज्यों लीने हाथ कमल सनाल के॥
— — —
कचन के भार कुचभारनि सकुच भार।
लचकि लचकि जात कटि तट बाल के॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २५)

अर्थध्वनन :

काव्य-भाषा को समृद्ध करने का अर्थध्वनन बहुत ही सुन्दर साधन है। अर्थध्वनन का चमत्कार ऐसे ही शब्द अथवा शब्द-समूह की योजना पर आश्रित

रहता है जो ध्वनिमात्र से ही अपना अर्थ व्यक्त कर देते हैं। केशव की भाषा में भी यह गुण मिलता है। एक प्रयोग देखिए :

खलक में खैल भैल, मनमथ मन ऐल,
शैलजा के शैल गैल गैल प्रति रोक है।
सेनानी के सटपट, चन्द्र-चित चटपट,
अति अति अटपट, अंतक के ओक है।
इन्द्र जू के अकबक, धाता जू के धकपक,
शंभु जू के सकपक, केशोदास को कहै।
जब जब मृगया को राम के कुमार चढ़ैं,
तब तब कोलाहल होत लोक लोक है॥

(क० प्रि०, प्र० ८, छं० ३५)

यहाँ शब्दों की ध्वनि से ही खलभली का अनुभव हो जाता है।

भाषा में गुण :

केशव के 'रसिकप्रिया' तथा 'कविप्रिया' नामक रीतिकाव्यों के अधिकांश छन्दों में माधुर्य और प्रसाद गुणों की प्रधानता है। 'रसिकप्रिया' के प्रायः सभी छन्द माधुर्य गुण से युक्त हैं। इसका कारण यह है कि इस ग्रन्थ के तीन-चौथाई भाग में शृंगार रस ही का विवेचन है। कुछ माधुर्य-गुण-पूर्ण छन्दों के उदाहरण नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

१. फूल न दिखाउ शूल फूलत है हरि बिनु,
दूरि करि माल बाला ब्याल सी लगति है।
चंवर चलाउ जिन बीजन हलाउ मति,
केशव सुगंध वायु बाइ सो लगति है।
चन्दन चढ़ाउ जिन ताप सी चढ़ति तन।
कुंकुम न लाउ अंग आग सी लगति है,
बार बार बरजति बावरी है बारौं आन,
बीरी ना खवाउ बीर विष सी लगति है।

(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४)

२. मेरे तो नाहि ने चंचल लोचन नाहि ने केशव बानि सुहाई।
जानों न भूषण भेद के भावन भूलहू नैनहि भौंहें चढ़ाई॥
भोरेहू ना चितयो हरि ओर त्यों घेर करै इहि भाँति लुगाई।
रंचक तो चतुराई न चित्तहि कान्ह भये बश काहे से माई॥

(र० प्रि०, प्र० २, छं० ६)

तथा : ३. बैठी हुती वृषभानु कुमारि सखीन के मंडल मध्य प्रवीनी।
लै कुम्हिलानो सो कंज परी जू कोऊ इक ग्वालिनि पायं नवीनी॥
बंदन सों छिरक्यो वह वाकहं पान दये करुना रस भीनी।
चन्दन चित्र कपोल बिलपि कै अंजन आंजि बिदा करि दीनी॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४७)

'रसिकप्रिया' के अधिकांश छन्द प्रसाद-गुण-पूर्ण हैं। 'कविप्रिया' में अवश्य कुछ छन्द क्लिष्ट हैं किन्तु उनकी क्लिष्टता भी कवि की जानी-पहचानी क्लिष्टता है, जो पांडित्य-प्रदर्शन के निमित्त श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग के द्वारा उत्पन्न की गई है। इस ग्रन्थ में ऐसे छन्दों की कमी नहीं है जिनका अर्थ पढ़ते ही हृदयंगम न हो जाता हो। इस प्रकार के कुछ छन्द यहाँ दिये जाते हैं—

१. दीपक देह दशा सों मिलै सुदशा मिलि तेजहि जोति जगावै।
जागि कै जोति सबै समुझै तम शोधि सु तो शुभता बरसावै॥
सो शुभता रचै रूप को रूपक रूप सो कामकला उपजावै।
काम सो केशव प्रेम बढ़ावत प्रेम लै प्राणप्रियाहि मिलावै॥
(क० प्रि०, प्र० १३, छं० २८)

२. भूलि गयो सब सों रस रोष, मिटे भव के भ्रम, रैनि विभातो।
को अपनो, पर को, पहिचान न, जानति नाहि नैं सीतल तातो॥
नेकुही में वृषभानु लली की भई सु न जाको कही परै बातो।
एकहि बेर न जानिये केशव काहे ते छूटि गये सुख सातो॥
(क० प्र०, प्र० ८, छं ४२)

तथा : ३. घननि की घोर सुनि मोरनि की शोर सुनि।
सुनि सुनि केशव अलाप अलीजन को।
दामिनी दमकि देखि दीप की दीपति देखि।
देखि सुख सेज देखि देखि सुन्दर सु बन को॥
कुंकुम की बास घनसार की सुबास भयो।
फूलन की बास मन फूलि के मिलन को।
हँसि हँसि बोले दोऊ अनहि मिलाये मान।
छूटि गयो एक बार राधिका रमन को॥
(र० प्रि०, प्र० १०, छं० २७)

इस प्रकार ऊपर दिए गए उदाहरणों के आधार पर केशव के विषय में स्व० डा० बड़थ्वाल का यह आक्षेप कि माधुर्य और प्रसाद से तो जैसे वे खार खाये बैठे थे (ना० प्र० प०, भाग १०, संवत् १९८६, पृ० ३६८) सर्वथा निर्मूल सिद्ध होता है।

केशव की भाषा के विषय में प्राध्यापक जगन्नाथ तिवारी का मत देकर हम इस प्रसंग को समाप्त करते हैं। वे लिखते हैं—

"केशव का शब्द-भण्डार पूर्ण है। भाषा को भाव के अनुसार मोड़ने की उनमें अपूर्व शक्ति है और वह उनके इशारे से नाचती हुई सी प्रतीत होती है। बुन्देलखण्डी-मिश्रित ब्रजभाषा में संस्कृत के मेल के कारण भावव्यंजना की अत्यन्त अधिक शक्ति आ गई है। ···केशव की भाषा को क्लिष्ट और ऊबड़-खाबड़ कहना उनके प्रति अन्याय करना है। केशव की क्लिष्टता उनकी साहित्यिकता के कारण है। जो लोग साहित्यिक परम्परा से परिचित हैं तथा जिन्हें अलंकार, छन्द, रस, गुण इत्यादि का

पूर्ण ज्ञान है, उनके लिए केशव में किसी प्रकार की क्लिष्टता नहीं है। बुन्देलखण्डी तथा संस्कृत के मिश्रण के कारण उसे ऊबड़-खाबड़ भी कहना उचित नहीं। इस मिश्रण के कारण तो उसमें और अधिक सशक्तता आ जाती है, ऊबड़-खाबड़पन नहीं। रामचन्द्रिका में वीररस की प्रधानता होने के कारण ओजगुण की प्रधानता है। रसिकप्रिया के शृंगारिक छन्दों में माधुर्य गुण की प्रधानता है। प्रसाद गुण की भी केशव में कमी नहीं। अतः केशव की भाषा में आवश्यकतानुसार हम ओज, माधुर्य और प्रसाद को पाते हैं और हमें उसकी काव्योपयोगिता में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होती।"[१]

तिवारी जी का यह मत हमें मान्य है।

१. रामचन्द्रिका (संक्षिप्त), भाषाधिकार, पृ० ४४।

सातवाँ अध्याय

केशव का रीतिविवेचन (आचार्यत्व)

काव्य के सर्वांग का विवेचन :

यों तो रीतिग्रन्थों की रचना का सूत्रपात केशव के पूर्व ही हो चुका था, जैसा कि पहले बताया जा चुका है, किन्तु किसी आचार्य—कवि ने काव्य के विविध अंगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण न किया था। केशव ही हिन्दी के प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने काव्य के प्रायः सभी अंगों का विवेचन किया है। उनके रीतिविवेचन (आचार्यत्व) के अध्ययन के लिए आधारस्वरूप कवि के तीन ग्रन्थ हैं, 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'छन्दमाला'। 'कविप्रिया' में काव्यशास्त्र के इन अंगों पर प्रकाश डाला गया है—काव्य का स्वरूप और उसका उद्देश्य, कवि-भेद, कवि-रीति, काव्य के विषय, वर्णन के प्रकार, काव्य-दोष और अलंकार। 'रसिकप्रिया' में रस, वृत्ति और रस-दोषों का वर्णन है, परन्तु प्रधानतया शृंगार रस के विविध तत्वों पर ही सांगोपांग विचार किया गया है। 'छन्दमाला' नामक ग्रन्थ में पिंगल का सम्यक् विवेचन है। 'कविप्रिया' में भी 'गणदोष' के भीतर पिंगल की चर्चा हुई है पर वहाँ विषय को चलता ही किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि शब्दशक्ति, गुण, रीति और ध्वनि को छोड़ काव्य के लगभग सभी अंगों का विवेचन केशव के रीतिग्रन्थों में पाया जाता है।

(अ) कविप्रिया में रीतिविवेचन और उसका आधार :

काव्यदोष :

केशव ने 'कविप्रिया' के तीसरे प्रभाव में काव्य-दोष तथा गण-अगण पर विचार किया है। काव्य में दोषों की स्थिति को सभी निन्दनीय मानते हैं। केशव की दृष्टि में भी काव्य दोषहीन होना चाहिए। जिस प्रकार गंगाजल से पूर्ण घट मदिरा की एक बूंद के ही संसर्ग से अपवित्र एवं कलुषित हो जाता है उसी प्रकार मित्र, स्त्री और काव्य भी किंचिन्मात्र दोष के आ जाने पर आकर्षण तथा प्रभाव को खो देते हैं।[1] केशव ने कुल मिलाकर अठारह दोष स्वीकार किये हैं। उनमें से पहले पांच

---

१. विप्र न नेगी कीजिये मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त॥
राजत रंच न दोष युत, कविता वनिता मित्र।
बुन्दक हाला परत ज्यों, गंगाघट अपवित्र॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छं० ६ और ५

के नाम अंध, बधिर, पंगु, नग्न तथा मृतक हैं[1]। कविसमय के विरुद्ध कथन 'अंध' दोष कहा जाता है। जहाँ परस्पर विरुद्ध शब्दों का प्रयोग हो वहाँ 'बधिर' दोष होता है। छन्दःशास्त्र के नियमों के विरुद्ध रचना करना 'पंगु' दोष कहलाता है। अलंकाररहित रचना में 'नग्न' दोष होता है। 'मृतक' दोष वहाँ होता है जहाँ काव्य में निरर्थक शब्दों का प्रयोग हो। इन दोषों के नाम केशव की अपनी उपज हैं, परन्तु इनमें केवल नाम की ही मौलिकता है। वास्तव में सब दोष संस्कृत आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट दोषों से मिल जाते हैं।

केशव का 'अंध' दोष विश्वनाथ का 'ख्यातिविरुद्धता' दोष है। उनका 'बधिर' दोष केशवमिश्र के 'व्याहत' दोष से मिलता है। केशव का 'पंगु' दोष केशवमिश्र के 'भग्नछन्द' के समान है। 'कविप्रिया' का 'मृतक' दोष और 'अलंकारशेखर' का 'अवाचक' दोष एक ही है। 'नग्न' दोष केशव की मौलिक उद्भावना का फल है। संस्कृत के प्रायः सभी आचार्य अलंकार को काव्य का अनिवार्य धर्म नहीं मानते। अलंकारों के बिना भी काव्य हो सकता है। यही बात मम्मट ने 'अनलंकृती पुनः क्वापि' के द्वारा व्यक्त की है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार भी अलंकार काव्य के अस्थिर धर्म हैं[2]। दण्डी के 'काव्यशोभाकरान् धर्मानलङ्कारान्प्रचक्षते[3]' और वामनाचार्य के 'तदतिशयहेतवस्त्वलङ्काराः[4]' से भी यही मत पुष्ट होता है कि अलंकार काव्य की सौन्दर्य-वृद्धि में सहायक तो अवश्य होते हैं किन्तु इन्हें काव्य का अनिवार्य अंग नहीं माना जा सकता। अतः अनलंकृत काव्य दोषयुक्त नहीं कहा जा सकता परन्तु केशव के विचार से अलंकारहीन काव्य में 'नग्न' दोष होता है।

उक्त पांच दोषों के अतिरिक्त केशव ने तेरह और दोष भी बतलाए हैं। उनके नाम ये हैं—अगन, हीनरस, यतिभंग, व्यर्थ, अपार्थ, हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्ति, देशविरोध, कालविरोध, लोकविरोध, न्याय-विरोध तथा आगम-विरोध[5]। इनमें से

---

१. अंध बधिर अरु पंगु तजि, नग्न मृतक मति शुद्ध।
अंध विरोधी पन्थ को, बधिर सु शब्द विरुद्ध॥
छन्द विरोधी पंगु गुनि, नग्न जो भूषण हीन।
मृतक कहावै बिनु, केशव सुनहु प्रवीन॥
—क० प्रि०, प्र० ३, छं० ७-८।

२. शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभाऽतिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलङ्कारास्तेऽङ्गदादिवत्॥
—साहित्यदर्पण, परिच्छेद १०, कारिका संख्या ६५१ (ख), पृ० ६६०।

३. काव्यादर्श, परिच्छेद २, श्लोक १।

४. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, अधिकरण ३, अध्याय १, सूत्र २, पृ० ३२।

५. अगन न कीजै हीनरस, अरु केशव यतिभंग।
व्यर्थ अपारथ हीन क्रम, कवि कुल तजौ प्रसंग॥

कुछ दोष केशवमिश्र से मिलते हैं, जैसे केशव के हीनरस और कर्णकटु केशवमिश्र के क्रमशः विरस[1] और कष्ट[2] हैं। किन्तु अधिकांश दोष दण्डी[3] के ही अनुसार हैं। दोषों के उदाहरण भी दण्डी के 'काव्यादर्श' से अनुवाद करके रख दिए गए हैं। केशव का 'अगन' दोष दण्डी के 'भिन्नवृत्त' दोष के अन्तर्गत ही आ सकता है परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि केशव ने इसे मौलिकता में ढालने का प्रयास किया है। केशव के यतिभंग, लोक-विरोध और हीनक्रम दोष दण्डी के क्रमशः यतिभ्रष्ट, काल-विरोध और अपक्रम दोष हैं। व्यर्थ, अपार्थ, देश-विरोध, काल-विरोध, न्याय-विरोध एवं आगम-विरोध दोष भी दण्डी के अनुसार हैं। केशव द्वारा दिए गए लक्षणों का दण्डी से साम्य है। कहीं-कहीं उदाहरण भी दण्डी के समान हैं। कुछ उदाहरण तुलना के लिए नीचे दिये जाते हैं—

व्यर्थ का लक्षण :

एक कवित्त प्रबन्ध में, अर्थ विरोध जु होय।
पूरब पर अनमिल सदा, व्यर्थ कहैं सब कोय॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छं ४२।

एकवाक्ये प्रबन्धे वा पूर्वापरपराहतम्।
विरुद्धार्थतया व्यर्थमिति दोषेषु पठ्यते॥

—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १३१।

बर्ण प्रयोग न कर्णकटु, सुनहु सकल कविराज।
सबै अर्थ पुनरुक्ति के, छांडहु सिगरे साज॥
देशविरोध न बरनिये, काल विरोध निहारि।
लोक न्याय आगमन के, तजौ विरोध विचारि॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छं० १५-१७।

१. विरसं प्रस्तुतरसविरुद्धम्। —अलंकारशेखर, मरीचि ६, पृ० १८।

२. कष्टं श्रुतिकटु। —अलंकारशेखर, मरीचि ४, पृ० १३।

३. दण्डी के दस काव्यदोष निम्नलिखित श्लोकों में निर्दिष्ट हैं :

अपार्थं व्यर्थमेकार्थं ससंशयमपक्रमम्।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसंधिकम्॥
देशकालकलालोकन्यायागमविरोधि च।
इति दोषा दशैवैते वर्ज्याः काव्येषु सूरिभिः॥

—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १२५, १२६।

भामह ने भी दण्डी द्वारा उल्लिखित दोषों का ही उल्लेख किया है।
काव्यालंकार, परि० ४, श्लो० १, २।

व्यर्थ का उदाहरण :

सब शत्रु संहारहु जीव न मारहु सजि योधा उमराव।
— — —
कोउ न रिपु तेरो सब जग हेरो तुम कहियत अति साधु ।।
(केशव—क० प्रि०, प्र० ३, छं० ४३)

जहि शत्रु बलं कृत्स्नं जय विश्वम्भरामिमाम्।
न च ते कोऽपि विद्वेष्टा सर्वभूतानुकम्पिनः ।।
(दण्डी—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १३२)

अपार्थ का लक्षण :

अर्थ न जाको समुझिए, ताहि अपारथ जान।
मतवारो उनमत शिशु, के से बचन वखान ।।
(केशव—क० प्रि०, प्र० ३, छं० ४४)

समुदायार्थशून्यं यत्तदपार्थमितीष्यते।
उन्मत्तमत्तबालानामुक्तेरन्यत्र दुष्यति ।।
(दण्डी—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १२८)

दण्डी के अनुसार उन्मत्त, मत्त तथा बालकों की उक्ति के अतिरिक्त यदि कहीं अर्थशून्यता हो तो दोष होता है किन्तु केशव अपने लक्षण में दूसरी पंक्ति के भाव को अनुवाद में नहीं ला सके।

अपार्थ दोष का उदाहरण :

पिये लेत नरसिंधु कहं, है अति सज्वर देह।
ऐरावत हरि भावतो, देख्यो गर्जत मेह ।।
(केशव—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द ४५)

समुद्रः पीयते देवैरहमस्मि जरातुरः।
अमी गर्जन्ति जीमूता हरेरैरावतः प्रियः ।।
(दण्डी—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १२९)

यह दोष केशव के 'मृतक दोष' को व्यर्थ कर देता है।

कालविरोध का उदाहरण :

प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद विशाल।
कोकिल शरद, मयूर मधु बरषा मुदित मराल ।।
(केशव—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द ५६)

पद्मिनी नक्तमुन्निद्रा स्फुटत्यह्नि कुमुद्वती।
मधुरुत्फुल्लनिचुलो निदाघो मेघदुर्दिनः ।।
(दण्डी—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १६७)

आगमविरोध का उदाहरण :

पुनि लीबो उपवीत हम, पढ़ि लीजं सब वेद ।
(केशव—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द ५६)

असावनुपनीतोऽपि वेदानधिजगे गुरोः ॥
स्वभावशुद्धः स्फटिको न संस्कारमपेक्षते ॥
(दण्डी —काव्यादर्श परि० ३, श्लो० १७८)

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव के अधिकांश दोषों का आधार दण्डीकृत काव्यादर्श है। केशव के 'पुनरुक्ति' दोष का आधार दण्डी, भामह, केशवमिश्र आदि न होकर भोज, मम्मट तथा विश्वनाथ हैं।

'कविप्रिया' में निर्दिष्ट उपर्युक्त दोषों के अतिरिक्त केशव ने 'रसिकप्रिया' में 'अनरस-प्रकरण' के अन्तर्गत नीरस, विरस आदि रस-दोषों का भी वर्णन किया है, जिनका विवेचन आगे किया गया है।

गण-अगण विचार :

केशव ने काव्य-दोषों के अन्तर्गत 'अगण' दोष पर विचार करते हुए गण-अगण का निरूपण किया है। गण-अगण का विचार वर्णिक छन्दों के सम्बन्ध में ही किया गया है। कवि ने आठ गण माने हैं। तीन अक्षरों, चाहे गुरु हों अथवा लघु, के समूह को गण की संज्ञा दी गई है। केशव की दृष्टि में तीनों गुरु अक्षरों वाला गण 'मगण', तीनों लघु अक्षरों वाला नगण, केवल आदि में गुरु अक्षर से युक्त गण 'भगण' कहलाता है और यदि आदि में लघु हो, मध्य तथा अन्त में गुरु हो तो 'यगण' होता है। ये चारों गण शुभ माने जाते हैं। इसी प्रकार मध्य में गुरु हो तो 'जगण', मध्य में लघु हो तो रगण, अन्त में गुरु हो तो 'सगण' और अन्त में लघु हो तो 'तगण' माना जाता है। ये चार गण अशुभ बताए गए हैं[1]। केशव के इन आठ गणों के स्वरूपों का आधार वृत्तरत्नाकर आदि पिंगल ग्रन्थ हैं[2]।

---

१. केशव गन शुभ सर्वदा, अगन अशुभ उर आनि ।
चारि चारि विधि चारुमति, गन अरु अगन बखानि ॥
मगन नगन पुनि भगन अरु, यगन सदा शुभ जानि ।
जगन रगन अरु सगन पुनि, तगनहि अशुभ बखानि ॥
मगन त्रिगुरु युत त्रिलघुमय, केशव नगन प्रमान ।
भगन आदि गुरु आदि लघु, यगन बखानि सुजान ॥
जगन मध्य गुरु जानिए, रगन मध्य लघु होय ।
सगन अन्त गुरु अन्त लघु तगन कहैं सब कोय ॥
—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द १८-२१ ।

२. सर्वगुर्मो मुखान्तर्लौ यरावन्तगलौ सतौ ।
ग्मध्याद्यौ ज्भौ त्रिलो नोऽष्टौ भवन्त्यत्र गणास्त्रिकाः ॥
—वृत्तरत्नाकर, अध्याय १, पृ० ४ ।

इन पिंगल-ग्रन्थों में गण-देवता, गण-मैत्री और गण-शत्रुता तथा देवता के अनुसार गण-फल का निरूपण भी किया गया है। 'मगण' का देवता 'भूमि', 'नगन' का 'नाक' (स्वर्ग), 'यगण' का 'जल', 'भगण' का 'चन्द्र', 'जगण' का 'सूर्य', 'रगण' का 'अग्नि', 'सगण' का 'पवन' और 'तगण' का देवता 'गगन' बतलाया गया है। 'मगण' और 'नगण' परस्पर मित्र माने गये हैं, 'भगण' और 'यगण' भृत्य (सेवक), 'जगण' और 'तगण' उदासीन तथा 'रगण' और 'सगण' परस्पर शत्रु कहे गये हैं। गण-फल के विषय में 'मगण' का फल 'श्री' माना गया है। 'नगण' का 'आयु', 'भगण' का 'सुयश' 'यगण' का 'वृद्धि', 'जगण' का 'रोग', 'तगण' का 'धननाश', 'रगण' का 'विनाश' एवं 'सगण' का 'देशाटन'[1]। केशव ने भी यह सब वर्णन किया है[2]। उनका गण-अगण-वर्णन केदारभट्टकृत 'वृत्तरत्नाकर' से मिलता है, केवल देवता के अनुसार गणफल में कुछ भिन्नता परिलक्षित होती है। केशव के मत में 'मगण' का फल सुख की अधिकता है, 'नगण' का बुद्धि, 'भगण' का मंगल, 'यगण' का आनन्द, 'जगण' का सुख-विनाश, 'तगण' का निष्फलता, 'रगण' का शारीरिक कष्ट तथा 'सगण' का देश से उदासीनता।

---

१. मो भूमिस्त्रिगुरुः श्रियं दिशति, यो वृद्धिं जलं चादिल्यो।
रोऽग्निर्मध्यलघुर्विनाशमनिलो देशाटनं सोऽन्त्यगः॥
तो व्योमान्तलघुर्धनापहरणं जोऽर्कों रुजं मध्यगो।
भश्चन्द्रो यश उज्ज्वलं मुखगुरुर्नो नाक आयुस्त्रिलः॥

—वृत्तरत्नाकर टीका, पृ० ४।

तथा : म-नौ मित्रे भ-यौ भृत्यावुदासीनो ज-तौ स्मृतौ।
रसावरी नीचसंज्ञौ द्वौ द्वावेतौ मनीषिभिः॥

—वही, पृ० ५।

२. मही देवता मगन की नाक, नगन को देखि।
जल जिय जानौ यगन को, चन्द भगन को लेखि॥
सूरज जानौ जगन को, रगन शिखीमय मानि।
वायु समझिये सगन को, तगन अकाश बखानि॥
मगन नगन को मित्र गनि, भगन यगन को दास।
उदासीन जत जानिये, रस रिपु केशवदास॥
भूमि भूरि सुख देय नीर नित आनन्दकारी।
आगि अंग दिन दहै, सूर सुख सौखैं भारी॥
केशव अफल अकाश वायु किल देश उदासैं।
मंगल चन्द अनेक नाग बहु बुद्धि प्रकासैं॥

—छ० प्रि०, प्र० ३, छन्द २३-२६।

केशव कवित्त के आदि में 'अगण' के प्रयोग को दोष मानते हैं[१]। यदि कहीं आवश्यकतावश 'अगण' आ भी जाये तो उसके दोष का परिहार करने के लिए केशव ने दो गणों के योग के फल का वर्णन किया है। उनके अनुसार मित्र-गणों के योग का फल 'ऋद्धि-सिद्धि' है, मित्र और दास गण के योग का 'विजय', मित्र और उदासीन गण के योग का 'गोत्र-दुःख', मित्र और शत्रु गण के योग का 'बन्धुहानि', दास और मित्र गण के योग का 'कार्यसिद्धि', दास और दास गण के योग का 'जीवों पर अधिकार', दास और उदासीन गण के योग का 'धनहानि', दास और शत्रु गण के योग का 'पराजय अथवा मित्र का शत्रु होना', उदासीन और मित्र गण के योग का 'अल्प फल', उदासीन और दास गण के योग का 'प्रभुता-प्राप्ति', उदासीन और उदासीन गण के योग का 'विफलता', उदासीन और शत्रु गण के योग का 'सुखहानि', शत्रु और मित्र गण के योग का 'निष्फलता', शत्रु गण और दास गण के योग का 'स्त्रीनाश', और शत्रु उदासीन गण के योग का 'कुलनाश' तथा शत्रु और शत्रुगण के योग का 'नायकनाश'[२]। दो-एक स्थलों को छोड़कर केशव का यह सब द्विगण—फल-वर्णन वृत्तरत्नाकर[३] आदि पिंगल-ग्रन्थों के समान है।

केशव के 'लघु-गुरु विचार' का आधार भी वृत्तरत्नाकर आदि छन्द-ग्रन्थ हैं[४]। 'दोहा' को भी गण के भीतर ला दिखाना केशव की निजी उद्भावना है[५]। यहाँ

---

१. जो कहुँ आदि कवित्त के अगन होय बड़भाग।
ताते द्विगण विचार चित्त कीन्हों वासुकी नाग॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द २७।

२. क० प्रि०, प्र० ३, छन्द २८-२९।

३. वृत्तरत्नाकर टीका, पृ० ५-६।

४. मिलान कीजिए—

संयोगी को आदि युत, बिन्दु जु दीरघ होय।
सोई गुरु लघु और सब कहैं सयाने लोय॥
दीरघ हू लघु करि पढ़े, सुख हो सुख जेहि ठौर।
सोऊ लघु करि लेखिये, केशव कवि सिरमौर॥
संयोगी की आदि को कहुँ गुरु वरण विचारि।
केशवदास प्रकाश बल, लघु करि ताहि निहारि॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द ३३, ३४ तथा ३६।

सानुस्वारो विसर्गान्तो दीर्घो युक्तपरश्च यः।
वा पादान्ते त्वसौ ग्वक्रो ज्ञेयोऽन्यो मात्रिको लृजुः॥

—वृत्तरत्नाकर, पृ० ७।

दीर्घाक्षरमपि जिह्वा ह्रस्वं चेत्पठति तदपि भवति लघु॥

—वृत्तरत्नाकर, टीका, पृ० १२।

पादादाविह वर्णस्य संयोगः क्रमसंज्ञकः।
पुरःस्थितेन तेन स्याल्लघुताऽपि क्वचिद् गुरोः।

—वृत्तरत्नाकर, पृ० ९।

५. राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
उद्धव ह्याँ तुम कौन हौं, कहौ योग की गाथ॥

स्व० ला० भगवानदीन 'भावार्थ' में समझाते हैं।

"ऊपर के दोनों दोहों में ८ चरण हैं। आठों चरणों में गणागण के आठ उदाहरण हैं। उन्हें समझिये—जैसे :

१. राधारा धारम=म+भ=मित्र+दास, फल विजय।

२. मनप ठ्योहै =न+य =मित्र+दास, फल विजय।

३. उद्धव ह्यांतुम=भ+भ=दास+दास, फल सर्वजीववश।

४. कह्यो गकीगा=य+य=दास+दास, फल सर्वजीववश।

ये चारों गणयोग शुभ हैं।

५. कहाँ कहा तुम=ज+भ=उदासीन+दास, फल अल्प।

६. प्राणना थकेमि=र+य=उदासीन+दास, फल अल्प।

७. फिरपी छेपछि=स+भ=शत्रु+दास,फल नारिनाश।

८. ऊधो समुझोचि=त+य=शत्रु+दास, फल नारिनाश।

ये चारों गणयोग अशुभ हैं। इसी प्रकार और भी समझ लो[1]।"

कवि-प्रकार:

चौथे प्रभाव में कवि-प्रकार तथा कवि-रीति का वर्णन किया गया है। केशव तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख करते हैं, उत्तम, मध्यम एवं अधम। उत्तम कवि हरिरस में लीन रहते हैं, मध्यम मनुष्यों के चरित्रों का वर्णन करते हैं तथा अधम दूसरों के दोषों का ही बखान करते हैं[2]। इस प्रकार प्रथम श्रेणी के कवि परमार्थ के पथ का अनुसरण करते हैं और अनुत्तम (अर्थात् दूसरी श्रेणी के) निरन्तर स्वार्थ-साधन में लगे रहते हैं। मध्यम अथवा तृतीय श्रेणी के कवि अपनी कविता से लोगों का केवल मनोरंजन करते हैं पर जिससे न तो स्वार्थसाधन होता है और न

कहाँ कहा तुम पाहुने, प्राणनाथ के मित्त।
फिर पीछे पछिताहुगे, ऊधो समुझौ चित्त॥
दोहा दुहूँ उदाहरण, आठौ आठौं पाय।
केशव गन अरु अगन के, समझौ बुद्धि सुभाय॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छन्द ३०-३२।

१. क० प्रि०, पृ० ३८।

२. केशव तीनहु लोक में त्रिविध कविन के राय।
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रसलीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन॥

—क० प्रि०, प्र० ४, छं० १-२।

परमार्थ ही बनता है[१]। इस वर्णन का आधार भर्तृहरि का निम्नलिखित श्लोक जान पड़ता है जिसमें उन्होंने मनुष्यों की कोटियों का उल्लेख किया है[२]।

कवि-रीति :

केशव ने तीन प्रकार की कवि-रीतियाँ बतलाई हैं—१. सत्य का असत्य के रूप में वर्णन करना, २. असत्य बात को सत्य मान कर वर्णन करना तथा ३. कुछ बातों को नियमबद्ध करके अर्थात् कविपरम्परा के अनुसार वर्णन करना[३]। इसी बात का उल्लेख 'अलंकारशेखर' में इस प्रकार किया गया है[४]। यही भाव 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में भी मिलता है[५]।

सत्य का असत्य के रूप में वर्णन करना :

चन्दन के वृक्ष में प्रत्यक्ष रूप से फल और फूल दोनों रहते हैं, परन्तु कवि उसमें उनका न होना ही वर्णन करते हैं। इसी प्रकार मास के प्रत्येक पक्ष में अन्धकार और प्रकाश बराबर मात्रा में रहता है, परन्तु कवि लोग कृष्णपक्ष की अपेक्षा शुक्लपक्ष की अधिक प्रशंसा करते हैं[६]। यों तो यहाँ आधा भाव 'अलंकारशेखर' के

---

१. हैं अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पथ सोहैं।
केशवदास अनुत्तम ते नर संतत स्वारथ संयुक्त जो हैं॥
स्वारथ हू परमारथ भोग न मध्यम लोगनि के मन मोहैं।
भारत पारथमित्र कह्यो परमारथ स्वारथहीन ते को हैं॥

—क० प्रि०, प्र० ४, छं० ३।

२. एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थविरोधेन ये।
तेऽमी मानवराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे॥

—नीतिशतक, श्लोक ७४।

३. साँची बात न बरनहीं, झूँठी बरननि बानि।
एकनि बरनैं नियम कै, कवि मत त्रिविध बखानि॥

—क० प्रि०, प्र० ४, छन्द ४।

४. असतोऽपि निबन्धेन सतामप्यानिबन्धनात्।
नियमस्य पुरस्कारात् सम्प्रदायस्त्रिधा कवेः॥

—अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५५।

५. असतोऽपि निबन्धेनाऽनिबन्धेन सतोऽपि च।
नियमेन च जात्यादेः कवीनां समयस्त्रिधा॥

—काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक १४।

६. केशवदास प्रकाश बहु, चन्दन के फल फूल।
कृष्णपक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्लपक्ष तम तूल॥

—क० प्रि०, प्र० ४, छं० ५।

'फलपुष्पे च चन्दने[१]' में भी व्यक्त हो गया है किन्तु सम्पूर्ण भाव 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में ही मिलता है[२]। अतः यह भाव कवि ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिया है।

असत्य का सत्य मानकर वर्णन करना :

प्रत्येक समुद्र में रत्न नहीं होते, किन्तु कवि जहाँ भी समुद्र-वर्णन करते हैं वहाँ उसमें रत्नों का होना वर्णन करते हैं। यद्यपि हंस मानसरोवर में ही रहते हैं, परन्तु कविजन छोटे-छोटे जलाशयों में भी हंसों का होना वर्णन करते हैं। यही असत्य का सत्य मानकर वर्णन करना है[३]। केशव के इस वर्णन का आधार 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों ही ग्रन्थ मालूम पड़ते हैं[४]।

इसी प्रकार कवि रात्रि के अन्धकार को सूई से सींकर (गेंद सी बनाकर) मुट्ठी में भर लेने तथा चन्द्र की चन्द्रिका को अंजुलि में भर कर पी लेने का वर्णन किया करते हैं[५]। यही बात केशवमिश्र ने इस प्रकार कही है[६]। किन्तु सम्भवतः केशव ने अमरचन्द्र के निम्नलिखित श्लोक का अनुवाद किया है[७]। हाँ, तम (अंधकार) तथा चन्द्रिका के सम्बन्ध में दिये गए उदाहरण[८] केशव के अपने हैं।

---

१. अलंकारशेखर मरीचि, १६, पृ० ५६।

२. वसन्ते मालतीपुष्पं फलं पुष्पं च चन्दने।
अशोके च फलं ज्योत्स्नाध्वान्ते कृष्णान्यपक्षयोः॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ६६।

३. जहं जहं वर्णत सिन्धु सब, तहं तहं रतननि लेखि।
सूछम सरवर हू कहैं, केशव हंस विशेखि॥
—क० प्रि०, प्र० ४, छं ६।

४. रत्नादि यत्र तत्राद्रौ हंसाद्यल्पजलाशये।
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तवक ५, श्लोक ६५।

रत्नानि यत्र तत्राद्रौ हंसाद्यल्पजलाशये॥
—अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५५।

५. लेन कहै भरि मूठि तम, सूजनि सियनि बनाय।
अंजुलि भरि पीवन कहैं, चन्द्र चन्द्रिका पाय॥
—क० प्रि०, प्र० ४, छं० ७।

६. तिमिरस्य तथा मुष्टिग्राह्यत्वं सूचिभेद्यता।
—अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५६।

७. तिमिरस्य तथा मुष्टिग्राह्यं सूची विभेद्यताम्।
अंजलिग्राह्यता कुम्भोपवाह्यत्वे विधुत्विषः॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ६६।

८. क० प्रि०, प्र० ४, छं० ९, १० (क्रमशः)।

नियमबद्ध वर्णन :

नियमबद्ध-वर्णन में परम्परा से आने वाली रूढ़ियों अथवा कविप्रसिद्धियों में बँधकर चलना पड़ता है। कविजन चंदन तथा भोजपत्र का अस्तित्व क्रमशः मलयाचल और हिमालय पर ही बतलाते हैं, यद्यपि ये वस्तुएँ अन्यत्र भी मिल सकती हैं। इसी प्रकार कवि लोग देव-रूप का वर्णन चरणों से तथा मनुष्य-रूप का वर्णन शिर से किया करते हैं[१]। इसका समर्थन 'अलंकारशेखर' से भी हो जाता है[२]।

केशव की 'वर्णंत चन्दन मलय ही, हिमगिरि ही भुजपात' इस पंक्ति का भाव 'काव्यकल्पलतावृत्ति'[३] में भी मिलता है। कविलोग वसन्त में कोकिल के बोलने और वर्षा में ही मयूरों के हर्षित होने का वर्णन करते हैं[४]। इसकी पुष्टि 'अलंकारशेखर' तथा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' दोनों ही ग्रन्थ करते हैं[५]। इसी प्रकार केशव द्वारा 'दनुजन सों, दिति सुतन सों, असुरै कहत बखानि[६]' में व्यक्त भाव भी केशवमिश्र के 'दानवासुरदैत्यानामैक्यमेवाभिसंहितम्[७]' से मिलता है।

यह प्रकरण 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होता है परन्तु नियमबद्ध-वर्णन के अन्तर्गत 'अलंकारशेखर' के कर्त्ता केशवमिश्र ने काव्यकल्पलतावृत्तिकार की अपेक्षा अधिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। केशव ने थोड़े से उदाहरण देकर केवल मार्ग-प्रदर्शन ही किया है। उपर्युक्त नियमबद्ध-वर्णन वाले उदाहरणों को छोड़कर केशव के अधिकांश उदाहरण अपने ही हैं। इस

---

१. वर्णंत चन्दन मलय ही, हिमगिरि हि भुजपात।
वर्णंत देवन चरण तें, सिर तें मानुष गात॥
—क० प्रि०, प्र० ४, छं० ६।

२. हिमवत्येवभूर्जत्वक् चन्दनं मलये परम्।
मानवा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः॥
—अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५६।

३. भूर्जत्वक् हिमवत्येव मलये ह्येव चन्दनम्॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लो० १०२।

४. कोकिल को कल बोलिबो, बरनत हैं मधुमास।
वरषा ही हरषित कहैं, केकी केशवदास॥
—क० प्रि०, प्र० ४, छं० १४।

५. वर्षास्वेव शिखिप्रौढ़िर्मधावेव पिकध्वनिः।
तथा बसन्त एवान्यभृतानां ध्वनितोद्भवम्॥
—अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५६।

वर्षास्वेव मयूराणां रुतं नृत्तं च वर्णयेत्॥
—काव्यकल्पलतावृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लो० १०४।

६. क० प्रि०, प्र० ४, छं० १५।

७. अलंकारशेखर, मरीचि १५, पृ० ५६।

प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि केशव के कवि-रीति-वर्णन का आधार 'अलंकार-शेखर' तथा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' दोनों ही ग्रन्थ हैं। अधिकांश उदाहरणों के लिए केशव 'अलंकारशेखर' के ऋणी हैं और कुछ उक्त उदाहरण जैसे, 'कृष्णपक्ष की जोन्ह ज्यों शुक्लपक्ष तम तूल', 'अंजलि भर पीवन कहैं, चन्द्र चन्द्रिका पाय' इत्यादि जिनका उल्लेख 'अलंकारशेखर' में नहीं हुआ है, 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिए गए हैं।

नियमबद्ध-वर्णन के अन्तर्गत केशव ने कविपरम्परा से चले आते सुन्दरियों के सोलह शृंगारों[1] का उल्लेख किया है पर उनके लिखने में कवि ने कुछ स्वतंत्रता से काम लिया है।

महापुरुष-वर्णन तथा पुरुष-वर्णन दोनों ही केशव के अपने हैं। केवल पुरुष-वर्णन के अन्तर्गत भुजाओं को सर्प तथा वक्षःस्थल को शिला तथा कपाट के सदृश कहने का आधार 'अलंकारशेखर' है[2]।

अलंकार-वर्णन :

केशव ने अलंकार के साधारण अथवा सामान्य तथा विशिष्ट दो प्रकार माने हैं। किन्तु वे इन दोनों की न तो परिभाषा देते हैं और न व्याख्या ही करते हैं। केवल इसे परम्परागत मान्यता के रूप में ही ग्रहण कर लेते हैं[3]। फिर 'सामान्य' अलंकार के चार भेद किए गये हैं— १. वर्ण, २. वर्ण्य, ३. भू-श्री, ४. राज-श्री[4]।

वर्णालंकार :

'कविप्रिया' का पाँचवाँ प्रभाव वर्णालंकार-वर्णन को अर्पित है। वर्णालंकार के अन्तर्गत केशव ने श्वेत, पीला, काला, अरुण (लाल), धूम्र, नीला तथा मिश्रित—

---

१. प्रथम सकल सुचि, मज्जन अमलवास, जावक सुदेश केशपासनि सुधारिबो।
अंगराग भूषण विविध मुख बास राग, कज्जलकलित लोल लोचन निहारिबो।
बोलनि हंसनि चित्त चातुरी चलनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो।
केशोदास सबिलास करहूं कुँवरि राधे, यहि विधि सोरह सिंगारन सिंगारिबो।
—क० प्रि०, प्र० ४, छं० १७।

२. युगार्गलभुजङ्गेन्द्रदण्डस्तम्भेभहस्तकैः ।
वक्षःकपाटेन शिलापट्टेन वर्ण्यते ॥
—अलंकारशेखर, मरीचि १४, पृ० ५०।

३. कविन कहे कवितान के अलंकार द्वै रूप।
एक कहै साधारणै, एक विशिष्ट सरूप ॥
—क० प्रि०, प्र० ५, छं० २।

४. सामान्यालंकार को चारि प्रकार प्रकाश।
वर्ण वर्ण्य, भू-राज-श्री, भूषण केशवदास ॥
—क० प्रि०, प्र० ५, छं० ३।

इन सात प्रकार के रंगों को लिया है[1] और यह बताया है कि कौन वस्तु किस रंग की वर्णन करनी चाहिये, जैसे कीर्ति, ज्योत्स्ना, जरा आदि को श्वेत; गरुड़, मधु, सुमेरु, कनक, वीर रस, आदि को पीत; खंजन, राक्षस, काक, पाप आदि को कृष्ण; बाल रवि, अधर, पिक, महावर, रौद्र रस आदि को अरुण; कपोत, करभ आदि को धूम्र तथा कुवलय, मरकत मणि आदि को नील वर्ण का वर्णन किया जाता है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में छः ही वर्णों का उल्लेख है, शुक्ल (श्वेत), कृष्ण (काला), नीला, रक्त (अरुण), पीत और धूसर (धूम्र)[2]। 'अलंकारशेखर' में केवल पाँच ही वर्ण बतलाए गए हैं, श्वेत, नील, शोण (अरुण), पीत और धूसर[3]। केशवमिश्र काले वर्ण को नीले वर्ण के अन्तर्गत ही मानते हैं। यही कारण है कि उन्होंने अमरचन्द्र द्वारा काले वर्ण के अन्तर्गत वर्णित कृष्ण, चन्द्रांक, व्यास (द्वैपायन), राम, धनंजय, यम, असुर (राक्षस), काली, शनि, द्रौपदी, विष, अम्बर (आकाश), मद, कुहू, अगरु, पाप, तम, निशा, कृत्या, केकी, छाया और शृंगार रस आदि को नीले के अन्तर्गत ही लिया है। इन वस्तुओं को काले वर्ण की वर्णन करने में केशव ने अमरचन्द्र की 'काव्यकल्पलतावृत्ति' को ही आधार बनाया है। अमरचन्द्र ने हरित वर्ण का कोई उल्लेख नहीं किया है, परन्तु केशवमिश्र ने उपलक्षण के रूप में हरित वर्ण का भी उल्लेख किया है और बुध एवं मरकत मणि आदि वस्तुओं को हरितवर्ण की बतलाया है[4]। अमर ने हरित वर्ण को नीले के अन्तर्गत ही माना है और बुध, शुक, सूर्य के अश्व, दूब, शैवाल आदि वस्तुओं को नीले वर्ण की बतलाया है[5]। केशव ने भी अमरचन्द्र के समान हरित वर्ण का उल्लेख न कर उसे नीले वर्ण में ही सम्मिलित किया है और दूब, सूर्य के अश्व, शैवाल, शुक, तुलसी आदि को नीले वर्ण का वर्णन किया[6]। इसी प्रसंग के अन्त में अमर ने दो रूप अर्थात् मिश्रित वर्ण की वस्तुओं की ओर संकेत भर किया है, परन्तु ऐसी वस्तुओं के नाम नहीं दिए हैं[7]। अमरचन्द्र ने मिश्रित वर्ण की वस्तुओं का उल्लेख किया है। उन्होंने श्वेत तथा श्याम, श्वेत तथा रक्त, श्वेत तथा पीत, रक्त तथा श्याम, पीत तथा श्याम और पीत तथा

---

१. सेत पीत कारे अरुण, धूमर नीले वर्ण।
 मिश्रित केशवदास कहि, सात भाँति शुभकर्ण ॥
 —क० प्रि०, प्र० ५, छं० ४।

२. का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक २, पृ० ११७-१२२।

३. अलंकारशेखर, मरीचि १७, पृ० ६१।

४. इदमुपलक्षणम्। हरिताः सूर्यतुरगाः बुधो मरकतादयः। इत्यपि बोध्यम्।
 —अलंकारशेखर, मरीचि १७, पृ० ६२।

५. का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक २, श्लोक ८२, ८३, ८४ (प्रथमार्द्ध), पृ० १२०।

६. क० प्रि०, प्र० ५, छं० ३६-३७।

७. द्विरूप्ये चाप्रसिद्धौ च नियमोऽयमुदाहृतः।
 अन्यद्वदस्तु यथा यत्स्यात्तत्तथैवोपवर्ण्यते ॥
 —अलंकारशेखर, मरीचि १७, पृ० ६२।

रक्त वर्णन का भान कराने वाले द्वयर्थक शब्दों के नाम दिये हैं[1]। परन्तु केशव ने केवल श्वेत तथा कृष्ण, श्वेत तथा पीत और श्वेत तथा लाल वर्ण का भान करने वाले द्वयर्थक शब्द ही गिनाए हैं, अमरचन्द्र के अन्य भेदों का उल्लेख नहीं किया है। इसके अतिरिक्त अमरचन्द्र ने बहुत सी वस्तुएँ गिनाई हैं परन्तु केशव ने उनमें से कुछ का ही उल्लेख किया है। श्वेत और कृष्ण के अन्तर्गत केशव ने हरि, विधु, अभ्रक, पाख, घन, नागराज, पयोराशि, सिहीज, अनन्त, अर्जुन, हरिगज, कलकण्ठ, कृष्णनदीवर तथा नीरद चौदह शब्दों के नाम दिये हैं। 'पाख' तथा 'पयोराशि' को छोड़कर अन्य सभी नाम अमर से मिलते हैं। केशव का 'नागराज' अमर के 'नागेन्द्र' से भिन्न नहीं है। श्वेत और पीत के अन्तर्गत केशव ने छः शब्द दिए हैं, शंभु, रजत, अष्टापद, सोम, कलधौत तथा तारकूट। शेष सभी नाम अमर से मिलते हैं, केवल 'सोम' के स्थान पर 'हेम' शब्द प्रयुक्त हुआ है। श्वेत और लाल के अन्तर्गत केशव ने शुचि, हरि, पुष्कर, हंस, अर्क, अब्ज तथा कमल सात शब्द दिए हैं। ये भी सभी अमर के अनुसार हैं।

अतः स्पष्ट है कि मिश्रित वर्ण के अन्तर्गत गिनाए गए प्रायः सभी शब्द केशव ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिए हैं। परन्तु अन्य वर्णों के अन्तर्गत निर्दिष्ट वस्तुओं का आधार 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों ही ग्रन्थ हैं। इन दोनों में भी केशव 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के ही अधिक ऋणी हैं। कारण, 'अलंकारशेखर' की अपेक्षा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में विभिन्न वर्णों के अन्तर्गत वस्तुओं की नामावली अधिक विस्तार के साथ प्रस्तुत की गई है। जब हम उक्त दोनों ग्रन्थों में विभिन्न वर्णों के अन्तर्गत दी हुई नामावली और केशव द्वारा दी हुई नामावली का मिलान करते हैं तो कुछ शब्द ऐसे देखने में आते हैं जो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों में आये हैं। इन शब्दों के विषय में यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन शब्दों का आधार दोनों में से कौन सा ग्रन्थ है। कुछ शब्द ऐसे हैं जो या तो 'अलंकारशेखर' में आए हैं या 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में ही। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो दोनों ही ग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते। ये शब्द निःसन्देह ही केशव के अपने हैं। उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

श्वेत वर्ण के अन्तर्गत केशव द्वारा निर्दिष्ट वस्तुओं में से जो शब्द उक्त दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं वे ये हैं—१. हरिहय, २. हर, ३. शशि, ४. सुधा, ५. सौध ६. बल (बलराम), ७. कांचली, ८. कमल, ९. हिम, १०. सिकता, ११. खांड, १२. सिंह, १३. शेष, १४. हास, १५. नारद, १६. मुरार (मृणाल), १७. सुरसरित तथा १८. भौंडर (अभ्रक)[2]।

---

१. का० क० वृत्ति, प्रतान ३, स्तबक २ और ३, पृ० ६३-६४ तथा ६७-७३ (क्रमशः)

२. डा० दीक्षित ने न जाने किस आधार पर यह लिखा है कि भौंडर (अभ्रक), सुरसरित तथा मुरार (मृणाल) शब्द केवल 'अलंकारशेखर' में ही आए हैं (आचार्य केशवदास, पृ० २३५)। ये तीनों शब्द उक्त दोनों ही ग्रन्थों में मिल जाते हैं।
—(अलंकारशेखर, पृ० ६१ तथा काव्यकल्पलतावृत्ति, पृ० ११८, श्लोक ६६, ६७ और ६८)।

शरदघन तथा सुरवारण दो शब्द केवल 'अलंकारशेखर' में ही आए हैं, जिनका आधार यही ग्रन्थ है।

जो शब्द 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से लिए गए हैं उनकी सूची इस प्रकार है—१. कीरति, २. जोन्ह (चन्द्रप्रभा), ३. हरि (इन्द्र), ४. हरगिरि, ५. सूर, ६. घनसार, ७. बक, ८. हीरा, ६. कौड़ी, १०. करका (ओला), ११. कांस, १२. कुन्द, १३. भस्म, १४. कपास, १५. हाड़, १६. निर्भर, १७. चंवर, १८. चन्दन, १९. हंस, २०. छत्र, २१. सत्ययुग, २२. दूध, २३. दधि, २४. संख, २५. उड़मार (तारागण), २६. सुकृति (पुण्य), २७. सत्वगुण, २८. सीप, २९. फटिक, ३०. खटिका, ३१. शुक्र, ३२. सुरवाजि (उच्चैःश्रवा), ३३. पारद, ३४. अमलजल, ३५. शारदा, ३६. मंदार, ३७. चून[१] तथा ३८. मोती।

केशव के अपने शब्द ये हैं—१. केवड़ा, २. शुचि, ३. सन्तमन, ४. फेन, ५. गणपति-दशन, ६. काम-धनुष, ७. सागर, ८. विमल विचार, ६. जनेऊ (यज्ञोपवीत) १०. स्त्रियों की विलासक्रीड़ा, ११. उदारजन का उदय, १२. नारायण का वक्षःस्थल, १३. लक्ष्मी की वाणी, १४. शोभा, १५. शुभता, १६. नारद का उपदेश, १७. ऋषियों की चोटियाँ, १८. निष्पाप विहार तथा १९. सुदर्शन।

पीत वर्ण के अन्तर्गत केशव की उन वस्तुओं के नाम उपस्थित किये जाते हैं, जो दोनों ही ग्रन्थों में आए हैं—१. हरिवाहन, २. विधि, ३. हरजटा, ४. हरताल, ५. दीपक, ६. वीररस, ७. सुरपाल (इन्द्र), ८. गोरोचना, ६. चक्रवाक, १०. मैनसिल, ११. द्वापर, १२. वानरपूत, १३. केशर तथा १४. कनक।

यहाँ वे नाम दिए गए हैं, जो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही लिए हैं—१. हरा (पार्वती), २. हरद, ३. चंपक, ४. सुरगुरु, ५. सुरगिरि ६. गंधक, ७, सारोमुख तथा ८. दिवस।

इन वस्तुओं के नाम केशव के अपने हैं—१. मधु, २. भू, ३. गोघनमूत, ४. कमलकोश, ५. चपला, ६. पीतल तथा ७. पराग।

केशव ने काले वर्ण के अन्तर्गत बहुत सी नवीन वस्तुओं का उल्लेख किया है, जिनके नाम ये हैं—१. आकाश, २. असि, ३. बिसासी (विश्वासघाती), ४. राहु, ५. चोर, ६. खल-मन, ७. नरक, ८. रीछ, ६. कलंक, १०. अग्नि-मार्ग, ११. किसान, १२. नर, १३. लोभ, १४. छोभ, १५. दुःख, १६. मोह, १७. विरह, १८. यशोदा, १९. गोपिका, २०. लोह, २१. कच, २२. काम, २३. मल, २४. कांच, २५. कलह २६. क्षुद्र, तथा २७. छल आदि मानसिक भाव।
शेष सब वस्तुएँ अमरचन्द से मिलती हैं।

रक्त वर्ण के अन्तर्गत केशव द्वारा दी हुई वस्तुओं में से ये शब्द दोनों ग्रन्थों में पाये जाते हैं—१. इन्द्रगोप, २. खद्योत, ३. कुंज ४. तक्षक, ५. रसना,

---

१. डा० दीक्षित ने इसे केशव के निजी शब्दों में गिनाया है (आचार्य केशवदास, पृ० २३६) पर यह तो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में मिल जाता है।
—(दधिभचयचूर्णास्थिखटिकास्फटिकाभ्रकाः, पृ० ११८, श्लोक ६६)।

६. बानर-मुख, ७. कोकिल-नेत्र, ८. चकोर-नेत्र, ९. पारावत-नेत्र, १०. केसरि तथा ११. रौद्ररस।

निम्नलिखित शब्द 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से लिए गए हैं—

१. कुसुम-विशेष (पाटल), २. मदिरा, ३. बाल रवि, ४. अधर, ५. दुगन्त ६. पल (मांस), ७. कुक्कुटशिखा, ८. माणिक, ९. शुकमुख, १०. कोकिल-नख, ११. चकोर-नख, १२. पारावत-नख, १३. जवा-पुष्प, १४. दाड़िम, १५. किंशुक, १६. अशोक, १७. पावक, १८, पल्लव, १९. बीटिका, २०. चन्दन, २१. क्षत्रिय धर्म, २२. मंजीठ, २३. महावर, २४. नख, २५. सन्ध्या, २६. कलहंस की चंचु तथा चरण।

केशव के निजी शब्द ये हैं—१. गजमुख, २. ताम्बा, ३. सारससीस, ४. चाख (नीलकण्ठ), ५. अरुण (सूर्य का सारथी), ६. रुधिर तथा ७. गेरू।

इसी प्रकार धूम्रवर्ण के अन्तर्गत गिनाई गई वस्तुओं में से केवल 'धूमरी' को छोड़कर जिसका आधार केवल 'काव्यकल्पलतावृत्ति' ही है, शेष सातों का उल्लेख 'अलंकारशेखर' तथा 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में मिलता है।

वर्ण्यालंकार :

छठे प्रभाव में केशव ने वर्ण्यालंकार का निरूपण किया है। जिन वस्तुओं की आकृति अथवा गुण लेकर कोई उक्ति कही जाती है उन्हें केशव वर्ण्य मानते हैं। यों तो वर्ण्य अनेक हैं पर केशव ने इन अट्ठाईस को ही प्रमुख माना है—(१) सम्पूर्ण, (२) आवर्त, (३) कुटिल, (४) त्रिकोण, (५) सुवृत्त, (६) तीक्ष्ण, (७) गुरु, (८) कोमल, (९) कठोर, (१०) निश्चल, (११) चंचल, (१२) सुखद, (१३) दुखद, (१४) मन्दगति, (१५) शीतल, (१६) तप्त, (१७) सुरूप, (१८) क्रूरस्वर, (१९) सुस्वर, (२०) मधुर, (२१) अबल, (२२) बलिष्ठ, (२३) सत्य, (२४) झूठ, (२५) मण्डल, (२६) जाति, (२७) सदागति तथा (२८) दानी[1]। इनमें से सम्पूर्ण, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त तथा मण्डलाकार वस्तुओं का आधार 'काव्यकल्पलतावृत्ति' का प्रतान ४, स्तबक ३ है[2] और तीक्ष्ण, कोमल, कठोर, निश्चल, चंचल, सुखद, दुखद, मंदगति, शीतल, तप्त, सुरूप, क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ तथा दानी का आधार इसी ग्रन्थ का चौथा प्रतान और चौथा स्तबक है[3]। जहाँ अमरचन्द्र ने

१. क० प्रि०, प्र० ६, छं० १-३।

२. श्लोक १०४—(सम्पूर्ण); श्लोक १२६-१२६ (कुटिल); श्लोक १२७-१२८ (त्रिकोण); श्लोक ११४-११६ (सुवृत्त); श्लोक १०५-१०७ (मण्डलाकार)।

३. श्लोक १६४-१६६ (तीक्ष्ण); श्लोक २२५ (कोमल); श्लोक २२६ (कठोर); श्लोक १८६ (निश्चल-स्थिर); श्लोक १६० (चंचल-अस्थिर); श्लोक १८२-१८५ (सुखद); श्लोक १८५-१८८ (दुखद); श्लोक १६४ (मन्दगति); श्लोक २२१ (शीतल-शिशिर); श्लोक २२२ (तप्त-उष्ण); श्लोक २३८ (सुरूप); श्लोक २०५-२०७ (क्रूरस्वर-कठोर-रटिता); श्लोक २०१-२०४ (सुस्वर-मधुरध्वनि); श्लोक २२८-२२९ (मधुर); श्लोक १६८ (अबल); श्लोक १६५-१६७ (बलिष्ठ) तथा श्लोक २३६ (दानी)।

महत्तम, सूक्ष्म, मांगलिक, अमांगलिक, पवित्र, अपवित्र, क्रूर, अक्रूर, सुगन्ध, दुर्गन्ध, कटु, क्षार, अम्ल आदि बहुत से अन्य गुण तथा आकार वाली वस्तुओं का भी विवरण दिया है जिनका केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है, वहाँ केशव ने कुछ अन्य वस्तुओं का वर्णन किया है जिनको अमरचन्द्र ने छोड़ दिया है, यथा आवर्ताकार गुरु, सत्य-झूठ, अगति और सदागति का वर्णन। इन वस्तुओं का वर्णन केशव की मौलिक उद्भावना का परिणाम है। जिन वस्तुओं का वर्णन अमर ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में किया है उनमें उन्होंने केशव की अपेक्षा अधिक विस्तृत नामावली प्रस्तुत की है। केशव की कुछ वस्तुओं का आधार तो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' है, शेष उन्होंने अपनी ओर से जोड़ी हैं। यहाँ तीन उदाहरण देना यथेष्ट होगा।

मन्दगति वाली वस्तुओं में अमरचन्द्र ने शनि, पंगु, मुनि, बालक, नितम्बिनी (सुन्दरी), खंजन, पुण्यशील व्यक्ति, हंस, वृषभ तथा गज का नाम दिया है[1]। केशव ने निम्नांकित वस्तुएँ दी हैं[2]।

शीतल वस्तुओं के अन्तर्गत अमरचन्द्र ने सज्जनों के वचन, प्रभु, प्रसाद, प्रियसंग, सत्संग, काव्ययश, सन्तोष, सुधा, जल, हेमन्त, चन्द्रमा तथा ओला का उल्लेख किया है[3]। केशव ने निम्नलिखित वस्तुएँ बतलाई हैं[4]।

इसी प्रकार सुरूप वस्तुओं के अन्तर्गत अमर मदन, स्कन्द, अनिरुद्ध, नलकूबर, अश्विनीकुमार, नकुल, नल तथा पुरुरवा का उल्लेख करते हैं[5]। केशव ने जो वस्तुएँ गिनाई हैं, वे इस प्रकार निर्दिष्ट हैं[6]।

कुछ वस्तुओं के अन्तर्गत दी हुई केशव की सब वस्तुएँ अमर से मिल जाती हैं, परन्तु इस प्रकार के उदाहरण एक-आध ही हैं, यथा निश्चल आदि वस्तुएँ। निश्चल के अन्तर्गत केशव ने सती, भाट, संतमन, धर्म तथा अधर्म का उल्लेख

---

१. मन्दानि शनिः पङ्गुर्मुनिर्वालो नितम्बिनी।
खञ्जनः पुण्यपुरुषो हंसो वृषभहस्तिनौ॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक ४, श्लोक १६४।

२. कुलतिय हास बिलास, बुध काम क्रोध मद मानि।
शनि, गुरु, सारस, हंस, गज, तियगति मंद बखानि॥
—का० प्रि०, प्र० ६, छं० ३५।

३. का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक ४, श्लोक २२१।

४. मलयज, दाख, कलिंद, सुख, ओरो, मिश्री मीत।
प्रियसंगम, घनसार, शशि, जल, जलरुह, हिम, शीत॥
—क० प्रि, प्र० ६, छं० ३७।

५. का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक ४, श्लोक २३८।

६. नल, नलकूबर, सुरभिषक, हरिसुत, मदन निहारि।
दमयंती सीतादि त्रिय सुन्दर रूप बिचारि॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं ४१।

किया है[1]। ये सभी वस्तुएँ अमर में ज्यों की त्यों पाई जाती हैं[2]।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि छठे प्रभाव की अधिकांश सामग्री केशव ने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के चौथे प्रतान से ली है। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी ओर से भी वस्तुओं का उल्लेख किया है।

भूमिश्री-वर्णन :

सातवें प्रभाव में भूमिश्री का वर्णन किया गया है। केशव भूतल के प्राकृतिक दृश्यों एवं वस्तुओं के काव्य में वर्णन को ही भूमिश्री कहते हैं। भूमिश्री के अन्तर्गत वे देश, नगर, बन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, रवि, शशि, सागर तथा षट्ऋतु को मानते हैं। इसमें से प्रत्येक को लेकर यह भी बताया गया है कि किस-किस के वर्णन में किन-किन दृश्यों अथवा वस्तुओं का उल्लेख करना चाहिए। केशव की इन वस्तुओं का वर्णन 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों ही ग्रन्थों में मिलता है। इनमें भूमिश्री तथा राज्यश्री, जिनका विवेचन आगे किया गया है, नाम का कोई विभाजन नहीं है और दोनों प्रकार के वर्णनों के अन्तर्गत आने वाली सब वस्तुओं के वर्णन की परिपाटी एक ही प्रकरण में बतलाई गई है[3]।

केशव द्वारा निर्दिष्ट कुछ वस्तुएँ ऐसी हैं, जिनका वर्णन 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' दोनों ही ग्रन्थों में ज्यों का त्यों मिलता है, यथा गिरि, सूर्योदय और वर्षा। ऐसी अवस्था में यह निर्णय करना कठिन हो जाता है कि उक्त वर्णनों का आधार दोनों में से कौन सा ग्रन्थ है। देश, नगर, बन, सरिता आदि केशव द्वारा वर्णित शेष वस्तुओं के वर्णन में दोनों ग्रन्थों में बहुत ही थोड़ा अन्तर देखने में आता है। कहीं-कहीं तो केवल एक दो अक्षरों अथवा शब्दों का ही अन्तर है। इस अन्तर के आधार पर यह निर्णय करना सुगम हो जाता है कि केशव ने कहाँ 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' से सहायता ली है और कहाँ 'अलंकारशेखर' से। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाएगी। देश के वर्णन में अमर ने खान, बहुद्रव्य, पण्य, धान्य, दुर्ग, ग्राम, जन-समूह, नदी आदि का वर्णन करना बतलाया है[4]। केशवमिश्र ने 'पण्य' के स्थान

---

१. सती, समर भट, संतमन, धर्म, अधर्म निमित्त।
जहां जहां ये वरनिये, केशव निश्चल चित्त॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० २३।

२. स्थिराणि पृथ्वी शैलो धर्माधर्मौ सतां मनः।
सती शैलं रणे धीरः प्रतिपन्नं महात्मनाम्॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान ४, स्तवक ४, श्लोक १८६।

३. का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तवक ५ तथा अलंकारशेखर, मरीचि १६।

४. देशे बहुखनिद्रव्यपण्यधान्याकरोद्भवाः।
दुर्गग्रामजनाधिक्यनदीमातृकादयः॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान, १, स्तवक ५, श्लोक ४२।

पर 'पशु' का उल्लेख किया है[१]। केशव ने भी 'पशु' का उल्लेख किया है[२]। इस प्रकार केशव 'पशु' के वर्णन के लिए तो 'अलंकारशेखर' के ऋणी हैं पर नदी, ग्राम, गढ़, जन-समूह, धन आदि के वर्णन उन्होंने 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से लिए हैं। कारण, 'अलंकारशेखर' के निर्माता ने भी सम्भवतः 'काव्यकल्पलतावृत्ति' को ही अपना आधार बनाया है। पक्षी, वस्त्र, सुगन्ध, सुवेश, भाषा तथा पहनावे के वर्णन केशव के अपने हैं।

इसी प्रकार नगर के वर्णन में अमरचन्द्र ने अटारी, खाई, परकोटा, राजमार्ग तोरण, आलय, सड़क, प्याउ, बाग, प्रासाद, बावड़ी आदि के वर्णन करने की विधि बतलाई है[३]। 'अलंकारशेखर' में 'आलय' के स्थान पर 'ध्वज' का निर्देश है[४]। केशव ने भी 'ध्वजा' का उल्लेख किया है[५]। यहाँ भी 'ध्वजा' के वर्णन का आधार केशवमिश्र है और शेष वर्णन अमरचन्द्र से लिए हैं। कूप, तड़ाग, असती (परकीया) तथा नगर के विशेष भागों का वर्णन केशव ने अपनी ओर से जोड़ा है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव ने कहीं 'काव्यकल्पलतावृत्ति' को अपना आधार बनाया है और कहीं 'अलंकारशेखर' को। परन्तु अधिकांश सहायता 'काव्यकल्पलतावृत्ति' से ही ली गई है। केशव ने उन्हीं वस्तुओं की वर्णन-विधि का निर्देश किया, जिनका अमरचन्द्र तथा केशवमिश्र ने किया है। केवल 'ग्राम'[६] वर्णन करने की विधि को छोड़ दिया है। यहाँ यह कह देना असंगत न होगा कि केशव ने सर्वत्र उक्त ग्रन्थों में दिए गए लक्षणों का शब्द प्रति शब्द अनुवाद करके नहीं रख दिया है, वरन् अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। ऐसे स्थल इने-गिने ही हैं जहाँ केशव के लक्षणों तथा उक्त ग्रन्थों में दिए लक्षणों में अक्षर प्रति अक्षर साम्य है, यथा

---

१. देशे बहुखनिद्रव्यपशुधान्याकरोद्भवाः।
दुर्गग्रामजनाधिक्यनदीमातृकादयः ॥

—अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ५८।

२. रतनखानि, पशु, पक्षि, बसु, बसन, सुगन्ध, सुवेष।
नदी, नगर, गढ़, बरनिये, भाषा, भूषण देश ॥

—क० प्रि०, प्र० ७, छं० २।

३. पुरेऽट्टपरिखावप्रप्रतोलीतोरणालयाः।
प्रासादाऽध्वाप्रपाऽऽरामवापीवेश्यासतीत्वरी ॥

—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ६४।

४. पुरेऽट्टपरिखावप्रप्रतोलीतोरणध्वजा।
प्रसादाध्वप्रपारामा वापी वेश्या सती नदी ॥

—अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ५८।

५. खाई, कोट, अटा, ध्वजा, वापी, कूप, तड़ाग।
बारनारि, असती, सती, बरनहु नगर सभाग ॥

—क० प्रि०, प्र० ७, छं ४।

६. का० क० वृत्ति प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ६३ तथा अलंकारशेखर, मरीचि १६ पृ० ५८।

चन्द्रोदय की वर्णन प्रणाली। अधिकांश बातों का आधार ये दोनों ही ग्रन्थ हैं, यथा नगर अथवा सूर्योदय के वर्णन के विषय में। सूर्योदय के वर्णन की विधि बतलाते हुए अमर ने अरुणता, सूर्यकान्तमणि, चक्रवाक, कमल, पथिक एवं नेत्रों को सुख तथा नक्षत्र, चन्द्रमा, दीपक, औषधि, घूक (उल्लू), तम (अन्धकार), चोर, कुमुद और कुलटाओं के दुःख के वर्णन करने का निर्देश दिया है[1]। अमर का यह वर्णन 'अलंकारशेखर' (मरीचि १६, पृ० ५६) में दिए गए वर्णन से अक्षरशः मिलता है। केशव की अरुणता, कोक तथा कोकनद को सुख और कुवलय, नक्षत्र, औषधि, दीप, शशि, घूक, चोरों तथा अन्धकार को दुःख आदि अधिकांश बातों का वर्णन 'काव्य-कल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' के ही अनुसार है। पय (जल) की पावनता मुनियों के शंख तथा वेदध्वनि करने आदि का निर्देश केशव का अपना है[2]।

दो-एक स्थानों पर केशव ने उक्त दोनों ग्रन्थों से केवल कुछ ही बातों को लिया है, जैसे हेमन्त की वर्णन-विधि में। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में हेमन्त की वर्णन-विधि का उल्लेख करते हुए अमर ने दिन की लघुता, शीत, यव, मरु, वक आदि की वृद्धि के वर्णन का विधान किया है[3]। केशवमिश्र ने भी इन्हीं बातों के वर्णन करने की शिक्षा दी है[4]। परन्तु केशव ने तेल, तूल (रूई), तांबूल, स्त्री, ताप, सूर्य, रात्रि का दीर्घ होना, दिन का लघु होना तथा शीत आदि के वर्णन का निर्देश किया है[5]। इसी प्रकार यहाँ रात्रि का दीर्घ होना तथा शीत, केवल इन्हीं बातों को केशव ने इन ग्रन्थों से लिया है।

दो-एक लक्षण ऐसे भी देखने में आते हैं जहाँ केशव ने उक्त ग्रन्थों से तनिक भी सहायता नहीं ली है, जैसे शिशिर अथवा शरद् के वर्णन के विषय में। शिशिर के वर्णन में अमरचन्द्र ने शिरीष, कुन्द, कमल आदि पुष्पों का दग्ध होना तथा

---

१. सूर्येऽरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिकलोचनप्रीतिः।
तारेन्दुदीपकौषधिघूकतमश्चौरकुमुदकुलटार्तिः॥
—का० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ८४।

२. सूर उदय ते अरुणता पय पावनता होय।
संख वेदधुनि मुनि करें पंथ लगें सब कोय॥
कोक, कोकनद शोकहत, दुख कुवलय, कुलटानि।
तारा, औषध, दीप, शशि, घूक, चोर तम हानि।
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० १८-१९।

३. हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुवकहिमानि।
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ८३ (पूर्वार्द्ध)।

४. हेमन्ते दिनलघुता मरुबकयववृद्धिशीतसम्पत्तिः।
—अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ५६।

५. तेल, तूल, तांबूल, तिय, ताप, तपन रतिवंत।
दीह रयनि, लघु दिवस सुनि सीत सहित हेमंत।
—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ३५।

'शिशिर' के उत्कर्ष का वर्णन करने का नियम बताया है[१]। केशवमिश्र ने कुन्द और गुड़हर आदि फूलों के खिलने तथा कमल के मुरझाने का वर्णन करने का उल्लेख किया है[२]। परन्तु केशव ने राजा से लेकर रंक तक सभी के मनों की प्रसन्नता और उनके निःशंक होकर दिन-रात नाचने-गाने, हँसने-खेलने का वर्णन करने की शिक्षा दी है[३]। यहाँ केशव ने स्वतन्त्र रूप से ही शिशिर के वर्णन का विधान किया है।

राज्यश्री-वर्णन :

आठवें प्रभाव में राज्यश्री का वर्णन किया गया है। राज्यश्री के अन्तर्गत केशव ने राजा, रानी, राजसुत, प्रोहित (पुरोहित), दलपति (सेनापति), दूत, मन्त्री, मंत्र, प्रयाण, हय, गय (गज), अपूर्व संग्राम, आखेट, जल-केलि, विरह, स्वयम्बर तथा सुरत को माना है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में केशव द्वारा वर्णित इन सभी सत्रह वस्तुओं का वर्णन मिल जाता है[४] और 'अलंकारशेखर' में केवल ग्यारह ही का उल्लेख मिलता है[५]।

'काव्यकल्पलतावृत्ति' में कुछ ऐसी वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन 'अलंकारशेखर' में नहीं मिलता, जैसे अमात्य (मंत्री), पुरोहित, सेनापति (दलपति), दूत और मंत्र। केशव ने इनका वर्णन किया है। अतः केशव इनके लिए निश्चय ही 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' के ऋणी हैं। 'अलंकारशेखर' में भी कुछ ऐसी वस्तुओं का निर्देश हुआ है जो 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में नहीं हैं, जैसे प्रातः, मध्याह्न, सायं, अन्धकार, वृक्ष तथा अभिसार (अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ६०)। केशव ने यहाँ भी अमरचन्द्र का ही अनुसरण करते हुए इन वस्तुओं का वर्णन नहीं किया है। कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिनका वर्णन उक्त दोनों ग्रन्थों में अक्षरशः मिल जाता है, यथा सुरत[६]। नृप,

---

१. शिशिरे शिरीषघ्नमाहिकुन्दाम्बुजदाहशिखिरतोत्कर्षः।

—का० क० वृत्ति०, प्रतान १, स्तवक ५, श्लोक ८३ (उत्तरार्द्ध)।

२. कुन्दसमृद्धिः कमलहृतिर्वा गुडामोदः।

—अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ५६।

३. शिशिर सरस मन वरनिये, केशव राजा रंक।
नाचत गावत रैनि दिन, खेलत हँसत निशंक॥

—क० प्रि०, प्र० ७, छं० ३७।

४. का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तवक ५—नृप (श्लो० ४७), महामात्य (श्लो० ५०), परोहित (श्लो० ५६), देवी (श्लो० ५७), कुमार (श्लो० ६०,), सेनापति (श्लो० ६१), मन्त्र (श्लो० ७२), दूत श्लो० ७३), युद्ध (श्लो० ७४), प्रयाण (श्लो० ७५), मृगया (श्लो० ७६), अश्व (श्लो० ७७), गज (श्लो० ७८), विरह (श्लो० ८७), स्वयम्बर (श्लो० ८८), जलकेलि (श्लो० ९१) और सुरत (श्लो० ९२)।

५. अलंकारशेखर, मरीचि १६—नृप (पृ० ५७); देवी और प्रयाण (पृ० ५८); युद्ध, अश्व, गज, स्वयम्बर (पृ० ५६); जलकेलि, सुरत, विवाह तथा मृगया (पृ० ६०)।

६. सुरते सात्विका भावाः शीत्कारः कुड्मलाक्षता।
काञ्चीकङ्कणमञ्जीररवोऽधरनखक्षते॥

—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तवक ५, श्लो० ९२ तथा अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ६०।

(राजा), देवी (रानी) तथा अमात्य (मंत्री) का वर्णन 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में 'अलंकारशेखर' की अपेक्षा अधिक विस्तृत रूप में किया गया है।

कहीं-कहीं केशव ने 'अलंकारशेखर' का भी आश्रय लिया है। केशव ने यद्यपि प्रत्येक वस्तु के वर्णन की प्रणाली का निर्देश करते हुए अधिकांश उन्हीं वस्तुओं का निरूपण किया है जो दोनों ग्रन्थों में उपलब्ध होती हैं, तथापि कुछ स्थलों पर ऐसी वस्तुएं भी देखने में आती हैं जिनका उल्लेख केवल 'अलंकारशेखर' में ही हुआ है, जैसे विरह के वर्णन में अमरचन्द्र के ताप, निश्वास, मौन, कृशांगता, अब्ज-शय्या, निशादीर्घता, जागरण, शीतलता, उष्मता आदि के वर्णन[1]। 'अलंकारशेखर' में 'चिन्ता' का उल्लेख अधिक है[2]। केशव ने भी 'अलंकारशेखर' के ही समान 'चिन्ता' का उल्लेख किया है[3]।

अतः निष्कर्ष यह निकला कि राज्यश्री-वर्णन के लिए अधिकांश 'काव्यकल्पलतावृत्ति' को ही आधार बनाया गया है, पर कहीं-कहीं 'अलंकारशेखर' से भी सहायता ली गई है।

उपर्युक्त साधारण या सामान्य अलंकार को प्रचलित अर्थ में अलंकार नहीं माना जा सकता। यह कवि-शिक्षा है। अलंकारों का वास्तविक वर्णन विशिष्टालंकार या विशेषालंकार के अन्तर्गत ही आता है।

विशिष्टालंकार-वर्णन :

'कविप्रिया' के नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक केशव ने विशिष्टालंकारों या विशेषालंकारों का विवेचन किया है जिसमें शब्दालंकार तथा अर्थालंकार दोनों ही सम्मिलित हैं। परन्तु उन्होंने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केशव ने विशेषालंकारों की संख्या ३७ मानी है। इनके नाम इस प्रकार हैं—१. स्वभाव (स्वभावोक्ति), २. विभावना, ३. हेतु, ४. विरोध, ५. विशेष, ६. उत्प्रेक्षा, ७. आक्षेप, ८. क्रम, ९. गणना, १०. आशिष, ११. प्रेमा, १२. श्लेष, (नियम और विरोधी), १३. सूक्ष्म, १४. लेश, १५. निदर्शना, १६. ऊर्जस्व, १७. रसवत, १८. अर्थान्तरन्यास, १९. व्यतिरेक, २०. अपह्नुति, २१. उक्ति (वक्रोक्ति, अन्योक्ति,

---

१. विरहे तापनिःश्वासचिह्ना मौनं कृशाङ्गता।
अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता॥
—का० क० वृत्ति, प्रतान १, स्तबक ५, श्लोक ८७।

२. तापनिःश्वासचिन्तामौनकृशाङ्गताः।
अब्दसंख्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता॥
—अलंकारशेखर, मरीचि १६, पृ० ६०।

३. स्वास निसा चिन्ता बढ़ें, मदन परेखे बात।
कारे पीरे होत कृश, ताते सीरे गात॥
—क० प्रि०, प्र० ८, छं० ३८।

व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति), २२. व्याजस्तुति, २३. निन्दास्तुति, २४. अमित, २५. पर्यायोक्ति, २६. युक्त, २७. समाहित, २८. सुसिद्ध, २९. प्रसिद्ध, ३०. विपरीत, ३१. रूपक, ३२. दीपक, ३३. प्रहेलिका, ३४. परवृत, ३५. उपमा, ३६. यमक तथा ३७. चित्रालंकार[1] । मुख्य अलंकार यद्यपि ३७ ही माने गए हैं पर अवान्तर भेदों से उनकी संख्या बहुत बढ़ जाती है ।

विभिन्न अलंकारों का विवेचन और आधार :

नवें प्रभाव में छः अलंकारों स्वभाव (स्वभावोक्ति), विभावना, हेतु, विरोध, विशेष तथा उत्प्रेक्षा का विवेचन है ।

१. स्वभाव (स्वभावोक्ति) :

केशव के स्वभाव अलंकार के लक्षण का भाव दण्डी, भोज, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्यों के समान है । केशव के अनुसार, जिस वस्तु अथवा व्यक्ति का जैसा रूप अथवा गुण हो उसको उसी प्रकार से वर्णन करना स्वभाव (स्वभावोक्ति) कहलाता है[2] ।

---

१. जानि स्वभाव, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष ।
उत्प्रेक्षा, आक्षेप, क्रम, गणना, आशिष, लेष ।।१।।
प्रेमा, श्लेष, सभेद है नियम विरोधी मान ।
सूक्षम, लेश, निदर्शना, ऊर्जस्वा पुनि जान ।।२।।
रस, अर्थान्तरन्यास है, भेद सहित व्यतिरेक ।
फेरि अपह्नुति, उक्ति है, बक्रोकति सविवेक ।।३।।
अन्योकति, व्यधिकरन है, सुविशेषोकति भाषि ।
फिरि सहोक्ति को कहत है, क्रम ही सों अभिलाषि ।।४।।
व्याजस्तुति निंदा कहैं, पुनि निन्दास्तुति अंत ।
अमित सु पर्यायोक्ति पुनि, युक्त सुनो सब संत ।।५।।
स समाहित जु सुसिद्धि पुनि औ प्रसिद्ध विपरीत ।
रूपक, दीपक भेद पुनि, कहि प्रहेलिका मीत ।।६।।
अलंकार परवृत कहो उपमा जमक सुचित्र ।
भाषा इतने भूषणनि भूषित कीजै मित्र ।।७।।

—क० प्रि०, प्र० ६ ।

(यहाँ केवल 'श्लेष' के दो भेदों तथा 'उक्ति' के पांच भेदों का ही उल्लेख किया गया है) ।

२. जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज ।
तासों जानि स्वभाव सब कहि वरणत कविराज ।।

—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ८ ।

२. विभावना :

केशव ने विभावना के दो भेद माने हैं। जहाँ बिना कारण ही कार्य सिद्ध हो जाय वहाँ प्रथम विभावना होती है और जहां प्रसिद्ध कारण से कार्य हो जग्य वहाँ द्वितीय विभावना होती है[1]। केशव के उक्त दोनों भेद—प्रथम और द्वितीय विभावना दण्डी के स्वाभाविकत्व और कारणान्तर भेदों से क्रमशः मिलते हैं[2]। प्रथम विभावना का उदाहरण तो दण्डी के स्वाभाविक विभावना के उदाहरण के भाव का अनुवाद ही है। दण्डी ने स्वाभाविक विभावना का निम्नांकित उदाहरण दिया है—

अनञ्जितासिता दृष्टिर्भ्रू रनावर्जितानता।
अरञ्जितोऽरुणाश्चायमधरस्तव सुन्दरि ॥[3]

"हे सुन्दरि! तुम्हारी आँखें बिना आँजे भी श्याम हैं, भौंहें बिना आकृष्ट किए भी वक्र हैं और तुम्हारे अधर बिना रंगे हुए भी अरुण हैं।"

केशव इसी भाव को इस प्रकार व्यक्त करते हैं :—

भृकुटी कुटिल जैसी तैसी न करे हू होहि,
आंजी ऐसी आँखें केशोराय हेरि हारे हैं॥
काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अंग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं॥[4]

भोज के भी स्वाभाविकत्व एवं कारणान्तर विभावना के लक्षण और उदाहरण[5] दण्डी से मिलते हैं। रुय्यक का भी प्रथम विभावना का लक्षण[6] वही है जो केशव का है।

३. हेतु :

केशव ने दण्डी के सदृश हेतु की सामान्य परिभाषा नहीं दी है, सीधे भेदों के वर्णन से ही प्रारम्भ किया है। वे हेतु के दो भेद मानते हैं—सभाव और

---

१. कारज को बिनु कारणहि, उदो हेत जेहि ठौर।
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर॥
कारण कौनहु आनते, कारज होय जु सिद्ध।
जानो अन्य विभावना, कारण छाँडि प्रसिद्ध॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ११ तथा १३।

२. प्रसिद्धहेतुव्यावृत्या यत्किञ्चित् कारणान्तरम्।
यत्र स्वाभाविकत्वं वा विभाव्य सा विभावना॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १९९।

३. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २०१।

४. क० प्रि०, प्र० ९, छं० १२।

५. सरस्वतीकुलकंठाभरण, पृ० ३१८, ३१९।

६. कारणाभावे कार्यस्योत्पत्तिर्विभावना।
—अलंकारसूत्र, पृ० १३८।

अभाव[1]। सभाव हेतु वह कहलाता है जो अन्य हेतुओं के बल से सबल होता है। अभाव हेतु स्वयं निर्बल होता हुआ भी कार्य करता है। दण्डी के अनुसार हेतु के दो भेद हैं—कारक तथा ज्ञापक[2]। कारक हेतु के फिर दो उपभेद दिये गए हैं, भाव-साधन में कारक हेतु और अभाव-साधन में कारक हेतु। पुनः इसके भी उपभेद बतलाए गए हैं। केशव के उपर्युक्त सभाव हेतु और अभाव हेतु का आधार दण्डी के कारक हेतु के दो उपभेद ही हैं। केशव के अभाव-सभाव हेतु के उदाहरण में उद्धृत अन्तिम चरण —

पीछे प्रकाश प्रकाशे शशि, बढ़ि प्रेम समुद्र रहे पहिले ही ॥[3]

पर दण्डी द्वारा "कार्यान्तर चित्रहेतु" के उदाहरणस्वरूप दिए गए निम्नलिखित श्लोक की भी स्पष्ट छाया है :

पश्चात् पर्यस्य किरणानुदीर्णं चन्द्रमण्डलम्।
प्रागेव हरिणाक्षीणामुदीर्णो रागसागरः[4] ॥

"मृगलोचनी युवतियों का प्रेमसागर पहले ही उमड़ चुका था, चन्द्रबिम्ब किरणों को विकीर्ण कर बाद में उदित हुआ।"

केशव ने ज्ञापक हेतु को छोड़ दिया है और न उन्होंने प्रभेदों का ही उल्लेख किया है। ऐसा जान पड़ता है कि केशव दण्डी के दिए हुए भेदों को ठीक-ठीक न समझकर गड़बड़ कर गए हैं। यही कारण है कि केशव का सभाव हेतु का उदाहरण दण्डी के अनुसार अभाव-साधन में कारक हेतु का उदाहरण बन गया है। दण्डी का उदाहरण है—

चन्दनारण्यमाधूय स्पृष्ट्वा मलयनिर्झरान्।
पथिकानामभावाय पवनोऽयमुपस्थितः[5] ॥

"चन्दन बन को हिलाती और मलयगिरि के निर्झरों का स्पर्श करके बहती हुई

---

१. हेतु होत है भाँति द्वै, बरनत सब कविराव।
केशवदास प्रकाश करि, बरनि सभाव अभाव ॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० १५।

इस छन्द में केशव ने दो ही भेदों का उल्लेख किया है। उन्होंने सभाव-अभाव हेतु का उदाहरण (क० प्रि०, प्र० ६, छं० १८) देकर तीसरे भेद को भी स्वीकार किया है। कवि ने इस भेद का आधार भी काव्यादर्श को ही बनाया है किन्तु अपने ढंग से।

२. कारकज्ञापकौ हेतू —काव्यादर्श, परि० २ श्लो० २३५।
भोज ने भी 'हेतु' के भेदों में इन दोनों भेदों को माना है।
—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ३२७।

३. क० प्रि०, प्र० ६, छं० १८।

४. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २५७।

५. वही, परि० २, श्लो० २३८।

पवन पथिकों के विनाश के लिए उपस्थित है।" केशव ने भी सभाव हेतु के उदाहरण में इसी प्रकार का भाव रखा है[1]। इसी प्रकार केशव का अभाव हेतु का उदाहरण विभावना का हो गया है।

४. विरोध :

केशव की दृष्टि में विचारपूर्वक की हुई विरोधमय वचन-रचना में विरोध अलंकार होता है[2]। दण्डी[3], भामह[4], उद्भट[5] आदि आचार्यों के विरोधालंकार के लक्षण का भाव वही है जो केशव का है। दण्डी के क्रिया-विरोध, वस्तुगत गुण-विरोध, अवयवगत गुण विरोध, विषय-विरोध आदि छः भेदों का केशव ने उल्लेख नहीं किया है। दण्डी ने विरोधाभासालंकार के उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित श्लोक दिया है—

कृष्णार्जुनानुरक्तापि दृष्टिः कर्णावलम्बिनी।
याति विश्वसनीयत्वं कस्य ते कलभाषिणि[6]॥

"हे मधुरभाषिणि, तुम्हारे नेत्रों का जो कृष्ण (भगवान् कृष्ण तथा श्याम) और अर्जुन (पाण्डव तथा श्वेत) में अनुरक्त होते हुए भी कर्ण (कुन्ती पुत्र तथा कान) का अवलम्बन करते हैं, कौन विश्वास करेगा ?" केशव ने विरोधालंकार के उदाहरण

---

१. केशव चन्दन वृन्द घने अरविन्दन के मकरंद शरीरो।
मालती, बेल, गुलाल, सुकेसरि, केतकि, चंपक को बन पीरो॥
रंभन के परिरंभन संभ्रम गर्व घनो घनसार को सीरो।
शीतल मंद सुगन्ध समीर हर्‌यो इनसों मिलि धीरज बीरो॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० १६।

२. केशवदास विरोधमय, रचियत बचन विचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० १६।

३. विरुद्धानां पदार्थानां यत्र संसर्गदर्शनम्।
विशेषदर्शनायैव सः विरोधः स्मृतो यथा॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३३३।

४. गुणस्य या क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियाभिधा।
या विशेषाभिधानाय विरोधं तं विदुर्बुधाः॥
—काव्यालंकार परि० ३, श्लो० २५।

५. गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्यक्रियावचः।
यद्विशेषाभिधानाय विरोधं तं प्रचक्षते॥
—काव्यालंकारसारसंग्रह, पृ० ६३।

६. काव्यादर्श, परि २, श्लो० ३३६।

में जो छन्द दिया है, उसके अन्तिम पद का भाव दण्डी के श्लोक का भावानुवाद ही जान पड़ता है[1]।

केशव दण्डी के ही समान विरोधाभास को विरोध ही के अन्तर्गत मानते हैं। स्पष्ट रूप से केशव ने यह बात नहीं लिखी है, परन्तु पूर्वपृष्ठों में दी हुई नामावली से यह बात प्रकट हो जाती है। कारण, इसमें विरोध का तो नाम दिया गया है, विरोधाभास का नहीं। केशव के अनुसार जहाँ विरोध की प्रतीति-सी हो, वस्तुतः विरोध न हो, वहाँ विरोधाभास अलंकार होता है[2]। ध्यान से देखा जाय तो केशव के विरोधाभास का यह लक्षण वामन तथा रुय्यक दोनों ही के विरोध का लक्षण है[3]।

५. विशेष :

दण्डी, भामह, उद्भट, वामन, भोज आदि आचार्यों ने विशेष अलंकार का उल्लेख नहीं किया। रुद्रट,[4] मम्मट[5], रुय्यक[6] तथा विश्वनाथ[7] आदि आचार्यों ने

---

१. ऐरी मेरी सखी तेरी कैसे कै प्रतीत कीजै,
कृशनानुसारी दृग करणानुसारी हैं।
—क० प्रि०, प्र० ९, छं० २०।

२. बरनत लगै विरोध सो, अर्थ सबै अविरोध।
प्रगट विरोधाभास यह समुझत सबै सुबोध॥
—क० प्रि०, प्र० ९, छं० २२।

३. विरुद्धाभासत्वं विरोधः।
—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ० ६८ तथा अलंकारसूत्र, पृ० १३४।

४. किंचिदवश्याधेयं यस्मिन्नभिधीयते निराधारम्।
तादृगुपलभ्यमानं विज्ञेयोऽसौ विशेष इति॥
यत्रैकमनेकस्मिन्नाधारे वस्तु विद्यमानतया।
युगपदभिधीयतेऽसावत्रान्यः स्याद्विशेष इति॥
यत्रान्यत्कुर्वाणो युगपत्कार्यान्तरं च कुर्वीत।
कर्तुमशक्यं कर्ता विज्ञेयोऽसौ विशेषोऽन्यः॥
—काव्यालंकार, पृ० १२२-१२३।

५. बिना प्रसिद्धमाधारमाधेयस्य व्यवस्थितिः।
एकात्मा युगपद् वृत्तिरेकस्यानेकगोचरा॥
अन्यत्प्रकुर्वतः कार्यमशक्यस्यान्यवस्तुनः।
तथैव करणं चेति विशेषस्त्रिविधः स्मृतः॥
—का० प्र०, उ० १०, पृ० २६४।

६. अनाधारमाधेयमेकमनेकगोचरमशक्यवस्त्वन्तरकरणं च विशेषः।
—अलंकारसूत्र पृ० १५३।

७. यदाधेयमनाधारमेकञ्चानेकगोचरम्।
किञ्चित् प्रकुर्वतः कार्य्यमशक्यस्येतरस्य वा॥
कार्य्यस्य करणं दैवाद्विशेषस्त्रिविधस्ततः।
—सा० द०, परि० १०, का० सं० ७४६।

'विशेष' का उसके तीनों भेदों के साथ उल्लेख तो किया है पर केशव का लक्षण[1] उसमें से किसी के भी लक्षण से नहीं मिलता। हाँ, रुय्यक के 'अलंकारसूत्र' पर वृत्ति की टीका करते हुए समुद्रबन्ध ने 'विशेष' अलंकार का सामान्य लक्षण इस प्रकार दिया है—

असम्भविनः सम्भवित्वेन निबन्धो विशेष इति सामान्यलक्षणम्[2] ॥

अर्थात् असम्भव से सम्भावित निबन्ध विशेषालंकार कहलाता है। समुद्रबन्ध के इस लक्षण पर केशव का अधोलिखित उदाहरण पूर्णतया घट जाता है—

बाजी नहीं, गजराज नहीं, रथ पत्ति नहीं, बलगात विहीनो ॥
केशवदास कठोर न तीक्षण, भूलिहू हाथ हथ्यार न लीनो ॥
जोग न जानत, मंत्र न जंत्र, न तंत्र न पाठ पढ्यो परबीनो ॥
रक्षक लोकन के, सुगंवारिनि एक बिलोकनि ही बश कीनो[3] ॥

६. उत्प्रेक्षा :

केशव के विचार से 'उत्प्रेक्षा' अलंकार वहाँ होता है जहाँ और वस्तु में और की कल्पना की जाती है[4]। दण्डी[5], भोज[6] आदि के लक्षण का भी भाव खींचतान से यही निकल सकता है। कदाचित् केशव ने इस अलंकार का आधार 'काव्यप्रकाश' को बनाया है[7]।

---

१. साधक करण विकल जहं, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परसिद्धि ॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० २४।

(जहाँ कार्य का साधक कारण अपूर्ण हो पर कार्य पूर्ण सिद्ध हो जाय वहाँ विशेषालंकार होता है)

२. अलंकारसूत्र, पृ० १५३।

३. क० प्रि०, प्र० ६, छं० २७।

४. केशव और वस्तु में, और कीजिये तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहैं जिनको बुद्धि संपर्क ॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ३०।

५. अन्यथैव वृत्तिश्चेतनस्येतरस्य वा।
अन्यथोत्प्रेक्ष्यते यत्र तामुत्प्रेक्षा विदुर्यथा ॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २२१।

६. अन्यथावस्थितं वस्तु यस्यामुत्प्रेक्ष्यतेऽन्यथा।
—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ४६६।

७. संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्य यत्।
—का० प्र०, उ० १०, पृ० २३२।

७. आक्षेप :

आक्षेप अलंकार के वर्णन में 'कविप्रिया' का पूरा दसवां प्रभाव लग गया है। दण्डी ने आक्षेप का लक्षण-'प्रतिषेधोक्तिराक्षेपः[१]' दिया है। श्री जीवानन्द विद्यासागर इसकी व्याख्या यों करते हैं—

'वक्तुं प्रारब्धस्यापि विशेषद्योतनार्थं निषेधभावणं, न तु
तत्त्वतः प्रतिषेधः तात्त्विकत्वे वैचित्र्याभावात्[२]।

इससे स्पष्ट है कि वास्तविक निषेध में अलंकार के वैचित्र्य का अभाव रहता है। परन्तु केशव ने वास्तविक प्रतिषेध को ही आक्षेप मान लिया है[३]। इस प्रकार उनका आक्षेप का लक्षण शिथिल बन गया है। केशव द्वारा दिए गए उदाहरणों से तो यह लक्षण और भी ढीला बन जाता है।

केशव ने आक्षेप का विस्तार यद्यपि दण्डी के अनुसार ही किया है तथापि अन्तर स्पष्ट है। दण्डी के विचार से प्रतिषेध का वर्णन केवल वर्तमान और भविष्य दो ही कालों में सम्भव है परन्तु केशव के अनुसार भूतकाल में भी प्रतिषेध का वर्णन हो सकता है[४]। दण्डी ने आक्षेप के २४ भेद किए हैं परन्तु केशव ने केवल १२ ही माने हैं। इनमें भी छः भावी (भविष्य), वर्तमान, संशय, आशिष, धर्म और उपायाक्षेप ही दण्डी के अनुसार हैं। इनमें से कुछ का केवल नाम-साम्य ही है, लक्षण भिन्न हैं। केशव के प्रेम, अधीरज, धीरज, मरण और शिक्षाक्षेप[५] नामक अन्य भेदों का दण्डी उल्लेख नहीं करते। दण्डी के धर्माक्षेप को समझने में केशव गड़बड़ कर गए हैं। 'धर्म' शब्द से दण्डी का अभिप्राय कोमलता आदि गुणों से है। यह बात उनके धर्माक्षेप के नीचे दिये गए उदाहरण से स्पष्ट हो जायगी—

तव तन्वङ्गि मिथ्यैव रूढमङ्गेषु मार्दवम्।
यदि सत्यं मृदून्येव किमकाण्डे रुजन्ति माम्[६]॥

---

१. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १२०।

२. केशव की काव्यकला से उद्धृत, पृ० १६३।

३. कारज के आरम्भ ही, जहँ कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपक तासों कहत, बहु विधि बरनि सुमेध॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० १।

४. तीनों काल बखानिये, भावी, भयो, जु होइ।
कविकुल कोऊ कहत हैं यहि प्रतिषेधहि दोइ॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० २।

यहाँ 'कोऊ' से केशव का संकेत 'दण्डी' की ओर है।

५. प्रेम, अधीरज, धीरजहु, संशय, मरण, प्रकास।
आशिष, धरम, उपाय कहि, शिक्षा केशवदास॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० ६।

६. काव्यादर्श, परि० २, श्लोक १२७।

'हे तन्वङ्गि, तुम्हारे अंग झूठे ही सुकुमार कहे गए हैं। यदि वस्तुतः वे कोमल हैं तो व्यर्थ ही मुझे सहसा क्यों पीड़ित करते हैं ?'

किन्तु केशव ने धर्माक्षेप का जो उदाहरण[1] दिया है उससे प्रकट होता है कि केशव ने 'धर्म' से पातिव्रत आदि कर्तव्य का भाव लिया है। केशव के धर्माक्षेप के लक्षण[2] से भी यही व्यक्त होता है कि केशव ने 'धर्म' से गुण का भाव लिया है। आशिष तथा उपायाक्षेप के दण्डी और केशव के उदाहरणों का मिलान करने पर विदित होता है कि दोनों ने इनका लक्षण एक ही समझा है। दण्डी ने उपायाक्षेप के उदाहरण में निम्नलिखित श्लोक दिया है :

सहिष्ये विरहं नाथ देह्यदृश्याञ्जनं मम।
यदक्तनेत्रां कन्दर्पः प्रहर्ता मां न पश्यति[3] ॥

"हे नाथ ! आपके विरह को मैं सहन कर लूंगी, (केवल) आप मुझे अदृश्य अंजन दे दीजिए जिससे मोहित करने वाला कामदेव नेत्रों में अंजन होने पर मुझे देख न सके"

केशव की नायिका भी दूसरे शब्दों में इसी भाव को व्यक्त करती है[4]।

केशव ने ग्यारहवें प्रभाव में क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्जस्वि, रसवत, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक और अपह्नुति नामक अलंकारों का वर्णन किया है।

८. क्रम :

केशव ने क्रम का जो यह लक्षण—**आदि अन्त भरि वरणिये, सो क्रम केशवदास**[5] दिया है, वह स्पष्ट नहीं है। किन्तु उदाहरणों से विदित होता है कि जिसे केशव ने क्रम

---

१. जो हौं कहौं 'रहिये' तो प्रभुता प्रगट होति,
'चलन' कहौं तो हित हानि, नाहिं सहनो।
'भावै सो करहु' तो उदास भाव प्राणनाथ,
'साथ लै चलहु' कैसे लोक लाज बहनो।
केशोराय की सौं तुम सुनहु छबीले लाल,
चले ही बनत जोपै नाहीं राजा रहनो।
हँसियै सिखाओ सीख तुमहीं सुजान पिय,
तुमहिं चलत मोहि जैसो कछू कहनो ॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं २०।

२. राखत अपने धर्म को, जहाँ काज रहि जाय।
—क० प्रि०, प्र० १०, छं० १६।

३. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १५१।

४. मूरति मेरी अदीठ के ईठ चलौ कै रहौ जो कछू मन मानैं ॥
प्रेमिनि छेमिनि आदि दै केशव, कोऊ न मोहिं कहूँ पहिचानैं ॥
—क० प्रि०, प्र० १०, छं०२२।

५. क० प्रि०, प्र० ११, छं० १ (प्रथमार्द्ध)।

अलंकार बतलाया है उसे मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्यों ने 'एकावली'[1] नाम दिया है। 'एकावली' के विषय में दिया हुआ उक्त सभी आचार्यों का निम्न-लिखित उदाहरण

न तज्जलं यन्न सुचारुपंकजम्,
न पंकजं तत्, यदलीनषट्पदम्।
न षट्पदोऽसौ कलगुंजितो न यः,
न गुंजितं तन्न जहार यन्मनः ॥

केशव के क्रम के उदाहरण[2] से मिल जाता है। दण्डी, भामह, मम्मट आदि आचार्य जिसे यथासंख्य[3] मानते हैं उसी को वामनाचार्य ने क्रम[4] नाम से लिखा है। केशव ने सम्भवतः यह नाम वामनाचार्य के अनुकरण पर ही रखा है।

६. गणना :

केशव ने 'गणना' अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है—गणना गणना सों कहत, जिनके बुद्धि प्रकास[5]। वस्तुतः यह विशिष्टालंकार न रहकर साधारण वस्तु-वर्णन

---

१. स्थाप्यतेऽपोह्यते वापि यथापूर्वं परं परम्।
विशेषणतया यत्र वस्तु सैकावली द्विधा ॥

—का० प्र०, उ० १०, पृ० २८६।

यथापूर्वं परस्य विशेषणतया स्थापनेऽपोहने वै एकावली।

—अलंकारसू०, पृ० १५८।

पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत्स्यात्तदैकावली द्विधा ॥

—सा० द०, परि० १०, का० सं० ७५१।

२. सोभति सो न सभा जहं वृद्ध न, वृद्ध न ते जु पढ़े कछु नाहिं।
ते न पढ़े जिन साधुन साधित दीह दया न दिपै जिय माहीं।
सो न दया जु न धर्म धरै धर, धर्म न सो जहं दान वृथाहीं।
दान न सो जहं सांच न केशव, सांच न सो जु बसै छल छाहीं ॥

—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३।

३. उद्दिष्टानां पदार्थानामनूद्देशो यथाक्रमम्।
यथासंख्यमिति प्रोक्तं संख्यानं क्रम इत्यपि।

—काव्यादर्श, परि०२, श्लो० २७३।

भूयसामुपदिष्टानामर्थानामसधर्मणाम्।
क्रमशो योऽनुनिर्देशो यथासङ्ख्यं तदुच्यते।

—काव्यालंकार, परि० २, श्लो० ८९।

यथासङ्ख्यं क्रमेणैव क्रमिकाणां समन्वयः।

—काव्यप्रकाश, उ० १०, पृ० २६१।

४. उपमेयोपमानानां क्रमसम्बन्धः क्रमः।

—काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ० ७०।

५. क० प्रि०, प्र० ११, छं० १ (उत्तरार्द्ध)।

सा बन गया है। इसका उल्लेख संस्कृत के किसी भी आचार्य ने अलंकार के अन्तर्गत नहीं किया। इसमें पहले केशव ने एक से दस तक की संख्या के सूचक शब्दों के नाम गिनाए हैं और फिर दो छन्दों में गणना का उदाहरण प्रस्तुत किया है। गणना-विषयक सामग्री के लिये केशव 'काव्यकल्पलतावृत्ति' (प्रतान ४, स्तबक ६, पृ० १४४-१४८) तथा 'अलंकारशेखर' (मरीचि १८, पृ० ६२-६३) के ऋणी हैं। कारण, केशव द्वारा दी गई शब्दों की नामावली में कुछ शब्द ऐसे है जो केवल 'अलंकारशेखर' या 'काव्यकल्पलतावृत्ति' ही में मिलते हैं। अमर की नामावली केशवमिश्र की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। केशव ने प्रत्येक संख्या के अन्तर्गत 'अलंकारशेखर' की अपेक्षा अधिक शब्द दिये हैं, जो प्रायः सारे अमर की नामावली से मिल जाते हैं। इस प्रकार केशव, केशवमिश्र की अपेक्षा अमर के अधिक ऋणी हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो दोनों ग्रन्थों में नहीं मिलते। ये स्पष्ट ही केशव के निजी हैं। आगे के विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

केशव ने 'एक' के सूचक शब्दों के ये नाम दिए हैं—आत्मा अथवा ब्रह्म, सूर्य के रथ का पहिया (रविचक्र), शुक्राचार्य का नेत्र तथा गणेश-दन्त (क० प्रि०, प्र०११, छं० ५)। शुक्राचार्य का नेत्र, केवल 'अलंकारशेखर' में मिलता है। 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में यह नहीं है। अतः इसके लिए केशव केशवमिश्र के ऋणी हैं। इसी प्रकार 'ब्रह्म' का उल्लेख 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में है, 'अलंकारशेखर' में नहीं है। यहां केशव अमर के ऋणी हैं। सूर्य के रथ का पहिया (रविचक्र) दोनों ही ग्रन्थों में देखने में नहीं आता। निश्चय ही यह केशव का निजी है।

'दो' के सूचक शब्दों की सूची केशव इस प्रकार देते हैं—लेखनी के डंक, भुजंग-रसना, अयन (उत्तरायण, दक्षिणायण), गज-रद, चुकरैण्ड (दुमुँहा सर्प) का मुख, कक्षशिखा (काकपक्ष, पाटी), नदी-कूल, राम-सुत (लव-कुश), पक्ष (शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष), खड्ग की धार, लोचन, द्विजजन्म, पद, भुज और अश्विनीकुमार (क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६-७)। इनमें से केवल तीन—पक्ष, नदीकूल और भुज ही 'अलंकारशेखर' में मिलते हैं, शेष गजरद, राम-सुत, खड्ग की धार, लोचन तथा पद 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में ही हैं, जो यहीं से केशव ने लिये हैं। लेखनी के डंक, भुजंग-रसना, अयन, चुकरैंड का मुख, कक्षशिखा, द्विजजन्म तथा अश्विनीकुमार केशव के निजी शब्द हैं।

'तीन' के सूचक शब्दों में गंगा-मार्ग, शिवनेत्र, ग्रीवा-रेखा, गुण (सत्व, रजस्, तमस्), पावक (दक्षिण, गार्हपत्य, आहवनीय), काल, त्रिशूल, बलि (त्रिवली की तीन रेखाएं), संध्या, पुष्कर (पुष्कर क्षेत्र के तीन कुण्ड—वृद्ध पुष्कर, शुद्धवाय, ज्येष्ठकुण्ड), विक्रम, राम (दाशरथी राम, परशुराम, बलराम), विधि (वेदविधि, लोकविधि, कुलविधि,), त्रिपुर, त्रिवेणी, ताप (त्रिताप), वेद (ऋक्, यजुः, साम), परिताप और ज्वर के तीन पद (वात, पित्त, कफ) आदि के नाम गिनाए गए हैं। (क० प्रि०, प्र० ११, छं०, ८, ६)। 'इनमें से 'वेद तथा 'बलि' केवल 'काव्यकल्पलतावृत्ति' में आये हैं, जो यहीं से केशव ने लिये हैं। 'ज्वर' का उल्लेख केशवमिश्र ने ही किया है।

अतः यह शब्द केशव ने केशवमिश्र से लिया है। विक्रम, राम, विधि, त्रिवेणी, ताप तथा परिताप आदि शब्द केशव ने अपनी ओर से जोड़े हैं।

इसी प्रकार 'चार' के सूचक—उपाय, युग; 'सात' के सूचक—लोक, द्वीप, मुनि, सूर-हय, वार, स्वर; आठ का सूचक—सिद्धि; 'नौ' का सूचक—अंगद्वार तथा 'दस' का सूचक—विश्वेदेवा आदि शब्दों के लिए केशव 'अलंकारशेखर' के ऋणी हैं और 'चार' का सूचक दिशा; सात के सूचक—पाताल, समुद्र एवं 'नौ' के सूचक—(नव) निधि तथा (नव) ग्रह आदि शब्दों के लिए अमरचन्द्र के। 'चार' के सूचक (चतुर) व्यूहरचना, चरण, पदार्थ; 'पांच' के सूचक—(पंच) कवल, (पंच) शब्द, (पंच) सन्धि, (पंच) कन्या, (पंच) गव्य, (पंच) पिता, पंचामृत; 'छः' के सूचक—(षट्) अंग, (षट्) माता, (षट्) आततायी, मधुप-पद; 'सात' के सूचक—गिरि, ताल, तरु, अन्न, ईति, कर्त्ता, छन्द, पुरी, त्वचा, सुख, चिरंजीव, नर, ऋषि, मातृका, धातु; 'आठ' का सूचक—तरुणी (अष्ट प्रकार की स्वाधीनपतिका आदि नायिकाएं); 'नौ' के सूचक—नाटिका, भक्ति तथा 'दस' के सूचक—दशावतार, दोषी शब्द केशव के अपने हैं।

अतः स्पष्ट है कि केशव इस प्रकरण के लिए अमर तथा केशवमिश्र के ऋणी हैं। कहीं-कहीं उनकी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं।

१०. आशिष :

केशव के आशिषालंकार का आधार भी दण्डी है किन्तु केशव ने इसके क्षेत्र को अधिक व्यापक बना दिया है। दण्डी के विचार से आशिषालंकार वहाँ होता है जहाँ कोई अभिलषित वस्तु की प्राप्ति की इच्छा प्रकट करे अथवा प्रार्थना करे[1]। परन्तु केशव ने माता, पिता, गुरु, देव और मुनियों द्वारा दिए आशीर्वादों को ही आशिषालंकार मान लिया है[2]। इस प्रकार केशव के आशिषालंकार का दण्डी के आशिषालंकार से केवल नाम-साम्य है।

११. प्रेमा :

केशव का प्रेमालंकार दण्डी और भामह[3] का 'प्रेयस्' है। केशव किसी

---

१. आशीर्नामाभिलषिते वस्तुन्याशंसनम्।

—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३५७।

२. मातु, पिता, गुरु, देव, मुनि कहत जु कछु सुख पाय।
ताही सों सब कहत हैं, आशिष कवि कविराय॥

—क० प्रि०, प्र० ११, छं० २४।

३. भामह ने लक्षण तो नहीं दिया है पर उदाहरण वही दिया है जो दण्डी ने। अतः ज्ञात होता है कि दोनों के लक्षण एक ही हैं।

मनोभाव के निष्कपट वर्णन को प्रेमालंकार कहते हैं[१]। केशव की यह परिभाषा दण्डी पर ही आधारित प्रतीत होती है। दण्डी प्रियतर आख्यान को 'प्रेयस्' अलंकार मानते हैं[२]। आचार्य विश्वनाथ का मत इन से कुछ भिन्न है। उनके विचार से जब भाव किसी अन्य का अंग हो जाता है तो 'प्रेयस्' अलंकार होता है[3]। अर्वाचीन आचार्य इस नाम का कोई अलंकार नहीं मानते।

१२. श्लेष :

केशव ने श्लेषालंकार वहाँ माना है जहाँ दो, तीन अथवा अधिक प्रकार के अर्थ निकलें[४]। उन्होंने श्लेष के सात भेद किए हैं, अभिन्न-पद, भिन्न-पद, अभिन्न-क्रिया, भिन्न-क्रिया, विरुद्ध-कर्मा, नियम और विरोधी[५]। दण्डी ने अभिन्न-पद, भिन्न-पद, अभिन्न-क्रिया, अविरुद्धक्रिया, विरुद्ध-कर्मा, नियम, नियमाक्षेपरूपोक्ति, अविरोधी और विरोधी नामक नौ भेदों का उल्लेख किया है[६]। 'भिन्न-क्रिया' केशव की मौलिक उद्भावना का फल है। शेष भेद दण्डी के अनुसार हैं। 'भिन्न-क्रिया' नाम सम्भवतः दण्डी के 'विरुद्ध कर्मा (विरुद्ध-क्रिया)' के आधार पर दिया है। दण्डी के अन्य भेदों, अविरुद्धक्रिया, नियमाक्षेपरूपोक्ति और अविरोधी का केशव ने निरूपण नहीं किया है। परिभाषा केशव ने भिन्नपदश्लेष की दी है[७], शेष भेदों की दण्डी के ही समान नहीं दी। दोनों

---

१. कपट निपट मिटि जाय जहं, उपजे पूरण क्षेम।
ताहीं सौं सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम ॥
—क० प्रि०, प्र० ११ छं० २७।

२. प्रेयः प्रियतराख्यानम्।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २७५।

३. रसभावौ तदाभासौ भावस्य प्रशमस्तथा।
गुणीभूतत्वमायान्ति यदालंकृतयस्तदा।
रसवत्प्रेय ऊर्जस्वि समाहितमिति क्रमात् ॥
—सा० द०, परि० १०, का० सं० ७७४।

४. दोय तीनि अरु भांति बहु, आनत जामें अर्थ।
श्लेष नाम तासों कहत, जिनकी बुद्धि समर्थ ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० २६।

५. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३४ तथा ३६।

६. श्लिष्टमिष्टमनेकार्थमेकरूपान्वितं वचः।
तदभिन्नपदं भिन्नपदप्रायमिति द्विधा ॥३१०॥
अस्त्यभिन्नक्रियः कश्चिदविरुद्धक्रियोऽपरः।
विरुद्धकर्मा चास्त्यन्यः श्लेषो नियमवानपि ॥३१४॥
नियमाक्षेपरूपोक्तिरविरोधी विरोध्यपि ॥३१५॥
—काव्यादर्श, परि० २।

७. पद ही में पद काटिये ताहि भिन्न पद जानि।
भिन्न अर्थ पुनि पदन के, उपमा श्लेष बखानि ॥ क० प्रि०, प्र० ११, छं० ३६।

आचार्यों द्वारा दिये गए उदाहरणों के मिलान करने से विदित होता है कि दोनों के लक्षण एक दूसरे से भिन्न हैं।

१३. सूक्ष्म[१] :

केशव के मत में सूक्ष्मालंकार वहाँ होता है जहाँ किसी भाव, इंगित अथवा आकार से अन्य के मन की बात जान ली जाती है[२]।

मम्मट[३] तथा रुय्यक[४] ने अपने-अपने लक्षण में इंगित और आकार का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर दोनों ने अलग-अलग दो भिन्न उदाहरणों में इंगित और आकार द्वारा भाव-प्रकाशन दिखलाया है। परन्तु केशव ने दण्डी[५] के ही अनुसार अपने लक्षण में दोनों बातों का सन्निवेश किया है। केशव के इंगित-लक्ष्य सूक्ष्म का उदाहरण दण्डी के श्लोक का भावानुवाद ही है। दण्डी का श्लोक है—

कदा नौ संगमो भावीत्याकीर्णे वक्तुमक्षमम्।
अवेत्य कान्तमबला लीलापद्मं न्यमीलयत्॥[६]

'हमारा समागम कब होगा इस बात को लोगों के सम्मुख स्पष्ट कहने में प्रिय को असमर्थ जानकर कामिनी ने लीला-कमल को बन्द किया अर्थात् रात्रि में मिलने का संकेत किया।'

केशव ने कृष्ण से भी ऐसी ही स्थिति में इसी प्रकार का संकेत कराया है[७]।

१४. लेश :

केशव के इस अलंकार का नामकरण भी दण्डी के ही आधार पर हुआ है। दण्डी लेशालंकार वहाँ मानते हैं जहाँ तनिक से मिस से किसी प्रकट बात का गोपन किया

---

१. भामह ने 'सूक्ष्म' को अलंकार नहीं माना है (हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मतः—काव्यालंकार, पृ० १७)।

२. कौन हु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४५।

३. कुतोऽपि लक्षितः सूक्ष्मोऽप्यर्थोऽन्यस्मै प्रकाश्यते।
धर्मेण केनचिद्यत्र तत्सूक्ष्मं परिचक्षते॥
—काव्यप्रकाश, उ० १०, पृ० २८१।

४. संलक्षितसूक्ष्मार्थप्रकाशने सूक्ष्मम्। —अलंकारसूत्र, पृ० १६४।

५. इंगिताकारलक्ष्योर्थः सौक्ष्म्यात् सूक्ष्म इति स्मृतः।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २६०।

६. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २६१।

७. सखि सोहत गोपसभा महँ गोविन्द बैठे हुते दुति को धरि कै।
जनु केशव पूरण चन्द लसै चित चारु चकोरन को हरि कै।
तिनको उलटो करि आनि दियो केहु नीरज नीर नयो भरि कै।
कहु काहे ते नेकु निहारि मनोहर फेरि दियो कलिक करि कै॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६।

जाता है[१]। केशव का लक्षण[२] यद्यपि स्पष्ट नहीं है तो भी उदाहरण के देखने से ज्ञात होता है कि उनके लक्षण का आशय भी वही है जो दण्डी का है। केशव का उदाहरण दण्डी की अपेक्षा अधिक अच्छा है। दण्डी ने यह उदाहरण दिया है—

आनन्दाश्रुप्रवृत्तं मे कथं दृष्ट्वैव कन्यकाम्।
अक्षि मे पुष्परजसा वातोद्धूतेन दूषितम्॥[३]

'कन्या को देखकर मेरी आँखों में आनन्दाश्रु उमड़ रहे थे, उसी समय मेरे नेत्र पवन के झोंके से उड़ाये हुए पुष्प-पराग से क्यों दूषित किए गए ?' इसका केशव के उदाहरण[४] से मिलान कीजिए।

जिसे केशव लेश मानते हैं उसी को मम्मट, रुय्यक आदि व्याजोक्ति के नाम से पुकारते हैं[५]।

१५. निदर्शना :

केशव के निदर्शना का लक्षण भी दण्डी के अनुकरण पर लिखा गया है, पर उतना स्पष्ट नहीं है। दण्डी निदर्शना अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ किसी अन्य कार्य के लिए प्रवृत्त होने पर उसके अनुरूप किसी सत् या असत् फल की प्राप्ति दिखलाई जाती है[६]। केशव के विचार से निदर्शना अलंकार वहाँ होता है जहाँ किसी भी एक ढंग से भली और बुरी बातों का समान परिणाम (अर्थात् भले का भला और बुरे का

---

१. लेशो लेशेन निर्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २६५।

२. चतुराई के लेश ते, चतुर न समुझैं लेश।
बरनत कवि कोविद तबै ताको केशव लेश॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४७।

३. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २६७।

४. खेलत हे हरि बागे बने जहं बैठी प्रिया रति ते अति लोनी।
केशव कैसेहुँ पीठि में दीठि परि कुच कुंकुम की रुचि रौनी॥
मातु समीप दुराई भले तिहि सात्विक भावन की गति होनी।
धूरि कपूर की पुरि बिलोचन सूँघि सरोरुह ओढ़ि ओढ़ौनी॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४८।

५. उद्भिन्नवस्तुनिगूहनं व्याजोक्तिः। —अलंकारसूत्र, पृ० १६५।
व्याजोक्तिश्छद्मनोद्भिन्नवस्तुरूपनिगूहनम्। —काव्यप्रकाश, पृ० २७६।

६. अर्थान्तरप्रवृत्तेन किञ्चित् तत्सदृशं फलम्।
सदसद्वा निदर्श्येत यदि तत्स्यान्निदर्शनम्॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३४८।

बुरा) प्रकट किया जाता है[1]। दण्डी द्वारा सत्फलनिदर्शना के अन्तर्गत उदाहरणस्वरूप दिये गए इस श्लोक—

उदयन्नेव सविता पद्मेष्वर्पयति श्रियम्।
विभावयितुमृद्धीनां फलं सुहृदनुग्रहम्[2]॥

की भाव-छाया केशव की नीचे लिखी पंक्तियों में स्पष्ट देखी जा सकती है :

सूरज समान सोम मित्र हू अमित्र कहं।
सुख दुख निज उदै अस्त प्रगटतु है[3]॥

१६. ऊर्जालंकार

दण्डी ऊर्जालंकार वहाँ मानते हैं जहाँ अहंकार का प्रदर्शन होता है[4]। केशव का लक्षण इस प्रकार है—

तजै न निज हंकार को, यद्यपि घटै सहाय।
ऊर्ज नाम तासों कहैं, केशव सब कविराय[5]॥

'यद्यपि घटै सहाय' के समावेश से केशव के लक्षण में दण्डी के लक्षण से अधिक स्पष्टता आ गई है।

१७. रसवत :

विश्वनाथ के अनुसार 'रसवत' अलंकार वहाँ होता है, जहाँ कोई रस किसी अन्य रस अथवा भाव का अंग होकर उसका पोषण करता है। परन्तु दण्डी रसमय वर्णन को ही 'रसवत' अलंकार मानते हैं[6]। दण्डी के ही अनुकरण पर केशव भी रसमय वर्णन को ही 'रसवत' अलंकार मानते हैं[7]। केवल शृंगार रसवत का उदाहरण ही रसवत अलंकार का उदाहरण है, शेष उदाहरण तो वीर, रौद्र, करुण, भयानक, बीभत्स आदि विभिन्न रसों के ही उदाहरण होकर रह गए हैं। केशव ने

---

१. कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना, समुझत सकल सुजान।
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६।

२. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३४६।

३. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ५०।

४. ऊर्जस्विरूढाहंकारम्। —काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २७५।

५. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ५१।

६. रसवद् रसपेशलम्। —काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २७५।

७. रसमय होय सु जानिये रसवत केशवदास।
नवरस को संक्षेप ही, समुझो, करत प्रकाश॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ५३।

शृंगार रसवत का निम्नांकित उदाहरण दिया है—

आन तिहारी, न आन कहौं, तन में कछु आनन आन ही कैसो।
केशव स्याम सुजान सुरूप न, जाय कह्यो मन जानत जैसो।।
लोचन शोभहिं पीवत जात, समात, सिहात, अघात न तैसो।
ज्यों न रहात बिहात तुम्हैं, बलि जात, सुबात कह्यो टुक बैसो[1]।।

इस उदाहरण में विप्रलम्भ शृंगार मुख्य है। 'आन तिहारी, ज्यों न रहात बिहात तुम्हैं, बलि जात' इत्यादि वाक्यों से यह भी प्रकट होता है कि यहाँ संभोग शृंगार भी है, पर है गौण रूप में ही। इसलिए यहाँ गौण संभोग के विप्रलम्भ शृंगार का पोषक होने के कारण रसवत अलंकार है। इस संयोग की वार्ता से ही नायिका की विरह-प्रबलता अधिक स्पष्ट होती है।

१८. अर्थान्तरन्यास :

मम्मट आदि आचार्यों के अनुसार अर्थान्तरन्यास अलंकार वहाँ होता है, जहाँ सामान्य का विशेष से अथवा विशेष का सामान्य से समर्थन होता है[2]। केशव का अर्थान्तरन्यास का लक्षण विलक्षण है, जो दण्डी[3] से भी नहीं मिलता। वे अर्थान्तर-न्यास अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ और कुछ कहकर और ही कुछ अर्थ लिया जाता है[4]। दण्डी ने अर्थान्तरन्यास के आठ प्रकार बतलाए हैं, विश्वव्यापी, विशेषस्थ, श्लेषाविद्ध, विरोध, अयुक्तकारी, युक्तात्मा, युक्तायुक्त तथा विपर्यय[5]। केशव के अनु-सार इसके चार ही भेद हैं, युक्त, अयुक्त, अयुक्तायुक्त (अयुक्त-युक्त) और युक्त-अयुक्त[6]। अयुक्तायुक्त (अयुक्त-युक्त) को केशव और दण्डी दोनों ही मानते हैं। युक्त और अयुक्त दोनों नाम दण्डी के युक्तात्मा और अयुक्तकारी से लिए गए मालूम पड़ते हैं। युक्त-अयुक्त नाम केशव का अपना दिया हुआ है। केशव ने प्रत्येक भेद

---

१. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ५४।

२. सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा।।
—का० प्र०, उ० १०, पृ० २६१।

३. ज्ञेयः अर्थान्तरन्यासो वस्तु प्रस्तुत्य किंचन।
तत्साधनसमर्थस्य न्यासो योन्यस्य वस्तुनः।।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १६१।

४. औरै आनिये अर्थ जहं औरै वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान।।
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६५।

५. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १७०।

६. युक्त अयुक्त बखानिये और अयुक्तायुक्त।
केशवदास विचारिये चौथो युक्त अयुक्त।।
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६७।

के लक्षण और उदाहरण दोनों दिये हैं,[1] । दण्डी ने केवल उदाहरण ही दिए हैं। पर उनसे दण्डी के भेदों के लक्षणों का आशय समझ लिया जा सकता है। मिलान करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि केशव के लक्षण और उदाहरण दण्डी से भिन्न हैं। अर्वाचीन आचार्य केशव के अर्थान्तरन्यास को काव्यलिंग और अयुक्त-यक्त को अप्रस्तुतप्रशंसा (कारण निबन्धना) कहते हैं। दण्डी द्वारा उल्लिखित विश्वव्यापी, विशेषस्थ, श्लेषाविद्ध, विरोध तथा विपर्यय आदि भेदों को केशव ने छोड़ दिया है।

१६. व्यतिरेक :

केशव और दण्डी के व्यतिरेक के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है। दण्डी व्यतिरेकालंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ दो सदृश वस्तुओं में कुछ भेद दिखलाया जाता है[2] । केशव का लक्षण इस प्रकार है[3] । उन्होंने व्यतिरेक के दो भेद माने हे, युक्ति व्यतिरेक और सहज व्यतिरेक, पर दण्डी ने इसके दस भेद किए हैं। दोनों के उदाहरणों की तुलना करने से विदित होता है कि दण्डी के श्लेष व्यतिरेक का ही नाम केशव ने युक्ति व्यतिरेक रख लिया है। दण्डी ने श्लेष व्यतिरेक के उदाहरण-स्वरूप निम्नलिखित श्लोक दिया है—

त्वं समुद्रश्च दुर्वारौ महासत्वौ सतेजसौ ।
अयन्तु युवयोर्भेदः स जड़ात्मा पटुर्भवान् ॥[4]

---

१. जैसो जहाँ जु बूझिये, तैसो तहाँ सु आन ।
रूप शील गुण युक्ति बल, ऐसे युक्त बखान ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६८ ।
जैसों जहाँ न बूझिये तैसो तहाँ जु होय ।
केशवदास अयुक्त कहि बरणत हैं सब कोय ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ७० ।
अशुभै शुभ ह्वै जात जहं, क्यों हूं केशवदास ।
इहै अयुक्तै युक्त कवि बरणत बुद्धि विलास ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ७२ ।
इष्टै वै बात अनिष्ट जहं कैसेहू ह्वै जाय ।
सोई युक्त अयुक्त कहि बरणत कवि सुख पाय ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ७५।
(उदाहरणों के लिये देखें क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६६, ७१, ७३, ७४, ७६ और ७७)।

२. शब्दोपात्ते प्रतीते वा सादृश्ये वस्तुनोर्द्वयोः ।
तत्र यद् भद कथनं व्यतिरेकः स कथ्यते ॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो १८० ।

३. तामैं आनें भेद कछु, होय जु बस्तु समान ।
सो व्यतिरेक सुभांति द्वै, युक्ति सहज परमान ॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ७८ ।

४. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १८५ ।

"आप और समुद्र दोनों का पार पाना कठिन है। दोनों महागुणी और तेजस्वी हैं। आप दोनों में अन्तर इतना है कि समुद्र जड़ है और आप चतुर हैं।"

केशव के युक्ति व्यक्तिरेक के उदाहरण[1] का भी यही भाव है। इसी प्रकार दण्डी के व्यतिरेक का सामान्य लक्षण केशव के सहज व्यतिरेक के उदाहरण[2] पर ठीक उतरता है।

२०. अपह्नुति :

दण्डी ने अपह्नुति अलंकार वहां माना है, जहाँ कोई बात छिपा कर कोई अन्य बात कह दी जाती है[3]। केशव का लक्षण[4] भी दण्डी से मिलता है। जहाँ तक उदाहरणों[5] का सम्बन्ध है वे दण्डी से भिन्न हैं। उदाहरणों के विषय में कृष्णशंकर शुक्ल लिखते हैं—'इस अलंकार के लिए जिस प्रकार की गोपन-क्रिया आवश्यक है वैसी उदाहरण में न आ सकी। केशव के उदाहरण 'मुकरी हैं, अपह्नुति नहीं[6]।' सम्भवतः शुक्लजी को इस बात का ध्यान नहीं रहा कि 'मुकरी' में भी अपह्नुति अलंकार होता है[7]।

---

१. सुन्दर सुखद अति अमल सकल विधि,
सदल सफल बहु सरस संगीत सों।
विविध सुवास युत केशोदास आसपास,
राजै द्विजराज तनु परम पुनीत सों।
फूले ही रहत दोऊ दीबे हेत प्रतिपल,
देत कामनानि सब मीत हूँ अमीत सों।
लोचन बचन गति दिन, इतनो ई भेद,
इन्द्रतरुवर अरु इन्द्र इन्द्रजीत सों।
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ७६।

२. गाय बराबरी धाम सबै धन जाति बराबर ही चलि आई।
केशव कंस दिवान पितान बराबर ही पहिरावनि आई।
बैस बराबरि दीपति देह बराबर ही विधि बुद्धि बड़ाई।
ये अलि आजु ही होहुगी कैसे बड़ी तुम आंखिन ही की बड़ाई॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ८०।

३. अपह्नुति अपह्नुत्य किंचिदन्यार्थदर्शनम्
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३०४।

४. मन की बात दुराय मुख, औरै कहिये बात।
कहत अपह्नुति सकल कवि, ताहि बुद्धि अवदात॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ८१।

५. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ८२, ८३।

६. केशव की काव्यकला, पृ० १६५।

७. मुकरी के विषय में रामचन्द्र जी वर्मा अपने 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' के पृ० १०३८ पर लिखते हैं—'वह कविता जिसमें पहले कही हुई बात से मुकरते हुए कुछ और ही बात बनाकर कही जाती है। साहित्य में यह छेकापह्नुति अलंकार है।'

केशव ने बारहवें प्रभाव में उक्ति, व्याजस्तुति, निन्दास्तुति, अमित, पर्यायोक्ति तथा युक्त—इन छः अलंकारों का वर्णन किया है।

२१. उक्ति अलंकार :

केशव बुद्धि तथा विवेक से सुसिद्ध अनेक तर्क को 'उक्ति' अलंकार कहते हैं[1]। उन्होंने इस अलंकार के पाँच प्रकार माने हैं, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति और सहोक्ति।

वक्रोक्ति :

वामानाचार्य ने ही इसे सबसे पहिले अलंकार रूप में स्वीकार किया और इसका यह लक्षण दिया—**सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः**[2]। दण्डी और भामह ने केवल इतना ही संकेत किया है कि यह सब अलंकारों का मूलाधार है[3]। केशव के वक्रोक्ति अलंकार का वामन से केवल नामसाम्य ही है, लक्षण भिन्न है। रुद्रट ने भी वक्रोक्ति अलंकार माना है और उसके दो भेद भी किए हैं[4], पर यह कदाचित् केशव का आधार ज्ञात नहीं होता। हमें तो मम्मट का लक्षण ही केशव का आधार प्रतीत होता है[5]। केशव वक्रोक्ति अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ सीधी-सादी बात में टेढ़ा अथवा गूढ़ भाव प्रकट किया गया हो[6]।

अन्योक्ति :

संस्कृत के आचार्यों में केवल रुद्रट, वाग्भट और हेमचन्द्र ने ही अन्योक्ति का उल्लेख किया है[7], भट्टी, दण्डी, भामह, उद्भट, वामन, भोज, मम्मट तथा

---

१. बुद्धि विवेक अनेक विधि, उपजत तर्क अपार।
तासों कवि कुल उक्ति कहि, वर्णत विविध प्रकार॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० १।

२. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, पृ० ६६।

३. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३६३ तथा काव्यालंकार, श्लो० ८५, पृ० १७।

४. काव्यालंकार, पृ० १५-१६।

५. यदुक्तमन्यथावाक्यमन्यथाऽन्येन योज्यते।
श्लेषेण काक्वा वा ज्ञेया सा वक्रोक्तिस्तथा द्विधा।
—काव्यप्रकाश, उल्लास १०, पृ० २००।

६. केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव।
वक्रोक्ति तासों कहै, सही सबै केशवदास॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ३।

७. असमानविशेषणमपि यत्र समानेतिवृत्तमुपमेयम्।
उक्तेन गम्यते परमुपमानेनेति सान्योक्तिः॥
—काव्यालंकार, अ० ८, श्लोक ७४, पृ० ११४।

उपमेयस्यैवोक्तावन्यप्रतीतिरन्योक्तिः।
—काव्यानुशासन, वाग्भट (द्वितीय), अ० ३, पृ० ३५।

सामान्यविशेषे कार्ये कारणे प्रस्तुते तदन्यस्य तुल्ये तुल्यस्य चोक्तिरन्योक्तिः।
—काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, पृ० ३०७।

रुय्यक आदि ने नहीं किया है। रुद्रट आदि आचार्यों के अन्योक्ति अलंकार का स्वरूप वास्तव में अप्रस्तुतप्रशंसा का-सा ही है। केशव के लक्षण का भी यही भाव निकलता है। उनके अनुसार अन्योक्ति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ अन्य की बात अन्य के प्रति कह कर प्रकट की जाती है[1]। अर्वाचीन आचार्यों के अनुसार यह 'अप्रस्तुतप्रशंसा' अलंकार है।

व्यधिकरणोक्ति :

केशव के अनुसार व्यधिकरणोक्ति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ अन्य का गुण अथवा दोष अन्य में प्रकट किया जाता है[2]। उदाहरणों से ज्ञात होता है कि यह वस्तुतः मम्मट[3], रुय्यक[4], विश्वनाथ[5] आदि आचार्यों का 'असंगति' अलंकार ही है। केशव का उदाहरण[6] यह है।

विशेषोक्ति :

केशव के विशेषोक्ति अलंकार का दण्डी, भामह, उद्भट, वामन आदि आचार्यों से केवल नाम ही मिलता है। दण्डी आदि आचार्यों द्वारा दिया हुआ लक्षण केशव से भिन्न है[7]। यह उदाहरणों पर दृष्टिपात करने से तो और भी स्पष्ट हो जाता है। केशव विशेषोक्ति अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ कारण के रहने पर भी कार्य सिद्ध न

---

१. औरहि प्रति जु बखानिये, कछू और की बात।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, बरनत कवि न अघात॥
—क० प्रि, प्र० १२, छं० ६।

२. औरहि में कीजै प्रगट औरहि को गुण दोष।
उक्ति यहै व्यधिकरण की सुनत होत संतोष॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ८।

३. भिन्नदेशतयात्यन्तं कार्यकारणभूतयोः।
युगपद्धर्मयोर्यत्र ख्यातिः सा स्यादसंगतिः॥ —का० प्र०, पृ० २८३।

४. तयोर्विभिन्नदेशत्वेऽसंगतिः। —अलंकारसूत्र, पृ० १४५।

५. कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः।
—सा० द०, का० सं० ७४०, पृ० ८३८।

६. पूत भयो दशरत्थ को केशव देवन के घर बाजी बधाई।
फूलि कै फूलन को बरषैं, तरु फूलि फलैं सब ही सुखदाई॥
छीर बहीं सरिता सब भूतल, धीर समीर सुगंध सुहाई।
सर्वसु लोग लुटावति देखि कै दारिद देह दरार सी खाई॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ११।

७. विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध।
सोई उक्ति विशेषमय, केशव परम प्रसिद्ध॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० १४।

हो। रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्यों के विशेषोक्ति अलंकार के लक्षण का भी यही भाव है[१]।

सहोक्ति :

केशव के अनुसार सहोक्ति अलंकार वहाँ होता है जहाँ हानि, वृद्धि, शुभ, अशुभ, गुप्त अथवा प्रकट कुछ भी वर्णन करते समय साथ ही एक और घटना का भी उल्लेख कर दिया जाता है[२]। दण्डी इसका लक्षण देते हुए कहते हैं कि सहोक्ति अलंकार वहाँ होता है, जहाँ एक साथ गुण अथवा कर्मों का वर्णन हो[३]। अतः स्पष्ट है कि केशव और दण्डी के लक्षण का भाव एक ही है।

२२-२३. व्याजस्तुति और निन्दास्तुति :

केशव के अनुसार जहाँ निन्दा के बहाने स्तुति तथा स्तुति के बहाने निन्दा की जाती है वहाँ क्रमशः व्याजस्तुति और निन्दास्तुति (व्याजनिन्दा) अलंकार होता है।[४] उन्होंने व्याजस्तुति के लक्षण में दण्डी के ही लक्षण का अनुसरण किया है। दण्डी लिखते हैं कि व्याजस्तुति अलंकार वहाँ होता है जहाँ प्रकट में तो निन्दा हो, पर वस्तुतः स्तुति हो[५]। निन्दास्तुति (व्याजनिन्दा) का दण्डी ने कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव ने नीचे लिखे छन्द में उक्त दोनों ही अलंकारों का एक साथ सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है—

शीतल हू हीतल तुम्हारे न बसति वह,
तुम न तजत तिल ताको उर ताप गेहु।
आपनो ज्यौं हीरा सो पराये हाथ ब्रजनाथ,
दै कै तो अकाथ साथ मैन ऐसो मन लेहु।

---

१. कारणसामग्र्ये कार्यानुत्पत्तिर्विशेषोक्तिः —अलंकारसूत्र, पृ० १४१।
सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।
—सा० द०, का० सं० ७३८।

२. हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही बरणत केशवदास॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २०।

३. सहोक्तिः सहभावस्य कथनं गुणकर्मणाम्।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३५१।

४. स्तुति निंदा मिस होत जहं, स्तुति मिस निंदा जान।
व्याजस्तुति निन्दा वहै, केशवदास बखान॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं २२।

५. यदि निन्दन्निव स्तौति व्याजस्तुतिरसौ स्मृता।
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३४३ (प्रथमार्द्ध)

एते पर केशोदास तुम्हें परवाह नाहिं,
बाहै जक लागी भागी भूख सुख भूल्यो गेहु।
मांडो मुख छांडो छिन छल न छबीले लाल,
ऐसी तो गंवारिन सो तुम ही निवाहो नेहु ॥[1]

केशव ने दण्डी के ही आधार पर श्लेषगर्भित व्याजस्तुति का भी उदाहरण उपस्थित किया है।

२४. अमित :

केशव के अनुसार अमितालंकार वहाँ होता है, जहाँ साधक-प्राप्य सिद्धि को साधन ही प्राप्त कर लेता है[2]। यह अलंकार किस आधार पर लिखा गया है, पता नहीं। केशव ने इसके उदाहरण में जो छन्द दिया है, वह इस प्रकार है—

आनन सीकर सीक हिये कत? तौ हित ते अति आतुर आई।
फीको भयो मुख ही मुखराग क्यों? तेरे पिया बहु बार बकाई ॥
प्रीतम को पट क्यों पलट्यों? अलि केवल तेरी प्रतीति को लाई।
केशव नीकेहि नायक सों रमि, नायिका बातन ही बहराई[3] ॥

२५. पर्यायोक्ति :

केशव का यह अलंकार दण्डी, भामह, उद्भट, मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ आदि संस्कृत के किसी भी आचार्य के पर्यायोक्ति अलंकार से कोई साम्य नहीं रखता। जहाँ अपने इष्ट की सिद्धि किसी अदृष्ट कारण से कुछ प्रयत्न किए बिना ही हो जाती है, वहाँ पर्यायोक्ति अलंकार होता है[4]। केशव का यह लक्षण पर्यायोक्ति का न रहकर 'प्रहर्षण' का-सा बन गया है। वास्तव में इसे 'प्रहर्षण' का भी शुद्ध लक्षण नहीं कहा जा सकता! चन्द्रालोककार 'प्रहर्षण' का लक्षण इस इस प्रकार देते हैं—वाञ्छिताद्धिकप्राप्तिरयत्नेन प्रहर्षणम्[5]। अर्थात् प्रयत्न के बिना अभिलषित अर्थ से अधिक की प्राप्ति होने पर 'प्रहर्षण' अलंकार होता है। फिर भी, यह मानना ही पड़ता है कि केशव के पर्यायोक्ति अलंकार का स्वरूप 'प्रहर्षण' से बहुत कुछ मिलता है।

२६. युक्त :

केशव के विचार से युक्त अलंकार वहाँ होता है, जहाँ किसी के रूप और बल

---

१. क० प्रि०, प्र० १२, छं० २३।

२. जहाँ साधनै भोगई, साधक का शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि ॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २६।

३. क प्रि०, प्र० १२, छं० २७।

४. कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय ॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २६।

५. चन्द्रालोक, मयूख ५, श्लो० ४६, पृ० ५३।

का ज्यों का त्यों वर्णन किया जाता है[1]। इस अलंकार का लक्षण उन्हीं के स्वभावोक्ति अलंकार[2] से मिल जाता है।

'कविप्रिया' के तेरहवें प्रभाव में समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका तथा परिवृत्त नामक अलंकारों का निरूपण है।

२७. समाहित :

केशव का समाहित अलंकार भामह, उद्भट, वामन, रुय्यक, विश्वनाथ आदि आचार्यों से बिल्कुल ही भिन्न है। दण्डी और केशव के समाहित अलंकार के लक्षणों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों के लक्षणों में कुछ सूक्ष्म-सा अन्तर है, भाव एक ही निकलता है। दण्डी समाहित अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ आरम्भ किए हुए कार्य की सिद्धि दैववशात् बिना यत्न किए ही हो जाती है[3]। केशव की दृष्टि में समाहित अलंकार वहाँ होता है जहाँ कोई कार्य, जो अनेक उपायों के करने पर भी न हो रहा हो, अनायास किसी दैवी घटना से सिद्ध हो जाय[4]। दण्डी के उदाहरण को ही केशव ने अपने ढंग से बढ़ाकर लिख दिया है। दण्डी का उदाहरण इस प्रकार है—

मानमस्या निराकर्तुं पादयोर्मे पतिष्यतः।
उपकाराय दिष्ट्यैतदुदीर्णं घनगर्जितम्[5]॥

'उसके मान-मोचन के लिए जब मैं उसके चरणों पर गिर रहा था, तभी दैवयोग से मेघों के गर्जन ने मेरा उपकार किया।'

केशव का भी उदाहरण देखिए—

छवि सों छबीली वृषभानु की कुंवरि आजु,
रही हुती रूप मद मान मद छकि कै।

---

१. जैसो जाको रूप बल, कहिये ताही रूप।
ताको कविकुल युक्त कहि, बरणत विविध सरूप॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ३१।

२. जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि वरणत कविराज॥
—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ८।

३. किंचिदारभमाणस्य कार्यं दैववशात् पुनः।
तत्साधनसमापत्तिर्या तदाहुः समाहितम्॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २९८।

४. होत न क्योंहू, होय जहं, दैवयोग ते काज।
ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कवि सिरताज॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० १।

५. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २९९।

मारहू ते सुकुमार नन्द के कुमार ताहि,
आये री मनावन सयान सब तकि कै ।।
हंसि हंसि, सौहैं करि करि पायं परि परि,
केशोराय की सौं जब रहे जिय जकि कै ।
ताहि समै उठे घनघोर घोरि, दामिनी सी,
लागी लौटि श्याम घन उर सों लपकि कै[1] ।।

इस अलंकार को मम्मट, विश्वनाथ, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित आदि आचार्य 'समाधि' मानते हैं ।

२८-२९-३०—सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा विपरीत :

इन तीनों अलंकारों को संस्कृत के किसी भी प्राचीन तथा अर्वाचीन आचार्य ने नहीं माना है । ये केशव की मौलिक उद्भावना से प्रादुर्भूत हुए हैं ।

सुसिद्ध :

सुसिद्ध अलंकार वहाँ होता है, जहाँ साधन अन्य कोई करता है और सिद्धि का फल कोई अन्य ही भोगता है[2] । इसका उदाहरण नीचे दिया जाता है—

मूलन सों फलफूल सबै दल जैसी कछु रसरीति चली जू ।
भाजन भोजन भूषण भामिनी भौन भरी भव भीति भली जू ।।
डासन आसन बास सुबासन बाहन यान विमान थली जू ।
केशव जैसे महाजन लोग मरैं सचि भोगत भोग बली जू[3] ।

यहाँ कारण कहीं होता है और कार्य कहीं । अतः यह 'असंगति' का ही संकीर्ण रूप जान पड़ता है । फिर भी यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इसमें केशव की मौलिकता है ।

प्रसिद्ध :

केशव के अनुसार प्रसिद्ध अलंकार वहाँ होता है, जहाँ एक के साधन का फल अनेक को प्राप्त होता है[4] । जैसे—

माता के मोह पिता परितोषन केवल राम भरे रिस भारे ।
औगुन एक ही अर्जुन को छितिमंडल के सब क्षत्रिय मारे ।

---

१. क० प्रि०, प्र० १३, छं० २ ।

२. साधि साधि औरै मरैं, औरै भोगैं सिद्धि ।
तासों कहत सुसिद्धि सब, जिनके बुद्धि समृद्धि ।।
—क० प्रि०, प्र० १३ छं० ४ ।

३. क० प्रि०, प्र० १३, छं० ५ ।

४. साधन सावैं एक भव भोगैं सिद्धि अनेक ।
तासों कहत प्रसिद्ध सब केशव सहित विवेक ।।
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ७

देवपुरी कहं औधपुरी जन केशवदास बड़े अरु बारे।
सूकर स्वान समेत सबै हरिचन्द के सत्य सदेह सिधारे[1]॥

विपरीत :

केशव के विचार से 'विपरीत' अलंकार वहाँ होता है, जहाँ कार्य-साधन के लिए साधन ही बाधक बन जाय[2]। यथा—

साथ न सहाय कोऊ, हाथ न हथ्यार, रघु—
नाथ जू के यज्ञ को तुरंग गहि राख्यो ई।
काछन कछोटी सिर छोटे छोटे काकपक्ष,
पांच ही बरस के सु युद्ध अभिलाख्यो ई।
नील नल अंगद सहित जामवन्त हनु—
मन्त से अनन्त जिन नीरनिधि नाख्यो ई।
केशोदास दीप दीप भूपनि ज्यों रघुकुल,
कुशलव जीति कै विजय रस चाख्यो ई[3]॥

यहाँ कुशलव को, पुत्र होने के नाते, राम के कार्य में साधक होना चाहिये था पर होते हैं बाधक ही। केशव के इस अलंकार में मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ, जयदेव तथा अप्पय दीक्षित आदि आचार्यों के 'व्याघात' की छाया दिखाई पड़ती है। विपरीत और व्याघात के लक्षण में यदि कुछ अन्तर है तो केवल इतना कि विपरीत में तो साधन स्वतः विरोधी बन जाता है और व्याघात में अन्य के हाथ में जाकर विरुद्ध बनता है। मम्मट, रुय्यक तथा विश्वनाथ ने व्याघात का अधोलिखित उदाहरण दिया है—

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताः स्तुवे वामलोचनाः[4]॥

"मैं उन वामलोचनी युवतियों को, जो महादेव के नेत्र द्वारा भस्मीभूत काम को एक नजर से ही जिला देती हैं और इस प्रकार शिव को भी जीत लेती हैं, प्रणाम करता हूँ।"

३१. रूपक :

दण्डी ने रूपक अलंकार के बीस भेद बतलाए हैं[5], यद्यपि यह कहा है कि

---

१. क० प्रि०, प्र० १३, छं० ८।

२. कारज साधक को जहाँ साधन बाधक होय।
तासों सब विपरीत कहि, कहत सयाने लोय॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ६।

३. क० प्रि०, प्र० १३, छं० ११।

४. का० प्र०, पृ० २६८; अलंकारसूत्र (पाठभेद से), पृ० १५५ तथा सा० द० (पाठान्तर से), परि० १०, का० सं० ७४७, पृ० ८४८।

५. समस्त-रूपक, व्यस्त-रूपक, सकल-रूपक, अवयव-रूपक, अवयविरूपक, एकांग-रूपक, द्व यंगादि-रूपक, युक्त-रूपक, अयुक्त-रूपक, विषम-रूपक, सविशेषण-रूपक, विरुद्ध-

इसके अनेक भेद होते हैं। केशव ने केवल तीन ही भेदों, अद्भुत-रूपक, विरुद्ध-रूपक और रूपक-रूपक का वर्णन किया है। केशव का अद्भुत-रूपक[1] अधिक ताद्रूप्य रूपक[2] हो गया है। दण्डी ने भी विरुद्ध-रूपक का उल्लेख किया है[3], परन्तु यह केशव के विरुद्ध-रूपक से भिन्न है। केशव का विरुद्ध-रूपक[4], रूपकातिशयोक्ति (जहाँ केवल उपमानों का ही कथन किया जाता है) ही है। उदाहरण देखिए—

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरणों सुनि बुद्धि सके छ्वै।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से व्वै।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खंजन के द्वै[5]।

रूपक-रूपक नाम का एक भेद दण्डी भी मानते हैं। केशव के उदाहरण पर दण्डी के उदाहरण की छाया है। पर सम्भवतः वे दण्डी के अभिप्राय को ठीक-ठीक समझ नहीं सके हैं। अतएव उनके रूपक-रूपक का उदाहरण साधारण रूपक का उदाहरण ही रह गया है। दण्डी ने निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

मुखपंकजरङ्गेऽस्मिन् भ्रूलतानर्तकी तव।
लीलानृत्तं करोतीति रम्यं रूपकरूपकम्[6]।

"तुम्हारे मुख-रूपी कमल की रंगस्थली पर तुम्हारी भ्रूरूपीलता-नर्तकी लीला नृत्य कर रही है।"

केशव का उदाहरण इस प्रकार है—

काछे सितासित काछनी केशव पातुरि ज्यों पुतरीनि विचारो।
कोटि कटाक्ष चलै गति भेद नचावत नायक नेह निनारो॥
बाजतु है मृदुहास मृदंग सुदीपति दीपन को उजियारो।
देखत हौं हरि! देखि तुम्हें यहि होत हैं आँखिन ही में अखारो[7]॥

रूपक, हेतु-रूपक, श्लिष्टरूपक, उपमा-रूपक, व्यतिरेक-रूपक, आक्षेप-रूपक, समाधान-रूपक, रूपक-रूपक तथा तत्वापह्नव-रूपक। काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ६६-६६।

१. सदा एक सदा रस बरनिये, जाहि न और समान। क० प्रि०, प्र० १३, छं० १५ (जहां रूपक बांधते समय कुछ ऐसी विलक्षण कल्पना की जाती है जिसके समान दूसरी न हो।)

२. कुवलयानन्द, अलंकारचन्द्रिका (टीका), पृ० १६। प्राचीन आचार्यों के ग्रंथों में रूपक का यह भेद नहीं मिलता।

३. काव्यादर्श, परि० २, श्लोक ८३।

४. जहं कहिये अनमिल कछू, सुमिल सकल विधि अर्थ। क० प्रि०, प्र० १३, छं० १७ [जहां अर्थ के सब प्रकार से सुमिल होने पर भी कुछ अनमिल कहा जाय अर्थात् रूपक के एक अंग (उपमेय) का उल्लेख न हो।]

५. क० प्रि०, प्र० १३, छं० १८।

६. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ६३।

७. क० प्रि०, प्र० १३, छं० २०।

केशव के इस अलंकार के सामान्य लक्षण का भाव दण्डी के लक्षण से मिलता है[1]।

३२. दीपक :

केशव के दीपक का यह लक्षण—

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिरमौर[2]।

दण्डी की परिभाषा[3] से मिलता है। केशव के लक्षण का भाव तो यह है कि जहाँ वाच्य का वर्णन उसकी क्रिया और उसके गुणसहित उपयुक्त रूप से किया जाता है, वहाँ दीपक अलंकार होता है। दण्डी ने यद्यपि यह कहा है कि दीपक के अनेक भेद होते हैं पर उल्लेख केवल बारह का ही किया है[4]। केशव ने मणि तथा मालादीपक, दो ही का वर्णन किया है। परन्तु दीपक के अनेक भेदों का होना उन्होंने भी स्वीकार किया है[5]। केशव ने मालादीपक वहाँ माना है, जहाँ अनेक बातों का देश और काल के अनुसार बुद्धिमत्तापूर्वक इस प्रकार वर्णन होता है कि एक बात दूसरी से शृंगार के समान जुड़ी प्रतीत होती है[6]। उन के इस उदाहरण—

दीपक देह दशा सों मिलै सुदशा मिलि तेजहि जोति जगावै।
जागि कै जोति सबै समुझै तम शोधि सु तौ शुभता दरसावै॥
सो शुभता रचै रूप को रूपक रूप सो कामकला उपजावै।
काम सो केशव प्रेम बढ़ावत प्रेम लै प्राणप्रियाहि मिलावै[7]॥

---

१. उपमा ही के रूप सों, मिल्यो बरनिये रूप।
ताहीं सों सब कहत हैं, केशव रूपक रूप॥ —क० प्रि०, प्र० १३, छं० १२।
उपमैव तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते। —काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ६६।

२. क० प्रि०, प्र० १३, छं० २१।

३. जातिक्रियागुणद्रव्यवाचिनैकत्रवर्त्तिना।
सर्ववाक्योपकारकश्चेत् तदाहुर्दीपकं यथा॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ९७।

४. आदिजातिदीपक, आदिक्रियादीपक, आदिगुणदीपक, आदिद्रव्यदीपक, मध्यजातिदीपक, मध्यक्रियादीपक, अन्तजातिदीपक, अन्तक्रियादीपक, मालादीपक, विरुद्धार्थदीपक, एकार्थदीपक तथा श्लिष्टार्थदीपक। —काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ९८-११४।

५. दीपक रूप अनेक हैं, मैं बरनौं द्वै रूप।
मणि, माला, तिनसों कहैं केशव सब कवि भूप।
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २२।

६. सबै मिलै जहं बरनिये, देश काल बुधिवंत।
मालदीपक कहत हैं, ताके भेद अनन्त॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २७।

७. क० प्रि०, प्र० १३, छं० २८।

की दण्डी द्वारा दिए हुए उदाहरण से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि केशव का मालादीपक दण्डी के इसी नाम के अलंकार से मिलता है। दण्डी का उदाहरण इस प्रकार है—

शुक्लः श्वेतार्चिषो वृद्ध्यै पक्षः पञ्चशरस्य सः।
स च रागस्य रागोऽपि यूनां रत्युत्सवश्रियः[1] ॥

"शुक्लपक्ष चन्द्रमा की वृद्धि के लिए होता है, वह (चन्द्रमा) काम की वृद्धि के लिए, काम राग की वृद्धि के लिए तथा राग नवयुवकों की रतिक्रीड़ारूपी श्री की वृद्धि के लिए होता है।"

केशव के मणिदीपक को दण्डी ने छोड़ दिया है। केशव यह भी बतलाते हैं कि मणिदीपक किन-किन वस्तुओं के वर्णन करने में विशेष अच्छा लगता है[2]। उनके मणिदीपक का दूसरा उदाहरण दण्डी के 'आदिपादगत-जाति-दीपक' के उदाहरण पर आधारित है। दण्डी का उदाहरण है—

पवनो दक्षिणः पर्णं जीर्णं हरति वीरुधाम्।
स एवावनतांगीनां मानभंगाय कल्पते[3] ॥

"दक्षिण-वायु जो लताओं के जीर्ण पत्तों को गिरा देती है, वही कामिनियों के मान-भंग कराने में भी समर्थ होती है।"

केशव ने दण्डी के इस श्लोक के भाव को अपने ढंग पर बढ़ा कर इस प्रकार लिखा है।

दक्षिण पवन दक्षि यक्षिणी रमण लगि,
लोलन करत लौंग लवली लता को दल।
केशोदास केसर कुसुम कोश रसकण,
तनु तनु तिनहू को सहत सकल भर।
क्योंहूं कहूं होत हठि साहस विलास बश,
चंपक चमेली मिलि मालती सुबास हर।
शीतल सुगंध मंद गति नंदनंद की सौं,
पावत कहां ते तेज तोरिबे को मानतर[4] ॥

---

१. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १०७।

२. वरषा, शरद, बसंत, ससि, सुभता, शोभ, सुगंधु।
प्रेम, पवन, भूषण, भवन, दीपक दीपक बंधु ॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २३।

३. काव्यादर्श, परि० २, छं० ६८।

४. क० प्रि०, प्र० १३, छं० २६।

३३. प्रहेलिका :

केशव के मत में किसी वस्तु को किसी प्रकार छिपाकर वर्णन करना प्रहेलिका अलंकार कहलाता है[१]। प्रहेलिका को दण्डी भी अलंकार मानते हैं और उसके सोलह प्रकारों का उल्लेख करते हैं[२]। परन्तु साहित्यदर्पणकार इसे अलंकार नहीं मानते, क्योंकि यह रस के उत्कर्ष में बाधक है[३]।

३४. परिवृत्त :

इस अलंकार को दण्डी और केशव दोनों ही मानते हैं, परन्तु केशव की न तो परिभाषा ही स्पष्ट है और न उनके उदाहरणों से ही विदित होता है कि वे उसकी परिभाषा क्या समझते हैं। केशव का लक्षण जयदेव तथा अप्पय दीक्षित आदि आचार्यों द्वारा दिए 'विषादन' अलंकार के लक्षण से मिलता है[४]। साहित्यदर्पणकार तो विनिमय के भाव में 'परिवृत्ति' का होना बतलाते हैं[५]। दण्डी के निम्नलिखित उदाहरण से ज्ञात होता है कि वे भी विनिमय के भाव में ही 'परिवृत्ति' अलंकार मानते हैं।

शस्त्रप्रहारं ददता भुजेन तव भूभुजाम्।
चिरार्जितं हृतं तेषां यशः कुमुदपाण्डुरम्[६]॥

"हे राजन्! शस्त्र-प्रहार करती हुई तेरी भुजा ने कुमुद के समान शुभ्र तथा चिरसंचित राजाओं की कीर्ति का अपहरण कर दिया।"

३४. उपमा :

चौदहवाँ प्रभाव सारा ही उपमा अलंकार को अर्पित है। दण्डी और केशव के उपमा के सामान्य लक्षणों को देखने से ज्ञात होता है कि केशव का उपमा का

---

१. बरनिय वस्तु दुराय जहँ, कौनहुँ एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कविकुल बुद्धि अपार॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ३०।

२. एताः षोडश निर्दिष्टा पूर्वाचार्यैः प्रहेलिकाः।
—काव्यादर्श, परि० ३, श्लो० १०६।

३. रसस्य परिपन्थित्वान्नालङ्कारः प्रहेलिका।
उक्तिवैचित्र्यमात्रं सा च्युतदत्ताक्षरादिका॥
—सा० द०, परि० १०, का० सं० ६६६।

४. जहाँ करत कछु और ही उपजि परति कछु और।
तासों परिवृत्त जानियो, केशव कवि सिरमौर॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ३१।

इष्यमाणविरुद्धार्थसम्प्राप्तिस्तु विषादनम्॥
—चन्द्रालोक मयूख ५, श्लो० ५० तथा कुवलयानन्द, पृ० १५२।

५. परिवृत्तिर्विनिमयः समन्यूनाधिकैर्भवेत्।
—सा० द०, परि० १०, का० सं० ७५५।

६. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३५६।

सामान्य लक्षण दण्डी की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। दण्डी उपमा अलंकार वहाँ मानते हैं, जहाँ वस्तुओं में किसी प्रकार की समानता दिखाई जाती है[1]। उन के लक्षण में रूप, गुण तथा शील का उल्लेख नहीं हुआ है यद्यपि 'यथाकथञ्चित्' शब्दों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का वर्णन आ जाता है। केशव की परिभाषा में इनका स्पष्ट उल्लेख है[2]।

केशव ने कुल मिलाकर उपमा के बाईस प्रकार माने हैं और दण्डी ने बत्तीस। जिन पन्द्रह उपमाओं का निरूपण केशव तथा दण्डी दोनों ने ही किया है, उनके नाम इस प्रकार हैं—संशयोपमा, हेतूपमा, अभूतोपमा, अद्भुतोपमा, विक्रियोपमा, मोहोपमा, नियमोपमा, अतिशयोपमा, उत्प्रेक्षितोपमा, श्लेषोपमा, धर्मोपमा, निर्णयोपमा, असंभावितोपमा, विरोधोपमा तथा मालोपमा। शेष भेदों में केशव की दूषणोपमा, भूषणोपमा, गुणाधिकोपमा, लाक्षणिकोपमा तथा परस्परोपमा क्रमशः दण्डी के निन्दोपमा, प्रशंसोपमा, प्रतिषेधोपमा, चटूपमा तथा अन्योन्योपमा नामक भेदों से मिलती हैं। केशव के अन्य भेद, संकीर्णोपमा और विपरीतोपमा दण्डी के किसी भेद से साम्य नहीं रखते। इन दोनों उपमाओं के सम्बन्ध में कृष्णशंकर शुक्ल लिखते हैं कि 'इन दोनों में उपमा के लिए आवश्यक साम्य की प्रतिष्ठा हो ही नहीं पाई, न जाने क्यों केशव ने ये भेद मान लिए[3]।' स्व० ला० भगवानदीन जी ने भी अपने 'प्रियाप्रकाश' के नोट में इसी पक्ष का समर्थन किया है[4]। अन्य भेदों के अन्तर्गत दिए दोनों के उदाहरणों के मिलान करने से विदित होता है कि अधिकांश की परिभाषा दण्डी तथा केशव दोनों ने एक ही समझी है। परन्तु केशव की कुछ उपमाओं का दण्डी से केवल नाम ही मिलता है, अन्यथा लक्षण तो सर्वथा अस्पष्ट है ही, उदाहरण के देखने से भी लक्षण स्पष्ट नहीं हो पाता। उदाहरणस्वरूप धर्मोपमा और अतिशयोपमा के लक्षण तथा उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

केशव की धर्मोपमा का लक्षण :

एक धर्म को एक अंगु, जहाँ जानियतु होय।
ताहीं सों धर्मोपमा, कहत सयाने लोग ॥

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० २१)

---

१. यथाकथञ्चित् सादृश्यं यत्रोद्भूतं प्रतीयते।
उपमा नाम सा तस्याः प्रपञ्चोऽयं प्रदर्श्यते ॥
—काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १४।

२. रूप शील गुण होय सम, जो क्योंहूँ अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार ॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १।

३. केशव की काव्यकला, पृ० १७०।

४. संकीर्णोपमा-सम्बन्धी नोट—क० प्रि०, पृ० ३७१ तथा विपरीतोपमा-सम्बन्धी नोट—क० प्रि०, पृ० ३६३।

केशव की धर्मोपमा का उदाहरण :

ऊजरे उदार उर बासुकी बिराजमान,
हार के समान आन उपमा न टोहिये।
शोभिजें जटान बीज गंगाजू के जल बिन्दु,
कुन्द कलिका से केशोदास मन मोहिये।
नख की सी रेखा चंद, चंदन सी चारु रज,
अंजन सिंगार हूँ गरल रुचि रोहिये।
सब सुख सिद्धि शिवा सोहैं शिव जू के साथ।
जावक सो पावक लिलार लाग्यो सोहिये।

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ३२)

दण्डी की धर्मोपमा का लक्षण-उदाहरण :

अम्भोरुहमिवाताम्रं मुग्धे करतलं तव।
इति धर्मोपमा साक्षात् तुल्यधर्मनिदर्शनात्॥

(काव्यादर्श, परि० २, श्लो० १५)

केशव की अतिशयोपमा का लक्षण :

एक कहूं एकै विषै, सदा होय रस एक।
अतिशय उपमा होति तहं, कहत सुबुद्धि अनेक॥

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० २५)

केशव की अतिशयोपमा का उदाहरण :

केशवदास प्रगट अकास में प्रकासमान,
ईश हू के शीश रजनीश अवरेखिये।
थल थल जल जल अमल अचल अति,
कोमल कमल बहु बरण विशेषिये॥
मुकुर कठोर बहु, नाहिनै अचल यश,
बसुधा सुधा हू तिय अधरन लेखिये।
एक रस एक रूप जाकी गीता सुनियत,
तेरो सो बदन सीता ! तोही विषै देखिये॥

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० २६)

यह उदाहरण अतिशयोपमा का न रहकर 'अनन्वय' का बन गया है।

दण्डी की अतिशयोपमा का लक्षण-उदाहरण :

त्वय्येव त्वन्मुखं दृष्टं दृश्यते दिवि चन्द्रमाः।
इयत्येव भिदा नान्येत्यसावतिशयोपमा॥

(काव्यादर्श, परि० २, श्लो० २२)

विक्रियोपमा, हेतूपमा तथा मालोपमा आदि की परिभाषाएँ, भी अस्पष्ट हैं, किन्तु उदाहरणों से उनके स्वरूप का पूरा बोध हो जाता है। केशव के दो-एक उदाहरणों पर भी दण्डी की स्पष्ट छाप दिखलाई देती है। दण्डी ने असम्भावितोपमा का यह उदाहरण दिया है—

चन्द्रबिम्बादिव विषं चन्दनादिव पावकः।
परुषा वागितो वक्त्रादित्यसम्भावितोपमा[1] ॥

"मुख से कठोर वचन का निकलना वैसा ही है जैसा कि चन्द्रमा से विष निकलना और चन्दन से अग्नि का प्रकट होना।"

केशव ने इसी भाव को विस्तार के साथ इस प्रकार लिखा है—

जैसे अति शीतल सुवास मलयज माँहि,
अमल अनल बुद्धिबल पहिचानिये।
जैसे कौनो कालवश कोमल कमल माँहि,
केशरै ई केशोदास कंटक से जानिये।
जैसे विधु सधर मधुर मधुमय माँहि,
मोहै मोहरुख विषम विष बखानिये।
सुन्दरि सुलोचनि सुबचनि सुदंति तैसे,
तेरे मुख आखर परुष रुख मानिये[2] ॥

स्व० ला० भगवानदीन जी के अनुसार यह उदाहरण 'मिथ्याध्यवसित' अलंकार का है[3]। दण्डी ने भ्रान्तिमान्, संदेह, व्यतिरेक, निश्चय, अतिशयोक्ति, विशेषोक्ति आदि कई अलंकारों को उपमा के भेदों में सम्मिलित कर लिया है। केशव ने भी इन्हीं का अनुकरण किया है। उनकी मोहोपमा में भ्रान्तिमान्, अद्भुतोपमा में अतिशयोक्ति, संशयोपमा में सन्देह, निश्चयोपमा में निश्चय, प्रतिषेधोपमा में व्यतिरेक, चटूपमा में विशेषोक्ति, विपरीतोपमा में वक्रोक्ति तथा अतिशयोपमा में अनन्वय का रूप दिखाई पड़ता है।

३६. यमक :

पन्द्रहवें प्रभाव में केशव ने यमक का सविस्तार वर्णन किया है। केशव के अनुसार यमक अलंकार वहाँ होता है जहाँ पद एक से हों, अर्थ अनेक निकलते हों[4]।

---

१. काव्यादर्श, परि० २, श्लो० ३१।

२. क० प्रि०, प्र० १४, छं० ४०।

३. वही, प्र० १४, पाद-टिप्पणी, पृ० ३६६।
श्री कन्हैयालाल पोद्दार ने उक्त अलंकार का लक्षण यों दिया है—
किसी बात का मिथ्यात्व सिद्ध करने के लिए किसी दूसरे मिथ्या अर्थ की कल्पना किये जाने को 'मिथ्याध्यवसिति' अलंकार कहते हैं। काव्यकल्पद्रुम, उत्तरार्द्ध, पृ० ३११।

४. पद एकै नाना अरथ जिनमें जेतो वित्तु।
तामें ताको काढ़िये यमक माँहि दै चित्तु ॥
—क० प्रि०, प्र० १५, छं० १।

यमक के वर्णन में केशव ने दण्डी को ही अपना आधार बनाया है। यद्यपि केशव ने दण्डी जितने भेदों-प्रभेदों का विवेचन तो नहीं किया है, तो भी उन्होंने दण्डी द्वारा निर्दिष्ट प्रायः सभी प्रमुख भेदों का निरूपण किया है। यों तो दण्डी यमक के बहुत से भेद बतलाते हैं पर प्रमुख दो ही भेद मानते हैं, अव्यपेत तथा व्यपेत और फिर स्थान की दृष्टि से आदि, मध्य, अन्त, एक, द्वि, त्रि, चतुष्पाद आदि उपभेदों का उल्लेख करते हैं[1]। इनके अतिरिक्त सरलता तथा कठिनता की दृष्टि से भी दण्डी ने दो भेद सुकर तथा दुष्कर माने हैं[2]। केशव ने भी प्रायः इन सभी भेदों का वर्णन किया है, परन्तु दण्डी के अव्यपेत और व्यपेत 'कविप्रिया' में क्रमशः अव्ययेत (जहाँ पदों या वर्णों के बीच व्यवधान न हो) और सव्ययेत (जहाँ पदों या वर्णों के बीच व्यवधान हो) के रूप में देखे जाते हैं[3]। 'कविप्रिया' के टीकाकारों ने अव्यपेत और व्यपेत अर्थ न समझकर 'य' और 'प' के लिपि-भ्रम के कारण इन भेदों को अव्ययेत और सव्ययेत के नाम से लिख दिया है[4]। कुछ वर्तमान रीति ग्रन्थकारों ने भी इन लोगों का ही अन्धानुसरण किया है[5]। दण्डी के सुकर और दुष्कर का नाम ही केशव ने क्रमशः सुखकर और दुखकर रख लिया है[6]। यमक के उदाहरणों पर दण्डी की कोई छाप दृष्टिगोचर नहीं होती, अतः वे केशव के अपने हैं।

३७. चित्रालंकार :

सोलहवें प्रभाव में चित्रालंकार का वर्णन है। उसमें मस्तिष्क का व्यायाम सा ही होता है। केशव कहते हैं कि चित्रालंकार समुद्र के समान है, जिसमें बड़े-बड़े प्रतिभासम्पन्न कवि भी डूब जाते हैं। इस कारण वे कुछ का ही निरूपण करते हैं[7]।

---

१. काव्यादर्श, परि०३, श्लोक १।

२. अत्यन्तबहवस्तेषां भेदाः संभेदयोनयः।
सुकरा दुष्कराश्चैव दर्शयन्ते तत्र केचन ॥
—काव्यादर्श, परि०३, श्लो० ३।

३. अव्ययेत सव्ययेत पुनि, यमक वरन दुइ देत।
अव्ययेत बिनु अंतरहि, अन्तर सो सव्ययेत ॥
—क०, प्रि०, प्र० १५, छं० ४।

४. काव्यकल्पद्रुम (उत्तरार्द्ध), पृ० ८६।

५. अलंकारपीयूष (पूर्वार्द्ध), रामशंकर शुक्ल, पृ० २२७।

६. सुखकर दुखकर भेद द्वै, सुखकर वरनें जान।
यमक सुनो कविराय अब, दुखकर करौं बखान ॥
—क० प्रि०, प्र० १५, छं० २६।

७. केशव चित्र समुद्र में बूड़त परम विचित्र।
ताके बूँदत के कणं वरनत हौं सुनि मित्र ॥
—क० प्रि०, प्र० १६, छं० १।

वे पहले नियमों का वर्णन करते हुए बतलाते हैं कि चित्रालंकार में कुछ दोष दोष नहीं माने जाते। चित्रनिर्वाह के लिए यदि किसी विसर्ग अथवा अनुस्वाररहित अक्षर को विसर्ग अथवा अनुस्वार युक्त करना पड़े अथवा यतिभंग, रसहीन, बधिर, अन्ध, अगण आदि दोष आ जायें, तो वे दोष नहीं माने जाते[1]। इनके अतिरिक्त दीर्घ को लघु तथा लघु को दीर्घ, 'ब' के स्थान पर 'व' और 'व' के स्थान पर 'ब' तथा 'य' के स्थान पर 'ज' और 'ज' के स्थान पर 'य' करने में भी दोष नहीं माना जाता[2]।

चित्रालंकार के अन्तर्गत केशव ने निरोष्ठ रचना, अमात्रिकरचना, नियमाक्षर शब्द-रचना (एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुराक्षर शब्द-रचना तथा छब्बीस अक्षरों की शब्द रचना से आरम्भ करके एक एक वर्ण घटते हुए एक अक्षर तक की शब्द-रचना), बहिर्लापिका, अन्तर्लापिका, गूढ़ोत्तर, एकानेकोत्तर, व्यस्तसमस्तोत्तर, व्यस्त-गतागत उत्तर, विपरीत व्यस्तसमस्त उत्तर, शासनोत्तर, प्रश्नोतर और व्यस्तगतागत का वर्णन किया है। इनसे अनेक प्रकार के चित्र बनते हैं। उनमें से केशव ने गौमूत्रिका चक्र, कपाटबद्ध चक्र, अश्वगति चक्र, चरणगुप्त चक्र, गतागत, चतुष्पदी, द्विपदी, त्रिपदी, चरणगुप्त, चक्रबंध, कमलबंध, धनुषबंध, पर्वतबंध, सर्वतोमुख, हरिबंध, डमरुबन्ध तथा मंत्रगति आदि चित्रों का उल्लेख किया है।

संस्कृत आचार्यों ने चित्रालंकार का वर्णन अपने-अपने ढंग से किया है। केशव ने उस सम्बन्ध में अनेक प्राचीन आचार्यों की सहायता लेकर अपनी प्रतिभा से काम लिया है। परन्तु केशव ने प्रमुख रूप से अमरचन्द्र यति की 'काव्यकल्पलता-वृत्ति' (प्रतान, स्तबक ५) को ही अपना आधार बनाया है।

अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में केशव की मौलिकता :

अलंकार का सामान्य अथवा साधारण तथा विशिष्ट वर्गों में विभाजन केशव का अपना है। सामान्य अलंकारों को फिर केशव ने चार वर्गों में विभक्त किया है, वर्णालंकार, वर्ण्यालंकार, भूमिश्रीवर्णन और राज्यश्री वर्णन। विशिष्ट अलंकारों में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों प्रकार के सभी मुख्य अलंकारों का वर्णन किया गया है। संस्कृत के किसी भी आचार्य ने इस प्रकार का विभाजन नहीं किया है। साधारण अलंकारों का विवेचन यद्यपि प्रधानतया 'काव्यकल्पलतावृत्ति' तथा 'अलंकारशेखर' नामक ग्रन्थों पर आधारित है, तथापि स्थल-स्थल पर केशव की मौलिकता की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। विशिष्टालंकारों के निरूपण में प्रमुख रूप से दण्डी और कहीं-कहीं भोज, मम्मट, विश्वनाथ आदि आचार्यों को आधार

---

१. अध, ऊरध बिनु बिन्दुयुत, जति, रसहीन, अपार।
बधिर, अंध गन अगन-के गनिय न नगन विचार॥
—क० प्रि०, प्र० १६, छं० २।

२. केशव चित्र समुद्र में इनके दोष न देख।
अक्षर मोटे पातरे ब, व, ज, य, एकै लेख॥
—क० प्रि०, प्र० १६, छं० ३।

बनाया गया है, परन्तु कुछ अलंकारों तथा उनके भेदों की परिभाषा केशव की अपनी हैं। अलंकारों के कुछ भेद केशव के निजी हैं। केशव ने कुछ नए अलंकारों की भी सृष्टि की है, जैसे अमित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत और अन्योक्ति। इन अलंकारों का उल्लेख भट्टि, भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, भोज तथा रुय्यक आदि संस्कृत के किसी भी आचार्य द्वारा नहीं किया गया है। अन्योक्ति को तो अर्वाचीन आचार्य अलंकारों में सम्मिलित करते भी हैं पर सुसिद्ध, प्रसिद्ध तथा विपरीत को नहीं। कन्हैया लाल पोद्दार इन्हें महत्त्वपूर्ण नहीं मानते काव्यकल्पद्रुम (उत्तरार्द्ध), पृ० ४३। हिन्दी साहित्य में अन्योक्ति का स्वतंत्र रूप में सबसे प्रथम उल्लेख केशवदास ने ही किया है। अमरचन्द्र तथा केशवमिश्र के अनुकरण पर 'गणना' और दण्डी तथा भामह के आधार पर 'आशिष' अलंकार का निरूपण भी हिन्दी के लिए नवीन है। केशव द्वारा निरूपित दीपक के मणि तथा माला-दीपक भेदों का उल्लेख आगे के आचार्यों ने नहीं किया है। यमक का अव्ययेत तथा सव्ययेत, सुकर तथा दुखकर आदि भेदों में वर्गीकरण भी केशव के परवर्ती आचार्यों में अप्राप्य है।

कुछ दोष :

केशव ने यद्यपि अलंकारों का अत्यन्त ही सूक्ष्म विवेचन किया है, फिर भी उनके निरूपण में कुछ दोष रह ही गए हैं। सबसे पहला दोष जो केशव के अलंकार-विवेचन में देखने में आता है, वह यह है कि केशव के कई अलंकारों की परिभाषाएँ स्पष्ट नहीं हैं। उदाहरणस्वरूप क्रम, लेश, प्रेमा, निदर्शना, धर्मोपमा, अतिशयोपमा, विक्रियोपमा तथा हेतूपमा आदि की परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं। इन अलंकारों की परिभाषाओं से अलंकार-विशेष के स्वरूप का स्पष्टतया ज्ञान नहीं होता, किन्तु इनमें भी अधिकांश अलंकारों के लक्षण का भाव उनके उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है। दूसरे, केशव ने कहीं-कहीं दो भिन्न अलंकारों के लक्षण एक जैसे ही दिए हैं। उदाहरण के लिए पर्यायोक्ति और समाहित तथा स्वभावोक्ति और युक्त अलंकारों के लक्षण दिये जा सकते हैं। केशव का पर्यायोक्ति का लक्षण है—

> **कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय।**
> **सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोक्ति सोय॥**

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० २६)

समाहित के लक्षण का भी लगभग यही भाव है—

> **होत न क्योंहू होय जहं, दैवयोग ते काज।**
> **ताहि समाहित नाम कहि, बरणत कवि सिरताज॥**

(क० प्रि०, प्र० १३, छं० १)

इसी प्रकार स्वभाव (स्वभावोक्ति) और युक्त अलंकार के लक्षण भी आपस में मिलते हैं। केशव के स्वभाव अलंकार का लक्षण है—

> **जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।**
> **तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज॥**

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ८)

युक्त अलंकार का लक्षण भी प्रायः यही है—

जाको जैसो रूप बल, कहिये ताही रूप।
ताको कविकुल युक्त कहि, बरणत विविध सरूप ।।

(क० प्रि०, प्र० १२, छं०, ३१)

परन्तु ऐसे स्थल बहुत ही कम हैं। इसके अतिरिक्त जो बात सब से अधिक खटकती है, वह यह है कि केशव के कुछ अलंकारों के लक्षणों तथा उनके उदाहरणों में पूर्ण सामंजस्य नहीं है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। केशव के विरोधालंकार का दूसरा उदाहरण प्रथम विभावना का उदाहरण बन गया है, जैसे—

आपु सितासित रूप, चितै चित्त श्याम शरीर रंगे रंगराते।
केशव कानन हीन सुनै, सु कहै रस की रसना बिन बातें।।
नैन किधौं कोउ अन्तरयामी री जानति नाहिन बूझति तातें।
दूर लौं दौरत हैं बिन पायन दूर दुरी दरसै मति जातें।।

(क० प्रि०, प्र० ९, छं० २१)

इस उदाहरण के सम्बन्ध में स्व० ला० भगवानदीन जी के शब्द द्रष्टव्य हैं—

"इस छन्द के प्रथम चरण में विषमालंकार और शेष तीन चार चरणों में विभावनालंकार दरसता है, पर विचार करने से ये अलंकार ठहरते नहीं ......। पर हाल के आचार्य तो इस छन्द में विषम और विभावना ही मानेंगे। हमें भी संदेह है कि क्या मानें। पर चूंकि पुस्तक में यह छन्द विरोध के उदाहरण में दिया है, अतः कोई चारा नहीं" (क० प्रि०, प्र० ६, टिप्पणी, पृ० १६३)। इस प्रकार लालाजी इस उदाहरण में विरोधालंकार ही मानने को बाध्य होते हैं पर साथ ही अन्त में वे 'पाद-टिप्पणी' में यह भी लिखते हैं कि "हमारा अनुमान है कि यह छन्द प्रथम विभावना का उदाहरण है। लेखकों की असावधानी से यहाँ लिख गया है"—(क० प्रि०, प्र० ६, टिप्पणी, पृ० १६३)।

केशव का अभाव-हेतु का उदाहरण है—

जान्यो न मैं मद यौवन को उतर्यो कब काम को काम गयो ई।
छोड़न चाहत जीव कलेवर जोर कलेवर छांड़ि दयोई।
आवत जात जरा दिन लीलत रूप जरा सब लीलि लियोई।
केशव राम ररौं न ररौं अनसाधे ही साधन सिद्ध भयोई।।

(क० प्रि०, प्र० ९, छं० १७)

इसमें राम-नाम के जाप-रूप साधन के बिना ही कार्य की सिद्धि का उल्लेख किया गया है, परन्तु बिना साधन के कार्य की सिद्धि होने पर 'प्रथम विभावना' होती है[1]। अतः यह उदाहरण अभाव-हेतु का न रह कर 'प्रथम बिभावना' का हो गया है। स्व० ला० भगवानदीन इस उदाहरण में अभाव-हेतु सिद्ध करते हुए कहते हैं कि

---

१. कारज को बिनु कारणहि उदो होत जेहि ठौर।

—क० प्रि०, प्र० ९, छं० ११।

"यदि साधन न होता तो प्रथम विभावना होती। यदि साधनान्तर से काम होता तो दूसरी विभावना होती। यहाँ साधन तो है पर निर्बल है अतः अभाव हेतु है[1]।" 'परन्तु अनसाधे ही साधन सिद्ध भयो' शब्दों से स्पष्ट है कि उक्त उदाहरण प्रथम विभावना का ही है।

इसी प्रकार उपमा अलंकारों के भेदों के अन्तर्गत भी बहुत से स्थलों पर लक्षण और उदाहरण परस्पर नहीं मिलते। केशव की भूषणोपमा[2] का उदाहरण उन्हीं की श्लेषोपमा[3] का स्मरण कराता है। तुलना के लिए दोनों उपमाओं के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

भूषणोपमा का उदाहरण:

सुवरण युत, सुवरन कलित, पुनि,
भैरव सो मिलि, गति ललित बितानी है।
पावन, प्रगट द्युति द्विजन की देखियत,
दीपति दीपति अति, श्रुति सुखदानी है॥
सोभा सुभ सानी, परमारथ निधानी, दीह
कलुष कृपानी मानी, सब जग जानी है।
पूरब के पूरे पुन्य, सुनिये प्रवीनराय,
तेरी बानी मेरी रानी गंगा को सो पानी है।

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० १८)

(यहाँ श्लेष द्वारा वाणी की गंगाजल से उपमा दी गई है।)

श्लेषोपमा का उदाहरण :

सगुन, सरस, सब अंगराग रंजित है,
सुनहु सुभाग बड़े भाग बाग पाइये।
सुन्दर, सुबास तनु, कोमल, अमल मन,
षोडस बरसमय हरष बढ़ाइये॥
बलित ललित बास, केशोदास सबिलास,
सुन्दरि सँवारि लाई, गहरु न ल्याइये।

---

१. क० प्रि०, टिप्पणी, पृ० १८६।

२. दूषण दूर दुराय जहं, वरणत भूषण भाय।

—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १७।

(जहाँ उपमानों के दोष छिपाकर केवल उनके गुणों के ही अनुसार उपमा कही जाय, वहाँ भूषणोपमा अलंकार होता है)।

३. जहाँ स्वरूप प्रयोगिये, शब्द एक ही अर्थ।

—क० प्रि०, प्र० १४, छं० २१।

(जहाँ ऐसे श्लिष्ट शब्द प्रयोग किये जायें जिनका समान अर्थ दोनों में लगा सकें)।

चातुरी की शाला मानि, आतुर ह्वै नंदलाल,
चंपे की सी माला बाला उर उरझाइये ॥
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ३०)

अतिशयोपमा का उदाहरण अनन्वय का उदाहरण बन गया है। इसी प्रकार अभूतोपमा का उदाहरण धर्मोपमानलुप्तोपमा का उदाहरण हो गया है। केशव ने अभूतोपमा का निम्नलिखित उदाहरण दिया है—

दुरिहै क्यों भूषन बसन दुति यौवन की,
देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह की सुवास लागै ह्वै है कैसी केशव,
सुभाव ही की बास भौंर भीर फारे खाति है।
देखि तेरी मूरति की सूरति बिसूरति हौं,
लालन को दृग देखिबे को ललचाति है।
चलिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचनि के भार भये,
कचन के भार तें लचकि लंक जाति है॥
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० १०)

विपरीतोपमा[1] के उदाहरण में तो उपमा अलंकार का अस्तित्व किसी प्रकार भी माना ही नहीं जा सकता, जैसे—

भूषित देह बिभूति, दिगंबर, नाहि न अम्बर अंग नवीनो।
दूरि कै सुन्दर सुन्दरी केशव, दौरि दरीन में आसन कीनो॥
देखिय मंडित दण्डन सों, भुजदण्ड दोऊ असिदण्ड विहीनो।
राजनि श्रीरघुनाथ के राज कुमंडल छांड़ि कमंडल लीनो॥
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ३४)

इस सम्बन्ध में स्व० ला० भगवान दीन जी का मत उल्लेखनीय है, जो इस प्रकार है—

"इसमें उपमा अलंकार जान नहीं पड़ता, पर विचार से यह भासित होता है कि राजागण भिक्षुवत् हो गए हैं। समझ में नहीं आता कि केशव ने कैसे इसे उपमा के अन्तर्गत माना है" (क० प्रि०, टिप्पणी, पृ० ३६३)।

सामान्यालंकारों के अन्तर्गत दिये लक्षणों एवं उदाहरणों में भी दो-एक स्थलों पर समन्वय दृष्टिगोचर नहीं होता है। केशव द्वारा 'सुवृत्त' वर्णन के अन्तर्गत दिए उदाहरण में नायिका के कुचों की प्रशंसा का ही वर्णन है, उनकी 'सुवृत्तता' का नहीं, जैसे—

परम प्रवीन अति कोमल कृपालु तेरे,
उर ते उदित नित चित्त हितकारी हैं।

---

१. पूरब पूरे पुन्य के, तेई कहिये हीन।
तासों बिपरीतोपमा, केशव कहत प्रवीन॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० ३३।

केशोराय की सों अति सुन्दर उदार शुभ,
सलज सुशील विधि सुरति सुधारी है।
काहू सों न जानें हँसि बोलि न बिलोकि जानें,
कंचुकी सहित साधु सूधी बंसवारी है।
ऐसे दकुचनि सकुचति न सकति बूझि,
हरि हिय हरनि प्रकृति किन धारी है॥
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० १४)

इसी प्रकार 'अबल' वर्णन के अन्तर्गत जो उदाहरण केशव ने दिया है, उसमें अनाथों की 'अबलता' के स्थान पर उनकी 'सबलता' का ही वर्णन किया गया दिखलाई देता है, यथा—

खात न अघात सब जग खवावत है,
द्रौपदी के सागपात खात ही अघाने हो।
केशोदास नृपति सुता के सतभाय भये,
चोर ते चतुरभुज चहुँचक जाने हो।
मांगनेऊ, द्वारपाल, दास, दूत, सूत, सुनौ,
काठ माहि कौन पाठ वेदन बखाने हो।
और हैं अनाथन के नाथ कोऊ रघुनाथ,
तुम तो अनाथन के हाथ ही बिकाने हो॥
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ५१)

(आ) रसिकप्रिया में रस-विवेचन तथा नायक-नायिका-भेद-निरूपण और उसका आधार :

आधारभूत-ग्रंथ :

केशव के 'रसिकप्रिया' की रचना करने के पूर्व 'रसिकप्रिया' में वर्णित रस, नायक-नायिका-भेद आदि विषयों पर संस्कृत साहित्य में अनेक ग्रन्थों का निर्माण हो चुका था, जिनमें भरतमुनि का 'नाट्यशास्त्र', धनंजय का 'दशरूपक', भोज का 'सरस्वतीकुलकण्ठाभरण' और 'श्रृंगारप्रकाश', विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण', भानुदत्त की 'रसतरंगिणी' और 'रसमंजरी', रूपगोस्वामी की 'उज्ज्वलनीलमणि' तथा शिङ्गभूपाल का 'रसार्णवसुधाकर' प्रमुख हैं। परन्तु केशव ने 'रसिकप्रिया' के लक्षणों का आधार किस ग्रन्थ को बनाया है. यह निर्णय करना कठिन है। इसके दो कारण हैं। पहला तो यह है कि केशव ने जैसे 'कविप्रिया' की समस्त सामग्री किसी एक ही ग्रन्थ से न लेकर 'काव्यकल्पलतावृत्ति', 'अलंकारशेखर', 'काव्यादर्श' आदि कई अन्य ग्रन्थों से भी ली है, वैसे ही 'रसिकप्रिया' के लक्षणों के निर्माण में उन्होंने किसी एक ग्रन्थ को ही अपना आधार नहीं बनाया है। दूसरे, 'रसिकप्रिया' में वर्णित विषयों पर भिन्न-भिन्न संस्कृत ग्रन्थों में दिए लक्षण प्रायः परस्पर मिलते हैं। अतः यह कहना कठिन है कि केशव ने उन स्थलों पर संस्कृत के किस ग्रन्थ-विशेष को अपना आधार बनाया है। फिर भी

उपर्युक्त नाट्यशास्त्र, दशरूपक, रसमञ्जरी आदि सभी ग्रन्थों के नाम लिए जा सकते हैं, जिनसे सहायता लेकर 'रसिकप्रिया' लिखी जाने की संभावना होती है। इनके अतिरिक्त 'रसिकप्रिया' में वर्णित कुछ बातों के लिए केशव कामसूत्र, अनंगरंग, रतिरहस्य आदि कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों के भी ऋणी हैं। 'रसिकप्रिया' के लक्षणों का उक्त ग्रन्थों में दिये लक्षणों से मिलान करने पर ज्ञात हो सकता है कि केशव की 'रसिकप्रिया' इनमें से किस अथवा किन-किन ग्रन्थों पर आधारित है।

रस-लक्षण तथा भेद-निरूपण :

'रसिकप्रिया' के प्रथम प्रकाश में केशव ने पहले रसनिष्पत्ति का वर्णन किया है। उनका कथन है कि विभाव, अनुभाव और संचारी के संयोग से स्थायी भाव की अभिव्यक्ति ही रस कहलाती है[१]। रस-निष्पत्ति के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त भरत से ही चला आ रहा है[२]। भरत के परवर्ती मम्मट आदि सभी प्राचीन आचार्य इससे सहमत हैं[३]। रस के विषय में धनञ्जय की भी यही धारणा है[४]।

रस की संख्या के निर्धारण में प्रायः आचार्य एकमत नहीं रहे हैं। भरतमुनि ने पहले आठ ही रस गिनाए हैं[५]। पीछे से उन्होंने शान्त रस को भी गिनाया है। शान्त रस को आचार्यों ने बड़े संकोच के साथ रस माना है[६]। मम्मटाचार्य ने तो

---

१. मिल विभाव अनुभाव पुनि, संचारी सुअनूप।
व्यंग करैं थिरभाव जो, सोई रस सुखरूप॥
—र० प्रि०, प्र० १, दोहा २, पृ० ६।

२. विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।
—ना० शा०, अ० ६, पृ० ६३।

३. विभावानुभावस्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥
—का० प्र०, उ० ४, पृ० ३४।

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम्।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ३३।

४. विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
आनीयमानः स्वाद्यत्वं स्थायी भावो रसः स्मृतः॥
—दशरूपक, प्र० ४, श्लो० १।

५. शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
—ना० शा०, अ० ६, पृ० ६१।

६. शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्तथा मतः॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० २१३।

शान्त को एक बार रसों की श्रेणी से बिल्कुल ही निकाल दिया है[1]। फिर कुछ सोच समझ कर उन्होंने निर्वेद-प्रधान शान्त रस को भी रसों में स्थान दिया है[2]।

धनञ्जय 'शम' को स्थायी भाव इसलिए नहीं मानते कि रूपक में इसका विकास नहीं होता[3]। परन्तु रूपक से इतर काव्य में इसको रस मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है, जैसा कि भानुदत्त[4] आदि आचार्यों ने स्वीकार भी किया है।

अतएव केशव ने काव्य में नौ ही रसों का उल्लेख किया है[5]। शृंगार उनकी दृष्टि में 'रसराज' है[6]। केशव शृंगार को अपेक्षाकृत विस्तृत अर्थ में लेते हैं। उनके अनुसार रतिभाव की चातुर्य्यपूर्ण अभिव्यक्ति जिसके अन्तर्गत कामशास्त्र में वर्णित चातुर्य्य भी शामिल है, शृंगार रस कहलाती है[7]। केशव के शृंगार रस का यह लक्षण संस्कृत आचार्यों के लक्षण से साम्य नहीं रखता। शृंगार के दो भेदों संयोग तथा वियोग का केवल नामोल्लेख ही किया गया है, उनके लक्षण नहीं दिए गए हैं। संयोग तथा वियोग के भी दो-दो उपभेद, प्रच्छन्न और प्रकाश किये गए है[8]। केशव के विचार से प्रच्छन्न संयोग और वियोग वह होता है जिसे या तो प्रियतम जानता है या प्रियतमा या सखियाँ या उन्हीं के सदृश जो अन्तरंग होते हैं वे जानते हैं[9]। प्रकाश संयोग और वियोग

---

१. शृंगारहास्यकरुणरौद्रवीरभयानकाः।
बीभत्साद्भुतसंज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
—का० प्र०, उ० ४, पृ० ४०।

२. निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः॥
—का० प्र०, उ० ४, पृ० ४७।

३. शममपि केचित्प्राहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य।
—दशरूपक, प्र० ४, श्लो० ३५।

४. नाट्यभिन्ने परं निर्वेदस्थायिभावकः शान्तोऽपि नवमो रसो भवति॥
—रसतरंगिणी, तरंग ७, पृ० १६३।

५. प्रथम शृंगार सुहास्यरस, करुणारुद्र सुवीर।
भय बीभत्स बखानिये, अद्भुत शान्त सुधीर॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १५।

६. सब को केशवदास हरि, नाइक हैं शृंगार॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १६।

७. रति मति की अति चातुरी, रतिपति मंत्र विचार।
ताही सों सब कहत हैं, कवि कोविद शृंगार॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १७।

८. शुभ संयोग वियोग पुनि, दो शृंगार की जाति।
पुनि प्रच्छन्न प्रकाश करि, दोऊ द्वै द्वै भाँति॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० १८।

९. सो प्रच्छन्न संयोग अरु, कहैं वियोग प्रमान।
जानें पीउ प्रिया कि सखी, होहि जु तिनहि समान॥
—र० प्रि०, वही, छं० १९।

वह है जिसको अपने-अपने मन में सभी लोग जानते हों[1]।

इसी प्रकार विभिन्न नायकों, दर्शन के भेदों, नायक-नायिका की चेष्टाओं, स्वयंदूतत्व, अष्टनायिकाओं, वियोग की दश दशाओं, मान, करुणा, प्रवास तथा हास्यादि रसों के वर्णन में भी प्रत्येक के 'प्रच्छन्न' तथा 'प्रकाश' दो भेद किए गए हैं। केशव के इस प्रच्छन्न के विषय में स्व० ला० भगवानदीन जी का कथन है—

"प्रकृति में होता तो ऐसा ही है, पर केशव के बाद के आचार्यों ने इस भेद को उड़ा दिया है। हमारे अनुमान से इसका कारण यह जान पड़ता है कि प्रच्छन्न भावनायें या उनके वर्णन कवि को रस के परिपाक तक नहीं पहुँचने देते, बाधक होते हैं, अतः उनको छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। जहाँ तक हमें ज्ञात है, संस्कृत के आचार्यों ने भी इन भेदों का जिक्र नहीं किया। ये केवल केशव की ही ईजाद थे और केशव ही तक रहे, आगे न चल सके।" (केशव-पंचरत्न, आकाशिका पृ० १२-१३)।

इस सम्बन्ध में श्रद्धेय चन्द्रबली पाण्डे का कहना है कि वस्तुस्थिति सर्वथा विपरीत है। उन्होंने बतलाया है कि 'रसिकप्रिया' से कुछ ही पूर्व पद्मसुन्दर ने अपने 'अकबर-साहि-शृंगार दर्पण' ग्रन्थ में प्रच्छन्न और प्रकाश शृंगार के दो उपभेदों का उल्लेख किया है और भोज ने 'शृंगार-प्रकाश' में स्पष्ट रूप से बता दिया है कि 'प्रकाश' से 'प्रच्छन्न' शृंगार अधिक बली होता है। उनके विचार से शृंगार को 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' के रूप में देखने का पाठ वस्तुतः भोज ने पढ़ाया है (केशवदास, पृ० २२५-२२६)। पाण्डेजी के उपर्युक्त कथन के आधार पर निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' भेदों की उद्भावना के लिए केशव को भोज के 'शृंगार प्रकाश' से ही प्रेरणा मिली है।

नायक-वर्णन :

'रसिकप्रिया' के दूसरे प्रकाश में नायक-वर्णन है। केशव के अनुसार नायक वह होता है जो अभिमानी, त्यागी, तरुण (युवा), कोक-कलाओं में प्रवीण, भव्य, क्षमाशील, सुन्दर, धनी, शुचि (पवित्र), सदा-रुचि (उत्साही) और कुलीन होता है[2]।

धनंजय के अनुसार नायक विनीत, सुन्दर, त्यागी, दक्ष, प्रियभाषी, लोकानुरक्त, शुचि (पवित्र), वाग्मी, कुलीन, स्थिर, युवा, बुद्धि, उत्साह, स्मृति, प्रज्ञा, कला

---

१. सो प्रकाश संयोग अरु, कहँ प्रकाश वियोग।
अपने अपने चित्त में, जानैं सिगरे लोग॥
—र० प्रि०, प्र० १, छं० २१।

२. अभिमानी त्यागी तरुण, कोक कलान प्रवीन।
भव्य क्षमी सुन्दर धनी, शुचि रुचि सदा कुलीन।
ये गुण केशव जाहि में, सोई नायक जान॥
—र० प्रि०, प्र० २, छं० १-२ (प्रथमार्द्ध)।

तथा अभिमान से युक्त, शूर, दृढ़, तेजस्वी, शास्त्रज्ञ तथा धार्मिक पुरुष होता है[१]।

भोज ने कुलीनता, उदारता, भाग्यशालीनता, कृतज्ञता, रूप, यौवन, विदग्धता, शील, गर्व, सम्मान, उदारवाणी, दरिद्रानुरागिता आदि नायक के बारह गुणों का उल्लेख किया है[२]।

शिगभूपाल के विचार से भाग्यशालीनता, उदारता, स्थिरता, दक्षता, औज्ज्वल्य, धार्मिकता, कुलीनता, वाग्मिता, कृतज्ञता, नयज्ञता, शुचिता, मानशीलता, तेजस्विता, कलाविज्ञता, प्रजारंजकता आदि नायक के साधारण गुण होते हैं[३]।

विश्वनाथ के अनुसार नायक को त्यागी, कृती (पण्डित अथवा पुण्यात्मा), कुलीन, धनी, रूप, यौवन तथा उत्साह से युक्त, चतुर, लोकरंजक, तेजस्वी, विदग्ध तथा सुशील होना चाहिए[४]।

संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए गए उपर्युक्त लक्षणों से केशव के लक्षण की तुलना करने पर विदित होता है कि केशव ने किसी एक ग्रन्थ से सहायता लेकर अपना लक्षण नहीं लिखा है। केशव के लक्षण की अधिकांश बातें 'दशरूपक' तथा 'साहित्य-

---

१. नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढ़वंशः स्थिरो युवा ॥
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरो दृढ़श्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः ॥

—दशरूपक, प्र० २, श्लो० १ और ३, पृ० ३५।

२. महाकुलीनतौदार्यं महाभाग्यं कृतज्ञता ॥
रूपयौवनवैदग्ध्यशीलसौभाग्यसंपदः ॥
मानितोदारवाक्यत्वम् दरिद्रानुरागिता।
द्वादशेति गुणानाहुर्नायकेष्वाभिगामिकान् ॥

—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ५६८-५६६, श्लो० १२२-१२३।

३. आलम्बनं मतं तत्र नायको गुणवान् पुमान्।
तद्गुणास्तु महाभाग्यमौदार्यं स्थैर्यदक्षते ॥
औज्ज्वल्यं धार्मिकत्वं च कुलीनत्वं च वाग्मिता।
कृतज्ञत्वं नयज्ञत्वं शुचिता मानशालिता ॥
तेजस्विता कलावत्त्वं प्रजारंजकतादयः।
एते साधारणाः प्रोक्ताः नायकस्य गुणा बुधैः ॥

—र० सु०, पृ० ६, श्लो० ६१-६३।

४. त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजो वैदग्ध्यशीलवान्नेता ॥

—सा० द०, परि० ३, का० सं० ६६।

दर्पण' से मिलती हैं। 'दशरूपक' से जो सात बातें मिलती हैं, उनके नाम ये हैं—नायक का त्यागी, तरुण, सुन्दर, शुचि, उत्साही, अभिमानी तथा कुलीन होना। इसी प्रकार जिन पाँच बातों की 'साहित्यदर्पण' से समानता है वे हैं—नायक का त्यागी, सुन्दर, धनी, उत्साही और कुलीन होना। 'धनी' का उल्लेख धनंजय ने नहीं किया है। केशव ने इसे 'साहित्यदर्पण' के आधार पर ही लिखा है। कोक-कलाओं में प्रवीणता का उल्लेख केशव ने सम्भवतः धनंजय तथा शिंगभूपाल के क्रमशः 'कलायुक्तता' और 'कलाविज्ञता' के स्थान पर किया है। 'अभिमान' को उन्होंने धनंजय तथा भोज के अनुकरण पर लिखा है।

सामान्य गुणों का विवरण देकर केशव नायक के चार भेद, अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट बतलाते हैं[1]।

शिंगभूपाल ने पहले धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त तथा धीरोद्धत आदि चार प्रकार के नायकों का उल्लेख किया है और उन्हें सभी रसों में माना है[2]। पति, उपपति तथा वैशिक को उन्होंने श्रृंगार रस के ही नायक बतलाया है[3]। फिर पति के अनुकूल, शठ, धृष्ट तथा दक्षिण आदि चार भेद किए हैं[4]।

विश्वनाथ सामान्यतः नायक के चार भेद मानते हैं, धीरोदात्त, धीरप्रशान्त, धीरललित और धीरोद्धत[5]। फिर इनमें से प्रत्येक के चार-चार उपभेद किये हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और शठ। इस प्रकार नायक १६ प्रकार के हो जाते हैं[6]। इतने प्रकार विश्वनाथ ने श्रृंगार रस के नायक के माने हैं, अन्य रसों में तो वे धीरोदात्त आदि चार ही प्रकार मानते हैं[7]। भोज ने प्रवृत्ति के अनुसार नायक

---

१. अनुकूल दक्ष शठ धृष्ट पुन चौविध ताहि बखान।
—र० प्रि०, प्र० २, छं० २ (द्वितीयार्द्ध)।

२. एते च नायकाः सर्वरससाधारणाः स्मृताः।
—र० सु०, श्लो० ७८, पृ० १६।

३. श्रृंगारापेक्षया तेषां त्रैविध्यं कथ्यते बुधैः।
पतिश्चोपतिश्चैव वैशिकश्चेति भेदतः॥
—र० सु०, श्लो० ७९, पृ० १६।

४. चतुर्धा सोऽपि कथितो वृत्या काव्यविचक्षणैः।
अनुकूलः शठो धृष्टो दक्षिणश्चेति भेदतः॥
—र० सु०, श्लो० ८०, पृ० १६।

५. धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ६७।

६. सा० द०, परि० ३, का० सं०, ७२।

७. श्रृंगारे षोडशप्रकारक नायकः रसान्तरे तु चतुष्प्रकारक इति ज्ञेयम्।
—सा० द०, टीका, पृ० १००।

के चार भेद शठ, धृष्ट, अनुकूल और दक्षिण बतलाए हैं[१]।

भानुदत्त ने धीरोदात्त आदि भेदों का उल्लेख नहीं किया है। उन्होंने नायक तीन प्रकार के माने हैं, पति, उपपति और वैशिक[२]। फिर उन्होंने अनुकूलादि चार भेदों को पति के उपभेदों में गिनाया है[३]। धनंजय ने धीरोदात्तादि भेदों के अतिरिक्त दक्षिण, शठ, धृष्ट और अनुकूल आदि भेदों का भी वर्णन किया है[४]।

इस प्रकार निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि केशव ने नायक के अनुकूल आदि चार भेद किस ग्रन्थ-विशेष के आधार पर लिखे हैं।

अनुकूल नायक :

केशव अनुकूल नायक उसे मानते हैं जो परस्त्री से विमुख रहता हो और मनसा, वाचा तथा कर्मणा अपनी स्त्री से प्रेम करता हो[५]। केशव का यह लक्षण धनंजय, शिंगभूपाल तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों के लक्षणों[६] से अंशतः मिलता है। हमें तो केशव के लक्षण का आधार भानुदत्त की 'रसमंजरी' तथा रूपगोस्वामी की 'उज्ज्वलनीलमणि' नामक रचनाएँ ही प्रतीत होती हैं[७]। भानुदत्त तथा रूपगोस्वामी द्वारा दिया अनुकूल नायक का लक्षण उक्त तीनों आचार्यों की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। भोज ने लक्षण नहीं दिया है।

दक्षिण नायक :

केशव द्वारा दिया हुआ दक्षिण नायक का लक्षण विश्वनाथ, शिङ्भूपाल, रूपगोस्वामी तथा भानुदत्त के लक्षणों से नहीं मिलता। उनके लक्षणों का एक ही

---

१. शठो धृष्टोऽनुकूलश्च दक्षिणश्च प्रवृत्तितः।
—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ५६७।

२. रसमंजरी, पृ० १७१।

३. अनुकूलदक्षिणधृष्टशठभेदात्पतिश्चतुर्धा।
—रसमंजरी, पृ० १७३।

४. दशरूपक, प्र० २, पृ० ३६।

५. प्रीति करे निज नारि सों, परनारी प्रतिकूल।
केशव मन बच कर्म करि, सो कहिये अनुकूल॥
—र० प्रि०, प्र० २, छं० ३।

६. अनुकूलस्त्वेकनायिकः। —दशरूपक, प्र० २, पृ० ३६।
अनुकूलस्त्वेकजानिः। —रसार्णवसुधाकर, पृ० १६।
अनुकूल एकनिरतः। —सा० द०, परि० ३, का० सं० ७५।

७. सार्वकालिकपराङ्गनापराङ्मुखत्वे सति सर्वकालमनुरक्तोऽनुकूलः।
—रसमंजरी, पृ० १७३।
अतिरक्ततया नार्यां त्यक्तान्यललनास्पृहः॥
—उ० मणि, पृ० ३१।

भाव है कि दक्षिण नायक अनेक नायिकाओं में समान रूप से अनुरक्त रहता है[1]। धनंजय ने दक्षिण नायक का लक्षण देते हुए लिखा है कि अपनी पूर्व पत्नी के प्रति भी प्रेम रखने वाला नायक दक्षिण कहलाता है[2]। रूपगोस्वामी दक्षिण नायक के द्वितीय लक्षण में लिखते हैं कि दक्षिण नायक वह है जो अन्य में अनुरक्त होने पर भी अपनी पूर्व पत्नी के प्रति प्रेम, भय, दाक्षिण्य एवं सम्मान का भाव रखता है[3]। केशव ने धनंजय और रूपगोस्वामी के भाव को कुछ अधिक बढ़ाकर प्रकट किया है[4]। दक्षिण नायक अपनी पहली पत्नी के प्रति प्रेम, भय तथा लज्जा अथवा सम्मान भाव रखता है और चित्त के चलायमान होने पर भी अपने आचरण से विचलित नहीं होता। इस प्रकार केशव का लक्षण सर्वमान्य लक्षण से कुछ विशेषता लिए हुए है। भोज ने इस भेद को तो माना है पर लक्षण छोड़ दिया है।

शठ नायक :

जो मुँह से मीठी-मीठी बातें करता है, मन में कपट रखता है और अपराध से नहीं डरता है, उसे केशव शठ नायक कहते हैं[5]।

दशरूपक में शठ नायक का लक्षण इस प्रकार दिया है—जो गुप्त रूप से अप्रिय करे वह शठ नायक कहलाता है[6]। इस लक्षण से केशव का लक्षण नहीं मिलता। केशव का लक्षण विश्वनाथ और रूपगोस्वामी के लक्षणों का समन्वय सा जान पड़ता है। विश्वनाथ के अनुसार शठ नायक वह होता है जो आसक्त तो किसी अन्य

---

१. एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ७२।

नायिकास्वप्यनेकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते ॥८२॥
—र० सु०, पृ० १८, तथा उ० मणि, पृ० ३७।

सकलनायिकाविषयकसमसहजानुरागो दक्षिणः।
—रसमंजरी, पृ० १७४।

२. दक्षिणोऽस्यां सहृदयः।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ३६।

३. यो गौरवं भयं प्रेमदाक्षिण्यं पूर्वयोषिति।
न मुञ्चत्यन्यचित्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ खलु दक्षिणः।
—उ० मणि, श्लो० २६, पृ० ३६।

४. पहिली सों हिय हेतु डर सहज बड़ाई कानि।
चित चलैंहूँ ना चले, दक्षिण लक्षण जानि ॥
—र० प्रि०, प्र० २, छं० ७।

५. मुख मीठी बातें कहै, निपट कपट जिय जानि।
जाहि न डर अपराध को, शठ कर ताहि बखान ॥
—र० प्रि०, प्र० २, छं० ११।

६. गूढ़विप्रियकृच्छठः। —दशरूपक, पृ० ३६।

में ही हो किन्तु प्रकृत नायिका में भी ऊपर से प्रेम-भाव दिखलाए और गुप्त रूप से उसका अप्रिय करे[१]। रूपगोस्वामी के अनुसार शठ नायक वह कहलाता है, जो सामने तो प्रिय बोलता है, परोक्ष में बहुत ही अनिष्ट करता है और प्रच्छन्न रूप से अपराध करता है[२]। भोज ने इसके भी लक्षण का कोई उल्लेख नहीं किया है।

धृष्ट नायक :

केशव के धृष्ट नायक का लक्षण साहित्यदर्पण के समान है। केशव के विचार से धृष्ट नायक वह होता है जिसको गाली और मार तक की लज्जा नहीं है, जिसने भय को त्याग दिया है और जो अपने देखे हुए दोष को भी नहीं मानता है[३]।

विश्वनाथ के लक्षण का भी यही भाव है[४]। शिङ्गभूपाल का लक्षण केशव से नहीं मिलता[५]। भोज ने धृष्ट नायक का भी लक्षण नहीं लिखा है।

नायिका-भेद-वर्णन :

जाति के अनुसार नायिकाएं :

'रसिकप्रिया' का तीसरा संपूर्ण प्रकाश नायिका-भेद-वर्णन को अर्पित है। इसका प्रारम्भ जाति के अनुसार नायिकाओं के पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी नामक चार भेदों के वर्णन से होता है[६]। इन भेदों का उल्लेख संस्कृत भाषा के किसी भी आचार्य के ग्रन्थ में नहीं उपलब्ध होता। कामशास्त्र-सम्बन्धी अनंगरंग, रतिरहस्य आदि ग्रन्थों में अवश्य इनका वर्णन मिलता है। अतः स्पष्ट है कि केशव

---

१. शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढ़माचरति॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ७६।

२. प्रियं वक्ति पुरोऽन्यत्र विप्रियं कुरुते भृशम्।
निगूढ़मपराधं च शठोऽयं कथितो बुधैः॥
—उ० मणि, पृ० ३८।

३. लाज न गारी मार की छाँड़ दई सब त्रास।
देख्यो दोष न मानहीं, धृष्ट सु केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० २, छं० १४।

४. कृतागा अपि निःशंकस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक् कथितो धृष्टनायकः॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ७४।

५. धृष्टो व्यक्तान्ययुवतिभोगलक्ष्मा विनिर्भयः।
—र० सु०, पृ० १८।

६. प्रथम पद्मिनी चित्रिणी, युवती जाति प्रमान।
बहुरि शंखिनी हस्तिनी, केशवदास बखान॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १।

ने इन भेदों को इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर लिखा है।

पद्मिनी :

केशव के अनुसार पद्मिनी नायिका स्वरूपवती होती है। उसका शरीर सहज-सुगन्धित होता है। उसका प्रेम सुखदायी तथा पुण्यस्वरूप होता है। वह अल्प भोजन करती है और रोष, रति, निद्रा तथा मान की मात्रा भी उसमें थोड़ी ही रहती है। वह लज्जावती तथा बुद्धिमती होती है। उसका हृदय उदार और कोमल होता है। वह हँसमुख होती है और उसका शरीर निर्मल और वर्ण स्वर्ण के सदृश होता है। 'पद्मिनी' नायिका स्वच्छ वस्त्र धारण करती है और उसका मदनमंदिर लोमरहित होता है[1]। केशव के लक्षण की कुछ बातें 'अनंगरंग' से मिलती हैं, जैसे नायिका का स्वरूपवती होना, उसका वर्ण स्वर्ण के सदृश होना, लज्जावती होना, अल्प भोजन और अल्प निद्रा करना तथा स्वच्छ और श्वेत वस्त्रों को पहनने की अभिरुचि आदि[2]।

चित्रिणी :

केशव के विचार से चित्रिणी नायिका की रुचि नृत्य, गीत और कविता में होती है। उसका चित्त स्थिर तथा दृष्टि चंचल होती है। बहिर्रति में उसे प्रेम होता है। मदनजल मात्रा में अधिक होता है। मुख से सुगंध आती है। उसके शरीर तथा मदनमन्दिर पर रोम अत्यन्त ही विरल होते हैं और उसके शरीर की सुगंध सब को भाती है। चित्रिणी

---

१. सहज सुगन्ध स्वरूप शुभ, पुण्य प्रेम सुखदान।
तनु तनु भोजन रोष रति, निद्रा मान बखान॥
सलज सुबुद्धि उदार मृदु, हास वास शुचि अंग।
अमल अलोम अनंगभुव, पद्मिनी हाटक रंग॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० २-३।

२. प्रान्तारक्तकुरंगशावनयना पूर्णेन्दुतुल्यानना
पीनोत्तुङ्गकुचा शिरीषमृदुला स्वल्पाशना दक्षिणा।
फुल्लाम्भोजसुगंधिकामसलिला लज्जावती मानिनी
श्यामा चापि सुवर्णचम्पनिभा देवादिपूजारता॥
उन्निद्राम्बुजकोशतुल्यमदनच्छत्रा मरालस्वना
तन्वी हंसवधूगतिः सुललितं वेषं सदा बिभ्रती॥
मध्यं चापि बलित्रयांकितमसौ शुक्लाम्बराकांक्षिणी
सुग्रीवा शुभनासिकेति गदिता नार्युत्तमा पद्मिनी॥
—अनंगरंग, पृ० २-३, श्लो० ८, ९।

नायिका को चित्रों से अनुराग होता है[1]। केशव के लक्षण में नायिका की दृष्टि का चंचल होना, मुख की सुगंध, शरीर पर रोमों का कम होना, मदनजल का अधिक होना आदि बातों का आधार 'अनंगरंग' है[2]। नृत्य में रुचि तथा बहिर्‌रति में अनुराग होना आदि बातें 'रतिरहस्य' के अनुकूल हैं[3]।

शंखिनी :

केशव के विचार से शंखिनी नायिका कोपशीला और कपट करने में बड़ी प्रवीण होती है। उसका शरीर सजल तथा सलोम होता है। रक्त वर्ण के वस्त्रों को धारण करने एवं नखदान में उसे रुचि होती है। वह निर्लज्ज, निडर तथा अधीर होती है। उसका मदनजल क्षार की-सी सुगंध वाला होता है और वह सुरत में अधिक अनुराग रखती है[4]। केशव द्वारा दिये शंखिनी नायिका के कुछ लक्षण, जैसे उसका कोपशीला, कपटी तथा अधीरा होना, शरीर का तप्त होना, सुरत में नखदान तथा

---

१. नृत्य गीत कविता रुचै, अचल चित्त चलि दृष्ट।
बहिरतिरत अति सुरतिजल, मुख सुगंध की सृष्ट॥
विरल लोम तन मदन-गृह, भावत सकल सुवास।
मित्र चित्रप्रिय चित्रिणी, जानहु केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ५-६।

२. तन्वङ्गी गजगामिनी चपलदृक्संगीतशिल्पान्विता,
नो ह्रस्वा न बृहत्तराथ सुकृशा मध्ये मयूरस्वरा।
पीनश्रोणिपयोधरा सुललिते जंघे वहन्ती कृशे,
कामाम्भोमधुगन्ध्यथौष्ठमपि सा बिम्बोपमं वत्सला॥
कामागारमसान्द्रलोमसहितं मध्ये मृदुः प्रायशो
विभ्राणोल्लसितं च वर्त्तुलमथो रत्यम्बुनार्द्रं सदा।
भृंगी श्यामलकुन्तला च जलजग्रीवोपभोगे रता,
चित्रा शक्तिमती रतेऽल्परुचिका ज्ञेयांगना चित्रिणी॥
—अनंगरंग, पृ० ३, श्लो० १०-११।

३. स्वरवचनविभागा नृत्यगीतादिविज्ञा। रतिरहस्य, श्लो० १४।
तथा : प्रकृतिचपलदृष्टिर्बाह्यसंभोगरक्ता॥ रतिरहस्य, श्लो० १५।

४. कोपशील कोविद कपट, सजल सलोम शरीर।
अरुण वसन नखदान रुचि, निलज निःशंक अधीर॥
क्षारगंधयुत मारजल, तप्त भूर भग होइ।
सुरतारति अति शंखिनी, वरणत कविजन लोइ॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ८, ९।

लाल वस्त्रों के पहनने में रुचि होना आदि 'अनंगरंग'[1] के समान हैं।

हस्तिनी :

केशव के अनुसार हस्तिनी नायिका की अंगुलियाँ, चरण, मुख, अधर और भृकुटी स्थूल होती हैं। उसकी वाणी कटु, चित्त चंचल तथा गति मन्द होती है। उसके स्वेद तथा मदनजल से हाथी के मद की-सी गंध आती है। उसके केश भूरे होते हैं और शरीर पर तीक्ष्ण और अधिक रोम होते हैं[2]। केशव द्वारा बतलाए गए कुछ गुण, यथा नायिका के केशों का भूरा होना, कटु बोल, मंद गति, अधरों का स्थूल होना, मदनजल से हाथी के मद की-सी गन्ध का आना आदि 'अनंगरंग[3]' के अनुकूल हैं।

कर्मानुसार नायिकाएँ :

केशव ने कर्मानुसार नायिकाओं के तीन प्रकार बतलाए हैं, स्वकीया, परकीया और सामान्या[4]।

---

१. दीर्घं बाहुं शिरः कृशं पृथुमथो देहं वहन्ती तथा
पादौ दीर्घतरौ कटिं च बृहतीं स्वल्पस्तनी कोपिनी।
गुह्यं क्षारविगन्धिना स्मरजलेनाल्पेन सान्द्रैः कचै-
रानिम्नं, कुटिलेक्षणा द्रुतगतिः सन्तप्तगात्रा भृशम्॥
सम्भोगे करजक्षतानि बहुशो यच्छत्यनंगाकुला,
न स्तोकं न च भूरि भक्षति सदा प्रायो भवेत् पित्तला।
स्रग्वस्त्राण्यरुणानि वाञ्छति दयाहीना च पैशून्यभृत्
पिंगा दुष्टमनाश्च घर्घरमहारूक्षस्वरा शंखिनी॥
—अनंगरंग, पृ० ३, श्लो० १२-१३।

२. थूल अंगुली चरण मुख, अधर भृकुटी कटु बोल।
मदन-सदन रद कंधरा, मंद चाल चित्त लोल॥
स्वेद मदनजल द्विरदमद, गंधित भूरे केश।
अति तीक्षण बहु लोम तन, भनि हस्तिनि इहि वेश॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ११, १२।

३. स्थूला पिंगलकुन्तला च बहुभुक्क्रूरा त्रपावर्जिता,
गौरांगी कुटिलांगुलीकचरणा, ह्रस्वा नमत्कन्धरा।
विभ्राणेभमदाम्बुगन्धि रतिजं तोयं भृशं मन्दगा,
दुःसाध्या सुरतेति गद्गदरवा स्थूलौष्ठिका हस्तिनी॥
—अनंगरंग, पृ० ४, श्लो० १४।

४. ता नायक की नायका, ग्रन्थनि तीनि बखान।
सुकिया परकीया अवर, सामान्या सुप्रमान॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १४।

धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त आदि नायिका-भेद पर लिखने वाले सभी आचार्य इन भेदों को मानते हैं[१]। केशव ने सामान्या का वर्णन नहीं किया है। उसका कारण है 'रसिकप्रिया' में केवल राधा को नायिका के रूप में देखना[२]। वर्णन तो दूर रहा वे तो उसका नाम तक नहीं लेते[३]।

स्वकीया नायिका :

केशव स्वकीया नायिका उसे कहते हैं जो सम्पत्ति, विपत्ति तथा मरण में भी नायक के साथ मनसा, वाचा तथा कर्मणा नायक से एक जैसा व्यवहार करती है[४]। केशव का यह लक्षण धनंजय, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि किसी भी आचार्य से नहीं मिलता, केवल शिङ्गभूपाल[५] से ही साम्य रखता है।

धनंजय, विश्वनाथ और भानुदत्त के समान केशवदास ने भी स्वकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा (प्रगल्भा) तीन भेद माने हैं[६]।

मुग्धा के भेद :

केशव मुग्धा का लक्षण न देकर भेदों से ही आरम्भ करते हैं। उन्होंने मुग्धा के चार भेद किए हैं, नवलवधू, नवयौवनाभूषिता, नवलअनंगा और लज्जाप्राइरति[७]।

---

१. स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा। —दशरूपक, पृ० ४२।
अथ नायिका त्रिविधा स्वान्या साधारणस्त्रीति।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ६८।
सा च त्रिविधा-स्वीया परकीया सामान्या चेति। —रसमंजरी, पृ० ४।

२. जगनायक की नायका, वरणी केशवदास।
तिनके दरशन रस कहौं, सुनहु प्रछन्न प्रकास॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ७४।

३. और जु तरुणी तीसरी, क्यों वरणौं इहि ठौर।
रस में विरस न बरणिये, कहत रसिक शिरमौर॥
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० ४०।

४. सम्पति विपति जो मरणहूँ, सदा एक अनुहार।
ताको स्वकीया जानिए, मन क्रम वचन विचार॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १५।

५. सम्पत्काले विपत्काले या न मुञ्चति वल्लभम्।
शीलार्जवगुणोपेता सा स्वीया कथिता बुधैः॥
—र० सु०, पृ० २१।

६. मुग्धा मध्या प्रौढ़ गनि, तिनके तीनि विचार।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १६।

७. नवलवधू नवयौवना, नवल अनंगा नाम।
लज्जा लिए जु रति करै, लज्जाप्राइ सुवाम॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १७।

फिर इनके अलग-अलग लक्षण सोदाहरण दिए गए हैं। केशव की दृष्टि में 'नवलवधू' मुग्धा वह होती है जिसके शरीर की द्युति दिन प्रति दिन दूनी बढ़ती है[१]। 'नवयौवना-भूषिता' वह है जो बाल्यावस्था को पार कर यौवनावस्था में प्रवेश कर रही हो[२]। 'नवलअनंगा' वह कहलाती है जो बालकों के सदृश खेलती, बोलती और सविलास हँसती तथा भय दिखलाती है[३]। 'लज्जाप्राइरति' वह है जो लज्जा के साथ सुरति में प्रवृत्त होती है और अपने पति की प्रीति को बढ़ाती है[४]। इन भेदों के अतिरिक्त केशव मुग्धा नायिका के 'शयन', 'सुरति' और 'मान' का भी लक्षण सोदाहरण देते हैं। वे लिखते हैं कि मुग्धा पहले तो नायक के साथ सोती ही नहीं और यदि किसी प्रकार सखी के अनुरोध पर सो भी जाय तो फिर उसके जैसा सुख नहीं मिलता; वह स्वप्न में भी सहर्ष सुरति में प्रवृत्त नहीं होती और यदि छलबल से रति की जाय तो सुख और शोभा की हानि हो जाती है। वह या तो मान करती ही नहीं और यदि करे भी तो उसका मान अज्ञान की नाईं ही उसे डरा कर छुड़ाया जा सकता है[५]।

धनंजय ने मुग्धा के चार भेद किए हैं, नववयसा, नवकामा, रतिवामा और मृदुकोपा[६]। धनंजय ने इन भेदों के लक्षण नहीं दिए हैं, परन्तु लक्षण नामों तथा उदाहरणों से स्पष्ट हो जाते हैं। केशव की 'नवयौवनाभूषिता' और धनंजय की 'नववयसा' एक ही हैं। केशव की 'नवलअनंगा' और धनंजय की 'नवकामा' में केवल

---

१. जासों मुग्धा नववधू, कहत सयाने लोइ।
दिन दिन द्युति दूनी बढ़ै, वरणि कहै कवि लोइ।।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० १८।

२. सो नवयौवनभूषिता, मुग्धा को यह वेश।
बाल दशा निकसै जहाँ, यौवन को परवेश।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० २०।

३. नवल अनंगा होइ सो, मुग्धा केशवदास।
खेले बोले बाल विधि, हँसै त्रसै सविलास।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० २२।

४. मुग्धा लज्जा प्रायरति, बरणत हैं इहि रीति।
करै जु रति अति लाज सों, पतिहि बढ़ावै प्रीति।।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० २४।

५. मुग्धा सोइ रहैं नहीं, पियसंग सुनो सुजान।
जो क्योंहूँ सोवै सखी, सुख नहीं ताहि समान।।
मुग्धा सुरति करै नहीं, सपनेहूँ सुख मान।
छलबल कीने होत है, सुखशोभा की हान।।
मुग्धा मान करै नहीं, करै तो सुनो सुजान।
त्यों डरपाइ छुड़ाइये, ज्यों डरपै अज्ञान।।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० २६, २८ तथा ३०।

६. मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि।
—दशरूपक, पृ० ४३।

नामसाम्य है। केशव की 'लज्जाप्रायरति' तथा 'नवलवधू' का उल्लेख धनंजय ने नहीं किया है।

शिङ्गभूपाल ने धनंजय द्वारा बतलाए हुए उक्त भेदों के अतिरिक्त सव्रीड़-सुरतप्रयत्ना और क्रोधादभाषण रुदती नामक दो और भेदों का उल्लेख किया है[1]। भूपाल के भेदों, नववयसा, नवकामा तथा सव्रीड़सुरतप्रयत्ना के केशव के भेदों नवलवधू, नवलग्रनंगा तथा लज्जाप्रायरति से क्रमशः नाम ही मिलते हैं।

विश्वनाथ ने मुग्धा के पाँच भेद किए हैं, प्रथमावतीर्णयौवना, प्रथमावतीर्ण-मदनविकारा, रतिवामा, मानमृदु और समधिकलज्जावती[2]। विश्वनाथ ने भी इन भेदों के लक्षण नहीं दिए हैं किन्तु लक्षणों का नामों से ही पता चल जाता है। विश्वनाथ की 'प्रथमावतीर्णयौवना' केशव की 'नवयौवनाभूपिता' से पूर्णतया मिलती है। विश्वनाथ की 'प्रथमावतीर्णमदनविकारा' का केशव की 'नवलग्रनंगा' से केवल नाम-साम्य है परन्तु विश्वनाथ के उदाहरण से विदित होता है कि दोनों लक्षण भिन्न समझते हैं। विश्वनाथ की 'समधिकलज्जावती' केशव की 'लज्जाप्रायरति' से लगभग मिलती है। विश्वनाथ के 'रतिवामा' तथा 'मानमृदु' भेदों को तो केशव ने छोड़ दिया है, पर उनके मुग्धा के सुरति और मान के लक्षण विश्वनाथ के भेदों, रतिवामा तथा मानमृदु के अनुकूल हैं। विश्वनाथ ने भी केशव की 'नवलवधू' का उल्लेख नहीं किया है।

भानुदत्त ने मुग्धा के तीन भेद किए हैं, अङ्कुरितयौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा। अङ्कुरितयौवना के फिर दो उपभेद किए गए हैं, अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना[3]। केशव की लज्जाप्राइरति का लक्षण भानुदत्त की नवोढ़ा से अंशतः मिलता है। केशव की नवलवधू और भानुदत्त की नवोढ़ा में कोई साम्य नहीं है।

मध्या के भेद :

केशव ने मध्या नायिका के चार भेद बतलाए हैं, आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना,

---

१. मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि ॥९६॥
यतते रतचेष्टायां गूढं लज्जामनोहरम्।
कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती ॥९७॥
अप्रियं वा प्रियं वापि न किञ्चिदपि भाषते।
—र० स०, पृ० २२।

२. प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १०१।

३. तत्राङ्कुरितयौवना मुग्धा। सा च अज्ञातयौवना ज्ञातयौवना च। सैव क्रमशो लज्जाभयपराधीनरतिर्नवोढ़ा। सैव क्रमशः सप्रश्रया विश्रब्धनवोढ़ा।
—रसमंजरी, पृ० ७-८।

प्रादुर्भूतमनोभवा और विचित्रसुरता[1]। केशव की दृष्टि में पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त, भाग्य एवं सौभाग्य से पूर्ण, नायक की मनभावती नायिका, 'आरूढ़यौवना' कहलाती है[2]। 'प्रगल्भवचना' वह होती है जो वचनों द्वारा उपालम्भ देती तथा भय दिखलाती है[3]। 'प्रादुर्भूतमनोभवा' वह होती है जिसका तन और मन काम कलाओं से भूषित होता है[4]। 'विचित्रसुरता' नायिका उसे कहते हैं जो सुरति में विचित्र चेष्टाएं करती हो, जिसका वर्णन करना कवियों के लिए कठिन हो और जिसकी चर्चा सुनने में सुहावनी लगे[5]।

दशरूपक में धनंजय ने मध्या के दो भेद किए हैं, उद्यद्यौवनानङ्गा और मोहान्तरसुरतक्षमा[6]। उद्यद्यौवनाङ्गा केशव की आरूढ़यौवना से मिलती है। केशव के प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विचित्रसुरता भेदों का धनंजय ने उल्लेख नहीं किया है। भानुदत्त ने मध्या का कोई भेद नहीं किया है। विश्वनाथ ने मध्या नायिका के पाँच भेदों का उल्लेख किया है, विचित्रसुरता, प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना, ईषत्प्रगल्भवचना तथा मध्यमव्रीड़िता[7]।

केशव विश्वनाथ के 'मध्यमव्रीड़िता' नाम के भेद को छोड़कर शेष चार भेदों को मानते हैं। विश्वनाथ की प्ररूढ़स्मरा, प्ररूढ़यौवना और ईषत्प्रगल्भवचना का नाम ही केशव ने क्रमशः प्रादुर्भूतमनोभवा, आरूढ़यौवना और प्रगल्भवचना रख लिया है। केशव और विश्वनाथ की विचित्रसुरता एक ही हैं। यहाँ तक कि दोनों के उदाहरणों का भाव भी मिलता है। विश्वनाथ का उदाहरण है—

---

१. मध्य रूढ़यौवना, प्रगलभवचना जान।
प्रादुर्भूतमनोभवा, सुरतिविचित्रा मान॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ३२।

२. मध्या आरूढ़यौवना, पूरण यौवनवंत।
भाग सोहाग भरी सदा, भावत है मन कंत॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ३३।

३. प्रगल्भवचना जान तिहि, वरणौं केशवदास।
वचनन माहँ उराहनो, देइ दिखावै त्रास॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ३५।

४. प्रादुर्भूतमनोभवा, मध्या कहैं बखान।
तन मन भूषित शोभियै, केशव काम कलान॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ३७।

५. अतिविचित्रसुरता सु तौ, जाकी सुरत विचित्र।
बरणत कवि कुल को कठिन, सुनत सुहावै मित्र॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ३९।

६. मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तरसुरतक्षमा। —दशरूपक, पृ० ३४।

७. मध्या विचित्रसुरता प्ररूढ़स्मरयौवना।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीड़िता मता॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं०, १०२।

कान्ते तथा कथमपि प्रथितं मृगाक्ष्या ।
चातुर्य्यमुद्धतमनोभवया रतेषु ।
तत्कूजितान्यनुवदद्‌भिरनेकवारं ।
शिष्यायितं गृहकपोतशतैर्यथाऽस्याः[1] ॥

"सुरति के अवसर पर प्रवृद्धकामा मृगाक्षी ने इस प्रकार के अपूर्व कौशल का प्रदर्शन किया कि अनेक बार उसके रतिकूजित का अनुकरण करते हुए घर के (पालतू) कबूतर उसके शिष्य से जान पड़ने लगे।" केशव की निम्नलिखित पंक्तियों में यही भाव प्रतिध्वनित हो रहा है—

कूजि कूजि उठैं रति कूजितनि सुनि खग ।
सोई तौ सूरत सखि और विवहार है[2] ॥

शिङ्गभूपाल मध्या के केवल तीन भेद ही बतलाते हैं समानलज्जा मदना, प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी और मोहान्तसुरतक्षमा[3] ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव मध्या के विभाजन के लिए विश्वनाथ के ही ऋणी प्रतीत होते हैं।

सुरतिविचित्रा के प्रसंग में रति का वर्णन करते हुए केशव ने बहिर्‌रति और अन्तर्‌रति दो भेद किए हैं, जिनमें से प्रत्येक के सात-सात प्रकार स्वीकार किये हैं[4] । ये भेद कामसूत्र के आलिंगन-विचार, चुम्बन-विकल्प, नखरदन-जाति, चित्ररत आदि प्रकरणों के आधार पर लिखे गए जान पड़ते हैं। इसी प्रसंग में केशव ने १६ शृंगारों, जिनका उल्लेख 'कविप्रिया' के विवेचन में किया जा चुका है, तथा सुरतान्त का भी वर्णन किया है। सुरतान्त वर्णन पर भी कामशास्त्र का ही प्रभाव परिलक्षित होता है।

मध्या के धीरादि अन्य भेद :

धैर्य गुण के आधार पर केशव ने मध्या नायिका के तीन और भेद किए हैं, धीरा, अधीरा और धीराधीरा[5] । केशव के अनुसार धीरा नायिका, नायक के प्रति

---

१. सा० द०, परि० ३, प्र० १२१ ।
२. र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४० ।
३. समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी ।
मध्या कामयते कान्तं मोहान्तरसुरतक्षमा ॥
—र० सु०, पृ० २३ ।
४. आलिगन चुम्बन परस, मर्दन नखरददान ।
अधरपान सो जानिये, बहिरति सात सुजान ॥
थिति तिर्यक सनमुख विमुख, अध ऊरध उत्तान ।
सात अंतरति समुझिये, केशो सकल सुजान ॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४१-४२ ।
५. सिगरी मध्या तीन विधि, धीरा और अधीर ।
धीराधीरा तीसरी, वरणत सुकवि अमीर ॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४६

वक्रोक्ति का प्रयोग करती है, अधीरा विषम वचन बोलती है तथा धीराधीरा अपने प्रिय को उपालम्भ देती है[1]।

नायिका भेद पर लिखने वाले सभी संस्कृत के आचार्यों ने मध्या के इन भेदों को माना है। केशव की धीरा तथा अधीरा के लक्षणों का धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ से साम्य है[2]। केशव ने ये भेद धनंजय से लिए हैं और विश्वनाथ का आधार भी दशरूपक ही है। परन्तु केशव का धीराधीरा का लक्षण धनंजय, विश्वनाथ, शिङ्गभूपाल अथवा भानुदत्त किसी से भी साम्य नहीं रखता।

प्रौढ़ा (प्रगल्भा) के भेद :

केशवदास ने प्रगल्भा नायिका के समस्तरसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रामति नायिका और लब्धापति नाम के चार भेद किए हैं[3]। जिसे प्रीति में जो रस अच्छा लगे उसी रस की खान बन जाय उसे केशव 'समस्तरसकोविदा' कहते हैं[4]। केशव का यह लक्षण अस्पष्ट है। उदाहरण से भी लक्षण का ठीक-ठीक बोध नहीं होता। केशव के विचार से 'विचित्रविभ्रमा' वह है जिसके शरीर की द्युति से आकर्षित होकर दूती उसके प्रिय से उसका मिलाप करा दे। 'अक्रामति नायिका' वह होती है जो मन, वचन और कर्म से अपने प्रिय को वश में कर ले तथा 'लब्धापति'

---

१. धीरा बोलै वक्र विधि, बाणी विषम अधीर।
पिय को देइ उराहनो, सो धीरा न अधीर ॥

—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४७।

२. धीरा सोत्प्रासवक्रोक्त्या मध्या साश्रु कृतागसम्।
खेदयेद्दयितं कोपादधीरा परुषाक्षरम्।

—दशरूपक, श्लो० १७, पृ० ४५।

प्रियं सोत्प्रासवक्रोक्त्या दहेद्रुषा।
धीरा तु रुदितैरधीरा परुषोक्तिभिः ॥

—सा० द०, परि० ३, का० सं० १०५।

धीरा तु वक्ति वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागसं प्रियम्।
अधीरा परुषैर्वाक्यैः खेदयेत् वल्लभं रुषा ॥

—र० सु०, पृ० २४।

३. सुनि समस्तरसकोविदा, चित्त विभ्रमा जाति।
अति अक्रामति नायका लब्धापति शुभ भाँति ॥

—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ५१।

४. सो समस्तरसकोविदा, कोविद कहत बखान।
जो रस भावै प्रीति में, ताही रस की खान ॥

—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ५२।

नायिका वह है जो पति ही के सदृश पति-कुल के अन्य व्यक्तियों का आदर करे[१]।

धनंजय ने प्रगल्भा (प्रौढ़ा) के केवल दो ही भेद बतलाए हैं, यौवनान्धा और स्मरोन्मत्ता। धनंजय के अनुसार 'यौवनान्धा' वह है जो रतिकेलि में प्रिय के शरीर में समा सी जाती है तथा 'स्मरोन्मत्ता' वह है जो रति के प्रारम्भ में ही आनन्द के कारण मूछित हो जाती है[२]। शिङ्गभूपाल की सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता तथा रूढ़मन्मथा के लक्षण[३] धनंजय की क्रमशः यौवनान्धा तथा स्मरोन्मत्ता से मिलते हैं। भानुदत्त की रतिप्रीता और आनन्दात्सम्मोहा[४] के लक्षणों का भाव भी धनंजय तथा भूपाल से मिलता है। विश्वनाथ ने प्रगल्भा के छः भेद किए हैं, स्मरान्धा, गाढ़तारुण्या, समस्तरतकोविदा, भावोन्मत्ता, दरव्रीड़ा तथा आक्रान्त नायिका[५]—विश्वनाथ ने लक्षण नहीं दिए हैं, पर लक्षण उदाहरणों से ज्ञात हो जाते हैं। केशव की समस्तरसकोविदा तथा अक्रामति नायिका का विश्वनाथ की क्रमशः समस्तरतकोविदा तथा आक्रान्त-नायिका से नाम-साम्य है।

प्रौढ़ा (प्रगल्भा) के धीरादि अन्य भेद :

धैर्य गुण के आधार पर केशव ने प्रौढ़ा के भी धनंजय, शिङ्गभूपाल, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों के समान ही तीन भेद किए हैं, धीरा, अधीरा, धीराधीरा। केशव के अनुसार धीरा नायिका वह है जो आदर ही में अनादर करती है, प्रकट-रूप

---

१. अतिविचित्र विभ्रम सदा, प्रौढ़ा प्रगट बखान।
जाकी दीपति दूतिका, पियहि मिलावै आन॥
सो अक्रामति नायिका, प्रौढ़ा करिबे चित्त।
मनसा बाचा कर्मणा, वश कीन्हें जेहि मित॥
सो लब्धापति जानिये, केशव प्रगट प्रमान।
कानि करै पतिकुल सबै, प्रभुता प्रभुहि समान॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ५४, ५६ तथा ५८।

२. यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयितांगके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना॥
—दशरूपक, श्लो० १८, पृ० ४५।

३. सम्पूर्णयौवनोन्मत्ता प्रगल्भा रूढ़मन्मथा।
दयितांगे विलीनेव यतते रतिकेलिषु॥ १०१॥
रतिप्रारम्भमात्रेऽपि गच्छत्यानन्दमूर्छनाम्॥
—र० सु०, पृ० २५

४. अस्याश्चेष्टा रतिप्रीतिरानन्दात्सम्मोहः।
—रसमंजरी, पृ० २२।

५. स्मरान्धा गाढ़तारुण्या समस्तरत कोविदा।
भावोन्मत्ता दरव्रीड़ा प्रगल्भाऽऽक्रान्तनायिका॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १०३।

में हित दिखलाती तथा अपनी रोषाकृति को छिपाती है[1]। धीराधीरा मन में पति से प्रेम होते हुए भी मुँह से रूखी बातें करती है[2]। अधीरा प्रिय के घोर अपराध को समझते हुए हितपूर्वक उसका हित नहीं करती[3]।

विश्वनाथ के धीरा तथा धीराधीरा भेदों के लक्षण क्रमशः इस प्रकार हैं—

प्रगल्भा यदि धीरा स्याच्छन्नकोपाकृतिस्तदा।
उदास्ते सुरते तत्र दर्शयन्त्यादरान् बहिः[4]॥

'(प्रगल्भा) धीरा कोपाकृति को छिपा कर ऊपर से आदर-सत्कार दिखलाती है परन्तु सुरति में उदासीन रहती है।'

तथा : **धीराऽधीरा तु सोल्लुण्ठभाषितैः खेदयत्यमुम्[5]॥**

'धीराधीरा व्यंगपूर्ण वचनों से प्रिय को दुःख पहुँचाती है।'

विश्वनाथ के उपर्युक्त लक्षण केशव के इन्हीं भेदों के लक्षण से मिलते हैं। विश्वनाथ की अधीरा (जो तर्जन-ताड़न आदि का प्रयोग करती है[6]) का केशव की 'अधीरा' से कोई साम्य नहीं है। धनंजय[7], शिङ्गभूपाल[8] और भानुदत्त[9] की भी अधीरा का लक्षण केशव से नहीं मिलता। केशव ने धनंजय, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि आचार्यों द्वारा दिए प्रौढ़ा के ज्येष्ठा और कनिष्ठा उपभेदों को छोड़ दिया है।

परकीया नायिका :

केशव की परकीया का लक्षण कुछ विलक्षणता लिये हुए है। केशव परकीया को पर-पुरुष-रत न कह कर परब्रह्म परपुरुष की प्रिया मानते हैं[10]। उन्होंने परकीया

१. आदर मांझ अनादरै, प्रगट करै हित होइ।
आकृति आप दुरावई, प्रौढ़ा धीरा दोइ॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६०।

२. मुख रूखी बातें कहै, जिय में पिय की भूख।
धीराधीरा जानियें जैसी मीठी ऊष॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६४।

३. पति को अति अपराधी गनि, हित न करै हित मानि।
कहत अधीरा प्रौढ़ तिय, केशवदास बखानि॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६५।

४. सा० द०, परि० ३, का० सं० १०६।

५. सा० द०, परि० ३, का० सं० १०७।

६. तर्जयेत्ताड़येदन्या। —सा० द०, परि० ३, का० सं० १०८।

७. इतरा त्वधीरप्रगल्भा कुपिता सती संतर्ज्य ताड़यति।
—दशरूपक, पृ० ४६।

८. सन्तर्ज्य निष्ठुरं रोषादधीरा ताड़येत् प्रियम् ॥१०३॥
—र० सु०, पृ० २६।

९. अधीरायास्तर्जनताडनादि। —रसमंजरी, पृ० २६।

१०. सब तैं पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होइ।
परकीया तासों कहैं, परम पुराने लोइ॥
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६७।

के दो भेद किए हैं, ऊढ़ा (विवाहिता) और अनूढ़ा (अविवाहिता)[1]।

संस्कृत के सभी आचार्यों ने इन भेदों का निरूपण किया है। केशव ने परकीया के उपभेदों की ओर रुचि नहीं दिखाई है। धनंजय, भूपाल और विश्वनाथ के समान ही केशव भी परकीया के दो भेदों के आगे उपभेदों में नहीं गए हैं।

चार प्रकार के दर्शन :

केशव ने 'रसिकप्रिया' के चौथे प्रकाश में चार प्रकार के 'दर्शन' का वर्णन किया है, साक्षात् दर्शन, चित्र-दर्शन, स्वप्न-दर्शन तथा श्रवण-दर्शन[2]। केशव ने 'श्रवण' को भी 'दर्शन' में सम्मिलित कर लिया है, जब कि धनंजय ने दर्शन के पांच भेद करते हुए उसे 'श्रवण' से भिन्न माना है। वे लिखते हैं कि 'दर्शन' इन्द्रजाल के द्वारा, साक्षात्, चित्र, छाया, अथवा स्वप्न में हो सकता है और 'श्रवण' सखी अथवा बन्दी आदि के गुण-कीर्तन द्वारा अथवा गीत द्वारा[3]। विश्वनाथ ने विप्रलम्भ शृंगार के भेद 'पूर्वराग' के प्रसंग में लिखा है कि श्रवण, दूत, बन्दी अथवा सखी के मुख से हो सकता है और 'दर्शन' इन्द्रजाल के द्वारा, साक्षात्, चित्र अथवा स्वप्न में[4]। छाया-दर्शन को छोड़कर शेष सभी बातें विश्वनाथ ने ज्यों की त्यों धनंजय से ली हैं। शिङ्गभूपाल ने भी पूर्वानुराग का वर्णन करते हुए श्रवण, प्रत्यक्ष-दर्शन, चित्र-दर्शन और स्वप्न-दर्शन का उल्लेख किया है[5]। केशव ने शिङ्गभूपाल के ही अनुकरण पर इन्हीं चार का वर्णन किया है। धनंजय और विश्वनाथ के इन्द्रजाल-सम्बन्धी दर्शन को छोड़ दिया है। भानुदत्त और रूपगोस्वामी दोनों ने दर्शन के तीन ही भेद किए हैं, स्वप्न-दर्शन, चित्र-दर्शन और साक्षात् दर्शन[6]। रूपगोस्वामी ने 'दर्शन' को 'श्रवण' से पृथक् माना है।

---

१. परकीया द्वै भांति पुनि, ऊढ़ा एक अनूढ़।
जिन्हें देखि बश होत हैं, सन्तत मूढ़ अमूढ़॥
ऊढ़ा होत विवाहिता, अनव्याहिता अनूढ़।
—र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६८-६६ (प्रथमार्द्ध)

२. ये दोऊ दरशें दरश होंहि, सकाम शरीर।
दरशन चारि प्रकार को, वरणत हैं मतिधीर॥
एक जु नीको देखिये, दूजो दरशन चित्र।
तीजो सपनो जानियें, चौथो श्रवण सुमित्र॥
—र० प्रि०, प्र० ४, छं० १-२।

३. साक्षात्प्रतिकृतिस्वप्नच्छायामायासु दर्शनम्।
श्रुतिर्व्याजात्सखीगीतमागधादिगुणस्तुतेः॥
—दशरूपक, प्र० ४, श्लो० ५४, पृ० १०१।

४. श्रवणं तु भवेत्तत्र दूतवन्दिसखीमुखात्।
इन्द्रजाले च चित्रे च साक्षात्स्वप्ने च दर्शनम्॥
—सा० द०, परि० ३, पृ० २१८।

५. रसार्णवसुधाकर, पृ० ७६।

६. स्वप्नचित्रसाक्षाद्भेदेन दर्शनं त्रिधा। —रसमंजरी, पृ० २१०।
साक्षात्कृष्णस्य चित्रे च स्यात्स्वप्नादौ च दर्शनम्।
—उ० मणि०, पृ० ५०८।

वास्तव में 'श्रवण' को 'दर्शन' के अन्तर्गत लेना नहीं चाहिए। केशव ने प्रत्येक प्रकार के 'दर्शन' के लक्षण[1] भी दिए हैं, जो संस्कृत के किसी आचार्य ने नहीं दिये।

दम्पति-चेष्टा-वर्णन :

'रसिकप्रिया' का पाँचवाँ प्रकाश दम्पति-चेष्टा-वर्णन से प्रारम्भ होता है। इसके बाद नायक-नायिकाओं के स्वयंदूतत्व और प्रथम-मिलन-स्थानों का भी विवरण दिया गया है। सखी[2] नायक-नायिका की दशा को एक-दूसरे पर प्रकट करने में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। कभी तो सखी नायिका के मन की बात को उसकी चेष्टाओं से स्वयं भाँप लेती है और उसकी दशा को नायक से कह सुनाती है और कभी नायिका स्वयं व्याकुल होकर प्रेमवश सखी से निवेदन कर देती है[3]। नायिका की चेष्टाओं का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं कि जब नायक किसी दूसरी ओर देखता है तब वह उसकी ओर निःशंक होकर देखती है। जब वह उसकी ओर देखने लगता है तो उस समय वह अपनी सखी को अंक से लगा लेती है[4]। इसी प्रकार कभी वह कान खुजाती है, कभी आलस्य से अंगड़ाई लेने लगती है और कभी सविलास बार-बार जमुहाई लेती है। कभी हँसती है और सखी से बातें करने लगती है। इस प्रकार किसी बहाने से

---

१. नींद भूख द्युति देह की, गई सुनतहीं जाहि।
को जाने ह्वै है कहा, केशव देखें ताहि॥
प्रकट काम कोक कल्पतरु, कहि न सकत मति मूढ़।
चित्रहु में हरि मित्र की, अति अद्भुत गति गूढ़॥
केशव दर्शन स्वप्न को, सदा दुरोइ होय।
कबहूँ प्रकट न देखिये, यह जानत सब कोय॥
शील रूप गुण समुझि कैं, सखी सुनावै आनि।
केशव ताको कहत हैं, दरशन श्रवण बखानि॥
—र० प्रि०, प्र० ४, छं० ४, १०, १६ और २०।

२. केशव ने सखी और दूती में कोई अन्तर नहीं रखा है। यों तो सखी भी एक दूती हो सकती है, परन्तु दोनों के कार्य भिन्न हैं। भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में दोनों के कार्यों का इस प्रकार उल्लेख किया है :
अस्या (सख्याः) मण्डनोपालम्भशिक्षापरिहासप्रभृतीनि कर्माणि।
—रसमंजरी, पृ० १६२।
तस्याः (दूत्याः) सङ्घट्टनविरहनिवेदनादीनि कर्माणि।
—रसमंजरी, पृ० १६८।

३. तिय के चित्त की जान सखि, पिय सों कहै सुनाय।
कहै सखी सों प्रीति में, आपुन ते अकुलाय॥
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० १।

४. जब चितवै पिय अनतहूँ, तब चितवै निरशंक।
जान बिलोकत आपुसों, अलिहि लगावै अंक॥
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० ५।

नायक को अपने अंग दिखलाती है[१] ।

इसी प्रकार नायक भी अपना प्रेम व्यक्त करता है। नायिका की अनुराग प्रगट करने वाली चेष्टाओं का वर्णन साहित्यदर्पण, कामसूत्र तथा अनंगरंग नामक ग्रन्थों में किया गया है। केशव ने जिन-जिन चेष्टाओं का निरूपण किया है, वे सभी इन ग्रन्थों में उपलब्ध हो जाती हैं। परन्तु इनमें 'रसिकप्रिया' की अपेक्षा अधिक चेष्टाओं का वर्णन किया गया है।

स्वयंदूतत्व-वर्णन :

चेष्टावर्णन के अनन्तर नायक-नायिका के स्वयंदूतत्व का वर्णन किया गया है। केशव लिखते हैं कि जब किसी प्रकार से भी नायक-नायिका का मिलन नहीं हो पाता तो दोनों स्वयं ही दूतत्व करते हैं[२] ।

भरत, धनंजय, भोज, शिङ्गभूपाल तथा भानुदत्त किसी ने स्वयंदूतत्व का कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, विश्वनाथ ने दूतियों का वर्णन करते हुए स्वयंदूतत्व का भी उदाहरण दिया है[३] । संभव है केशव ने स्वयंदूतत्व का वर्णन विश्वनाथ के ही अनुकरण पर किया हो।

प्रथम-मिलन-स्थान-वर्णन :

प्रथम-मिलन-स्थानों के उल्लेख के साथ पाँचवाँ प्रकाश समाप्त होता है। केशव ने जनी (दासी), सखी तथा धाय के अथवा किसी सूने घर में, भय, उत्सव अथवा व्याधि के बहाने तथा निमंत्रण के अवसर पर अथवा वनविहार में नायक-नायिका के प्रथम-मिलन का वर्णन किया है[४] । भय, उत्सव अथवा व्याधि के बहाने

---

१. कबहूँ श्रुति कंडुन करै, आरस सों ऐंडाय।
केशवदास विलास सों, बार बार जमुहाय ॥
झूठेऊ हँसि हँसि उठै, कहै सखी सों बात।
ऐसे मिस ही मिस प्रिया, पियहि दिखावै गात ॥
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० ६-७ ।

२. जो क्योंहूँ न मिलै कहूँ, केशव दोऊ ईठ।
तो तब अपने आप ही, बुधिबल करत बसीठ ॥
र० प्रि०, प्र० ५, छं० १३ ।

३. सा० द०, पृ० १७६ ।

४. जनी सहेली धाइ घर, सूने घरघनि संचार।
अति भय उत्सव व्याधि मिस, न्यौतो सुबनबिहार ॥
इनहीं ठौरन होत है, प्रथम मिलन संसार।
केशव राजा रंक को, रचि राखो करतार ॥
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० २५, २६ ।

केशव ने निशि-मिलन तथा जलविहार-मिलन का और उल्लेख किया है।
—र० प्रि०, प्र० ५, छं० ३१ और ३७।

तथा निमंत्रण में, नायक-नायिका का मिलन विभिन्न मानसिक स्थितियों एवं अवसरों का मिलन है, अतः इन्हें मिलन-स्थानों में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। भरत, धनंजय, भोज तथा शिङ्गभूपाल ने मिलन-स्थानों का उल्लेख नहीं किया है। विश्वनाथ ने अवश्य अभिसारिका नायिका के प्रसंग में 'अभिसार' (मिलन) स्थानों का विवरण दिया है। वे खेत, गृहोद्यान, भग्न देवालय, दूतीगृह, बन, पुष्पोद्यान, श्मशान, नदी आदि का तट तथा तिमिराच्छन्न कोई स्थल आदि स्थानों का निर्देश करते हैं[1]। परन्तु केशव द्वारा निर्दिष्ट दो-एक स्थान ही विश्वनाथ से मिलते हैं, शेष भिन्न हैं। कामसूत्र में उल्लिखित समागम-स्थानों[2] का, विश्वनाथ द्वारा बतलाए स्थानों की अपेक्षा केशव से अधिक साम्य है।

रस के अवयव—भावादि :

भाव :

'रसिकप्रिया' के छठे प्रकाश में केशव ने भावों तथा हावों का लक्षण बड़ी स्वतंत्रता के साथ किया है। मुख, नेत्र तथा वचनों से जो मन की बात प्रगट होती है वही भाव है[3]। वस्तुतः यह 'भाव' का लक्षण न होकर अनुभाव का ही लक्षण सा बन गया है। किसी भी संस्कृत के आचार्य ने 'भाव' का ऐसा लक्षण नहीं दिया है। केशव भावों के पाँच प्रकार स्वीकार करते हैं, विभाव, अनुभाव, स्थायीभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी[4]।

भरतादि सभी आचार्य 'सात्विक' को 'अनुभाव' के ही अन्तर्गत स्वीकार करते हैं।

---

१. क्षेत्रं वाटी भग्नदेवालयो दूतीगृहं वनम्।
मालयञ्च श्मशानञ्च नद्यादीनां तटी तथा॥
एवं कृताऽभिसाराणां पुंश्चलीनां विनोदने।
स्थानन्यष्टौ तथा ध्वान्तछन्ने कुत्रचिदाश्रयः॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १२०।

२. स (समागमः) तु देवताभिगमने यात्रायामुद्यानक्रीड़ायां जलावतरणे विवाहे यज्ञव्यसनोत्सवेष्वग्न्युत्पाते चौरविभ्रमे जनपदस्य चक्रारोहणे प्रेक्षाव्यापारेषु तेषु तेषु च कार्येष्विति बाभ्रवीयाः।
—कामसूत्र (भाग २), अधिकरण ५, अ० ४, पृ० ८२५।
सखीभिक्षुकीक्षपणिकातापसीभवनेषु सुखोपाय इति गोणिकापुत्रः।
—कामसूत्र (भाग २). अधिकरण ५, अ० ४, पृ० ८२६।

३. आनन लोचन वचन मग, प्रगटत मन की बात।
ताहीं सो सब कहत हैं, भाव कविन के तात॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १।

४. भाव सु पाँच प्रकार को सुनु विभाव अनुभाव।
अस्थाई सात्विक कहैं, व्यभिचारी कविराव॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ६।

विभाव :

केशव के अनुसार विभाव वे होते हैं जिनसे संसार में अनायास ही अनेक रस प्रकट होते हैं[1]। विभाव के दो प्रकार होते हैं, आलम्बन और उद्दीपन[2]।

सभी संस्कृत के आचार्यों ने केशव द्वारा बतलाए 'विभाव' के इन भेदों को माना है। रस 'अतन' है, वह जिसका सहारा लेता है उसे आलम्बन और जिससे उद्दीप्त होता है उसे 'उद्दीपन' विभाव कहते हैं[3]। केशव का यह लक्षण अपने ही ढंग का है। किन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर केशव के आलम्बन तथा उद्दीपन विभाव के लक्षणों का वही भाव निकलता है जो विश्वनाथ के लक्षणों[4] का है। विश्वनाथ के 'विभाव' के सामान्य लक्षण का भी भाव केशव से मिलता है[5]। भानुदत्त के विभाव के लक्षणों का भी यही भाव है[6]।

केशव ने आलम्बनों के अन्तर्गत इन वस्तुओं का उल्लेख किया है—युवा नायक-नायिका, रूप, जाति और लक्षणयुक्त सखियाँ, कोकिला की कूक, वसन्त ऋतु, फूल, फल, दल, भ्रमर-गुंजार, उपवन, जलचरयुक्त सरोवर, निर्मल कमल, चातक, मोरों का शब्द, विद्युत्, सजल बादल, आकाश, रमणीय सेज, दीपक, सुगन्धित गृह, पानचर्वण,

---

१. जिनते जगत अनेक रस, प्रकट होत अनयास।
तिनसों विमति विभाव कहि, वर्णत केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३।

२. सो विभाव दो भाँति के, केशवराय बखान।
आलंबन इक दूसरो, उद्दीपन मन आन॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४।

३. जिन्हें अतन अवलम्बई, ते आलंबन जान।
जिनते दीपति होत है, ते उद्दीप बखान॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५।

४. आलम्बनो नायिकादिस्तमालम्ब्य रसोद्गमात्।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ६५।
उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
—सा० द०, परि० ३, का० सं०, १६४।

५. रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः काव्यनाट्ययोः।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ६३।

६. विशेषेण भावयन्त्युत्पादयन्ति ये रसांस्ते विभावाः। ते च द्विविधाः। आलम्बनविभावा उद्दीपनविभावाश्चेति। यमालम्ब्य रस उत्पद्यते स आलम्बनविभावः। यो रसमुद्दीपयति स उद्दीपनविभावः॥
—रसतरंगिणी, तरंग २, पृ० ३१-३२।

सुन्दर वेशभूषा, नृत्य तथा वीणादि वादन[1]।

वस्तुतः ये सभी वस्तुएँ आलम्बन न होकर उद्दीपन हैं। भरत ने शृंगाररस के उद्दीपन-विभावों के अन्तर्गत ऋतु, माला, अनुलेप आदि अलंकार, प्रियजन, गान, काव्य, उपवन-विहार आदि वस्तुओं को गिनाया[2] है। केशव द्वारा बतलाई हुई प्रियजन, उपवन, ऋतु आदि वस्तुएँ ही भरत से मिलती हैं, शेष नहीं मिलतीं। भानुदत्त ने 'रसतरंगिणी' में भरत के इसी श्लोक को उद्धृत करके यह और लिख दिया है कि चन्द्रमा और चन्दन आदि को भी उद्दीपन-विभावों के अन्तर्गत समझ लेना चाहिए[3]। भानुदत्त की ये वस्तुएँ भी केशव से नहीं मिलतीं। विश्वनाथ ने आलम्बन की चेष्टा आदि तथा देशकाल आदि को उद्दीपन-विभावों में गिनाया है। चेष्टा आदि में 'आदि' से उनका अभिप्राय रूप, आभूषण से है और देशकाल आदि में 'आदि' से वे चन्द्रमा, चन्दन, कोकिला का आलाप, भ्रमरों की गुंजार समझते हैं[4]। इस प्रकार विश्वनाथ की कोकिला की आलाप, भ्रमर-गुंजार आदि वस्तुएँ ही केशव से मिलती हैं, शेष भिन्न हैं। भोज ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। हाँ, शिङ्गभूपाल ने अवश्य इनका सविस्तार वर्णन किया है। उन्होंने उद्दीपन के चार प्रकार माने हैं, नायक-नायिका के गुण, चेष्टा, अलंकृति और तटस्थ उद्दीपन[5]। गुणों के अन्तर्गत भूपाल ने यौवन, रूपलावण्य, सौन्दर्य, अभिरूपता, मार्दव तथा सौकुमार्य्य को गिनाया है। अलंकृति चार प्रकार की मानी है, वास (वस्त्र), आभूषण, (पुष्प) माला, (चन्दन आदि का) अनुलेप और तटस्थ के अन्तर्गत चन्द्रिका, धारागृह, चन्द्रोदय, कोकिला का आलाप, मन्दपवन, भ्रमर, लतामण्डप, भूगेह, बावड़ी, मेघों का गर्जन, संगीत,

---

१. दंपति जोवन रूप जाति लक्षण युत सखिजन।
कोकिल कलित वसंत फूलि फल दल अलि उपवन॥
जलयुत जलचर अमल कमल कमला कमलाकर।
चातक मोर सुशब्द तड़ित घन अंबुद अंबर॥
शुभ सेज दीप सौगन्धगृह पान खान परिधान मनि।
नव नृत्य-भेद वीणादि सब आलंबन केशव बरनि॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ६।

२. ऋतुमाल्यालंकारैः प्रियजनगान्धर्वकाव्यसेवाभिः।
उपवनगमनविहारैः शृंगाररसः समुद्भवति॥
—ना० शा०, अ० ६, पृ० ६६।

३. चन्द्रचन्दनादय ऊहनीयाः। —रसतरंगिणी, तरंग २, पृ० २२।

४. आलम्बनस्य चेष्टाद्या देशकालादयस्तथा। १६५
(चेष्टाद्या इति आद्यशब्दाद्रूपभूषणादयः। कालादीत्यादिशब्दात्
चन्द्रचन्दनकोकिलालापभ्रमरझंकारादयः। —सा० द०, पृ० १७७।

५. उद्दीपनं चतुर्धा स्यादालम्बनसमाश्रयम्।
गुणचेष्टालंकृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः॥
—र० सु०, पृ० ३८, श्लो० १६२।

क्रीड़ा-पर्वत, सरित् आदि वस्तुएँ बतलाई हैं[1]। केशव द्वारा आलंबन के अन्तर्गत बतलाई हुई अधिकांश वस्तुएँ भूपाल के उद्दीपन के भेदों, गुण, अलंकृति तथा तटस्थ उद्दीपन के अन्तर्गत निर्दिष्ट वस्तुओं से मिलती हैं। केशव ने उद्दीपन के अन्तर्गत केवल अवलोकन (नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर निहारना), आलाप, आलिंगन, नखदान, रददान, चुम्बन, मर्दन और स्पर्श को बतलाया है[2]। ये वस्तुएं भूपाल के उद्दीपन के भेद 'चेष्टा' के अन्तर्गत आ जाती हैं।

अनुभाव :

आलम्बन और उद्दीपन के जो अनुकरण हैं, उन्हें केशव 'अनुभाव' कहते हैं[3]। केशवदास का यह लक्षण स्पष्ट नहीं है। उन्होंने इसका उदाहरण भी नहीं दिया है जिससे कुछ पता चल सकता। यह लक्षण किसी भी संस्कृत के आचार्य से नहीं मिलता।

स्थायी भाव :

केशव ने स्थायीभावों के केवल नाम ही गिनाए हैं, उनका लक्षण नहीं दिया है। वे आठ स्थायी भाव मानते हैं, रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, निन्दा तथा विस्मय[4]।

---

१. यौवनं रूपलावण्ये सौन्दर्यमभिरूपता।
मार्दवं सौकुमार्यं चेत्यालम्बनगता गुणाः ॥ १६३ ॥

—र० सु०, पृ० ३८।

चतुर्धालंकृतिर्वासो भूषामाल्यानुलेपनैः। —र० सु०, पृ० ४४।
तटस्थाश्चन्द्रिका धारागृहचन्द्रोदयावपि ॥ १८७ ॥
कोकिलालापमाकन्दमन्दमारुतषट्पदाः।
लतामण्डपभूगेहदीर्घिका जलदारवाः ॥ १८८ ॥
प्रासादगर्भसंगीतक्रीड़ाद्रिसरिदादयः।
एवमूह्या यथाकालमुपभोगोपयोगिनः ॥ १८९ ॥

—र० सु०, पृ० ४५।

२. अविलोकन आलाप परि, रंभन नखरद दान।
चुम्बनादि उद्दीपिये, मर्द्दन परस प्रवान॥

—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ७।

३. आलंबन उद्दीप के, जे अनुकरण बखान।
ते कहिये अनुभाव सब, दंपति प्रीति समान॥

—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ८।

४. रति हासी अरु शोक पुनि, क्रोध उछाह सुजान।
भय निन्दा विस्मय सदा, स्थाई भाव प्रमान॥

—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ९।

भरत और भोज ने भी इन्हीं आठों का इसी क्रम से उल्लेख किया है[1]।

सात्विक भाव :

केशव ने सात्विक भावों का भी लक्षण न देकर केवल नामोल्लेख ही किया है। केशव ने आठ सात्विक भाव माने हैं, जिनके नाम ये हैं—स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप, वैवर्ण, अश्रु तथा प्रलाप[2]।

भरत, धनंजय, भोज, शिङ्गभूपाल और विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने सात्विक भाव तो आठ ही स्वीकार किए हैं, परन्तु उन्होंने केशव के 'प्रलाप' के स्थान पर 'प्रलय' का उल्लेख किया है। भरत और विश्वनाथ के श्लोक भी कुछ पाठान्तर से परस्पर मिलते हैं और दोनों ग्रन्थों में सात्विक भावों के लिखे जाने का क्रम भी एक ही है[3]। धनंजय, भोजराज तथा भूपाल का क्रम केशव से नहीं मिलता[4]। केशव ने भरत, भूपाल तथा विश्वनाथ के ही क्रम को रखा है।

संचारी भाव :

केशव का व्यभिचारी अथवा संचारी भाव का लक्षण अपने ही ढंग का है और भरत, धनंजय, भूपाल, भोज तथा विश्वनाथ आदि किसी आचार्य से नहीं मिलता। केशव लिखते हैं कि जो भाव सभी रसों में बिना किसी नियम के उत्पन्न होते हैं व्यभिचारी कहलाते हैं[5]। सभी आचार्यों ने ३३ व्यभिचारियों का निरूपण किया है, जैसे निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, हर्ष, आवेग, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, सुप्ति, विबोध, अमर्ष, अवहित्या, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास तथा वितर्क[6]। केशव के अनुसार व्यभिचारियों की संख्या ३४

---

१. रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भयं तथा।
जुगुप्साविस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः॥
—ना० शा०, अ० ६, पृ० ६१ तथा स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ५५६।

२. स्तंभ स्वेद रोमांच सुर, भंग कंप वैवर्ण।
अश्रु प्रलाप बखानिये, आठो नाम सुवर्ण॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १०।

३. स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभेदोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रु प्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः मताः॥
—ना० शास्त्र, पृ० १३० तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० १७०।

४. दशरूपक, पृ० ७८; स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ५५६ तथा र० सु०, पृ० ८६।

५. भाव जु सब ही रसन में, उपजत केशोराय।
बिना नियम तिनसों कहैं, व्यभिचारी कविराय॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छ० ११।

६. ना० शा०, अ० ६, श्लो० १६-२२, पृ० ६१। दशरूपक, प्र० ४, श्लो० ८, पृ० ७६। र० सु०, पृ० ६८, श्लो० ४-६। सा० द०, परि० ३, का० सं० १७३। काव्यप्रकाश, श्लो० ३१-३५, पृ० ४६-४७। चन्द्रालोक, मयूख ६, श्लो० १५-१८, पृ० ६२।

है, पर डा० दीक्षित ने उनकी संख्या ३३ ही मानी है (आचार्य केशवदास, पृ० २७७)। सम्भवतः वे 'आधि' को भूल गए हैं। केशव ने व्यभिचारियों के जो नाम दिये हैं, वे इस प्रकार हैं—निर्वेद, ग्लानि, शंका, आलस, दैन्य, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, श्रम, मद, चिंता, कोह, गर्व, हर्ष, आवेग, निंदा, नींद, विवाद, जड़ता, उत्कण्ठा, स्वप्न, प्रबोध, विषाद, अपस्मार, मति, उग्रता, आशतर्क, अतिव्याध, उन्माद, मरण, भय तथा आधि[1]। ऊपर दी गई दोनों सूचियों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि संस्कृत आचार्यों द्वारा दिए अमर्ष, अवहित्था, असूया, सुप्ति, वितर्क और त्रास के स्थान पर केशव ने क्रमशः कोह, विवाद, निंदा, स्वप्न, आशतर्क और भय शब्दों का प्रयोग किया है। संस्कृत आचार्यों ने ३४वें व्यभिचारी 'आधि' का उल्लेख नहीं किया है। यह केशव की निजी कल्पना है।

हाव :

केशव के हाव का लक्षण स्पष्ट नहीं है। उनके विचार से शृंगार की उत्पत्ति प्रेम से होती है और शृंगार से ही हाव उत्पन्न होते हैं[2]।

भरत, धनंजय, शिङ्गभूपाल और विश्वनाथ से यह लक्षण नहीं मिलता। केशव ने हाव के १३ प्रकार माने हैं, हेला, लीला, ललित, मद, विभ्रम, विहित, विलास, किलकिंचित, विक्षिप्त (विच्छित्ति) बिब्बोक, मोट्टाइत, कुट्टमित और बोध। साथ ही केशव यह भी कहते हैं कि इनसे इतर 'हाव' और भी होते हैं[3]।

धनंजय ने भरत[4] के समान ही स्त्रियों के २० अलंकारों का उल्लेख किया है। भाव, हाव और हेला अंगज अलंकार हैं; शोभा, कान्ति, दीप्ति, माधुर्य, प्रगल्भता

---

१. निर्वेद ग्लानि शंका तथा, आलस दैन्यऽरु मोह।
स्मृति धृति व्रीड़ा चपलता, श्रम मद चिन्ता कोह।
गर्व हर्ष आवेग पुनि, निंदा नींद विवाद।
जड़ता उत्कण्ठा सहित, स्वप्न प्रवोध विषाद॥
अपस्मार मति उग्रता, आशतर्क अति व्याध।
उन्माद मरण भय आदि दै, व्यभिचारी युत आध॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १२, १३ तथा १४।

२. प्रेम राधिका कृष्ण को, है ताते शृंगार।
ताके भाव प्रभाव ते, उपजत हाव विचार॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १५।

३. हेला लीला ललित मद, विभ्रम विहित विलास।
किलकिंचित विक्षिप्त अरु कहि बिब्बोक प्रकाश॥
मोट्टाइत सुन कुट्टमित, बोधादिक बहु हाव॥
अपनी अपनी बुधिबल वर्णत कवि कविराव।
—र० प्रि०, प्र० छं० १६।

४. नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लो० ५, ६; २४ तथा १२, १३ (क्रमशः)।

औदार्य और धैर्य अयत्नज हैं; तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, बिब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, ललित और विहृत स्वभावज हैं[१]। केशव ने स्वभावज अलंकारों तथा हेला को 'हाव' का ही भेद माना है और अयत्नज अलंकारों को छोड़ दिया है। केशव के 'मद' और 'बोध' का भरत और धनंजय दोनों ने ही उल्लेख नहीं किया है। शिङ्गभूपाल ने सत्वज अलंकारों के अन्तर्गत भाव, हाव तथा हेला[२] और गात्रज भावों में लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित और विहृत का निरूपण किया है[३]। केशव के 'मद' तथा 'बोध' भूपाल में नहीं मिलते। भोज ने स्त्रियों के स्वभावज अलंकारों के अन्तर्गत लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, विहृत, क्रीड़ित और केलि को लिया है[४]। इनमें से 'क्रीड़ित' और 'केलि' केशव में नहीं मिलते। केशव के 'मद' 'तथा' 'बोध' का भोज ने भी उल्लेख नहीं किया है। भोज ने केशव के 'हाव' 'तथा' 'हेला' को स्वभावज अलंकारों में नहीं लिखा है। विश्वनाथ ने नायिकाओं के २८ अलंकारों का वर्णन किया है, जिनमें से तीन अंगज हैं, सात अयत्नज और शेष अठारह सात्विक[५]। उनके भाव आदि तीन अंगज, शोभा

---

१. यौवने सत्त्वजाः स्त्रीणामलंकारास्तु विंशतिः।
भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यं च प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्त भावा अयत्नजाः॥
लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्॥
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्बोको ललितं तथा।
विहृतं चेति विज्ञेया दश भावाः स्वभावजाः।

—दशरूपक, प्र० २, श्लो० ३०-३३।

२. र० सु०, पृ० ४८।

३. वही, पृ० ५२-५६।

४. लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं बिब्बोको ललितं तथा।
विहृतं क्रीड़ितं केलिरिति स्त्रीणां स्वभावजाः।

—स० कु०, कण्ठाभरण, पृ० ५५८।

५. यौवने सत्त्वजास्तासामष्टाविंशतिसंख्यकाः।
अलङ्कारास्तत्र भावहावहेलास्त्रयोऽङ्गजाः॥
शोभा कान्तिश्च दीप्तिश्च माधुर्यञ्च प्रगल्भता।
औदार्यं धैर्यमित्येते सप्तैव स्युरयत्नजाः।
लीला विलासो विच्छित्तिर्बिब्बोकः किलकिंचितम्।
मोट्टायितं कुट्टमितं विभ्रमो ललितं मदः॥
विहृतं तपनं मौग्ध्यं विक्षेपश्च कुतूहलम्।
हसितं चकितं केलिरित्यष्टादशसंख्यकाः॥

—सा० द०, परि० ३, का० सं० १२६।

आदि सात अयत्नज तथा लीला, विलास, विच्छित्ति, बिब्बोक, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित और विहृत नामक दस सात्विक अलंकारों का आधार 'नाट्यशास्त्र' तथा 'दशरूपक' ग्रन्थ हैं। तपन, मुग्धता, मद, विक्षेप, कुतूहल, हसित, चकित तथा केलि, ये अलंकार उन्होंने अपनी ओर से जोड़े हैं। केशव ने विश्वनाथ द्वारा बतलाए इन सात्विक अलंकारों में से केवल 'मद' का ही उल्लेख किया है। अतः स्पष्ट ही केशव ने 'मद' विश्वनाथ से लिया है। 'बोध' तथा 'मद' को छोड़ कर हाव के शेष भेद केशव ने भरत तथा धनंजय के आधार पर ही लिखे हैं। 'बोध' का उल्लेख विश्वनाथ ने भी नहीं किया है। इसको केशव ने कौन से ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, कहा नहीं जा सकता।

केशव ने भिन्न-भिन्न हावों के लक्षण भी दिए हैं। केशव का 'हेला' का लक्षण[1] भरत, धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ आदि किसी आचार्य से नहीं मिलता। केशव के शेष लक्षणों का प्रायः वही भाव है जो भरत, धनंजय तथा विश्वनाथ के लक्षणों का है। भरत के अनुसार अंग-संचालन, अलंकार तथा प्रेमालाप के द्वारा प्रिया की अनुकृति लीला है[2]। विश्वनाथ अंग-संचालन, वेष, अलंकार तथा प्रेमसूचक मधुर वचनों के द्वारा प्रिया की अनुकृति को लीला कहते हैं[3]। धनंजय के अनुसार प्रिय के वचन तथा वेष आदि की चेष्टाओं का प्रिया द्वारा अनुकरण 'लीला' है[4]। केशव ने भी प्रिय के द्वारा प्रिया का तथा प्रिया के द्वारा प्रियतम का रूप धारण कर लीलायें करने को 'लीला' बतलाया है[5]। विश्वनाथ तथा धनंजय दोनों का 'ललित' का लक्षण केशव के लक्षण से साम्य रखता है। धनंजय और विश्वनाथ के अनुसार अंगों का मृदुसंचालन 'ललित' हाव कहलाता है[6]। केशव के विचार से जहाँ मनोहरता के साथ बोलना, हँसना, देखना, चलना आदि चेष्टाओं का निरूपण हो वहाँ 'ललित' हाव होता है[7]। केशव के 'मद' हाव का आधार

---

१. पूरण प्रेम प्रताप ते, भूलत लाज समाज।
सो हेला जिहि हरत हिय, राधा श्रीब्रजराज॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १८।

२. नाट्यशास्त्र अ० २२, श्लोक० १४।

३. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० १४०।

४. दशरूपक, प्र० २, पृ० ५४।

५. करत जहां लीलान को, प्रीतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहं, वर्णत केशवराय॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० २१।

६. सुकुमाराङ्गविन्यासः मसृणो ललितं भवेत्।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ५६।
सुकुमारतयाऽङ्गानां विन्यासो ललितं भवेत्।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १४८।

७. बोलनि हँसनि बिलोकिबो, चलनि मनोहर, रूप।
जैसे तैसे वरणिये, ललित हाव अनुरूप।
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० २४।

विश्वनाथ ही है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। विश्वनाथ सौभाग्य, यौवन आदि के गर्व से नायिका में उत्पन्न विकार को 'मद' कहते हैं[१]। केशव के अनुसार भी पूर्ण प्रेम के प्रभाव से अथवा तारुण्य के गर्व से उत्पन्न विकार 'मद' हाव है[२]। दोनों लक्षण लगभग एक से ही हैं। धनंजय[३] से विश्वनाथ के 'विभ्रम' हाव का लक्षण अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार 'विभ्रम' हाव वहाँ होता है, जहाँ प्रिय के आगमन पर हर्ष अथवा प्रेमवश नायिका जल्दी में आभूषणादि, जो जिस अंग में पहनने चाहिएं उससे भिन्न अंग में पहन लेती है[४]। केशव के लक्षण का भी लगभग ऐसा ही भाव है। वे लिखते हैं कि जब नायिका प्रेमवश प्रिय के दर्शन के रस का आनन्द लेने की उत्कण्ठा में बांकादि आभूषण उलटे पहन लेती है वहाँ 'विभ्रम' हाव होता है[५]। यह लक्षण भरत के लक्षण से बिल्कुल भिन्न है। धनंजय ने बोलने के अवसर पर भी लज्जावश न बोल सकने को 'विहृत' हाव कहा है[६]। केशव ने भी 'विहित' हाव का यही लक्षण दिया है[७]। विश्वनाथ के 'विलास' हाव का लक्षण भरत और धनंजय की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार प्रिय के दर्शन के कारण उठने, बैठने और चलने तथा मुख, नेत्र आदि की चेष्टाओं में उत्पन्न वैचित्र्य 'विलास' हाव है[८]। केशव के लक्षण का लगभग यही भाव है। वे लिखते हैं कि खेलने, बोलने, हंसने, देखने, चलने तथा जल-थल आदि में जहाँ विभिन्न विलास उत्पन्न होते हैं वहाँ विलास हाव होता है[९]। धनंजय के अनुसार क्रोध, रुदन, हर्ष तथा भय आदि का सम्मिश्रण 'किलकिंचित' हाव कहलाता है[१०]। भरत ने धनंजय की अपेक्षा अधिक बातों

---

१. मदो विकारो सौभाग्ययौवनाद्यवलेपजः।
सा० द०, परि० ३, का० सं० १४६।

२. पूरण प्रेम प्रभाव ते, गर्व बढ़ै बहु भाव।
तिनके तरुण विकार तें, उपजत है मद हाव।।
—र० प्रि०, प्र० ६, छं २७।

३. विभ्रमस्त्वरया काले भूषास्थानविपर्ययः। —दशरूपक, प्र० २, पृ० ५४।

४. साहित्यदर्पण, परि०, ३, का० सं० १४७।

५. बांकविभूषण प्रेम ते, जहाँ होहि विपरीत।
दर्शनरस तन मन रसत, गनि विभ्रम के गीत।।
—र० प्रि०, प्र० ६ छं० ३०।

६. प्राप्तकालं न यद्ब्रूयाद् व्रीड़या विहृतं हितत्।।—दशरूपक, प्र० २, पृ० ५६।

७. बोलनि के समये विषे, बोलन देइ न लाज।
विहित हाव तासों कहे, केशव कवि कविराज।।
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३३।

८. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० १४१।

९. खेलत बोलत हंसत अरु, चितवत चलत प्रकाश।
जल थल केशवदास कहि, उपजत विविध विलास।।
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३६।

१०. क्रोधाश्रुहर्षभीत्यादेः संकरः किलकिञ्चितम्। —दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५।

का उल्लेख किया है, जो प्रायः सभी केशव से मिल जाती हैं। भरत ने लिखा है कि हर्षातिरेक के कारण उत्पन्न स्मित (मुस्कराहट), रुदन, हास, भय, दुःख, गर्व, श्रम और अभिलाषा का एक ही साथ सम्मिश्रण 'किलकिंचित' हाव है[१]। केशव ने कहा है कि जहाँ श्रम, अभिलाषा, गर्व, स्मित (मुस्कराहट), क्रोध, हर्ष तथा भय आदि एक साथ ही उत्पन्न हों वहाँ 'किलकिंचित' हाव होता है[२]। इसी प्रकार केशव तथा धनंजय के 'बिब्बोक' हाव के लक्षण भी प्रायः मिलते हैं। केशव के अनुसार जहाँ रूप तथा प्रेम के गर्व से कपटपूर्ण अनादर होता है वहाँ 'बिब्बोक' हाव है[३]। धनंजय कहते हैं कि जहाँ अतिगर्व के कारण इष्ट वस्तु के प्रति भी अनादर प्रदर्शित किया जाता है वहाँ 'बिब्बोक' हाव होता है[४]। धनंजय तथा विश्वनाथ शरीर के सौंदर्य की वर्धक किंचित् वेशरचना को 'विच्छित्ति' मानते हैं[५]। दोनों आचार्यों का यह लक्षण केशव के लक्षण से नहीं मिलता। केशव ने लिखा है कि जहाँ आभूषणों की सज्जा के प्रति अनादर होता है वहाँ 'विच्छित्ति' हाव होता है[६]। केशव के इस लक्षण का आधार धनंजय तथा विश्वनाथ दोनों न होकर भोजराज[७] हैं। विश्वनाथ द्वारा दिया मोट्टायित का लक्षण धनंजय[८] की अपेक्षा अधिक पूर्ण है। विश्वनाथ के अनुसार प्रिय की कथा आदि के प्रसंग में प्रेम से चित्त व्याप्त होने पर प्रेमिका की कान खुजाने आदि की चेष्टा मोट्टायित है[९]। केशव लिखते हैं कि हेला, लीला आदि के कारण अभिव्यक्त होने

---

१. नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लो० १८।

२. श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हरष भय भाव।
उपजत एकहि बार जहं, तहं किलकिंचित हाव॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३९।

३. रूप प्रेम के गर्व ते, कपट अनादर होय।
तहं उपजत बिब्बोक रस, यह जानैं सब कोय॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४२।

४. गर्वाभिमानादिष्टेऽपि बिब्बोकोऽनादरक्रिया।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५।

५. आकल्परचनाल्पापि विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत्।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ५४।
स्तोकाऽप्याऽऽकल्परचना विच्छित्तिः कान्तिपोषकृत्।
—सा० द० परि० ३, का० सं० १४२।

६. भूषण भूषण को जहाँ होहि अनादर आन।
सो विच्छित्ति विचारिये केशवराय सुजान॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४५।

७. विभूषणादीनामनादरविन्यासो विच्छित्तिः।
—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ६१८।

८. मोट्टायितं तु तद्भावभावनेष्टकथादिषु। —दशरूपक, प्र० २, पृ० ५५।

९. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० १४५।

वाले सात्विक भावों को जब बुद्धि-बल से रोका जाता है तो 'मोट्टाइत' हाव होता है[1]। विश्वनाथ और केशव के लक्षणों में केवल इतना ही भेद है कि विश्वनाथ ने प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति को प्रदर्शित न होने देने के लिए स्पष्ट-रूप से कान खुजाने आदि चेष्टा का उल्लेख कर दिया है, परन्तु केशव ने प्रेम-भाव प्रदर्शित न होने देने के लिए बुद्धि-बल से रोकना लिखा है। 'कुट्टमित' हाव के विषय में केशव ने लिखा है कि जहाँ केलि-कलह में कलह का ऊपरी दिखावा हो वहाँ 'कुट्टमित' हाव होता है[2]। केशव के इस लक्षण का तात्पर्य धनंजय, भोज तथा विश्वनाथ से मिल सा ही जाता है। जहाँ किसी एक के गूढ़ भाव को दूसरा समझ लेता है, वहां केशव 'बोध' हाव मानते हैं[3]। यह सूक्ष्मालंकार जैसा ही है।

अवस्थानुसार नायिकाएं :

'रसिकप्रिया' के सातवें प्रकाश में अवस्था के अनुसार नायिकाओं का वर्णन किया गया है। जितनी नायिकाओं का उल्लेख पहले हो चुका है उन सबको केशव ने आठ प्रकार की माना है, स्वाधीनपतिका, उत्कला अथवा उत्का, वासकशय्या (वासकसज्जा), अभिसंधिता, खण्डिता, प्रोषितप्रेयसी अथवा प्रोषितपतिका, विप्रलब्धा और अभिसारिका[4]।

भानुदत्त को छोड़कर, जिसने 'प्रवत्स्यत्पतिका' नामक एक नवां भेद और माना है[5], संस्कृत के भरत, धनंजय, भोज, शिङ्ग भूपाल तथा विश्वनाथ आदि सभी आचार्यों ने अवस्था के अनुसार इन्हीं आठ भेदों का वर्णन किया है। इन आचार्यों

---

१. हेला लीला करि जहाँ, प्रकटत सात्विक भाव।
बुद्धिबल रोकत सोहिये, सो मोट्टायित भाव॥
—र० प्रि, प्र० ६, छं० ४८।

२. केलिकलह में शोभिये, केलिकलह पट रूप।
उपजत है तहं कुट्टमित, हाव कहत कवि भूप॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५१।

३. गूढ़ भाव के बोध जहं, केशव समुझत कोइ।
तासों बोधक हाव यों, कहत सयाने लोइ॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५४।

४. ये सब जितनी नायिका बरणी मति अनुसार।
केशवराइ बखानिये, ते सब आठ प्रकार॥
स्वाधिनपतिका उत्कला, वासकशय्या नाम।
अभिसंधिता बखानिये, और खंडिता बाम॥
केशव प्रोषितप्रेयसी, लब्धाविप्र सुजान।
अष्टनायिका ये सबै, अभिसारिका बखान॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० १-३।

५. प्रवत्स्यत्पतिकाऽपि नवमी नायिका भवितुमर्हति।
—रसमंजरी, पृ० १५१।

द्वारा दिए गए प्रत्येक भेद के लक्षणों का भी प्रायः आपस में साम्य है। अतः निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि केशव ने किस आचार्य के अनुकरण पर अपने लक्षण दिए हैं। केशव ने 'अभिसारिका' का विवरण देते हुए स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार का लक्षण अलग-अलग दिया है। धनंजय, भोज तथा शिङ्गभूपाल ने 'अभिसारिका' के इस प्रकार के भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। भरत ने अवश्य अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि कुलजा, वेश्या तथा प्रेष्या (दासी) किस प्रकार अभिसार के लिए जाती है[1]। अतएव हो सकता है कि केशव ने आठ प्रकार की नायिकाओं का वर्णन भरत के आधार पर ही किया हो। साहित्यदर्पणकार के भी कुलजा, वेश्या तथा प्रेष्या के अभिसार के निरूपण[2] का आधार भरत ही है।

केशव के अनुसार 'स्वाधीनपतिका' नायिका वह कहलाती है जिसका पति उसके गुणों से मुग्ध होकर सदा उसके साथ रहे[3]। भरत की 'स्वाधीनपतिका' का भी प्रायः यही लक्षण है[4]।

केशव की 'उत्का' का ही नाम भरत, धनंजय, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि ने 'विरहोत्कण्ठिता' रखा है। केशव के अनुसार 'उत्का' नायिका वह है जिसका प्रियतम किसी कारणवश उसके घर नहीं आता और इस प्रकार वह प्रियतम के सोच में हृदय में दुखी होती है[5]। भरत के अनुसार 'विरहोत्कण्ठिता' नायिका वह होती है जिसका प्रिय बहुत से कार्यों में व्यस्त होने के कारण नहीं आ पाता और जो नायक के न आने पर दुःखित होती है[6]। विश्वनाथ का लक्षण, भरत तथा अन्य आचार्यों के द्वारा दिए गए लक्षणों की अपेक्षा केशव के लक्षण से अधिक मिलता है। विश्वनाथ के अनुसार 'विरहोत्कण्ठिता' वह नायिका है जिसका प्रिय आने के लिए दृढ़निश्चय होने पर भी दैववश नहीं आ पाता और जो उसके न आने पर दुःखित होती है[7]।

'वासकशय्या', केशव के मत में, वह नायिका है जो विलासयुक्त होकर प्रिय

---

१. नाट्यशास्त्र, अ० २२।

२. साहित्यदर्पण, परि०, का० सं० ११६।

३. केशव जाके गुण बंध्यो, सदा रहै पति संग।
स्वाधिनपतिका तासु को, वरणत प्रेम-प्रसंग ॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ४।

४. सुरतातिरसैर्बद्धो यस्याः पार्श्वगतः प्रियः।
सामोदे गुणसंयुक्ता भवेत्स्वाधीनभर्तृका ॥
—ना० शा०, अ० २२, श्लो० २०७।

५. कौनहु हेत न आइयो, प्रीतम जाके धाम।
ताको सोचति सोच हिय, केशव उत्का बाम ॥
—र० प्रि०, प्र०७, छं० ७।

६. नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लो० २०६।

७. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० १२५।

के आगमन की आशा में गृह-द्वार की ओर देखती रहती है[1]। भरत, धनंजय तथा विश्वनाथ द्वारा दिए लक्षणों से केशव का यह लक्षण नहीं मिलता। भोज का लक्षण 'या प्रतीक्षते' आदि शब्दों[2] से केशव के लक्षण के भाव के काफी समीप पहुँच जाता है, पर इतना नहीं जितना कि शिङ्गभूपाल का। उन्होंने 'वासकसज्जिका' की चेष्टाओं में उसके प्रिय के आगमन-मार्ग की ओर देखने का भी उल्लेख किया है[3]। हो सकता है कि केशव ने अपना लक्षण भूपाल के अनुकरण पर ही लिखा हो।

केशव की 'अभिसन्धिता' और भरत, धनंजय, भोज, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि की 'कलहान्तरिता' एक ही हैं। केशव का लक्षण अन्य आचार्यों की अपेक्षा भोज के लक्षण से अधिक मिलता है। केशव के अनुसार 'अभिसंधिता' नायिका वह है जो मान करने पर मनाने वाले प्रिय का अपमान करती है, परन्तु याद में उसके बिना दूनी दुःखी होती है[4]। भोज लिखते हैं कि 'कलहान्तरिता' नायिका कोपवश मनाते हुए प्राणप्रिय को ठुकरा कर बाद में पश्चात्ताप करती है[5]। विश्वनाथ के लक्षण[6] का भी भोज ही आधार है।

केशव के अनुसार 'खण्डिता' नायिका वह होती है जिसका प्रिय (रात को) आने को कहकर न आये और प्रातः उसके घर आकर अनेक प्रकार की बातें बनाये[7]। केशव का यह लक्षण भरत से नहीं मिलता, पर धनंजय तथा विश्वनाथ की अपेक्षा भोज तथा शिङ्गभूपाल से अधिक साम्य रखता है। भोज के अनुसार 'खण्डिता' नायिका वह है जिसका पति निद्रा से पूर्ण रक्त नेत्रों सहित और अन्य स्त्री के नखादि

---

१. वासकशय्या होइ सो, कहि केशव सविलास।
चितै रहै गृह द्वार त्यों, पिय आवन की आस॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छ० १०

२. सा तु वासकसज्जा स्यात्सज्जिते वासवेश्मनि।
प्रियमास्तीर्णपर्यङ्का भूषिता या प्रतीक्षते॥
—स० कु० कण्ठाभरण, श्लो० ११७।

३. अस्यास्तु चेष्टाः सम्पर्कमनोरथविचिन्तनम्।
सखीविनोदो हृल्लेखो मुहुर्दूतीनिरीक्षणम्॥१२७॥
प्रियाऽभिगमनमार्गाभिवीक्षाप्रभृतयो मताः।
—र० सु०, पृ० ३१।

४. मान मनावत हू करै, मानद को अपमान।
दूनो दुःख ता बिन लहै, अभिसंधिता बखान॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० १३।

५. सरस्वतीकुलकण्ठाभरण, श्लो० ११५, पृ० ५६८।

६. साहित्यदर्पण परि० ३, का० सं० १२१।

७. आवन कहि आवै नहीं, आवै प्रीतम प्रात।
ताके घर सों खण्डिता, कहै सु बहुविध बात॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० १६।

संभोग-चिह्नों से युक्त कहीं से प्रातःकाल आता है[१]। भोज के इस लक्षण से भी शिङ्गभूपाल का लक्षण केशव के लक्षण से अधिक समानता रखता है। शिङ्गभूपाल के अनुसार 'खण्डिता' नायिका वह है जिसका प्रिय समय का उल्लंघन करके अन्य स्त्री के संभोग-चिह्नों से युक्त प्रातः आता है[२]। केशव ने अपने लक्षण में प्रिय के परस्त्री के संभोग-चिह्नों से युक्त होने का निर्देश नहीं किया है।

केशव के अनुसार 'प्रोषितपतिका 'नायिका वह है जिसका प्रिय लौटने की नियत अवधि देकर किसी कार्यवश बाहर चला जाये[३]। धनंजय के अनुसार 'प्रोषित-प्रिया' नायिका वह है जिसका प्रिय किसी कार्यवश दूर देश गया हो[४]। सम्भवतः धनंजय का भी आधार भरत[५] है। नायक के दूर देश जाने का उल्लेख तो शिङ्गभूपाल, भोज तथा विश्वनाथ ने भी किया, परन्तु केशव ने नहीं किया है। कार्यवश जाना स्पष्ट रूप से धनंजय ही ने लिखा है, जो केशव ने भी लिखा है। धनंजय के अनुकरण पर ही बाद में विश्वनाथ ने भी अपने लक्षण में कार्यवश जाने का स्पष्ट उल्लेख किया है[६]।

केशव के विचार से 'विप्रलब्धा' नायिका वह है जिसका प्रिय दूती से संकेत स्थान बता कर स्वयं उसको नायिका को लिवा लाने के लिए भेजे, परन्तु आप न आये और नायिका उसके वहां न आने पर दुःखित हो[७]। धनंजय के अनुसार, विप्रलब्धा' नायिका वह है जो नियत संकेत स्थल पर अपने प्रिय को न पाकर अत्यन्त ही अपमानित होती है[८]। शिङ्गभूपाल के अनुसार 'विप्रलब्धा' वह होती है जिसका प्रिय संकेत बतला कर वहां नहीं पहुँचता और इस प्रकार नायिका को दुःख होता है[९]। भोज

---

१. सरस्वतीकुलकण्ठाभरण, पृ० ५६८, श्लो० ११४।

२. रसार्णवसुधाकर, पृ० ३२।

३. जाको प्रीतम दै अवधि, गयो कौनहूँ काज।
ता को प्रोषितप्रेयसी, कहि वर्णत कविराज॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० १६।

४. दूरदेशान्तरस्थे तु कार्यतः प्रोषितप्रिया।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ४६।

५. गुरुकार्यान्तिरवशात् यस्याः विप्रोषितः प्रियः।
सा रुडालकके शान्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका।
—ना० शा०, अ० २२, श्लो० २११।

६. नानाकार्यवशाद् यस्या दूरदेशं गतः पतिः।
सा मनोभवदुःखार्त्ता भवेत् प्रोषितभर्तृका॥
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १२३।

७. दूती सों संकेत वदि, लैन पठाई आप।
लब्धविप्र सो जानिये, अनआये संताप॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० २२।

८. विप्रलब्धोक्तसमयमप्राप्तेऽतिविमानिता।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ४६।

९. रसार्णवसुधाकर, पृ० ३५।

लिखते हैं कि 'विप्रलब्धा' नायिका वह है जिसका प्रिय दूती को संकेत-स्थान बताकर और नायिका को बुलाने भेज कर भी उससे नहीं मिलता[1]। विश्वनाथ ने लिखा है कि 'विप्रलब्धा' वह होती है जिसका प्रिय संकेत-स्थान बताकर भी उसके पास नहीं आता और इस प्रकार वह अतीव तिरस्कृत होती है[2]। इस प्रकार स्पष्ट है कि केशव ने उक्त आचार्यों के लक्षण से कुछ-कुछ बातें लेकर अपना लक्षण बनाया है।

केशव के अनुसार 'अभिसारिका' नायिका वह है जो प्रेम से, गर्व से अथवा काम के वशीभूत हो प्रिय से स्वयं जाकर मिलती है[3]। भरत के अनुसार 'अभिसारिका' वह है जो लज्जा त्याग कर गर्व से अथवा कामवश प्रिय को बुलाती है[4]। धनंजय और विश्वनाथ भी कामवश ही अभिसरण के लिए जाने वाली नायिका को 'अभिसारिका' का नाम देते हैं। धनंजय, भूपाल तथा विश्वनाथ तीनों के अनुसार 'अभिसारिका' स्वयं जाती है अथवा प्रिय को बुलाती है[5]। भोज ने 'अभिसारिका' के स्वयं जाने का ही वर्णन किया है, प्रिय को बुलाने का नहीं[6]। केशव का लक्षण भरत तथा भोज दोनों के लक्षणों का समन्वय प्रतीत होता है।

सामान्य लक्षण के अनन्तर स्वकीया, परकीया और सामान्या अथवा वेश्या के अभिसार का केशव ने पृथक्-पृथक् लक्षण दिया है। केशव के अनुसार 'स्वकीया अभिसारिका' आभूषणों से सज-धज बंधुओं के साथ, बहुत ही लजाती हुई मार्ग में डगमग पग रखती हुई चलती है। 'परकीया' दासी, सहेली अथवा बंधुओं तथा बंधुओं के साथ लज्जासहित मार्ग में बचाकर पैर रखती हुई चलती है तथा 'सामान्या' नायिका नीले वस्त्र पहन कर, चकित तथा साहसपूर्ण हृदय से सन्ध्या अथवा आधी रात के समय अभिसार के लिए जाती है। वह चारों ओर देखती हुई, हंसती, लोगों के मन को मुग्ध करती हुई, अंगराग, आभूषण आदि से सुसज्जित जाती है। 'सामान्या' हाथ

---

१. सरस्वतीकुलकण्ठाभरण, श्लो० ११६, पृ० ५६८।

२. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० १२२।

३. हित तैं कै मदमदन तैं, पिय सों मिले जु जाइ।
सो कहिये अभिसारिका, बरणी त्रिविध बनाइ॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० २५।

४. नाट्यशास्त्र, अ० २२, श्लो० २१२।

५. कामार्ताभिसरेत् कान्तं सारयेद्वाभिसारिका।
—दशरूपक, प्र० २, पृ० ४६।

अभिसारयते कान्तं या मन्मथवशंवदा।
स्वयं वाऽभिसरत्येषा धीरैरुक्ताऽभिसारिका।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० ११८।

मदनानलसंतप्ता याभिसारयति प्रियम् ॥१३४॥
स्वयं वाभिसरेद् या तु सा भवेदभिसारिका ॥१३५॥
—र० सु०, पृ० ३३।

६. पुष्पेषु पीड़िता कान्तं याति या साभिसारिका।
—स० कु० कण्ठाभरण, श्लो० ११६ (प्रथमार्द्ध), पृ० ५६८।

में पुष्प लिये, सखी, सहेली आदि से युक्त जारपति के साथ धीरे-धीरे चलती है[1]। धनंजय, भोज और शिङ्गभूपाल ने स्वकीया, परकीया और सामान्या के अभिसार का अलग निरूपण नहीं किया है। भरत तथा विश्वनाथ ने अवश्य वर्णन किया है कि कुलजा, वेश्या तथा प्रेष्या (दासी) किस प्रकार अभिसार के लिए जाती है, जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है। कुलजा में स्वकीया तथा परकीया दोनों ही सम्मिलित हैं। कारण, भरत तथा विश्वनाथ दोनों ने स्वकीया और परकीया के अभिसार का अलग-अलग वर्णन नहीं किया है। हो सकता है केशव के स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार के निरूपण का आधार भरत तथा विश्वनाथ ही हों। परन्तु लक्षण केशव के अपने हैं। वे भरत और विश्वनाथ द्वारा दिए लक्षणों से नहीं मिलते। अभिसारिका के शुक्ला (ज्योत्स्ना), कृष्णा (तमिस्रा) तथा दिवसा—इन तीन भेदों को, जिन्हें भानुदत्त (रसमंजरी, श्लो० ७६-८१) तथा केशव के परवर्ती आचार्य भी मानते हैं, केशव ने छोड़ दिया है।

गुणों के अनुसार नायिकाएँ :

केशव ने गुणों के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद, उत्तमा, मध्यमा और अधमा बतलाए हैं[2]। केशव के विचार से 'उत्तमा', प्रिय के अपमान करने पर भी उसका मान करती है, सम्मानित किये जाने पर मान छोड़ देती है तथा प्रिय को देखने पर प्रसन्न होती है। मध्यमा प्रिय के थोड़े से दोष पर मान करती और बहुत मनाने पर मान को छोड़ती है तथा अधमा बार-बार रूठती-मनती है[3]।

भरत ने अपने 'नाट्यशास्त्र' के २२ वें अध्याय में स्त्रियों के प्रकृति के अनुसार उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेदों का सविस्तार वर्णन किया है। पर उनके बताए हुए लक्षण केशव से भिन्न हैं। भोज, विश्वनाथ और भानुदत्त ने उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा नायिकाओं का केवल उल्लेख ही किया है, उनके लक्षण नहीं दिए हैं। शिङ्गभूपाल ने उत्तमा, मध्यमा तथा नीचा के लक्षणों का भी उल्लेख किया है[4]।

---

१. रसिकप्रिया, प्र० ७, छं० २६-३०।

२. उत्तम मध्यम अधम अरु, तीन तीन विधि जान।
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३८।

३. मान करै अपमान तें, तजै मान तैं मान।
पिय देखे सुख पावई, ताहि उत्तमा जान॥
मान करै लघु दोष तैं, छोड़ै बहुत प्रणाम।
केशवदास बखानियें, ताहि मध्यमा बाम॥
रूठे बारहि बार जो, तूठे बैठेहि काज।
ताही को अधमा वरण, कहैं महाकविराज॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३६, ४१ तथा ४३।

४. रसार्णवसुधाकर, पृ० ३६-३७, श्लो० १५२-१५७।

वे लिखते हैं कि उत्तमा किसी कारणवश क्रोध करती है और मनाने पर प्रसन्न हो जाती है[1]। केशव की 'उत्तमा' का लक्षण भूपाल के उपर्युक्त अंश से मिलता है। केशव की मध्यमा तथा अधमा के लक्षणों का शिङ्गभूपाल से कोई साम्य नहीं है।

इस प्रकार कुल मिलाकर केशव ने नायिकाओं के ३६० भेद स्वीकार किये हैं[2]। यहाँ सामान्या का उल्लेख न होने पर भी 'पुनि' शब्द के कथन से ध्वनि से उसका ग्रहण कर लिया गया है[3]। साथ ही वे यह भी मानते हैं कि देश, काल, वय आदि के अनुसार नायिकाओं के अनेक भेद हो जाते हैं[4]। धनंजय ने नायिकाओं के १२८, विश्वनाथ ने ३८४ और भानुदत्त ने ११५२ भेद माने हैं।

अगम्या स्त्रियों का वर्णन :

केशव अगम्या (सहवास के अयोग्य) स्त्रियों के वर्णन के साथ सातवें प्रकाश को समाप्त करते हैं। वे लिखते हैं कि सम्बन्धी की स्त्री, मित्र अथवा किसी ब्राह्मण की स्त्री, जिसको दुःख में आश्रय दिया हो अथवा भूखी होने पर जिसकी भोजन से सहायता की हो, ऐसी स्त्रियों से दूर रहना चाहिये अर्थात् संभोग न करना चाहिए। इसी प्रकार जो अपने से उच्च वर्ण की स्त्री हो, जिसका अंग-भंग हो, अथवा शूद्र की स्त्री हो तथा जो विधवा अथवा पूजनीया हो, ऐसी स्त्रियों से सोच-विचार कर संभोग करना चाहिए[5]।

अगम्या स्त्रियों का वर्णन संस्कृत आचार्यों के ग्रन्थों में नहीं मिलता। केशव ने अगम्या-वर्णन के लिए कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों को ही अपना आधार बनाया है। वात्स्यायन ने अगम्या के अन्तर्गत कुष्ठिनी, उन्मत्ता, पतिता, गुप्त बात को प्रकट करने वाली, वृद्धा, अतिश्वेतवर्णा, अतिकृष्णवर्णा, दुर्गन्धा, सम्बन्धी की स्त्री, ब्राह्मण की स्त्री, रानी, संन्यासिनी, पत्नी की सहेली, तमाशा करने वाली, शकुन परखने

---

१. गृह्णाति कारणे कोपमनुनीता प्रसीदति ॥
—र० सु०, पृ० ३६।

२. केशवदास सु तीन विधि, वरणी सुकिया नारि।
परकीया द्वै भाँति पुनि, आठ आठ अनुहारि ॥
उत्तम मध्यम अरु अधम, तीन तीन विधि जानि।
प्रकट तीन सै साठ त्रिय, केशवदास बखानि ॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३७, ३८।

३. पुन के कहिबे सों व्यंग्यतें सामान्या निकसी नाम लियो सो ऊपर ही कहि आये। —र० प्रि०, सरदारकृत ३८वें दोहे की टीका, पृ० १०३।

४. देश काल वय भाव ते, केशव जानि अनेक।
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ४५।

५. तजि तरुणी सम्बन्धी की, जान मित्र द्विजराज।
राख लेइ दुख भूख ते, ताकी तिय तैं भाज ॥
अधिक वरण अरु अंग घटि, अन्त्यज जन की नारि।
तजि विधवा अरु पूजिता, रमियहु रसिक विचार ॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ३६, ४७।

वाली तथा जादू-टोना करने वाली आदि को गिनाया है[1]। कल्याणमल्ल ने भी अगम्या-वर्णन में कन्या, संन्यासिनी, सती, शत्रुवधू, मित्र की स्त्री, रोगिणी, शिष्या, ब्राह्मण की स्त्री, पतिता, उन्मत्ता, सम्बन्धिनी, वृद्धा, आचार्य-पत्नी, गर्भिणी, महापापिनी भूरे वर्ण वाली तथा अत्यन्त काली स्त्रियों का उल्लेख किया है[2]।

विप्रलम्भ-श्रृंगार:

पूर्वानुराग:

'रसिकप्रिया' के आठवें प्रकाश में विप्रलम्भ श्रृंगार के सामान्य लक्षण का परिचय देकर कवि ने विप्रलम्भ श्रृंगार के चार भेदों, पूर्वानुराग, करुण, मान और प्रवास का उल्लेख किया है[3]। फिर पूर्वानुराग और दस काम दशाओं का निरूपण किया गया है। नायक-नायिका के एक दूसरे से वियुक्त होने पर जो रस उत्पन्न होता है, वह विप्रलम्भ श्रृंगार कहलाता है[4]। केशव का यह लक्षण संस्कृत के किसी आचार्य से साम्य नहीं रखता।

केशव ने 'पूर्वानुराग' वहाँ माना है जहाँ नायक-नायिका के हृदय में एक दूसरे के रूप को देखते ही अनुराग उत्पन्न हो जाता है और बिना देखे दुःख होता है[5]। शिङ्गभूपाल ने 'पूर्वानुराग' का लक्षण देते हुए लिखा है कि 'पूर्वानुराग' वह अवस्था है, जहाँ प्रेम-संगम से पूर्व नायक-नायिका के हृदय में नायक-नायिका के दर्शन अथवा गुण-श्रवण से अनुराग उत्पन्न हो जाता है[6]। केशव ने 'पूर्वानुराग' की उत्पत्ति केवल

---

१. अगम्यास्त्वेवैताः—कुष्ठिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्या प्रकाशप्रार्थिनी गतप्राययौवनातिश्वेतातिकृष्णा दुर्गन्धा संबन्धिनी सखी प्रव्रजिता सम्बन्धिसखि श्रोत्रियराजदाराश्च।

—कामसूत्र, प्र० भा०, अधिकरण १, अ० ५, पृ० २०१।

भिक्षुकीश्रमणाक्षपणाकुलटाकुहकेक्षणिकामूलकारिकाभिर्न संसृज्येत।

—कामसूत्र, भाग २, अधिकरण ४, अ० १, पृ० ६१८।

२. कन्या प्रव्रजिता सती रिपुवधूः मित्रांगना रोगिणि,
शिष्या ब्राह्मणवल्लभाऽथ पतितोन्मत्ता च सम्बन्धिनी।
वृद्धाचार्यवधूश्च गर्भसहिताऽज्ञाता महापापिनी,
पिंगा कृष्णतमा सदा बुधजनैस्त्याज्या इमा योषितः॥ १५॥

—अनंगरंग, पृ० ४५।

३. र० प्रि०, प्र० ८, छं० २।

४. बिछुरत प्रीतम प्रीतमा, होत जु रस तिहि ठौर।
विप्रलम्भ तासों कहैं, केशव कवि शिरमौर॥

—र०प्रि०, प्र० ८, छं० १।

५. देखत हीं द्युति दंपतिहि, उपज परत अनुराग।
बिन देखे दुख देखिये, सो पूरब अनुराग॥

—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३।

६. रसार्णवसुधाकर, पृ१ १७६।

दर्शन से मानी है, क्योंकि इन्होंने 'श्रवण' को भी 'दर्शन' के अन्तर्गत रखा है। यही कारण है कि उन्होंने इसका अलग से उल्लेख नहीं किया है। इस दृष्टि से शिङ्गभूपाल तथा केशव के लक्षण परस्पर मिलते हैं।

दस काम दशाएँ :

केशव का कहना है कि देखने अथवा बातचीत सुनने से नायक-नायिका एक दूसरे से मिलने के लिए व्याकुल हो उठते हैं और फिर मिलाप न हो सकने पर दस दशाओं को प्राप्त होते हैं, जिनके नाम ये हैं—अभिलाषा, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता तथा मरण[1]। केशव ने इन दशाओं के अलग-अलग लक्षण दिए हैं। धनंजय ने इन्हीं दस दशाओं के नाम गिनाए हैं, केवल अन्तर इतना ही है कि केशव की 'व्याधि' के स्थान पर उन्होंने 'संज्वर' लिखा है[2]। उन्होंने लक्षण नहीं दिए हैं। भोज ने अधिकांश केशव से भिन्न दशाओं का उल्लेख, किया है। शिङ्गभूपाल[3] तथा विश्वनाथ[4] द्वारा बतलाई गई दस दशाएं केशव से मिलती हैं। भूपाल ने सभी दशाओं के लक्षणों का उल्लेख किया है और विश्वनाथ ने अभिलाषा, चिन्ता, उन्माद, प्रलाप, व्याधि तथा जड़ता के ही लक्षण दिए हैं, गुण-कथन, स्मृति तथा उद्वेग के लक्षण नहीं दिए। केशव के अनुसार नेत्र, वचन और मन के मिल जाने पर जब शरीर भी मिलना चाहता है तो वह दशा 'अभिलाषा' कहलाती है[5]। यह लक्षण केशव का अपना है, जो भूपाल अथवा विश्वनाथ के लक्षणों से भिन्न है। नायक से किस प्रकार मिलन हो जिससे वह मिल जाय और मिलने पर उसे कैसे वश में रखा जाय आदि बातों की चिन्ता को केशव ने 'चिन्ता' कहा है[6]।

---

१. अविलोकन आलाप ते, मिलिबे को अकुलाहिं।
होत दशा दश विन मिले, केशव क्यों कहि जाहिं॥
अभिलाषा सुचिता गुणकथन, स्मृति उद्वेग प्रलाप।
उन्माद व्याधि जड़ता भये, होत मरण पुनि आप॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ८ तथा ६।

२. दशावस्थः स तत्रादावभिलाषोऽथ चिन्तनम् ॥५१॥
स्मृतिगुणकथोद्वेगप्रलापोन्मादसंज्वराः
जड़ता मरणं चेति दुखस्थं यथोत्तरम् ॥५२॥
—दशरूपक, पृ० २०१।

३. र० सु०, पृ० १७८।

४. सा० द०, परि० ३, का० सं० २१७ (ग)।

५. नैंन बैंन मन मिलि रहै, चाहै मिलन शरीर।
कहि केशव अभिलाष यह, बर्णंत हैं मतिधीर॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० १०।

६. कैसे मिलिये मिले हरि, कैसे धौं वश होइ।
यह चिन्ता चित्त चेत कैं, वर्णंत हैं सब कोई॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० १६।

केशव के लक्षण के पहले अंश तथा विश्वनाथ[1] के पूरे लक्षण का भाव प्रायः एक ही है। शिङ्गभूपाल ने 'चिन्ता' का व्यापक लक्षण दिया है। परन्तु केशव के लक्षण का प्रथमांश भूपाल[2] से भी मिलता है। केशव तथा शिङ्गभूपाल के 'गुण-कथन' के लक्षणों में पूर्ण साम्य है। कामवश होकर शरीर की शोभा, आभूषणों तथा गुणों आदि के वर्णन को केशव ने 'गुण-कथन' बतलाया है[3]। केशव का यह लक्षण शिङ्ग-भूपाल[4] के लक्षण से मिलता है। केशव द्वारा दिया 'स्मृति' का लक्षण[5] वस्तुतः 'स्मृति' का लक्षण न होकर 'अभिलाषा' का लक्षण जान पड़ता है। भूपाल तथा केशव के 'उद्वेग' के लक्षणों[6] में अन्तर है। 'प्रलाप' का लक्षण केशव का निजी है और भूपाल अथवा विश्वनाथ से भिन्न है[7]। इसी प्रकार केशव के 'उन्माद' का

---

१. चिन्ता प्राप्त्युपायादिचिन्तनम्। —सा० द०, परि० ३, का० सं० २१८।

२. केनोपायेन संसिद्धिः कदा तस्य समागमः।
(किस उपाय से सिद्धि प्राप्त हो और उससे कैसे मिलना हो।)
—र० सु०, पृ० १७८, श्लो० १८२।

३. जहँ गुणगण मणि देहि द्युति, बरणत बचन विशेष।
ताकहँ जानहु गुणकथन, मनमथ - मथन सुलेख॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० २१।

४. सौन्दर्यादिगुणश्लाघा गुणकीर्तनमत्र तु। —र० सु०, पृ० १७६।

५. और कछु न सुहाय जहं, भूलि जाहि सब काम।
मन मिलिबे की कामना, ताहि स्मृति है नाम॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० २६।

६. मनसः कम्प उद्वेगः कथितस्तत्र बिक्रियाः॥१८८॥
—र० सु०, पृ० १७६।

दुखदायक ह्वै जात जहँ, सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग दशा दुसह, जानहु केशवदास।
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३१।

७. भ्रमत रहै मन भौंर ज्यों, है तन मन परताप।
वचन कहै प्रियपक्ष सों, तासों कहत प्रलाप॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३६।

इह मे दृक्पथं प्रापदिहातिष्ठदिहास्त च।
इहालपदिहावात्सीदिहैव न्यवृतत् तदा॥ १६०॥
इत्यादिवाक्यविन्यासो विलाप इति कीर्तितः।
—र० सु०, पृ० १७६।

(भूपाल में 'प्रलाप' के स्थान पर 'विलाप' लिखा है)
अलक्ष्यवाक् प्रलापः स्याच्चेतसो भ्रमणाद् भृशम्।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० २१८।

लक्षण भी दोनों आचार्यों से नहीं मिलता[1]। केशव की 'व्याधि' का लक्षण भूपाल की अपेक्षा विश्वनाथ से अधिक मिलता है। भूपाल के अनुसार सन्ताप, दीर्घ निःश्वास, शीतल वस्तुओं का सेवन, जीवन की ओर से उदासीनता, मोह, मुमूर्षा, धैर्य-हीनता आदि 'व्याधि' के लक्षण हैं[2]। विश्वनाथ ने दीर्घ निःश्वास, शरीर की पाण्डुता तथा दुर्बलता आदि 'व्याधि' के लक्षण लिखे हैं[3]। केशव ने भी 'व्याधि' के लक्षण में दीर्घ निःश्वास, अंग-वैवर्ण्य तथा आँखों में आँसुओं के आ जाने का वर्णन किया है[4]। विश्वनाथ ने 'जड़ता' के लक्षण में शरीर तथा मन का निश्चेष्ट हो जाना लिखा है[5]। केशव के लक्षण के प्रथम चरण के प्रथमांश 'भूलि जाय सुधि बुधि जहं' का भी यही भाव है। केशव के प्रथम चरण के द्वितीयांश 'सुख दुख होय समान' का आधार शिङ्गभूपाल की 'व्याधि' के लक्षण का 'इदमिष्टमनिष्टं तदिति वेत्ति न किञ्चन'[6] यह अंश ही जान पड़ता है। इस प्रकार केशव की 'जड़ता' का संपूर्ण लक्षण[7] शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ के लक्षणों का समन्वय है। विश्वनाथ ने 'मरण' का वर्णन नहीं किया है, क्योंकि इसमें रसविच्छेद होता है[8]। शिङ्गभूपाल ने 'मरण' का भी लक्षण दिया है। उन्होंने लिखा है कि विविध उपायों के करने पर भी जब नायक-नायिका का समागम सम्पन्न नहीं होता, तो कामाग्नि से संतप्त होकर वे मरण का उद्योग करते हैं[9]।

१. तरकि उठै पुनि उठि चलै, चितै रहै मुख देखि।
सो उन्माद गनावही, रोवै हंसै विशेखि॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४१।

उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतनाचेतनेष्वपि। —सा० द०, का० सं २१८।

सर्वावस्थासु सर्वत्र तन्मनस्कतया सदा। १६२।
अतस्मिंस्तदिति भ्रान्तिरुन्मादो विरहोद्भवः॥
—र० सु०, पृ० १७६।

२. रसार्णवसुधाकर, श्लो० १६५-१६६, पृ० १८०।

३. व्याधिस्तु दीर्घनिःश्वासपांडुताकृशतादयः।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० २१८।

४. अंग बरण बिबरण जहाँ, अति ऊंचो उश्वास।
नैन नीर परताप बहु, व्याधि सु केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४६।

५. जड़ता हीनचेष्टत्वमङ्गानां मनसस्तथा।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० २१८।

६. र० सु०, पृ० १८०।

७. भूलि जाय सुधि बुधि जहँ, सुख दुख होय समान।
तासों जड़ता कहत हैं, केशवराय सुजान॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४९।

८. रसविच्छेदहेतुत्वात् मरणं नैव वर्ण्यते।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० २१६।

९. रसार्णव सुधाकर, पृ० १८०।

केशव के लक्षण का भाव भी इस प्रकार का ही है[१]। केशव ने लक्षण तो दिया है, किन्तु साथ ही राधाकृष्ण-अजर और अमर की जोड़ी की विरह दशा में 'मरण' का वर्णन न करने की विधि भी बतलाई है[२]।

मान विप्रलम्भ :

नवें प्रकाश में विप्रलम्भ के द्वितीय भेद 'मान' तथा उसके भेदों का विवेचन है। धनंजय ने 'मान' का सामान्य लक्षण नहीं दिया है, भोज, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ ने दिया है। किन्तु इनके द्वारा दिए गए तथा केशव के लक्षण में अन्तर है। धनंजय ने 'मान' के दो भेद बतलाए हैं, प्रणयमान तथा ईर्ष्यामान[३]। ईर्ष्याजनित मान तीन प्रकार से होता है—(१) दर्शन: नायक की अन्य नायिका में आसक्ति प्रत्यक्ष रूप से देखने से (२) श्रुति : सखी के द्वारा सुन कर तथा (३) अनुमिति : अनुमान से। अनुमान तीन प्रकार से होता है—(क) उत्स्वप्नायित: स्वप्न में नायक के अन्य नायिका-सम्बन्धी बातों के बड़बड़ाने से, (ख) भोगाङ्ककल्पित : नायक में अन्य नायिका के संभोग-चिह्न देखकर तथा (ग) गोत्रस्खलनकल्पित : सहसा नायक के मुख से अन्य नायिका का नाम सुनकर[४]। शिङ्गभूपाल के अनुसार 'मान' के दो भेद हैं, सहेतु तथा निर्हेतु। वे 'सहेतु' मान को ईर्ष्याजनित मानते हैं[५]। उनके ईर्ष्याजनित मान के प्रकार धनंजय से ज्यों के त्यों मिलते हैं। विश्वनाथ ने धनंजय के ही आधार पर मान के प्रणयमान तथा ईर्ष्यामान तथा ईर्ष्यामान के दर्शनजनित, अनुमिति-जनित (उत्स्वप्नायित, भोगांककल्पित तथा गोत्रस्खलनकल्पित) तथा श्रुति-जनित भेदों का उल्लेख किया है[६]। केशव ने मान के तीन भेदों, गुरु, लघु तथा मध्यम का निर्देश किया है[७]। केशव के इन भेदों का उल्लेख धनंजय, भोज, भूपाल

---

१. बने न केहूँ मिलन जहं, छल बल केशवदास।
पूरण प्रेम प्रताप तें, मरन होहि अनयास॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ५४।

२. मरण सु केशवदास पैं, वरणों जाइ न मित्त।
अजर अमर तासों कहैं, कैसे प्रेत चरित्त॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ५५।

३. मानोऽपि प्रणयेर्ष्ययोः।
—दशरूपक, पृ० १०२।

४. दशरूपक, पृ० १०२।

५. सोऽयं सहेतुनिर्हेतुभेदाद् द्वैधात्र हेतुजः।
ईर्ष्यया सम्भवेदीर्ष्या त्वन्यासङ्गिनि वल्लभे ॥२०३॥
असहिष्णुत्वमेव स्याद् दृष्टेरनुमिते श्रुतेः।
—र० सु०, पृ० १८१।

६. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० २२२, २२३।

७. मान भेद प्रकटहिं प्रिया, गुरु लघु मध्यम मान।
प्रकटहि प्रीय प्रियान प्रति, केशवदास सुजान॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० २

अथवा विश्वनाथ किसी आचार्य ने नहीं किया है। केशव, अन्य नायिका के संभोग-चिह्नों को नायक में देख कर अथवा उससे अन्य नायिका का नाम सुनने पर प्रकृत नायिका में गुरु मान की उत्पत्ति बतलाते हैं[1]। केशव के इस लक्षण में धनंजय के ईर्ष्यामान के भेदों, गोत्रस्खलनकल्पित तथा भोगाङ्ककल्पित का सम्मिश्रण है। केशव लिखते हैं कि प्रकृत नायिका लघु मान तब करती है, जब वह नायक को किसी दूसरी नायिका की ओर देखते हुए प्रत्यक्ष अपनी आँखों से देख लेती है अथवा उसे सखी के द्वारा दूसरी नायिका में नायक का आसक्त होना विदित होता है[2]। केशव का यह लक्षण धनंजय के दर्शन-ईर्ष्या तथा श्रुति-ईर्ष्या का सम्मिश्रण है। केशव के अनुसार मध्यम मान का उदय उस समय होता है जब प्रकृत नायिका नायक को किसी अन्य नायिका से बातें करते देखती है[3]। केशव का मध्यम मान का वह लक्षण धनंजय के दर्शन-ईर्ष्या में ही आ जाता है। केशव के इन तीन भेदों का आधार भानुदत्त की 'रसमंजरी' जान पड़ती है[4]।

मानमोचन के उपाय :

दसवें प्रकाश में मान-मोचन के उपायों तथा मान की रीति का विवरण दिया गया है। केशव ने मानमोचन के छः उपाय—साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा तथा प्रसंग-विध्वंस बतलाए हैं, रसविच्छेद होने के कारण दण्ड को छोड़ दिया है[5]। धनंजय ने भी मानमोचन के इन्हीं उपायों का वर्णन किया है, केवल अन्तर इतना ही है कि केशव के 'प्रणति' तथा 'प्रसंगविध्वंस' के स्थान पर इन्होंने क्रमशः 'नति' तथा 'रसान्तर' शब्द प्रयुक्त किए हैं[6]। शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ ने

---

१. आनि नारी के चिह्न लखि, कै सुनि श्रवणनि नाउ।
उपजत है गुरु मान तहं, केशवदास सुभाउ॥
—र० प्रि०, प्र०६, छं० ३।

२. देखत काहूँ नारि त्यों, देखै अपने नैन।
तहं उपजै लघु मान कै, सुनै सखी के बैन॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० ६।

३. बात कहत तिय और सों, देखै केशवदास।
उपजत मध्यम मान तहं मानिनि के सविलास॥
—र० प्रि०, प्र० ६, छं० १५।

४. प्रियापराधसूचिका चेष्टा मानः। स च लघुर्मध्यमो गुरुश्च। रसमंजरी, पृ० ८३।

५. साम दाम अरु भेद पुनि, प्रणति उपेक्षा मानि।
अरु प्रसंगविध्वंस पुनि, दण्ड होहि रसहानि॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० २।

६. यथोत्तरं गुरुः षड्भिरुपायैस्तमुपाचरेत्।
साम्ना भेदेन दानेन नत्युपेक्षारसान्तरैः॥६१॥
—दशरूपक, पृ० १०३।

भी धनंजय का अनुसरण किया है[१]। केशव जैसे-तैसे मन को मोह कर मान छुड़ाने को 'साम' कहते हैं[२]। धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ के अनुसार प्रिय वचनों का प्रयोग 'साम' कहलाता है[३]। केशव द्वारा दिया लक्षण अधिक विशिष्ट है। केशव के अनुसार किसी बहाने से कुछ देकर मान छुड़ाने को 'दान' कहते हैं[४]। धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ किसी बहाने से आभूषण आदि देने को 'दान' बतलाते हैं[५]। केशव का इसी प्रसंग में यह भी कहना है कि यदि नायिका किसी लोभ अथवा दान के वशीभूत हो मान छोड़ती है तो उसकी गणना 'वारवधू' की कोटि में होती है[६]। इस कथन का उल्लेख न तो उपर्युक्त तीनों आचार्यों ने और न संस्कृत के किसी और आचार्य ने ही किया है। जब नायिका की सब सखियों को सुख देकर अपनी ओर कर के मान छुड़ाया जाता है तो केशव उसे 'भेद' उपाय कहते हैं[७]। धनंजय और विश्वनाथ के लक्षण का भाव केशव से साम्य रखता है[८]। शिङ्गभूपाल का लक्षण भिन्न है[९]। केशव ने अतिहित, अति कामवश अथवा अति अपराध समझ

---

१. रसार्णवसुधाकर, श्लो० २०८, पृ० १८४; सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।

२. ज्यों केहू मन मोहिये, छूटि जाय जहं मान।
सोई साम उपाय कहि, केशवदास बखान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० ३।

३. तत्र प्रियवचः साम।
—दशरूपक, पृ० १०३।
तत्र प्रियोक्तिकथनं यत्तु तत् साम गीयते। —र० सु०, पृ० १८४।
तत्र प्रियवचः साम। —सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।

४. केशव कौनिहुँ ब्याज कछु, दै जु छुड़ावै मान।
बचन रचन मोहै मनहि, ताको कहिये दान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० ३।

५. दानं व्याजेन भूषादेः।
—दशरूपक, पृ० १०३ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।
व्याजेन भूषणादीनां प्रदानं दानमुच्यते।
—र० सु०, पृ० १८५।

६. जहाँ लोभ ते दान ते, छांड़ै मानिनि मान।
बारबधू के लक्षणहिं, पावै तबहि प्रमान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० ७।

७. सुख दै कै सब सखिन कहं, आप लेइ अपनाइ।
तब जु छुड़ावै मान को, बरणों भेद बनाइ॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० ११।

८. भेदस्तत्सख्युपार्जनम्।
—दशरूपक, पृ० १०३ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।

९. सख्यादिभिरुपालम्भप्रयोगो भेद उच्यते॥ २०९॥
—र० सु०, पृ० १८५।

कर प्रियतम या प्रियतमा के एक दूसरे के पैरों में पड़ जाने को 'प्रणति' कहा है[१]। धनंजय, भूपाल तथा विश्वनाथ ने भी चरणों में पड़ने को 'नति' माना है[२]। जब मान छुड़ाने वाली बातों को छोड़कर अन्य ही प्रसंग की बातें छेड़ देने से मान छूट जाता है केशव वहाँ 'उपेक्षा' मानते हैं[३]। भूपाल चुप रहने को 'उपेक्षा' कहते हैं[४]। धनंजय तथा विश्वनाथ ने कहा है कि साम, दान आदि उपायों के निष्फल सिद्ध होने पर 'उपेक्षा' का भाव दिखलाया जाता है[५]। केशव का लक्षण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट जान पड़ता है। केशव के 'प्रसंगविध्वंस' तथा धनंजय और विश्वनाथ के 'रसान्तर' का लक्षण प्रायः समान ही है। केशव भय के कारण चित्त में प्रेम उत्पन्न हो जाने से मान के छूट जाने को 'प्रसंगविध्वंस' कहते हैं[६]। धनंजय तथा विश्वनाथ के 'रसान्तर' का भी प्रायः यही भाव है[७]। भूपाल का लक्षण नितान्त भिन्न है[८]। इस प्रकार मानमोचन के उपायों के वर्णन के लिए केशव धनंजय के ऋणी हैं और भूपाल तथा विश्वनाथ धनंजय के। उपर्युक्त उपायों के अतिरिक्त केशव ने देशकाल, मधुर संगीत, सुन्दर वस्तुओं का दर्शन, सौगन्ध आदि कुछ मानमोचन के सहज उपायों का भी उल्लेख किया है[९]।

मान की रीति :

केशव इसी प्रकाश में मान की रीति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि

---

१. अतिहित ते अतिकाम ते, अति अपराधहि जान,
पांय परै प्रीतम प्रिया, ताको प्रणति बखान।
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० १४।

२. पादयोः पतनं नतिः। —दशरूपक, पृ० १०३ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।
नतिः पादप्रणामः स्यात्। —र० सु०, पृ० १८५।

३. मान मुचावन बात तजि, कहिये और प्रसंग।
छूटि जाइ जहं मान तहं, कहत उपेक्षा अंग॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० २०।

४. तूष्णीं स्थितिरुपेक्षणम् ॥ २१० ॥ —र० सु०, पृ० १८६।

५. सामादौ तु परिक्षीणे स्यादुपेक्षावधीरणम्।
—दशरूपक, पृ० १०३ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।

६. उपज परै भय चित्त भ्रम, छूट जाय जहं मान।
सो प्रसंग विध्वंस कवि, केशवदास बखान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० २३।

७. रभसत्रासहर्षादेः कोपभ्रंशो रसान्तरम्।
—दशरूपक, पृ० १०३ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २२४।

८. आकस्मिकरसादीनां कल्पना स्याद् रसान्तरम्।
—र० सु०, पृ० १८६।

९. देश काल बुधि बचन ते, कल ध्वनि कोमल गान।
शोभा शुभ सौगन्ध ते सुख ही छूटत मान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० २६।

नायिका को नायक से अतिहठ नहीं करना चाहिए, संभव है कि अतिहठ से नायक उदास हो जाये और फिर हाथ न आये। बार-बार मान करना ठीक नहीं है। कभी-कभी ही मान करना उचित है। उससे आपस में सम्मान बढ़ता है[१]। मान में भय और प्रेम दोनों होते हैं। प्रेम के बिना भय तथा भय के बिना प्रेम संभव नहीं है। जहाँ प्रेम रहता है वहाँ भय रहता है[२]।

करुण विप्रलम्भ :

'रसिकप्रिया' के ग्यारहवें प्रकाश में करुण तथा प्रवास विप्रलम्भ का निरूपण किया गया है। संस्कृत के आचार्यों ने 'करुण विप्रलम्भ' नायक अथवा नायिका में से किसी एक के लोकान्तर चले जाने पर दूसरे के शोक-विह्वल हृदय से विलाप करने की उस अवस्था को कहा है, जिसमें मरणान्तर भी इसी जन्म में संयोग की आशा रहती है। केशव ने 'करुण-विरह' वहाँ माना है जहाँ संयोग-सुख के सब उपाय छूट जाते हैं[३]। केशव का यह लक्षण स्पष्ट नहीं है।

प्रवास-विप्रलम्भ :

केशव तथा धनंजय के 'प्रवास-विप्रलम्भ' का लक्षण प्रायः समान ही है। केशव की अपेक्षा धनंजय का लक्षण अधिक विशिष्ट है। धनंजय नायक के किसी कार्यवश, शाप अथवा भय के कारण किसी अन्य देश में जाने को 'प्रवास' बतलाते हैं[४]। केशव ने किसी कार्यवश प्रिय के परदेश चले जाने को 'प्रवास' कहा है[५]। भूपाल तथा विश्वनाथ ने भी अपने 'प्रवास-विरह' का लक्षण धनंजय के अनुकरण पर ही दिया है। केशव ने 'प्रवास-विरह' की चार अवस्थाओं का उल्लेख किया है। पहली

---

१. प्रिया न प्रीतम सों करै, अतिहठ केशवदास।
बहुर्यों हाथ न आवई, जो ह्वै जाय उदास॥
बारहि बार न कीजिये, बारक कीजै मान।
कहि केशव ज्यों आप में, सदा बढ़ै सनमान॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० २९-३०।

२. प्रीति बिना भय होय नहि, भय बिन होहि न प्रीति॥
प्रीति रहै जहं भय रहै, यह मान की रीति॥
—र० प्रि०, प्र० १०, छं० ३१।

३. छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणारस उपजत तहाँ, आपुन ते अकुलाय॥
—र० प्रि०, प्र० ११, छं० १।

४. कार्यतः संभ्रमाच्छापात् प्रवासो भिन्नदेशता॥
—दशरूपक, पृ० १०४।

५. केशव कौनहु काज तें, पिय परदेशहि जाय।
तासों कहत प्रवास सब, कवि कोविद समुझाय॥
—र० प्रि०, प्र० ११, छं० ७।

अवस्था तो वह है जब विरही अपने प्रिय से वियुक्त होता है किन्तु उसके बिना रहना अच्छा नहीं लगता। दूसरी अवस्था 'भय-विभ्रम' की है जिसमें प्राकृतिक वस्तुओं को देखकर संयोग के दिनों का स्मरण हो आता है और वह दुःख का हेतु बनता है। तीसरी अवस्था 'अनिद्रा' की है जिसमें निद्रा भी जाती रहती है। चौथी 'विरह-निवेदन' की है जिसमें वियोगी किसी के द्वारा अपनी विरहावस्था का संदेश प्रिय के पास पहुँचाता है। इन अवस्थाओं का वर्णन केशव का अपना ही दीख पड़ता है।

सखी-निरूपण :

'रसिकप्रिया' के बारहवें प्रकाश में सखी-निरूपण है। केशव के अनुसार धाय, जनी, दासी, नाइन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, बरइन (तमोलिन), शिल्पिनी, चुड़िहारिन (मनिहारिन), सुनारिन, रामजनी (गोसांइन), संन्यासिनी तथा पटवा की स्त्री—ये नायक-नायिका की सखी हो सकती हैं[1]। इनका उल्लेख संस्कृत के आचार्यों में से विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' तथा कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थों में दूती के प्रसंग में मिलता है। विश्वनाथ सखी, नटी, दासी, धाय, पड़ोसिन, बाला, संन्यासिनी, धोबिन तथा शिल्पिनी आदि को दूती का पद देते हैं[2]। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में विधवा, दासी, भिखारिन तथा शिल्पिनी आदि को ही दूती के अन्तर्गत गिनाया है[3]। 'अनंगरंग' में मालिन, सखी, विधवा, धाय, नटी, शिल्पिनी, सैरन्ध्री पड़ोसिन, रंगरेजिन, धोबिन, दासी, सम्बन्धिनी, बाला, संन्यासिनी, भिखारिन, ग्वालिन, खातिन अथवा जुलाहिन आदि का वर्णन दूती के अन्तर्गत किया गया है[4]। धनंजय ने दूतियों में दासी, सखी, रजकी, धाय, पड़ोसिन,

---

१. धाय जनी नायन नटी, प्रकट परोसिन नारि।
मालिन बरइन शिल्पिनी, चुरिहेरनी सुनारि॥
रामजनी संन्यासिनी, पटु पटवा की बाल।
केशव नायक नायिका सखी करहि सब काल॥
—र० प्रि०, प्र० १२, छं० १ तथा २।

२. दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी।
बाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा।
—सा० द०, परि० ३, का० सं० १६१।

३. विधवेक्षणिका दासी भिक्षुकी शिल्पकारिका।
प्रविशत्याशु विश्वासं दूतीकार्यं च विन्दति ॥६३॥
—कामसूत्र, भाग २, अधिकरण ५, अ० ४, पृ० ८४१।

४. मालाकारवधूः सखी च विधवा धात्री नटी शिल्पिनी,
सैरन्ध्री प्रतिगेहिकाऽथ रजकी दासी च सम्बन्धिनी।
बाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तक्रस्य विक्रेतिका,
मान्या कारुवधूर्विदग्धपुरुषैः प्रेष्या इमा दूतिकाः॥
—अनंगरंग, श्लो० १६, पृ० ४

भिखारिन तथा शिल्पिनी को रखा है[1]।

सखीजन-कर्म-निरूपण :

'रसिकप्रिया' के तेरहवें प्रकाश में सखी-जन-कर्म का निरूपण है। भरत, धनंजय, मम्मट, भूपाल तथा विश्वनाथ आदि संस्कृत के आचार्यों में से किसी ने भी सखी अथवा दूती के कर्मों का निरूपण नहीं किया है। भोज ने अवश्य अपने 'श्रृंगार प्रकाश' नामक ग्रन्थ के अट्ठाइसवें प्रकाश में प्रवेश, विश्वासोत्पादन, उपावर्तन, अनुवर्तन, उपन्यास, अवस्थानिवेदन, इङ्गिताकारज्ञान, उपायज्ञान, प्रकरण, ज्ञान, प्रतारण, समाश्वासन, अत्ययप्रतिकार, प्रयोज्यप्रेषण, सन्धिरक्षा, प्रतापव्यावर्णन, उपजाप, पराक्रमण, बन्धुरत्नापहार, मित्रोपग्रह, सुहृद्विभेद, चारज्ञान, गूढ़दण्डातिचार, चार समाधान तथा समाधिमोक्ष—इन २४ दूत-कर्मों का उल्लेख किया है[2]। वात्स्यायन ने 'कामसूत्र' में दूती के कर्मों का विवरण दिया है। उन्होंने दूती-कर्मों में पति से विद्वेष कराना, नायिका के समक्ष सुन्दर वस्तुओं का उल्लेख करना, चित्रों तथा दूसरों के सुरत-सम्भोग को दिखलाना, नायक के प्रेम, रतिकौशल तथा प्रार्थना आदि का नायिका से निवेदन करना लिखा है[3]। भानुदत्त ने 'रसमंजरी' में अवश्य सखी तथा दूती के कर्मों का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। सखी-कर्म के अन्तर्गत भानुदत्त ने मण्डन, उपालम्भ, शिक्षा तथा परिहास[4] एवं दूती-कर्म के अन्तर्गत सङ्घट्टन तथा विरहनिवेदन का उल्लेख किया है[5]। केशव उसी का कार्य शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, श्रृंगार करना, झुकना तथा उपालम्भ देना बतलाते हैं[6]। केशव के शिक्षा देना, श्रृंगार करना तथा उपालम्भ देना—इन तीन कर्मों के उल्लेख का आधार 'रसमंजरी' ही है। भानुदत्त के 'परिहास' को केशव ने छोड़ दिया है। केशव द्वारा निर्दिष्ट शेष कर्मों

---

१. दूत्यो दासी सखी कारुर्धात्रेयी प्रतिवेशिका ॥
लिङ्गिनी शिल्पिनी स्वं च नेतृमित्रगुणान्विताः ॥
—दशरूपक, श्लो० २६, पृ० ५० ।

२. श्रृंगारप्रकाश, भाग १ (प्रथम खण्ड), पृ० ५५ ।

३. विद्वेषं ग्राहयेत्पत्यौ रमणीयानि वर्णयेत् ।
चित्रान्सुरतसम्भोगानन्यासामपि दर्शयेत् ॥६४॥
नायकस्यानुरागं च पुनश्च रतिकौशलम् ।
प्रार्थनां चाधिकस्त्रीनिरवष्टम्भं च वर्णयेत् ॥६५॥
—कामसूत्र, भाग २, अधिकरण ५, अ० ४, पृ० ८४१ ।

४. अस्या मण्डनोपालम्भशिक्षापरिहासप्रभृतीनि कर्माणि ।
—रसमंजरी, पृ० १६२ ।

५. तस्याः (दूत्याः) सङ्घट्टनविरहनिवेदनादीनि कर्माणि ॥
—रसमंजरी, पृ० १६८ ।

६. शिक्षा विनय मनाइबो, मिलबै करहि सिंगार ।
झुकि अरु देइ उराहनो, यहु तिनको व्यवहार ॥
—र० प्रि०, प्र० १३, छं० १ ।

का वर्णन उनका अपना है।

हास्य-रस :

'रसिकप्रिया' के चौदहवें प्रकाश में हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्‌भुत तथा सम (शान्त) नामक रसों का वर्णन है। केशव के अनुसार जहाँ नेत्रों और वचनों की चेष्टाओं से मोद उत्पन्न होता है वहां हास्य रस होता है[१]। केशव का यह लक्षण किसी भी संस्कृत के आचार्य से साम्य नहीं रखता। भरत, धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ ने हास्य के छः भेदों का उल्लेख किया है। भरत तथा धनंजय के अनुसार हास्य के छः भेद हैं, स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित[२]। शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ द्वारा बतलाए छः भेद हैं, स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित तथा अतिहसित[३]। भोज ने केवल तीन ही भेद, स्मित, हसित तथा विहसित बतलाए हैं, परन्तु 'आदि' शब्द का प्रयोग कर उन्होंने यह मान लिया है कि हास्य के इनके अतिरिक्त और भेद भी होते हैं[४]। केशव ने हास्य के चार भेद किये हैं, मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास[५]। केशव मंदहास वहाँ मानते हैं जहाँ नेत्र, कपोल, दांत और ओंठ कुछ-कुछ विकसित होते हैं[६]। केशव के 'मंदहास' का यह लक्षण शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ के 'स्मित' के लक्षणों का सम्मिश्रण है। भूपाल के मत मे दांत, नेत्र और कपोल को कुछ-कुछ विकसित करने वाला हास 'स्मित' कहलाता है[७]। विश्वनाथ 'स्मित' वहाँ मानते हैं जहाँ नेत्र कुछ-कुछ विकसित होते हैं तथा ओठों का स्पन्दन होता है[८]। जहाँ हंसने के साथ-साथ मधुर ध्वनि भी सुनने में आती है और तन-मन मोहित हो जाता है, उसे

---

१. नयन बयन कछु करत जहं, जन को मोद उदोत।
चतुरचित पहिचानिये, तहां हास्य रस होत॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० १।

२. नाट्यशास्त्र, पृ० ९७ तथा दशरूपक, श्लो० ७६, ७७, पृ० १०८।

३. रसार्णवसुधाकर पृ० १६४ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २३२।

४. हासस्य स्मितहसितविहसितादयः—भेदा जायन्ते।
—स० कु० कण्ठाभरण, पृ० ६०६।

५. मंदहास कलहास पुनि, कहि केशव अतिहास।
कवि कोविद वर्णत सर्वं, अरु चौथो परिहास॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० २।

६. विकसहिं नयन कपोल कछु, दशन दशन के वास।
मन्दहास ताको कहैं, कोविद केशवदास॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० ३।

७. स्मितं चालक्ष्यदशनं दृक्कपोलविकासकृत्॥२०॥ —र० सु०, पृ० १६४।

८. ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरम्।
—सा०द०, परि० ३, का० सं० २३२।

केशव 'कलहास' कहते हैं[१]। केशव का 'कहलास' धनंजय तथा विश्वनाथ का 'विहसित' है। दोनों आचार्यों के मत में 'विहसित' वहाँ होता है जहाँ हंसने में मधुर ध्वनि होती है[२]। केशव का 'अतिहास[३]' भरत, धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ आदि आचार्यों द्वारा बतलाए 'अतिहसित' से केवल नाम में मिलता है, अन्यथा लक्षण में अन्तर है। केशव के 'परिहास'[४] को उपयु क्त सभी आचार्यों ने छोड़ दिया है। हास्य का यह भेद केशव का निजी है।

विभिन्न रसों के वर्ण :

विश्वनाथ ने शृंगार तथा हास्य से इतर रसों के लक्षण में रसविशेष के स्थायी भाव, वर्ण और देवता का विवरण दिया है। भरत ने लक्षण में इन बातों का उल्लेख न कर रसों के वर्ण एवं देवता का अलग वर्णन किया है। यद्यपि केशव ने विश्वनाथ के अनुकरण पर अपने लक्षणों में विविध रसों के वर्ण भी लिखे हैं, तथापि उनके इस वर्णन का आधार भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही जान पड़ता है। विश्वनाथ ने वीररस का वर्ण 'हेम' बतलाया है[५] परन्तु केशव ने वीर रस का वर्ण 'गौर' लिखा है[६]। भरत भी वीररस का वर्ण 'गौर' ही मानते हैं[७]। भरत के अनुसार शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस का वर्ण क्रमशः श्याम, श्वेत, कपोत, रक्त, गौर, कृष्ण, नील तथा पीत है[८]। केशव ने भी भरत का अनुकरण करते हुए करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स तथा अद्भुत रस का वर्ण क्रमशः कपोत, वरुण, गौर, श्याम, नील तथा पीत माना है। शृंगार और हास्य के समान ही केशव ने सम (शान्त) रस के वर्ण का भी उल्लेख नहीं किया है।

---

१. जहं सुनिये कल ध्वनि कछू, कोमल विमल विलास।
केशव तन मन मोहिये, बर्णहु कवि कलहास॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० ८।

२. मधुरस्वरं विहसितम्
—दशरूपक, पृ० १०८ तथा सा० द०, परि० ३, का० सं० २३२।

३. जहाँ हंसै निरशंक ह्वै, प्रकटै सुख मुख बास।
आधे आधे बरण पद, उपज परत अतिहास॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० १२।

४. जहं परिजन सब हंसि उठैं, तजि दम्पति की कान।
केशव कौनहुँ बुद्धिबल, सो परिहास बखान॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० १५।

५. साहित्यदर्पण, परि० ३, का० सं० २३८।

६. होहि वीर उत्साहमय गौर वर्ण द्युति अंग।
अति उदार गम्भीर कहि, केशव पाइ प्रसंग॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० २४।

७. गौरो वीरस्तु विज्ञेयः। —ना० शा०, श्लो० ४४, पृ० ६५।

८. नाट्यशास्त्र, पृ० ६५।

शृङ्गार तथा हास्य से इतर रसों का निरूपण :

करुण रस :

प्रिय के विप्रियकरण से 'करुण रस' की उत्पत्ति होती है[१]। इस सम्बन्ध में डा० भगीरथ मिश्र का मत उल्लेखनीय है। उनका कथन है—"प्रिय के अनिष्ट से करुण रस उत्पन्न होता है, यथा—प्रिय के विप्रियकरण ते आन करुण रस होत, जिसके दो अर्थ हो सकते हैं। प्रिय कोई अनचाही बात करता है अथवा प्रिय का अनिष्ट कोई करता है। कुछ भी हो केशव का विचार इस रस में पूर्णता लिये हुए नहीं है, क्योंकि करुणा का प्रभाव केवल प्रिय ही के अनिष्ट से नहीं होता, अपरिचित के अनिष्ट से भी करुणा जाग्रत हो जाती है[२]।" भरत के अनुसार इष्टवध के दर्शन अथवा विप्रिय वचनों के श्रवण से करुण रस की उत्पत्ति होती है[३]। भरत का यह लक्षण केशव की अपेक्षा अधिक व्यापकता लिये है। 'विप्रिय' शब्द ही आचार्यों के लक्षणों में मिलता है।

रौद्र रस :

केशव के अनुसार जहाँ क्रोध के कारण विग्रह तथा उग्र शरीर हो जाता है वहाँ रौद्र रस होता है[४]। भरत ने लिखा है कि युद्ध में प्रहार, घात, विकृतच्छेदन, विदारण, संभ्रम आदि से रौद्र रस की निष्पत्ति होती है[५]। भरत द्वारा बतलाई गई युद्ध की विविध चेष्टाओं का केशव के 'विग्रह' शब्द में ही अन्तर्भाव हो जाता है। भरत ने अपने लक्षण में रौद्र के स्थायी भाव का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु केशव ने रौद्र के स्थायीभाव 'क्रोध' का नाम दिया है। यहाँ पर केशव ने विश्वनाथ का ही अनुसरण किया है।

वीर रस :

केशव वीर रस को उत्साहमय, गौरवर्ण, उदार तथा गम्भीर मानते हैं[६]। भरत के अनुसार उत्साह, अध्यवसाय, अविषाद, अविस्मय तथा अमोह आदि से वीर रस उत्पन्न होता है[७]। 'उत्साह' शब्द को दोनों ही आचार्यों ने अपने-अपने

---

१. प्रिय के विप्रियकरण ते, आन करुण रस होत।
ऐसे बरन बखानिये, जैसे तरुण कपोत॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० १८।

२. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ७०।

३. नाट्यशास्त्र, पृ० ९९।

४. होहि रौद्ररस क्रोध में, विग्रह उग्र शरीर।
अरुण वर्ण वर्णत सबै, कहि केशव मतिधीर॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० २१।

५. नाट्यशास्त्र, पृ० १००।

६. होहि वीर उत्साहमय, गौरवर्ण, द्युति अङ्ग।
अति उदार गम्भीर कहि, केशव पाइ प्रसंग॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं २४।

७. नाट्यशास्त्र, पृ० १०१।

लक्षण में लिखा है। भरत द्वारा निर्दिष्ट शेष बातें केशव के 'उदार' तथा 'गम्भीर शब्दों में ही आ जाती हैं। केशव ने उसके भेद नहीं दिए हैं।

भयानक रस :

केशव भयानक रस की उत्पत्ति किसी भयावह वस्तु के दर्शन अथवा श्रवण से बतलाते हैं[1]। भरत लिखते हैं कि विकृत (घोर) शब्द करने वाले जीव के दर्शन, संग्राम, अरण्य और शून्य गृह में जाने एवं गुरु और नृप के अपराध करने के फलस्वरूप उत्पन्न भय से भयानक रस की उत्पत्ति होती है[2]। भरत का यह लक्षण केशव की अपेक्षा अधिक पूर्ण है।

वीभत्स रस :

केशव के अनुसार वीभत्स रस निंदामय होता है और उसकी उत्पत्ति तब होती है जब किसी वस्तु के दर्शन अथवा श्रवण से तन-मन में उसकी ओर से घृणा हो जाती है[3]। भरत किसी अनीप्सित वस्तु के दर्शन, उसकी गंध, रस, स्पर्श अथवा शब्ददोष से एवं अन्य बहुत सी उद्वेगजनक वस्तुओं से वीभत्स रस की उत्पत्ति मानते हैं[4]। भरत का यह लक्षण भी केशव की अपेक्षा अधिक विशिष्ट है।

अद्भुत रस :

केशव के मत में अद्भुत रस की उत्पत्ति वहाँ होती है जहाँ किसी वस्तु को देखने अथवा सुनने से आश्चर्य होता है[5]। भरत अतिशयार्थयुक्त शब्दावली, शिल्प, कार्य एवं रूप आदि को अद्भुत रस के विभाव-रूप बतलाते हैं[6]। भरत का यह लक्षण केशव से अधिक व्यापक अवश्य है, परन्तु भाव केशव के समान ही है।

---

१. होहि भयानक रस सदा, केशव श्याम शरीर।
जाको देखत सुनत ही, उपजि परे भय भीर॥

—र० प्रि०, प्र० १४, छं० २४।

२. नाट्यशास्त्र, पृ० १०१।

३. निंदा भय बीभत्स रस नील वरण वपु तासु।
केशव देखत सुनत ही, तन मन होइ उदासु॥

—र० प्रि०, प्र० १४, छं ३०।

४. नाट्यशास्त्र, पृ० १०२।

५. होहि अचंभो देखि सुनि, सो अद्भुत रस जान।
केशवदास विलास निधि, पीत वर्ण वपु मान॥

—र० प्रि०, पृ० १४, छं० ३३।

६. नाट्यशास्त्र, पृ० १०२।

सम (शान्त) रस :

केशव ने 'समरस' वहाँ माना है जहाँ मन सब ओर से उदासीन होकर अथवा हटकर एक ही स्थान पर टिक जाता है[१]।

भरत शान्त रस का लक्षण देते हुए लिखते हैं कि बुद्धीन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय के सम्यक् निरोध के द्वारा अध्यात्मसंस्थित एवं सब जीवों के सुख और हित का चिन्तन करने वाली, सब प्राणियों पर समदृष्टि रखने वाली तथा जहाँ न सुख हो, न दुख हो, न द्वेष हो और न मत्सर हो, ऐसी स्थिति में शान्तरस होता है[२]। भरत का यह लक्षण केशव की अपेक्षा बहुत स्पष्ट एवं व्यापक है।

वृत्ति-वर्णन :

'रसिकप्रिया' के पन्द्रहवें प्रकाश में वृत्तियों का वर्णन किया गया है। केशव ने वृत्तियों के चार प्रकार, कौशिकी, भारती, आरभटी तथा सात्त्विकी बतलाकर उनके लक्षण तो दे डाले हैं[३] किन्तु 'वृत्ति' का सामान्य लक्षण नहीं दिया है। केशव ने इस बात का भी उल्लेख नहीं किया कि उन्होंने काव्य को ही वृत्तियों में बाँधा है, नाटक को नहीं[४]। केशव के विचार से 'कौशिकी' वृत्ति वहाँ होती है जहाँ करुण, हास्य अथवा शृंगार का वर्णन हो, सरल अक्षर हों तथा भाव सुन्दर हों[५]। जहाँ अद्भुत, हास्य अथवा वीर रस का निरूपण हो एवं शुभ अर्थ का द्योतन हो वहाँ 'भारती' वृत्ति होती है[६]। जहाँ रौद्र, भयानक तथा वीभत्स रस का वर्णन हो एवं पद-पद में यमकालंकार हो वहाँ 'आरभटी' होती है[७]। 'सात्त्विकी' वृत्ति में अद्भुत, वीर, शृंगार और

१. सब ते होइ उदास मन, बसै एक ही ठौर।
ताही सों समरस कहैं, केशव कविशिरमौर॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं ३८।

२. नाट्यशास्त्र, पृ० १०४।

३. प्रथम कौशिकी भारती, आरभटी भनि भाँति।
कहि केशव शुभ सात्त्विकी, चतुर चतुर विधि जाति॥
—र० प्रि०, प्र० १५, छं० १।

४. बाँधहु वृत्ति कवित्त की, कहि केशव विधि चारि।
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० ४२।

५. कहिये केशवदास जहँ, करुणा हास शृंगार।
सरल वर्ण शुभ भाव जहँ, सो कौशिकी विचार।
—र० प्रि०, प्र० १५, छं २।

६. वरणे जामें वीर रस, अरु अद्भुत रस हास।
कहि केशव शुभ अर्थ जहँ, सो भारती प्रकाश॥
—र० प्रि०, प्र० १५, छं० ४।

७. केशव जामें रुद्र रस, भय वीभत्सक जान।
आरभटी आरम्भ यह, पद पद जमक बखान॥
—र० प्रि०, प्र० १५, छं० ६।

सम (शान्त) रस का वर्णन होता है एवं सुनते ही अर्थ समझ में आ जाता है[१]।

केशव ने उक्त वृत्तियों में प्रायः यही उल्लेख किया है कि किन-किन रसों के वर्णन में कौन-कौन सी वृत्ति प्रयुक्त होती है। वस्तुतः उनके द्वारा दिये वृत्तियों के लक्षण वृत्तियों के लक्षण नहीं कहे जा सकते। भरत, धनंजय, भोज, मम्मट, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ आदि संस्कृत के सभी आचार्यों ने वृत्तियों का वर्णन किया है। भोज ने अपने 'शृंगार प्रकाश' के २७वें प्रकाश तथा 'सरस्वतीकुलकण्ठाभरण' के पाँचवें परिच्छेद में वृत्तियों का वर्णन तो किया है परन्तु यह नहीं बतलाया कि किन-किन रसों के वर्णन में कौन-कौन सी वृत्ति का प्रयोग होता है। भरत, धनंजय, शिङ्गभूपाल तथा विश्वनाथ ने इसका निर्देश किया है। धनंजय, विश्वनाथ तथा शिङ्गभूपाल के अनुसार शृंगार-रस के लिए 'कौशिकी' वृत्ति, वीर रस के लिए 'सात्वती' वृत्ति, रौद्र तथा बीभत्स रसों के लिए 'आरभटी' वृत्ति एवं सभी रसों के वर्णन के लिए 'भारती' वृत्ति उपयुक्त है[२]। मम्मट द्वारा उल्लिखित तीन प्रकार की वृत्तियाँ, उपनागरिका, परुषा एवं कोमला केशव से भिन्न हैं[३]। भरत के अनुसार शृंगार और हास्य के लिए 'कैशिकी' वृत्ति, रौद्र, वीर और अद्भुत रसों के लिए 'सात्वती' वृत्ति ; भयानक, बीभत्स और रौद्र रसों के लिए 'आरभटी' वृत्ति एवं करुण और अद्भुत रसों के लिए 'भारती' वृत्ति प्रयुक्त होती है[४]। केशव ने (मम्मट को छोड़कर) संस्कृत के उपर्युक्त भरतादि सभी आचार्यों की 'कैशिकी' तथा 'सात्वती' के स्थान पर क्रमशः 'कौशिकी' तथा 'सात्विकी' लिखा है। केशव के इस वृत्ति-वर्णन का आधारभूत ग्रन्थ भरत का 'नाट्यशास्त्र' ही जान पड़ता है। केशव ने 'कौशिकी' वृत्ति में करुण, सात्वती में शृङ्गार और सम रस तथा 'भारती' में हास्य और वीर रस का वर्णन करने का उल्लेख भरत की अपेक्षा अधिक किया है, शेष वर्णन दोनों आचार्यों का मिलता है। भरत ने 'भारती' वृत्ति में करुण, 'सात्वती' में रौद्र का वर्णन केशव से अधिक लिखा है।

अनरस-वर्णन :

केशव ने 'रसिकप्रिया' के सोलहवें अर्थात् अन्तिम प्रकाश में अनरस (रस-दोष) का वर्णन किया है। केशव ने 'अनरस' के पाँच प्रकार बतलाए हैं—प्रत्यनीक, नीरस,

---

१. अद्भुत वीर शृंगार रस, समरस बरणि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहि, सो सात्विकी सुजान ॥
—र० प्रि०, प्र० १५, छं० ८।

२. दशरूपक, पृ० ६१; साहित्यदर्पण, परि० ६, का० सं० ४१४ तथा र० सुधाकर, पृ० ८७।

३. काव्यप्रकाश, उल्लास ६, पृ० २०२।

४. शृंगारे चैव हास्ये च वृत्तिः स्यात् कैशिकीति सा।
सात्वती नाम सा ज्ञेया वीररौद्राद्भुताश्रया ॥६२॥
भयानके च बीभत्से रौद्रे चारभटी भवेत्।
भारती चापि विज्ञेया करुणाद्भुतसंश्रया ॥६३॥
—ना० शा०, पृ० ३२६-३३०।

विरस, दुःसंधान तथा पात्रादुष्ट[1]। केशव के विचार से 'प्रत्यनीक' वहाँ होता है जहाँ विरोधी-रसों, यथा श्रृङ्गार-वीभत्स, रौद्र-करुण आदि का साथ-साथ वर्णन हो[2]। केशव का यह दोष केशवमिश्र द्वारा उल्लिखित 'प्रक्रान्तरसवैरित्व' ही है[3]। 'नीरस' वहाँ होता है जहाँ नायक-नायिका मुँह से (मौखिक रूप में) तो मिले जान पड़ें, परन्तु हृदय में कपट भरा रहे[4]। 'विरस' वहाँ होता है जहाँ शोक में भोग का वर्णन होता हो[5]। केशवमिश्र ने इस दोष को 'अनौचिती' माना है। ये इसकी संस्थिति अनेक स्थलों पर बतलाते हैं। शिव-पार्वती अथवा माता-पिता के केलि-वर्णन, स्तनादि के अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन एवं नायिका के मानादि अथवा चरणप्रहारादि के कारण नायक के अत्यन्त क्रोध के वर्णन में यह दोष हो सकता है[6]। केशवमिश्र का यह लक्षण केशव की अपेक्षा अधिक व्यापक है। 'दुःसंधान' वहाँ होता है जहाँ एक की अनुकूलता तथा अन्य की प्रतिकूलता का वर्णन हो[7]। जहाँ जिसको जैसा न समझे उसको वैसा कहने

---

१. प्रत्यनीक नीरस विरस केशव दुःसंधान।
पात्रादुष्ट कवित्त बहु, करहिं न सुकवि बखान ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० १।

२. जहं श्रृंगार वीभत्स भय, विरसहि वरणे कोइ।
रौद्र सु करुणा मिलत ही, प्रत्यनीक रस होइ ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० २।

३. प्रक्रान्तरसवैरित्वं तेषां व्यक्तिविपर्ययः।
अनौचिती च सर्वत्र रसे दोषाः स्युरीदृशाः ॥

—अलंकारशेखर, मरीचि २१, श्लो० २।

४. जहाँ दम्पती मुँह मिलै, सदा रहै यह रीति।
कपट रहै लपटाय मन, नीरस रस की प्रीति ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं ४।

५. जहाँ शोक महँ भोग को, वरणि कहै कवि कोइ।
केशवदास हुलास सों, तहं ही वीरस होइ ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० ६।

६. भवानीशंकरादीनां पित्रोर्वा केलिवर्णनम्।
अन्युक्तिर्वा नमःसाम्यं स्तनादौ स्यादनौचिती ॥
नायिकाया मानादिना चरणप्रहारादिना वा।
नायकस्यात्यन्तिककोपवर्णनम् ॥

—अलंकारशेखर, मरीचि २१, पृ० ८० और ८१।

७. येक होइ अनुकूल जहं, दूजो है प्रतिकूल।
केशव दुःसंधान रस शोभित तहां समूल ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० ८।

पर, विचारहीन वर्णन में 'पात्रादुष्ट' दोष की संस्थिति मानी गई है[१] । 'अलंकारशेखर' में इसे 'व्यक्तिविपर्यय'[२] दोष माना गया है। केशव के 'नीरस' का भी अन्तर्भाव इसी दोष में हो जाता है। इस प्रकार केशव के 'अनरस-वर्णन' का आधार 'अलंकारशेखर' प्रतीत होता है। केशव के रस-दोष वैज्ञानिक दृष्टि से ठीक नहीं जान पड़ते।

मुख्यरस :

केशव के अनुसार मुख्य रस चार हैं, वीभत्स, शृङ्गार, वीर तथा रौद्र। शान्त रस को छोड़कर शेष रसों की उत्पत्ति इन्हीं से होती है। वीभत्स से भय, शृंगार से हास्य, वीर से अद्भुत और रौद्र से करुणा[३] । यह धारणा मौलिक न होकर भरत[४] का अनुवाद-मात्र ही है।

मौलिकता :

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि केशव ने अपने रस एवं नायिका-भेद के वर्णन का आधार भरत, धनंजय, भोज, शिङ्गभूपाल, विश्वनाथ, भानुदत्त आदि संस्कृत के आचार्यों को बनाया है। नायिका-भेद में निरूपित मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं के कुछ उपभेदों का तो विश्वनाथ से पूर्ण साम्य है और कुछ के नाम मौलिकता लाने की दृष्टि से बदल दिये गए हैं। नायक-नायिकाओं एवं रस के विविध अवयवों के लक्षण प्रस्तुत करते हुए भी केशव ने मौलिकता से काम लिया है। दक्षिण नायक, मध्या धीराधीरा नायिका, प्रौढ़ा अधीरा नायिका, परकीया नायिका, मध्यमा तथा अधमा नायिका, स्वकीया, परकीया तथा सामान्या के अभिसार, भाव, व्यभिचारी भाव, हेला हाव, विप्रलम्भ शृंगार, अभिलाषा, प्रलाप तथा उन्माद, हास्य रस आदि के लक्षण केशव के निजी हैं और संस्कृत के किसी भी आचार्य से साम्य नहीं रखते। इनमें भी परकीया नायिका का लक्षण केशव की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। केशव के जाति के अनुसार पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी तथा अगम्या नायिकाओं के वर्णन का आधार कामशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। संस्कृत के साहित्याचार्यों में से किसी ने भी जाति के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण अथवा अगम्या नायिकाओं का विवरण नहीं दिया है। केशव द्वारा वर्णित नायक-नायिका के प्रथम-मिलन-स्थानों

---

१. जैसो जहाँ न बूझिये, तैसो करिये पुष्ट।
बिनु विचार जो बरनिये, सो रस पातरदुष्ट ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० १०।

२. यद्व्यक्तौ यद्वर्णनमनुचितं तत्र तद्वर्णनम्।

—अलंकारशेखर, मरीचि २१, पृ० ८०।

३. भय उपजै वीभत्स ते, अरु शृंगार ते हास।
केशव अद्भुत वीर ते, करुणा कोप प्रकास ॥

—र० प्रि०, प्र० १६, छं० १३।

४. शृंगारादि भवेद्धास्यो रौद्राच्च करुणो रसः।
वीराच्चैवाद्भुतोत्पत्तिर्वीभत्साच्च भयानकः ॥४०॥

—ना० शा०, पृ० ६४।

को भी उपर्युक्त संस्कृत के साहित्याचार्यों ने छोड़ दिया है। इसी प्रकार १६ शृङ्गारों तथा सखियों के कर्मों के अन्तर्गत शिक्षा देना, विनय करना, मनाना तथा मिलाना आदि चार कार्यों का वर्णन भी केशव की मौलिक उद्भावना है। 'बोध' हाव, 'आधि' स्थायीभाव तथा हास्य रस के भेद 'परिहास' का भी उल्लेख उपर्युक्त संस्कृत साहित्याचार्यों में से किसी ने नहीं किया है।

यद्यपि रस तथा नायिका-भेद के निरूपण में केशव को अलंकार-निरूपण की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त हुई है, किन्तु फिर भी उन्हें पूर्ण सफल नहीं कहा जा सकता। इसका प्रथम कारण तो यह है कि केशव के लक्षणों में से कुछ लक्षण ऐसे हैं जिनका भाव स्पष्ट नहीं है, यथा अनुभाव, हाव, विलास तथा कुट्टमित हाव, समस्तरसकोविदा, प्रौढ़ा नायिका आदि के लक्षण। केशव ने 'विभाव' का जो लक्षण दिया है वह भी शास्त्रीय नहीं है। दूसरे, उनके दो-एक लक्षण अपूर्ण भी हैं, जैसे केशव का करुणा-विरह का लक्षण[1]। इसके अतिरिक्त सबसे मुख्य दोष जो उनके रसविवेचन में दिखाई पड़ता है वह यह है कि ठूंस-ठूंस कर विभावादि की योजना से केशव के विभिन्न रसों के उदाहरणों में रसविशेष का यथार्थ स्वरूप अभिव्यक्त नहीं हो सका है। उदाहरणार्थ उनके हास्य रस के उदाहरणों में हास्य की भावना जाग्रत नहीं होती है। एक छन्द नीचे दिया जाता है—

भेद की बात सुने ते कछू वह मासिक ते मुसुकानि लगी है।
बैठति है तिन में हठि कै जिन की तुम सों मति प्रेम पगी है।
जानति हौं नलराज दमंती की दूत कथा रस रंग रंगी है।
पूजैगी साध सबै सुख की बड़भाग की केशव ज्योति जगी है[2]॥

यह हास्य रस का उदाहरण न होकर शृङ्गार रस का ही उदाहरण बन गया है। इसी प्रकार उनका बीभत्स रस का उदाहरण[3] न तो बीभत्स रस का उदाहरण बन पाया है और न शृंगार का ही।

---

१. छूटि जात केशव जहाँ, सुख के सबै उपाय।
करुणा रस उपजत तहाँ, आपुन ते अकुलाय॥
—र० प्रि०, प्र० ११, छं० १।

२. र० प्रि०, प्र० १४, छं० ५।

३. माता ही को मास तोहिं लागतु है मीठो मुख,
पियत पिता को लोहू नेकू न अघाति है।
भैयन के कंठनि को काटत न कसकति,
तेरो हियो कैसो है जु कहत सिहाति है॥
जब जब होति भेंट मेरी भटू तब तब,
ऐसी सोहै दिन उठि खाति न अघाति है।
प्रेतिनी पिशाचिनी निशाचरी की जाई है तू,
केशोराइ की सों कहु तेरी कौन जाति है॥
—र० प्रि०, प्र० १४, छं० ३१।

(इ) केशव के काव्य-सम्बन्धी विचार :

केशव ने 'रसिकप्रिया' और 'कविप्रिया' के अतिरिक्त अपने अन्य ग्रन्थों में भी यत्र-तत्र इतना कुछ कह दिया है कि उसके आधार पर उनके काव्य-सम्बन्धी विचारों को भली-भाँति जाना जा सकता है। केशव 'रामचन्द्रिका' तथा 'वीरसिंहदेव-चरित' में लिखते हैं कि कोमल शब्दों से युक्त, सुन्दर छन्द में रचित, अलंकारमय तथा मन को मोहित करने वाली रचना काव्य कहलाती है[1]। 'मोहनचित्त' शब्द इस बात का द्योतक है कि केशव काव्य में रस के महत्त्व को स्वीकार करते हैं। इसका और भी स्पष्ट शब्दों में समर्थन उन्हीं के अपने कथन से हो जाता है। वे 'रसिकप्रिया' में लिखते हैं कि रसाल वाणी के बिना कवि दृष्टि-विहीन विशाल नेत्रों के सदृश शोभा नहीं पाता, अतः उसे सोच-समझकर अपनी रुचि के अनुसार सरस काव्य की रचना करनी चाहिए[2]। साथ ही कवि को यह भी ध्यान रखना चाहिए कि काव्य सर्वथा दोष से मुक्त हो[3]। केशव ने काव्य में अलंकार के पक्ष का समर्थन 'कविप्रिया' में भी किया है[4]।

इस प्रकार केशव की दृष्टि में वह रचना जो दोष रहित, कोमल शब्दों से युक्त, सुन्दर वृत्त में रचित और रसात्मक हो तथा जिसमें अलंकार भी हों 'काव्य' कहलाती है।

---

१. कोमल शब्दनिवन्त सुवृत्त। अलङ्कारमय मोहनचित्त।
काव्य सुपद्धति सोभा गहे। इनके बाहुपाश कवि कहे॥

—रा० चं०, प्र० ३१, छं० २५।

कोमल सब्दनिवन्त सुवृत्त। अलंकारमय मोहनचित्त॥
काव्य पद्धतिहि सोभा गहै। तिन सो बाहु कोस कवि कहै॥

—वी० दे० च०, पृ० १३४।

२. ज्यों बिन डीठ न शोभिये, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन वाणी न रसाल॥
ताते रुचि शुचि शोचि पचि, कीजै सरस कवित्त।
केशव श्याम सुजान को, सुनत होइ वश चित्त॥

—र० प्रि०, प्र० १, छं० १३-१४।

३. राजत रंच न दोषयुत, कविता बनिता मित्र॥
बुंदक हाला परत ज्यों गंगा घट अपवित्र॥

—क० प्रि०, प्र० ३, छं० ५।

४. जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिनु न विराजई, कविता बनिता मित्त॥

—क० प्रि०, प्र० ५, छं० १।

आठवाँ अध्याय

केशव तथा हिन्दी के परवर्त्ती आचार्य

प्रमुख आचार्य-कवि

हम पहले कह आये हैं कि हिन्दी साहित्य में रीतिग्रन्थों की रचना का सूत्रपात केशव के पूर्व हो चुका था, परन्तु उनमें काव्य के विभिन्न अंगों का सांगोपांग विवेचन नहीं हुआ था। काव्य के प्रायः सभी अंगों का सम्यक् और शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण कर हिन्दी में रीति-प्रवाह के लिए निर्बाध मार्ग खोलने का श्रेय केशव को ही है। इसके उपरान्त इनके द्वारा प्रदर्शित मार्ग का अनुसरण करने वाले अनेक आचार्य-कवि हुए जिन्होंने काव्य के प्रायः सभी अंगों का विस्तृत विवेचन किया। ऐसे आचार्यों में चिन्तामणि, मतिराम, कुलपति मिश्र, देव, दास तथा पद्माकर प्रमुख हैं। इस अध्याय में हम उपर्युक्त आचार्यों से आचार्य केशवदास की तुलना करने का प्रयास करेंगे।

तुलनात्मक अध्ययन :

(१) अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में :

चिन्तामणि तथा केशव :

डा० भगीरथ मिश्र के अनुसार चिन्तामणि त्रिपाठी की गणना केशव के बाद के सब से पहले आचार्यों में ही नहीं, सब से पहले बड़े आचार्यों में है[१]। इनका जन्म-काल संवत् १६६६ के लगभग और कविताकाल संवत् १७०० के आसपास माना जाता है[२]। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इनके 'काव्यविवेक', 'कविकुलकल्पतरु' 'काव्यप्रकाश', 'पिंगल', 'रामायण' तथा 'रसमंजरी' नामक रचनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से चिन्तामणि का सब से प्रमुख और प्रशंसनीय ग्रन्थ 'कविकुलकल्पतरु' है। इसका रचनाकाल संवत् १७०७ है। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में उन्होंने काव्य-शास्त्र के गुण, अलंकार, दोष, शब्दशक्ति, रस एवं नायिका-भेद आदि प्रमुख अंगों का विवेचन किया है। यहाँ इसी के आधार पर आचार्य केशव से चिन्तामणि का मिलान किया गया है।

'कविकुलकल्पतरु' ग्रन्थ में चिन्तामणि ने शब्द और अर्थ दो प्रकार की गतियों के कारण शब्द और अर्थ दो प्रकार के अलंकारों का उल्लेख किया है[३]। केशव ने इस

---

१. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ७३।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६६।

३. शब्द अर्थगति भेद सों अलंकार द्वै भाँति।

—क० कु० तरु, पृ० १६, छं० १।

प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। दूसरे तथा तीसरे अध्याय में क्रमशः जिन शब्दालंकारों और अर्थालङ्कारों का चिन्तामणि ने विवरण दिया है, उनके नाम निम्नलिखित हैं—

शब्दालंकार :

१. वक्रोक्ति, २. अनुप्रास, ३. लाटानुप्रास, ४. यमक, ५. श्लेष, ६. पुनरुक्तवदाभास, तथा ७. चित्र[1]।

अर्थालंकार :

१. उपमा, २. मालोपमा, ३. रशनोपमा, ४. अनन्वय, ५. उपमेयोपमान, ६. उत्प्रेक्षा, ७. स्मरण, ८. रूपक, ९. परिणाम, १०. सन्देह, ११. भ्रान्तिमान्, १२. अपह्नुति, १३. उल्लेख, १४. अतिशयोक्ति, १५. समासोक्ति, १६. स्वभावोक्ति, १७. व्याजोक्ति, १८. सहोक्ति, १९. विनोक्ति, २०. सामान्य, २१. तद्गुण, २२. अतद्गुण, २३. विरोध, २४. विशेष, २५. अधिक, २६. विभावना, २७. विशेषोक्ति, २८. असंगति, २९. विचित्र, ३०. अन्योन्य, ३१. विषम, ३२. सम, ३३. तुल्ययोगिता, ३४. दीपक, ३५. मालादीपक, ३६. प्रतिवस्तूपमा, ३७. दृष्टान्त, ३८. निदर्शना, ३९. व्यतिरेक, ४०. अर्थश्लेष, ४१. परिकर, ४२. आक्षेप, ४३. व्याजस्तुति, ४४. अप्रस्तुतप्रशंसा, ४५. पर्यायोक्ति, ४६. प्रतीप, ४७. अनुमान, ४८. काव्यलिङ्ग, ४९. अर्थान्तरन्यास, ५०. यथासंख्य, ५१. अर्थापत्ति, ५२. परिसंख्या, ५३. समुच्चय, ५४. समाधि, ५५. भाविक, ५६. व्याघात, ५७. पर्याय, ५८. कारणमाला, ५९. एकावली, ६०. परिवृत्त, ६१. प्रत्यनीक, ६२. सूक्ष्म, ६३. सार, ६४. उदार (उदात्त)[2], ६५. संश्लिष्ट, तथा ६६. संकर।

'कविकुलकल्पतरु' में वर्णित अलंकारों में से वक्रोक्ति, यमक, श्लेष, चित्र, उपमा, मालोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, स्वभावोक्ति, सहोक्ति, विरोध, विशेष, विभावना, विशेषोक्ति, दीपक, मालादीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, आक्षेप, व्याजस्तुति, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, परिवृत्त तथा सूक्ष्म केशव की 'कविप्रिया' में भी मिलते हैं। चिन्तामणि द्वारा बतलाए हुए शेष अलंकारों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। शब्दालंकारों के अन्तर्गत चिन्तामणि ने जो सात अलंकार गिनाए हैं, उनमें से केशव ने वक्रोक्ति, यमक, श्लेष और चित्र—इन चार अलंकारों का ही वर्णन किया है। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित 'वक्रोक्ति' के दो भेद, काकु और श्लेष वक्रोक्ति केशव को मान्य नहीं हैं। सामान्य लक्षण का भाव दोनों का लगभग एक ही है। केशव ने इसे

---

१. सात शब्द अलंकार ये तिनमें शब्द जो होइ॥

—क० कु० तरु, पृ० १६, छं० ३।

२. जहाँ तहाँ सम्पति कथन सो उदार मन आनि।
जो उपलक्षन बड़ेन को वहो वहै पहिचानि॥

—क० कु० तरु, पृ० ६४, छं० ३०७।

'उक्ति' का भेद माना है। श्लेष के विभिन्न भेदों तथा रूपों का वर्णन करते हुए केशव ने इसका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, जो चिन्तामणि ने नहीं किया है। केशव द्वारा वर्णित 'यमक' के आदिपद, द्वितीयपद आदि तथा सव्ययेत और अव्ययेत आदि भेदों को चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। केशव ने 'यमक' का भी बहुत विस्तार से वर्णन किया है। 'अनुप्रास' को केशव अलंकार मानते ही नहीं हैं। 'पुनरुक्तवदाभास' को उन्होंने छोड़ दिया है। 'चित्रालंकार' का भी केशव ने बड़ा ही विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, परन्तु चिन्तामणि ने केवल खड्गबंध, कपाटबन्ध कमलबंध, अश्वगति, गोमूत्रिका बंध, कामधेनु तथा सर्वतोभद्र का उल्लेख करते हुए लिखा है कि चित्रालंकार अनेक प्रकार के होते हैं[1]। इनके केवल उदाहरण ही दिये गये हैं, लक्षण नहीं। केशव द्वारा वर्णित निरोष्ठ रचना, अमात्रिक रचना, नियमाक्षर रचना, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका, गूढ़ोत्तर आदि को चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। 'कविप्रिया' और 'कविकुलकल्पतरु' नामक ग्रन्थों में जिन अलंकारों का समान-रूप से निरूपण है, उनमें दोनों आचार्यों द्वारा दिए कुछ अलंकारों के लक्षण का भाव समान है और कुछ में अन्तर परिलक्षित होता है। चिन्तामणि तथा केशव दोनों आचार्यों के 'उपमा' के लक्षण का भाव एक ही है। चिन्तामणि ने 'उपमा' के पहले दो भेद, श्रौती और आर्थी बताकर फिर दोनों के पूर्णोपमा और लुप्तोपमा दो-दो भेद किए हैं (क० कु० तरु, पृ० २२, छं० २, ३)। केशव ने 'उपमा' के २२ भेदों का उल्लेख किया है। 'मालोपमा' का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है। केशव ने उसे 'उपमा' का भेद माना है और चिन्तामणि ने उसे पृथक् अलंकार माना है। दोनों के लक्षण भिन्न हैं। केशव के अनुसार 'मालोपमा' का लक्षण है—

जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा केशव कवि कुल गेय॥

(क० प्रि०, प्र०, १४, छं० ५२)

चिन्तामणि की 'मालोपमा' का लक्षण है—

जितय कहिव उपमेय जहं सो उपमान अनेक।
सो मालोपम जानिये भिन्नधर्म के एक॥

(क० कु० तरु, पृ० २३, छं १४)

चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित 'मालोपमा' के दो भेदों, भिन्नधर्मा तथा अभिन्नधर्मा को भी केशव ने छोड़ दिया है। उत्प्रेक्षा, विभावना, स्वभावोक्ति, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, आक्षेप, व्याजस्तुति, अपह्नुति, सूक्ष्म तथा रूपक आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य लक्षणों का भाव एक है। चिन्तामणि ने 'उत्प्रेक्षा' के दो भेदों, वाच्या और प्रतीयमाना के अलग-अलग चार-चार प्रकार (गुणगत, जातिगत, क्रियागत तथा द्रव्यगत) तथा वस्तु (उक्तविषया और अनुक्तविषया), हेतु और फल (सिद्धविषया और

---

१. चित्रालंकृत बहुत विधि वरनत सुकवि अनादि।
—क० कु० तरु, पृ० २०, छं० २१।

असिद्धविषया) आदि भेद बतलाए हैं। केशव ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि ने 'विभावना' का कोई भेद नहीं दिया है। केशव ने इसके दो भेद बतलाए हैं। चिन्तामणि की 'विभावना' का सामान्य लक्षण केशव की प्रथम विभावना से मिलता है, द्वितीय से नहीं। दोनों आचार्यों के 'स्वभावोक्ति' अलंकार के लक्षणों में साम्य है। केशव की स्वभावोक्ति का लक्षण है—

जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज॥

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ८)

और चिन्तामणि उसका लक्षण यों देते हैं—

जाको रूप स्वभाव अरु क्रिया जु जैसी होइ।
ताको तैसोई कथन सु स्वभावोक्ति कहि कोइ॥

(क० कु० तरु, पृ० ३६, छं० १२२)

केशव ने 'विशेषोक्ति' को 'उक्ति' का भेद माना है परन्तु चिन्तामणि ने इसे पृथक् ही अलंकार समझा है। केशव द्वारा बतलाए गए 'व्यतिरेक' के सहज और युक्ति व्यतिरेक नामक भेदों को चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। केशव ने 'आक्षेप' का वर्णन करते हुए 'प्रतिषेध' भावी, भूत और वर्तमान तीनों ही कालों में माना है, परन्तु चिन्तामणि ने विवक्षित अर्थ का 'निषेध' वक्ष्यमाण, भावी तथा उक्त विषय (भूत) में ही माना है। केशव द्वारा वर्णित 'आक्षेप' के अन्य नौ प्रकारों का चिन्तामणि ने कोई विवरण नहीं दिया है। चिन्तामणि की 'व्याजस्तुति'[1] में केशव के 'व्याजस्तुति' और 'निन्दास्तुति' दोनों ही अलंकारों का अन्तर्भाव हो जाता है। चिन्तामणि तथा केशव दोनों ने ही 'अपह्नुति' के भेद नहीं दिये हैं। चिन्तामणि ने 'सूक्ष्म' का निम्नलिखित लक्षण दिया है—

होइ जु कौनो अर्थ तें सूछम अर्थ प्रकास।
सूछम नाम प्रसिद्ध यह अलंकार सुख वास॥

(क० कु० तरु, पृ० ६३, छं० ३०३)

केशव का 'सूक्ष्म' का लक्षण अधिक पूर्ण है। देखिए—

कौनहु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
इंगित ते आकार तें, कहि सूक्षम अवदात॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४५)

चिन्तामणि का 'विरोध'[2] अलंकार केशव के 'विरोधाभास' से मिलता है किन्तु केशव

---

१. स्तुति निन्दा मिसि करै अस्तुति निन्दा होइ।
चिन्तामनि कवि कहत है व्याजस्तुति सोइ॥
—क० कु० तरु, पृ० ५२, छं० २१८।

२. सो विरोध अविरुद्ध में जहं विरोध अभिधान।
सु तौ जाति गुन क्रिया अरु द्रव्य माहं सुजान॥
—क० कु० तरु, पृ० ४१, छं० १३७।

ने जाति, गुण, द्रव्य और क्रिया आदि के विरोध का अपने लक्षण में कोई उल्लेख नहीं किया है। दोनों आचार्यों द्वारा दिए 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है। केशव के 'रूपक' का लक्षण है—

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो वरनिये रूप।
ताही सों सब कहत हैं, केशव रूपक रूप॥
(क० प्रि०, प्र० १२, छं० १२)

चिन्तामणि ने 'रूपक' का लक्षण इस प्रकार दिया है—

जहाँ विषई अर विषय को बरन्यों होइ अभेद।
अलंकार रूपक तहाँ समझो सुजन अखेद॥
(क० कु० तरु, पृ० ३२, छं० ७१)

चिन्तामणि ने, 'रूपक' के सावयव (सर्ववस्तुविषयक, एकदेशविवर्ती और परम्परित) और निरवयव (केवल और मालारूपक) आदि भेदों का उल्लेख किया है, केशव ने अद्भुत, विरुद्ध और रूपक-रूपक का।

सहोक्ति, विरोध, विशेष, दीपक, मालादीपक, निदर्शना, पर्यायोक्ति, अर्थान्तर-न्यास तथा परिवृत्त आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षण भिन्न हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं—

सहोक्ति का लक्षण :

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही बरणत केशवदास॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २०)

संग अर्थ के शब्द बल है वाचक पद एक।
तहाँ सहोकति होति है यों कवि करत विवेक॥
(चिन्तामणि—क० कु० तरु, छं० १२६)

अर्थान्तरन्यास का लक्षण :

और आनिये अर्थ जहँ औरे वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६५)

करत परसपर जो मथन जो सामान्य विशेष।
सो अर्थान्तरन्यास कहि लखि पंडितगन लेष॥
(चिन्तामणि—क० कु० तरु, छं० २४६)

परिवृत का लक्षण :

जहां करत कछु और ही उपजि परति कछु और।
तासों परिवृत जानियो, केशव कवि सिरमौर॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ३६)

जहं समास सम अर्थ को बदलो बरन्यो होइ।
चिन्तामनि परवृत्त वह बरनत है कवि लोइ॥
(चिन्तामणि—क० कु० तरु, छं० २६८)

निदर्शना का लक्षण :

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना, समुझत सकल सुजान॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६)

अनहोनी जग वस्तु को कछु सम्बन्ध जु होइ।
उपमा परकल्पक इतं निदर्सना कहि सोइ॥
(चिन्तामणि—क० कु० तरु, छं० १६८)

'दीपक' के केशव ने दो भेदों, मणिदीपक और माला दीपक का ही वर्णन किया है। साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि 'दीपक' के अनेक भेद होते हैं। परन्तु चिन्तामणि ने इसे पृथक् अलंकार माना है। चिन्तामणि ने विशेष के तीन प्रकार बतलाए हैं, जो केशव ने छोड़ दिए हैं। 'अर्थान्तरन्यास' के केशव चार भेद, युक्त, अयुक्त, अयुक्तायुक्त तथा युक्त-अयुक्त स्वीकार करते हैं, जिनका चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है। वे सामान्य का विशेष से और विशेष का सामान्य से समर्थन किए जाने को ही 'अर्थान्तरन्यास' कहते हैं।

केशव के क्रम, गणना, आशिष, लेश, प्रेम, ऊर्जस्, रसवत, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, अमित, समाहित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का 'कविकुलकल्पतरु' में कोई उल्लेख नहीं है।

मतिराम तथा केशव :

मतिराम रीतिकाल के प्रधान आचार्य-कवियों में माने जाते हैं और चिन्तामणि तथा भूषण के भाई परम्परा से प्रसिद्ध हैं। इनका जन्म संवत् १६७४ के लगभग बताया जाता है। ये बूंदी के महाराज भाऊसिंह के यहां बहुत दिनों तक रहे और उन्हीं के आश्रय में 'ललितललाम' नामक ग्रन्थ संवत् १७१६ और १७४५ के बीच रचा। इसके अतिरिक्त उनके फूल मंजरी, रसराज, छन्द-सार-पिंगल, मतिराम सतसई, साहित्यसार, लक्षण शृंगार, अलंकार-पंचाशिका तथा वृत्त कौमुदी (१) आदि ग्रन्थ और बतलाए जाते हैं (मतिराम ग्रन्थावली, भूमिका, पृ०२२८-२३५)। 'रसराज' में भाव, रस तथा नायिका-भेद आदि का निरूपण है। 'ललितललाम' अलंकार-विषयक ग्रन्थ है। मतिराम के आचार्यत्व की प्रतिष्ठापक मुख्यतया ये ही दोनों

कृतियाँ हैं। यहाँ पर 'ललितललाम' के आधार पर मतिराम की केशव से तुलना की गई है।

मतिराम ने अपने 'ललितललाम' नामक ग्रन्थ में ११२ अलंकारों का विवेचन किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. उपमा, २. मालोपमा, ३. रसनोपमा, ४. अनन्वय, ५. उपमेयोपमान, ६. प्रतीप, ७. रूपक, ८. परिणाम, ९. उल्लेख, १०. स्मृति, ११. भ्रम, १२. सन्देह, १३. शुद्धापह्नुति, १४. हेत्वपह्नुति, १५. पर्यस्तापह्नुति, १६. भ्रान्त्यपह्नुति, १७. छेकापह्नुति, १८. छलापह्नुति, १९. उत्प्रेक्षा, २०. रूपकातिशयोक्ति, २१. सापह्नवातिशयोक्ति, २२. भेदकातिशयोक्ति २३. सम्बन्धातिशयोक्ति, २४. अक्रमातिशयोक्ति, २५. चंचलातिशयोक्ति, २६. अत्यन्तातिशयोक्ति, २७. तुल्ययोगिता, २८. दीपक, २९. दीपकावृत्ति, ३०. प्रतिवस्तूपमा, ३१. दृष्टान्त, ३२. निदर्शना, ३३. व्यतिरेक, ३४. सहोक्ति, ३५. विनोक्ति, ३६. समासोक्ति, ३७. परिकर, ३८. परिकराङ्कुर, ३९. श्लेष, ४०. अप्रस्तुतप्रशंसा, ४१. प्रस्तुतांकुर, ४२. पर्यायोक्ति, ४३. व्याजस्तुति, ४४. व्याजनिन्दा, ४५. आक्षेप, ४६. विरोधाभास, ४७. विभावना, ४८. विशेषोक्ति, ४९. असंभव, ५०. असंगति, ५१. विषम, ५२. सम, ५३. विचित्र, ५४. अधिक, ५५. अल्प, ५६. परस्पर, ५७. विशेष, ५८. व्याघात, ५९. हेतुमाला, ६०. एकावली, ६१. मालादीपक, ६२, सार. ६३. यथासंख्य, ६४. पर्याय, ६५. परिवृत्ति, ६६. परिसंख्या, ६७. विकल्प, ६८. समुच्चय, ६९. कारकदीपक, ७०. समाधि, ७१. प्रत्यनीक, ७२. काव्यार्थापत्ति, ७३. अर्थान्तरन्यास, ७४. विकस्वर, ७५. प्रौढ़ोक्ति, ७६. संभावना, ७७. मिथ्याध्यवसित, ७८. ललित, ७९. प्रहर्षण, ८०. विषाद, ८१. उल्लास, ८२. अवज्ञा, ८३. अनुज्ञा, ८४. लेश, ८५. मुद्रा, ८६. रत्नावली, ८७. तद्गुण, ८८. अतद्गुण, ८९. पूर्वरूप, ९०. अनुगुण, ९१. मीलित, ९२. सामान्य, ९३. उन्मीलित, ९४. गूढ़ोत्तर, ९५. चित्र, ९६. सूक्ष्म, ९७. पिहित, ९८. व्याजोक्ति, ९९. गूढ़ोक्ति, १००. विवृतोक्ति, १०१. युक्ति, १०२. लोकोक्ति, १०३. छेकोक्ति, १०४. वक्रोक्ति, १०५. जाति, १०६. भाविक, १०७. उदात्त, १०८. अत्युक्ति, १०९. निरुक्ति, ११०. प्रतिषेध, १११. विधि, तथा ११२. हेतु।

उपर्युक्त अलंकारों में से उपमा, मालोपमा, रूपक (शुद्ध), अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, श्लेष, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, विशेष, मालादीपक, परिवृत्ति, अर्थान्तरन्यास, लेश, चित्र, सूक्ष्म, वक्रोक्ति, जाति तथा हेतु केशव की 'कविप्रिया' में भी वर्णित हैं। मतिराम द्वारा उल्लिखित शेष अलंकारों का केशव ने वर्णन नहीं किया है। केशव द्वारा सविस्तर वर्णित 'यमक' अलंकार को मतिराम ने छोड़ दिया है। 'चित्रालंकार' के अन्तर्गत केशव ने विस्तार के साथ विवेचन किया है किन्तु मतिराम ने 'चित्र' के केवल दो ही भेदों प्रथम तथा द्वितीय चित्र के लक्षण सोदाहरण लिखे हैं (ललितललाम. छं० ३५०-३५३, पृ० ४३१)। केशव के क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, ऊर्जस, रसवत, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, अमित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत ,यमक तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

'कविप्रिया' तथा 'ललितललाम' नामक ग्रन्थों में जिन अलंकारों का समान रूप से वर्णन है, उनमें दोनों आचार्यों द्वारा बतलाए गए कुछ अलंकारों के लक्षण मिलते हैं और कुछ लक्षण भिन्न हैं। मतिराम ने 'उपमा' के दो ही भेद पूर्णोपमा और लुप्तोपमा का उल्लेख किया है[1]। केशव ने 'उपमा' के बाईस भेदों का वर्णन किया है। 'मालोपमा' को मतिराम पृथक् अलंकार मानते हैं। केशव ने उसे 'उपमा' का ही एक भेद माना है। 'मालोपमा' के दोनों आचार्यों के लक्षणों में अन्तर है। केशव ने 'मालोपमा' का निम्नलिखित लक्षण लिखा है—

जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा केशव कविकुल गेय।।

(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ४२)

तथा मतिराम का 'मालोपमा' का लक्षण है—

जहाँ एक उपमेय कौं होत बहुत उपमान।
तहाँ कहत मालोपमा कबि मतिराम सुजान।।

(ललितललाम, छं० ४८)

रूपक, शुद्ध (अपह्नुति) उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, श्लेष, व्याजस्तुति, निन्दास्तुति, विरोधाभास, विशेषोक्ति, सूक्ष्म, वक्रोक्ति तथा जाति[2] आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य लक्षणों में भाव-साम्य है। मतिराम ने 'रूपक' के पहले दो भेद, अभिन्न और तद्रूप किए हैं और फिर इन दोनों में से प्रत्येक के तीन और भेद किए हैं, समोक्ति, हीनोक्ति और अधिकोक्ति[3]। केशव ने अद्‌भुत, विरुद्ध तथा रूपक-रूपक का उल्लेख किया है। मतिराम की 'शुद्धापह्नुति' और केशव की 'अपह्नुति' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है। केशव ने मतिराम द्वारा बतलाए 'अपह्नुति' के अन्य भेदों, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रांत्यपह्नुति, छेकापह्नुति तथा छलापह्नुति को छोड़ दिया है। केशव ने 'उत्प्रेक्षा' के भेद नहीं किए हैं। मतिराम ने 'उत्प्रेक्षा' के तीन भेदों वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा और फलोत्प्रेक्षा का उल्लेख कर वस्तूत्प्रेक्षा के उक्तविषया और अनुक्तिविषया एवं हेतूत्प्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा दोनों में से प्रत्येक के सिद्धविषया और असिद्धविषया नामक और भेदों का वर्णन किया है[4]। केशव के अनुसार 'निदर्शना' का लक्षण है—

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट, निदर्शना, समुझत सकल सुजान।।

(क० प्रि०, प्र० १२, छं० ४८)

---

१. ललितललाम, छं० ४३ तथा ४६, पृ० ३६६।
२. केशव ने इसका नाम 'स्वभाव' लिखा है।
३. ललितललाम, छं० ६८, पृ० ३७४।
४. ललितललाम, छं० १००-१०२, पृ० ३८२।

मतिराम ने सत अथवा असत भाव के एक ही क्रिया द्वारा द्योतित कराये जाने को तृतीय निदर्शना माना है। उन्होंने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है--

करत सत असत अर्थ को एक क्रिया सों बोध।
निदरसना यह और हू कहत सुकवि मति सोध ।।

(ललितललाम छं० १५२)

मतिराम ने इसके प्रथम तथा द्वितीय दो और भेद बतलाए हैं। केशव ने इस अलंकार के कोई भेद नहीं किये हैं। दोनों आचार्यों द्वारा दिए गए 'व्यतिरेक' के लक्षणों का भाव एक ही है। मतिराम ने इसके भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव ने इसके दो भेद, सहज तथा युक्ति व्यतिरेक बतलाए हैं। मतिराम ने 'श्लेष' के केवल प्रकृत, अप्रकृत और प्रकृताप्रकृत भेदों का ही वर्णन किया है[१]। केशव ने इसके विभिन्न भेदों का उल्लेख करते हुए इस अलंकार का विस्तृत विवेचन किया है। केशव के 'आक्षेप' अलंकार के सामान्य लक्षण तथा मतिराम के 'प्रथम आक्षेप' के लक्षण में साम्य है। मतिराम ने 'आक्षेप' के तीन भेद प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय बतलाए हैं, परन्तु केशव ने 'आक्षेप' के नौ प्रकारों का वर्णन किया है। केशव ने 'विभावना' के प्रथम तथा द्वितीय दो भेद किए हैं। मतिराम ने प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि छः भेदों का उल्लेख किया है। केशव तथा मतिराम दोनों आचार्यों की 'प्रथम विभावना' के लक्षण परस्पर मिलते हैं। केशव की 'दूसरी विभावना' मतिराम की 'चतुर्थ विभावना' है। मिलान कीजिए—

कारण कौनहु आन ते, कारज होय जु सिद्ध,
जानो अन्य विभावना, कारण छांड़ि प्रसिद्ध।

(केशव—क० प्रि०, प्र० ६, छं० १३)

हेतु काज को जो नहीं, ताते काज उदोत।
यासों और विभावना कहत सकल कविगोत ।।

(मतिराम—ललितललाम, छं० २०२)

मतिराम की 'द्वितीय विभावना' का लक्षण केशव के 'विशेष' के लक्षण के समान है। मतिराम की 'द्वितीय विभावना' का लक्षण है—

थोरे हेतुनि सों जहां प्रकट होत है काज।
तहं विभावना औरऊ बरनत बुद्धि जहाज।

(ललितललाम, छं० १६८)

यही भाव केशव के 'विशेष' के लक्षण का भी है।

साधक कारण विकल जहं, होय साध्य की सिद्धि।
केशवदास बखानिये, सो विशेष परिसिद्धि ।।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० २४)

---

१. ललितललाम, छं० १६८, पृ० ३६६।

दीपक, सहोक्ति, पर्यायोक्ति, विशेष, मालादीपक, परिवृत्ति, अर्थान्तरन्यास, लेश तथा हेतु आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षणों में अन्तर है। कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं।

लेश का लक्षण :

चतुराई के लेश ते, चतुर न समुझैं लेश।
वरनत कवि कोविद सबै ताको केशव लेश[1] ॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४०)

जहां दोष गुन होत है, जहां होत गुन दोष।
तहां लेश यह नाम कहि वरनत कवि मति-कोष ॥
(मतिराम—ललितललाम, छं० ३२४)

परिवृत्त का लक्षण :

जहां करत कछु और ही उपजि परत कछु और।
तासों परिवृत्त जानियो केशव कवि सिरमौर ॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० १३, छं० ३६)

घाटि बाढ़ि ह्वै बात को जहां पलटिबो होय।
तहां कहत परिवृत्ति हैं कवि कोविद सब कोय ॥
(मतिराम—ललितललाम, छं० २७०)

सहोक्ति का लक्षण :

हानि वृद्धि शुभ अशुभ कछु कहिये गूढ़ प्रकास।
होय सहोक्ति सु साथ ही वरणत केशवदास ॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २०)

काज हेतु कौं छोड़ि जहं औरनि के सहभाव।
बरनत तहां सहोक्ति हैं कविजन बुद्धि प्रभाव ॥
(मतिराम—ललितललाम, छं० ३६४)

दोनों आचार्यों द्वारा दिया 'दीपक' का सामान्य लक्षण परस्पर नहीं मिलता, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। केशव ने 'दीपक' के दो ही भेदों मणि तथा माला

---

१. केशव का यह लक्षण मतिराम की 'युक्ति' से मिलता है। मिलाइए—
परम छपावन कौं जहां क्रिया आन संधान।
तहां युक्ति वरनन करत कवि कोविद सज्ञान ॥
—ललितललाम, छं० ३६४, पृ० ४३४।

२. केशव का यह लक्षण मतिराम के 'विषाद' के लक्षण से साम्य रखता है। देखिए—
मन इच्छित के अर्थ की प्रापति जहां विरुद्ध।
तहां विषादहि कहत हैं, जो कविजन मति-सुद्ध ॥
—ललितललाम, छं० ३१०, पृ० ४२४।

दीपक का वर्णन किया है परन्तु यह स्वीकार किया है कि दीपक के अनेक रूप हो सकते हैं। मतिराम ने 'मणिदीपक' का कोई उल्लेख नहीं किया है और 'मालादीपक' को पृथक् ही अलंकार माना है। 'सहोक्ति' को केशव ने 'उक्ति' का भेद बतलाया है किन्तु मतिराम इसे अलग ही अलंकार मानते हैं। 'अर्थान्तरन्यास' के केशव ने चार भेदों युक्त, अयुक्त, अयुक्तायुक्त तथा युक्त-अयुक्त का वर्णन किया है; मतिराम ने इसके दो भेद, सामान्य से विशेष का समर्थन और विशेष से सामान्य का समर्थन बतलाए हैं (ललितललाम, छं० २८६)। केशव ने 'हेतु' अलंकार का सामान्य लक्षण न देकर केवल सभाव तथा अभाव हेतु नामक भेदों का वर्णन किया है। मतिराम ने भी 'हेतु' का सामान्य लक्षण न देकर उसके तीन भेदों प्रथम, द्वितीय और तृतीय का विवेचन किया है।

कुलपति मिश्र तथा केशव :

भूषण के ही समकालीन आगरा-निवासी माथुर चौबे कुलपति मिश्र की गणना काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्यों में होती है। इनका कविताकाल संवत् १७२४ और १७४२ के बीच माना गया है। काव्यशास्त्र पर लिखे इनके दो ग्रन्थ 'रसरहस्य' और 'गुणरसरहस्य' प्रसिद्ध हैं। 'रसरहस्य' की रचना संवत् १७२७ में हुई थी[1]। यह समस्त रचना ११६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। प्रारम्भ के ७० पृष्ठों में काव्य की परिभाषा, काव्य का प्रयोजन, काव्य का विभाजन, शब्दशक्ति, ध्वनि, रस, गुण, दोष आदि विषयों का निरूपण हुआ है। पिछले ४६ पृष्ठों में अलंकारों का विशद विवेचन किया गया है। यहाँ पर 'रसरहस्य' में निरूपित अलंकारों ही के आधार पर आचार्य केशव से कुलपति मिश्र की तुलना की गई है।

शब्दालंकार :

१. वक्रोक्ति, २. अनुप्रास, ३. लाटानुप्रास, ४. यमक, ५. श्लेष तथा ६. चित्र।

उभयालंकार :

१. पुनरुक्तवदाभास।

अर्थालंकार :

१. उपमा, २. मालोपमा, ३. रसनोपमा, ४. एकदेशबिवर्ती उपमा, ५. अनचय[2] (अनन्वय), ६. उपमेयोपमा, ७. प्रतिवस्तूपमा, ८. प्रतीप, ९. उत्प्रेक्षा,

---

१. संवत सत्रह सौ बरस, अरु बीते सत्ताईस।
कातिक बदी एकादसी, वार वरनि बानीस॥
—रसरहस्य, पृ० ११६, छं० २११।

२. नहि पइये समता जगत, जाकी तब उपमान।
उपमेयै कीजै तहां, अनचय जान॥
—रसरहस्य, छं० २३, पृ० ८२।

१०. सन्देह, ११. रूपक, १२ परिणाम, १३. उल्लेष[1] (उल्लेख), १४. भ्रांतिमान, १५. स्मरण, १६. अपह्नुति, १७. श्लेष, १८. समासोक्ति, १९. अप्रस्तुतप्रशंसा[2], २०. अतिशयोक्ति, २१. दृष्टान्त, २२. दीपक, २३. मालादीपक, २४. तुल्ययोगिता, २५. व्यतिरेक, २६. आक्षेप, २७. विभावना, २८. विशेषोक्ति, २९. यथासंख्य, ३०. अर्थान्तरन्यास, ३१. विरोधाभास, ३२. स्वभावोक्ति, ३३. व्याजस्तुति, ३४. सहोक्ति, ३५. विनोक्ति, ३६. विनिमय, ३७ भाविक, ३८. काव्यलिङ्ग, ३९. पर्यायोक्ति, ४०. उदात्त, ४१. समुच्चय, ४२. पर्याय, ४३. अनुमान, ४४. परिकर, ४५. व्याजोक्ति, ४६. परिसंख्या, ४७. कारणमाला, ४८. अन्योन्य, ४९. उत्तर, ५०. सूक्ष्म, ५१. सार, ५२. असंगति, ५३. समाधि, ५४. अनुमान, ५५. विषम, ५६. अधिक, ५७. प्रत्यनीक, ५८. मिलन (मीलित)[3], ५९. विशेष, ६०. तद्गुण, ६१. अतद्गुण तथा ६२. व्याघात।

वक्रोक्ति, यमक, श्लेष[4], चित्र, उपमा, मालोपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपह्नुति, दीपक, मालादीपक, व्यतिरेक, आक्षेप, विभावना, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति, सहोक्ति, पर्यायोक्ति, सूक्ष्म तथा विशेष अलंकारों का वर्णन 'रसरहस्य' तथा 'कविप्रिया' दोनों ग्रन्थों में मिलता है, परन्तु विविध अलंकारों के भेद तथा लक्षण प्रायः भिन्न हैं। 'रसरहस्य' में वर्णित शेष अलंकार केशव ने छोड़ दिए हैं। केशव के क्रम, गणना, आशिष, लेश, हेतु, प्रेम, ऊर्जस, रसवत, व्यधिकरणोक्ति, अमित, समाहित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का 'रसरहस्य' में कोई उल्लेख नहीं है।

कुलपति मिश्र द्वारा उल्लिखित शब्दालंकारों में से केशव ने वक्रोक्ति, यमक, श्लेष और चित्र का ही निरूपण किया है। वक्रोक्ति का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों का प्रायः एक ही है। तुलना कीजिए—

केशव सूधी बात में, बरणत टेढ़ो भाव।
वक्रोकति तासों कहैं, सही सबै कविराव॥

(केशव—क० प्र०, प्र० १२, छं० ३)

---

१. बहुत एक कों कहै जब, बहुत भांति उपमान।
एके बहु गुण कहि कहो सो उल्लेष बखान॥
—रसरहस्य, पृ० ८७, छं० ५३।

२. 'अप्रस्तुतप्रशंसा' को ही मिश्रजी ने 'अन्योक्ति' कहा है, जिसका लक्षण इस प्रकार है—
जहाँ डारि सिर और के कहै और की बात।
बरणत पांच प्रकार सों, सो अन्योकित ख्यात॥
—रसरहस्य, पृ० ९०, छं० ६६।

३. आये कर के सतज के कहि मिलिते अति ठौर।
—रसरहस्य, पृ० ११७।

४ कुलपति 'श्लेष' को शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही मानते हैं।

कहै बात औरै कछू, अर्थ करै कछु और।
वक्र उक्ति, ताकों कहैं, श्लेष सुथ द्वै ठौर।।

(कुलपति—रसरहस्य, छं० ४)

केशव ने कुलपति द्वारा निर्दिष्ट 'वक्रोक्ति' के दो भेदों श्लेष और काकु वक्रोक्ति को छोड़ दिया है। केशव द्वारा दिए 'श्लेष' के विविध भेदों तथा रूपों का कुलपति मिश्र ने कोई उल्लेख नहीं किया है। मिश्र जी ने 'श्लेष' के वर्णगत, वचनगत, लिंगगत, पदगत आदि अन्य आठ भेदों का वर्णन किया है। केशव द्वारा वर्णित 'यमक' के आदि पद, मध्य पद और द्वितीय पद तथा सव्ययेत और अव्ययेत आदि भेदों का मिश्र जी ने कोई विवरण नहीं दिया है, केवल एक चरण, अर्ध चरण आदि 'यमक' का ही उल्लेख करते हुए लिखा है कि 'यमक' के अनेक भेद हैं, पर ग्रन्थ-विस्तार के भय से नहीं दिए गए हैं[1]। केशव ने 'यमक' का बहुत विस्तार के साथ निरूपण किया है। 'अनुप्रास' की गणना केशव अलंकारों में करते ही नहीं हैं। 'पुनरुक्तवदाभास' को केशव ने छोड़ दिया है। 'चित्रालंकार' का केशव ने बड़ा ही विस्तृत वर्णन किया है, किन्तु मिश्र जी ने खड्गबंध, गोमूत्रिकाचक्र और शांतधेनु के ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। साथ ही मिश्र जी 'चित्रालंकार' के अनेक भेद भी स्वीकार करते हैं। केशव ने मिश्र जी द्वारा निर्दिष्ट 'रंग-वर्ण-चित्र'[2] का कोई उल्लेख नहीं किया है। दूसरी ओर मिश्र जी ने केशव द्वारा उल्लिखित चित्रालंकारों के अंतर्गत निरोष्ठ रचना, अमात्रिक रचना आदि को छोड़ दिया है।

कुलपति मिश्र तथा केशव के जिन अलंकारों के सामान्य लक्षण समान हैं वे ये हैं, स्वभावोक्ति, विभावना, आक्षेप, विरोधाभास, व्यतिरेक, सूक्ष्म, अपह्नुति, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, तथा रूपक। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

विशेषोक्ति का लक्षण :

विद्यमान कारण सकल कारज होय न सिद्ध।
सोई उक्ति विशेष सब, केशव परम प्रसिद्ध।।

(केशव—क० प्रि०, प्र० १२, छं० १४)

सब कारण कारज नसै उक्ति विशेष सुजान।

(कुलपति—रसरहस्य, पृ० १००)

रूपक का लक्षण :

उपमा ही के रूप सों, मिल्यो वरनिये रूप।
ताही सो सब कहत हैं, केशव रूपक रूप।।

(केशव—क० प्रि०, प्र० १३, छं० १२)

---

१. चरन जमक अधचरन पुनि, अर्द्धहू अर्द्ध प्रकार।
कहत लक्ष लक्षण सबै, होय ग्रन्थ बिस्तार।।
—रसरहस्य, छं० ७४ पृ० १७।

२. रसरहस्य, पृ० ७७, छं० ४०-४१।

उपमा अरु उपमेय करैं, भेद परैं नहिं जानि।
समता व्यंग रहै जहाँ, रूपक ताहि बखानि॥
(कुलपति—रसरहस्य, छं० ३६)

(मिश्र जी का यह लक्षण अधिक पूर्ण है।)

सूक्ष्म का लक्षण :

कौनहु भाव प्रभाव ते, जानै जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्षम अवदात॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४५)

बात दुराई होय जो, ताको करै प्रकाश।
इंगित ते आकार तें, सो सूक्षम सुखवास॥
(कुलपति—रसरहस्य, छं० १७८)

केशव तथा मिश्र जी द्वारा दिए 'उत्प्रेक्षा' और 'उपमा' अलंकारों के लक्षणों में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है, भाव प्राय: एक ही निकलता है। देखिए--

उत्प्रेक्षा का लक्षण :

केशव और वस्तु में और कीजिये तर्क।
उत्प्रेक्षा तासों कहै जिनको बुद्धि संपर्क॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० ६, छं २०)

संशय में जो सांच सों, तेहि विधि को उपमान।
अधिक होय उपमेय तें, सो उत्प्रेक्षा जान॥
(कुलपति—रसरहस्य, छं० ३८)

उपमा का लक्षण :

रूप शील गुरण होय सब, जो क्यों हूं अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार॥
(केशव—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १)

शब्द अर्थ समता कहै, दोउन की जेहि ठौर।
नहिं कलपित उपमान जेहि, सो उपमा सिरमौर॥
(कुलपति—रसरहस्य, छं० ३)

कुलपति मिश्र ने उपमा के श्रौती, आर्थी (पूर्ण तथा लुप्ता) आदि भेद बतलाए हैं, जो केशव ने छोड़ दिये हैं। दूसरी ओर उन्होंने 'उपमा' के मालोपमा, संशयोपमा, हेतूपमा, अभूतोपमा, मोहोपमा, अतिशयोपमा आदि बाईस भेदों का उल्लेख किया है। 'मालोपमा' को कुलपति मिश्र ने अलग अलंकार माना है। 'मालोपमा' का दोनों आचार्यों ने वर्णन किया है। केशव ने इसका लक्षण उदाहरण-सहित दिया है पर कलपति मिश्र ने इसके केवल दो उदाहरण ही दिए हैं, लक्षण नहीं दिया है। कुलपति

मिश्र के 'भ्रांतिमान्', 'सन्देह' और 'अनचय' (अनन्वय) अलंकार क्रमशः केशव की 'मोहोपमा', 'संशयोपमा' और 'अतिशयोपमा' हैं। दोनों आचार्यों के लक्षणों का भाव प्रायः समान है। मिश्र जी ने 'उत्प्रेक्षा' के हेतूत्प्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा दो भेदों का उल्लेख किया है, जो केशव ने नहीं किया है। केशव ने 'रूपक' के अद्भुत, विरुद्ध तथा रूपक-रूपक—ये तीन भेद किए हैं। मिश्र जी को ये भेद मान्य नहीं हैं और उन्होंने उसके प्रायः सभी द्वारा स्वीकृत सांग और निरंग आदि भेदों तथा अवान्तर भेदों का उल्लेख किया है। कुलपति मिश्र की 'अप्रस्तुतप्रशंसा' ही केशव की 'अन्योक्ति' है। मिश्र जी ने 'व्यतिरेक' के २४ भेदों का उल्लेख किया है और केशव ने केवल दो सहज और युक्ति का ही, जो मिश्र जी से नहीं मिलते। मिश्र जी के 'आक्षेप' के दोनों भेद, वक्ष्यमाण विषय-निषेध और उक्त विषय-निषेध केशव के क्रमशः 'भावी' निषेध और 'भूत' निषेध से मिल जाते हैं। मिश्र जी ने 'विशेषोक्ति' के तीन प्रकारों का कथन किया है, उक्तिनिमित्ता, अनुक्तिनिमित्ता और अचिन्त्यनिमित्ता। मिश्र जी ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'विरोधाभास' का केशव ने कोई भेद नहीं बताया है। कुलपति मिश्र ने जाति, गुण आदि भेद से उसके १० प्रकारों का वर्णन किया है। (रसरहस्य, पृ० १०२, छं० १२४-१२५)।

दोनों आचार्यों द्वारा दिये विशेष, सहोक्ति, पर्यायोक्ति, दीपक, मालादीपक, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों के लक्षण आपस में नहीं मिलते। केशव के 'मालादीपक' का लक्षण है—

सबै मिलै जहं बरणिये, देशकाल बुधिवंत।
मालादीपक कहत हैं, ताके भेद अनन्त॥

(क० प्रि०, प्र० १३, छं० २७)

कुलपति मिश्र जी इसका लक्षण यों देते हैं—

अगले अगले जोग जहां, प्रथम अधिक गुन होय।
मालादीपक कहत हैं, ताहि सबै कवि लोय॥

(रसरहस्य, छं० ९४)

केशव ने इसे 'दीपक' का भेद माना है। परन्तु मिश्र जी ने इसे अलग अलंकार बताया है। केशव ने 'अर्थान्तरन्यास' के युक्त, अयुक्त आदि चार भेदों का कथन किया है। मिश्र जी ने भी उसके भेदों की संख्या तो चार ही बतलाई है परन्तु उनके नाम भिन्न हैं। उनका लक्षण इस प्रकार है—

जहां अर्थ सामान्य को पोषन करैं विशेष।
पुनि सामान्य विशेष कौं, जेहि ठाँ पोषन लेव।
सो अर्थान्तर न्यास है, और अर्थ जहां होय।
स्वधर्म विधर्म भेद करि, चार भांति है सोय॥

(रसरहस्य, छं० ११८-११९)

केशव के 'अर्थान्तरन्यास' का लक्षण है—

और आनिये अर्थ जहं और वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६५)

देव तथा केशव :

देव का जन्म उनके अपने साक्ष्य के अनुसार संवत् १७३० वि० ठहरता है[1]। उनका रचनाकाल संवत् १७४६ से १७९० तक माना जा सकता है। देव अनेक राजाओं के आश्रय में रहे और इनकी अधिकांश रचनाएं भी आश्रयदाताओं के लिए ही हुई हैं। रीतिकालीन कवियों में सम्भवतः देव ने ही सब से अधिक ग्रन्थ लिखे हैं। स्व० रामचन्द्र शुक्ल ने देव के २५ ग्रन्थों के नाम दिये हैं जो उनके अनुसार उपलब्ध हैं[2]। मिश्रबन्धुओं ने उनके १४ ग्रन्थों का उल्लेख किया है जो उन्होंने देखे हैं[3]। डा० नगेन्द्र के मत में देव के प्राप्य ग्रन्थ १८-१९ हैं[4]। देव के देखे-सुने ग्रन्थों में बहुत से रीति-ग्रन्थ हैं, यथा भावविलास, भवानीविलास, सुजानविनोद, कुशलविलास, रसविलास, सुखसागरतरंग, शब्दरसायन इत्यादि। सभी रसों का पूर्ण विवेचन मुख्य रूप से 'शब्दरसायन' और 'भवानीविलास' में हुआ है। 'भावविलास' में रस के विभिन्न अवयवों का विशद विवेचन है, परन्तु उसमें केवल शृङ्गार को ही लिया गया है। भावविलास, भवानीविलास, रसविलास, कुशलविलास, सुजानविनोद तथा सुखसागरतरंग में नायिका-भेद का विस्तृत वर्णन है। अलंकार-निरूपण, 'भावविलास' में संक्षेप में और 'शब्दरसायन' में कुछ विस्तार के साथ किया गया है। यहाँ 'भावविलास' और 'शब्दरसायन' के आधार पर केशव से देव की तुलना की गई है।

'भावविलास' में देव ने केवल ३९ अलंकारों के बहुत ही चलते ढंग से लक्षण-उदाहरण दिए हैं। उनके अनुसार मुख्य अलंकार ३९ ही हैं। आधुनिक कवियों (आचार्यों) द्वारा माने गए अन्य अलंकारों को देव इनका ही भेद मानते हैं[5]। देव ने पंचम विलास के आरम्भ में ही अलंकारों की जो सूची दी है, उसके अनुसार अलंकारों के नाम निम्नलिखित हैं—

---

१. शुभ सत्रह सै छियालीस, चढ़त सोरही वर्ष।
कढ़ी देव मुख देवता, भावविलास सहर्ष।

—भावविलास, पृ० १६८।

२. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २६४।

३. हिन्दी नवरत्न, पृ० २६६।

४. देव और इनकी कविता (उत्तरार्द्ध), पृ० ७५।

५. अलंकार मुख्य उनतालीस हैं देव कहैं।
येई पुराननि मुनि मतनि में पाइये।
आधुनिक कविन के संमत अनेक और
इनहीं के भेद और विविध बताइये॥

—भावबिलास, पृ० १४१।

१. स्वभावोक्ति, २. उपमा, ३. उपमेयोपमा, ४. संशय, ५. अनन्वय, ६. रूपक, ७. अतिशयोक्ति, ८. समासोक्ति, ९. वक्रोक्ति, १०. पर्यायोक्ति, ११. सहोक्ति, १२. विशेषोक्ति, १३. व्यतिरेक, १४. विभावना, १५. उत्प्रेक्षा, १६. आक्षेप, १७. दीपक, १८. उदात्त, १९. अपह्नुति, २०. श्लेष, २१. अर्थान्तर-न्यास, २२. व्याजस्तुति, २३. अप्रस्तुतप्रशंसा, २४. आवृत्ति-दीपक, २५. निदर्शना २६. विरोध, २७. परिवृत्ति, २८. हेतु, २९, रसवत, ३०. ऊर्जस्व, ३१. सूक्ष्म, ३२. प्रेम, ३३. समाहित, ३४. क्रम, ३५. तुल्ययोगिता, ३६. लेश, ३७. भाविक, ३८. संकीर्ण तथा ३९. आशिष।

'शब्दरसायन' में देव ने अलंकारों के दो भेद शब्दालंकार तथा अर्थालंकार किए हैं और फिर अर्थालंकार को दो वर्गों, मुख्य तथा गौण में विभक्त किया है। उन्होंने ४० मुख्य अलंकार और ३० गौण, इस प्रकार कुल मिलाकर ७० अर्थालंकार माने हैं। साथ ही यह भी संकेत कर दिया है कि मुख्य-गौण के मिश्र-अमिश्र भेद मिलाकर अनेक हो जाते हैं[१]। देव ने मुख्यालंकार के अन्तर्गतस्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, दीपक, आवृत्ति, परिवृत्ति, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, समासोक्ति, पर्यायोक्ति, श्लेष, वक्रोक्ति, अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, हेतु, सहोक्ति, सहोक्तिमाला, सूक्ष्म, लेश, प्रेय, रसवत, उदात्त, ऊर्जस्व, अपह्नुति, समाधि, निदर्शना, दृष्टान्त, निन्दास्तुति, स्तुतिनिन्दा, संशय, विरोध, विरोधाभास, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुत-स्तुति, असम्भव, असंगति, परिकर, तद्गुण आदि को रखा है। गौणमिश्रालंकार में देव ने अतद्गुण, अनुगुण, अनुज्ञा, अवज्ञा, गुणवत, प्रत्यनीक, लेख, सार, मिलित, कारणमाला, एकावली, मुद्रा, मालादीपक, समुच्चय, संभावना, प्रहर्षण, गूढ़ोक्ति, व्याजोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, विकल्प, संकीर्ण, भाविक, आशिष, स्मृति, भ्रांति, सन्देह, निश्चय, सम, विषम, अल्प, अधिक, अन्योन्य, सामान्य, विशेष, उन्मीलित, पिहित, अर्थापत्ति, विधि, निषेध, अत्युक्ति, प्रत्युक्ति, अन्योक्ति आदि को गिनाया है। इस प्रकार 'शब्दरसायन' में भेदों को छोड़कर लगभग ८५-८६ अर्थालंकारों के लक्षण-उदाहरण दिए गये हैं। 'भावविलास' के उपर्युक्त ३९ अलंकारों के अतिरिक्त इस ग्रन्थ में जो अन्य अलंकार दिए गये हैं, वे ये हैं—१. उल्लेख, २. समाधि, ३. विरोधा-भास, ४. दृष्टान्त, ५. असंभव, ६. असंगति, ७. परिकर, ८. तद्गुण, ९. अतद्-गुण, १० अनुगुण, ११. अनुज्ञा, १२. अवज्ञा, १३. गुणवत, १४. प्रत्यनीक, १५. लेख, १६. सार, १७. मीलित, १८. कारणमाला, १९. एकावली, २०. मुद्रा, २१. माला-दीपक, २२. समुच्चय, २३. सम्भावना, २४. प्रहर्षण, २५. गूढ़ोक्ति, २६. व्याजोक्ति, २७. विवृतोक्ति, २८. युक्ति, २९. विकल्प, ३० अत्युक्ति, ३१. भ्रांति, ३२. स्मृति,

---

१. मुख्य, गौन, विधि भेद करि, है अर्थालंकार।
मुख्य कहौ चालीस विधि, गौन सु तीस प्रकार।
मुख्य, गौन के भेद मिलि, मिश्रित होत अनन्त।
गुप्त प्रगट सब काव्य में, समुझत हैं मतिमन्त॥

—शब्दरसायन, पृ० ६४।

३३. अधिक, ३४. अन्योन्य, ३५. सामान्य, ३६. विशेष, ३७. उन्मीलित, ३८. पिहित, ३९. अर्थापत्ति, ४०. विधि, ४१. निषेध, ४२. प्रत्युक्ति, तथा ४३. अन्योक्ति ।

शब्दालंकारों में देव ने अनुप्रास, यमक और चित्र का वर्णन किया है । इनमें भी एक प्रकार से 'चित्र' का ही प्रधान-रूप से ग्रहण है, क्योंकि 'अनुप्रास' तथा 'यमक' को तो देव ने 'चित्र' का आधार-स्वरूप माना है[1] । 'यमक' के अन्तर्गत उन्होंने 'सिंहावलोकन' का भी वर्णन किया है किन्तु उसका लक्षण नहीं दिया है । 'चित्र' के गूढ़ार्थ चित्र, प्रगटार्थ चित्र, कामधेनु, सर्वतोभद्र, पर्वत, हार, कपाट, धनु, कमल आदि अनेक भेदों का उल्लेख किया गया है, जिनमें एकाक्षर अनुलोम-विलोम, गतागत, अन्तर्लापिका, प्रहेलिका आदि का चमत्कार दिखाया गया है ।

केशव ने देव द्वारा किए गए अलंकारों के दो भेद, अर्थालंकार और शब्दालंकार और फिर अर्थालंकारों के भी मुख्य तथा गौणमिश्र नामक उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है ।

देव तथा केशव ने जिन अर्थालंकारों का समान-रूप से वर्णन किया है वे इस प्रकार हैं, स्वभावोक्ति, उपमा, रूपक, वक्रोक्ति, पर्यायोक्ति, सहोक्ति, विशेषोक्ति, व्यतिरेक, विभावना, उत्प्रेक्षा, आक्षेप, दीपक, अपह्नुति, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, व्याजस्तुति, व्याजनिन्दा, निदर्शना, विरोध, विरोधाभास, परिवृत्त, रसवत, ऊर्जस्व, प्रेम, समाहित, क्रम, लेश, सूक्ष्म, हेतु, मालादीपक तथा अन्योक्ति । 'भावविलास' और 'शब्दरसायन', में वर्णित इनसे इतर अलंकारों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है । केशव के गणना, व्यधिकरणोक्ति, अमित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत आदि अलंकारों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है । जिन अर्थालंकारों का समान-रूप से वर्णन है उनमें दोनों आचार्यों द्वारा दिये कुछ अलंकारों के लक्षण का भाव एक ही है और कुछ लक्षणों में अन्तर है । दोनों आचार्यों के 'स्वभावोक्ति अथवा जाति' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है, किन्तु केशव का लक्षण अपेक्षाकृत अधिक पूर्ण है । देव के अनुसार 'स्वभावोक्ति' का लक्षण है—

जहां स्वभाव बखानिये, स्वभावोक्ति सो नाम ।
सुकवि जाति वर्णन करत, कहत सुनत अभिराम ।

(भावविलास, पृ० १४२)

अथवा—

केवल जहां सुभाव विधि, दरसत रस आसन्न ।
सो स्वभाव जासों सबै, समुभत सुनत प्रसन्न ।।

(शब्दरसायन, पृ० ६४)

---

१. अनुप्रास अरु यमक ये, चित्र काव्य के मूल ।
इनहीं के अनुसार सों सकल चित्र अनुकूल ।।

—शब्दरसायन, पृ० ८४ ।

केशव की 'स्वभावोक्ति' का लक्षण है—

जाको जैसो रूप गुण कहिये ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज॥

(क० प्रि०, प्र०६, छं० ८)

देव ने उपमा के समान ही 'स्वभावोक्ति' को सब अलंकारों में मुख्य माना है[१]। केशव ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। देव की 'उपमा' के सामान्य लक्षण का भाव केशव की 'उपमा' के भाव से मिलता है। देव ने 'उपमा' को 'स्वभावोक्ति' से भी अधिक महत्त्व दिया है और उसे सभी अलंकारों का मूल स्वीकार किया है[२]। उन्होंने 'उपमा' के एकदेशोपमा, सकलवाक्योपमा, सर्वांगोपमा आदि साधारण भेदों के अतिरिक्त कुछ नवीन भेद भी किए हैं, यथा स्वभावोपमा, संकीर्णभावोपमा, उपमेयोपमा, उचितोपमा, अनन्वयोपमा, निश्चयोपमा, स्मरणोपमा, भ्रमोपमा, सन्देहोपमा, नियमोपमा, तर्कोपमा, अधिकोपमा, तुल्ययोगोपमा, आक्षेपोपमा, मालोपमा, असंभवोपमा, अमानोपमा, प्रतिकारोपमा, गर्वोपमा तथा उल्लेखोपमा। देव ने इनके केवल उदाहरण ही दिए हैं, लक्षण नहीं दिए। एक प्रकार के अलंकारों, जैसे स्मरणोपमा, निश्चयोपमा, भ्रमोपमा तथा सन्देहोपमा एवं नियमोपमा, तर्कोपमा तथा अधिकोपमा आदि को एक ही छन्द में स्पष्ट कर दिया गया है। केशव ने 'उपमा' के जिन २२ भेदों के लक्षण-उदाहरण दिए हैं, उनमें से देव द्वारा बतलाए हुए केवल चार ही भेद, संकीर्णोपमा, नियमोपमा, मालोपमा तथा असंभवोपमा हैं। दोनों आचार्यों द्वारा दिए इन चारों भेदों के उदाहरणों के मिलान करने से ज्ञात होता है कि दोनों के 'नियमोपमा' तथा 'असंभवोपमा' अलंकार तो आपस में मिलते हैं, परन्तु 'मालोपमा' तथा 'संकीर्णोपमा' नहीं मिलते। देव की 'उपमेयोपमा' तथा 'सन्देहोपमा' केशव की क्रमशः 'परस्परोपमा' तथा 'संशयोपमा' हैं। केशव की 'अतिशयोपमा' और देव के 'अनन्वय' अलंकार के उदाहरण देखने से विदित होता है कि देव का 'अनन्वय' अलंकार केशव की 'अतिशयोपमा' है। इसी प्रकार केशव की 'मोहोपमा' का देव के 'भ्रम' अलंकार से बहुत कुछ साम्य है।

देव का 'संशय' उनके अपने ही 'संदेह' से भिन्न है। केवल उपमा देने में ही जब अनिश्चय होता है वहाँ देव ने 'संशय' अलंकार माना है[३], जब कि 'सन्देह'[४] अन्य

---

१. अलंकार में मुख्य हैं, उपमा और सुभाव।
सकल अलंकारनि विषै, परसत प्रगट प्रभाव॥

—शब्दरसायन, पृ० ६४।

२. सकल अलंकारनि विषै उपमा अंग उपंग। —शब्दरसायन, पृ० ६७।
सकल अलंकारनि विषै उपमा अंग लखाहि। —शब्दरसायन, पृ० १०१।

३. जहाँ उपमा उपमेय को, आपुस में सन्देहु।
ताही सों संसै उकति, सुमति जानि सबै लेहु।

—भावविलास, पृ० १४४।

४. बिन निश्चय सन्देह। शब्दरसायन, पृ० १२७।

आचार्यों के द्वारा निरूपित 'सन्देह' अलंकार से मिलता है। केशव ने 'सन्देह' को छोड़ दिया है और 'संशय' को 'उपमा' का भेद बतलाया है।

दोनों आचार्यों के 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव समान है। देव ने 'रूपक' के तीन भेद, समस्त, असमस्त तथा समस्त-व्यस्त बतलाए हैं। केशव ने भी 'रूपक' के भेदों की संख्या तो तीन ही मानी है किन्तु उनके नाम देव से भिन्न हैं यथा, अद्भुत, विरुद्ध तथा रूपक-रूपक। वक्रोक्ति, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, श्लेष, व्याजस्तुति, निन्दास्तुति, निन्दा, विरोधाभास, रसवत, सूक्ष्म, समाहित आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षणों का भाव एक ही है। 'वक्रोक्ति' तथा 'अन्योक्ति' को केशव ने 'उक्ति' का भेद माना है और देव ने इनका पृथक् अलंकार के रूप में वर्णन किया है। केशव ने 'वक्रोक्ति' तथा 'अन्योक्ति' दोनों के लक्षण-उदाहरण दिए हैं, परन्तु देव ने 'वक्रोक्ति' का ही लक्षण-उदाहरण दिया है और 'अन्योक्ति' का केवल उदाहरण ही दिया है, लक्षण नहीं दिया। देव ने 'भावविलास' में 'विशेषोक्ति' का लक्षण इस प्रकार दिया है—

> **जाति कर्म गुन भेद की, विकल्पता करि जाहि।**
> **वस्तुहि वरनि दिखाइये, विशेषोक्ति कहि ताहि॥**
>
> (भावविलास, पृ० १५०)

यह लक्षण केशव की 'विशेषोक्ति' के लक्षण से नहीं मिलता। केशव का 'विशेषोक्ति' का लक्षण है—

> **विद्यमान कारण सकल, कारज होय न सिद्ध।**
> **सोई उक्ति विशेष मय, केशव परम प्रसिद्ध।**
>
> (क० प्रि०, प्र० १२, छं० १४)

यह लक्षण देव द्वारा 'शब्दरसायन' में दिए हुए 'विशेषोक्ति' के लक्षण से साम्य रखता है। देव ने इस अलंकार का लक्षण वहाँ यों लिखा है —

> **कारनहु कारज न जहं विशेषोक्ति कहि सोइ।** (शब्दरसायन, पृ० १०६)

देव की 'प्रथम विभावना' के लक्षण का भाव केशव की 'प्रथम विभावना' से मिलता है। 'उत्प्रेक्षा' और 'अपह्नुति' के भेदों का उल्लेख दोनों ही आचार्यों ने नहीं किया है। देव ने 'श्लेष' के भेदों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने इसके विभिन्न भेदों का विस्तृत विवेचन किया है। 'व्यतिरेक' के केशव द्वारा बतलाए सहज और युक्ति नामक भेदों को भी देव ने छोड़ दिया है। केशव और देव के 'आक्षेप' अलंकार के सामान्य लक्षणों में परस्पर भावसाम्य है। देव ने 'आक्षेप' के कोई भेद नहीं किए हैं। केशव ने इस अलंकार के अनेक भेदों का वर्णन किया है। 'दीपक' के दो भेद, मणि तथा मालादीपक बतलाते हुए केशव ने यह स्वीकार किया है कि 'दीपक' के अनेक भेद होते हैं। देव ने इसका कोई भेद नहीं लिखा है। 'मालादीपक' को देव ने

पृथक् ही अलंकार माना। उन्होंने इस अलंकार का केवल उदाहरण ही दिया है लक्षण नहीं दिया है। 'दीपक' का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों ने भिन्न ही दिया है[1]। 'अर्थान्तरन्यास' की सामान्य परिभाषा दोनों आचार्यों की भिन्न है। देव ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है—

युक्त अरथ दृढ़ करन कों, वाक्य जु कहिये और।
सो अर्थान्तरन्यास कहि, बरनत रस बस मोर[2]॥

केशव ने इसकी परिभाषा देते हुए लिखा है—

और आनिये अर्थ जहं, और वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह, चारि प्रकार सुजानि[3]॥

केशव द्वारा बतलाए इस अलंकार के युक्त, अयुक्त आदि चार भेदों को देव ने छोड़ दिया है। देव ने केशव के ही समान 'व्याजस्तुति' तथा 'व्याजनिन्दा' (स्तुतिनिन्दा) को अलग अलंकार माना है। केशव ने 'निदर्शना' अलंकार की परिभाषा यह दी है[4]। उन्होंने इसके भेद नहीं किये हैं। देव ने इसके तीन भेद माने हैं—(१) जहाँ दो वाक्यों के अर्थ की समानता हो, (२) जहाँ एक के गुण दूसरे में स्थापित कर एकता लाई जाती हो तथा (३) किसी कार्य की ओर देखकर उसके फलस्वरूप जब कुछ बुरा-भला कहा जाता है। उन्होंने इसकी परिभाषा और विभिन्न रूप इस प्रकार दिए हैं[5]। दोनों आचार्यों ने 'विरोध' का लक्षण भिन्न-भिन्न दिया है। देव का 'विरोध' का लक्षण है—

जहाँ विरोधी पदारथ, मिलैं एकही ठौर।
अलंकार सु विरोध बिनु, विष पियूष बिष कोर॥

(भावविलास, पृ० १६०)

---

१. अरथ कहैं एकै क्रिया, जहाँ आदि मधि अन्त।
अथवा जहं प्रतिपद क्रिया, दीपक कहत सुसंत।

—भावविलास, पृ० १५४।

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर।
दीपक दीपति कहत हैं, केशव कवि सिरमौर॥

—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २१।

२. भावविलास, पृ० १५६।

३. क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६५।

४. कौनहु एक प्रकार से, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट निदर्शना समुझत सकल सुजान॥

—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६।

५. कहिये त्रिविध निदर्सना, वाक्य अर्थ सम होइ,
एकहि, ये पुनि और गुनि, और वस्तु में होइ,
कहिये कारण देखि कछु, भलो बुरो फल होइ॥

—शब्दरसायन, पृ० ११८।

अथवा : जहाँ विरोध पदार्थ कहि, कहिये विरोध तासु।

(शब्दरसायन, पृ० १०२)

केशव का लक्षण इस प्रकार है—

केशवदास विरोधमय, रचियत वचन विचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुधि सुधारि।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० १६)

दोनों ही आचार्यों ने 'विरोध' के भेदों का वर्णन नहीं किया है। 'हेतु' अलंकार दोनों आचार्यों ने माना है, किन्तु केशव ने सामान्य लक्षण न देकर इसके तीन भेदों का वर्णन किया है। देव ने भेदों का उल्लेख नहीं किया है।

पर्यायोक्ति, सहोक्ति, परिवृत्त, ऊर्जस्वि, प्रेम (प्रेय) तथा क्रम आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षण भिन्न हैं। केशव के प्रेम, ऊर्जस्वि तथा क्रम अलंकारों के लक्षण क्रमशः नीचे दिए जाते हैं :—

कपट निपट मिटि जाय, जहं उपजै पूरण क्षेम।
ताहीं सों सब कहत हैं, केशव उत्तम प्रेम॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० २७)

तजै न निज हंकार, को यद्यपि घटै सहाय।
ऊर्ज नाम तासों कहें, केशव सब कविराय॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ५१)

तथा : आदि अंत भरि बरणिये, सो क्रम केशवदास॥

(क० प्रि०, प्र० ११, छं० १)

देव ने इन्हीं अलंकारों के लक्षण यों दिये हैं—

क्रम ते क्रम, पिय प्रेय अति, रसवत रसनि उदात।
अति सम्पत्ति में अरु जस, अहंकार अधिकात॥

(शब्दरसायन, पृ० ११५)

अथवा : अहंकार गर्व्वित वचन, सो ऊर्जस्वल होइ।
कहिये जो अति प्रिय वचन, प्रेम बखानौ ताहि॥

(भावविलास, पृ० १६२)

उपमा अरु उपमेय को, क्रम सुकमोक्ती आहि॥

(भावविलास, पृ० १६३)

यद्यपि केशव के 'क्रम' का उक्त लक्षण स्पष्ट नहीं है, फिर भी दोनों आचार्यों के द्वारा दिए इस अलंकार के उदाहरणों से विदित होता है कि दोनों ने लक्षण भिन्न ही समझा है। केशव की 'व्यधिकरणोक्ति' (उक्ति का भेद) देव की 'असंगति' है।

शब्दालंकारों में 'यमक' तथा 'चित्र' का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है। 'अनुप्रास' को केशव अलंकार ही नहीं मानते। दोनों आचार्यों के 'यमक' के लक्षणों

का भाव समान है। केशव के 'सव्ययेत' तथा 'अव्ययेत' एवं 'सुखकर' तथा 'दुखकर' आदि भेदों का देव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। देव ने यह अवश्य माना है कि 'यमक' के अनंत भेद हैं।[1] 'यमक' के अन्तर्गत देव द्वारा निरूपित 'सिंहावलोकन' का केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है। चित्रालंकारों में सर्वतोभद्र, पर्वत, हार, कपाट, कामधेनु, धनु, कमल, गतागत, अन्तर्लापिका का दोनों आचार्यों ने निरूपण किया है। देव द्वारा वर्णित गूढ़ार्थ-चित्र, प्रगटार्थ-चित्र, वैराग्य रस-चित्र आदि का केशव ने वर्णन नहीं किया है और केशव द्वारा निरूपित निरोष्ठ रचना, अमात्रिक रचना, नियमाक्षर शब्द-रचना, बहिर्लापिका, गूढ़ोत्तर, एकानेकोत्तर, व्यस्त समस्तोत्तर, शासनोत्तर आदि को देव ने छोड़ दिया है। देव के मत में चित्र-काव्य अत्यन्त हेय है। अर्थ का अभाव अथवा क्लिष्टता होने के कारण वे चित्रकाव्य को 'मृतक-काव्य' अथवा 'प्रेत-काव्य' ही मानते हैं।[2] केशव ने इस प्रकार का कोई कथन नहीं किया है। केशव ने 'प्रहेलिका' का स्वतंत्र अलंकार के रूप में वर्णन किया है, जब कि देव ने उसका 'चित्रालंकार' के अन्तर्गत उल्लेख किया है।

दास (भिखारीदास) तथा केशव :

दास रीतिकाल के उन आचार्यों में से हैं जिन्होंने काव्य के रस, अलंकार, रीति, गुण, दोष, शब्दशक्ति, छन्द आदि सभी अंगों का विवेचन किया है। रस-सारांश, छन्दोर्णव-पिंगल, काव्य-निर्णय, शृंगारनिर्णय, नाम-प्रकाश (कोश), विष्णुपुराण भाषा (दोहे-चौपाइयों में), छन्द-प्रकाश, शतरंज-शतिका तथा अमर-प्रकाश (संस्कृत अमर-कोश भाषा पद्य में) नामक ग्रन्थ इनके रचे कहे जाते हैं। इनका कविताकाल संवत् १८०७ तक माना गया है।[3] 'काव्य-निर्णय' और 'शृंगार-निर्णय' इनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। 'काव्य-निर्णय' में काव्य-प्रयोजन, काव्य की आत्मा, काव्य की भाषा, लक्षणा, व्यंजना, रस, भाव, अनुभाव, ध्वनि, गुणीभूतव्यंग्य, अपरांग, अलंकार आदि सभी काव्यांगों का वर्णन है। यहाँ रस तथा उसके अवयवों का निरूपण बड़े ही संक्षेप में किया गया है। रस का वर्णन उनके 'शृंगारनिर्णय' तथा 'रससारांश' नामक ग्रंथों में हुआ है। 'काव्यनिर्णय' प्रधानतया अलंकारों का ग्रंथ है। इसमें अलंकारों का सांगोपांग एवं विस्तृत विवरण दिया गया है।

दास ने वर्ग के प्रथम अलंकार के नाम से एक वर्ग बनाकर जैसे, उपमादि, उत्प्रेक्षादि, उससे सम्बन्धित अलंकारों को उस वर्ग में सम्मिलित किया है। उपमादि वर्ग के अन्तर्गत उन्होंने बारह अलंकारों, पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, श्रौती उपमा, दृष्टान्त, अर्थान्तिरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा को रखा है और उनको उपमान-उपमेय के ही विभिन्न विकार बतलाया

---

१. सरस गमक करि यमक के, वरनत भेद अनंत।

—शब्दरसायन, पृ० ८६।

२. मृतक-काव्य बिनु अर्थ के कठिन अर्थ के प्रेत।

—शब्दरसायन, पृ० १०।

३. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३०७।

है। दास जी ने इस वर्ग के अन्तर्गत जिन बारह अलंकारों को गिनाया है उनमें यद्यपि 'मालोपमा' का उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु फिर भी उन्होंने इस अलंकार का बिवेचन उपमादि वर्ग के अन्तर्गत ही किया है और उसे स्वतंत्र अलंकार नहीं माना है। 'लुप्तोपमा' के धर्म-लुप्तोपमा, उपमान-लुप्तोपमा, वाचक-लुप्तोपमा, उपमेय-लुप्तोपमा, वाचकधर्म-लुप्तोपमा, उपमेय-धर्म-लुप्तोपमा तथा उपमेयवाचकधर्म-लुप्तोपमा—इन सात भेदों का वर्णन किया गया है। 'प्रतीप' के पाँच भेद प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम बतलाए गए हैं। दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना तथा तुल्ययोगिता नामक अलंकारों का भी इस वर्ग में सविस्तार विवेचन किया गया है। केशव ने दास की 'पूर्णोपमा' तथा उपभेदों-सहित 'लुप्तोपमा' को नहीं लिखा है। उन्होंने 'उपमा' के बाईस अन्य ही भेद बतलाए हैं। दोनों आचार्यों के 'उपमा' के सामान्य लक्षणों का भाव समान है[1]। 'मालोपमा' का वर्णन दोनों आचार्यों ने ही किया है, किन्तु दोनों के लक्षण आपस में नहीं मिलते। केशव ने 'मालोपमा' का लक्षण यों लिखा है[2]। दास ने 'मालोपमा' के चार रूपों का उल्लेख किया है। कहीं अनेक उपमेयों का एक उपमान होता है, कहीं भिन्न धर्मों से एक उपमेय के अनेक उपमान अथवा एक धर्म से एक उपमेय के अनेक उपमान होते हैं तो कहीं अनेक उपमेयों के अनेक उपमानों का वर्णन होता है।[3]

उदाहरणों से विदित होता है कि दास के 'अनन्वय' तथा 'उपमेयोपमा' अलंकार केशव की क्रमशः 'अतिशयोपमा' तथा 'परस्परोपमा' हैं। इसी प्रकार केशव के 'संशयोपमा' तथा 'मोहोपमा' नामक अलंकार दास के क्रमशः 'सन्देह' तथा 'भ्रम' से मिलते हैं। केशव की 'दूषणोपमा' का सामान्य लक्षण दास जी के 'प्रतीपालंकार' के सामान्य लक्षण से बहुत कुछ साम्य रखता है। केशव उपमानों को दूषित ठहरा कर

---

१. रूप शील गुण होय सम, जो क्यों हूँ अनुसार।
तासों उपमा कहत कवि, केशव बहुत प्रकार॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १।

कहुँ काहू सम बरणिये, उपमा सोई मान।
—काव्यनिर्णय, छं० २, पृ० २३।

२. जो जो उपमा दीजिये, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा, केशव कवि कुल गेय॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० ४३।

३. कहुँ अनेक की एक है, कहुँ है एक अनेक।
कहुँ अनेक अनेक की, मालोपमा विवेक।
जहं एक की अनेक तहं, भिन्न धर्म ते जोइ।
कहुँ एक ही धर्म ते, पूरन माला होइ॥
—काव्यनिर्णय, छं० १५ तथा १७, पृ० ७१-७२।

उपमेय की प्रशंसा करने में ही 'दूषणोपमा' मानते हैं[1]। दास के 'प्रतीप' अलंकार के लक्षण का भी प्रायः यही भाव है।[2] किन्तु केशव के उदाहरण के अन्तिम चरण[3] को देखने से तो 'दूषणोपमा' का रूप दास के 'अनन्वय' का-सा ही बन जाता है। केशव द्वारा उल्लिखित 'उपमा' के शेष भेदों की दास के अन्य किसी अलंकार से समानता नहीं है। 'अर्थान्तरन्यास' का सामान्य लक्षण दोनों आचार्यों ने भिन्न दिया है। केशव के 'अर्थान्तरन्यास' का लक्षण यह है[4]। उनके अनुसार 'अर्थान्तरन्यास' के जिन चार प्रकारों का निर्देश हुआ है वे ये हैं—युक्त, अयुक्त, अयुक्त-युक्त तथा युक्त-अयुक्त। दास ने इसका लक्षण और रूप इस प्रकार दिया है—

साधारण कहिए बचन, कछु अवलोकि सुभाय।
ताको पुनि दृढ़ कीजिये, प्रगट विसेषहि ल्याय॥
कै विशेष ही दृढ़ करै, साधारन कहि दास।
साधर्महि बैधर्म करि, यह अर्थान्तरन्यास॥
(काव्यनिर्णय, छं० ६०, ६१)

१. सामान्य का विशेष से साधर्म्य से समर्थन।
२. विशेष का सामान्य से साधर्म्य से समर्थन।
३. सामान्य का विशेष से वैधर्म्य से समर्थन।
४. विशेष का सामान्य से वैधर्म्य से समर्थन।

केशव के भेद भी दास द्वारा दिए उपर्युक्त भेदों से नहीं मिलते। केशव ने 'निदर्शना' अलंकार के लक्षण में लिखा है—

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान।
करिये प्रगट निदर्शना समुझत सकल सुजान॥
(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६)

---

१. जहं दूषण गण बरनिये, भूषण भाय दुराय।
दूषण उपमा होति तहं, बुधजन कहत बनाय॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १५।

२. सो प्रतीप उपमेय को, जब कीजे उपमान।
कै काहू विधि वर्ण्य को, करो अनादर ठान॥
—काव्यनिर्णय, छं० ३४, पृ० ७५।

३. अंग अनुपम वा प्रिय के, उनकी उपमा कहं वेई रहे हैं॥
—क० प्रि०, प्र० १४, छं० १६।

४. और आनिये अर्थ जहं औरै वस्तु बखानि।
अर्थान्तर को न्यास यह चार प्रकार सुजान॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ६५।

दास ने इसका लक्षण और विविध रूप इस प्रकार दिये हैं—

एक क्रिया ते देत जहं, दूजो क्रिया लखाय।
सत असतहु से कहत हैं, निदरशना कविराय।
सम अनेक वाक्यार्थ को एक कहै घरि टेक।
एकै पद के अर्थ को पावै यह वह एक ।।

(काव्यनिर्णय, छं० ७१-७२)

केशव ने इसके भेदों का उल्लेख नहीं किया है। दास द्वारा बतलाए अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, श्रौती उपमा, दृष्टान्त, विकस्वर, तुल्ययोगिता तथा प्रतिवस्तूपमा नामक अलंकारों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

दूसरे वर्ग में उत्प्रेक्षा, अपह्नुति, स्मरण, भ्रम तथा सन्देह आते हैं। 'उत्प्रेक्षा' के पहले वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा, फलोत्प्रेक्षा तथा लुप्तोत्प्रेक्षा (गम्योत्प्रेक्षा) का वर्णन किया गया है। फिर 'वस्तूत्प्रेक्षा' के दो उपभेदों, उक्त-विषया तथा अनुक्त-विषया एवं 'हेतूत्प्रेक्षा' तथा 'फलोत्प्रेक्षा', प्रत्येक के दो-दो उपभेदों, सिद्धविषया तथा असिद्ध-विषया का निर्देश किया गया है। दास ने अपह्नुति के छः भेद शुद्धापह्नुति, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भ्रान्त्यपह्नुति, छेकापह्नुति और कैतवापह्नुति बतलाये हैं। केशव तथा दास दोनों आचार्यों द्वारा दिये 'उत्प्रेक्षा' के सामान्य लक्षण का भाव एक ही है[1]। केशव ने 'उत्प्रेक्षा' के भेदों को छोड़ दिया है। दोनों आचार्यों के (शुद्ध) 'अपह्नुति' अलंकार के लक्षण का भाव प्रायः मिलता है। दास द्वारा बतलाए गए 'अपह्नुति' के छहों भेदों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव ने स्मरण, भ्रम तथा सन्देह अलंकारों को छोड़ दिया है।

तीसरे वर्ग में व्यतिरेक, रूपक तथा उल्लेख—इन तीन अलंकारों को रखा गया है। 'परिणाम' अलंकार का भी विवेचन इसी वर्ग में किया गया है। 'व्यतिरेक' अलंकार के चार भेद बतलाए गए हैं[2]। केशव ने 'व्यतिरेक' के दो भिन्न ही भेद युक्ति तथा सहज बतलाए हैं। दोनों आचार्यों का 'व्यतिरेक' का लक्षण भी आपस में नहीं मिलता। 'रूपक' के अधिक तद्रूप, हीनतद्रूप, सम तद्रूप, अधिक अभेद तथा हीन अभेद आदि पाँच भेदों के अतिरिक्त तीन अन्य भेद, निरंग, परम्परित तथा समस्त-विषयक भी बतलाए गए हैं। 'समस्तविषयक-रूपक' के अन्तर्गत दास ने उपमा,

---

१. केशव औरै वस्तु में और कीजिये तर्क।

—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ३०।

जहां कछू कछु सों लगै, समुझत देखत उक्त।

—काव्यनिर्णय, छं० १०, पृ० २४।

२. पोषन करि उपमेय को, दूषन है उपमान।
नहिं समान कहिये तहाँ, है व्यतिरेक सुजान।
कहुँ पोषन कहुँ दूषनै, कहै कहूँ नहिं दोउ।
चारि भांति व्यतिरेक है, यह जानत सब कोउ ।।

—काव्यनिर्णय, छं० २, ३, पृ० ६७।

उत्प्रेक्षा, परिणाम आदि अन्य अलंकारों के आधार पर आये 'रूपक' के उपमावाचक, उत्प्रेक्षावाचक, अपह्नुति-वाचक, परिणाम-वाचक तथा रूपक-रूपक आदि मिश्रित भेदों का भी उल्लेख किया है। 'उल्लेख' अलंकार के दो भेदों का वर्णन किया गया है[1]। 'व्यतिरेक' का लक्षण तथा उसके भेद दोनों आचार्यों ने अलग-अलग दिये हैं। दोनों आचार्यों के 'रूपक' के सामान्य लक्षण का भाव आपस में मिलता है, यद्यपि दास का लक्षण अधिक स्पष्ट है। 'रूपक-रूपक' का दोनों आचार्यों ने समान-रूप से निरूपण किया है, शेष भेद दोनों के भिन्न हैं। दास ने 'रूपक-रूपक' का केवल उदाहरण ही दिया है, लक्षण नहीं दिया और इसे उस वर्ग के अन्तर्गत रखा है जिसमें उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अन्य अलंकारों के आधार पर आए 'रूपक' का वर्णन है। केशव ने इस प्रकार का कोई वर्गीकरण नहीं किया है। उन्होंने 'परिणाम' और 'उल्लेख' अलंकारों का वर्णन नहीं किया है।

चौथे वर्ग में अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अल्प तथा विशेष नामक अलंकार रखे गये हैं। 'अतिशयोक्ति' के पांच भेदों भेदकातिशयोक्ति, सम्बन्धातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति और अत्यन्तातिशयोक्ति का उल्लेख किया गया है। 'अत्युक्ति' का भी 'अतिशयोक्ति' के अन्तर्गत ही विवरण दिया गया है। 'अतिशयोक्ति' के अन्य भेद, सम्भावना, अतिशयोक्ति, उपमा अतिशयोक्ति, सापह्नवातिशयोक्ति, रूपकातिशयोक्ति तथा उत्प्रेक्षितातिशयोक्ति भी बतलाये गए हैं। 'उदात्त' तथा 'अधिक' के दो-दो भेदों एवं 'विशेष' के तीन भेदों का भी उल्लेख किया गया है। केशव ने 'विशेष' के अतिरिक्त इस वर्ग के अन्य सभी अलंकारों को छोड़ दिया है। दोनों आचार्यों के 'विशेष' का लक्षण भिन्न है।

अप्रस्तुतप्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप, पर्यायोक्ति तथा अन्योक्ति को पाँचवें अन्योक्त्यादि वर्ग में रखा है। दास ने 'अप्रस्तुतप्रशंसा' के पाँच भेद माने हैं, (१) कारज मिस कारण कथन, (२) कारण मिस कारज कथन, (३) सामान्य मिस विशेष कथन, (४) विशेष मिस सामान्य कथन, तथा (५) तुल्य-प्रस्ताव कथन (काव्यनिर्णय, छं० ३, ४, पृ० ११८)। 'आक्षेप' के दास द्वारा बतलाए तीन भेद ये हैं, उक्ताक्षेप, निषेधाक्षेप तथा व्याक्ताक्षेप। 'समासोक्ति' के वाचकशब्द तथा श्लिष्टपद एवं 'पर्यायोक्ति' के रचना से वचन तथा मिस करके कार्यसाधन आदि भेद दिए गए हैं। केशव ने 'अप्रस्तुतप्रशंसा', 'प्रस्तुतांकुर' तथा 'समासोक्ति' का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने केशव के व्याजस्तुति तथा निन्दास्तुति (व्याजनिन्दा) नामक दोनों अलंकारों को अपनी 'व्याजस्तुति' में ही खपा दिया है। केशव के 'आक्षेप' अलंकार के सामान्य लक्षण का भाव दास से नहीं मिलता। केशव का लक्षण है—

कारज के आरम्भ ही, जहं कीजत प्रतिषेध।
आक्षेपक तासों कहत, बहु विधि बरनि सुमेध॥

(क० प्रि०, प्र० १०, छं० १)

---

१. एकै में बहु बोध कै, बहुगुन सो उल्लेख।

—काव्यनिर्णय, छं० ४१, पृ० १०६।

दास ने इसका लक्षण और रूप इस प्रकार दिया है—

जहाँ बरजिये कहि इहै, अवधि करो यह काज।
मुकर परत जेंहि बात को, मुख्य वही जहँ राज।
दूषि अपने कथन को, फेरि कहै कछु और।
आक्षेपालंकार को, जानो तीनों ठौर॥

(काव्यनिर्णय, छं० ३५-३६)

दास ने इसके केवल तीन ही भेद बतलाए हैं, केशव ने नौ कहे हैं। केशव ने 'अन्योक्ति' को 'उक्ति' अलंकार का एक भेद माना है और दास ने इसे पृथक् ही अलंकार बतलाया है। दोनों आचार्यों द्वारा दिए 'अन्योक्ति' अलंकार के लक्षणों का भाव एक ही है। मिलाइये—

औरहि प्रतिछु बखानिये, कछु और की बात।
अन्य उक्ति तेहि कहत हैं, वरनत कवि न अघात।

(केशव—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ६)

अन्य उक्ति औरहि कहै, औरहि के सिर डारि।

(दास—काव्यनिर्णय, छं० २, पृ० २५)

'पर्यायोक्ति' का लक्षण दोनों आचार्यों ने भिन्न दिया है। केशव की 'पर्यायोक्ति' दास का 'प्रथम प्रहर्षण' (बिना यत्न के चितचाही बात का होना-काव्यनिर्णय, छं० १६) है।

छठा वर्ग विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असंगति तथा विषम अलंकारों का है। 'विरुद्ध' अलंकार के नौ भेदों (१) जाति से जाति का विरोध, (२) जाति से क्रिया का विरोध, (३) जाति से द्रव्य का विरोध, (४) गुण से गुण का विरोध, (५) क्रिया से क्रिया का विरोध, (६) गुण से क्रिया का विरोध, (७) गुण से द्रव्य का विरोध, (८) क्रिया से द्रव्य का विरोध, तथा (९) द्रव्य से द्रव्य का विरोध का उल्लेख किया गया है। 'विभावना' के प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ भेद बतलाए गए हैं। 'व्याघात' और 'विषम' दोनों के प्रथम तथा द्वितीय दो-दो भेदों का वर्णन किया गया है। 'असंगति' के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय नामक तीन भेदों का उल्लेख हुआ है। दास जी का 'विरुद्ध' अलंकार केशव का 'विरोध' है, किन्तु दोनों आचार्यों द्वारा दिए लक्षण भिन्न हैं[1]। दास द्वारा उल्लिखित 'विरुद्ध' के नौ भेदों का केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है। केशव के 'विरोधाभास' को दास ने छोड़ दिया है। केशव ने 'विभावना' के दो भेद माने हैं, दास ने छः। केशव तथा दास

---

१. कहत सुनत देखत जहाँ, है कछु अनमिल बात।
चमत्कारजुत अर्थजुत, सो विरुद्ध अवदात॥

—काव्यनिर्णय, छं० २, पृ० १२८।

केशवदास विरोधमय, रचियत वचन विचारि।
तासों कहत विरोध सब, कविकुल सुबुद्धि सुधारि।

—क० प्रि०, प्र० ६, छं० १६।

दोनों की 'प्रथम विभावना' के लक्षण समान हैं[1]। इसी प्रकार केशव की 'द्वितीय विभावना' तथा दास की 'चतुर्थ विभावना' के लक्षणों में साम्य है। दास ने 'द्वितीय विभावना' का लक्षण नहीं दिया है, केवल उदाहरण ही दिया है। दास तथा केशव द्वारा दिए उदाहरणों से विदित होता है कि दास की 'द्वितीय विभावना' तथा केशव के 'विशेष' अलंकार के लक्षण का भाव समान है। केशव ने दास द्वारा दिये अन्य भेदों का उल्लेख नहीं किया है। दोनों ही आचार्यों के 'विशेषोक्ति' के लक्षणों का भाव प्रायः मिलता है। उदाहरणों से ज्ञात होता है कि दास जी की 'असंगति' केशव का 'व्यधिकरणोक्ति' (उक्ति का भेद) अलंकार है। केशव ने व्याघात, असंगति तथा विषम का कोई वर्णन नहीं किया है।

उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, अतद्गुण, पूर्वरूप, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित तथा विशेषक आदि अलंकारों का सातवाँ वर्ग बनाया गया है। 'उल्लास' तथा 'अवज्ञा' अलंकारों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ नामक चार-चार भेदों का वर्णन किया गया है। 'लेश' के दो भेद, (१) दोष को गुण मानना, तथा (२) गुण को दोष मानना बतलाए गए हैं। केशव ने 'लेश' को छोड़कर शेष अलंकारों का विवेचन नहीं किया है। 'लेश' अलंकार के दोनों आचार्यों के लक्षणों में अन्तर है। केशव का 'लेश' दास के 'युक्ति' अलंकार से साम्य रखता है।[2]

सम, समाधि, परिवृत्त, भाविक, प्रहर्षण, विषादन, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि तथा काव्यार्थापत्ति नामक सोलह अलंकारों का आठवाँ वर्ग है। 'सम' अलंकार के दो भेद, प्रथम तथा द्वितीय बतलाए गये हैं। 'भाविक' के दो भेद, भूत और भविष्य भाविक किए गए हैं। 'प्रहर्षण' के तीन भेदों का उल्लेख है, यथा प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय। 'समुच्चय' के दो भेद किए गए हैं, प्रथम तथा द्वितीय। केशव ने इस वर्ग में से केवल 'परिवृत्त' तथा 'सहोक्ति' को ही लिया है। 'परिवृत्त' अलंकार का दोनों आचार्यों का लक्षण

---

१. कारज को बिनु कारणहि, उदौ होत जेहि ठौर,
तासों कहत विभावना, केशव कवि शिरमौर ॥

—क० प्रि०, प्र० ६, छं० ११।

बिनु कैं लघु कारनन्ह तें, कारज प्रगट होइ।

—काव्यनिर्णय, छं० १६, पृ० १३०।

२. चतुराई के लेश ते, चतुर न समुझैं लेश ।
बरनत कवि कोविद सबै ताको केशव लेश ॥

—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४७।

क्रिया चातुरी सो जहाँ, करै बात को गोप ।
ताही उक्ति भूषन कहै, जिन्हैं काव्य की चोप ॥

—काव्यनिर्णय, छं० ६, पृ० १६५।

भिन्न है। दास के 'विषादन' अलंकार का लक्षण केशव के 'परिवृत्त' के लक्षण से साम्य रखता है। दास के 'विषादन' का लक्षण है—

सो विषाद चित चाहते, उलटो कछु ह्वै जाइ।
(काव्यनिर्णय, पृ० १५५)

केशव के 'परिवृत्त' का भी प्रायः यही भाव है—

जहाँ करत कछु और ही, उपज परति कछु और।
तासों परिवृत्त जानिये, केशव कवि सिरमौर॥
(क० प्रि०, प्र० १३, छं० ३६)

इसी प्रकार 'सहोक्ति' अलंकार के लक्षण भी दोनों आचार्यों ने भिन्न-भिन्न ही दिए हैं।

नवें वर्ग में सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति, मिथ्याध्यवसित, ललित, विवृतोक्ति, व्याजोक्ति, परिकर तथा परिकरांकुर अलंकार हैं। दास ने इस वर्ग के अलंकारों में से किसी के भी भेद नहीं किए हैं। केशव ने केवल 'सूक्ष्म' का ही वर्णन किया है। दोनों आचार्यों के इस अलंकार के लक्षण का भाव प्रायः एक ही है।[1]

स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिङ्ग, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या तथा प्रश्नोत्तर अलंकारों का दसवाँ वर्ग माना गया है। 'प्रमाण' अलंकार के प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (श्रुति-पुराणोक्ति, लोकोक्ति और आत्म-तुष्टि), अनुपलब्धि, सम्भव, अर्थापत्ति तथा वचन आदि आठ भेद किए गए हैं (काव्यनिर्णय, उल्लास १०, पृ० १७३-१७५)। 'प्रत्यनीक' के दो भेद शत्रुपक्षीय तथा मित्रपक्षीय कहे गए हैं। 'प्रश्नोत्तर' के भी दो ही भेद बतलाए गए हैं[2]। केशव ने केवल 'स्वभावोक्ति' तथा 'हेतु' अलंकारों का ही विवेचन किया है, शेष छोड़ दिए हैं। दोनों आचार्यों का 'स्वभावोक्ति' का लक्षण एक जैसा ही है। केशव ने 'स्वभा-वोक्ति' का निम्नलिखित लक्षण दिया है :—

---

१. कौनहु भाव प्रभाव ते, जाने जिय की बात।
इंगित तें आकार तें, कहि सूक्ष्म अवदात॥
—क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४५।

चतुर चतुर बातें करै, संज्ञा कछु ठहराय।
तेहि सूक्षम भूषन कहैं, जे प्रवीन कविराय॥
—काव्यनिर्णय, छं० ३।

२. छोड़ि वा कह्यौ वा कह्यौ, प्रश्नोत्तर कहि जाइ।
प्रश्नोत्तर तासों कहै, जे प्रवीन कविराय।४६॥
—काव्यनिर्णय, पृ० १८०।

उत्तर दीबे में जहाँ, प्रश्नो परत लखाइ।
प्रश्नोत्तर ताहू कहै, सकल सुकवि समुदाय।।४६॥
—काव्यनिर्णय, पृ० १८१।

जाको जैसो रूप गुण, कहिये ताही साज ।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरणत कविराज ॥
(क० प्रि०, प्र० ६, छं० ८)

दास का लक्षण है—

जाको जैसो रूप गुन, बरनत ताही साज ।
तासों जाति स्वभाव कहि, बरनत सब कविराज ॥
(काव्यनिर्णय, पृ० १७१)

केशव ने 'हेतु' अलंकार का सामान्य लक्षण न देकर केवल भेद ही दिये हैं, दास ने भेद नहीं बतलाए हैं। उदाहरणों के देखने से पता चलता है कि दास की 'परिसंख्या' केशव का 'नियमश्लेष' अलंकार है।

यथासंख्या, एकावली, कारणमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय तथा दीपक आदि अर्थालंकारों का अन्तिम वर्ग है। 'संकोच' तथा 'विकास' नामक 'पर्याय' के दो तथा अर्थावृत्ति, पदार्थावृत्ति, देहरी, कारक और मालादीपक नामक 'दीपक' के पाँच भेदों का वर्णन किया गया है। दोनों आचार्यों के 'दीपक' के सामान्य लक्षणों में अन्तर है। केशव का लक्षण है—

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य को, बरनहु करि इक ठौर ।
दीपक दीपति कहत है, केशव कवि सिरमौर ॥
(क० प्रि०, प्र० १३, छं० २१)

तथा दास जी ने इसके लक्षण में लिखा है—

एक सब्द बहु में लगै, दीपक जाने सोइ ।
(काव्यनिर्णय, पृ० १८८)

केशव ने 'दीपक' के दो ही भेद बतलाए हैं, मणि तथा मालादीपक; पर साथ ही यह भी माना है कि इसमें अनेक भेद होते हैं। दास ने 'मणिदीपक' को छोड़ दिया है। 'मालादीपक' का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है, किन्तु दोनों के लक्षणों में अंतर है[1]। उदाहरणों के देखने से ज्ञात होता है कि केशव का 'क्रम' दास का 'एकावली' अलंकार है।

केशव द्वारा बतलाए क्रम, गणना, आशिष, अमित, युक्त, प्रसिद्ध, सुसिद्ध, विपरीत तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का दास ने कोई उल्लेख नहीं किया है। 'अलंकार-मूल वर्णन' के अन्तर्गत दास द्वारा निर्दिष्ट संसृष्टि और संकर (काव्यनिर्णय, पृ० २८-३०) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

---

१. दीपक एकावली मिले, माला दीपक जानि ।
—काव्यनिर्णय, छं० ४१, पृ० १९१।

सबै मिलै जहँ बरनिये, देशकाल बुधिवन्त ।
मालादीपक कहत हैं, ताके भेद अनन्त ॥
—क० प्रि०, प्र० १३, छं० २७।

दास ने उन्नीसवें उल्लास में 'गुण-निर्णय-वर्णन' के अन्तर्गत 'अनुप्रास' का निरूपण किया है। इसी प्रकरण में पुनरुक्ति-प्रकाश, यमक, वीप्सा और सिंहावलोकन आदि शब्दालंकारों का भी निरूपण किया गया है। बीसवें उल्लास में दास ने 'श्लेष' अलंकार को विरोधाभास, मुद्रा, वक्रोक्ति एवं पुनरुक्तवदाभास के साथ लेकर शब्दालंकार स्वीकार किया है और साथ ही यह भी कहा है कि इसे कोई भी अर्थालंकार नहीं बतलाता[1]। इक्कीसवें उल्लास में चित्रालंकारों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। बाईसवें उल्लास में 'तुक' का वर्णन है।

शब्दालंकारों में दास ने 'अनुप्रास' के छेकानुप्रास, वृत्यनुप्रास तथा लाटानुप्रास भेदों का विवेचन किया है[2]। केशव 'अनुप्रास' को अलंकार ही नहीं मानते हैं। दास द्वारा उल्लिखित पुनरुक्ति-प्रकाश, वीप्सा तथा सिंहावलोकन आदि अन्य शब्दालंकार भी केशव को मान्य नहीं हैं। अतएव उन्होंने उनको छोड़ दिया है। यमक, वक्रोक्ति और श्लेष का वर्णन दोनों आचार्यों ने किया है। 'यमक' के 'सव्ययेत' तथा 'अव्ययेत' 'सुखकर' तथा 'दुखकर' आदि अनेक भेदों का उल्लेख कर केशव ने इस अलंकार का विस्तृत विवेचन किया है। दास ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने 'श्लेष' के भेदों का वर्णन नहीं किया है। केशव ने इसके विभिन्न भेद देते हुए इस अलंकार का बड़े विस्तार के साथ विवेचन किया है। दोनों आचार्यों के 'वक्रोक्ति' के लक्षणों का भाव प्रायः एक ही है। केशव ने 'वक्रोक्ति' (उक्ति अलंकार का भेद) का लक्षण यों दिया है—

केशव सूधी बात में, वरणत टेढ़ो भाव।
वक्रोकति तासों कहै, सही सबै कविराय॥
(क० प्रि०, प्र० १२, छं० ३)

तथा दास का लक्षण है—

व्यंग्य काकु ते अर्थ को, फेरि लगावै तर्क।
बक्र उक्ति तासों कहै, जे बुध अम्बुज अर्क॥
(काव्यनिर्णय, पृ० २०८)

चित्रालंकारों का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है, परन्तु दास ने कुछ अधिक विस्तार के साथ किया है। दास ने चित्रालंकारों में प्रश्नोत्तरचित्र, गुप्तोत्तर, व्यस्तसमस्तोत्तर, एकानेकोत्तर, नागपासोत्तर, क्रमव्यस्तसमस्त, कमलबद्धोत्तर, शृंखलोत्तर, चित्रोत्तर—(१) अन्तरलापिका तथा (२) बहिरलापिका, पाठान्तरचित्र—(१) पाठान्तरचित्र

---

१. श्लेष विरोधाभास है, सब्दालंकृत दास।
मुद्रा अरु वक्रोक्ति पुनि, पुनरुक्तवदाभास॥
इन पाँचहु को अर्थ सों, भूपन कहै न कोइ।
जदपि अर्थ भूपन सकल, सब्दशक्ति में होइ॥
—काव्यनिर्णय, छं० १, २, पृ० २०५

२. काव्यनिर्णय, उल्लास १६, पृ० १६७-२००।

लुप्तवर्णन (२) मध्यवर्णलुप्त तथा (३) परिवर्तित वर्ण, निरोष्ठमत्तचित्रोत्तर, अमत्त-चित्रोत्तर, निरोष्ठमत्तचित्र, अजिह्व, नियमित वर्ण, (एक वर्णनियमित से सप्तवर्ण नियमित तक), लेखनीचित्र, खड्गबंध, कमलबंध, कंकनबंध, डमरुबंध, चन्द्रबंध, चक्र-बंध, धनुषबंध, हरिबंध, मुरजबंध, पर्वतबंध, छत्रबंध, वृक्षबंध, कपाटबद्ध, अर्थगतागत, त्रिपदी, मंत्रगति, अश्वगति, सुमुखबद्ध, सर्वतोमुख, कामधेनु, चरणगुप्त आदि का विव-रण दिया है। इनमें से कुछ के लक्षण और उदाहरण दोनों का उल्लेख किया गया है और कुछ के केवल उदाहरण ही दिए गए हैं। केशव ने केवल प्रश्नोत्तर, व्यस्तसम-स्तोत्तर, एकानेकोत्तर, अन्तरलापिका, बहिरलापिका, निरोष्ठ, नियमितवर्ण, कमलबंध, डमरुबंध, चक्रबंध, धनुषबंध, पर्वतबंध, कपाटबंध, त्रिपदी, मंत्रगति, अश्वगति, सर्वतो-मुख, कामधेनु तथा चरणगुप्त आदि का ही वर्णन किया है, दास के शेष भेदों का उल्लेख नहीं किया है। दोनों ही आचार्यों ने चित्रालंकार का सामान्य लक्षण नहीं दिया है। दास जी ने लिखा है कि चित्रकाव्य में चमत्कारहीन अर्थ का कोई दोष नहीं माना जाता। इसमें 'ब' और 'व' तथा 'ज' और 'य' एक दूसरे के स्थान पर रखे जा सकते हैं और अनुस्वार का भी कोई ध्यान नहीं रखा जाता (काव्यनिर्णय, छं० १ तथा २)। केशव ने भी यही कुछ लिखा है। वे कहते हैं कि चित्रकाव्य में यति, अन्ध, बधिर, अगण आदि दोष नहीं माने जाते। इसमें 'ब' के स्थान पर 'व' और 'य' के स्थान पर 'ज' तथा 'ज' के स्थान पर 'य' और 'ब' के स्थान पर 'ब' ग्रहण किया जा सकता है (क० प्रि०, प्र० १६, छं० २, ३)। केशव ने 'तुक' का वर्णन नहीं किया है।

दास के भावोदय, भावसन्धि, भावशबल आदि भावालंकारों (काव्यनिर्णय, छं० ४, पृ० ४१-४३) का केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है।

रसालंकारों में प्रेय, रसवत और ऊर्जस्वि का उल्लेख दोनों ही आचार्यों ने किया है पर दोनों के लक्षण अलग-अलग हैं।

पद्माकर तथा केशव :

पद्माकर के दर्शन हमें रीति-परम्परा की अन्तिम टिमटिमाती हुई ज्योति के रूप में होते हैं। इनका जन्म सम्वत् १८१० में सागर में हुआ और मृत्यु अस्सी वर्ष की आयु में (संवत् १८९०) में कानपुर में हुई। ये विभिन्न राजाओं की छत्रच्छाया में रहे और इनके अधिकांश ग्रंथों का निर्माण भी आश्रयदाताओं के लिये ही हुआ है। 'हिम्मतबहादुर-विरुदावली' नामक वीररसात्मक ग्रंथ की रचना इन्होंने रजधान के गोसाईं अनूपगिरि उपनाम हिम्मतबहादुर (अवध-नरेश के सेनापति) के लिए की। हिन्दी-संसार में प्रसिद्ध इनके ग्रंथ 'जगद्विनोद' का निर्माण जयपुर-नरेश प्रतापसिंह, जिन्होंने इन्हें 'कविराज-शिरोमणि' की उपाधि प्रदान की थी, के पुत्र जगतसिंह के लिये हुआ था। सम्भवतः यहीं रहकर इन्होंने 'पद्माभरण' नामक ग्रंथ भी बनाया था। आयु के पिछले दिनों में इन्हें श्वेत-कुष्ठ हो गया था। उसी समय इन्होंने 'प्रबोध पचासा' नामक विराग और भक्तिरस से पूर्ण ग्रंथ लिखा। अपने वार्धक्य में ये कानपुर आ गये और वहीं गंगातट पर बैठकर 'गंगालहरी' नामक ग्रंथ बनाया, जिसकी यथेष्ट

प्रसिद्धि हुई। इनके अतिरिक्त इन्होंने 'रामरसायन'[1] नाम का दोहा-चौपाइयों में रामकथा-सम्बन्धी एक काव्य रचा। इनके रीतिग्रंथ 'जगद्विनोद' में नायिका-भेद तथा विभिन्न रसों का वर्णन है और 'पद्माभरण' में अलंकारों का। यहाँ 'पद्माभरण' के आधार पर केशव का पद्माकर से मिलान किया गया है।

'पद्माभरण' कुल तीन प्रकरणों में समाप्त हुआ है, अर्थालंकार प्रकरण, पंचदशालंकार प्रकरण तथा संसृष्टि-संकर प्रकरण। अर्थालंकार प्रकरण में पद्माकर ने काव्यलिंग और विशेषक नामक दो अलंकारों का मतिराम से अधिक विवेचन किया है। इस प्रकार इन्होंने कुल मिलाकर ११४ अलंकार माने हैं। क्रम भी इन्होंने मतिराम का ही रखा है, केवल अन्तर इतना ही है कि मतिराम ने 'तद्गुण' के उपरान्त 'अतद्गुण' और फिर 'पूर्वरूप' को गिनाया है और पद्माकर ने 'तद्गुण' के बाद पहले 'पूर्वरूप' को और फिर 'अतद्गुण' को रखा है। उपमा, मालोपमा, रूपक, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, दीपक, निदर्शना, व्यतिरेक, सहोक्ति, श्लेष, पर्यायोक्ति, व्याजस्तुति, निन्दास्तुति (व्याजनिन्दा), आक्षेप, विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, विशेष, मालादीपक, परिवृत्ति, अर्थांतरन्यास, लेश, चित्र, सूक्ष्म, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति तथा हेतु (२७) अलंकारों का वर्णन पद्माकर तथा केशव दोनों ही आचार्यों ने किया है, परन्तु विभिन्न अलंकारों के भेदों तथा लक्षणों में प्रायः अन्तर है। केशव ने 'उपमा' के बाईस भेदों का उल्लेख किया है। पद्माकर ने इसके 'पूर्णोपमा' तथा 'लुप्तोपमा' और फिर 'श्रौती' तथा 'आर्थी' भेद बतलाए हैं। 'मालोपमा' का दोनों ही आचार्यों ने वर्णन किया है, किन्तु लक्षण दोनों के भिन्न हैं। केशव के अनुसार 'मालोपमा' का लक्षण है—

जो जो उपमा दीजिए, सो सो पुनि उपमेय।
सो कहिये मालोपमा, केशव कवि कुल गेय॥
(क० प्रि०, प्र० १४, छं० ४३)

तथा पद्माकर की 'मालोपमा' का लक्षण है

मालोपम उपमेय इक, ताके बहु उपमान॥
(पद्माभरण, पृ० ४१)

इसी प्रकार केशव द्वारा उल्लिखित श्लेष, रूपक, व्यतिरेक, दीपक, आक्षेप, हेतु तथा अर्थांतरन्यास अलंकारों के भेद पद्माकर के इन्हीं अलंकारों के भेदों से नहीं मिलते। पद्माकर ने श्लेष के अनेक वर्ण्य, अनेक अवर्ण्य तथा अनेक-वर्ण्यावर्ण्य; रूपक के अधिक, सम और न्यून अभेद रूपक तथा अधिक, सम और न्यून तद्रूप एवं सावयवरूपक; व्यतिरेक के अधिक, न्यून तथा सम; आक्षेप के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय; हेतु के प्रथम तथा द्वितीय; और अर्थांतरन्यास के (१) सामान्य से विशेष का समर्थन तथा (२) विशेष से सामान्य का समर्थन आदि भेद बतलाए हैं। पद्माकर ने 'दीपक' के

१. इसके विषय में स्व० रामचन्द्र शुक्ल जी लिखते हैं कि इसमें पद्माकर जी को काव्य-सम्बन्धी सफलता नहीं मिली है, सम्भव है यह इनका न हो।—हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३६।

कोई भेद नहीं दिए हैं। आवृत्तिदीपक, मालादीपक तथा कारकदीपक अलग ही अलंकार माने गए हैं। केशव ने 'उत्प्रेक्षा', 'परिवृत्ति' तथा 'अपह्नुति' के कोई भेद नहीं किए हैं, किन्तु पद्माकर ने 'परिवृत्ति' के प्रथम तथा द्वितीय, 'उत्प्रेक्षा' के वस्तूत्प्रेक्षा, हेतूत्प्रेक्षा तथा फलोत्प्रेक्षा भेद बतलाते हुए 'वस्तूत्प्रेक्षा' के उक्त-विषया तथा अनुक्त-विषया और शेष दोनों प्रकार की उत्प्रेक्षाओं के सिद्ध-विषया तथा असिद्ध-विषया दो-दो भेद किए हैं और अपह्नुति के छः भेद बतलाए हैं। केशव के विरोध, क्रम, गणना, आशिष, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, अमित, युक्त, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, यमक तथा प्रहेलिका आदि अलंकारों का पद्माकर ने वर्णन नहीं किया है। केशव ने चित्रालंकार के अनेक भेदों एवं रूपों का वर्णन किया है, पद्माकर ने केवल इसके दो भेदों का ही उल्लेख किया है[1]। पद्माकर ने 'विशेष' अलंकार के प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय—इन तीन भेदों का वर्णन किया है। केशव ने इसके कोई भेद नहीं किए हैं। केशव द्वारा दिए इस अलंकार के सामान्य लक्षण का भाव पद्माकर के किसी भेद से नहीं मिलता है। केशव ने 'पर्यायोक्ति' का कोई भेद नहीं बतलाया है, पद्माकर ने इसके दो भेद[2] किए हैं। केशव की 'पर्यायोक्ति' का सामान्य लक्षण पद्माकर के किसी भेद से साम्य नहीं रखता है। पद्माकर ने 'व्याजस्तुति' के तीन भेद किए हैं[3]। केशव ने 'निन्दा में स्तुति' को ही 'व्याजस्तुति' माना है और 'स्तुति में निन्दा' को व्याजनिन्दा (निन्दास्तुति)। तीसरे प्रकार (अन्य-स्तुति में अन्य-स्तुति) को केशव नहीं मानते हैं। उन्होंने 'व्याजस्तुति' को 'व्याजनिन्दा' (निन्दास्तुति) से भिन्न अलंकार बतलाया है। केशव की 'व्याजनिन्दा' (निन्दास्तुति) का लक्षण पद्माकर की 'व्याजनिन्दा'[4] के लक्षण से नहीं मिलता है। केशव ने 'विभावना' के दो भेद प्रथम तथा द्वितीय किए हैं; पद्माकर ने छः प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पंचम तथा षष्ठ। दोनों आचार्यों की 'प्रथम विभावना' का लक्षण परस्पर मिलता है। केशव की 'द्वितीय विभावना' पद्माकर की 'चौथी विभावना' है। पद्माकर के शेष भेदों को केशव ने छोड़ दिया है। निदर्शनालंकार का लक्षण केशव ने इस प्रकार दिया है :

---

१. चित्र वचन जो प्रश्न को, उत्तर वहै प्रकास।
—पद्माभरण, छं० २४७, पृ० ६६।

२. पर्यायोक्ति सुगम्य जहँ, फुरै वचन रचनान।
साधव मिसि करि काज को, यो द्वै विधि उर आन॥
—पद्माभरण, छं० १२३, पृ० ५४।

३. निन्दा में स्तुति है जहाँ, स्तुति में निंदा जत्र।
अन्य-स्तुति में अन्य की, स्तुति भाषत हैं तत्र॥
या विधि तीन प्रकार की, व्याजस्तुति पहचान॥
—पद्माभरण, छं० १२५-१२६ (प्रथमार्द्ध), पृ० ५४।

४. जहँ इक की निन्दा कियें, निंद और ही होत।
कहत व्याजनिन्दा तहाँ, जे कवियन के गोत॥
—पद्माभरण, छं० १३०।

कौनहु एक प्रकार ते, सत अरु असत समान
करिये प्रगट निदर्शना, समुझत सकल सुजान ॥
(क० प्रि०, प्र० ११, छं० ४६)

केशव ने इसके भेद नहीं किए हैं। पद्माकर ने इसका लक्षण और विभिन्न रूप इस प्रकार लिखे हैं—

जु सम-वाक्य जुग अरथ को, करब एकतारोप ।
जो सो पदनि निदर्सना, ताहि कहत करि चोप ॥
वर्न्य-धर्म जु अवर्न्य में, धर्म जु वर्न्यहु माहि ।
धर्म अवर्न्य हु को कहत, बिय निदर्सना ताहि ॥
(पद्माभरण, छं० ८५ और ८७)

जु निज अवस्था सों करै, भलो-बुरो फल-बोध ।
सो सदर्थ-असदर्थ जुत, यों निदर्सना सोध ।
(पद्माभरण, छं० ८६)

उपर्युक्त २७ अलंकारों को छोड़कर जिनका वर्णन दोनों ही आचार्यों ने समान रूप से किया है, रशनोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, परिणाम, उल्लेख, स्मरण, भ्रांति, सन्देह, हेत्वपह्नुति, पर्यस्तापह्नुति, भेदकातिशयोक्ति, सम्बन्धातिशयोक्ति, अक्रमातिशयोक्ति, चपलातिशयोक्ति, अत्यन्तातिशयोक्ति, तुल्ययोगिता, आवृत्तिदीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, परिकरांकुर, अप्रस्तुतप्रशंसा, प्रस्तुतांकुर, असंभव, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अल्प, अन्योन्य, व्याघात, कारणमाला, एकावली, सार, यथासंख्य, पर्याय, परिसंख्या, विकल्प, समुच्चय, कारक-दीपक, समाधि, प्रत्यनीक, काव्यार्थापत्ति, काव्यलिंग, विकस्वर, प्रौढ़ोक्ति, संभावना, मिथ्याध्यवसित, ललित, प्रहर्षण, विषादन, उल्लास, अवज्ञा, अनुज्ञा, मुद्रा, रत्नावली, तद्गुण, अतद्गुण, अनुगुण, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, विशेषक, गूढ़ोत्तर, पिहित, व्याजोक्ति, गूढ़ोक्ति, विवृतोक्ति, युक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, भाविक, उदात्त, अत्युक्ति, निरुक्ति, प्रतिषेध तथा विधि (८७) अलंकारों का पद्माकर ने केशव से अधिक वर्णन किया है। उदाहरणों तथा लक्षणों के देखने से विदित होता है कि पद्माकर के भ्रांति, सन्देह तथा उपमेयोपमा अलंकार केशव की क्रमशः 'मोहोपमा, 'संशयोपमा' तथा 'परस्परोपमा' हैं। केशव का 'व्यधिकरणोक्ति' अलंकार पद्माकर की 'प्रथम असंगति' से मिलता है[१]। इसी प्रकार केशव का 'पर्यायोक्ति' अलंकार पद्माकर का 'प्रथम

१. सु असंगति कारन कहूं, कारने औरे ठांहि ।
तिय उरजनि नख-छत लगे, विथा सौति-उर माहि ॥
—पद्माभरण, छं० १४५, पृ० ५६ ।

औरहि में कीजै प्रगट औरहि को गुण दोष ।
उक्ति यहै व्यधिकरण की सुनत होत संतोष ॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० ८

प्रहर्षण' है। केशव ने 'पर्यायोक्ति' का लक्षण यों दिया है[1]। पद्माकर के 'प्रथम प्रहर्षण' के लक्षण का भी यही भाव है[2]। रूपक, अपह्नुति, उत्प्रेक्षा, श्लेष, व्यतिरेक, विरोधाभास, विशेषोक्ति, व्याजस्तुति, वक्रोक्ति तथा सूक्ष्म आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के सामान्य लक्षणों का भाव एक ही है। दीपक, सहोक्ति, मालादीपक, व्याजनिन्दा, लेश, विशेष, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों के दोनों आचार्यों के लक्षण भिन्न हैं।

पंचदशालंकार-प्रकरण के अन्तर्गत पद्माकर ने रसवत, प्रेय, ऊर्जस्वित, समाहित, भावोदय, भावसंधि और भावशवलता आदि सात रस एवं भावालंकारों तथा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (श्रुतिवाक्य, स्मृतिवाक्य, आगम, आचार और आत्मतुष्टि), अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य तथा संभव आदि आठ प्रमाणालंकारों का विवेचन किया है। केशव ने रसवत, प्रेय, ऊर्जस्वित तथा समाहित का वर्णन किया है, किन्तु दोनों आचार्यों के लक्षणों में अन्तर है। भावोदय आदि भावालंकारों तथा अष्टप्रमाणालंकारों को केशव ने छोड़ दिया है। पद्माकर द्वारा वर्णित संसृष्टि-संकर प्रकरण का भी केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

(२) रस तथा नायक-नयिका-भेद-विवेचन के क्षेत्र में :

चिन्तामणि तथा केशव :

चिन्तामणि ने अपने 'कविकुलकल्पतरु' ग्रन्थ के पंचम प्रकरण में अभिधा, लक्षणा और व्यंजना के अनन्तर भाव-भेद का साधारण कथन कर शृङ्गार रस के आलम्बन नायक-नायिका और उद्दीपन विभाव का सविस्तर वर्णन किया है। छठे और सातवें प्रकरण में क्रमशः अनुभाव, सात्विक और संचारी भाव तथा हाव-भाव का वर्णन किया गया है। आठवें में शृङ्गार रस तथा अन्य आठ रसों का उनके अंगों के सहित विशेष विवेचन है।

चिन्तामणि ने नायिका का सामान्य लक्षण देते हुए उसके सर्वप्रथम दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य आदि तीन भेद किये हैं[3], जो केशव ने छोड़ दिये हैं। नायिकाओं के तीन सामान्य भेद स्वकीया, परकीया और सामान्या चिन्तामणि तथा केशव

---

१. कौनहु एक अदृष्ट ते, अनही किये जु होय।
सिद्धि आपने इष्ट की, पर्यायोकति सोय ॥
—क० प्रि०, प्र० १२, छं० २६।

२. वांछित-फल-सिद्धि-जतन बिन, प्रथम प्रहर्षन होइ ॥
—पद्माभरण, छं० २१८, पृ० ६६।

३. आलंबन शृङ्गार को तिय नायका बखानि।
कलनि प्रवीन विलासिनी सुन्दरता की खानि।
दिव्य अदिव्य कहै सुकवि दिव्यादिव्य विचारि।
त्रिविध नायका जगत में ग्रन्थन बहु निहारि।
—क० कु० त०, पृ० ६६, छं० ६९, ७१।

दोनों ही आचार्यों को मान्य है। केशव के ही समान चिन्तामणि ने भी 'सामान्या' का विवरण नहीं दिया है। 'स्वकीया' के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेदों का भी दोनों आचार्यों ने समान-रूप से वर्णन किया है, किन्तु अवान्तर भेदों में अन्तर है। चिन्तामणि ने 'मुग्धा' के छः भेद बतलाए हैं, वयःसन्धि, अविदितयौवना, अविदितकामा, विदितमनोभवयौवना, नवोढ़ा और विश्रब्धनवोढ़ा (क० कु० तरु, छं० ७८-८२)। केशव के अनुसार 'मुग्धा' के चार भेद हैं, नवलवधू, नवयौवना, नवलअनंगा और लज्जाप्राइरति। केशव ने 'मुग्धा' की सुरति और मान का पृथक् वर्णन किया है, जो चिन्तामणि ने छोड़ दिया है। चिन्तामणि ने 'मध्या' के आरूढ़यौवना, आरूढ़मदना, विचित्रसुरता तथा प्रगल्भवचना नामक भेद किए हैं (क० कु० तरु, छं० १०३)। ये चारों भेद केशव द्वारा उल्लिखित क्रमशः आरूढ़यौवना, प्रादुर्भूतमनोभवा, विचित्रसुरता तथा प्रगल्भवचना से मिलते हैं। चिन्तामणि के अनुसार 'प्रौढ़ा' के भेद हैं, प्रौढ़यौवना, मदनमत्ता, रतिप्रीतिमती तथा सुरतिमोदपरवशा (क० कु० तरु, छं० ११५-११८)। केशव ने 'प्रौढ़ा' के समस्तरसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, अक्रामति नायिका तथा लब्धापति भेद किए हैं, जो चिन्तामणि से नहीं मिलते। चिन्तामणि ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा आदि तीनों सामान्य भेदों के लक्षण उदाहरण-सहित दिए हैं, परन्तु अवान्तर भेदों के केवल उदाहरण ही दिए हैं। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा आदि सामान्य भेदों के लक्षण नहीं दिए हैं, केवल उदाहरण दिए हैं किन्तु अवान्तर भेदों के लक्षण और उदाहरण दोनों ही दिए हैं। 'मान' की दशा में मध्या तथा प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा आदि भेद दोनों ही आचार्य मानते हैं; अन्तर केवल इतना है कि चिन्तामणि ने 'प्रौढ़ा धीरा' के अन्तर्गत सावहित्था धीरा, सादराधीरा और रत्युदासीना धीरा के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। चिन्तामणि द्वारा बतलाए ज्येष्ठा-कनिष्ठा भेदों को केशव ने स्वीकार नहीं किया है।

'परकीया' नायिका के ऊढ़ा और अनूढ़ा भेदों का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। चिन्तामणि ने ऊढ़ा के अन्तर्गत सुरतिगोपना, चतुरा, कुलटा, लक्षिता, अनुशयना और मुदिता भेदों (क० कु० तरु०, छं० १२६) तथा चतुरा और अनुशयना के क्रमशः वचनचतुरा और क्रियाचतुरा (क० कु० तरु, छं० १२८) एवं प्रथम, द्वितीय और तृतीय अनुशयना (क० कु० तरु, छं० १३७) उपभेदों का उल्लेख किया है। चिन्तामणि ने प्रथम पाँच भेदों के लक्षण-उदाहरण-सहित दिए हैं, छठी मुदिता का केवल उदाहदण ही दिया है (क० कु० तरु, छं० १४१)। केशव ने इन भेदों को छोड़ दिया है।

अवस्था के अनुसार चिन्तामणि ने केशव के ही समान प्रसिद्ध स्वाधीनपतिका, वासकसज्जा, विरहोत्कंठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहांतरिता, प्रोषितभर्तृका अथवा प्रोषितपतिका और अभिसारिका आदि आठ नायिकाओं के नाम गिनाए हैं (क० कु० तरु, पृ० १४४-१४५)। केवल अन्तर इतना है कि केशव ने चिन्तामणि द्वारा निर्दिष्ट विरहोत्कंठिता तथा कलहांतरिता के स्थान पर क्रमशः उत्का और अभिसंधिता नाम लिखे हैं। चिन्तामणि ने आठों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा तथा परकीया और सामान्या आदि भेदों के अन्तर्गत उदाहरण प्रस्तुत किए हैं, केशव ने

केवल अभिसारिका भेद के अन्तर्गत स्वकीया परकीय तथा सामान्या नायिका के अभिसार का लक्षण दिया है और प्रेमाभिसारिका, कामाभिसारिका तथा गर्वाभिसारिका के उदाहरण दिए हैं। चिन्तामणि ने इन भेदों का वर्णन नहीं किया है। चिन्तामणि ने अभिसारिका के अन्तर्गत ज्योत्स्नाभिसारिका, तमोभिसारिका तथा दिवाभिसारिका के लक्षण उदाहरण-सहित उपस्थित किए हैं (क० कु० तरु, छं० २१०-२१६)। केशव ने इन तीनों का कोई उल्लेख नहीं किया है। उत्तमा, मध्यमा और अधमा नायिकाओं के भेदों का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। केशव के जाति के अनुसार दिये गए भेदों पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी, दर्शन के भेदों तथा नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं एवं प्रथम-मिलन-स्थानों का वर्णन चिन्तामणि ने नहीं किया है।

चिन्तामणि ने सर्वप्रथम नायक का सामान्य लक्षण[1] देकर नायक के धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त भेदों का उल्लेख किया है। फिर शृंगार रस के नायकों में अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट के नाम लिए हैं। केशव ने अनुकूल आदि चारों का तो वर्णन किया है किन्तु धीरोदात्त आदि भेदों को छोड़ दिया है। चिन्तामणि ने केशव द्वारा उल्लिखित अनुकूलादि नायकों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का वर्णन नहीं किया है।

सखी, दूती आदि का वर्णन उद्दीपन-विभाव के अन्तर्गत आता है। केशव ने 'सखी' तथा उसके कर्मों का वर्णन किया है। चिन्तामणि ने इनका कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि ने चार प्रकार के उद्दीपन बतलाए हैं, आलम्बन (नायक-नायिका) के गुण, इंगित (चेष्टा), अलंकृति और तटस्थ उद्दीपन[2]। गुणों के अन्तर्गत रूप, यौवन आदि का उल्लेख किया गया है। अलंकृति में आभूषण, हार आदि और चेष्टा में हाव-भाव आदि का वर्णन किया गया है और तटस्थ के अन्तर्गत मलयानिल, चन्दनादि वस्तुओं को गिनाया है[3]। केशव ने उद्दीपन के अन्तर्गत केवल नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर देखना, आलाप, आलिंगन, नखदान, रददान, चुंबन, मर्दन, तथा स्पर्श का उल्लेख किया है। ये वस्तुएँ चिन्तामणि द्वारा निर्दिष्ट उद्दीपन के 'चेष्टा' नामक भेद के अन्तर्गत आ जाती हैं।

चिन्तामणि ने सात्विक भावों के अन्तर्गत स्वेद, स्तंभ, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, आँसू और प्रवलीन का उल्लेख किया है और उन सब को केवल एक ही

---

१. सकल धरम जुत नियुत धन विक्रम पूरो होइ।
ताको नायक कहत हैं कवि पंडित सब कोइ।
—क० कु० तरु, नायक-वर्णन, छं० १, पृ० १५४।

२. आलंबन गुन इंगितो अलंकार ए तीन।
पुनि तटस्थ चौथो कह्यो उद्दीपन ए बीन।
—क० कु० तरु, पृ० १५४, छं० ४१।

३. क० कु० तरु, पृ० १५४, छं० ४२-४२।

उदाहरण में दिखला दिया है[1]। केशव ने 'अवलीन' के स्थान पर 'प्रलाप' आठवाँ सात्विक भाव माना है। उन्होंने इनका कोई उदाहरण नहीं दिया है, केवल नाम ही गिनाए हैं। केशव द्वारा उल्लिखित संचारीभावों में निन्दा, कोह, विवाद और आशतर्क के स्थान पर चिन्तामणि ने क्रमशः ईर्ष्या, अमर्ष, अवहित्था तथा वितर्क शब्दों का प्रयोग किया है। केशव के ३४वें संचारी 'आधि' को छोड़ कर शेष संचारी भाव दोनों आचार्यों के समान हैं। चिन्तामणि ने प्रत्येक के लक्षण और उदाहरण दिए हैं, पर केशव ने केवल सामान्य लक्षण देकर उनके नामों का उल्लेख-मात्र ही किया है। स्थायीभावों की संख्या एवं नाम भी दोनों आचार्यों के आपस में मिलते हैं। केशव ने 'स्थायीभाव' का लक्षण नहीं दिया है, केवल नाम ही गिनाए हैं। किन्तु चिन्तामणि ने उसके स्वरूप का खूब खोलकर वर्णन किया है (क० कु० तरु, पृ० ६७)। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि तथा भावशबलता (क० कु० तरु, पृ० २१४-२१६) आदि का केशव ने वर्णन नहीं किया है। हावों के अन्तर्गत चिन्तामणि ने भाव, हाव, माधुर्य, हेला, धर्म, लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, बिब्बोक, ललित, कुतूहल, चकित, विहृत और हास (क० कु० तरु, छं० १-३)—इन अठारह का उल्लेख उनके लक्षण और उदाहरण के साथ किया है। इनमें भी केशव के 'मद' और 'बोध' हाव नहीं हैं। केशव क वर्णन से इसमें भाव, हाव, माधुर्य, धर्म, कुतूहल, चकित और हास अधिक हैं।

शृंगार रस के दो भेद, संयोग और वियोग दोनों आचार्यों को ही मान्य हैं, किन्तु चिन्तामणि केशव द्वारा बतलाए दोनों भेदों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का वर्णन नहीं करते हैं। चिन्तामणि और केशव दोनों ही वियोग शृंगार के चारों भेदों, पूर्वानुराग, मान, प्रवास और करुणा को मानते हैं। 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत विरह की स्वीकृत दश दशाओं, 'मान' के लघु, मध्यम और गुरु भेदों तथा मान-मोचन के छः उपायों का वर्णन भी दोनों ही आचार्यों ने समान-रूप से किया है, अन्तर केवल इतना है कि चिन्तामणि ने केशव के छठे मान-मोचन के उपाय 'प्रसंगविध्वंस' के स्थान पर 'रसान्तर' लिखा है (क० कु० तरु, छं० ६८)। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित 'मान' के अन्य दो भेदों प्रणय तथा ईर्ष्या मान (क० कु० तरु, छं० ५६) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि के बतलाए हुए 'प्रवास' के भेदों 'भविष्य' और 'भूत' (क० कु० तरु, छं० ८१) को केशव ने छोड़ दिया है। केशव द्वारा उल्लिखित 'प्रवास' की भयविभ्रम, अनिद्रा, विरहनिवेदन आदि अवस्थाओं का चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

---

१. स्वेद तंभ रोमांच कहि, पुनि सुर भंग बनाइ।
बहुरि कम्प वैवर्ण्य गनि आँसू अवलीनाइ ॥५॥
आठ सात्विक ए कहत सज्जन गन मन आनि।
इनके देत उदाहरन एक कवित्त में मानि ॥६॥

—क० कु० तरु, पृ० १५७।

विभिन्न रसों का वर्णन करते हुए केशव ने प्रत्येक रस का लक्षण उदाहरण-सहित संक्षेप में दिया है। साथ ही करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत—इन छः रसों के कपोत, अरुण, गौर, श्याम, नील तथा पीत वर्णों का भी उल्लेख किया है। चिन्तामणि ने प्रत्येक रस का लक्षण देते हुए उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा रस-विशेष के वर्ण और देवता का सविस्तार वर्णन किया है। चिन्तामणि द्वारा उल्लिखित करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत—इन पाँच रसों के वर्ण केशव के समान ही हैं। केशव ने शेष तीन रसों के वर्णों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने हास्य रस के चार भेद, मंदहास, कलहास, अतिहास और परिहास बतलाये हैं। चिन्तामणि ने हास्य रस के छः भेदों स्मित, हसित, विहसित, उद्धसित, अपहसित तथा अतिहसित का उल्लेख किया है और साथ ही यह भी बतलाया है कि उत्तम कोटि के लोग 'स्मित' और 'हसित' प्रकार की हँसी हँसते हैं, मध्यम कोटि के लोग 'विहसित' और 'उद्धसित' प्रकार की तथा अधम कोटि के 'अपहसित' और 'अतिहसित' प्रकार की (क० कु० तरु, छं० ९३-९७)। केशव के मंदहास, कलहास तथा अतिहास भेद चिन्तामणि के क्रमशः स्मित, विहसित और अतिहसित से मिलते हैं। केशव ने केवल भेद ही लिखे हैं। चिन्तामणि ने केशव के 'परिहास' को छोड़ दिया है। दूसरी ओर चिन्तामणि के वीर रस के तीन भेदों युद्धवीर, दानवीर और दयावीर (क० कु० तरु, पृ० २०५-२०७) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। चिन्तामणि तथा केशव दोनों आचार्यों के अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ लक्षण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं।

स्वकीया का लक्षण :

सम्पति विपति जो मरणहूं, सदा एक अनुहार।
ताको स्वकीया जानिये, मन क्रम वचन विचार॥

(क० प्रि०, प्र० ३, छं० १५)

जो अपने ही पुरुष में प्रीतवंत निरधारि।
कहत स्वकीया नायका सज्जन सुकबि विचारि।

(क० कु० तरु, छं० ७५)

परकीया का लक्षण :

सब तें पर परसिद्ध जो, ताकी पिया जु होइ।
परकीया तासों कहैं, परम पुराने लोइ॥

(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६७)

प्रीति करै पर-पुरुष सों परकीया सो नारि।

(क० कु० तरु, छं० १२३)

भाव का लक्षण :

आनन लोचन वचन मग, प्रकटत मन की बात।
ताही सों सब कहत हैं, भाव कविन के तात॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० १)

मन विकार कहि भाव सों बरन वासनारूप।
विविध ग्रन्थ करता कहत ताको रूप अनूप॥
(क० कु० तरु, छ० ५०)

हेला का लक्षण :

पूरण प्रेम प्रताप तें भूलत लाज समाज।
सो हेला जिहिं हरत हिय, राधा श्रीव्रजराज॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० १८)

जहाँ देह दृग भौंहें मुख इंगित अति अधिकात।
अधिक प्रगट मन भाव ते हेला सो कहि जात॥
(क० कु० तरु, छं० १७)

पूर्वानुराग का लक्षण :

देखति हीं द्युति दंपतिहि, उपजत परत अनुराग।
बिन देखे दुख देखिये, सो पूरब अनुराग॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३)

होइ मिलन ते प्रथम ही सो पूरब अनुराग॥
(क० कु० तरु, छं० १२)

शृङ्गार रस का लक्षण :

रतिमति की अति चातुरी, रतिमति मंत्र विचार।
ताहीं सों सब कहत हैं, कवि कोविद शृंगार॥
(र० प्रि०, प्र० १, छं० १७)

जामें थाई रति सुतो मन की लगन अनूप।
चिन्तामनि कवि कहत हैं सो शृंगार सरूप॥
(क० कु० तरु, छं० १)

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षणों के भाव आपस में मिलते हैं। किन्तु ऐसे लक्षण कम ही हैं। भाव-साम्य रखने वाले कुछ लक्षण भी यहाँ दिए जाते हैं।

मध्या धीरा का लक्षण :

धीरा बोले वक्र विधि, वाखी विषम अधीर।
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४७)

व्यंग कोप प्रगटै जु तिय मध्या धीरा होइ।
(क० कु० तरु, छं० २०६)

ऊढ़ा-अनूढ़ा परकीया का लक्षण :

उढ़ा होत विवाहिता, अनव्याहिता अनूढ़।
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६८)

ऊढ़ा होइ विवाहिता, अविवाहिता अनूढ़।
(क० कु० तरु, पृ० १११)

मंदहास का लक्षण :

विकसहि नयन कपोल कछु, दशन दशन के वास।
मन्दहास[1] ताकों कहै, कोविद केशवदास॥
(र० प्रि०, प्र० १४, छं० ३)

स्मित कहि विकसित दृगन कछु लख परैं ज दन्त।
(क० कु० त८, पृ० २११)

उद्दीपन विभाव का लक्षण :

जिनते दीपति होति है, ते उद्दीप बखान।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं ५)

जे रस उद्दीपित करैं ते उद्दीपन जानि।
(क० कु० त६, छं० ३)

चिन्तामणि के लक्षण प्रायः अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हैं।

मतिराम तथा केशव :

यहाँ 'रसराज' के आधार पर ही केशव की मतिराम से तुलना की गई है। मतिराम ने अपने 'रसराज' नामक ग्रन्थ में शृङ्गार रस तथा उसके विभिन्न अवयवों का ही निरूपण किया है। अन्य रसों का वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं है। शृङ्गार नायक और नायिका का आलम्बन प्राप्त करके होता है। इस कारण यहाँ नायक-नायिका-भेद का भी विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है[2]। मतिराम ने नायिका की सामान्य परिभाषा यह दी है[3]। केशव ने नायिका के लक्षण का उल्लेख नहीं किया है। नायिकाओं के स्वीकृत तीनों भेदों, स्वकीया, परकीया तथा गणिका अथवा सामान्या का मतिराम ने निरूपण किया है (रसराज, छं० ५)। केशव ने सामान्या अथवा गणिका का वर्णन नहीं किया है, केवल उल्लेख मात्र कर दिया है। 'स्वकीया' के भेद मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा दोनों ही आचार्यों ने माने हैं, परन्तु दोनों आचार्यों द्वारा दिए गए उपभेद भिन्न हैं। मतिराम ने 'मुग्धा' के चार भेद किए हैं, अज्ञातयौवना, ज्ञातयौवना, नवोढ़ा तथा विश्रब्धनवोढ़ा (रसराज, पृ० २७६-२७८)। इन्होंने 'मध्या' तथा 'प्रौढ़ा' के कोई अवान्तर भेद नहीं किए हैं। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा तीनों प्रकार की नायिकाओं के चार-चार उपभेदों का वर्णन किया है। उन्होंने मुग्धा के नवलवधू,

---

१. केशव का 'मन्दहास' चिन्तामणि का 'स्मित' है।

२. होत नायका नायकहि आलंबित सिंगार।
तातें बरनौं नायका-नायक मति अनुसार॥
—रसराज पृ० २७३, छं० ४।

३. उपजत जाहि विलोक कै चित्त-बीच रस-भाव।
ताहि बखानत नायका, जे प्रवीन कविराव॥
—रसराज, पृ० २७३, छं० ५।

नवयौनाभूषिता, नवलअनंगा और लज्जाप्राइरति; मध्या के आरूढ़यौवना, प्रगल्भ-वचना, प्रादुर्भूतमनोभवा और सुरतिविचित्रा; तथा प्रौढ़ा के समस्तरसकोविदा, विचित्र-विभ्रमा, अक्रामतिनायिका और लब्धापति भेद बतलाए हैं। 'मध्या' और 'प्रौढ़ा' के धीरा, अधीरा और धीराधीरा भेदों का विवरण दोनों ही आचार्यों ने दिया है। मतिराम ने 'स्वकीया' के ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेदों का भी उल्लेख किया है[1]। केशव ने ये भेद छोड़ दिए हैं। केशव द्वारा दिया 'मुग्धा' की सुरति तथा मान का वर्णन भी मतिराम के ग्रन्थ 'रसराज' में नहीं मिलता।

'परकीया' के ऊढ़ा तथा अनूढ़ा भेदों का विवरण दोनों ही आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। मतिराम द्वारा उल्लिखित 'परकीया' के अन्य भेदों गुप्ता, विदग्धा (वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा), लक्षिता, मुदिता, तथा कुलटा अनुशयना (पहली, दूसरी और तीसरी अनुशयना) का केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है। मतिराम द्वारा दिए गए अन्यसंभोगदुःखिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता और मानवती भेदों (रसराज, छं० ९७) को भी केशव ने छोड़ दिया है। मतिराम ने केशव द्वारा निर्दिष्ट जाति के अनुसार पद्मिनी, शंखिनी, चित्रिणी तथा हंसिनी आदि नायिका के भेदों, नायक-नायिका के प्रथम-मिलन-स्थानों एवं प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं एवं सुरतिविचित्रा मध्या नायिका के सुरतान्त-वर्णन का कोई उल्लेख नहीं किया है। नायिका के उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा भेद दोनों ही आचार्यों को मान्य हैं।

मतिराम ने अवस्था के अनुसार नायिकाओं के दस प्रकार बतलाए हैं, प्रोषित-पतिका, खंडिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा, उत्कंठिता, बासकसज्जा, स्वाधीनपतिका, अभिसारिका, प्रवच्छति प्रेयसी (प्रवत्स्यतप्रेयसी) तथा आगतपतिका (रसराज, छं० ११०)। केशव ने पहले आठ भेदों का ही वर्णन किया है, शेष दोनों भेदों को छोड़ दिया है। मतिराम ने दसों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा एवं परकीया और गणिका आदि उपभेदों के अन्तर्गत अलग उदाहरण दिये हैं। केशव ने इतना अधिक विस्तार नहीं किया है। 'परकीया' के अन्तर्गत मतिराम ने कृष्णाभिसारिका, चन्द्राभिसारिका तथा दिवाभिसारिका के उदाहरण भी दिए हैं (रसराज, छं १९७-२०२)। केशव ने ऐसा कोई विभाजन नहीं किया है। केशव ने 'अभिसारिका' के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया और सामान्या अभिसारिका के लक्षण दिए हैं, उदाहरण छोड़ दिए हैं। केशव द्वारा निर्दिष्ट अष्टनायिकाओं के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का मतिराम ने कोई वर्णन नहीं किया है।

मतिराम के अनुसार नायक के तीन प्रकार हैं, पति, उपपति, तथा वैसिक (रसराज, छं० २४०) और फिर पति के अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट आदि चार

---

१. बरनत जेष्ठ-कनिष्ठिका, जहं द्वै ब्याही नारि।

—रसराज, पृ० २७८, छं० २७।

प्रथम पियारी, दूसरी अति प्यारी निरधारि।

—रसराज, पृ० २८४, छं० ५५।

भेद किए गए हैं। इन्होंने नायक के और भेदों मानी, वचन-चतुर और क्रिया-चतुर तथा प्रोषित का भी निरूपण किया है। केशव ने अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट का ही उल्लेख किया है और उन्हें नायक के ही भेद बतलाया है, पति के नहीं। मतिराम के दर्शन' के चार भेदों[1] श्रवण, स्वप्न, चित्र तथा प्रत्यक्ष का वर्णन केशव के समान है, किन्तु केशव द्वारा उल्लिखित 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का चिन्तामणि ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

मतिराम ने 'उद्दीपन' के अन्तर्गत सखी-दूती आदि का वर्णन किया है[2]। इन्होंने 'सखी' के चार कामों का उल्लेख किया है, मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास (रसराज, छं० २८६)। केशव के अनुसार 'सखी' के सात कार्य हैं, शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलन कराना, शृंगार करना, झुकना और उलाहना देना। केशव ने 'परिहास' का उल्लेख नहीं किया है। केशव लिखते हैं कि धाय, जनी, नाइन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, बरइन, शिल्पिनी, चुड़िहारिन, रामजनी, संन्यासिनी तथा पटइन आदि को नायक-नायिका सखी बनाते हैं। मतिराम ने इनका निरूपण नहीं किया है। मतिराम ने 'दूती' के तीन भेद उत्तम, मध्यम तथा अधम माने हैं[3]। केशव ने 'दूती' और उसके भेदों का उल्लेख नहीं किया है। केशव ने केवल नेत्रों, मुँह और वचन से ही मन की बात प्रगट करने को 'भाव' कहा है, किन्तु मतिराम ने 'भाव' को व्यक्त करने वाले उपकरणों की संख्या और भी बढ़ा दी है[4]। मतिराम ने नौ सात्विक भाव माने हैं, यथा स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय तथा जृंभा[5]। उन्होंने इन सबके लक्षण उदाहरण-सहित लिखे हैं। केशव ने 'जृंभा'

---

१. दरसन आलंबनहि में कवि मतिराम सुजान।
स्रवन स्वप्न अरु चित्र त्यों, पुनि प्रत्यच्छ बखान॥
—रसराज, पृ० ३३०, छं० २७४।

२. सखी-दूतिका जानिये उद्दीपन के भेद।
—रसराज, पृ० ३३३, छं० २८७।

३. निपुन दूतता में सदा, दूती ताहि बखान।
उत्तम मध्यम, अधम यों तीन भाँति सों जान॥
रसराज, पृ० ३३५, छं० २९९।

४. लोचन, वचन, प्रसाद, मृदु हास भाव धृति मोद।
इनते प्रगटत भाव रति बरनहि सुकवि विनोद॥
—रसराज, पृ० ३३८, छं० ३१०।

५. स्तंभ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप, वैवर्ण।
आंसू औरौ प्रलय कहि, आठौं ग्रंथनि वर्ण॥
—रसराज, पृ० ३३८, छं० ३१४।
जृंभा कौं कवि कहत है नवयों सात्विक भाव।
उपजै आलस आदि तें, वरनत सब कविराव॥
—रसराज, पृ० ३४३, छं० ३३१।

को छोड़ दिया है और मतिराम के 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रलाप' आठवाँ सात्विक भाव स्वीकार किया है। केशव ने लक्षण और उदाहरण दोनों ही नहीं दिए हैं, अतः 'प्रलाप' का केशव क्या अर्थ समझते हैं, इस विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। मतिराम ने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, मोट्टाइत, कुट्टमित्त, बिब्बोक, ललित और विहित आदि दस हावों का विवरण दिया है (रसराज, छं० ३४८-३४९)। केशव ने इनके अतिरिक्त तीन और हावों हेला, मद तथा बोध का उल्लेख किया है। केशव द्वारा उल्लिखित व्यभिचारी एवं स्थायी भावों का मतिराम ने कोई वर्णन नहीं किया है।

वियोग शृंगार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान और प्रवास का मतिराम ने निरूपण किया है (रसराज, छं० ३८१)। केशव ने इनके अतिरिक्त चौथा भेद 'करुण' और बतलाया है। 'मान' के भेदों लघु, मध्यम और गुरु का दोनों ही आचार्यों ने विवरण दिया है। केशव द्वारा निरूपित मानमोचन के उपायों का उल्लेख मतिराम ने नहीं किया है। मतिराम ने अभिलाष, चिंता, स्मृति, गुण-वर्णन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि तथा जड़ता आदि वियोग की नौ दशाओं का वर्णन किया है[1]। केशव ने दसवीं दशा 'मरण' भी बतलाई है। केशव के द्वारा बतलाए 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों को मतिराम ने भी छोड़ दिया है।

नायिका-भेद तथा रस के अवयवों का निरूपण करते हुए कुछ भेदों तथा अवयवों के लक्षण केवल मतिराम ने ही दिए हैं, केशव ने नहीं दिए हैं और कुछ के लक्षण केशव ने ही दिए हैं, मतिराम ने नहीं दिए हैं। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं, सखी एवं सात्विक भावों के लक्षण मतिराम ने प्रस्तुत किए हैं, केशव ने नहीं किए। 'दर्शन' के चार प्रकार के भेदों के लक्षण केशव ने दिए है, मतिराम ने नहीं दिए।

दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षणों में कुछ अन्तर अवश्य परिलक्षित होता है, फिर भी प्रायः भाव एक ही है। कुछ इस प्रकार के लक्षण नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

मध्या धीराधीरा नायिका का लक्षण :

पिय को देहु उराहनो, सो धीरा न अधीर ॥
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ४७)

मध्या धीराधीर तिय ताहि कहत सब कोय।
पिय सों कहिके वचन कछु, रोस जतावै रोय ॥
(रसराज, छं० ४३)

---

१. होत वियोग सिंगार में प्रगट दसा नव जानि।
प्रथम कहे अभिलाष पुनि चिंता, समृति बखानि ॥
गुन वर्नन, उदवेग पुनि कहु प्रलाप उन्माद।
व्याधि बहुरि जड़ता कहत कवि-कोविद अविवाद ॥
—रसराज, पृ० ३५३, छं० ३६८-३६६।

स्वकीया नायिका का लक्षरण :

सम्पति विपति जो मरण हूँ, सदा एक अनुहार ।
ताको स्वकीया जानि मन क्रम वचन विचार ।।
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० १५)

लाजवती, निसदिन पगी निज पति के अनुराग ।
कहत स्वकीया सीलमय ताको पति बड़भाग ।
(रसराज, छं० १०)

कलहांतरिता नायिका का लक्षरण :

मान मनावत हू करै, मानद को अपमान ।
दूनो दुख ता बिन लहै, अभिसंधिता बखान ।।
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० १३)

कह्यो न मानै कंत को पुनि पीछे पछिताय ।
कलहांतरिता नायका ताहि कहत कविराय ।।
(रसराज, छं० १३३)

शठ नायक का लक्षरण :

मुख मीठी बातें कहे, निपट कपट जिय जान ।
जाहि न डर अपराध को, शठ कर ताहि बखान ।।
(र० प्रि०, प्र० २, छं० ११)

डरै करत अपराध नहिं करै कपट की रीति ।
वचन-क्रिया में अति चतुर शठ नायक की रीति ।।
(रसराज, छं० २५०)

लीला हाव का लक्षरण :

करत जहाँ लीलान को, प्रीतम प्रिया बनाय ।
उपजत लीला हाव तहँ, बर्णत केशवराय ।।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २१)

पियभूषन वचनादि की लीला करै जो बाल ।
तासों लीला हाव कहि बरनत सुकबि रसाल ।।
(रसराज, छं० ३५०)

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षण आपस में बिल्कुल ही नहीं मिलते, यद्यपि इस प्रकार के लक्षण अधिक नहीं हैं, यथाः

परकीया का लक्षरण :

सब तें पर परसिद्ध जो, ताकी प्रिया जु होइ ।
परकीया तासों कहैं, परम पुराने लोइ ।।
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६७)

प्रेम करै पर-पुरुष सों, परकीया सो जान ।

(रसराज, छं० ५८)

विच्छित्ति हाव का लक्षण :

भूषन भूषव को जहां होहि अनादर आन ।
सो विच्छित्त विचारिये, केशवराय सुजान ॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४५)

थोरे ही भूषन बसन जहँ सोभा सरसाय ।
ताहि कहत विच्छिति हैं जो प्रवीन रसराय ॥

(रसराज, छं० ३५६)

दक्षिण नायक का लक्षण :

पहिली सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि ।
चित्त चलै हू ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि ॥

(र० प्रि०, प्र० २, छं० ७)

एक भांति सब तियन सों जाको होय सनेह ।
सो दच्छिन मतिराम कहि बरनत हैं मतिगेह ॥

(रसराज, छं० २४७)

नीचे दिए हुए लक्षण दोनों आचार्यों के बिल्कुल ही समान हैं ।

स्वाधीनपतिका का लक्षण :

केशव जाके गुण बंध्यो, सदा रहै पति संग ।
स्वाधिनपतिका तासु को, वरणत प्रेम प्रसंग ॥

(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ४)

सदा रूप-गुन रीझ पिय जाके रहै अधीन ।
स्वाधीनै पतिका तियै बरनत कवि परवीन ॥

(रसराज, छं० १७८)

किलकिंचित हाव का लक्षण :

श्रम अभिलाष सगर्व स्मित, क्रोध हरष भय भाव ।
उपजत एकहि बार जहं, तहं किलकिंचित हाव ॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३१)

हरष गरब, अभिलाष, श्रम, हास, रोष अरु भीति ।
होत एक ही संग है किलकिंचित यह रीति ॥

(रसराज, छं० ३६२)

दोनों आचार्यों के लक्षणों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि मतिराम के लक्षण अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट हैं । केशव के शृंगार रस, भाव, अनुभाव और हावादि के लक्षण अस्पष्ट हैं ।

देव तथा केशव :

यह पहले बताया जा चुका है कि देव ने सभी रसों का सम्यक् विवेचन मुख्यतः 'शब्दरसायन' तथा 'भवानीविलास' में किया है। 'भावविलास' में सब रसों के सार शृंगार रस[1] तथा उसके विविध अंगों का सांगोपांग वर्णन किया गया है, अन्य रसों के केवल नाम ही गिनाए गए हैं। नायिका-भेद भावविलास, भवानीविलास, रसविलास आदि ग्रन्थों में सविस्तार वर्णित हैं। यहाँ भावविलास, भवानीविलास, रसविलास तथा शब्दरसायन ग्रन्थों के आधार पर आचार्य केशव की देव से तुलना की गई है।

नायिका-भेद के अन्तर्गत नायिकाओं के तीन सामान्य भेद स्वकीया, परकीया तथा सामान्या अथवा वेश्या, देव तथा केशव दोनों ही आचार्य मानते हैं। 'स्वकीया' के भेद मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भी दोनों को मान्य हैं और इन तीन भेदों के अवान्तर-भेद भी अधिकांश दोनों आचार्यों के आपस में मिलते हैं। देव के अनुसार 'मुग्धा' के पाँच उपभेद हैं, वयः सन्धि, नववधू, नवयौवना, नवल अनंगा तथा सलज्जरति[2]। केशव ने 'वयः सन्धि' को छोड़ दिया है। शेष चार भेद भी केशव स्वीकार करते हैं। केशव के नामों में कुछ अन्तर अवश्य है। केशव ने नवलवधू, नवयौवनाभूषिता, नवल अनंगा, लज्जाप्राइरति—ये नाम बतलाए हैं। 'मुग्धा' नायिका की सुरति तथा मान का उदाहरण दोनों आचार्यों ही ने दिया है। केशव ने लक्षण भी दिए हैं। केशव के 'मध्या' के चारों भेद आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा सुरतिविचित्रा देव के क्रमशः रूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा तथा विचित्रसुरता (भावविलास, पृ० १०७) भेदों से मिलते हैं। देव ने 'मध्या' की सुरति तथा सुरतान्त का वर्णन किया है। केशव ने भी 'विचित्रसुरता' भेद के अन्तर्गत रति के १४ प्रकारों का उल्लेख करते हुए सुरतान्त का वर्णन किया है, 'सुरति' को छोड़ दिया है। 'प्रौढ़ा' के भेद भी दोनों आचार्यों के एक ही हैं। केशव ने 'प्रौढ़ा' के समस्तरसकोविदा, विचित्र-विभ्रमा, अक्रामतिनायिका तथा लब्धापति भेद बतलाए हैं। देव के अनुसार भी यही भेद हैं, रतिकोविदा, सविभ्रमा, लब्धापति तथा आक्रान्त-नायका ('भवानी-विलास' में इसका नाम 'वसवल्लभा' दिया है, पृ० ६८)। देव के प्रौढ़ा की सुरति तथा सुरतान्त के वर्णन को केशव ने छोड़ दिया है। मान करने की स्थिति में केशव ने 'मध्या' तथा 'प्रौढ़ा' के तीन भेदों धीरा, अधीरा और धीराधीरा का वर्णन किया है। 'भवानी-

---

१. नवरस सार सिंगार रस, जुगुल सार सिंगार।
—शब्दरसायन, पृ० ३०

सकल सार सिंगार है सुरस माधुरी धाम॥
—भावविलास, पृ० ४४।

२. वयः सन्धि अरु नववधू, नवजोवना विचारु।
नवल अनंगा सलजरति मुग्धा पाँच प्रकार॥
—भावविलास, पृ० १०४

विलास' में तो ये तीनों भेद ज्यों के त्यों मिलते हैं,[१] पर 'भावविलास' में पहले दो भेद ही मिलते हैं और केशव के तीसरे भेद 'धीराधीरा' के स्थान पर वहाँ 'मध्यमा' का उल्लेख हुआ है[२]। देव ने 'स्वकीया' आदि नायिकाओं के मनोदशा के अनुसार चार भेद और बतलाए हैं, यथा पररतिदु:खिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता तथा मानवती[३]। केशव ने इनका वर्णन नहीं किया है। 'भवानीविलास' में वर्णित स्वकीया के कुलगर्विता (भवानीविलास, पृ० ६३) तथा ज्येष्ठा और कनिष्ठा (भवानीविलास, छं० १५) आदि भेदों का भी केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। देव द्वारा बतलाए गए परकीया के गुप्ता, विदग्धा (वचन-विदग्धा तथा क्रिया-विदग्धा), लक्षिता, कुलटा, मुदिता और अनुशयना आदि भेदों का भी केशव ने कोई वर्णन नहीं किया है।

अवस्था के अनुसार देव द्वारा निरूपित स्वाधीना, उत्कंठिता, प्रोषितप्रेयसी, वासकसज्जा, कलहान्तरिता, खंडिता, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका (भावविलास, पृ० १२५-१२६ तथा भवानीविलास, पृ० ७१) भेद केशव के क्रमश: स्वाधीनपतिका, उत्का, प्रोषितप्रेयसी अथवा प्रोषितपतिका, वासकशय्या, अभिसन्धिता, खंडिता, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका भेदों के समान हैं; केवल केशव की 'उत्का' और 'अभिसधिता' के स्थान पर देव ने क्रमश: 'उत्कंठिता' और 'कलहान्तरिता' नाम दिए हैं। देव ने 'भवानीविलास' में प्रोषितपतिका' के चार उपभेदों का उल्लेख किया है,[४] किन्तु केशव ने इन्हें छोड़ दिया है। 'रसविलास' में 'प्रवत्स्यतभर्तिका' तथा 'आगमपतिका' नामक दो और भेदों का वर्णन मिलता है (रसविलास, छं० २१, २३), जिनका भी उल्लेख केशव ने नहीं किया है। नायिकाओं के अन्य भेद उत्तमा, मध्यमा तथा अधमा का निरूपण देव तथा केशव दोनों आचार्यों ने ही किया है। केशव द्वारा

---

१. मध्या अरु प्रौढ़ा दुवौ होहि त्रिविध करि मान।
धीराऽधीरा धीर अरु नारि अधीर बखान॥
—भवानीविलास, पृ० ८७, छं० १।

२. मध्या औ प्रौढ़ा दुओ, होंहि विविध करि मानु।
धीरा अरु मध्यम कह्यो, और अधीरा जानु॥
—भावविलास, पृ० ११३।

३. पररतिदु:खित प्रेम अरु, रूप गर्व्विता जानु।
मानवती अरु चारि विधि, स्वीयादकनु बखानु॥
—भावविलास, पृ० १२३।

४. पिय विदेस चाहै चल्यो, चलै अवधि निरधारि।
अरु आवत यहि विधि त्रिविध प्रोषितपतिका नारि॥
दुसह विरह, नहि सहि परयौ चलि फिरि आये भौन।
चौथो भेद बखानिये प्रीतम गमना गौन॥
—भवानीविलास, पृ० ७८, छं० २५

अष्टनायिकाओं के उपभेद 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न', देव ने छोड़ दिए हैं। 'भवानी-विलास' तथा 'रसविलास' नामक ग्रन्थों में देव ने जाति के अनुसार भी नायिकाओं का विभाजन किया है। जाति के अनुसार पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी तथा हस्तिनी भेदों का वर्णन केशव ने भी किया है। अंश-भेद के अनुसार नायिकाओं के भेद—सात वर्ष तक देवी, सात से चौदह वर्ष तक देव-गन्धर्वी, चौदह से इक्कीस वर्ष तक गंधर्वी, इक्कीस से अट्ठाईस तक गन्धर्व-मानुषी और अट्ठाईस से पैंतीस तक शुद्ध-मानुषी तथा देवी का साढ़े दस वर्ष तक पूज्या होने, गन्धर्वी का साढ़े दस से साढ़े चौबीस वर्ष तक भोग के लिए और मानुषी का साढ़े चौबीस से पैंतीस वर्ष तक सुत-सन्तान के लिए होने आदि का वर्णन देव ने ही किया है[1]। केशवने इन बातों का वर्णन नहीं किया है। देव से पूर्व इस प्रकार का वर्णन हिन्दी-साहित्य में अप्राप्य है। 'रसविलास' में देव ने प्रकृति, सत्व और देश के अनुसार भी नायिकाओं का प्रस्तार किया है। प्रकृति के तीन (रसविलास पृ० ७५-७७), वात, पित्त और कफ और सत्व के नौ (रसविलास, ७७-८१), सुर, किन्नर, यक्ष, नर, पिशाच, नाग, खर, कपि और काक आदि प्रकार बतलाए गए हैं। देश के अनेक भेदों के आधार पर मध्य देश-वधू, मगध-देश-वधू, कौशल-वधू, पाटल-वधू, कुंकल (कोंकण)वधू आदि नायिकाओं का सविस्तार वर्णन हुआ है (रस विलास, पृ० ५२-६४)। इनके अतिरिक्त देव ने जाति अर्थात् वर्णव्यवसाय तथा वास की दृष्टि से भी नायिकाओं के भेदों का वर्णन किया है, यथा (अ) नागरी—(१) देवल (देवी, पूजनहारी आदि) (२) रावल (राजकुमारी, धाय, सखी आदि), (३) राजनगर (जौहरिन, छीपिन, पटवाइन, सुनारिन आदि) (आ) पुरवासिन (ब्राह्मणी, राजपूतनी, नाइन आदि) (इ) ग्रामीणा (अहीरिन, कहारिन आदि) (ई) वनवासिन (मुनितिय आदि) (उ) सेन्या (वृषली, वेश्या आदि) (ऊ) पथिकतिय (जोगिन, बनजारिन आदि)। केशव ने प्रकृति, सत्व, अंश तथा वर्ण-व्यवस्था एवं वास के अनुसार नायिकाओं का कोई उल्लेख नहीं किया है। वस्तुतः साहित्यशास्त्र की दृष्टि से इन सब का विस्तार अनुचित ही है। केशव ने देश-भेद का केवल संकेत मात्र ही किया है[2]।

---

१. सुकिया देवी प्रथम देव गन्धर्वी दूजी।
गन्धर्वी गन्धर्वमानुषी नारि अदूजी ॥
सुद्ध मानुषी सात सात वय वर्ष बखानो।
अवधि वर्ष पैंतीस तरुनि तौ ही लौ जानो ॥
सुर अंस भवानी पूज्य जग गन्धर्वी संभोग प्रिय।
कुल धर्म कर्म सन्तानहित सरस्वती नर-अंस-त्रिय ॥
—भवानीविलास, पृ० २४, छं० १।

इन सब के विस्तृत वर्णन के लिए देखें भवानीविलास, पृ० २४-२६।

२. इहि विधि नायक-नायका, वरणों सहित विवेक।
देश काल वय भाव तें, केशव जानि अनेक ॥
—र० प्रि०, प्र० ७, छं० ४५।

देव ने 'भवानीविलास' तथा 'रसविलास' ग्रन्थों में अष्टांगवती नायिका का भी वर्णन किया है। अष्टांगवती नायिका यौवन, रूप, कुल, प्रेम, शील, गुण, वैभव और भूषण—इन आठ गुणों से युक्त होती है[1] और ये आठों अंग 'स्वकीया' ही में सम्भव हैं। 'परकीया' में कुल और शील का अभाव रहता है, 'सामान्या' में शील, कुल, प्रेम तथा वैभव का[2]। केशव ने यह सब वर्णन छोड़ दिया है।

नायक के चार भेदों अनुकूल, शठ, दक्षिण तथा धृष्ट का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है। नायक के सहायक (नर्मसचिव) पीठमर्द, विट तथा विदूषक का वर्णन देव के 'भावविलास' ग्रन्थ में ही मिलता है, केशव की 'रसिकप्रिया' में नहीं मिलता। केशव ने नायक-नायिकाओं की सखियों के अन्तर्गत धाय, जनी, नाइन, नटी, पड़ोसिन, बरइन, मालिन, शिल्पिनी, रामजनी आदि को गिनाया है। देव ने 'भावविलास' में सखियों का वर्णन नहीं किया है। देव केशव की 'सखी' को ही 'दूती' मानते हैं। देव के अनुसार धाय, नटी, ग्वालिन, शिल्पिनी, मालिन, नाइन, बालिका, विधवा, संन्यासिनी, भिखारिन तथा सम्बन्धिनी दूती हो सकती हैं (भावविलास, छं० ११४-११५)। देव ने 'भवानीविलास' नामक ग्रन्थ में नायिका की शुभचिन्तिका 'सखी' तथा नायक की शुभचिन्तिका 'दूती' का केवल चलता सा ही उल्लेख किया है (भावविलास, पृ० ६६)। सखी के कार्यों का दोनों ही आचार्यों ने निरूपण किया है और दोनों ने अधिकांश एक जैसे कार्य ही बतलाए हैं। केशव ने शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलाना, शृंगार करना, झुकना तथा उलाहना देना आदि कार्यों का निर्देश किया है। देव के अनुसार सखियों के कार्य हैं, विनोदपूर्ण बातचीत से प्रसन्न करना, आभूषण पहिनाना, प्रिय से मिलाप कराना, उपदेश देना, पति को उपालम्भ देना तथा वियोगावस्था में ढ़ारस बँधाना। केशव द्वारा वर्णित-दम्पति-चेष्टाओं, स्वयं-दूतत्व तथा प्रथम-मिलन-स्थानों का देव ने कोई वर्णन नहीं किया है। केशव ने 'दर्शन' के चार भेद माने हैं, चित्र, स्वप्न, प्रत्यक्ष तथा श्रवण। देव ने 'दर्शन' के चित्र, स्वप्न तथा प्रत्यक्ष—इन तीन भेदों को ही स्वीकार किया है और 'श्रवण' का 'दर्शन' से

---

१. जा कामिनि में देखिये पूरन आठहु अंग।
ताही बरनैं नायिका त्रिभुवन मोहन रंग॥
पहिले जोवन रूप गुन सील प्रेम पहिचानि।
कुल वैभव भूषन बहुरि आठों अंग बखानि॥

—रसविलास, पृ० ३५, छं० ६-७।

२. भूषन जोवन रूप गुन विभव सील कुल प्रेम।
आठों अंग स्वकियाहि के परकिय बिन कुलनेम॥
सामान्या बिन सील कुल प्रेम विभौ पहिचानि।
भूषन जोवन रूप गुन सहित उत्तमा जानि॥

—भवानीविलास, पृ० १५, छं० १५-१६।

अलग उल्लेख किया है[1]। केशव ने देव द्वारा निर्दिष्ट 'श्रवण' के देश, काल तथा वचन नामक भेदों को छोड़ दिया है। दूसरी ओर देव ने केशव के 'श्रवण' के 'प्रकाश' तथा 'प्रच्छन्न' भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है।

केशव और देव दोनों के अनुसार स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव, सात्विक भाव तथा संचारी भाव 'भाव' के भेद हैं। देव ने 'हावों' को भी 'भाव' का ही भेद बतलाया है[2]। केशव ने हावों का निरूपण स्वतंत्र रूप से किया है। देव ने 'भावविलास' तथा 'रसविलास' ग्रन्थों में स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, वेपथु, स्वरभङ्ग, वैवर्ण्य, आंसू तथा प्रलय—इन आठ सात्विक भावों का वर्णन किया है। 'भवानीविलास' में 'प्रलय' के स्थान पर 'मूरछा' दिया है[3]। केशव ने 'प्रलय' अथवा 'मूरछा' के स्थान पर 'प्रलाप' लिखा है, शेष भेद दोनों आचार्यों के एक ही हैं। देव ने संचारी भावों के दो भेद माने हैं, शरीर तथा आन्तर[4] अथवा तनसंचारी और मनसंचारी। इस प्रकार देव के अनुसार स्तम्भादि सात्विक भाव तथा निर्वेदादि संचारी भाव क्रमशः तन-संचारियों तथा मन-संचारियों के अन्तर्गत आते हैं। केशव ने इस प्रकार का कोई विभाजन नहीं किया है। केशव और देव दोनों ने ही संचारियों अथवा व्यभिचारियों की संख्या ३४ मानी है। केशव के अनुसार ३४वाँ संचारी भाव 'आधि' है और देव के मत में 'छल'[5]। केशव के व्रीड़ा, कोह, निंदा, विषाद, प्रबोध, विवाद तथा आशतर्क

---

१. देस काल ना वचन वर श्रवन तीनि विधि जानु।
चित्र स्वप्न साक्षात हू दरसन तीनि बखानु॥
—भवानीविलास, पृ० ३७, छं० ५।

२. थितिभाव अनुभाव अरु कहौं सात्विकी भाव।
संचारी और हाव ये रस कारन षटभाव॥
भवानीविलास, पृ० ३, छं० १४।

३. स्तम्भ स्वेद रोमांच अरु वेपथु अरु स्वरभंग।
विवरन आंसू मूरछा ये सात्विक रस अंग॥
—भवानीविलास, पृ० ८, छं० ३०।

४. ते सारीर रु आंतर, द्विविध कहत भरतादि।
स्तम्भादिक सारीर अरु, आंतर निर्वेदादि॥
—भावविलास, पृ० २१।

कायक बस सात्विक अमर मानस निर्वेदादि।
संचारी सिंगार के भाव कहत भरतादि॥
—भवानीविलास, पृ० ८, छं० ३३।

५. अपमानादिक करन कों, कीजै क्रिया छिपाव।
बक्र उक्ति अन्तर कपट, सो बरने छल भाव॥
—भावविलास, पृ० ६०।

ख० आचार्य शुक्ल जी के अनुसार 'छल' का अन्तर्भाव 'अवहित्था' में ही हो जाता है (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० २६२)। देव ने 'शब्दरसायन' नामक ग्रंथ में केवल ३३ ही संचारी भावों का उल्लेख किया है, 'छल' को छोड़ दिया है (पृ० ३०)।

शब्दों के स्थान पर देव ने क्रमशः लाज, क्रोध, असूया, दुःख, अबोध, उपालम्भ तथा तर्क शब्दों का प्रयोग किया है। केशव के 'स्वप्न' का देव ने तथा देव की 'अवहित्थ' का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। देव द्वारा उल्लिखित 'वितर्क' के अवान्तर भेदों विप्रतिपत्ति, विचार, संशय और अध्यवसाय(भवानीविलास, पृ० ५७) तथा 'त्रास' के दो रूपों 'त्रास' (जो अकस्मात् उत्पन्न होता है) और 'भय' (जो पूर्वापर के विचार से उत्पन्न होता है) को भी केशव ने छोड़ दिया है। देव ने केवल दस हावों का ही उल्लेख किया है[1]। केशव ने हेला, मद और बोध तीन अतिरिक्त भावों का भी वर्णन किया है।

केशव द्वारा निरूपित शृंगार रस के भेदों संयोग एवं वियोग के अन्य भेद प्रकाश संयोग और प्रच्छन्न संयोग तथा प्रकाश वियोग और प्रच्छन्न वियोग देव[2] ने भी बतलाए हैं। सम्भवतः देव ने केशव के ही अनुकरण पर इन प्रकाश और प्रच्छन्न अवान्तर भेदों को लिया हो, क्योंकि केशव को छोड़ हिन्दी के किसी आचार्य ने इन उपभेदों का उल्लेख नहीं किया है। 'वियोग शृंगार' के चार भेदों, पूर्वानुराग, मान, प्रवास तथा करुण का उल्लेख 'भावविलास' (पृ० ७८) और 'रसिकप्रिया' (प्र० ८, छं० २) दोनों ही ग्रंथों में मिलता है। किन्तु देव ने 'भवानीविलास' में वियोग शृंगार की चौथी अवस्था 'करुण' के स्थान पर 'संयोग' मानी है। इनके अनुसार संयोग आनन्दमय होता है और वह वियोग के बीच में आता है। प्रथम अवस्था पूर्वानुराग की होती है, जिसके अनन्तर अभिलाषादि दस वियोग की दशाएं आती हैं और फिर संयोग होता है जिसके बाद मान, प्रवास और संयोग की अवस्थाएँ (भवानीविलास, पृ० १२) होती हैं। केशव ने यह वर्णन छोड़ दिया है। पूर्वानुराग के अन्तर्गत दस दशाओं, मान के गुरु, मध्यम और लघु भेदों तथा मान-मोचन के उपायों का निरूपण दोनों आचार्यों का एक जैसा है। 'रसविलास' में देव ने 'मरण' को छोड़कर प्रत्येक काम-दशा के अनेक भेद कर डाले हैं यथा, अभिलाष के पाँच भेद—श्रवणाभिलाष, उत्कंठाभिलाष, दर्शनाभिलाष, लज्जाभिलाष तथा प्रेमाभिलाष (पृ० ८८, छं० ३०); चिन्ता के चार भेद—साधारण-चिन्ता, गुप्त-चिन्ता, संकल्प-चिन्ता और विकल्प-चिंता

---

१. पहिलैं लीला हाव, बहुरि सुविलास बरनिये।
तातें कहु बिछित्ति, बहुरि विभ्रम कहि गनिये॥
किलकिंचित तब कह्यौ, तबैं मौटाइतु मानहु।
तातें कहु कुटमित, बहुरि बिब्बोकु जानहु॥
कविदेव कहैं फिर ललित कहु, तातें विहित कहैं सरस।
इहि भाँति विविध विधि बिबुधवर, बरनत कविवर हाव दस॥,

—भावबिलास, पृ० ७०,
भवानीविलास, पृ० ८१, छं० ३३, ३४ तथा रसविलास, पृ० ८२, छं० ६।

२. द्वै प्रकार सिंगार रस, है संभोग वियोग।
सो प्रच्छन्न प्रकास करि, कहत चारि विधि लोग॥

—भावविलास, पृ० ६८।

(पृ० ६०, छं० ३६); स्मरण के आठ भेद—स्वेद-स्मरण, स्तम्भ-स्मरण, रोमांच-स्मरण, कंप-स्मरण, स्वरभंग-स्मरण, वैवर्ण्य-स्मरण और प्रलय-स्मरण (पृ० ६१, छं० ४१); गुणकथन के चार भेद—हर्षगुण-कथन, ईर्ष्यागुण-कथन, विमोह-गुण-कथन और अपस्मार गुण-कथन (पृ० ६६, छं० ५३); उद्वेग के तीन भेद—वस्तु-उद्वेग, देश-उद्वेग और काल उद्वेग, (पृ० ६८, छं० ५६); प्रलाप के सात भेद—ज्ञान-प्रलाप, वैराग्य-प्रलाप, उपदेश-प्रलाप, प्रेम-प्रलाप, संशय-प्रलाप, विभ्रम-प्रलाप और निश्चय-प्रलाप (पृ० १००, छं० ६४); उन्माद के चार भेद—मदनोन्माद, मोहोन्माद, विस्मरणोन्माद और विक्षेपोन्माद (पृ० १०३, छं० ७३) तथा व्याधि के तीन भेद—संताप-व्याधि, ताप-व्याधि, और पश्चात्ताप-व्याधि (पृ० १०६, छं० ८१)। केशव ने इन सभी उपभेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'भावविलास' में वर्णित करुणात्मक वियोग के तीन भेद, लघु, मध्यम और दीर्घ भी केशव को मान्य नहीं हैं।

केशव ने नौ रसों का कथन किया है। रसों की संख्या तो देव ने भी नौ ही मानी है[1], किन्तु उन्होंने काव्य और नाटक में रसों की संख्या का भेद स्वीकार किया है[2]। देव द्वारा निर्दिष्ट रस के अलौकिक तथा लौकिक भेद (भावविलास, पृ० ६५) केशव ने नहीं माने हैं। केशव ने 'रसिकप्रिया' में शृङ्गार रस से इतर रसों का भी वर्णन किया है। देव ने भी 'भवानीविलास' तथा 'शब्दरसायन' में अन्य रसों का निरूपण किया है। विभिन्न रसों के पारस्परिक सम्बन्ध को दृष्टि में रखते हुए 'भवानीविलास' तथा 'शब्दरसायन' दोनों ग्रन्थों में देव ने दो भिन्न स्थापनाएँ की हैं। पहली स्थापना के अनुसार मुख्य रस तीन माने गए हैं, शृङ्गार, वीर तथा शान्त। शेष छः रस इन तीनों के ही आश्रित हैं। हास्य और भय शृंगार के आश्रित हैं, करुण और रौद्र वीर के तथा अद्भुत और वीभत्स शान्त के[3]। आगे चलकर देव वीर और शान्त का भी शृंगार में ही अन्तर्भाव कर देते हैं और इस प्रकार उसे रसराज ठहराते हैं[4]। इसी

---

१. सो रस नव-विधि बिबुध कवि, बरनत मत प्राचीन।

—शब्दरसायन, पृ० २८।

२. यहि भाँति आठ विधि कहत कवि, नाटक मत भरतादि सब।
अरु सांत यतन मत काव्य के, लौकिक रस के भेद नव॥

—भावविलास, पृ० ६८।

३. तीनि मुख्य नौ हू रसनि द्वै द्वै प्रथम निलीन।
प्रथम मुख्य तिन तिनहु में दोऊ तेहि आधीन॥
हास्य भय रु सिंगार संग रौद्र करुन संग वीर।
अद्भुत अरु वीभत्स संग शान्तहु वरनत धीर॥

—भवानीविलास, पृ० १०८, छं० २३, २४ तथा शब्दरसायन, पृ० ३१ (पाठान्तर) से।

४. ते दोऊ तिन दुहनि जुत वीर सान्त रस आइ।
अंग होत सिंगार के ताते सो रसराइ॥

—भवानीविलास, पृ० १०८, छं० ५५ तथा शब्दरसायन, पृ० ३१ (पाठान्तर से)।

मत का देव ने 'शब्दरसायन' में दूसरे ढंग से प्रतिपादन किया है। शृंगार रस के दो भेद हैं, संयोग तथा वियोग। इनमें 'संयोग' के अन्तर्गत हास्य, वीर और अद्भुत आ जाते हैं और 'वियोग' के अन्तर्गत रौद्र, करुण और भयानक तथा वीभत्स और शान्त का दोनों में अन्तर्भाव हो जाता है (शब्दरसायन, पृ० ५८)। केशव ने भी अन्य रसों को शृंगार के ही अन्तर्गत दिखाया है और इस प्रकार शृंगार को ही रसराज माना है। देव की दूसरी स्थापना के अनुसार मुख्य रस चार होते हैं, शृंगार, वीर, रौद्र और वीभत्स। शृंगार से हास्य की उत्पत्ति होती है, रौद्र से करुण की, वीर से अद्भुत की और वीभत्स से भयानक की[1]। 'शान्त' को यहाँ छोड़ दिया गया है। केशव को भी यही सिद्धान्त मान्य है[2]। देव ने हास्य रस के तीन भेदों उत्तम, मध्यम और अधम का उल्लेख किया है (भवानीविलास, छं० २५)। केशव ने हास्यरस के चार भेद, मंदहास, कलहास, अतिहास तथा परिहास बतलाए हैं जो स्पष्ट ही देव के भेदों से नहीं मिलते। केशव ने अन्य रसों के अवान्तर भेदों का कोई वर्णन नहीं किया है। देव ने वीर, करुण तथा शान्त रस के भेदों के उदाहरण भी दिए हैं। देव ने तीन प्रकार के 'वीर' का उल्लेख किया है, युद्धवीर, दानवीर तथा दयावीर (शब्दरसायन, पृ० ४१)। 'करुण' के देव ने पाँच उपभेद किए हैं, करुण, अतिकरुण, महाकरुण, लघुकरुण और सुखकरुण (शब्दरसायन, पृ० ३८)। 'वीभत्स' में जुगुप्सा के दो भेद देव ने बतलाए हैं, शारीरिक घृणा तथा ग्लानि (मानसिक)[3]। देव ने 'भवानीविलास' में शान्त रस के दो विभाग किए हैं—भक्तिमूलक शान्त तथा शुद्धशान्त। इनमें से पहले के तीन अवान्तर भेद किए गए हैं, प्रेम-भक्ति, शुद्ध-भक्ति तथा शुद्ध-प्रेम (भवानीविलास, छं० ६-१२)। 'शब्दरसायन' में शान्त के केवल एक ही भेद शुद्ध-शान्त (पृ० ४६) का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त रौद्र, भयानक और अद्भुत के भी केशव तथा देव दोनों ही आचार्यों ने एक ही भेद का वर्णन किया है। 'शब्दरसायन' में 'रसदोष' के अन्तर्गत देव ने रस के सरस, नीरस, स्वनिष्ठ, परनिष्ठ, उदास आदि कुछ और भेद भी दिए हैं, (शब्दरसायन, पृ० ५०), जो केशव ने छोड़ दिये हैं। केशव के प्रत्यनीक, विरस, नीरस, दुःसंधान

---

१. होत हास्य सिंगार ते, करुण रौद्र ते जानु।
वीरजनित अद्भुत कहो, वीभत्स से भयानु॥
—शब्दरसायन, पृ० ४७।

२. भय उपजै वीभत्स ते, अरु शृंगार ते हास।
केशव अद्भुत वीर ते, करुणा कोप प्रकास॥
—र० प्रि०, प्र० १६, छं० १३।

३. वस्तु घिनौनी देखि सुनि, घिन उपजै, जिय मांहि।
घिन बाढ़े वीभत्स-रस, चित की रुचि मिटि जांहि॥
निंद्य-कर्म करि निंद्य-गति, सुनै कि देखे कोय।
तन संकोच, मन संभ्रमन, द्विविधि जुगुप्सा होय॥
—शब्दरसायन, पृ० ४३-४४ तथा भवानीविलास, पृ० ११५, छं० ४८।

तथा पात्रादुष्ट आदि रस-दोषों का वर्णन देव ने नहीं किया है। शत्रु (विरोधी) रसों (जो विरोधी भावों के आधार पर ही आश्रित हैं) के नाम दोनों ही के समान हैं। देव ने विरोधी-रसों के उदाहरण दिए हैं और केशव ने उनका उल्लेख मात्र किया है। केशव और देव दोनों ही ने कौशिकी, भारती, आरभटी तथा सात्वती वृत्तियों का वर्णन किया है। 'रसिकप्रिया' में ठीक उसी क्रम से इनका रसों के साथ सम्बन्ध स्थापित किया गया है, जिस क्रम से 'शब्दरसायन' में बैठाया गया है। केवल तनिक सा अन्तर यह है कि 'सात्वती के अन्तर्गत' 'शृंगार' के स्थान पर देव 'रौद्र' को मानते हैं[1]। स्पष्ट ही देव के 'वृत्ति-वर्णन' का आधार केशव हैं।

नायिका-भेद तथा रस के विभिन्न अंगों का निरूपण करते हुए कुछ भेदों तथा अंगों के लक्षण केशव छोड़ गए हैं और कुछ के देव छोड़ गए हैं। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा आदि नायिकाओं, स्थायी एवं सात्विक भावों, सखी और वृत्ति आदि के सामान्य लक्षण केशव ने नहीं दिए हैं; मुग्धा, मध्या, एवं प्रौढ़ा परकीया नायिकाओं के उपभेदों, मुग्धा के सुरति और मान तथा दर्शन के भेदों आदि के लक्षण देव ने नहीं दिए हैं। तुलना करने पर ज्ञात होता है कि दोनों आचार्यों द्वारा दिए अधिकांश लक्षण परस्पर नहीं मिलते। ऐसे कुछ लक्षण नीचे दिये जाते हैं—

शंखिनी का लक्षण :

कोप शील कोविद कपट, सजल सलोम शरीर।
अरुण बसन नख दानरुचि, निलज निशंक अधीर॥

(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ८)

दीरघ सिर कर करन कटि लघु नितम्ब कुच नैन।
अलप छमा सन्तोष मुद संखिनी तीछन बैन॥

(भवानीविलास, छं० २८)

दक्षिण नायक का लक्षण :

पहिली सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलेंहूँ न चले, दक्षिण लक्षण जानि॥

(र० प्रि०, प्र० २, छं० ७)

सब नारिन अनुकूल सों, यही दक्ष की रीति।
न्यारी ह्वै सब सों मिलै, करै एक सी प्रीति॥

(भावविलास, पृ० ९८)

---

१. अद्भुत वीर शृंगार रस, समरस बरणि समान।
सुनतहि समुझत भाव जिहि, सो सात्विकी जान।

—र० प्रि०, प्र० १५, छं० ८।

वीर, रौद्र, अद्भुत मई, जहाँ सांत संवित्त।
हर्ष, क्रोध, अचरज, छमा प्रगट सात्वती वृत्ति।

—शब्दरसायन, पृ० ५६।

अथवा एक नारि-अनुकूल व्रत सकल तियन सम दक्ष।

(भवानीविलास, पृ० ६६)

अनुभाव का लक्षण :

आलंबन उद्दीप के, जो अनुकरण बखान।
ते कहिये अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ८)

जिनकों निरखत परस्पर, रस को अनुभव होइ।
इनहीं को अनुभाव पद, कहत सयाने लोइ॥
आपुहि ते उपजाय रस, पहिले होंहि विभाव।
रसहि जगावें जो बहुरि, तो तेऊ अनुभाव॥

(भावविलास, पृ० १४)

बिब्बोक हाव का लक्षण :

रूप प्रेम के गर्व ते, कपट अनादर होय।
तहूँ उपजत बिब्बोक करत, यह जानै सब कोय।

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४२)

प्रिय अपराध धनादि मद, उपजै गर्व्व की बार।
कुटिल डीठि अवयव चलन, सो बिब्बोक विचार॥

(भावविलास, पृ० ७६)

मान का लक्षण :

पूरण प्रेम प्रताप ते, उपजत परत अभिमान।
ताको छवि के छोभ सो, केशव कहियत मान॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० १)

पति परपतिनी रति करत, पतिनी करतु जु मान।
गुरु मध्यम लघु भेद करि, ताहू त्रिविध बखान।

(भावविलास, पृ० ८५)

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षणों के भाव समान हैं, किन्तु ऐसे लक्षणों की संख्या कम ही है। कुछ छन्द नीचे प्रस्तुत किए जाते हैं।

स्वाधीनपतिका का लक्षण :

केशव जाके गुण बंध्यो, सदा रहै पति संग।
स्वाधिनपतिका तासु को, बरणत प्रेम प्रसंग॥

(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ४)

बंध्यो रहै गुन रूप सों, जाको पति आधीन।
स्वाधीना सो नाइका, बरनत परम प्रवीन॥

(भावविलास, पृ० १२६)

लीला हाव का लक्षण :

करत जहाँ लीलान को, प्रीतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहं, वर्णत केशवराय ।।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २१)

कौतुक तें पिय की करै, भूषन भेष उन्हार।
प्रीतम सों परिहास जहं, लीला लेउ विचार ।।
(भावविलास, पृ० ७०)

प्रवास वियोग का लक्षण :

केशव कौनहु काज ते, पिय परदेशहि जाय।
तासों कहत प्रवास सब, कवि कोविद समुझाय ।।
(र० प्रि०, प्र० १२, छं ७)

प्रीतम काहू काज दै, अवधि गयो परदेस।
सो प्रवास जहँ दुहुन को, कष्टक हैं विबुधेस ।।
(भावविलास, पृ० ८६)

प्रोषितप्रेयसी का लक्षण :

जाको प्रीतम दै अवधि, गयो कौनहुँ काज।
ताको प्रोषितप्रेयसी, कहि वर्णत कविराज ।।
(र० प्रि, प्र० ७, छं १९)

सो तिय प्रोषितप्रेयसी, जाको पति परदेस।
काहू कारन तें गये, दैके अवधि प्रवेस ।।
(भावविलास, पृ० १३१)

अथवा पति विदेस क्यों हू गयो आगम औधि ठिठाय।
प्रोषितपतिका रैन दिन विरह दसा अकुलाय ।।
(रसविलास, छं० १९)

कौशिकी वृत्ति का लक्षण :

कहिये केशवदास जहं, करुणा हास शृंगार।
सरल वर्ण शुभ भाव जहं, सो कौशिकी विचार ।।
(र० प्रि०, प्र० १५, छं० २)

हास्य, करुन, शृंगार में, नृत्य कीर्तनन गान।
सुखद बन्धुरति मधुर-पद, वृत्ति कौसिकी जान ।।
(शब्दरसायन, पृ० ५५)

कुछ लक्षण ऐसे भी देखने में आते हैं जिनके भावों में बहुत थोड़ा ही अन्तर है, जैसे उद्वेग दशा अथवा कुट्टमित हाव का लक्षण।

उद्वेग का लक्षण :

दुखदायक ह्वं जात जहँ, सुखदायक अनयास।
सो उद्वेग दशा दुसह, जानहु केशवदास॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ३१)

जहं प्रिय जन के अनमिलै, होइ अनादर प्रान॥
भली वस्तु नागा लगै, सो उद्वेग बखान॥
(भावविलास, पृ० ८४)

कुट्टमित का लक्षण :

केलि कलह में शोभिये, केलि पटरूप।
उपजत है तहं कुट्टमित, हाव कहत कवि मूढ़॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं ५१)

कुच ग्राहन रददान तें, उतकण्ठा अनुराग।
दुखहू में सुख होइ जहं, कुटमित कहैं सभाग॥
(भावविलास, पृ० ७५)

दास तथा केशव :

दास ने 'शृंगारनिर्णय' (रचनाकाल संवत् १८०७)[1] में शृंगार रस तथा उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया है। नायक-नायिका शृंगार रस के आलम्बन और सखी, दूती आदि उद्दीपन हैं। अतएव 'शृंगारनिर्णय' में नायक-नायिका-भेद, सखी, दूती आदि का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है। शृंगार से इतर रसों का निरूपण इस ग्रन्थ में नहीं हुआ है।

दास ने नायक के दो भेद, पति और उपपति बतलाये हैं (शृंगारनिर्णय, छं० ८) और फिर उनके पृथक्-पृथक् अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट नामक चार भेदों के अन्तर्गत उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। दक्षिण नायक के वचन-चातुर तथा क्रिया-चातुर भेद भी किए गए हैं। केशव ने केवल अनुकूल, दक्षिण, शठ तथा धृष्ट— इन चार भेदों का ही वर्णन किया है। दास ने केशव द्वारा दिए गए अनुकूल आदि के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दूसरी ओर वियोग शृंगार के पूर्वानुराग, विरह, मान तथा प्रवास भेदों के आधार पर दास द्वारा दिए गए अनुरागी, विरही, मानी तथा प्रोषित नायकों (शृंगारनिर्णय, छं० २८३) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

दास ने नायिका का पहला वर्ग 'आत्मधर्मानुसार' लिखा है और उसके तीन भेद किए हैं, साधारण, स्वकीया तथा परकीया (शृंगारनिर्णय, छं० २७)। 'स्वकीया' और परकीया भेद दोनों ही आचार्यों को मान्य हैं। दास ने केशव के 'सामान्या' भेद

---

१. संवत् विक्रम भूप को अठ्ठारह सै सात।
माधव सुदि तेरस गुरो अरवर थल बिख्यात॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० २, छं० ४।

का उल्लेख नहीं किया है। सम्भवतः उन्होंने इसके स्थान पर 'साधारणा' लिखा है, जिसका लक्षण इस प्रकार है[1]। यह लक्षण केशव की 'सामान्या' से नहीं मिलता है। दास ने 'स्वकीया' के पतिव्रता, उद्दारिज तथा माधुर्ज—ये तीन भेद किए हैं, जो केशव ने नहीं माने हैं। दास 'स्वकीया' के अन्तर्गत 'भोगभामिनियों, (रखेल) को भी लेते हैं[2] जो केशव को अमान्य है। इसके पश्चात् दास ने ज्येष्ठा-कनिष्ठा का कथन किया है जिसके छः उपभेद किए गए हैं, यथा साधारण ज्येष्ठा, दक्षिण की ज्येष्ठा-कनिष्ठा, शठ की ज्येष्ठा, शठ की कनिष्ठा, धृष्ट की ज्येष्ठा तथा धृष्ट की कनिष्ठा। केशव ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास द्वारा किए गए 'स्वकीया' के ऊढ़ा तथा अनूढ़ा भेदों (शृंगारनिर्णय, छं० ७४) का भी वर्णन केशव ने नहीं किया है।

दास ने सर्वप्रथम 'परकीया' के प्रगल्भा और धीरा भेद किए हैं (शृं० नि०, छं० ७६), फिर उसे अनूढ़ा और ऊढ़ा दो भेदों में विभक्त किया है। इनमें 'अनूढ़ा' के अन्तर्गत उद्बुद्धा तथा उद्बोधिता लिखकर उद्बुद्धा के दो उपभेद अनुरागिनी और प्रेमासक्ता किए हैं[3]। फिर 'ऊढ़ा' के असाध्या, दुःखसाध्या तथा साध्या नामक तीन उपभेद और भी लिखे हैं। अवस्था के अनुसार प्रायः सभी आचार्यों द्वारा किए छः भेदों में से उन्होंने विदग्धा (वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा), लक्षिता(सुरति, हेतु तथा धीरा लक्षिता), मुदिता और अनुशयना—इन चार भेदों का कथन किया है[4]। पाँचवें भेद गुप्ता (भूत, भविष्य और वर्तमान गुप्ता)[5] को 'विदग्धा' के अन्तर्गत रखा है और छठे भेद 'कुलटा' को छोड़ दिया है। उन्होंने मुदिता (केलिस्थानविनाशिता, भावीस्थान अभाव तथा संकेत निःप्राप्य) और अनुशयना में भी विदग्धत्व

---

१. जामें स्वकिया परकिया रीति न जानी जाय।
सो साधारणा नायिका बरनत सब कविराय॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ८, छं० २८।

२. श्रीमानिन के भौन जो, भोग-भामिनी और।
तिनहू को स्वकीया हु में, गनैं सुकवि सिरमौर॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० २२, छं० ६३।

३. उद्बुद्धा उद्बोधिता द्वै परकिया विसेखि।
—शृंगारनिर्णय, पृ० २६, छं० ८४।
प्रथम अनुरागिनी प्रेम असक्ता फेरि
—शृंगारनिर्णय, पृ० २६, छं० ८६।

४. परकीया के भेद पुनि चारि विचारों जाहि।
होत विदग्धा लच्छिता मुदिता अनुसयनाहि॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ३४, छं० १००।

५. जब तिय सुरति छपावही करि विदग्धता बाम॥
भूत भविष ब्रतमान है, गुप्ता ताको नाम॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ३५, छं० १०३।

स्थापित किया है[1]। केशव ने केवल ऊढ़ा और अनूढ़ा—इन दो ही भेदों का वर्णन किया है, दास द्वारा वर्णित अन्य भेदों और उपभेदों का कोई विवरण नहीं दिया है।

उनका दूसरा वर्ग 'वयक्रमानुसार' है जिसके मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा तीन भेद किए गए हैं। इन भेदों को उन्होंने साधारणा, स्वकीया और परकीया तीनों में लिखा है। केशव ने इन तीनों को 'स्वकीया' के ही भेद माना है। 'मुग्धा' के दो भेद अज्ञात-यौवना और ज्ञातयौवना को भी साधारणा, स्वकीया और परकीया तीनों में लिखा गया है, परन्तु नवोढ़ा, विश्रब्धनवोढ़ा और तीसरे नवीन भेद अविश्रब्धनवोढ़ा[2] में साधारणा, स्वकीया तथा परकीया का भेद नहीं किया गया है। केशव ने दास के 'मुग्धा' के अज्ञातयौवना और ज्ञातयौवना के स्थान पर चार भेदों का उल्लेख किया है, यथा नवलवधू, नवयौवना, नवल अनंगा तथा लज्जाप्राइरति जिनमें से कोई भी दास के उक्त भेदों से नहीं मिलता। नवोढ़ा आदि भेदों का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। दास ने केशव द्वारा निरूपित 'मध्या' के आरूढ़यौवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूत-मनोभवा तथा विचित्रसुरता एवं 'प्रौढ़ा' के समस्तरसकोविदा, विचित्रविभ्रमा, आक्र-मतिनायिका तथा लब्धापति भेदों को छोड़ दिया है। केशव के मध्या तथा प्रौढ़ा के अन्तर्गत धीरा, अधीरा तथा धीराधीरा भेदों को दास ने 'खंडिता' में माना है। दास ने मुग्धा तथा प्रौढ़ा की सुरति का भी वर्णन किया है (शृंगारनिर्णय, पृ० ४८-५०), किन्तु केशव ने केवल मुग्धा की ही सुरति का वर्णन किया है।

तीसरा वर्ग दास ने अष्टनायिकाओं का लिखा है। इन नायिकाओं को उन्होंने संयोग शृङ्गार तथा वियोग शृंगार में विभक्त किया है[3]। संयोग शृङ्गार में पहले 'स्वाधीनपतिका' को लिखा गया है, जिसके अन्तर्गत रूपगर्विता, प्रेमगर्विता और गुनगर्विता का उल्लेख किया गया है[4]। फिर 'वासकसज्जा' को बतलाकर उसी के 'अन्तर्गत' आगतपतिका[5] को लिखा है। तीसरी नायिका 'अभिसारिका' है, जिसमें

---

१. मुदिता अनुसयनाहु में विदग्धाहु मिलि जाय।
—शृंगारनिर्णय, पृ०, ३६, छं० ११७।

२. मुग्धा तिय संयोग में कही नवोढ़ा जाहि।
अविश्रब्ध विश्रब्ध ह्वै जे न पतिहि पतियाहि॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ४८, छं० ४२।

३. होत संजोग वियोग की अष्टनायिका लेखि।
तिनके भेद अनेक में कछु कछु कहौं विसेखि॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ५१, छं० १५०।

४. स्वाधिनपतिका है वहै जाके बस है पीउ।
होय गर्विता रूप गुन प्रेम गर्व लहि जीउ॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ५१, छं० १५३।

५. पिय आगम परदेस तें आगतपतिका भाउ।
है वासकसज्जाहि में वहै बढ़ै चित चाउ॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ५४, छं० १६२।

शुक्ला और कृष्णा दो भेद किए गए हैं। उन्होंने संयोग शृंगार की उक्त तीनों नायिकाओं को 'स्वकीया' और 'परकीया' दोनों में लिखा है। वियोग शृंगार में उत्कण्ठिता, खण्डिता, कलहांतरिता, विप्रलब्धा और प्रोषितभर्तृका—इन पाँच भेदों का उल्लेख किया गया है। इनमें 'खण्डिता' के अन्तर्गत धीरा, अधीरा, धीराधीरा भेद और मानिनी नायिका का कथन कर मानिनी में लघु, मध्यम और गुरु मान भेदों (शृंगारनिर्णय, छं० १८२) को भी लिखा है। 'कलहांतरिता' में भी तीनों मान-भेदों का वर्णन किया गया है। 'विप्रलब्धा' के अन्तर्गत अन्यसंभोगदुःखिता[1] और 'प्रोषितभर्तृका' के अन्तर्गत प्रवत्स्यत्प्रेयसी, प्रोषितपतिका, आगच्छत्पतिका तथा आगतपतिका का उल्लेख किया गया है[2]। दास ने फिर सभी नायिकाओं के उत्तम, मध्यम और अधम—ये तीन भेद और बतलाए हैं (शृंगारनिर्णय, छं० २०३-२०४)। केशव ने स्वाधीनपतिका, उत्का (विरहोत्कण्ठिता), वासकशय्या, अभिसंधिता (कलहांतरिता), खण्डिता, प्रोषितपतिका, विप्रलब्धा तथा अभिसारिका—इन आठ नायिकाओं का तो वर्णन किया है पर उनको दास के समान संयोग तथा वियोग शृंगार में विभाजित नहीं किया है। वे 'स्वाधीनपतिका' के अन्तर्गत रूपगर्विता आदि, 'वासकसज्जा' के अन्तर्गत आगतपतिका, 'खण्डिता' के अन्तर्गत धीरादि तथा 'विप्रलब्धा' के अन्तर्गत प्रवत्स्यत्पतिका आदि उपभेदों में नहीं गए हैं। दास द्वारा वर्णित शुक्लाभिसारिका तथा कृष्णाभिसारिका नामक भेद केशव ने नहीं दिए हैं। उन्होंने प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका नवीन भेदों की सृष्टि की है, जिसको दास ने छोड़ दिया है। 'अभिसारिका' को केशव ने स्वकीया, परकीया तथा सामान्या तीनों में लिखा है और दास ने केवल स्वकीया और परकीया में ही। केशव ने 'खण्डिता' के अन्तर्गत मान-भेदों का भी वर्णन नहीं किया है। केशव ने इन 'अष्टनायिकाओं' तथा 'अभिसारिका' के 'प्रच्छन्न' और 'प्रकाश' नामक दो-दो उपभेद किए हैं जिनका उल्लेख दास ने नहीं किया है। दास ने 'स्वाधीनपतिका' और 'वासकसज्जा' को स्वकीया और परकीया में लिखा है, किन्तु केशव ने इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। दास द्वारा वर्णित उत्तम, मध्यम तथा अधम भेद केशव को भी मान्य हैं। केशव द्वारा बतलाए जाति के अनुसार नायिकाओं के पद्मिनी, चित्रिणी आदि भेद दास ने छोड़ दिए हैं।

उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखी, दूती आदि का वर्णन किया गया है। दास ने 'दूती' को 'सखी' के अन्तर्गत ही माना है और उसके तीन भेदों का वर्णन किया

---

१. मिलन आस, दै पति, छली औरहि रत ह्वै जाइ।
विप्रलब्ध सो दुःखिता परसंभोग सुभाइ॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६५, छं० १६२।

२. कहिये प्रोषितभर्तृका पति परदेसी जानि।
चलत रहत आवत मिलत चारि भेद उनमानि॥
प्रथम प्रवत्स्यत्प्रेयसी प्रोषितपतिका फेरि।
आगच्छत्पतिका बहुरि आगतपतिका हेरि॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६६-६७, छं० १६७-१६८।

है, यथा उत्तम, मध्यम और अधम (शृंगारनिर्णय, छं० २०८)। केशव भी 'दूती' को 'सखी' के अन्तर्गत तो मानते हैं पर वे इन भेदों का उल्लेख नहीं करते । केशव ने लिखा है कि नायक-नायिका धाय, जनी, नाइन, नटी, पड़ोसिन, मालिन, बरइन, शिल्पिनी, चुड़िहारिन, रामजनी, संन्यासिनी, पटइन आदि को सखी बनाते हैं। दास ने इनका वर्णन नहीं किया है। इन्होंने सखी के मण्डन, सन्दर्शन, परिहास, संघट्टन, मान-प्रवर्जन (मान-मोचन), पत्रिका देना, उपालम्भ, शिक्षा, स्तुति, विनय, जदृक्षा (यदृक्षा) यथा विरहनिवेदन आदि कार्यों का उल्लेख किया है (शृंगारनिर्णय, छं० २१५-२१६)। केशव ने सखियों के सात कर्मों का उल्लेख किया है, यथा शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलाना, शृंगार करना, झुकना तथा उलाहना देना। केशव ने सन्दर्शन, परिहास, पत्रिका देना, स्तुति, जदृक्षा तथा विरहनिवेदन को 'सखी' के कार्यों में परिगणित नहीं किया है। केशव ने स्वयंदूतत्व का भी वर्णन किया है। दास ने केशव द्वारा वर्णित नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं तथा प्रथम-मिलन-स्थलों को छोड़ दिया है ।

दास ने 'उद्दीपन' विभाव का लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही दिया है, परन्तु केशव ने लक्षण और उदाहरण दोनों दिए हैं। केशव ने 'उद्दीपन' के अन्तर्गत नायक-नायिका का एक दूसरे की ओर देखना, आलाप, आलिंगन, नखदान, रददान, चुम्बन, मर्दन तथा स्पर्श का उल्लेख किया है। दास ने इनका वर्णन नहीं किया है। दोनों आचार्यों के 'अनुभाव' के लक्षण परस्पर नहीं मिलते। दास ने आठ प्रसिद्ध सात्विक भावों, स्तम्भ, स्वेद, रोमांच, सुरभंग, कंप, वैवर्ण्य, अश्रु तथा प्रलय आदि को 'अनुभाव' के अन्तर्गत ही माना है[1]। केशव ने 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रलाप' को गिनाकार इन आठों को 'भाव' के प्रकारों में माना है। दास ने व्यभिचारी भावों का सामान्य लक्षण न देकर उनके नाम एक छन्द में गिना दिये हैं। उन्होंने व्यभिचारियों की संख्या तैंतीस ही मानी है (शृङ्गारनिर्णय, छं० २३८)। केशव ने 'व्यभिचारी भाव' का लक्षण दिया है और उनकी संख्या ३४ बतलाई है। केशव के 'आधि' नामक ३४वें संचारी भाव का उल्लेख दास ने नहीं किया है। केशव के निन्दा, कोह, आश-तर्क तथा विवाद शब्दों के स्थान पर दास ने क्रमशः असूया, अमरष (अमर्ष), वितर्क तथा अवहित्था शब्दों का प्रयोग किया है। 'स्थायी भाव' का लक्षण दोनों आचार्यों ने नहीं दिया है। दास ने केवल शृङ्गार रस के स्थायी भाव 'प्रीति' का ही उल्लेख किया है (शृंगारनिर्णय, छं० २४०)। किन्तु केशव ने शृंगार रस के स्थायी भाव 'रति' के अतिरिक्त अन्य सात रसों के स्थायी भावों, हास, शोक, क्रोध, उछाह, भय, निन्दा तथा विस्मय को भी गिनाया है। शृंगार के दोनों भेद संयोग और वियोग दोनों आचार्यों को मान्य हैं। केशव के संयोग और वियोग के दो-दो भेद 'प्रकाश' और

---

१. याही में वरनैं सुकवि आठों सात्विक भाव।
स्तम्भ स्वेद रोमांच स्वरभङ्ग कम्प वैवर्ण।
अश्रु प्रलय सात्विकी भाव के उदाहर्ण॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ८०. छं० २३६।

'प्रच्छन्न' दास ने नहीं माने हैं। केशव का शृंगार का लक्षण भी दास से नहीं मिलता। संयोग शृंगार के अन्तर्गत वनिताओं के अलंकारों का वर्णन करते हुए दास ने दस हावों का वर्णन किया है, यथा लीला, ललित, विलास, किलकिंचित, विहित, विच्छित्त, मोट्टाइत, कुट्टमित, बिब्बोक तथा विमोहित (शृंगारनिर्णय, २४६-२४७)। आगे चलकर हेला (शृंगारनिर्णय, छं० २७८) तथा विभ्रम हावों का भी उन्होंने उल्लेख किया है। केशव ने १३ हावों का उल्लेख किया है। उनके 'मद' तथा 'बोध' हावों को दास ने नहीं गिनाया है। दास के 'विमोहित' को केशव ने नहीं लिखा है। दास ने 'विभ्रम' के अन्तर्गत कौतूहल, विच्छेप तथा मुग्ध हावों को भी दिया है[1], जिनका उल्लेख केशव ने नहीं किया है।

वियोग शृंगार के अन्तर्गत दास ने पूर्वानुराग, विरह, मान तथा प्रवास—इन चार भेदों का कथन किया है, जो केशव को भी मान्य हैं। केशव ने इन चारों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो-दो उपभेद और किए हैं, जो दास ने नहीं माने हैं। केशव ने दास के 'विरह' के स्थान पर 'करुणा' शब्द का प्रयोग किया है। पूर्वानुराग के अन्तर्गत दास ने 'दृष्टि' तथा 'श्रुति' दो प्रकार के दर्शनों का उल्लेख किया है और फिर दृष्टि-दर्शन के प्रत्यक्ष, स्वप्न, छाया, माया तथा चित्र नामक पाँच प्रकारों का वर्णन किया है[2]। उन्होंने विरह, मान तथा प्रवास भेदों में सभी प्रकार के दर्शनों को माना है[3]। केशव ने संयोग शृंगार के अन्तर्गत केवल चार प्रकार के दर्शनों का उल्लेख किया है, यथा साक्षात्, स्वप्न, चित्र तथा श्रवण। 'श्रवण' को केशव ने 'दर्शन' का ही भेद बतलाया है पर दास ने उसे अलग ही लिखा है। केशव ने प्रत्येक प्रकार के दर्शनों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो-दो और उपभेद किए हैं जो दास ने छोड़ दिये हैं। केशव ने सभी दर्शनों के लक्षण तथा उदाहरण दिए हैं पर दास ने केवल 'श्रुति दर्शन[4]' का ही लक्षण दिया है। केशव ने 'पूर्वानुराग' के अन्तर्गत अभिलाषा आदि दस कामदशाओं

---

१. कहियत विभ्रम हाव जहँ भूलि काज ह्वै जाइ।
कौतूहल विच्छेप विधि याही में ठहराय॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६२, छं० २७२।

जानि बूझि कै बोरई जहाँ धरत है बाम।
मुग्ध हाव तासों कहैं विभ्रम ही के धाम॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६३, छं० २७६।

२. दृष्टि श्रुतो द्वै भांति दरसन जानो मित्र।
दृष्टि दरस परतछ सपन छाया माया चित्र॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६५, छं० २८५।

३. दरसन सकल प्रकार पुनि इनै तिहुन में मानि।
—शृंगारनिर्णय, पृ० १००, छं० ६०० (पूर्वार्द्ध)।

४. सुनन सुनै पत्री मिलै जब तब सुमिरन ध्यान।
दृष्टिदरस बिन होत है श्रुति दरसन यों जान॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० ६७, छं० २६१।

का वर्णन किया है और प्रत्येक के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो-दो उपभेद किए हैं। दास ने 'वियोग' शृंगार के चारों ही भेदों में इन दस दशाओं को माना है[1]। केशव द्वारा निर्दिष्ट 'अभिलाषा' के स्थान पर दास ने 'लालस' शब्द का प्रयोग किया है। केशव ने दसवीं दशा 'मरण' के वर्णन न करने की विधि बतलाई है[2]। दास ने 'मरण' को निरी निराशा की दशा के अन्तर्गत रखा है और कहा है कि उसके वर्णन करने में रसभंग होता है[3]। केशव के 'मान' के गुरु, मध्यम और लघु भेदों एवं मानमोचन के उपायों का वर्णन दास ने नहीं किया है।

दोनों आचार्यों द्वारा दिये अधिकांश लक्षण भिन्न हैं। इस प्रकार के कुछ लक्षण यहाँ दिए जाते हैं।

दक्षिण नायक का लक्षण :

पहिली सो हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि ।
चित्त चलैहूँ ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि ॥
(र० प्रि०, प्र० २, छं० ७)

बहुनारिन को रसिक पै सब पै प्रीति समान ।
बचनक्रिया में अति चतुर दच्छिन लच्छन जान ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० १६)

स्वकीया का लक्षण :

सम्पति विपति में मरणहूँ, सदा एक अनुहार ।
ताको स्वकिया जानिये, मन क्रम वचन विचारि ॥
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० १५)

कुल जाता कुल भामिनी स्वकिया लच्छन चारु ।
(शृंगारनिर्णय, छं० ६२)

अनुभाव का लक्षण :

आलम्बन उद्दीप के, जे अनुकरण बखान ।
ते कहिये अनुभाव सब, दंपति प्रीति विधान ॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ८)

---

१. चहूँ भेद में दास पुनि दसौं दसा पहिचानि ।
लालस चिन्ता गुणकथन स्मृति उद्वेग प्रलाप ।
उन्मादहि व्याधिहि गनो जड़ता मरन संताप ॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० १००, छं० ३०० (उत्तरार्द्ध)-३०१ ।

२. मरण सु केशवदास पै, वरणों जाइ न मित्त ।
अजर अमर तासों कहै, कैसे प्रेम चरित्त ॥
—र० प्रि०, प्र० ८, छं० ५५ ।

३. मरण दसा सब भांति सो ह्वै निरास मरि जाय ।
जीवन मृत के वरनिये तहँ रसभंग बराय ॥
—शृंगारनिर्णय, पृ० १०६, छं० ३२८ ।

सु अनुभाव जिहि पाइये मन को प्रेम प्रभाव ।
(शृंगारनिर्णय, छं० २३४)

विच्छित्ति हाव का लक्षण :

भूषण भूषव को जहाँ, होहि अनादर आन ।
सो विच्छित्त विचारिये, केशवराय सुजान ॥
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४५)

बन भूषन कै थोहरी भूखन छवि सरसाय ।
कहत हाव विच्छित्ति हैं जो प्रवीन कविराय ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० २६१)

जड़ता का लक्षण :

भूलि जाय सुधि बुधि जहाँ, सुख दुख होय समान ।
तासों जड़ता कहत हैं, केशवराय सुजान ॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४६)

जड़ता में सब आचरन भूलि जात अनयास ।
तम निद्रा बोलनि हंसनि भूख प्यास रसत्रास ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० ३२६)

दोनों आचार्यों के कुछ लक्षणों में भाव-साम्य है, यद्यपि इस प्रकार के लक्षण अपेक्षाकृत बहुत ही कम हैं। कुछ छन्द नीचे उपस्थित किए जाते हैं।

धृष्ट नायक का लक्षण :

लाज न गारी मार की, छांड़ दई सब त्रास ।
देख्यो दोष न मानहीं, धृष्ट सु केशवदास ॥
(र० प्रि०, प्र० २, छं० १४)

लाज न गारी मार की छोड़ दई सब त्रास ।
देख्यो दोष न मानई नायक धृष्ट प्रकास ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० २४)

ऊढ़ा तथा अनूढ़ा का लक्षण :

ऊढ़ा होत विवाहिता, अनब्याहिता अनूढ़ ।
(र० प्रि०, प्र० ३, छं० ६६)

ऊढ़ अनूढ़ा नारि द्वै ऊढ़ा ब्याही जानि ।
बिन ब्याह सो धर्मरत ताहि अनूढ़ा मानि ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० ७४)

उद्वेग दशा के लक्षण :

दुखदायक ह्वै जात जहं सुखदायक अनयास ।
सो उद्वेग दशा दुसह, जानहु केशवदास ॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३१)

जहाँ दुखरूपी लगै सुखद जु वस्तु अनेग ।
रहिवो कहूँ न सोहात सो दुसह दसा उद्वेग ॥
(शृंगारनिर्णय, छं० ३१३)

नायिका-भेद तथा शृंगार रस के अवयवों का वर्णन करते हुए कुछ भेदों तथा अवयवों के लक्षण केशव ने नहीं दिए हैं और कुछ के दास ने नहीं दिए हैं। मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा, साधारणा आदि नायिकाओं, स्थायी भावों एवं सात्विक भावों और सखी आदि के लक्षण केशव ने नहीं दिए हैं। इसी प्रकार धीरा, अधीरा और धीराधीरा नायिकाओं, व्यभिचारी एवं स्थायी भावों तथा उद्दीपन विभाव के लक्षण 'शृंगार-निर्णय' में नहीं मिलते। सुरतान्त का लक्षण दोनों आचार्यों ने नहीं दिया है, केवल उदाहरण ही दिया है।

पद्माकर तथा केशव :

पद्माकर के आचार्यत्व के प्रतिष्ठापक दो ही ग्रन्थ हैं, पद्माभरण और जगद्विनोद। 'पद्माभरण' के आधार पर आचार्य केशव से देव की तुलना पूर्वपृष्ठों में की जा चुकी है। यहाँ 'जगद्विनोद' के आधार पर दोनों आचार्यों की तुलना की गई है।

पद्माकर ने 'जगद्विनोद' में केशव की ही भाँति मुख्यत: नव-रस के राजा 'शृंगार' तथा उसके विभिन्न अंगों का वर्णन किया है। नायक-नायिका शृंगार रस के आलंबन माने गए हैं (जगद्विनोद, छं० ९)। अतएव 'जद्विनोद' में नायक-नायिका-भेद का भी सविस्तार वर्णन किया गया है। शृंगार से इतर रसों का वर्णन 'रसिकप्रिया' के समान ही यहाँ भी बहुत ही संक्षेप में किया गया है। नायिका-भेद के अन्तर्गत पद्माकर ने पहिले नायिका का सामान्य लक्षण दिया है जो इस प्रकार है[1]। केशव ने 'नायिका' का सामान्य लक्षण नहीं दिया है। 'नायिका' के स्वकीया, परकीया तथा गणिका अथवा सामान्या भेदों का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है, परन्तु केशव ने 'गणिका' का उल्लेख करना उचित न समझ केवल नाम भर ही गिना दिया है। 'स्वकीया' के लक्षणों में अन्य सामान्य बातों के अतिरिक्त पद्माकर ने यह भी बतलाया है कि स्वकीया, पति से पीछे खाती, पीती तथा सोती है और पहले जागती

---

१. रस-सिंगार को भाव उर, उपजत जाहि निहारि ।
ताही कौं कवि नायिका, वरनत विविध विचारि ॥
—जगद्विनोद, पृ० ८६, छं० ११ ।

है[1]। इस विषय में डा० भगीरथ मिश्र का कथन है कि 'इसको स्कीया का लक्षण नहीं माना जा सकता है। ये पतिव्रता के गुण हैं, कुछ स्वकीया नायिकाएँ ऐसी होती हैं सभी नहीं क्योंकि यह तो सब आदर्श है और स्वकीया एक यथार्थ-वर्ग[2]'। केशव ने अपने 'स्वकीया' के लक्षण में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं किया है। 'स्वकीया' के भेदों मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा का दोनों ही आचार्यों ने निरूपण किया है, परन्तु उपभेदों में भिन्नता परिलक्षित होती है। पद्माकर ने 'मुग्धा' नायिका के ज्ञातयौवना और अज्ञातयौवना (जगद्विनोद, छं० २६) तथा नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ा भेदों (जगद्विनोद, छं० ३६, ३६) का उल्लेख किया है। 'मध्या' के पद्माकर ने कोई भेद नहीं किए हैं। इनके विचार से 'प्रौढ़ा' के दो प्रकार हैं, रति-प्रीता और आनन्द-संमोहिता (जगद्विनोद, छं० ४८)। केशव ने मुग्धा, मध्या तथा प्रौढ़ा आदि प्रत्येक प्रकार के चार-चार उपभेदों का विवरण दिया है। केशव द्वारा दिया 'मुग्धा' की सुरति तथा मान का वर्णन पद्माकर ने छोड़ दिया है। मान करने की दशा में मध्या तथा प्रौढ़ा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा भेदों का निरूपण दोनों आचार्यों ने किया है। 'स्वकीया' के ज्येष्ठा और कनिष्ठा दोनों भेदों को केशव ने छोड़ दिया है।'परकीया' नायिका के ऊढ़ा तथा अनूढ़ा भेदों का विवरण दोनों ही आचार्यों ने प्रस्तुत किया है। पद्माकर द्वारा वर्णित 'परकीया' के छः भेदों (जगद्विनोद, पृ० १०२-१०८), गुप्ता (भूतसुरतिसंगोपना, वर्तमानसुरतिगोपना और भविष्यरतिगोपना), विदग्धा (वचन-विदग्धा और क्रिया-विदग्धा), कुलटा, लक्षिता, मुदिता तथा अनुशयना (पहली, दूसरी और तीसरी अनुशयना) का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है।

पद्माकर के विचार से उपर्युक्त सभी नायिकाएँ तीन प्रकार की हो सकती हैं, अन्यसुरतिदुःखिता, मानवती तथा वक्रोक्ति-गर्विता (ज० वि०, छं० १२४-१२५) और फिर वक्रोक्ति-गर्विता के भी दो अवान्तर भेद प्रेमगर्विता और रूपगर्विता किए गए हैं (ज० वि०, छं० १३४)। केशव ने इन भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। जाति के अनुसार केशव द्वारा बतलाए गए पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी भेदों, नायक-नायिका की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं और प्रथम-मिलन-स्थानों का वर्णन पद्माकर ने नहीं किया है।

अवस्था के अनुसार पद्माकर ने मतिराम के सदृश ही इस प्रकार की नायिकाएँ बतलाई हैं (ज० वि०, छं० १४०-१४२)। केशव ने उनके आठ ही भेद माने हैं और पद्माकर द्वारा उल्लिखित 'प्रवत्स्यत्प्रेयसी' तथा 'आगतपतिका' का कोई उल्लेख नहीं किया है। पद्माकर ने मतिराम के ही समान दसों प्रकार की नायिकाओं के मुग्धा, मध्या, प्रौढ़ा एवं परकीया तथा गणिका आदि भेदों के अन्तर्गत उदाहरण दिए

---

१. खान-पान पीछू करति, सोवत पिछिले छोर।
प्रान-पियारे ते प्रथम, जागति भावती भोर॥
—जगद्विनोद, पृ० १०, छं० १६।

२. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १६५।

हैं। केशव ने केवल 'अभिसारिका' के अन्तर्गत स्वकीया, परकीया और सामान्या के अभिसार का लक्षण प्रस्तुत किया है और प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका तथा कामाभिसारिका के उदाहरण दिए हैं, लक्षण नहीं दिए हैं। पद्माकर ने केशव द्वारा बतलाए इन भेदों तथा इनके 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' आदि उपभेदों का वर्णन नहीं किया है। पद्माकर ने 'अभिसारिका' के तीन अन्य ही भेदों दिवाभिसारिका, कृष्णा-भिसारिका और शुक्लाभिसारिका का उल्लेख किया है। केशव ने इनका वर्णन नहीं किया है। नायिकाओं के भेदों उत्तमा, मध्यमा और अधमा का वर्णन दोनों ही आचार्यों ने किया है।

पद्माकर ने नायकों का विभाजन कई प्रकार से किया है। पहले उन्होंने नायक के तीन भेद पति, उपपति और वैशिक बतलाए हैं (ज० वि०, छं० २८२) और फिर चार और भेदों अनुकूल, दक्षिण, शठ और धृष्ट का उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त उन्होंने मानी, वचन-चतुर, क्रिया-चतुर, प्रोषित तथा अनभिज्ञ[1] नायकों का भी विवरण उपस्थित किया है। 'प्रोषित नायक' के पति, उपपति और वैशिक के अन्तर्गत उदाहरण भी दिए गए हैं। केशव ने नायक के अनुकूल आदि चार भेदों का ही वर्णन किया है। केशव द्वारा वर्णित अनुकूल आदि भेदों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भेदों को पद्माकर ने छोड़ दिया है। पद्माकर ने उन्हीं चार प्रकार के दर्शनों श्रवण, चित्र, स्वप्न और प्रत्यक्ष का उल्लेख किया है (जगद्विनोद, छं० ३२३) जिनका कि केशव ने किया है। पद्माकर ने केशव द्वारा उल्लिखित चार प्रकार के दर्शनों के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का कोई विवरण नहीं दिया है।

शृंगार रस के आलम्बन विभाव के अन्तर्गत पद्माकर ने केशव के समान नायक और नायिका को तो माना है[2] किन्तु केशव द्वारा वर्णित नायक-नायिका के यौवन, रूप आदि का वर्णन नहीं किया है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत उन्होंने नायक के सखा, नायक-नायिका की सखी, दूती आदि का निरूपण किया है। पद्माकर के अनुसार सखा के चार भेद हैं, पीठमर्द, विट, चेट और विदूषक। केशव ने इनका वर्णन नहीं किया है। पद्माकर ने 'सखी' के भेदों का कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव ने 'सखी' के अन्तर्गत जनी, धाय, पड़ोसिन आदि का बड़ा ही विस्तार के साथ वर्णन किया है। 'सखी' का लक्षण अवश्य पद्माकर ने केशव से अधिक दिया है। पद्माकर ने 'सखी' के कामों में मंडन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास को गिनाया

---

१. बूझें जो न तियान के ठान विविध बिलास।
सु अनभिज्ञ नायक कह्यो, वहै नायका भास॥
—जगद्विनोद, पृ० १४७, छं० ३१८।

२. आलम्बन शृंगार के, कहे भेद समुझाइ।
सकल नायका नायकहि, लच्छन लच्छ बनाइ॥
—जगद्विनोद, पृ० १४८, छं० ३२२।

है[1]। केशव ने 'परिहास' का कोई उल्लेख नहीं किया है और उसके कामों में विनय, मनाना और झुकना तीन और कामों का निर्देश दिया है। पद्माकर तीन प्रकार की दूतियाँ (जगद्विनोद, छं० ३५६), उत्तमा, मध्यमा और अधमा और उनके दो काम, बिरहनिवेदन और संघट्टन (जगद्विनोद, छं० ३७०) बतलाते हैं। पद्माकर ने स्वयं-दूती का लक्षण[2] उदाहरण-सहित दिया है। केशव ने स्वयंदूतीत्व का विवरण तो दिया है परन्तु दूती और उसके कार्यों का कथन नहीं किया है। पद्माकर ने केशव द्वारा निर्दिष्ट स्वयंदूतीत्व के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों, नायक-नायिका की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं तथा प्रथम-मिलन-स्थानों को छोड़ दिया है। सखा, सखी, दूती आदि के अतिरिक्त पद्माकर ने उपवन, षट्ऋतु आदि को भी उद्दीपन के अन्तर्गत दिखाया है। केशव ने इन्हें न दिखलाकर नायक-नायिका के एक दूसरे की ओर देखना, आलाप, आलिङ्गन, नखदान, रददान, चुम्बन, मर्दन, स्पर्श आदि का उल्लेख किया है।

पद्माकर ने 'अनुभाव' के अन्तर्गत सात्विक भावों एवं हावों का वर्णन किया है। स्तंभ, स्वेद, रोमांच, स्वरभंग, कम्प, वैवर्ण्य, आंसू और प्रलय—इन आठ सात्विक भावों के अतिरिक्त वे 'जृंभा'[3] नामक एक नवाँ सात्विक भाव और मानते हैं। उन्होंने इसका लक्षण उदाहरण-सहित दिया है। केशव ने इस नवें सात्विक भाव का कोई उल्लेख नहीं किया है और 'प्रलय' के स्थान पर 'प्रलाप' आठवाँ सात्विक भाव माना है। पद्माकर ने इनके लक्षण और उदाहरण भी दिये हैं। परन्तु केशव ने न तो लक्षण ही दिए हैं और न उदाहरण ही। हावों के अन्तर्गत पद्माकर ने लीला, विलास, विच्छित्ति, विभ्रम, किलकिंचित, ललित, मोट्टायित, बिब्बोक, विहृत, कुट्टमित, हेला (ज० वि०, छं० ४५६) तथा बोधक (ज० वि०, छं० ४६२) को गिनाया है। केशव ने पद्माकर से 'मद' नामक हाव अधिक लिखा है। संचारी भावों में केशव द्वारा निरूपित कोह, निंदा, विवाद, और आशतर्क के स्थान पर पद्माकर ने क्रमशः अमर्ष (अमरख), असूया, अवहित्था और वितर्क शब्दों का प्रयोग किया है। केशव के ३४वें 'आधि' नामक संचारी भाव का उल्लेख पद्माकर ने नहीं किया है, शेष भाव दोनों आचार्यों के समान ही हैं। केशव ने व्यभिचारी अथवा संचारी भावों के केवल नाम ही गिनाए हैं, लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही नहीं दिए। पद्माकर ने उनके लक्षण उदाहरण-सहित दिए हैं। पद्माकर ने रति, हास, शोक आदि प्रसिद्ध नौ स्थायी भावों

---

१. काज सखिन के चारि ये, मंडन सिक्षादान।
उपालम्भ परिहास पुनि, बरनत सुकवि सुजान॥
—जगद्विनोद, पृ० १५२, छं० ३४६।

२. आपुहि अपनो दूतपन, करै जु अपने काज।
ताहि स्वयंदूती कहत, ग्रन्थन में कविराज॥
—जगद्विनोद, पृ० १५७, छं० ३७५।

३. जृंभा नवम बखानहीं, जे कबीन के राय।
—जगद्विनोद, पृ० १६३, छं० ३६५।

का उल्लेख करते हुए उनके लक्षण सोदाहरण दिए हैं। केशव ने स्थायी भाव तो पद्माकर के समान ही नौ माने हैं पर उनके लक्षण और उदाहरण नहीं दिए।

पद्माकर ने केशव के ही समान नौ रस माने हैं और शृंगार को रसों का राजा कहा है[1]। शृंगार रस के दो भेद, संयोग और वियोग दोनों ही आचार्य मानते हैं। पद्माकर ने केशव के दोनों प्रकार के शृंगार के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है। पद्माकर ने वियोग शृंगार के तीन भेदों पूर्वानुराग, मान और प्रवास का उल्लेख किया है। केशव ने चौथा भेद 'करुण' और माना है। पद्माकर ने केशव द्वारा उल्लिखित पूर्वानुराग, मान और प्रवास के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है। मान के प्रकारों लघु, मध्यम और गुरु का दोनों ही आचार्यों ने निरूपण किया है, परन्तु केशव के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों का पद्माकर ने कोई विवरण नहीं किया है। केशव द्वारा निर्दिष्ट मानमोचन के छः उपायों का पद्माकर ने कोई उल्लेख नहीं किया है। पद्माकर द्वारा निर्दिष्ट 'प्रवास' के भेद[2], 'भविष्य' तथा 'भूत' केशव ने नहीं बतलाए हैं। 'वियोग' की दस दशाओं का निरूपण दोनों ने ही किया है। अभिलाषा, गुण-कथन, उद्वेग और प्रलाप का तो पद्माकर ने वर्णन किया है, पर शेष छः के सम्बन्ध में लिखते हैं कि चिन्ता आदि विरह की छः दशाओं का विवरण संचारी भावों के अन्तर्गत दिया जा चुका है[3]। पद्माकर ने 'मूर्छा' नामक दशा का केशव से अधिक वर्णन किया है। पद्माकर ने इन दसों दशाओं के केशव द्वारा बतलाए 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' उपभेदों को छोड़ दिया है।

विभिन्न रसों का निरूपण करते हुए केशव ने प्रत्येक रस का लक्षण उदाहरण सहित संक्षेप में दिया है। साथ ही करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स और अद्भुत— इन छः रसों के कपोत, अरुण, गौर, श्याम, नील तथा पीत वर्णों का भी उल्लेख किया गया है। पद्माकर ने हरेक रस का लक्षण देते हुए उसके स्थायी भाव, विभाव, अनुभाव, संचारी भाव तथा रस-विशेष के रंग और देवता का विस्तारपूर्वक विवरण प्रस्तुत किया है। पद्माकर द्वारा उल्लिखित करुण, रौद्र, वीर, भयानक, बीभत्स, अद्भुत–इन पाँच रसों के रंग केशव के समान ही हैं। केशव ने शेष तीन रसों के रंग नहीं बतलाए हैं। केशव द्वारा निर्दिष्ट हास्य रस के चार भेदों मंदहास, कलहास, अतिहास और परिहास

---

१. सो सिंगार रसराव । —जगद्विनोद, पृ० २०१, छं० ६१३।

२. सो प्रवास द्वै भाँति को, एक भविष्य इक भूत ।
—जगद्विनोद, पृ० २०६, छं० ६३६।

३. इक वियोग-शृंगार में, इती अवस्था थाप ।
अभिलाषा गुन कथन पुनि, पुनि उद्वेग प्रलाप ॥
चिन्तादिक जे षट कहीं, विरह-अवस्था जानि ।
संचारी भावन विषे, हौं आयहु जो बखानि ॥
—जगद्विनोद, पृ० २०७, छं० ६४५-६४६।

का पद्माकर ने वर्णन नहीं किया है और पद्माकर के वीर रस के भेदों (जगद्विनोद, छं० ६८१) युद्धवीर, दयावीर, दानवीर और धर्मवीर का केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। केशव के वृत्ति तथा रस-दोषों के वर्णन को पद्माकर ने छोड़ दिया है।

पद्माकर और केशव दोनों आचार्यों के विभिन्न लक्षणों में थोड़ा अन्तर तो अवश्य देखने में आता है परन्तु अधिकांश लक्षणों का भाव प्रायः समान ही है। कुछ लक्षण ऐसे भी हैं जो दोनों आचार्यों के भिन्न हैं। उनमें से कुछ उदाहरणार्थ यहाँ दिए जाते हैं।

खंडिता नायिका का लक्षण :

आवन कहि आवै नहीं, आवै प्रीतम प्रात।
ताके घर सो खंडिता, कहै सु बहु विधि बात॥

(र० प्रि०, प्र० ७, छं० १६)

अनत-रमे रति-चिह्न लखि, पीतम के शुभ गात।
दुखित होइ सो खंडिता, बरनत मति-अवदात॥

(जगद्विनोद, छं० १५६)

विच्छित्ति हाव का लक्षण :

भूषण भूषव को जहाँ होहि अनादर आन।
सो विच्छित्त विचारिये, केशवराय सुजान॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४५)

तनक सिंगारहि में जहाँ, तरुनि महाछवि देत।
सोई विच्छित्ति हाव को, बरनत बुद्धि-निकेत॥

(जगद्विनोद, छं० ४३५)

दक्षिण नायक का लक्षण :

पहिली सों हिय हेतु डर, सहज बड़ाई कानि।
चित्त चलै हूं ना चलै, दक्षिण लक्षण जानि॥

(र० प्रि०, प्र० २, छं० ७)

जु बहु तियन कों सुखद सम, सो दक्षिन गुनखानि।

(जगद्विनोद, छं० २६८)

लीला हाव का लक्षण :

करत जहाँ लीलान को, प्रीतम प्रिया बनाय।
उपजत लीला हाव तहँ, वर्णत केशवराय॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २१)

पिय तिय को तिय पीव को, धरैं जु भूषन चीर।
लीला हाव बखानहीं, ताही को कवि धीर॥

(जगद्विनोद, छं० ४२७)

बोध (क) हाव का लक्षण :

गूढ़ भाव के बोध जहँ, केशव समुझत कोइ ।
तासों बोधक हाव यों, कहत सयाने लोइ ।
·(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५४)

ठानि क्रिया कछु तिय, पुरुष बोधन करै जु भाव ।
रस-ग्रन्थनि में कहत हैं, तासों बोधक हाव ॥
(जगद्विनोद, छं० ४६२)

अभिसंधिता का लक्षण :

मान मनावत हूँ करे, मानद को अपमान ।
दूनो दुख ता बिन लहे, अभिसंधिता बखान ॥
(र० प्रि०, प्र० ७, छं० १३)

प्रथम कछू अपमान करि पिय को फिरि पछताय ।
कलहांतरिता नायिका, ताहि कहत कविराय ॥
(जगद्विनोद, छं० १६६)

नवाँ अध्याय

केशव का हिन्दी के परवर्त्ती शृङ्गारी कवियों पर प्रभाव

केशव का प्रभाव हिन्दी के परवर्त्ती प्रायः सभी शृंगारी मुक्तक कवियों पर थोड़ा-बहुत पड़ा है। यहाँ बिहारी, मतिराम, दास, देव तथा बेनी प्रवीन—इन पाँच कवियों को ही हमने अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

केशव और बिहारी :

केशव का बिहारी के कवि-रूप पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। सतसई के दोहों की रचना करते समय बिहारी के मन में निश्चय ही केशव के छन्द घूम रहे थे। इसके प्रमाण-स्वरूप बहुत से छन्द उपस्थित किये जा सकते हैं। उनमें से कुछ यहाँ दिये जाते हैं जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि बिहारी ने केशव से भाव, रूपक आदि का ग्रहण किया है।

केशवदास ने आश्रम का वर्णन करते हुए लिखा है कि वहाँ मृग-शिशु तथा बाघ, सर्प तथा मोर आदि परस्पर-विरोधी होकर भी मिल-जुलकर शान्तिपूर्वक रहते हैं—

केशोदास मृगज बछेरु चूषैं बाघिनीन,
चाटत सुरभि बाघ बालक बदन है।
सिंहन की सटा ऐंचैं कलभ करनि करि,
सिंहन को आसन गयंद को रदन है।
फणी के फणनि पर नाचत मुदित मोर,
क्रोध न विरोध जहाँ मद न मदन है।
बानर फिरत डोरे डोरे अंध तापसन,
ऋषि को निवास कैंधौं शिव को सदन है।
(क० प्रि०, प्र० ७, छं० १३)

बिहारी के निम्नलिखित दोहे से भी ऐसे ही भाव की अभिव्यक्ति हो रही है। देखिए—

कहलाने एकत बसत अहि मयूर, मृग बाघ।
जगतु तपोबन सौं कियौ दीरघ-दाघ-निदाघ॥
(बिहारी रत्नाकर, छं० ४८९)

कहीं-कहीं बिहारी ने केशव के रूपकों को भी ग्रहण किया है। केशव ने एक स्थल पर नाच का बड़ा ही सुन्दर रूपक बाँधा है, जिसमें 'नेत्र' काछनी है 'पुतरी' (पुतली) पातुरी (नटी) तथा 'नेह' (प्रेम) नायक (उस्ताद) है।

काछे सितासित काछनी केशव पातुर ज्यों पुतरीन बिचारो।
कोटि कटाक्ष नचै गति भेद नचावत नायक नेह निहारो॥
बाजत हैं मृदु हास मृदंग सो दीपति दीपनि को उजियारो।
देखत हौं हरि देखि तुम्हें यह होतु हैं आँखिन बीच अखारो॥

(र० प्रि० प्र० १४, छं० ६)

इस विधान को बिहारी ने भी अपनाया है और उनका दोहा एक प्रकार से केशव का अनुवाद सा ही बन जाता है।

सब अंग करि राखी सुघर नायक-नेह सिखाइ।
रस-जुत लेति अनंत गति पुतरी पातुरराइ॥

(बिहारी रत्नाकर, छं० २८४)

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर केशव ने 'भृकुटी' को कमान तथा 'कुटिल कटाक्ष' को बाण बनाया है। बिहारी ने भी उनका अनुसरण करते हुए 'भौंह' को कमान तथा 'बंक-विलोकनि' को बाण ठहराया है। मिलाइये—

ब्रज की कुमारिका वै लीनें शुक शारिका,
....
....
देवता सी दौरि दौरि आई चोरा चोरी चाहि॥
बिन गुन, तेरी आन, भृकुटी कमान तानि,
कुटिल कटाक्ष बान, यह अचरज आहि।
एते मान डीठ, ईठ मेरे को अदीठ मन,
पीठ दै दै मारती पै चूकती न कोऊ ताहि।

(क० प्रि०, प्र० ६, छं० २८)

तिय, कित कमनैती पढ़ी, बिनु जिहि भौंह कमान।
चल चित्त-बेझैं चुकत नहिं बंक-बिलोकनि-बान॥

(बिहारी रत्नाकर, छं० ३५६)

इसके अतिरिक्त (निशाना) न चूकने का उल्लेख भी दोनों ही ने समान-रूप से किया है।

केशव की नायिका इतनी सुकुमार है कि उसे महावर तथा अंगिया भी, जो शृंगार की वस्तुएँ हैं, भार जान पड़ती हैं ; शोभा ही उसके लिए शृंगार है।

गति को भार महाउर, आंगि-अंग को भार।
केशव नखशिख सोभिजै, सोभाई सिंगार॥

(रा० चं०, प्र० ६, छं० ४४)

बिहारी ने इस भाव को अपने ही ढंग पर इस प्रकार प्रकट किया है—

भूषन-भार संभारि है क्यों इहि तनु सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परैं, सोभा ही कैं भार॥

(बिहारी रत्नाकर, छं० ३२२)

सतसई के मंगलाचरण वाले दोहे का पूर्वार्द्ध तक केशव के काव्य को देखकर ही बनाया गया जान पड़ता है। मिलाइए—

राधा केशव कुंवर की, बाधा हरहु प्रवीन॥

(क० प्रि०, प्र० १५, छं० ७)

मेरी भव-बाधा हरौ राधा नागरि सोय॥

(बिहारी रत्नाकर, छं० १)

केशव और मतिराम :

मतिराम पर केशव का प्रभाव बहुत ही थोड़ा है। केशव और मतिराम के छन्दों में कहीं-कहीं भाव-साम्य दृष्टिगोचर होता है जिससे प्रकट होता है कि मतिराम ने केशव के काव्य को भी पढ़ा था। उदाहरणार्थ दो छन्द यहाँ प्रस्तुत किए जाते हैं—

बाला के मृदु हास्य को लेकर दोनों ही कवियों ने खूब ही कल्पना की उड़ानें लगाई हैं। जिस प्रकार केशव के हृदय में 'भोरी गोरी की थोरी-थोरी हाँसी' को देखकर विविध प्रकार के सन्देह उठते हैं, उसी प्रकार मतिराम के मन में भी ऐसे ही अनेक सन्देह उठे हैं। यों तो मृदु हास्य के सम्बन्ध में जो-जो भी सन्देह केशव ने निम्नांकित छन्द में उठाए हैं सभी अनूठे हैं, किन्तु इस मृदु हास्य के सम्बन्ध में 'गिरा की गोराई' और 'मोहन की मोहनी' होने के सन्देह का उठाना कवि की प्रखर प्रतिभा का परिचायक है।

किधौं मुख-कमल में कमला की ज्योति होति,
किधौं चारु मुख चन्द्र चन्द्रिका चुराई है।
किधौं मृगलोचनि, मरीचिका मरीचि किधौं,
रूप की रुचिर रुचि सुचि सों दुराई है।
सौरभ की सोभा की, दसन घनदामिनी की,
केशव चतुर चित्त ही की चतुराई है।
एरी गोरी भोरी तेरी थोरी-थोरी हाँसी मेरी,
मोहन की मोहनी कि गिरा की गोराई है।

(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ४२)

मतिराम बाला के उसी मन्दहास्य को लेकर इस प्रकार लिखते हैं—

बानी को बसन कैधौं बात के बिलास डोलैं,
कैधौं मुखचन्द चारु-चन्द्रिका प्रकास है।

कवि 'मतिराम' कैधौं काम को सुजस कै?
    पराग-पुंज प्रफुलित सुमन सुवास है।
नाक नथुनी के गजमोतिन की आभा कैधौं?
    देहवंत प्रगटित हिए को हुलास है,
सीरे करिबे कौं पियनैन घनसार कैधौं?
    बाल के बदन बिलसत मृदु हास है॥
(ललितललाम, छं० ८६)

इसमें सन्देह नहीं कि मतिराम की अंतिम तीन पंक्तियाँ अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ी हैं, तो भी यह मानना ही पड़ेगा कि इस छन्द की रचना करते समय मतिराम के सामने केशव का उक्त छन्द विद्यमान था। यही कारण है कि उन्होंने केशव से अच्छी कल्पनाएँ ढूंढ निकालने का प्रयास भी किया है।

एक अन्य स्थल पर दोनों ही कवियों ने नायिका की सुकुमारता का बड़ा ही अच्छा वर्णन किया है। केशव की नायिका इतनी सुकुमार है कि जब बालों के भार से ही उसकी कमर लचक जाती है, तो स्थूल कुचों का बोझ वह किस प्रकार वहन कर सकेगी। देखिए—

दुरिहै क्यों भूखन बसन दुति यौवन की,
    देह ही की जोति होति द्यौस ऐसी राति है।
नाह को सुवास लागे ह्वै है कैसी 'केशव',
    सुभाव ही की बास भौंर-भीर फारे खाति है।
देखि तेरी सूरति की मूरति बिसूरति हैं,
    लालन के दृग देखिबे को ललचाति हैं;
चलिहै क्यों चन्द्रमुखी कुचन के भार भए,
    कचन के भार ही लचक लंक जाति है।
(र० प्रि०, प्र० १२, छं० १३)

दूसरी ओर मतिराम की नायिका भी कम सुकुमार नहीं है। नायिका की कमर पंखे की वायु से भी बल खा जाती है, अतएव उसका बाहर जाना असंभव है। मतिराम जी लिखते हैं—

चरन धरैं न भूमि बिहरैं तहांई जहां,
    फूले-फूले फूलन बिछायो परजंक है;
भार के डरनि सुकुमारि चारु अंगनि में,
    करत न अंगराग कुंकुम को पंक है।
कहै 'मतिराम' देखि वातायन बीच आयो,
    आतप मलीन होत बदन-मयंक है;
कैसे वह बाल लाल बाहर बिजन आवै,
    बिजन बयारि लागैं लचकति लंक है॥
(ललितललाम, छं० १२१ तथा रसराज, छं० ३०४)

'कमर के लचकने' के भाव को मतिराम ने कदाचित् केशव से ही लिया है।

केशव और देव :

देव ने आचार्य तथा कवि दोनों रूपों में ही केशव का प्रभाव ग्रहण किया है। रीतिविवेचन में उन्होंने जहाँ-तहाँ केशव को किस प्रकार अपना आधार बनाया है, इसका वर्णन पूर्वपृष्ठों में किया जा चुका है। आगामी पृष्ठों में उनके कवि-रूप पर पड़े केशव के प्रभाव का सिंहावलोकन किया जायेगा।

दोनों आचार्यों के छन्दों के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि छन्दों की रचना करते समय देव के सामने केशव के बहुत से छन्द निश्चय ही वर्तमान थे। स्व० लाला भगवानदीन ने देव के यहाँ से केशव का बहुत-सा 'माल बरामद' किया है। यह ठीक है कि कहीं-कहीं बेचारे देव झूठे शुबे में भी बुरी तरह पकड़े गए हैं, किन्तु फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि लाला जी की तहक़ीकात बहुत कुछ कामयाब हुई है[1]। देव ने निःसन्देह ही केशव से भाव, शब्द, उक्ति, रूपक, उपमा आदि का ग्रहण किया है।

भाव-ग्रहण :

केशव लिखते हैं—

अँखियानि मिली सखियानि मिलीं पतियान मिलीं बतियाँ तजि मोने।
ध्यान विधान मिली मन ही मन ज्यों मिलै एक मनो मिल सोने॥
केशव कैसहुँ बेगि मिलौ तन ह्वैहै वहै हरि जो कछु होने।
पूरण प्रेम समाधि मिलें मिलि जैहै तुम्हें मिलहो तब कोने॥
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ५१)

यहाँ दूती नायक से नायिका का विरह निवेदन करते हुए कहती है कि जब नायिका पूर्ण प्रेम-समाधि साधकर आप में लीन हो जायेगी अर्थात् मर जायेगी तब आप पहुँचेंगे तो किससे मिलेंगे ? अतः मृत्यु हो जाने के पूर्व ही उसके प्राणों को बचा लीजिए।

देव की दूती भी इसी प्रसंग में नायक से यही बात कहती है कि जब वह नायिका पंचत्व में मिल जायेगी अर्थात् मर जायेगी तब आप किस से मिलेंगे। अतएव आप समय पर ही जाकर उसकी रक्षा कर लें।—

बुझत हो पछिताने कहा फिरि पीछे ते पावक ही को पिलौगे।
काल की हाल में बूडति बाल बिलोकि हलाहल ही कोहि लौगे।
लीजिये जाय सुधा मधु खाय कि न्याय ही विष गोली गिलौगे।
पंचनि पंच मिले परपंच में वाहि मिले तुम काहि मिलौगे॥
(सुखसागरतरंग, पृ० २०९)

निश्चय ही देव ने इस छन्द की रचना केशव के उपर्युक्त छन्द को देखकर ही की है।

---

१. देव और उनकी कविता (उत्तरार्द्ध), पृ० २६४-२६५।

केशव ने मान के प्रसंग में लिखा है कि छबीली राधा मान किए बैठी है और कृष्ण के बार-बार अनुनय-विनय करने पर भी मान नहीं छोड़ती है। किन्तु उसी समय आकाश में मेघों की काली घटा के घुमड़ आने से वह सहसा दामिनी के समान लपक कर कृष्ण के वक्षःस्थल से जा चिमटती है।

छबि सों छबीली वृषभानु की कुंवरि आजु रही हुती रूपमद मानमद छकि कै।
मारहू ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि आये री मनावन सयान सब तकि कै।
हंसि हंसि सौहें करि करि पांय परि परि केशोराय की सों जब रहे जिय जकि कै।
ताहि समैं उठे घनघोर दामिनी सी धाइ उर लागी घनश्याम तन सों लपकि कै॥

(र० प्रि०, प्र० ६, छं० २८)

देव भी नायिका के मान-मोचन के लिए केशव की ही युक्ति से काम लेते हैं। देखिए—

रूठि रही दिन द्वैक तें भामिनि, मानी नहीं हरि हारे मनाइकै।
एक दिना कहूँ कारी अंधारी, घटा घिरि आई घनी घहराइ कै॥
और चहूँ पिक चातक मोर के, सोर सुनै सु उठी अकुलाइकै।
भेटी भटू उठि भामते कों, घन धोखे की धाम अंधेरे में धाइकै॥

(भावविलास, पृ० ८८)

केशव ने विरहिणी नायिका के उद्वेग का निरूपण करते हुए लिखा है—

फूल न दिखाउ सूल फूलत है हरि बिनु,
दूरि करि माला बाला व्याल सी लगति है।
चंबर चलाउ जिन बीजन हलाउ मति,
केशव सुगंध वायु बाइ सी लगति है।
चन्दन चढ़ाउ जिन ताप सी चढ़ति तन,
कुंकुम न लाउ अंग आग सी लगति है।
बार बार बरजति बावरी है वारों आन,
बीरी न खवाउ बीर विष सी लगति है।

(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ४)

यहाँ नायिका अपनी अंतरंग सखी से कहती है कि नायक के बिना उसे फूल, माला, सुगन्धित वायु, कुंकुम, चन्दन, (पान का) बीड़ा आदि कुछ भी नहीं सुहाता, अतः उन्हें दूर ही रखो। ठीक इसी प्रसंग में देव ने लगभग इसी प्रकार का ही भाव दिखलाया है—

देखे दुःख देत चेत चन्द्रिका अचेत करि,
चैन न चितौत चढ़ै चन्दन को टारि दै।
छीजन लगी है छवि बीजन करै न देव,
नीजन सुहात ये सखीजन निवारि दै।

सोंधे सजि सेज न करेजन में सूल उठें,
जारि दै निकट कुटी राउटी उजारि दै।
फूंके ज्यों फनी री फूल माला कों न नौरी करि,
ये बीरी बरीयैं जात ये बगारि दै।।

(सुखसागरतरंग, पृ० १६२)

केशव के कवित्त के भाव को लेकर ही इस कवित्त की रचना की गई जान पड़ती है। यह बात अवश्य माननी पड़ेगी कि देव के कवित्त पर केशव के उपर्युक्त कवित्त की छाया कुछ ही अंश तक पड़ी है।

केशव कृष्ण की 'स्मृति' दशा का उल्लेख करते हुए लिखते हैं—

....

झूले से डोलत बोलत हूँ उत जात कितै मन संभ्रम भूल्यो।
जानति हौं यह काहु को आजु मनोहर हार हिंडोरन भूल्यो।।

(र० प्रि०, प्र० ८, छं० २६)

यहाँ कोई सखी नायक से कहती है कि मैं आपको बुला रही हूँ और आप खोए-खोए से हो गए हो कि उधर चले जा रहे हो। जान पड़ता है कि आपका मन किसी के मनोहर हार के हिंडोरे में झूल रहा है। ठीक यही भाव देव ने भी निम्नांकित छन्द में दर्शाया है, प्रसंग अवश्य भिन्न है।

... ...

या विधि झूलत देखि गयो
तब ते कवि देव सनेह के जोरे।
झूलत है हियरा हरि को
हिय माँहि तिहारे हरा के हिंडोरे।।

(सुखसागरतरंग, पृ० ५५)

केशव नायिका को सखी से शिक्षा दिलवाते हैं कि 'नाह' से 'नेह' निबाहने में ही तुम्हारी भलाई है, उससे तुम्हें सदैव ही सुख प्राप्त होता रहेगा। 'नाहीं' (मुँह मोड़ने) से 'नेह' कैसे निभ सकेगा।

नाह लगें सौति दहे दुःख नाँहि लगै दुःख देह दहैगो।
नाँहि अबै सुख देत है केशव नाह सदा सुख देत रहैगो।
नाँहि ते नाँहि री नाँहि भलाई भलो सब नाहहि ते पै कहैगो।
नाह सों नेह निबाहि बलाइ त्यों नाहीं सों नेह कहा निबहैगो।।

(र० प्रि०, प्र० १३, छं० २)

एक अन्य स्थल पर भी केशव ने ऐसा ही लिखा है—

ये री लड़बावरी अहीर ऐसी बूझौं तोहि,
नाह सों सनेह कीजै, 'नाहीं' सों न कीजिये ॥
(र० प्रि०, प्र० ४, छं २२)

देव ने केशव के इस भाव को ठीक उसी प्रसंग में ज्यों का त्यों अपनाया है; अन्तर केवल इतना ही है कि केशव ने सखी द्वारा कहलाया है और देव ने दूती से।

... ...

जोरिये जो पै जुरै लरिकाई,
न तोरिये क्यों तरुणाई को नातो।
नेह निहोरै निहारौ नहीं गहि,
औगुण क्यों गुण कीजै गमातो।
देव जू देखो विचारि अहो तुम्हें,
नाहीं सो नातो कि 'नाह' सो नातो ॥
(सुखसागरतरंग, पृ० १५३)

केशव सहेली के घर में मिलने का उल्लेख करते हुए कहते हैं—

नैनन के तारिन में राखो प्यारे पूतरी कै,
मुरली ज्यों लाइ राखो दशन-बसन में।
राखो भुज बीच बनमाली बनमाल कर,
चन्दन ज्यों चतुर चढ़ाय राखो तन में।
केशोराइ कलकण्ठ राखो बलि कठुला कै,
करम करम कैहू आनी है भवन में।
चम्पक कली ज्यों सूंघि सूंघि कान्ह देवता-सी,
लेहु मेरे लाल इन्हैं मेलि राखो मन में ॥
(र० प्रि०, प्र० ५, छं० २८)

इस छन्द में नायिका की सहेली नायक से कहती है कि नवल-नवेली को ज्यों-त्यों करके यहाँ लाया गया है, अतः उसे अपने नेत्र की पुतली तथा कण्ठ का कठुला बना कर अपने हृदय में धारण कीजिये। देव ने भी ठीक ऐसा ही भाव प्रदर्शित किया है। यहाँ तक कि केशव द्वारा प्रयुक्त 'लेहु लाल' का सम्बोधन भी देव ने ग्रहण कर लिया है।

लेहु लला उठि लाई हौं बालहि लोक की लाजहि सो लरि राखो।
फेरि इन्हें सुपनेहुं न पैयतु लै अपने उर में धरि राखो ॥
देव लला अबला नवला यह, चन्द्रकला कठुला करि राखो।
आठहु सिद्धि नवो निधि लै घर बाहर भीतर हूं भरि राखो ॥
(रसविलास, छं० २३)

शब्दों एवं उक्तियों का ग्रहण :

देव के छन्दों में यत्र-तत्र केशव द्वारा प्रयुक्त शब्द तथा उक्तियाँ भी देखने में आती हैं। निम्नलिखित छन्दों में जिन शब्दों एवं उक्तियों को दोनों ने समान-रूप से ग्रहण किया है उन्हें इटैलिक्स में दिया गया है।

(क) को प्रति उत्तर देइ सखी दृग अंशुन की अवली उमहीं।
उर लाय लई अकुलाय तऊ अधि रातक लौं *हिलकी* न रही।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ४४)

अंक में आय मयंक मुखी लई,
लाल को बंक चितै दृग कोरन।
आंसुन बूड़ो उसास उड़ो किधौं,
मान गयो *हिलकी* के हिलोरन ॥
(सुखसागरतरंग, पृ० २८०)

(ख) *गोरस की सौं बबा की सौं* तोहि कि बार लगी कहि मेरी सौं कोही।
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३६)

ब्राह्मण को सौं *बबा की सौं* मोहन मोहि *बबा की सौं गोरस की सौं*।
(सुखसागरतरंग, पृ० ८६)

(ग) खाति खवावति ही जु बिरी सु रही *मुख की मुख हाथ की हाथहिं*।
(र० प्रि०, प्र० ६, छं० ५)

देव कछ्रु रद बीरी दयो री सु *हाथ की हाथ रही मुख की मुख*।
(भवानीविलास, छं० १६)

रूपक तथा उपमा का ग्रहण :

भावों, शब्दों तथा उक्तियों के अतिरिक्त देव ने केशव के रूपकों तथा उपमाओं का भी अपने ढंग से ग्रहण किया है।

केशव ने निम्नलिखित छन्द में 'नाच' का रूपक बाँधा है जिसमें उन्होंने 'नेत्र' को काछनी 'पुतरी' को पातुरी (नटी) और 'नेह' को नायक बनाया है।

काछे सितासित काछनी केशव पातुर ज्यों पुतरीन बिचारो।
कोटि कटाक्ष नचै गति भेद नचावत नायक नेह निहारो ॥
बाजत है मुदुहास मृदंग सो दीपति दीपनि को उजियारो।
देखत हौं हरि देखि तुम्हें यह होतु है आंखिन बीच अखारो ॥
(र० प्रि०, प्र० १४, छं० ६)

देव ने केवल मूल-रूपक को ही लिया है। उन्होंने 'भृकुटी' को नटी एवं 'प्रेम' को चुटकी बजाने वाला कल्पित किया है।

बाजी बलै रसना बसनाद सु नूपुर भाग की भूपर मारे।
चोज के तान मनोज के बान सों ओज के गान गरे अनुसारे॥
लाज लुटी छिन एक छुटी लट देव कटाच्छ-कुटीर के द्वारे।
प्रेम चुटी सुख योग जुटी, सु नटी भृकुटी त्रिकुटी के अखारे॥

(सुखसागरतरंग, पृ० १४८)

केशव ने एक स्थल पर रात्रि को लाल मुखवाली 'प्रेत की नारि' वर्णित किया है। देखिए—

प्रेत की नारि ज्यों तारे अनेक चढ़ाय चलै चितवै चहूँ घातो।
कोढ़िनि सी कुकरे करि-कंजनि केशव श्वेत सबै तन तातो॥
भेंटत ही बरही अबहीं तो बरयाइ गई ही सुखै सुख सातो।
कैसी करों कहि कैसे बचों बहुरी निशि आइ किये मुख रातो॥

(र० प्रि०, प्र० ११, छं० १३)

देव ने प्राची को लालमुखवाली पिशाचिनी कहा है। इस प्रकार देव ने अपने रूपक में केशव के उपमान का ही उपयोग किया है।

वा चकई को भयो चित चीतो
चितौति चहूँ दिसि धाइ सों नाची।
ह्वै गई छीन छपाकर की छवि,
यामिनि जोह्न मनो यम यांची।
बोलत बैरी विहंगम देव,
सु बैरिन के घर संपति सांची।
लोहू पियो जो वियोगिनि को सु,
कियो मुख लाल पिशाचिनि प्राची॥

(सुखसागरतरंग, छं० २११)

देव ने रूपक के समान केशव की उपमाओं का भी कहीं-कहीं ग्रहण किया है। केशव 'वासकसज्जा' नायिका का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रिय के आगमन को देखते-देखते निकुंजों के झुरमुट में छिपी हुई नायिका की दशा पिंजरे में पड़ी हुई चिड़िया के सदृश हो गई है।

नन्दलाल आगम बिलोकै कुंजलाज बाल,
लीन्हीं गति तेही काल पंजर पतंग की।

(र० प्रि०, प्र० ७, छं० ११)

देव ने इसी उपमा का उपयोग दो स्थलों पर किया है, एक तो रुक्मिणी की उत्कण्ठा के वर्णन में, यथा—

फेरि फेरि हेरि मगु बात हित बंछी पूछैं,
पंछी ह्वै मृगंछी जैसे पंछी पींजरा पर्यो ।
(सुखसागरतरंग, छं० ६०)

दूसरे मध्या नायिका के स्वप्न-दर्शन के प्रसंग में, जैसे :

सु फिरैं फरकैं पिंजरा की चिरी ज्यौं ।
(भवानीविलास, छं० ८६)

केशव और दास :

दास पर केशव का प्रभाव है अवश्य पर वह बहुत ही थोड़ा है। दास के कुछ छन्द ऐसे हैं जिन पर केशव के भावों एवं उक्तियों की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। यहाँ कुछ उदाहरण उपस्थित किये जाते हैं।

केशव नायिका की चिबुक का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

राहु कैसो रदन रह्यो है चुभि चन्द्रमाहि ।
तमी को सुहाग किधौं...... ।
(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ३६)

इसी प्रसंग में दास ने यही भाव दर्शाया है। देखिए—

चन्द में राहु को दन्त लग्यौ कै
गिरी मसि भाग सोहाग लिखारे ।
(शृं० नि०, छं० ४४)

इसी प्रकार ललाट का वर्णन करते हुए केशव लिखते हैं—

भामिनी को भाल किधौं भाग चारु चन्द को ।
(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ६६)

इसी प्रकार के भाव को दास ने इस प्रकार प्रदर्शित किया है—

भाग लसै हिमभानु को चारु
लिलार किधौं वृषभानु लली को ।
(शृं० नि०, छं० ५५)

कृष्ण जी को 'प्रलाप' दशा का वर्णन करते हुए केशव उनके मुख से 'सौं' शब्द का तीन बार प्रयोग कराते हैं।

गोरस की सौं बबा की सौं तोहि कि
बार लगी कहि मेरी सौं को ही ।
(र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३६)

दास ने भी उपपति अनुकूल नायक तथा नायिका के मान-प्रवर्जन के प्रसंग में 'सौं' शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। देखिए—

पंकज चरन की सौं जानु सुवरन की सौं
लंक तनु की सौं जाको अलख महति है।
त्रिवली तरंग कुच सम्भु जुग संग की सौं
हारावलि गंग की सौं जो उत वहति है।
श्रुति संनुधारी वा वदन द्विजराज की सौं,
एरी प्राणप्यारी कोप कोपे तू गहति है।
सांची हौं कहति तुव बेनी सौं कमलनैनी
तेरी सुधि सुधा मोहि ज्यावति रहति है।

(शृं० नि०, छं० २२४)

तथा :

तो बिन राग औ रंग वृथा
तुव अंग सनंग की फौजन की सौं।
मुसकान सुधारस भौजन की,
तुव आनन आनंद खानिन की सौं॥
दास के प्राण की पाहरू तू
यह तेरे करेरे उरोजन की सौं।
तो बिन जीवो न जीवो प्रिया
मुँहि तेरई नैन सरोजन की सौं॥

(शृं० नि०, छं० १५)

कहीं-कहीं दोनों ने समान उपमानों का भी प्रयोग किया है। 'चन्द्रिका' को नायिका के हास का और 'शृंगार-लता' को उसकी रोमावली का उपमान बतलाया गया है, यथा :

(१) दास मुखचन्द्र की सी चन्द्रिका।

(शृं० नि०, छं० ४७)

किधौं चारुमुख चन्द्रिका चुराई है।

(क० वि० (मूल) नखशिख, छं० ४२)

(२) किधौं काम बागवान बोई है सिंगार बेलि।

(वही, छं० २३)

यह रोमावली कै सिंगारलता।

(शृं० नि०, छं० ३८)

केशव और बेनी प्रवीन :

बेनी प्रवीन पर केशव का प्रभाव बहुत ही सीमित है। कारण, प्रवीन मतिराम की परम्परा के कवि हैं। दो-एक छन्दों में ही भाव-साम्य एवं उक्ति-साम्य परिलक्षित होता है। ऐसे कुछ उदाहरण नीचे उपस्थित किए जाते हैं।

केशव ने नायिका की उपमा दीपमालिका से दी है। विविध प्रकार के समुज्वल आभूषणों से सुसज्जित नायिका जगमगा रही है। नीले वस्त्रों से आच्छादित होने से साम्य और भी पूरा उतरता है। अमावस्या की तिमिराच्छन्न रात्रि में जिस प्रकार दीपमालिका जगमग करती है, उसी प्रकार नीले वस्त्रों में भूषणों से भूषित नायिका भी सुशोभित है।

बिछिया अनौट बाँके घूंघरु जराय जरी
जेहरी छबीली छुद्रघंटिका की जालिका।
मून्दरी उदार पौंची कंकन बलय चूरी
कंठ कंठमाल पहिरे गुपालिका ॥
वेंणीफूल शीशफूल कर्णफूल मांगफूल
खुटिला तिलक नकमोती सोहै बालिका।
केशवदास नीलवास ज्योति जगि मगि रही
देहधरे श्यामसंग मानो दीपमालिका ॥
(क० प्रि० (मूल), नखशिख, छं० ८८)

इसी प्रकार का भाव अपने ही ढंग पर बेनी प्रवीन ने भी प्रदर्शित किया है। नायिका सज-धज कर भवन में बैठी अपने प्रिय के आगमन की प्रतीक्षा कर रही है। आभूषण तथा अंग-दीप्ति का मिला हुआ प्रकाश झरोखों में से बाहर की ओर झलक रहा है। कवि को ऐसा लगता है मानों किसी मणिमहल में दीपमालिका समा गई हो।

सकल सिंगार साजि राजिकै प्रवीन बेनी,
आगमन जानि पिय प्रेम प्रतिपालिका।
दमकत रदन मदन की उमंग अंग,
केलि के सदन बैठी बदन विसालिका ॥
नग जगमगत जगत जोति जोवन की
सारी जरतारी अंग तैसी संग आलिका।
झलक मलक झलकति झाँई झांझरीन,
मानो मनिमहल समानी दीपमालिका ॥
(नवरसतरंग, छं० १५३)

बेनी प्रवीन ने केशव की उक्ति 'बबा की सौं' (र० प्रि०, प्र० ८, छं० ३६) का भी अपने ग्रन्थ में एक स्थान पर प्रयोग किया है। देखिए—

काल्हि हि गूंदि बबा कि सौं मैं;
गजमोतिन पहिरी अति आला।
आई कहाँ ते इहाँ पुखराग की,
संग गई जमुना तट बाला ॥
(नवरसतरंग, छं० १६)

दसवाँ अध्याय

केशव का स्थान

(अ) अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में :

पूर्वपृष्ठों में दिए गए तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह निर्णय करना सरल हो जाता है कि केशव के प्रतियोगी उपर्युक्त आचार्यों में केशव का क्या स्थान है। अलंकार-विवेचन के क्षेत्र में चिन्तामणि, मतिराम, देव और पद्माकर का स्थान केशव से नीचा है। केशव ने अपनी 'कविप्रिया' में जिस मौलिकता का परिचय दिया है वह 'कविकुलकल्पतरु', 'ललितललाम', 'भावविलास', 'शब्दरसायन' तथा 'पद्माभरण' में देखने में नहीं आती। चिन्तामणि ने शब्द और अर्थ दो प्रकार की गतियों के आधार पर शब्द और अर्थ दो प्रकार के अलंकार माने हैं। इन्होंने लगभग सभी शब्दालंकारों तथा प्रायः सभी मुख्य अर्थालंकारों का वर्णन किया है परन्तु भेदों-उपभेदों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत नहीं किया है। चित्रालंकार का भी बहुत ही संक्षेप में विवेचन किया गया है। प्रेय, ऊर्जस्वी आदि रसालंकारों का चिन्तामणि ने निरूपण नहीं किया है। उन्होंने केशव के 'अन्योक्ति' अलंकार को भी छोड़ दिया है। चिन्तामणि द्वारा दिए गए अलंकारों के लक्षण तथा उदाहरण दोनों ही स्पष्ट तथा बोलचाल की भाषा में अवश्य हैं, पर उनका आधार संस्कृत के काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण आदि अनेक ग्रन्थ ही हैं और उनमें कोई विशेष नवीनता दिखलाई नहीं पड़ती।

'ललितललाम' में मतिराम ने अलंकारों के लक्षण बड़े ही चलताऊ ढंग से दिए हैं। उदाहरण अवश्य सुन्दर हैं। इस ग्रन्थ में अलंकारों का कोई वर्गीकरण नहीं किया गया है और अधिकांश अर्थालंकारों का ही बर्गन है। शब्दालंकार में केवल 'चित्र' को ही लिया जा सकता है, किन्तु इसका भी लक्षण बड़ा ही संकुचित है। 'अन्योक्ति'-अलंकार तथा रसालंकारों को मतिराम ने भी छोड़ दिया है। आचार्यत्व की दृष्टि से 'ललितललाम' का कोई विशेष महत्त्व नहीं है। सभी बातें संस्कृत-ग्रन्थों पर ही आधारित हैं और ग्रन्थ में कोई प्रमुख विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

'रसरहस्य' में कुलपति मिश्र द्वारा निरूपित अलंकारों की संख्या यद्यपि मतिराम आदि आचार्यों की अपेक्षा काफ़ी कम है, किन्तु तो भी केशव की अपेक्षा अधिक ही है। कुलपति मिश्र ने अलंकारों का विभाजन शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। इन्होंने मुख्य शब्दालंकारों तथा लगभग सभी प्रधान अर्थालंकारों का वर्णन किया है, किन्तु वे भेदों-उपभेदों में नहीं गए हैं 'अन्योक्ति' तथा रसालंकारों का विवेचन कुलपति मिश्र ने भी नहीं किया है। 'चित्रालंकार' का भी बहुत ही कम विस्तार किया गया है। कुलपति के लक्षण यद्यपि अधिकांश 'काव्यप्रकाश' के आधार पर हैं, फिर

भी हिन्दी अलंकारशास्त्र में इस ग्रंथ का महत्त्व भुलाया नहीं जा सकता। मौलिकता की दृष्टि से इसमें कोई विशेष महत्त्व चाहे न दीख पड़े, पर यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि इन्होंने अलंकारों का विवेचन बड़ी पूर्णता के साथ किया है। इस प्रकार इन्हें केशव से बढ़कर नहीं तो समकक्ष निःसंकोच ही रखा जा सकता है।

देव ने 'भावविलास' ग्रन्थ में ३६ अलंकार मुख्य बतलाए हैं, जो प्रायः दण्डी के अनुसार ही हैं। दण्डी से केशव ने और केशव से देव ने उन्हें लिया है। 'शब्दरसायन' में उन्होंने अलंकारों का विभाजन शब्द और अर्थ के आधार पर किया है। अर्थालंकारों के दो वर्ग किए गए हैं—मुख्य तथा गौण। उन्होंने ४० मुख्य अलंकार और ३० गौण माने हैं। इनमें मुख्य अलंकार कौन से हैं और गौण कौन से हैं इसका भी स्पष्ट-रूप से कोई निर्देश नहीं किया गया है। 'भावविलास' में वर्णित रसालंकार तथा 'शब्दरसायन' में वर्णित 'अन्योक्ति' का आधार भी केशव ही है। 'शब्दरसायन' में एक प्रकार के छन्दों को एक ही छन्द में स्पष्ट कर दिया गया है, जिससे लक्षण के समझने में कठिनाई होती है। कहीं-कहीं केवल नाम से ही लक्षण का ग्रहण करने के लिए निर्देश किया गया है। केवल अलंकारों की संख्या में वृद्धि करने के लिए नए अलंकार भी बना लिए गए हैं, जैसे 'संशय' अलंकार। देव ने 'संशय' को 'सन्देह' से भिन्न माना है। वास्तव में 'संशय' तथा 'सन्देह' अलंकार एक ही हैं, केवल लक्षण के शब्दों में भिन्नता है। देव के अलंकारों का आधार संस्कृत के ग्रन्थ हैं और उनमें कोई विशेष नवीनता नहीं है। अनेक बातों के लिए देव केशव के ऋणी हैं।

पद्माकर ने अर्थालंकारों का ही प्रमुख-रूप से बर्णन किया है, यमक, अनुप्रास आदि शब्दालंकारों को छोड़ दिया है। चित्रालंकार का भी चलताऊ ढंग से ही बर्णन किया गया है। केशव द्वारा निर्दिष्ट 'अन्योक्ति' का भी 'पद्माभरण' में कोई उल्लेख नहीं है। इस ग्रन्थ के प्रधान आधार 'चन्द्रालोक' और बैरीसाल का 'भाषाभरण' हैं। वास्तव में, जैसा कि डा० भगीरथ मिश्र ने कहा है, यह अलंकारों पर साधारण ग्रन्थ है और इसमें न विवेचन की विशेषता है और न उदाहरणों की मनोहरता ही[1]।

केशव ने जो 'सामान्य' तथा 'विशिष्ट' वर्गों में अलंकारों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है, वह हिन्दी साहित्य के लिए नवीन है। इसके अतिरिक्त उन्होंने सुसिद्ध, प्रसिद्ध, बिपरीत तथा अन्योक्ति आदि कुछ नवीन अलंकारों की भी सृष्टि की है। हिन्दी साहित्य में 'अन्योक्ति' का तो केशव को जन्मदाता ही मानना चाहिए। इस अलंकार का केशवदास से पूर्व हिन्दी साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इतना ही नहीं उपमा, यमक, श्लेष, आक्षेप आदि अलंकारों का भेदोपभेदों के साथ जितना सांगोपांग विवेचन आचार्य केशवदास ने किया है उतना चिन्तामणि, देव, पद्माकर आदि आचार्यों ने नहीं किया है। चित्रालंकार का भी जितना विस्तृत विवेचन केशव ने किया है, उतना उपर्युक्त आचार्यों के ग्रन्थों में नहीं मिलता।

अलंकार-विवेचन की दृष्टि से आचार्य भिखारीदास का स्थान अवश्य केशव से ऊँचा है। अलंकारों का वर्गीकरण जहाँ तक नाम का सम्बन्ध है, वहाँ तक तो

१. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १६५।

केवल वर्ग के प्रथम अलंकार के नाम पर ही रख दिया गया है, परन्तु ध्यान से देखने पर यह वर्गीकरण तर्क-संगत आधार पर स्थित जान पड़ता है। प्रथम वर्ग उपमादि का उपमान-उपमेय के आधार पर सादृश्य को लेकर बनाया गया है। दूसरा वर्ग उत्प्रेक्षादि का आरोपित सादृश्य के आधार पर किया गया है जिसमें उपमान का महत्त्व बढ़ता जाता है। इसी प्रकार अन्योक्ति के आधार पर अन्योक्ति आदि, विरोध के आधार पर विरुद्ध अलंकार आदि[१]। इस प्रकार अनेक अलंकारों के एक सामान्य आधार पर वर्गीकरण करने का दास का यह प्रयास हिन्दी साहित्य के लिए नवीन है। शब्द और अर्थगत अलंकारों की संख्या में भी दास ने काफ़ी वृद्धि की है। इन्होंने चित्रालंकारों का भी पर्याप्त विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने रस, भाव, ध्वनि और व्यंग-सम्बन्धी तथा संसृष्टि-संकर अलंकारों का भी विवेचन किया है जो केशव ने छोड़ दिया है। दास द्वारा उल्लिखित रसालंकारों के नाम केशव ने भी बतलाए हैं किन्तु उनके लक्षण अस्पष्ट एवं अशुद्ध हैं और उन्हें रसालंकार सिद्ध नहीं करते। दास ने पुनरुक्तिप्रकाश, वीप्सा, सिंहावलोकन तथा तुक आदि नए शब्दालंकारों की भी सृष्टि की है, जिनका केशव ने कोई उल्लेख नहीं किया है। हिन्दी-साहित्य में 'तुक' का वैज्ञानिक विवेचन तो सब से पहले आचार्य दास जी ने ही किया है। इनका अर्थालंकारों का विवेचन भी केशव की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म एवं व्यापक है। केशव का उपमा, यमक, श्लेष तथा आक्षेप आदि अलंकारों का वर्णन अवश्य दास से अधिक विस्तृत है, किन्तु तो भी विभिन्न अंगों का सांगोपांग विवेचन केशव में न मिलकर दास में ही उपलब्ध होता है।

(आ) रस तथा नायिका-भेद-विवेचन के क्षेत्र में :

जहाँ तक विषय-क्षेत्र की व्यापकता एवं आचार्यत्व की मौलिकता का सम्बन्ध है आचार्य केशवदास का स्थान चिन्तामणि, मतिराम तथा पद्माकर से ऊँचा है पर देव तथा दास से निश्चय ही नीचा है। चिन्तामणि के लक्षण और उदाहरण दोनों ही केशव की अपेक्षा अधिक स्पष्ट हैं और उनके लक्षणों तथा उदाहरणों में पूर्ण समन्वय भी है। केशव द्वारा दिए गए लक्षण अस्पष्ट हैं, यथा शृङ्गार का लक्षण, अनुभाव, हाव का सामान्य लक्षण और कुट्टमित, विलास आदि हावों का लक्षण तथा करुण विप्रलम्भ का लक्षण आदि। एकाध लक्षण भ्रामक भी हैं, जैसे 'स्मृति' नामक दशा का लक्षण 'अभिलाषा' का लक्षण-सा लगता है। कहीं-कहीं लक्षणों तथा उदाहरणों में भी समन्वय नहीं है। केशव ने स्थायी भावों, सात्विक एवं संचारी भावों आदि का केवल उल्लेख भर ही किया है, लक्षणों का कोई उल्लेख नहीं किया, किन्तु चिन्तामणि ने इनके अलग-अलग लक्षण भी बताए हैं। अतः स्पष्ट ही रस के विविध अंगों के लक्षण से पूर्णतया परिचित होने के लिए चिन्तामणि के 'कविकुलकल्पतरु' का केशव की 'रसिकप्रिया' से अधिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त नायक-नायिकाओं के सूक्ष्म भेदोपभेदों, रसाभास, भावाभास, भावसन्धि, भावोदय, भावशबलता आदि, हावों, मान तथा वीर

२. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० १४१-१४२।

रस के उपभेदों का वर्णन भी चिन्तामणि ने केशव से अधिक किया है, किन्तु विषय-क्षेत्र की व्यापकता तथा आचार्यत्व की मौलिकता की दृष्टि से केशव चिन्तामणि से उच्च श्रेणी के ठहरते हैं। नायक-नायिकाओं की प्रेम-चेष्टाओं तथा उनके प्रथम-मिलन-स्थानों, अगम्या-वर्णन तथा जाति के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण, सखी-भेद, शृङ्गार रस के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भेद आदि का वर्णन केशव की मौलिकता का परिचायक है।

मतिराम तथा केशव दोनों आचार्यों के अधिकांश लक्षणों में कुछ भिन्नता अवश्य परिलक्षित होती है, तो भी प्राय: भाव समान ही हैं। मतिराम के लक्षण केशव से अधिक स्पष्ट हैं। उदाहरणों की सुन्दरता में मतिराम की समता केशव ही क्या अन्य कोई आचार्य भी कदाचित् ही कर सके। केशव द्वारा दिए गए लक्षण अस्पष्ट हैं, यथा शृङ्गार का लक्षण, अनुभाव, हाव का सामान्य लक्षण और कुट्टमित, विलास आदि हावों का लक्षण तथा करुण विप्रलम्भ का लक्षण आदि। केशव ने स्थायी भाव, सात्विक तथा व्यभिचारी भावों आदि का केवल उल्लेख ही किया है, उनके लक्षण छोड़ दिए हैं। मतिराम ने इनके अलग-अलग लक्षण भी लिखे हैं। इस प्रकार रस के विविध अंगों के लक्षण एवं नायक-नायिकाओं के भेदों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मतिराम के 'रसराज' का महत्त्व केशव की 'रसिकप्रिया' से अधिक है। परन्तु विषय-क्षेत्र की व्यापकता तथा आचार्यत्व की मौलिकता के विचार से केशव का स्थान मतिराम से ऊँचा है। नायक-नायिकाओं के सूक्ष्म भेदोपभेदों, नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन की चेष्टाओं, नायक-नायिकाओं के प्रथम-मिलन-स्थानों, अगम्या नायिकाओं, सखी-भेदों तथा शृंगार रस के 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' भेदों आदि के निरूपण में केशव की मौलिक उद्भावना परिलक्षित होती है। केशव द्वारा दिए गए दक्षिण नायक, परकीया नायिका, भाव, व्यभिचारी भाव, हेला हाव, प्रलाप दशा आदि के लक्षण भी उनकी मौलिकता के परिचायक हैं।

देव का स्थान केशव से ऊँचा है। केशव द्वारा दिए गए शृंगार रस, अनुभाव, हाव, करुण विप्रलम्भ, समस्तरसकोविदा नायिका आदि के लक्षण स्पष्ट नहीं हैं और कहीं-कहीं तो लक्षणों एवं उदाहरणों में भी समन्वय नहीं है, किन्तु देव के प्राय: सभी लक्षण स्पष्ट हैं और उदाहरण भी लक्षणों के मेल में ही प्रस्तुत किए गए हैं। विषय-क्षेत्र की व्यापकता और मनोवैज्ञानिक विवेचन तथा मौलिकता के विचार से भी देव केशव से ऊँचे दर्जे के ही ठहरते हैं। भेदोपभेदों के सूक्ष्म विवेचन में जितने देव गए हैं, उतने केशव नहीं गए हैं। हाँ, केशव की 'रसिकप्रिया' में अगम्या-नायिकाओं, नायक-नायिकाओं की प्रेम-प्रकाशन चेष्टाओं तथा उनके प्रथम-मिलन-स्थानों का वर्णन अवश्य देव से अधिक है किन्तु दूसरी ओर नायक के नर्मसचिव, स्वकीया के पररतिदु:खिता, प्रेमगर्विता, रूपगर्विता, मानवती और कुलगर्विता एवं ज्येष्ठा-कनिष्ठा नामक भेद; परकीया के गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता आदि छ: भेद; अवस्था के अनुसार नायिकाओं के प्रवत्स्यत्भर्तिका तथा आगमपतिका आदि भेद; प्रोषितपतिका नायिका के चार उपभेद; चिन्ता, स्मरण, उद्वेग आदि काम दशाओं के उपभेद; वीर, करुण एवं शान्त आदि रसों के उपभेदों का विवरण देव ने केशव की अपेक्षा अधिक दिया है। देव द्वारा

निर्दिष्ट नायिकाओं के अंशानुसार भेद; करुण तथा शान्त रस के भेद और करुणात्मक वियोग का निरूपण हिन्दी-साहित्य के लिए नवीन ही हैं।

आचार्यत्व की दृष्टि से दास का स्थान केशव से ऊँचा है। केशव द्वारा दिए गए शृङ्गार रस, अनुभाव, हाव आदि के लक्षण अस्पष्ट हैं। उदाहरण भी लक्षणों के पूरे मेल में नहीं हैं। दास के प्रायः सभी लक्षण स्पष्ट हैं एवं लक्षणों तथा उदाहरणों में पूर्ण सामंजस्य है। भेदोपभेदों का जितना सूक्ष्म विवेचन दास ने किया है, उतना केशव में नहीं मिलता। अगम्या एवं नायक-नायिकाओं की प्रेम-चेष्टाओं का वर्णन केशव ने दास से अधिक किया है, किन्तु दूसरी ओर 'स्वकीया' नायिका के पतिव्रता, उद्‌धारिज तथा माधुर्ज नामक तीन भेद; ज्येष्ठा-कनिष्ठा के छः उपभेद; 'परकीया' के प्रगल्भा तथा धीरा; अनूढ़ा (परकीया) के उद्‌बुद्धा (अनुरागिनी एवं प्रेमासक्ता) तथा उद्‌बोधिता और ऊढ़ा (परकीया) के असाध्या, दुःखसाध्या तथा साध्या और विदग्धा, लक्षिता, मुदिता तथा अनुशयना नामक चार अन्य भेद; दर्शन के दो भेद तथा दृष्टि-दर्शन के अन्तर्गत छाया तथा माया उपभेदों आदि का वर्णन दास ने केशव से अधिक किया है। नायिका-भेद के विवेचन में दास ने किसी भी आचार्य का अनुकरण न कर अपनी स्वतंत्र प्रणाली ही चलाई है जिसमें उनकी मौलिकता की छाप दृष्टिगोचर होती है। निश्चय ही हिन्दी साहित्य में दास का यह प्रयास अनूठा है। इस दृष्टि से तथा विषय-क्रम के वैज्ञानिक विवेचन के विचार से दास का स्थान केशव से महत्त्वपूर्ण है।

पद्माकर के सभी लक्षण स्पष्ट हैं किन्तु केशव के कुछ लक्षण अस्पष्ट हैं। जहाँ तक लक्षणों के व्यावहारिक ज्ञान का सम्बन्ध है, पद्माकर के 'जगद्विनोद' का केशव की 'रसिकप्रिया' से अधिक महत्त्व है। मौलिकता के विचार से केशव का स्थान पद्माकर से ऊँचा है। पद्माकर ने अपने 'जगद्विनोद' नामक ग्रन्थ में रस तथा नायिका-भेद आदि विषय पर रचित संस्कृत-साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों से अधिक कोई विशेषता नहीं दिखलाई है। दूसरी ओर शृंगार रस के 'प्रच्छन्न' एवं 'प्रकाश' भेद, भाव, व्यभिचारी भाव, हेला हाव, प्रलाप और उन्माद आदि कामदशाओं के लक्षण, जाति के अनुसार नायिकाओं का वर्गीकरण, परकीया का लक्षण, अगम्या-वर्णन, नायक-नायिकाओं की प्रेम-चेष्टाओं एवं उनके प्रथम-मिलन-स्थानों तथा सखी-भेद वर्णन आदि में केशव की मौलिकता परिलक्षित होती है।

(इ) शृङ्गारी कवियों में :

केशव के परवर्ती हिन्दी के शृङ्गारी मुक्तक कवियों की परम्परा में मुख्य-रूप से बिहारी, मतिराम, देव, दास तथा बेनीप्रवीन का नाम उल्लेखनीय है—इसी के अन्तर्गत रीति-मुक्त प्रेमी कवि भी आते हैं जिनमें घनानन्द मुख्य हैं किन्तु उनका काव्यस्तर केशव से निश्चय ही ऊँचा है।

केशव का प्रभाव बिहारी पर पर्याप्त पड़ा है, इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। जहाँ तक पाण्डित्य की गम्भीरता का प्रश्न है, केशव निश्चय ही बिहारी से बढ़े-चढ़े हैं किन्तु अनुभावों तथा हावों की सुन्दर योजना, कल्पना की समाहार-शक्ति, वाग्वैदग्ध्य एवं नाजुक-ख्याली में बिहारी केशव से बढ़कर हैं। भावव्यंजना तथा

भाषा की सरसता एवं सरलता की दृष्टि से केशव बिहारी से पीछे नहीं हैं। इसके अतिरिक्त बिहारी तो चमत्कार के आग्रह के कारण उक्ति की वक्रता के लिए अनेक स्थलों पर रस की भी उपेक्षा कर गए हैं, किन्तु केशव की 'रसिकप्रिया' में इस प्रकार के स्थल इने-गिने ही हैं। हाँ, प्रेम के उच्च धरातल पर दोनों का ही काव्य नहीं पहुँच सका है।

केशव का मतिराम पर बहुत ही सीमित प्रभाव है। जहाँ-कहीं भी भाव-साम्य देखने में आता है, वह आकस्मिक ही जान पड़ता है। दूसरे, भाव-साम्य रखने वाले स्थलों पर भी मतिराम के छन्दों में केशव की अपेक्षा अधिक भाव-सौन्दर्य पाया जाता है। मतिराम की भाषा शब्दाडम्बर से सर्वथा मुक्त है और उसमें हमें सानुप्रासिक मधुर शब्दावली एवं सरल कोमल व्यंजना के दर्शन होते हैं। यद्यपि केशव की 'रसिकप्रिया' की भाषा भी माधुर्य तथा प्रसाद-गुण-पूर्ण है और उसमें भावव्यंजना भी सुन्दर ही हुई है, फिर भी मतिराम की भाषा में जो नैसर्गिक स्वच्छता, मधुरता एव संगीतात्मकता पाई जाती है वह केशव में अपेक्षाकृत न्यून ही है।

केशव तथा देव दोनों ही कवियों के काव्य की आत्माएँ सर्वथा भिन्न होते हुए भी, केशव का प्रभाव देव के काव्य पर प्रभूत मात्रा में दिखलाई पड़ता है। स्व० शुक्ल आदि बहुत से विद्वानों ने 'रामचन्द्रिका' के कुछ आलंकारिक अनौचित्यों के कारण ही केशव को हृदयहीन कह डाला है, किन्तु उनकी 'रसिकप्रिया' के छन्दों के अवलोकन करने से यह धारणा भ्रान्त सिद्ध हो जाती है और यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि उनमें रसिकता पूरी-पूरी मात्रा में विद्यमान थी। फिर भी यह मानने में आपत्ति न होनी चाहिए कि देव में रसानुभूति एवं संगीतात्मकता केशव की अपेक्षा अधिक थी।

कवित्व की दृष्टि से दास का 'शृंगारनिर्णय' केशव की 'रसिकप्रिया' से किसी प्रकार भी कम नहीं है। दास का भावपक्ष और कलापक्ष दोनों ही केशव के समान पुष्ट हैं। वे न तो शब्दचमत्कार में फँसे हैं और न दूर की सूझ में ही उलझे हैं।

बेनी प्रवीन पर केशव का प्रभाव नगण्य ही है। जो एकाध छन्दों में भाव-सादृश्य दृष्टिगोचर होता भी है, वह आकस्मिक ही है। ये मतिराम की परम्परा के कवि हैं, अतः उनसे ही अधिक प्रभावित हुए हैं। भाव तथा भाषा के माधुर्य में ये केशव से टक्कर लेते हैं।

इस प्रकार समग्र रूप से विचार करते हुए केशव, देव, मतिराम, घनानन्द आदि इने-गिने कवियों को छोड़कर अन्य किसी भी परवर्ती शृंगारी कवि से निम्न श्रेणी के नहीं ठहरते। प्रायः सभी परवर्ती कवियों के सम्मुख केशव अनुकरणीय महाकवि के रूप में रहे हैं, इसमें सन्देह नहीं।

परिशिष्ट

गुरुमुखी लिपि में प्राप्य 'छन्दमाला' का देवनागरी लिप्यन्तर

एक ओंकार श्रीगणेशाय नमः। एक ओंकार सति गुरप्रसादि ॥ अथ केसवदासकृत छन्दमाला लिख्यते ॥

भुजंगप्रयात छन्द ॥ अनंगारि है पै लसै संग नारि। हिये रुण्डमाला कहै गंगधारि। भखै कालकूटै लसै सीस चन्दै। कहा एक ही ताहि त्रैलोक बन्दै ॥१॥ महादेव जाके न जानै प्रभावै। महादेव के देव को चित्त भावै। महानाग सोहै सदा देहमाला। महाभाववंती करौं छन्दमाला ॥२॥ दोहरा ॥ भाखा कवि समझै सभै सगरे छन्द सुभाइ। छन्दन की माला करी सोभन केसवराइ ॥३॥ एक बरन को पद प्रगट छबिस लौं मतवंत। तदपरि केसवराइ कहि दंडक छन्द अनन्त ॥४॥ स्री छन्द ॥ दोहरा ॥ दीरघ एक ही बरन को दीजै पद सुखकंद। मंगल सकल निधान जग नाम सुनहु स्री छन्द ॥५॥ स्री स्री स्री स्री ॥ नारायण छन्द ॥ लघ दीरघु को जह बरन द्वै अछर गन लेहु ॥ वह नारायण छन्द है सुखदायक स्री गेहु ॥६॥ रमा समा हरी करी ॥ रमण छन्द ॥ द्वै लघ दीजै आदहि एक अन्त गुर जान। रमनरमन के रमन को रमन छन्द मन मान ॥७॥ जग जो तजिये हरि तो भजिए ॥ तरन छन्द ॥ नगन आदि गुर अन्त है तरन छन्द यह मान। बरनबो बरन सो जगत को सरन जो ॥ मदन छन्द ॥ रगन आदि लहु अन्त है मदन छन्द यह जान ॥८॥ रामचन्द। लोकवंद। चित्तचाहि। दुख्खदाहि ॥ माया छन्द ॥ रगन अन्त द्वै आदि लघु माया छन्द बखान ॥ केसवदास प्रकास सो पंचबरन परिमान ॥९॥ सुखकंद है। रघनंदजू। जगलोक है। जगबंदजू ॥ अमलमालती छन्द ॥ आदि नगन पुन जगन रचि बरन खड़ाछर बान। अमलमालती छन्द यह कबिनु को सुखदान ॥१०॥ बरन तजै न। लगत कुबैन। अरथ बिकास। बिरथ सुभास ॥ सोमराजी छन्द ॥ यगन दोय खट बरनयुत सोमराजी गुन छन्द। सबै दोख छाडो। हिये प्रीति माडो। सदा राम रामै। रमो छाड कामै ॥ संकर छन्द ॥ रगन जगन खट बरनमय सो संकर जगबंद ॥११॥ बात तात मान। चित्त माह आन। एक राम सत्त। दूसरो असत्त ॥ बिज्जहा छन्द ॥ रगन दोय खट बरनयुत सो बिज्जहा परिमान। संभुकोदंड है। राजपुत्री कितै। टूक द्वै तीन कै। जाउं लंका जितै ॥ मंथान छन्द ॥ तगन युगल खट बरन कर मानो मन मंथान ॥१२॥ स्रीराम सोहै जु। सीता सती सै जु भाई जती है जु। तीने चले है जु ॥ सुखद छन्द ॥ आदि अंत के दंड गुर दोय है मध दोय लघु मान। कह केसव खट बरन को सुखद छन्द बख्यान ॥१३॥ माया सह रूठो। जानो जग झूठो। एकै हरि साचो। बैरीगन पाचो ॥ कुमारललित छन्द ॥ आदि जगन दे सगन पुन अंत एक गुर लेख ॥१४॥ सबै जगत

गावै। बिरंच समुझावै। तऊ न समुझै रे। हिए न हरि हेरे॥ प्रमाणिका छन्द॥ आदि एक गुर सोभिये जगन रगन तिह पाहि। कीनी प्रगट प्रमाणिका सपत बरन कबिताहि॥१५॥ छाड देह रे हठै। संग छाड दै सठै। चित्त हाथ कीजिये। मुक्त छीन लीजिये॥ मल्लका छन्द॥ रगन जगन रचि आदि गुर एक अंत लघु लेख॥ सुनो मल्लका छन्द यह आठ बरन पद देख॥१६॥ देस देस के नरेस। सोभिये सभा सुबेस। जानिये न आदि अन्त। कौन दास कौन कन्त॥ नगस्वरूपणी छन्द॥ आठ बरन को चरन जिह क्रमही लघु गुर होय॥ कहिए नगस्वरुपनी छन्द सगल कबिलोय॥१७॥ सुमित्र ते न भागिये। अमित्र ते न रागिये। बिचार देखियो हिये। भली परै कहा किये॥ मदन मोहन छन्द॥ तगन आदि दै जगन पुन गुर लघु दीजतु अंत। मदनमोहनी छन्द यह अश्ट बरन सुठ कन्त॥१८॥ जाको सब जान ठग। ताको तकहो सु भग्ग। जारे किनि जीवु दुख्ख। सोचै यह पाइ दुख्ख॥ बोधक छन्द॥ आदी अंत गुर दै द्वै मध्य रचो लहु चार। अश्ट बरन को सब कहत बोधक छन्द बिचार॥१९॥ झूठे हय गय तेरे। लछ्छमी हय गय चेरे। सीतापति अति साचे। तासो कबहु न राचे॥ तुरंगम छन्द॥ नगन दोय गुर अंत द्वै रचौ तुरंगम छन्द। अश्टबरन का एक पद केसव आनंदकंद॥२०॥ बहुत बचन जाके। बिबध बचन ताके। बहुभुजयुत जोई। सबल कहत सोई॥ नागस्वरूपनी छन्द॥ आदि अन्त रचि जगन सुभ मध्य रगन रचि मित्त। प्रगटहो नागसरुपनी नव अछर धर चित्त॥२१॥ भलै बुरै जपो सु ईस। बिराजमान चन्द सीस। सिवा बिलास सोभमान। सु सिद्ध निध्य देत दान॥ तोमर छन्द॥ सगन आदि पुन द्वै जगन रचि बहु सुखकंद। चरन चार नव बरन को प्रगटहु तोमर छन्द॥२२॥ रघवंस को अवतंस सुन दान-मानस-हंस। मन माह जो अति नेहु। इक बात मागत देहु॥ हरनी छन्द॥ मगन तीन रचि आदि पुन अंत देहु गुर एक। हरनी छन्द बखानिये दसधा बरन बिबेक॥२३॥ स्रीरघुनाथ चलै बन को। लै संग सीतहु लछ्छन को। सिध्य चले हरि हेर हिये। सिध्यहि सिख्खहि संग लिये॥ अम्रितगत छन्द॥ नगन रचो दुह जगन मध्य देहु एक गुर अंत। कह अम्रितगत छन्द इह दस अछर गुनवंत॥२४॥ सुमति महारिखि सुनिजै। स्रवन कथा सुनि गुनिजै। कुमति सदा मति तजिये। तन मन केसव भजिये॥ तोमर छन्द॥ नगन आदि पुन सगन द्वै अंत एक लघु मान। दस अछर को चरन कह तोमर छन्द बखान॥२५॥ सभरत लछ्छमन राम। बहुबिध किये परनाम। [भ्रिग रिखि जु आसिख दीन। नर अजय हो परवीन॥संजुता छन्द॥ सगन एक रच जगन द्वै अन्त एक गुर आन। दसधा बरन बखानियै संजुत सो परमान॥२६॥ बन नेह गेह सरीर सौ। भज साधु संगम धीर सौ। जग के प्रपंचह लेखिये। तब आप तो सभ देखिये॥ अनकूला छन्द॥ मगन तगन पुन नगन दै द्वै गुर अन्तह देख। अनकूला यह छन्द है ग्यारहि अछर लेख॥ २७॥ स्रीहरि जू को त्रिभवन मोहै। देखो सोभा तन मनहु सोहै॥ जाबिन देखे तन मन बाधा॥ सो यह पा लागत सुन राधा॥ सुपरनप्रयात छन्द॥ तगन तीन गुर अन्त द्वै कर कविता अविदात॥ ग्यारह अछर स्वछ पद दे सुपरनप्रयात॥२८॥ एकै यह सब्द संसार भाख्यो। हे लोक को मंड ब्रह्मांड नाख्यो। मार्यौ दसग्रीव संगराम बीत्यो। स्रीराम स्रीराम स्रीराम जीत्यो॥ इन्द्रबज्रा छन्द॥ आदि तगन द्वै जगन पुन

अन्त देहु गुर दोय । ग्यारह् अछर को सुमति इन्द्रवज्र कह् लोय ॥२६॥ राधा सुनो बात बडी बखानो । साधारनो आप कहा बखानो । बाधह् छाडो बडभाग जाग्यो ॥ आधार जी को हरिपाय लाग्यो ॥ उपेन्द्रवज्रा छन्द ॥ जगन तगन पुन जगन कर द्वै गुर अंत प्रकास । उपेन्द्रवज्रा छन्द कर ग्यारह् अछर तास ॥ ३० ॥ अनंत देवादि न अन्त पायो ॥ अनेकधा वेदन गीत गायो । निजेछिया भूतल देहधारी । अध्रम-संहारक ध्रमचारी ॥ मोदकदाम छन्द ॥ तीन भगन द्वै आदि लघु अन्तहु गुर लघु देख । छन्द स मोदकदाम भन द्वै दस बरन बसेख ॥ ३१ ॥ गये जब राम जहा मुन मात । कही यह बात सुनो बन जात । कछू जिन जी दुख पावह् माई ॥ सुदेह् असीस मिलै फिर आई ॥ तोटक छन्द ॥ रच पद बारह् बरन को केसवराइ सुजान । चार सगन को चारमति तोटक छन्द प्रमान ॥ ३२ ॥ रघुनाथ अनाथहि राखत है । सब बेद यहै मत भाखत है । कहि कौन वहै तजि आन ररैं । जिनको चरनोदक ईस धरैं ॥ सुन्दरी छन्द ॥ चार भगन को सुन्दरी छन्द छबीलो होय । रच पद बारह बरन को बरनत कबिकुललोय ॥ ३३ ॥ राज तजैं धन धाम तजै सब । नार तजैं सुत सोच तजैं अब । आपुन औ जग भूठहि निदह् । संतह् एक भजो हरिचन्दह् ॥ मोदक छन्द ॥ बारह् बरन बखान जैं प्रतिपद आनंदकंद । चारि सगन को कीजिये केसव मोदक छन्द ॥३४॥ सभही जग मैं मद को दुख है । अर आनंद को स महा सुख है । यह तो मत बेद पुरान ररैं । कहजैं सु कछू जु बिचार परैं ॥भुजंगप्रयात छंद ॥ बरनत बारह् बरनमय केसव कवि अवदात ॥ चार यगन को जानजै छन्द भुजंगप्रयात ॥३५॥ धरैं एक बेनी मिलैं मैलसारी । मृणाली मनो पंकसोधाधिकारी । सदा राम रामैं ररैं दीनबानी । चहु ओर है राकसी खेददानी ॥ तामरस छंद ॥ आदि चारि लघु मघ द्वै भगन अन्त गुर दोय ॥ केसव बारह् बरन को छन्द तामरस होय ॥३६॥ तन मन में अति लोभ बसाई । गुन बिन ज्योबन रे दुखदाई । तपफल केहु न पाकन पावैं । पदवन बालिहि दुक्ख दिखावैं ॥ त्वरतबिलंबित छंद ॥ नगन आदि पुन मगन द्वै रगनहि अन्त बिचार । त्वरतविलंबित छन्द यह् कह् केसव मति चार ॥३७॥ बिपनमारग राम बिचारही । सुखद सुन्दर सोदर साजही । बिबध सिध्ध फल द्रुमनो फलैं । सगल साधन ततपर लै चलै ॥ कुसमविचित्रा छंद ॥ चार कला गुर दोय पुन चार कला गुर दोय । रच पद बारह् बरन को कुसुमविचित्रा होय ॥३८॥ तब कपिराजा रघुपति देखे । मन नर नारायण सम लेखे । दिजबपधारी हनुमति आए । बहुबिध आसीख दि मन भाए ॥ चन्द्रबरतमा छंद ॥ रगन नगन पुन भगन कह् अन्त सगन को आन । चन्द्रबरतमा छन्द है बारह् बरन बखान ॥३९॥ स्नान दान जप जाप जु करियो । सोध सोध मन जो उर धरियो । जाग जोग हम जौ लग गहियो । रामचन्द सभ को फल लहियो ॥ मालती छन्द ॥ चौकल रच पुन भगन द्वै लघु गुर अन्त बनाउ । होय मालती छन्द यह् बारह् बरन प्रभाउ ॥४०॥ बिपन बिलोक बिलोकत दरी । बिबर बिभोर बिकास न करी । बन निरखे न रहै सुध खरी । तुमह् न हू दरसो इत हरी ॥ बंसस्वनित छन्द ॥ जगन तगन पुन जगन कर अन्त रगन रच मित्र । बंसस्वनित छन्द यह् बारह् बरन बिचित्र ॥४१॥ अनेकधा पूजन अत्रजू किये । कृपाल हो स्रीरघनाथजू हिये । सुबुध्ध सीता सुखदा गई तहा । पतिव्रता देवी महिरख्ख की जहा ॥ प्रमिताछरा

छन्द ।। आदि सगन पुन जगन रचि सगन दोय है अन्त । छन्द होय प्रमताछरा वरन जु द्वादस सन्त ।।४२।। हरवाइ जाइ सिय पाइ परी । रिखनारि सूंघ सिर अंक भरी । बहु अंगराग सभ अंग रये । अर भात भात उपदेस दये ।। स्रिग्वनी छन्द ।। रगन चार को स्रिग्वनी छन्द छबीलो होय । केसवदास प्रकास सब वरनत कविजन लोय ।।४३।। राम आगे चले मध्य सीता चली । बंध पीछे भये सोभ सोभा भली । देख देही सबै कोटधा कै भनो । जीव जीवेस के मध्य माया मनो ।। पंकजवाटका छन्द ।। आदि एक गुर नगन द्वै अन्त भगन द्वै देख ।। छन्द सु पंकजबाटका तेरह अछर लेख ।।४४।। राम चलत नृप के जुग लोचन । बारज मिटबहु बारजमोचन । पायन पर रिख के भज मोनह ।। केसव उठ गय भीतर भौनह ।। तारक छन्द ।। चार सगन पुन एक गुरु तारक छन्द बनाउ । सोभन तेरह बरन को केसव ताहि सुनाउ ।।४५।। यह कीरत और नरेसन सोहै । सुन देव अदेवन के मन मोहै । हमको बपुरा सुनजै रिखराई । सभ गाब छसातक की ठकुराई ।। कलहंस छन्द ।। आदि सगन पुन जगन तह सगन दोय गुरु एक । छन्द भलो कलहंस यह तेरह बरन बिबेक ।।४६।। तज राज आज घर ते बन जैयै । कह कौन भात परमानन्द पैयै । नृपनाथ आदि अपना मन कीजै । भज आपरूप अपने पद लीजै ।। हरिलीला छन्द ।। रगन रगन रचि नगन पुन जगन अन्त लघु जान ।। चौदह अछर आदि गुर हरि लीला उर आन ।।४७।। हा राम हा राम हा जगतनाथ धीर । लंकाधिनाथेस जानी तुम जो सुबीर । ए देख कोऊ छुड़ाईयत मोह बीर । आतंडबंसेस की सब ज तोह भीर ।। बसन्ततिलका छन्द ।। तगन भगन जगनौ जगन द्वै गुरु अन्त निहार । बसन्त-तिलका यह जानिये चौदह बरन बिचार ।।४८।। स्रीराम लछम्न अगस्त सनार देखे । स्वाहासमेत निज पावकरूप लेखे । अस्टांग छिप्र अभिवादन जाय कीनो । सौख्येन आसिख असेख रिखीस दीनो ।। मनोरमा छन्द ।। चार सगन द्वै अन्त लघु चौदह बरन प्रमान । मनोरमा यह छन्द है केसवदास सुजान ।।४९।। उर में अति कोप सदा ग्रुन घायक । बड़वानल सागर जो सुखदायक । अब ताकहि तू फिरकै किन दाहहि । कबहू अवतारन को चित चाहहि ।। मालती छन्द ।। आदि छै लघु पुन तीन गुर अन्त यगन द्वै मित्त । हिय मालती छन्द यह पन्द्रह बरन निमित्त ।।५०।। अति तन धन रेखा नेकि नाधी न जाकी ।। खल खग सरधारा को सहै तीछ ताकी । विकट घन जु घूरे भछ्य को बासु जीवै ।। सिवसिव सति सी को दुस्ट कैसे सु छीवै ।।सुप्रिय छन्द।। चौदह लघु गुरु एक अरु सुप्रिय छन्द प्रकास ।। अछर प्रतिपद पंचदस आनहु केसवदास ।।५१।। वन महि बिबिध विकट दुख सुनिजै । गिर गहबर मग अति मति ग्रुनिजै । कहु अहि हरि कहु निसचर रहही । कह दव दहन दुसह दुख सहही ।। निसपालका छन्द ।। भगन जगन रच सगन पुन नगन रगन दै अंत । छन्द कहो निसपालका पन्द्रह बरन कहंत ।।५२।। राजतनया तबह बोल सुनि यो कहो । जाहु चल देवर न जाइ हम पै रहो । हेमम्रिग होय नहि राछस सुजानिये । दीन सुर राम किह भात मुख मानिये ।। चामर छन्द ।। प्रतिपद गुरु लहु देहु क्रम पंद्रह बरन नाऊ । चामर छन्द कबित कह केसव गाइ सुनाऊ ।।५३।। देख देख कै असोक राजपुत्रका कही । मोह आग देह अंग आग ह्वै रही । ठौर पाई पौनपूत मुंदरी दई । आसपास

देखकै उठाइ हाथ मैं लई ।। नाराच छन्द ।। केसव चामर छन्द के एक आदि लघु देहु। प्रतिपद खोडस बरनमय करे नाराच कबि लेहु ।।५४।। अखर्व गर्व पर्वताग्र दुस्ट पुस्ट है चढ़ें । अभूत कोप अंग लोह मोह बात ते बढ़ें । असंत काम बाम संग तूल फूल का नचें । अकालमेघ दानदृस्टवृस्ट होय तो बचें ।। मनहरन छन्द ।। अन्त एक गुरु दै करो खोडस अछर बरन । पंच भगन को होत है छन्द भलो मनहरन ।।५५।। साधु कथा कह्यो जब केसवदास जहा । निग्रह केवल है मन को दिनमान तहा । पावन बास सदा रिखि को सुख सो बरखै । को बरनै कबि ताहि बिलोकत ही हरखै ।।ब्रह्मरूपक छन्द।। गुरु लहु क्रम हीं देहु पद खोडस बरन निहार ।। छन्द ब्रह्मरूपक करो केसव बरन बिचार ।।५६।। अन्न देह सीख देइ राख लेइ प्रान जात ।। राजचाप मोल लै करै जु दीह पोखगात । दास होइ पुत्र होइ सिख्य होइ कोइ माइ । सासना न मानई सुकोटि जन्म नर्क जाई ।। रूपमाला छन्द ।। आदि देहु र स जगन द्वै भगन गुरु लघु अंत । प्रगट रूपमाला करो सज्जन लोक कहंत ।।५७।। रामचन्दचरित्र को जु सुनै सदा सुख पाइ । ताहि पुत्र कलत्र संतत देत है रघुराइ । स्नान दान असेस तीरथ जान को फल होइ । नारि का नर विप्र छत्रिय वैस्य सूद्र जु कोइ ।।प्रिथवी छन्द ।। जगन सगन जगन सगन यगन लहू गुरु अंत । बरन सप्तदस आदि लहु प्रिथवी छन्द कहंत ।।५८।। अगस्त रिखिराजजू बचन एक मेरो सुनो । प्रसस्त सभ भाति भूतल सुदेस जी मैं गुनो । सुनीरु तरुखण्ड सो अति सम्रिध सोभा धरै । जहा हम निवास को बिमल प्रणसाला करै ।। चंचरी छन्द ।। सगन जगन द्वै भगन पुन रगन आदि अर अंत । अस्टादस अछरान को चंचरी छन्द कहंत ।।५९।। भूलिये नहि ग्राम धामहि बास कुंजर देख कै। पुत्र मित्र कलत्र सज्जन बंधु लोक बिसेख कै । पाइ गुन जाति जोबन और सुन्दरता घनी । रामसक्तिबिहीन हीनहि देह होत न आपनी ।।करुना छन्द।। खस्ट भगन रचि अंत गुरु उन्निस अछर जान । प्रतिपद केसवराइ यह करुना छन्द बखान ।।६०।। देव अदेव जिते नरदेव बड़े गुन मानत है । सेवत है दिनही तिन सो कछु पावत जानत है । स्री रघुनाथ बिना परमानंद जी जनि जानहि रे ।। बारक तू तिन केसव काहि गानहु मानहि रे ।। मूलमनि छन्द ।। सगन जगन पुन जगन भनि भगन रगन करि लेख । सगन अंत लघु मूल भनि उन्निस अछर देख ।।६१।। कर यग पूरन जानकी पति दान देत असेख । बहु हीर चीर सनीर मानक बरख बारद वेख । सुभ अंगराग तडाग बागनि बाज रथ बहु भांत । अति भौन भूखन भूमि भोजन भूर बासर राति ।। गीतका छन्द ।। आदि चंचरी छन्द के लघु द्वै देहु सुजान । होइ गीतका छन्द यह अछर बीस प्रमान ।।६२।। मुख एक है नत लोल लोचन लोक लोकन के हरै । जन जानकी संग सोभये सुभ लाय देहन को धरै । तिह एक मोतन के बिभूखन एक फूलन के किये । जन देवतागन छीरसागर छीर की छिटकी लिये ।। धरम छन्द ।। चौकल प्रति गुरु रचहु पुन आदि देहु गुर और । एकीस अछर को धरो धरम छन्द सिरमौर ।।६३।। कीरति अति पावनि मति स्रीपति रत तू न गहत रे । आवत मग जात जगत दारुन दुख जान सहत रे । काम भरहि दूर भीर धरहे हो सु कहतु रे । भेद भरम कोह करम भूरि जनम को न दहत रे ।। मदरा छन्द ।। सात भगन कर अंत गुर बाइस अछर छन्द । केसव मदिरा छन्द यहु कुसमस्वछ मकरंद ।।६४।।

बाग तडाग तरंगनि तीर तमाल कि छाहि बिलोक भली। तौ घटका इक बैठत है सुख पाइ बिछाइ सु कास थली। श्रौ मग को स्रम दूर करै सिय को सुभ वाकल अंचल कै। है स्रम ते हिय ते तिनको कह केसवदास दगंचल कै ।। विजै छन्द ।। सात भगन कर दोय गुरु तिनके दीजहु अंत। तेइस अछर को करौ विजै छन्द बुधिवंत ।।६५।। आसन डासन बास सुबास बिलास रंगे अनुराग जिये हूँ। बारन बाजि गुनी गुन धाम न बाम रहै मन हाथ लिए हूँ। भाँतनि भाँतनि भाजन भोजन भूखन भूर भये न किए जू। रे चित चेत कहा पर खेलहि जानकिनाथह आन हिये जू ।। सुधा छन्द ।। मदरा सिर लघु एक दै सुधा छन्द मन आन। अंत एक लघु देतही वसुधा छन्द बखान ।।६६।। हरौ हरिबाइ मनोहर को मन मागत है कर आइ घनी। झुकाउ न केसव को कहि देइ दुराउ न अंगन मैं सजनी। उघारहि घूंघट अंचल डार उतारकै कंचक तोर तनी। न पाइह तो फिर जाइ भट्ट अरु पाइह तौ सब बात बनी ।। बसुधा छन्द ।। जा दिन के ब्रिजनाथ चले तब ते जग जानत झूठ कि गेह। झूठहि केतक धरम सबै अर झूठ यह बरभावत देह। केसव पापहि क्यों सुरह मिलबे बिन जानिय साच सनेहु। बातन के मिस या ब्रज मैं तुम आइहु उधव लैन सुलेहु ।। माधवी छन्द ।। बसधा के सिर एक लघु होइ माधवी छन्द। केसव चौबिस बरन को प्रतिपद आनंदकंद ।।६७।। सपूरन प्रेम सुभावन कौन सुनै समझै न खडानन सेस। प्रबोध वियोग विसेस असेसनि केसव लै बिसरो उपदेस। धरै सभ दास कि काम तथापि बिलोक बिदेहन को गुरवेस। सुभावह उधव गोपिन पास जु आइ सिखावन सीख चलेस ।। चन्द्रकला छन्द ।। आठ सगन को चरन रच चार चरन चौबीस ।। चन्द्रकला केसव करी धरी भाल भव सीस ।।६८।। भवसागर को जन सेत उजागर सुन्दरता सगरी बस की। तिहु देवन की दुत सुन्दर सो गति सोध त्रिदोखन के रस की। कहि केसव देवत्रयी मति सी परतापत्रयी तल को मसकी। सब बेद त्रिकाल त्रिलोक त्रिवेनहि केसव विक्रम के जस की ।। अमलकमल छन्द ।। आठ भगन को चरन रचु अछर सभ चौबीस। अमलकमल यह छन्द है अछर केसव ईस ।।६९।। मारत है सुकुमार मनोहर मानिनि कामिनि मानस फंदन। सोभन सूध सुधानिधि सीतल सूर सदा सब दूर निकंदन। हे सुन दास कलानिधि कोमल केलकला कुह की जगबंदन। ए सक का हिअ साध करे रजनीकर के सजनी नंदनंदन ।। मकरंद छन्द ।। सात भगन कर छन्द रच अंत रगन सुखकंद। चौबिस अछर के सुनो छन्द भलो मकरंद ।।७०।। अंक लिये म्रिगनैनसु को ससि सी उपमा सु तहा अबरेखिये। पंकज में कमला बिलसै सुखलीन तहा जलकेल बिसेखिये। आनंदपूर रसै बरसै सखि एछन के समि और न लेखिये। भास कटाछ अनूप करै सखि तो सम रूपक तोहि म देखिये ।। गंगोदक छन्द ।। आठ रगन छंदह रचो जानहु चौबिस बरन। गंगोदक यह छन्द है केसव पातकहरन ।।७१।। राम राजान के राज आए इहा धाम तेरे महाभाग जागे अबै। देवि मन्दोदरी कुंभकरनाद दै मित्र मंत्री जिते पूछ देखो सभै। राखजै जात को भांत को कांत को बंस को साबजै लोक पर्लोक को। आन कै पा परो देसु लै कोस लै आपही ईस सीताहि लै ओक को ।। तन्वी छन्द ।। भगन तगन नगनौ भलं सगन भगन फिर जान। नगन यगन चौबिस बरन तन्वी छन्द बखान ।।७२।। बोलत कैसे

भ्रिगपति सुनजैं सो कहिजैं तन मन बन आवैं । आदि बड़े हो बडपनि रखिये जा हित को जग जन सुख पावैं । चंदन ही में अति तन धरखैं आगि उठे यह सब गुन लीजैं । हैहय मारे सु निपति सहरे जो जस लै किन जुग जीजैं ।। बिजया छन्द ।। देह माधवी के बरन अन्त एक लघु आन । केसव पचिस बरन को बिजया छन्द बखान ।।७३।। चढ़ी प्रतिमंदर सोभ बढ़ी तरनी अवलोकन को रघुनंदन । मनो ग्रह दीपत देह धरे सु किधो ग्रह देख कि सोहत है मन । किधो कुलदेव दिपैं कहि केसव कै पुरदेवन को दरस्यो तन । जेही सुतही इह भांत लसैं दिवदेवन को मद घालत है जन ।। मदन-मनोहर छन्द ।। आठ सगन को एक पद अंत एक गुर देख । मदनमनोहर छन्द यह पच्चिस अछर लेख ।।७४।। अखियान मिली सखियान मिली पति आवत जान मिली तजि भौनैं । सुभ ध्यान विधान मिली मनही मन ज्यो मिल रंक मनोमय सौनैं । कह केसव कैसहु बेग मिलैं नत ह्वैहि वहै हरि जो कछु हौनैं । तहि पूरन प्रेम समाधि मिलै मिलिजैं हि तू मैं मिलहो फिर कौनैं ।। माननी छन्द ।। आठ सगन के अंत लघु लहहु माननी छन्द । चार छन्द केसव बरन पंचबीस आनंद ।।७५।। संग आइहि एक रिखीसर के नरदेवकुमार कि देवकुमार । सरकोस कसे करिहा इ धरैं धनमान मनोजह के अवतार । अतिदीरघ लोचन बाल वहिक्रिम स्यामल तीर सरीर उदार । इनहू मह एकह देइ सुता न्रिप ऐसि जिक्योंह् करैं करतार ।। हार छन्द ।। आठ रगन को होत पद ऐन अन्त लघु जान । हार छन्द केसव बरन छबिस अछर ठान ।।७६।। सुधि सोधि सखी भरि लेत बलोवन कापत देखत फूल तमालहि । अति भूलि सि डोलत नाहिन बाग गये किधु तेरहि तालहि । मुख देख्यजि चाहित देखन आवत ऐसि मि हो न दिखाउ रि लालहि । कहि आजु कहा दिखसाध लगी जब देख्य सुहाइ कछू न गुपालहि ।। बरनंब्रित इह भाँति करि बुधवल जिय मैं आन । छब्बिस अछर ते उपर केसव दंडक जान ।।७७।। क्रमही लघु गुरु देइ पद बत्तिस अछर जान । अनंगसेखर छन्द यह केसव भर मन आन ।।७८।। अनंगसेखर छन्द ।। तडाग हीननीर के सनीर होत केसवदास पुंडरीक झुंड भौर मंडलीन मंडही । तमालवल्लरी समेत सूख सूखि के रहेत बाग फूल फूलके समून सूल खंडही । चितैं चकोरनी चकोर मोरनी समेत मोर हंस हंसनी सुकादि सारिका सबैं पढ़ैं । जही जही बिराम लेत राम जी तही तही अनेक भाँत के अनेक भोग भोग से बढ़ैं ।। इति खटविंशादिद्वात्रिंशांति प्रथम चरणे गणद्विगण बिलोकय दंडकेति प्रसिद्धः ।। ७८ ।। इति स्रीकेसवराइ बिरचिताया छन्दमालाया बरणव्रित्तः समाप्तः ।।

अथ छन्दनामानि ।।स्री १, नारायन २, रमन ३, तरन ४, मदन ५, माया ६, मालती ७, सोमराजी ८, संकर ९, सुखकर १०, बिजहा ११, मंथान १२, ललत १३, प्रमाणका १४, मल्लका १५, नगस्वरूपणी १६, मदनमोहन १७, बोधक १८, तुरंगम १९, नागस्वरूपणी २०, तोमर २१, हरणी २२, अभ्रितगत २३, तोमर २४, संजुता २५, अनकूल २६, सुपरणप्रयात २७, इन्द्रवजा २८, उपेन्द्रवजा २९, मुक्तिकदाम ३०, तोटक ३१, सुन्दरी ३२, मोदक ३३, भुजंगप्रयात ३४, तामरस ३५, द्रुतबिलंबित ३६, कुसुमविचित्र ३७, चन्द्रवतंमा ३८, मालती ३९, वंसस्वनित ४०, प्रमिताछर ४१, स्रग्विनी ४२, पंकजवाटका ४३, तारक ४४, कलहंस ४५, हरलीला ४६, वसंततिलका

४७, मनोरमा ४८, मालती ४९, सुप्रया ५०, निसपालक ५१, चामर ५२, नाराच ५३, मनहर ५४, ब्रह्मरूपक ५५, रूपमाला ५६, प्रथवी ५७, चंचरी ५८, करुना ५९, मूलमणी ६०, गीतका ६१, धरम ६२, मदिरा ६३, बिजय ६४, सुधा ६५, बसुधा ६६, माधवी ६७, अमलकमल ६८, मकरंद ६९, गंगोदक ७०, तन्वी ७१, विजय ७२, मदनमनोहर ७३, माननी ७४, हार ७५, घत्ता ७६, रोला ७७, मरहटा ७८, सोरठा ७९, सिंहावलोकन ८०, अनंगसेखर ८१, यमन ८२, रूपमाल ८३, झूलना ८४।

एक ओंकार श्रीगुरुवे नमः ॥ मालती छन्द ॥ बिघनगन बिनासैं बुधिदाता सदा है। सुर नर मुनि बन्दी दीह दोखीन दाहै ॥ बदन रदन एकैं एक रुपैं बतावैं। जगत बिदत माया चित्तजीवैं दिखावैं ॥१॥ सकल भुजगराजा पिंगलो एक बन्दैं। दिस दिस सुखभर्ता दुःखकर्ता निकन्दैं। सुभर चरन जाके जुगम नौका बिचारैं। बिसद बिबिध मात्रा बर्न को पार तारैं ॥२॥ दोहा ॥ भाखा सुरतरु की प्रगट साखा तीन प्रकार। सुरभाखा भाखाख्प नरभाखा संसार ॥३॥ सुरभाखा के प्रथमही बालमीक बडभाग ॥ अहिभाखा के महासु नरभाखा पिंगल नाग ॥४॥ भाषा तीनहु के सुकबि द्वैं विधि करत कबित। बरनब्रित्त हैं एके अर कलाब्रित फिर मित्त ॥५॥ वरनब्रित्त के सम वरन चारे चरन प्रकास। कलाब्रित्त के सम विषम पद कर केसवदास ॥६॥ कनकतुला ज्यो सहत नहि तोलत अधितिल अंग। स्रवनतुला ते जानियो केसव छन्दोभंग ॥७॥ अबुध बुधनि मैं पढतही निभकत लछनहीन। भ्रिकुटी अग्ग खरग्ग सिर कटत तथापि अदीन ॥८॥ बरनब्रित्त के बरन लिख बिबध भाँति के छन्द। कलाब्रित्त कह कहत अब सुनियहु आनंदकन्द ॥९॥ गनागन के दोखजुत गुन खटपद मति बुध्ध। गीतकादि के छन्द नित सब ह्वैं जात असुध्ध ॥१०॥ अथ गाथा ॥ दोहा ॥ प्रथम चरन बारह कला दूजैं दस अरु आठ। तीजे बारह पंचदस चौथे पढियहु पाठ ॥११॥ रामचन्द्रपदपद्मं व्रिन्दारिक ब्रिन्दाभि बंदनीयं। केसवमतिभूतनयाबिलोचन चंचरीकायते ॥दो०॥ सताइस गुर तीन लहु लछमी गाथा जान। गुर टूटैं जह लहु बढ़ैं सत्तबीस परमान ॥१२॥ लछमी १, सिध्धि २, बुध्धि ३, लाज ४, बिद्या, ५, छमा ६, देही ७, गौरी ८, धात्री ९, घूरणा १०, छाया ११, कान्ति १२, महामाया १३, कीरति १४, सिध्धा १५, मनोरमा १६, रामा १७, गाहनी १८, बिस्वा १९, वसिता २०, सोभा २१, हरणी २२, चित्रा २३, सारिसी २४, कुररी २५, सिंही २६, हंसा २७ ॥दो०॥ तेरह लहु लौ भंभनी छत्रिया लहु इकईस। सताईस लहु बैसिका और सूद्रका तीस ॥१३॥ जा गाहा के प्रथम कल तीजे जगनहि जान। पाँचैं सातैं गुरु सहित ताहि गुरबिनी मान ॥१४॥ अथ बिगाहा ॥ केसव करि पद प्रथम मता सताईस ॥ बिगाहा दल दूसरे करो भर तीस ॥१५॥ सुनहु सुहागन सुन्दरी प्रीतमपाइ परो तिहि देखा। कंठ उठाय लगावहि सत्वर सखि जनम सफल करि लेखा। इहु बिधि सभ गाथान के जानहु भेद अपार। ग्रंथ बढ़ैं तेह ते न मैं बरने एकिहि बार ॥१६॥ अथ दोहा ॥ प्रथम पाइ तेरह कला दूजैं ग्यारह जान। तीजे तेरह

जानिये चौथे ग्यारह जान ॥१७॥ दोहा भेद छपैं ॥ भ्रमर[१] भावंरु[२] सरभ[३] सोन[४] मंडूक[५] मरकट[६] अर[७] करभ[८] मराल[९]। मनुस्य[१०] मत्तगजराज[११] पयोहर[१२] बल[१३] बानर[१४] पुन त्रिकल[१५]। मीन

१६ १७ १८ १६ २० २१
कच्छप कर देखह सारदूल अन्दूर अरु बिडाल । पुन व्याघ्रहि लेखहु कह केसव उंदरु
२२ २३
रूप स्वान ॥१८॥ दोहनभेद बखानियो ॥ अब जो गुर टूटैं लघु बढ़े सो सो नामहि जानियो ॥१६॥ भ्रमरु होइ लघु चार को खट लघु भामर जान । सरभ आठ लघु सोन दस क्रमही नाम बखान ॥२०॥ बारह लघु को बिप्र कह छत्रिय बाइस जान । बतिस लघु को बैस है और सूद्र कर मान ॥२१॥ जा दोहा के प्रथम पद जगन तीसरे देख । जानो ताहि बिडाल कै मन क्रम बचन बिसेख ॥२२॥ अथ कवित्त ॥ प्रतिपद केसवदास मन कर मत्ता चौबीस । चौपद करहु कवित्त जग प्रगट कर्‌यो अहि ईस ॥२३॥ रामचन्द्र संग्राम जुरे रावन जग रावन । बान चलत परिमान दीन दुसह दुखदावन । कटत ब्रिछ पुन उचटत पखान गिरि घटत दीह गन । उठत अगनि सूखत समुद्र जल होत छीन छन ॥ अथ चतुष्पदी ॥ सात चतुर कल को चरन अंत एक गुर जान । ऐसे चारो चरन रच चौपईया छन्द बखान ॥२४॥ जिनको जसहंसा जगत प्रसंसा मुनिजन मानसरंत । लोचन अनरूपन स्यामसरूपन अंजन अंजत संत ॥ कालत्रियदरसी त्रियगुन-परसी होत बिलम्ब न लागैं । तिनको गुन कहुहो सब सुख लहुहो पाप पुरातन भागैं ॥ अथ धत्ता ॥ सात चार कल आदि दै अंत तीन लघु देख । दुहू चरन केसव कला जग धत्ता अवलेख ॥२५॥ मन मति कहु रोकहु जग अवलोकहु आप रूप जहा सत गुन । परमानंद पावह जनम नसावह रामरूप जह होइ तन ॥ अथ नन्द ॥ ग्यारह कला बिराम रचि बहुर सात पै जान ॥ तेरह कला बिराम पुनि छपद नन्द परमान ॥२६॥ सरि साधुनि के संगा एकह रंगा काम कामना संग कहि ॥ होइ सकल संसार कित्ति अपारा राम राम रमवो कबहि ॥ अथ उलाला ।। पन्द्रह कला बिराम कर तेरहु बहुर निहार । पुन पन्द्रह तेरह द्विपद उलालहि सुबिचार ॥२७॥ सुभ छत्र धरैं स्री रामजू छब बरनत केसवदास । जनु मूरतवंत सिगार सिर सुभ कीनो सुजस प्रकास ॥ अथ खटपद ॥ पहले चरन कवित्त कह पुन उलाला देहु । केसवदास बिचारयो खटपद को नेहु ॥ २८॥ सिखाबान कर कलित जलज अछत सिर सोहै । हरचरनोदक ब्रिन्द कुन्द-दुति अति मन मोहै । अंग बिभूति बिभूतिसहित गणपति सुखदायक । ब्रिखवाहन संग्रामसिधि केसव जसलायक । उर चतुर चोर चक्री बसतु संग कुमारह मायापति ॥ जयकारन हर संककाटन पारबतिपति सिधगति ॥ चवालीस गुर कवित के उलालहि छबीस । एकत्रह दुहू छन्द केसव गुरु सत्तरईस ॥२६॥ सत्रर गुरि गनि अजय के बारह लघु उचार । जो गुरु टूटे लघु बढ़ैं सो सो नाम बिचार ॥३०॥ बारह मत्ता अजय विजय चौदह कल जानहु । सोरह लघु बरिबंड बीर अठारह मानहु । बीस कला बेताल होइ बाइस बिहंकर । मरकट कर चौबीस छबीस कलाहरु । हरि अठाईस कला करहु ब्रह्म तीस लघु लेख्यो । कर छन्द कला बत्तीस अस छंदस चौतिस देख्यो ॥३१॥ ३६ सुभकरन, ३८ स्वान, ४० सिंह, ४२ सादूंल, ४४ कूरम, ४६ कोकिल, ४८ खर, ५० कुंजर, ५२ मदन, ५४ मत्स्य, ५६ ताल, ५८ सस, ६० सारंग, ६२ पयोहर, ६४ कमल, ६६ कंद, ६८ बासर, ७० सरभ, ७२ धरम, ७४ जड़, ७६ जंगम, ७८ सुरगुर, ८० समर, ८२ सारस, ८४ करभ, ८६ भेरु, ८८ मन्दर, ९० मलय, ९२ सम, ९४

सिधि, ९६ बुधि, ९८ कलाकर, १०० कमलाकर, १०२ सुखद, १०४ धवल, १०६ अरुन, १०८ हरित, ११० पीत, ११२ क्रिस्न, ११४ रजत, ११६ मोह, ११८ गरड, १२० ससि, १२२ सूर, १२४ नवरंग, १२६ गन, १२८ रतन, १३० हीर, १३२ भ्रमर, १३४ सेहर, १३६ कुसमकर, १३८ विप्र, १४० छत्रिय, १४२ बैंस्य, १४४ सूद्र, १४६ गुरु, १४८ गणेस, १५० सबद, १५२ मुणि । अथ जाति ।। बतिस लघु लौ विप्र गनि छत्रिय चालिस चार। बैंस्य अठतालीस लौ सेखन सूद्र विचार ।।३२।। दोख महामत्त अधिक बावरो मत्त घट पंगु गनिज्जै । बधिर ति सवदविरुध्ध अंध अति अल्ल मनिज्जै । अलंकार विन नगन अरथ बिन म्रित कहावैं । बालक गन पुनरुक्त व्यरथ क्रमहीनहि गावैं ।। अतिमित्त अमित्त जु पूरब पर अरथ विरोध न आनियो । दोखसहत रसरहत सब छपय इमित बखानियो ।।३३।। अथ पध्धटिका ।। प्रथम चतर कल तीन कर एक जगन दै अन्त । इमि विधि पध्धटिका करहु केसव कवि बुधवंत ।।३४।। हरिबदन सोमसरसी सुरंग । मुठ कमलनैन नासातरंग । जुग भ्रिकुटि भ्रिंग सौरभ प्रसंस । सुभ स्रवन मुकताफल सुहंस । अति अमल कमलनीदल कपोल । तिन पर स्रमजल सीकर अमोल । सब ब्रजजनमन मति लीन मीन । यो केसवरायहि भज प्रवीन ।। अथ अरिल्ल ।।दोहा।। अन्त भगन भनि पाय पुन बारह मत्त बखान । चौसठ मत्ता पाय चहुँ यों अरिल्ल मन मान ।।३५।। देख बाग अनुराग उपज्जिय । बोलत कोकिल कल धुनि सज्जिय । राजत रति की सखिय सुबेसनि । कहत मनमथ मनहु सुदेसनि ।। अथ पादाकुलिक ।। बारह मत्ता प्रथम चरन दोई दे गुरु अन्त । सोरह मत्ता चरन प्रति पादाकुलक कहंत ।।३६।। बहुबनवारी सोभत भारी । तपमह देखी ग्रहतिथि देखी । सुभ सर सोभैं मुनिमन लोभैं । सरसज फूले अलि रसभूले ।।राजसेनीनवपदी ।। तीजैं पाचे प्रथम पद पन्द्रह मत्त प्रभाऊ । चौथे ग्यारह दूसरे बारह कला बनाऊ ।।३७।। आगे दोहा देहु इक नव पद ताके जान । राजसेन की एक सौ सोरह मत्त प्रमान ।।३८।। इम अमल कमल फूले सरनि । सुदिसि विदिसहि उपवंग । छब देख देख सखि फूलियो । भवर मनोहर संग । हम भौरन जो किम भूलियो । साधि केलकुल राधिके । सौतिन के उर दाहु । पाये पूरब पुन्न ते सुखदायक हरिनाहु ।। अथ पदमावती ।। मत्त अठारह बिरम कर पुन चौदह परिमान । प्रतिपद केवल बत्तिसै पदमावती बखान ।।३९।। रघुनन्दन आए सुन सब धाये पुरजन जैसे तैसे कहु । दरसनरस भूले तन मन फूले बरने जाहि न तैसे बहु । पिय के संग नारी सब सुखकारी तिन सौ यों री दिगजोरी । जह तह चहु ओरन मिली चकोरन ज्यों चाहित चन्द चकोरी ।।सोरठा लछण दोहरा ।। उलटो दोहा पढतही तही सोरठा होइ । केसवदास प्रकासही समझत है सभ कोइ ।।४०।। जग जसवंत बिसाल राजा दसरथ की पुरी । चन्दसहित सुभ काल भाल थली जनु ईस की ।। कुण्डलिया ।। कीजै दोहा प्रथमही अरथ कवित्त बखान । अन्त सोरठा सोहिये कुंडलिया परिमान । कुंडलिया परमान चरन चौथो फिर पढ़िये । ग्यारह मत्ता अन्त तहा तैसी बिधि बढिये । हरिगुन गनहु अनन्त सन्त पदवी पद दीजै । केसवदास प्रकास प्रादि पद अन्तहि कीजै ।।४१।। देही अविनासी सदा देह बिनास बिचार । घटत बढत तिथि देखिये घटत बढत नहीं बार ।। घटत बढत नहि बार चारुमति बुझि देखिय ।। बेद पुरान अनन्त साधु भगवन्त सिधि सब । बेद पुरान

अनन्त कहत आपन यो नेही । यो छाडत जग सन्त देह ज्या छाडत देही ।। अथ चूडामणि ।। दोहा के दुहूं पदन मैं पंच पंच कल देख । सब चूड़ामणि छन्द के मत्त अठावन लेख ।।४२।। राधाबाधा मीन के बेधहु जिमि तू रूप तपोधन । जग जीवन की जीवका ब्रजजनलोचन पृस्ठ देवगन ।। अथ हाकलिका सोरठा ।। करै सुनिृपत जान भगन तीन दै अन्त गुर । हाकलिका परिमान प्रतिपद चौदह मत्त सभ ।।४३।। आवत स्रीब्रिजराज बने । केवल तेरेहि रूप सने । तू तिनसो हंस बात कहै । सोतिन को गन दुख्ख दहै।।अथ मधुभार ।। चार मत्त के दोय गन छन्द गनो मधुभार । चौहूं पद बत्तीस कल छाडहु कोटि विचार ।।४४।। फूले प्रवास । प्रतिभुज प्रकास । सोभा विलास । सोभै प्रकास ।।६१।। अथ आभीर ।। ग्यारह मत्ता को चरन जगनह अन्त निहार । कला जान अभीर की चहु पद चारहि चार ।।४५।। सुन्दर दूलह राम । देह धरे जनु काम । धनुख चढ़ावहि ईस । सब मिल देह असीस ।। अथ हरगीतका ।। मध्य कला इक बीस रचि देहु रगन इक अन्त । द्वै लघु आदि बनाउ पद हरगीतका भनन्त ।।४६।। कुस-मद्रिका समिधै स्रुवा कुस के कमण्डल को लिये । कटमूल सुवरन तरकसी भ्रिगलतासी समभै हिये । धनुबान तीछ कुठार के सममेखला भ्रिगचरम सो । रघुबीर को यह देखिये रसबीर सोवत धरम सो ।। अथ त्रिभंगी ।। बिरमह दस पर आठ पर बसु पर पुन रस रख । कहौ त्रिभंगी छन्द यह जगनहीन यह बेख ।।४७।। बाजे बहु बाजत तारनि साजत सुन सुर लाजत दुख भाजत । नाचत सब नारी सुवनसंगारी गति मन-हारी सुखकारी । बीनानि बजावै गीतनि गावै मुनिनि रिफावै मन भावै । भूखन पट दीजै देखत दीजै सब रस भीजै हस लीजै ।। अथ हीर ।। एक गुरहि तर चार लघु तीनो ठौर मति धीर ।। अन्त रगन तेईस कल होइ एक पद हीर ।।४८।। सुन्दरी सब सुन्दर प्रति मन्दर मधि यो बनी । मोहन गिरिस्रिगन पर मानो मनमोहनी । भूखन गन भूखित तन भूरि चितन चौरही । देखत गुन रेखत जनु बाननयन कोरही ।। अथ मदनमनोहर ।। मदन मनोहर छन्द की कला एक सौ साठ । प्रतिपद अछर तीस कै तब पढियत है पाठ ।।४६।। यह मदनमनोहर आवत तो घर उठ आगे कै लै सजनी सुख दै रजनी । सुन राध करनी हरि अभिमानी जान सयानी सबै लायक अरु बहुनायक ।। सुखसाधन साधहि मौनन साधहि पतिह अराधै राम बली सभ भाँति भली ।। पिया के संग बसकै रतरस रस के गोपसुता गुनग्रामयुता सोहै जु चली ।। अथ मरहटा ।। दस पर बिरमहु आठ पुनि ग्यारह कला बखान । गुरु लघु दीजुह अन्त यह मरहटा परिमान ।।५०।। पुरजन सुख पावत रघुपति आवत करत तिदौरा दौरि । आरती उतारै सरबस वारै अपनी अपनी पौरि । पढ़ि मन्त्र असेखन करि अभिषेकन दै आसिख सबिसेख ।। कुंकम करपूरन म्रिगमद पूरन बरखत बरखा वेख ।। इति स्रीकेसवराय-कृतछन्दमाला समाप्तं ।।

सहायक ग्रन्थ

हिन्दी भाषा के ग्रन्थ

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
१. अकबरी दरबार के हिन्दी कवि	लेखक डा० सरयू प्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् २००७ वि०।
२. अलंकार-पीयूष (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध)	लेखक डा० रामशंकर शुक्ल 'रसाल', रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९२९, १९३० (क्रमशः)
३. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय (प्रथम भाग)	लेखक डा० दीनदयालु गुप्त, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, संवत् २००४ वि०।
४. आचार्य केशवदास	लेखक डा० हीरालाल दीक्षित, लखनऊ विश्वविद्यालय, संवत् २०११ वि०।
५. कविकुलकल्पतरु	लेखक चिन्तामणि त्रिपाठी, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८७५ (पाषाण यंत्रालय)।
६. कविता कौमुदी (प्रथम भाग)	लेखक रामनरेश त्रिपाठी, नॉर्दर्न इंडिया पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, सन् १९४६ ई०।
७. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार हरिचरणदास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, संवत् १८९० वि०।
८. कविप्रिया (मूल)	केशवदास, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२४ ई०।
९. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, मातृ-भाषा-मंदिर, दारा गंज, प्रयाग, सन् १९५२ ई०।
१०. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार ला० भगवान दीन, नेशनल प्रेस, बनारस कैंट, संवत् १९८२ वि०।
११. कविवर बिहारीलाल	लेखक राधाकृष्णदास, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, सन् १८९५ ई०।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
१२. कविप्रिया (सटीक)	टीकाकार सरदार कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १८८६ ई०।
१३. काव्य-कल्पद्रुम (उत्तरार्द्ध)	लेखक कन्हैयालाल पोद्दार, प्रकाशक पं० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा, मथुरा, संवत् २००२ वि०।
१४. काव्य-निर्णय	लेखक भिखारीदास, वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग, सन् १६३७ ई०, टीकाकार पं० महावीर प्रसाद मालवीय 'वीर'।
१५. केशव की काव्यकला	लेखक कृष्णशंकर शुक्ल, साहित्य-ग्रंथ-माला कार्यालय, काशी, संवत् २००६ वि०।
१६. केशव ग्रंथावली, खण्ड १ और २	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १६५४ ई०, सन् १६५६ ई० क्रमशः।
१७. केशवदास	लेखक चन्द्रबली पांडे, शक्ति कार्यालय, इलाहाबाद, सन् १६५१ ई०।
१८. केशव-पंचरत्न	सम्पा० ला० भगवानदीन, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सं० १६८६ वि०।
१६. कोशोत्सवस्मारक संग्रह ('केशवदास' शीर्षक लेख)	सम्पा० राय बहादुर म० म० गौरी शंकर हीरा चन्द ओझा, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, सं० १६८५ वि०।
२०. गोस्वामी तुलसीदास	लेखक रामचन्द्र शुक्ल, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, सन् १६३५ ई०।
२१. छन्दमाला (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास, प्राप्ति-स्थान: जैनमुनि विनय सागर संग्रह, बिहार।
२२. छन्दः प्रभाकर	लेखक जगन्नाथ प्रसाद 'भानु', जगन्नाथ प्रेस, बिलासपुर, सं० १६८६ वि०।
२३. जगद्विनोद (पद्माकरपंचामृत)	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्रीराम रतन पुस्तक-भवन, काशी, सं० १६६२ वि०।
२४. जहाँगीर-जस-चन्द्रिका (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास, सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्राप्ति-स्थान: विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, ब्रह्मनाल, काशी।
२५. जहाँगीरनामा (प्रथम भाग)	अनु० मुंशी देवी प्रसाद, भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता, सं० १६६२ वि०।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
२६. दरबार-ए-अकबरी (भाग पहला)	लेखक मौलाना मोहम्मद हुसैन आज़ाद, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, सं० २००४ वि०। अनु० रामचन्द्र वर्मा।
२७. देव और बिहारी	लेखक कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ, सं० २००६ वि०।
२८. देव और उनकी कविता	लेखक डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, सन् १६४६ ई०।
२६. देव ग्रन्थावली	लेखक गणेश बिहारी मिश्र, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, सन् १६१२ ई०।
३०. नवरसतरंग	लेखक कृष्णबिहारी मिश्र, प्राचीन कवि-माला कार्यालय, काशी, सन् १६२५ ई०।
३१. पद्माभरण (पद्माकर पंचामृत)	सम्पा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री राम रतन पुस्तक-भवन, काशी, सं० १६६२ वि०।
३२. बारहमासा (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास, प्राप्ति-स्थानः बृहत् ज्ञान-भंडार, बीकानेर।
३३. बिहारी	लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक स्वयं लेखक, वाणी-वितान ब्रह्मनाल, बनारस, सं० २००७ वि०।
३४. बिहारी की सतसई (पहला भाग)	लेखक पंडित पद्मसिंह शर्मा, प्रकाशक काशीनाथ शर्मा, काव्य कुटीर नायकन गली, पोस्ट चान्दपुर, जिला बिजनौर, सं० १६८२ वि०।
३५. बिहारी की वाग्विभूति	लेखक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, प्रकाशक स्वयं लेखक, वाणी-वितान ब्रह्मनाल, बनारस, सं० २००७ वि०।
३६. बिहारी और देव	लेखक ला० भगवानदीन, साहित्य भूषण कार्यालय, अग्रवाल प्रेस, तेलिया-बाग, काशी, सं० १६८३ वि०।
३७. बिहारी दर्शन	लेखक लोक नाथ द्विवेदी, राष्ट्रीय प्रकाशन मंडल, पटना, सं० २००७ वि०।
३८. बिहारी रत्नाकर	लेखक जगन्नाथ दास रत्नाकर, गंगा पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ, सं० १६८३ वि०।
३६. वीरसिंहदेव-चरित	लेखक केशवदास, नागरी-प्रचारिणी-सभा, काशी, संवत् नहीं दिया है।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
४०. वीरसिंहदेव-चरित	लेखक केशवदास, भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १९०४ ई० ।
४१. बुन्देलखण्ड का संक्षिप्त इतिहास	लेखक गोरे लाल तिवारी, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९९० वि० ।
४२. बुन्देल वैभव (प्रथम भाग)	लेखक गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर', श्री रामेश्वर प्रसाद द्विवेदी, बुन्देल वैभव ग्रन्थमाला, टीकमगढ़, सं० १९९० वि० ।
४३. भवानीविलास	लेखक देव, सम्पा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८९३ ई० ।
४४. भारत का इतिहास	लेखक ईश्वरी प्रसाद, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, प्रयाग, सन् १९४९ ई० ।
४५. भावविलास	लेखक देव, सम्पा० लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, तरुण-भारत-ग्रन्थावली कार्यालय, दारागंज, प्रयाग, सं० १९५१ वि० ।
४६. मतिराम ग्रन्थावली	लेखक कृष्णविहारी मिश्र, गंगा ग्रन्थागार, लखनऊ, सं० १९९६ वि० ।
४७. मध्यकालीन भारत की सामाजिक अवस्था	लेखक अल्लामा अब्दुल्ला यूसुफ अली, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, सन् १९२९ ई० ।
४८. मआसिरुल-उमरा (भाग १ और २)	अनु० ब्रजरत्नदास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९८८, १९९५ वि० (क्रमशः) ।
४९. मिश्रबन्धु विनोद (भाग १, २ तथा ३)	लेखक मिश्रबन्धु, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, सं० १९७० वि० ।
५०. मूल गोसाई-चरित	लेखक बाबा बेणी माधवदास, गीता प्रेस, गोरखपुर, सं० १९९३ वि० ।
५१. योगवाशिष्ठ (गुरुमुखी)	लेखक रामप्रसाद निरंजनी, मुंशी गुलाब सिंह एण्ड सन्स, नानक सं० ४४७ ।
५२. योगवाशिष्ठ (भाषा)	लेखक रामप्रसाद निरंजनी, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९६१ वि० ।
५३. रसरहस्य	लेखक कुलपति मिश्र, सम्पा० पं० बलदेव मिश्र, इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद, सं० १९५४ वि० ।
५४. रसविलास	लेखक देव, सम्पा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १९०० ई० ।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
५५. रसिकप्रिया (सटीक)	लेखक केशवदास, टीकाकार सरदार कवि, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९११ ई० ।
५६. रसिकप्रिया (सटीक)	लेखक केशवदास, टीकाकार सरदार कवि, वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई, सं० १९७१ वि० ।
५७. रसिकप्रिया (सटीक)	लेखक केशवदास, टीकाकार लक्ष्मीनिधि चतुर्वेदी, मातृ-भाषा-मन्दिर, प्रयाग, सन् १९५४ ई० ।
५८. रतनबावनी (केशव पंचरत्न)	सम्पा० ला० भगवानदीन, रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सं० १९८६ वि० ।
५९. रतनबावनी (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास, प्रतिलिपिकार श्री नारायण मिश्र, प्राप्ति-स्थान : नागरी-प्रचारिणी सभा काशी, प्रतिलिपिकाल श्रावण सं० २००४ वि० ।
६०. राधाकृष्ण ग्रन्थावली	सम्पा० श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस, प्रयाग, सन् १९३० ई० ।
६१. रामचन्द्रिका	लेखक केशवदास, टीकाकार जानकी प्रसाद, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९१५ ई० ।
६२. रामचन्द्रिका (केशव कौमुदी) (पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध)	टीकाकार ला० भगवानदीन, रामनारायण लाल—प्रकाशक, इलाहाबाद, पूर्वार्द्ध, सं० २००४ वि०, उत्तरार्द्ध, सन् १९५० ई० ।
६३. रामचन्द्रिका (संक्षिप्त)	सम्पा० जगन्नाथ तिवारी, गया प्रसाद एण्ड सन्स, सन् १९४९ ई० ।
६४. रामचरितमानस	लेखक तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, सं० १९९७ वि० ।
६५. रीतिकाव्य की भूमिका	लेखक डा० नगेन्द्र, गौतम बुक डिपो, दिल्ली, सन् १९४९ ई० ।
६६. विनयपत्रिका	लेखक तुलसीदास, सम्पा० वियोगी हरि, साहित्य सेवा सदन, बनारस, सं० २००७ वि० ।
६७. विज्ञानगीता	लेखक केशवदास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९५१ वि० ।
६८. विज्ञानगीता (सटीक)	लेखक केशवदास, अनु० श्यामसुन्दर द्विवेदी, मातृभाषा-मन्दिर, प्रयाग, सं० २०११ वि० ।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
६९. शब्दरसायन	लेखक देव, सम्पा० डा० जानकी नाथ सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं० २००४ वि० ।
७०. शिखनख (हस्तलिखित)	लेखक केशवदास, प्राप्ति-स्थान : बृहत् ज्ञान भंडार, बीकानेर ।
७१. शिवसिंह सरोज	लेखक शिवसिंह सेंगर, सम्पा० रूपनारायण पांडेय, नवल किशोर प्रेस, लखनऊ, सन् १९२६ ई० ।
७२. शृंगार निर्णय	लेखक दास, सम्पा० बाबू रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन प्रेस, काशी, सन् १८९५ ई० ।
७३. सुकवि सरोज (प्रथम और द्वितीय भाग)	लेखक गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर', सनाढ्यादर्श ग्रन्थमाला, टीकमगढ़, सं० १९८४ वि०, सं० १९९० वि० (क्रमशः) ।
७४. सुखसागरतरंग	लेखक देव, प्रकाशक सेठ छोटेलाल लक्ष्मी चन्द, बम्बई, लखनऊ प्रिंटिंग प्रेस, सन् १८९८ ई० ।
७५. सूरसागर (दूसरा भाग)	सम्पा० नन्द दुलारे वाजपेयी, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९८० वि० ।
७६. हिततरंगिणी	लेखक कृपाराम, भारत जीवन प्रेस, काशी, सं० १९५२ वि० ।
७७. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास	लेखक डा० भगीरथ मिश्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००५ वि० ।
७८. हिन्दी के कवि और काव्य (प्रथम भाग)	लेखक गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९३७ ई० ।
७९. हिन्दी नवरत्न	लेखक मिश्रबन्धु, गंगा-पुस्तकमाला, लखनऊ, सं० १९९८ वि० ।
८०. हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास	लेखक अयोध्यासिंह उपाध्याय, पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय, पटना, सं० १९९७ वि० ।
८१. हिन्दी साहित्य	लेखक डा० श्यामसुन्दरदास, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, सन् १९५३ ई० ।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
८२. हिन्दी साहित्य	लेखक डा० हजारी प्रसाद, अत्तर चन्द कपूर एण्ड सन्स, दिल्ली, सन् १९५२ ई०।
८३. हस्तलिखित हिन्दी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण	लेखक डा० श्यामसुन्दरदास, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९८० वि०।
८४. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	लेखक डा० रामकुमार वर्मा, प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९४८ ई०।
८५. हिन्दी साहित्य का इतिहास	लेखक रामचन्द्र शुक्ल, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी, सं० १९९६ वि०।
८६. हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास	लेखक डा० सूर्यकान्त शास्त्री, प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, सन् १९३१ ई०।
८७. हिन्दुई साहित्य का इतिहास	लेखक गार्सां द तासी, अनु० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद सन् १९५३ ई०।

कोश

१. प्रामाणिक हिन्दी कोश	सम्पा० रामचन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, साहित्य रत्नमाला, बनारस, सं० २००८ वि०।

संस्कृत भाषा के ग्रन्थ

१. अनंगरंग	लेखक कल्याण मल्ल, सम्पा० जयदेव विद्यालंकार, प्रकाशक मेहरचन्द लक्ष्मण दास, लाहौर, सन् १९२७ ई०।
२. अलंकारसूत्र	लेखक राजानक रुय्यक, ट्रावनकोर गवर्नमेंट प्रेस, सन् १९१५ ई०।
३. अलंकारशेखर	लेखक केशव मिश्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १८९५ ई०।
४. उज्ज्वलनीलमणि	लेखक रूपगोस्वामी, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३२ ई०।
५. कामसूत्र (भाषा टीका)	लेखक वात्स्यायन, टीकाकार माधवाचार्य शर्मा, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९९१ वि०।

क्रमांक ग्रंथ	विशेष विवरण
६. काव्यकल्पलतावृत्ति	लेखक अमरचन्द्र यति, चौखम्भा संस्कृत सीरीज कार्यालय, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १९३१ ई० ।
७. काव्यादर्श	लेखक दण्डी, मेहरचन्द लक्ष्मणदास, लाहौर, सन् १९२५ ई० ।
८. काव्यानुशासन	लेखक वाग्भट (द्वितीय), निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९१५ ई० ।
९. काव्यानुशासन	लेखक हेमचन्द्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३४ ई० ।
१०. काव्यप्रकाश	लेखक मम्मट, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सं० २००८ वि० ।
११. काव्यालंकार	लेखक भामह, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १९२८ ई० ।
१२. काव्यालंकार	लेखक रुद्रट, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९०९ ई० ।
१३. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति	लेखक वामन, सम्पा० नारायण नाथ कुलकर्णी, ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, सन् १९२७ ई० ।
१४. कुवलयानन्द	लेखक अप्पय दीक्षित, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४७ ई० ।
१५. चन्द्रालोक	लेखक जयदेव, सम्पा० महादेव गंगाधर बाकरे, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस, बम्बई, सन् १९३४ ई० ।
१६. दशरूपक	लेखक धनंजय, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४१ ई० ।
१७. नाट्यशास्त्र	लेखक भरत मुनि, सम्पा० केदारनाथ साहित्यभूषण, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९४३ ई० ।
१८. प्रबोधचन्द्रोदय	लेखक कृष्णमिश्र, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९१६ ई० ।
१९. प्रसन्नराघव	लेखक जयदेव, मास्टर खेलाड़ी लाल एण्ड सन्स, बनारस, सन् १९४७ ई० ।
२०. रतिरहस्य	लेखक कोक्कोक, तार यंत्रालय, काशी, फ्रीमैन एण्ड कम्पनी, सन् १९२२ ई० ।

क्रमांक ग्रन्थ	विशेष विवरण
२१. रसार्णवसुधाकर	लेखक शिङ्गभूपाल, ट्रावनकोर गवर्नमेंट प्रेस, त्रिवेन्द्रम्, अनन्तशयन संस्कृत ग्रन्थावली नं० ५०, सन् १९१६ ई० ।
२२. रसतरंगिणी (भाषा टीका)	लेखक भानुदत्त, टीकाकार पं० जीवनाथ ओझा, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई सं० १९७१ वि० ।
२३. रसमंजरी	लेखक भानुदत्त, श्री हरिकृष्ण निबन्ध-भवन, बनारस, सं० २००८ वि० ।
२४. वृत्तरत्नाकर	लेखक केदारभट्ट, विद्याविलास प्रेस, बनारस, सन् १९२७ ई० ।
२५. शृंगार-प्रकाश (२२-२४)	लेखक भोजदेव, सम्पा० ए० रंगास्वामी सरस्वती, ला प्रिंटिंग हाउस, माउण्ट रोड, मद्रास, सन् १९२६ ई० ।
२६. श्रीमद्भगवद्गीता	लेखक स्वामी स्वरूपानन्द, अद्वैत आश्रम अलमोरा, सन् १९४० ई० ।
२७. श्रीमद्भागवत	लेखक व्यास, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९५६ वि० ।
२८. सरस्वतीकुलकण्ठाभरण	लेखक भोजदेव, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् १९३४ ई० ।
२९. साहित्यदर्पण	लेखक विश्वनाथ, सम्पा० जीवानन्द, वाचस्पत्य यन्त्रालय, कलकत्ता, सन् १९१६ ई० ।
३०. हनुमन्नाटक (भाषा टीका)	टीकाकार रामस्वरूप शर्मा 'धर्मपताका' सम्पादक, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, सं० १९९० वि० ।

पत्र तथा पत्रिकाएँ

१. नागरी-प्रचारिणी-सभा खोज-रिपोर्ट—सन् १९००; १९०३-१९२२ ई० ।
२. नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका—भाग ३, अंक ४, सं० १९७९ वि०; भाग ८, सं० १९८४ वि०; भाग ११, सं० १९८७ वि० ।
३. विशाल भारत—मई सन् १९३७; जून १९३२ ई० ।
४. सरस्वती-भाग २, संख्या ८ तथा ९, सन् १९०१ ई०; भाग ३१, खण्ड १, सन् १९३० ई०; भाग ३२, खण्ड १, सन् १९३१ ई०; भाग ११, संख्या ६ सन् १९१० ई०; संख्या १२, भाग ४, दिसम्बर सन् १९०३ ई० ।
५. सुधा-वर्ष ७, खण्ड १, संख्या १२, सन् १९३४ ई० ।
६. हिन्दी साहित्य-सम्मेलन-पत्रिका—भाग १, संख्या १, माघ १९८५ वि० ।
७. हिन्दुस्तानी—अक्तूबर-दिसम्बर, भाग १७, अंक ४, सन् १९४७ ई० ।

८. Calcutta Review (Third Series, Vol. XI), May & June 1924 (Bir Singh Deo, Lala Sita Ram, B.A.)

९. University of Allahabad Studies (Hindi Section), 1943 A.D. (Was Bir Singh Deo Bundela a "Bandit" and "Treacherous" murderer of Abul Fazl ? Ram Prasad Nayak, M.A.)

अंग्रेजी भाषा के ग्रन्थ

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशक और संस्करण
1.	A History of the Boondelas	Capt. W.R. Pogson	Baptist Mission Press, Park Street, Calcutta, 1828 A.D.
2.	Akbar, the Great Mogul	Vincent A. Smith	Clarendon Press, Oxford, 1919 A.D.
3.	A Short History of Muslim Rule in India.	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd. Allahabad, 1939 A.D.
4.	A Short History of the Indian People	Dr. Tara Chand	Machmillan & Co. Ltd., 1944 A.D.
5.	Central India States Gazetteer (Eastern States, Orchha) Vol. VI A-Text	Compiled by Capt. C.E. Laurd	Nawal Kishore Press, Lucknow, 1907 A.D.
6.	History of Hindi Literature	F.E. Keay	Association Press, Calcutta, 1933 A.D.
7.	History of India	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd., Allahabad, 1947 A.D.
8.	History of Jahangir, Vol. I.	Beni Prasad	Allahabad University Studies in History, 1922 A.D.
9.	History of Medieval India	Ishwari Prasad	Indian Press Ltd., Allahabad, 1948 A.D.
10.	Influence of Islam on Indian Culture	Dr. Tara Chand	Indian Press Ltd., Allahabad, 1946 A.D.
11.	Kávyádarśa	Edited & Translated by Belvalkar	Oriental Book Agency, Poona, 1924 A.D.
12.	Kávyálaṁkárasárasaṁgraha	Udbhaṭa	Bombay Sanskrit & Prakrit Series LXXIX, Arya Bhushan Press, 1925 A.D.

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशक और संस्करण
13.	Kávya Prakáśa	Translated by Dr. Ganga Nath Jha	Medical Hall Press, Benares, 1918 A.D.
14.	Medieval India under Mohammedan Rule	Stanely Lanepoole	Y. Fisher Unwin Ltd., New York, 1916 A.D.
15.	Medieval Mysticism of India	Kshiti Mohan Sen	Luzac & Co., 46, Great Russell Street, London, 1935 A.D.
16.	Memoirs of the Emperor Jahangueir	Translated by Major David Price	N. Chakravarti Bangbasi Electric Machine Press, Calcutta, 1829 A.D.
17.	Moghul Empire in India, Part I.	S.R. Sharma	Karnatak Printing Press, Bombay, 1934 A.D.
18.	Níti Śataka & Vairágya Śataka	Edited & translated by M.R. Kale	Oriental Publishing House, Bombay, 1902 A.D.
19.	Selections from Hindi Literature, Book I & V.	Sita Ram Shastri	University of Calcutta, Book I—1921 A.D. Book V—1924 A.D.
20.	Some Concepts of Alaṁkára Śastra	Dr. Raghavan	The Adyar Library Series No. 33, 1942 A.D.
21.	Śṛṁgára Prakáśa Vol. I (Part I & II)	Dr. Raghavan	Karnatak Publishing House, Bombay, Year of publication not stated.
22.	The Cambridge History of India, Vol. IV (Akbar & Jahangir)	Planned by Lt. Col. Wolselay Haig & Edited by Sir Pichard Burn	Cambridge University Press, Cambridge, 1937 A.D.
23.	The History of India as told by its own Historians, Vol. VI.	Elliot & Dowson	Trubner & Co., London, 1875 A.D.
24.	The Modern Vernacular Literature of Hindustan	Sir G.A. Grierson	Asiatic Society of Bengal, Calcutta, 1889 A.D.

क्रमांक	ग्रन्थ का नाम	ग्रन्थकार	प्रकाशक और संस्करण
25.	The Sáhitya Darpaṇa of Vishwanátha & the History of Sanskrit Poetics	Dr. P.V. Kane	Nirnaya Sagar Press, Bombay, 1951 A.D.
26.	Tuzuk-i-Jahangiri Vol. I & II.	Translated by Alexander Rogers	London Royal Asiatic Society, Vol. I, 1909 A.D., Vol. II, 1914 A.D.

हमारे अनुसंधान की विशेषताएं

१. अभी तक हिन्दी साहित्य में आचार्य केशवदास द्वारा रचित 'छन्दमाला' की गुरुमुखी लिपि में प्राप्य हस्तलिखित प्रति का कहीं भी उल्लेख उपलब्ध नहीं होता।

२. हमने केशव और बिहारी में पिता-पुत्र-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया है और अपने मत की पुष्टि में केशवदास के वंशधरों से प्राप्त वंशवृक्ष का भी ब्योरा दिया है।

३. केशव के रामचन्द्रिका, वीरसिंहदेव-चरित, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका तथा रतनबावनी नामक ग्रन्थों को प्रबन्धकाव्य की श्रेणी में रखा गया है और प्रत्येक का आवश्यकीय प्रबन्धकाव्य के तत्त्वों के आधार पर नवीन दृष्टिकोण से विवेचन किया गया है।

४. केशव के प्रबन्धकाव्यों एवं रीतिकाव्यों के काव्यपक्ष पर पृथक्-पृथक् विचार करते हुए भावव्यंजना, अलंकार, छन्द, गुण, भाषा आदि के विवेचन में नया दृष्टिकोण रखा गया है।

५. केशव के रीतिविवेचन के अन्तर्गत स्थान-स्थान पर बहुत सी नवीन बातों का उल्लेख किया गया है, यथा काव्य-दोष-निरूपण और उसका आधार, 'आधि' नामक ३४वाँ संचारी भाव आदि।

६. आचार्य केशवदास की हिन्दी के अन्य प्रमुख आचार्यों—चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, मतिराम, देव, दास तथा पद्माकर से नए दृष्टिकोण से तुलना की गई है।

७. हिन्दी के परवर्ती शृंगारी मुक्तक कवियों पर केशव के प्रभाव का सिंहावलोकन किया गया है।

८. केशव का हिन्दी के आचार्यों तथा शृंगारी मुक्तक कवियों में स्थान निर्धारित किया गया है।

